

भारतीय अर्थव्यवस्था





KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform



Download the
Khan Global Studies App

विषय सूची

अर्थव्यवस्था	1	बेरोजगारी	48
आर्थिक प्रणाली	2	शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी	49
अर्थव्यवस्था के क्षेत्र	2	भारत में बेरोजगारी के कारण	50
आर्थिक संवृद्धि, विकास और अल्पविकास	3	भारत में बेरोजगारी दूर करने के सम्बन्ध में सुझाव	51
मानव विकास सूचकांक - 2021-22	7	अनियमितकरण व अनौपचारिकरण	52
आर्थिक विकास की अवस्थाएँ	7	रोजगार विहीन संवृद्धि	53
भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण	8	आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण	54
परिसम्पत्तियों का दोषपूर्ण वितरण	9	नियत कालिक रोजगार	55
औसत भारतीय का निम्न जीवन स्तर	9	आदेशात्मक नियोजन	57
मानव विकास क्या है?	10		
सतत् विकास के 17 लक्ष्य	10	भारतीय आयोजन	57
विकास का गाँधीवादी बनाम नेहरूवादी मॉडल	10	पंचवर्षीय योजनाएं	58
कुटीर उद्योग	11	आर्थिक समानताओं की उपलब्धि	59
मूल उद्योग	11	आर्थिक कारक	60
राष्ट्रीय आय से जुड़ी अवधारणाएँ	13	नीति आयोग	64
		नीति आयोग के कार्य	65
राष्ट्रीय आय	13	नीति आयोग का एक्शन ऐजेंडा	65
हरित सकल घरेलू उत्पाद	14	विज्ञान एवं तकनीक	66
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद	14	शिक्षा एवं कौशल विकास	67
राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली	15	अटल नवोन्मेष मिशन	68
राष्ट्रीय आय को मापने की विधियाँ	16	आधिकारिक संरचना	69
समावेशी विकास	18		
भारतीय समावेशी विकास का मापन तथा बढ़ावा देने के उपाय	19	निवेश मॉडल	69
समावेशी विकास संबंधी सूचकांक	22	सार्वजनिक निजी भागीदारी मॉडल (पीपीपी के विभिन्न मॉडल)	70
सामाजिक प्रगति सूचकांक	23	'3पी इंडिया' की स्थापना का समर्थन	72
विकास का आत्मविश्लेषण	29	व्यवहार्यता अंतर अनुपात	73
सामाजिक मानदंड, संस्कृति और विकास	29	राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन	73
पर्यावरणीय नैतिकता	30	भूमि सुधार	75
मूल्य और अर्थशास्त्र	30	जमींदारी व्यवस्था	75
इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे	31	महालवाड़ी व्यवस्था	75
		रैय्यतवाड़ी व्यवस्था	75
गरीबी	32	भूमि सुधार के उद्देश्य	75
गरीबी के प्रकार	32		
निरपेक्ष गरीबी मापन	33	भारतीय कृषि	75
गरीबी पर रंगराजन समिति की रिपोर्ट, 2012	34	भारत में भूमि सुधारों की मुख्य विषय-वस्तु	76
भारत में गरीबी का स्तर	36	चकबंदी की धीमी प्रगति के कारण	77
गरीबी का दुष्चक्र	37	सहकारी कृषि	78
गरीबी के कारण	38	राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति, 2013	79
जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी	39	भूमि सुधारों की विफलता के कारण	80
राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन	40	सरप्लस भूमि की पहचान और पुनर्वितरण	81
राष्ट्रीय पोषण मिशन	41	कृषि से संबंधित क्रांतियाँ	82
टपकन थ्योरी और गरीबी	43	कृषि कीमत नीति	83
ग्लोबल हंगर सूचकांक, 2022	45	स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट	84
वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021	46	सरकारी खरीद से संबंधित मुद्दे	85
राज्य खाद्य सुरक्षा सूचकांक रिपोर्ट-2021-22	47	प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना	86
भारत में बेरोजगारी का वर्गीकरण	48	अंत्योदय अन्न योजना	89

एकीकृत बाल विकास सेवाएँ	90	मुद्रा, मुद्रास्फीति, बैंकिंग, रिजर्व बैंक तथा मौद्रिक नीति	169
नकद हस्तांतरण	91	मुद्रा	169
खाद्य सुरक्षा	92	मुद्रास्फीति	172
भारत की कृषि विपणन प्रणाली की मुख्य समस्याएं	96	बैंकिंग	177
अनुबंध कृषि की चुनौतियाँ	98	विभिन्न प्रकार की बैंक	179
कृषि में प्रौद्योगिकी की भूमिका	102	रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया	187
ई-नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार)	103	मौद्रिक नीति	192
कृषि निर्यात के समक्ष चुनौतियाँ	104	भारतीय बीमा उद्योग	199
कृषि क्षेत्र को सब्सिडी	107	लोकपाल एकीकरण योजना	200
कृषि सब्सिडी को लेकर भावी रणनीति	109	बैंकिंग व्यवस्था से जुड़े महत्वपूर्ण योजना	207
आपूर्ति शृंखला प्रबंधन	111	एकीकृत भुगतान इंटरफेस 2.0	208
भारत के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का आपूर्तिशृंखला प्रबंधन	112	कर प्रणाली, बजट तथा संघीय वित्त व्यवस्था	209
खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अवसंरचना विकास	113	कर प्रणाली	209
मेगा फूड पार्क योजना	114	बजट	217
प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना (पी.एम.के.एस.वाई.)	117	राजकोषीय नीति	225
पशु पालन की समस्या और उनके समाधान	119	व्यय प्रबंधन आयोग	228
मत्स्य संपदा योजना	126	राजकोष का कंप्यूटरीकरण	230
कृषि साख से संबंधित संस्थाएँ	127	पी.एम. केयर्स फंड	231
भारत में उद्योग एवं औद्योगिक नीति	128	पारदर्शी कराधान- 'ईमानदार का सम्मान' प्लेटफॉर्म	231
भारत में औद्योगिक नीतियाँ	128	जी.एस.टी. क्षतिपूर्ति उपकर और संबंध विवाद	232
विनिवेश	133	संघीय वित्त व्यवस्था	233
आद्यौगिक क्षेत्र से संबंधित प्रमुख नीतियाँ	135	भारतीय संघ में संसाधनों के बंटवारे की व्यवस्था	233
भारत में औद्योगिक विकास की समस्याएँ	139	वित्त आयोग	234
औद्योगिक क्षेत्र से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण सरकारी नीतियाँ	141	भुगतान संतुलन, विनिमय दर, अंतर्राष्ट्रीय संगठन एवं बौद्धिक संपदा अधिकार	238
बौद्धिक संपदा अधिकार	141	भुगतान संतुलन	238
वस्त्र मंत्रालय की प्रमुख योजनाएँ	143	विदेशी करेंसी भंडार	241
भारत में इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग	146	भुगतान शेष में संतुलन या असंतुलन	241
औद्योगिक विकास की गति बढ़ाने के लिए सुझाव	147	राजकोषीय और विदेशी व्यापार क्षेत्र की नीतियों में संबंध	243
उद्योगों से संबंधित संस्थाएँ	148	विदेशी पोर्टफोलियो निवेश	245
एकाधिकार जाँच आयोग	149	विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप	248
औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण गलियारों का विकास	151	विदेशी विनिमय बाजार से संबंधित कार्यप्रणाली	249
सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्रक	152	विभिन्न प्रकार की मुद्रायें	252
उत्पादन संलग्न प्रोत्साहन योजना	154	विश्व व्यापार संगठन	252
औद्योगिक वित्त	156	व्यूनस आयर्स सम्मेलन एवं भारत	253
भारतीय वित्तीय प्रणाली	156	वैश्विक व्यापार वृद्धि	253
मुद्रा बाजार	157	अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	253
संगठित मुद्रा बाजार के उपकरण	157	विश्व बैंक	254
विभिन्न प्रकार की बैंकिंग	158	विश्व आर्थिक मंच	258
पूंजी बाजार	159	पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन	260
पूंजी बाजार के प्रकार	159	सात विकसित देशों का समूह जी-7	260
द्वितीयक पूंजी बाजार	160	क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी	261
ऋण बाजार	160	बौद्धिक संपदा अधिकार संरक्षण संबंधी समझौता	264
भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड-सेबी	161	ट्रिप्स समझौता 1994	264
डिजिटल मुद्रा	161	बौद्धिक संपदा संबंधी अधिनियम	265
स्टॉक मार्केट	162	राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति 2016	267
स्टॉक मार्केट सूचकांक	162	व्यापार सुविधा समझौता	269
क्रेडिट रेटिंग	164		

अर्थव्यवस्था (Economy)

परिचय (Introduction)

अर्थव्यवस्था एक गत्यात्मक प्रणाली होती है, जो एक निश्चित अंचल के निवासियों को निश्चित जीवन के लिये भौतिक व आर्थिक संसाधन (वांछित वस्तुएँ एवं सेवाएँ, उनके क्रय के लिये वांछित आय का स्रोत, रोजगार आदि) उपलब्ध कराती है तथा जो स्वयं सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओं, अभिकर्ताओं, सम्बद्ध संस्थाओं के पारस्परिक संबंधों से मिलकर बनी होती है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था वह संरचना है, जिसके अन्तर्गत सभी आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है।

अर्थव्यवस्था, उत्पादन, वितरण एवं खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। यह किसी देश या क्षेत्र विशेष में अर्थशास्त्र का गतिचित्र है, जो कि किसी अवधि विशेष से सम्बंधित होता है।

उदाहरण स्वरूप यदि हम कहते हैं, 'समसामयिक भारतीय अर्थव्यवस्था' तो इसका तात्पर्य होगा, 'वर्तमान समय में भारत की सभी आर्थिक गतिविधियों का वर्णन' अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धांतों का व्यावहारिक कार्य रूप है।

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण (Classification of Economy)

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। कुछ प्रमुख आधारों पर अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

विचारधारा के आधार पर वर्गीकरण

संबंधित देशों की समसामयिक विचारधारा के अनुरूप विश्व में अर्थव्यवस्था को संगठित करने की अब तक तीन प्रणालियाँ प्रचलन में हैं, जो निम्नलिखित हैं-

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें व्यापार या व्यवसाय पर नियंत्रण सरकार के हाथ में न होकर बाजार के हाथ में हो, 'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था' कहलाती है।
- इस व्यवस्था में क्या उत्पादन करना है और उसे किस कीमत पर बेचना है, ये सब बाजार तय करता है, इसमें सरकार की कोई आर्थिक भूमिका नहीं होती है।
- इस सिद्धांत को एडम स्मिथ द्वारा दिया गया (अहस्तक्षेप का सिद्धांत)।
उदाहरण- संयुक्त राज्य अमेरिका।

समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialistic Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण हो तथा व्यापार व व्यवसाय में राज्य द्वारा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया जाता हो, समाजवादी अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन माँग के बजाय आवश्यकतानुसार किया जाता है।
- इस सिद्धांत का प्रारूप कार्ल मार्क्स तथा लेनिन द्वारा प्रस्तुत किया गया जबकि वॉल्शेविक क्रान्ति के द्वारा लागू किया गया। उदाहरण- पूर्व सोवियत संघ, चीन।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जो अंशतः राज्य द्वारा और अंशतः बाजार द्वारा संचालित हो,

मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है।

- इस अर्थव्यवस्था का प्रारूप 1930 की मंदी के दौरान जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा प्रतिपादित किया गया।
- भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश रहा है। वर्तमान में अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ इसी प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ हैं।

विकास की अवस्था के आधार पर वर्गीकरण

अविकसित अर्थव्यवस्था (Undeveloped Economy)

- उन देशों या स्थानों को अविकसित कहा जाता है, जहाँ तीनों प्रकार के साधनों प्राकृतिक, भौतिक तथा मानवीय में से कोई भी एक नगण्य है। जैसे ध्रुवीय क्षेत्र, सहारा रेगिस्तान।

विकासशील अर्थव्यवस्था (Developing Economy)

- अल्प विकसित या विकासशील देश वह है, जहाँ एक ओर अप्रयुक्त अथवा अर्द्ध प्रयुक्त मानव शक्ति हो तो दूसरी ओर अप्रयुक्त प्राकृतिक साधनों की न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्धता पायी जाती है।
- इसके अतिरिक्त इन अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक, प्रौद्योगिकी एवं गैर-आर्थिक सीमाओं के कारण विकसित देशों की तुलना में आय, उपभोग, बचत तथा पूँजी निर्माण का स्तर निम्न होता है।

विकसित अर्थव्यवस्था (Developed Economy)

- उन स्थानों/देशों को विकसित कहा जाता है, जहाँ उत्पादन के तीनों साधनों प्राकृतिक, मानवीय तथा भौतिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा उनका अनुकूलतम या समुचित उपयोग हो रहा है।

वैश्विक संबंधों के आधार पर वर्गीकरण

बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy)

- वह अर्थव्यवस्था जो बाह्य अर्थव्यवस्थाओं से किसी भी प्रकार से आर्थिक संबंध नहीं रखती है, अर्थात् आयात-निर्यात की गतिविधियाँ शून्य होती हैं तथा निजी क्षेत्र की भूमिका नगण्य होती है, उन्हें बन्द अर्थव्यवस्था कहते हैं।

उदाहरण- उत्तर कोरिया (कुछ हद तक)

खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy)

- वह अर्थव्यवस्था जिसका शेष विश्व के साथ आर्थिक संबंध होता है, खुली अर्थव्यवस्था कहलाती है। इस अर्थव्यवस्था में वस्तु और सेवाओं का अन्य देशों से अन्तःप्रवाह होता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग तथा पूँजी निर्माण बाह्य लेन-देन से प्रभावित होते हैं। खुली अर्थव्यवस्था में उदारवादी तथा निजी आर्थिक तत्वों का अधिक प्रभाव रहता है तथा आयात-निर्यात पर न्यूनतम प्रतिबंध रहते हैं। जैसे- हाँगकाँग, सिंगापुर आदि।

विभिन्न क्षेत्रों के योगदान के आधार पर वर्गीकरण

किसी भी अर्थव्यवस्था में उनके क्षेत्रों के सकल आय में योगदान के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं के प्रकार का निर्धारण होता है।

कृषक अर्थव्यवस्था (Agrarian Economy)

- यदि किसी अर्थव्यवस्था के सकल उत्पादन में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 50 प्रतिशत या इससे अधिक हो, तो ऐसी अर्थव्यवस्था 'कृषक अर्थव्यवस्था' कहलाती है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत कृषक अर्थव्यवस्था थी।
- ऐसी अर्थव्यवस्था अविकसित अर्थव्यवस्था भी कहलाती है।

औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Industrial Economy)

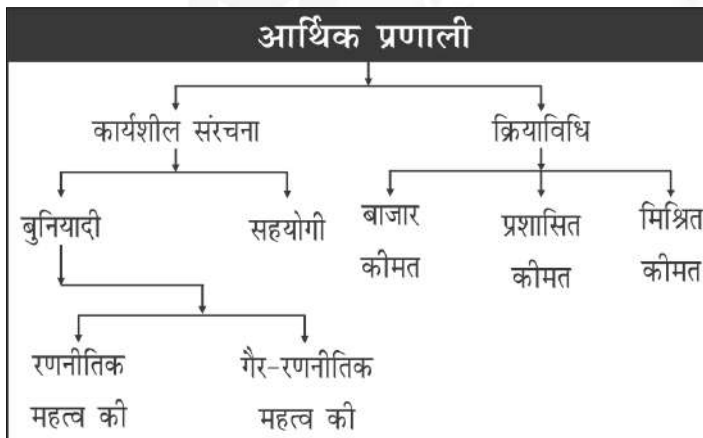
- ऐसी अर्थव्यवस्था में उसकी सकल आय में द्वितीयक क्षेत्र का हिस्सा 50% या इससे अधिक रहता है तथा इसी अनुपात में इस क्षेत्रक पर लोगों की निर्भरता भी रहती है।
- पूरा यूरोप तथा अमेरिका औद्योगिक अर्थव्यवस्था की स्थिति में रहा है।

सेवा अर्थव्यवस्था (Service Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसके अन्तर्गत सकल आय में तृतीयक क्षेत्र का योगदान 50 प्रतिशत या उससे ज्यादा होता है, सेवा अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- इस अर्थव्यवस्था में ज्यादातर लोगों की आजीविका तृतीयक क्षेत्र से पूरी होती है।
- इसे विकसित उत्पादन संरचना भी कहते हैं।

आर्थिक प्रणाली (Economic System)

आर्थिक निर्णय लेने की प्रक्रिया या क्रियाविधि तथा कार्यशील संरचना संयुक्त रूप से आर्थिक प्रणाली या तंत्र कहलाती है।



बाजार कीमत क्रियाविधि (Market Price Mechanism)

आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि, जिसके अनुसार क्रेता व विक्रेता वस्तुओं एवं सेवाओं तथा अन्य प्रकार के संसाधनों के आदान-प्रदान के लिये मुक्त रूप से मोलभाव करते हैं और उसी मोलभाव द्वारा कीमत का निर्धारण होता है, इस क्रिया को बाजार कीमत क्रियाविधि कहते हैं। इस क्रियाविधि पर आधारित अर्थव्यवस्था 'मुक्त अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

प्रशासित कीमत क्रियाविधि (Administered Price Mechanism)

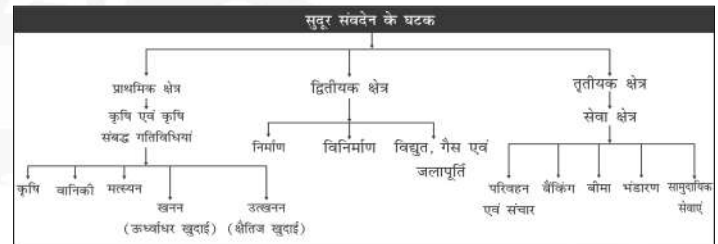
आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि जिसमें क्रेता व विक्रेता को मोलभाव करने की स्वतंत्रता न हो, बल्कि ये अधिकार वहाँ की सरकार या प्रशासन के पास हो तो इस विधि को प्रशासित कीमत क्रियाविधि कहते हैं। ऐसी अर्थव्यवस्था 'नियंत्रित अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

मिश्रित कीमत क्रियाविधि (Mixed Price Mechanism)

आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि जिसमें कुछ भागों में क्रेता व विक्रेता को मुक्त व्यापार की छूट हो व कुछ क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण हो, मिश्रित कीमत क्रियाविधि कहलाती है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र (Sectors of Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपनी आर्थिक गतिविधियों को आय अर्जन के मामले में अधिकतम करना चाहती है, ताकि आर्थिक गतिविधियाँ लाभकारी से और अधिक लाभकारी हो सकें। आर्थिक संगठन की व्यवस्था कुछ भी हो, अर्थव्यवस्था की आर्थिक गतिविधियों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा गया है, जिन्हें अर्थव्यवस्था के क्षेत्रक कहा जाता है।



प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector)

नैसर्गिक संसाधनों के प्रत्यक्ष दोहन द्वारा उत्पादित वस्तुओं को प्राथमिक वस्तु कहते हैं तथा इनके उत्पादन में लगी संस्थागत व्यवस्था को 'प्राथमिक क्षेत्र' कहते हैं। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के प्राकृतिक क्षेत्रों का लेखांकन किया जाता है। इसे कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है।

उदाहरण- कृषि, उत्खनन, पशुपालन, मछलीपालन।

द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)

प्राथमिक वस्तुओं में एक या कई बार मूल्यवर्धन द्वारा उत्पादित नई वस्तुओं को द्वितीयक वस्तु कहते हैं तथा द्वितीयक वस्तुओं के उत्पादन में शामिल संस्थागत व्यवस्था को 'द्वितीयक क्षेत्र' कहते हैं। इसे 'औद्योगिक क्षेत्र' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्यतः अर्थव्यवस्था की विनिर्मित वस्तुओं का लेखांकन किया जाता है।

उदाहरण- लौह व इस्पात उद्योग, वस्त्र उद्योग, वाहन, बिस्किट आदि।

तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)

इस क्षेत्र में सेवाओं को शामिल किया जाता है, और सेवाओं के उत्पादन कार्य में लगी संस्थागत व्यवस्था को 'तृतीयक क्षेत्र' कहा जाता है।

उदाहरण- बैंकिंग, बीमा, पर्यटन, शिक्षा, चिकित्सा आदि।

अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र (Other Sectors of Economy)

- चतुर्थक क्षेत्र (Quaternary Sector)** - अर्थव्यवस्था के इस क्षेत्र में बौद्धिक गतिविधियों को शामिल किया जाता है। जैसे- सरकार, संस्कृति, पुस्तकालय, सूचना प्रौद्योगिकी व अनुसंधान संबंधित गतिविधियाँ इस क्षेत्र में शामिल हैं।
- पंचम क्षेत्र (Quinary Sector)** - इसमें समाज या अर्थव्यवस्था में उच्च स्तरीय निर्णय लेने वाले संस्थानों जैसे- मीडिया, विश्वविद्यालय और गैर लाभकारी संस्थान आदि को शामिल किया जाता है।

उत्पादन के साधन (Means of Production)

- **भूमि**- यह उन सभी प्राकृतिक संसाधनों को संदर्भित करता है जो प्रकृति के मुफ्त उपहार हैं। इसके अंतर्गत मृदा, नदियाँ, जल, वन, पहाड़, खदान, समुद्र, वायु, सूर्य आदि को शामिल किया जाता है।
- **श्रम**- मानव शरीर तथा मस्तिष्क में पायी जाने वाली उत्पादन शक्ति को श्रम कहते हैं। शरीर की उत्पादन शक्ति शारीरिक श्रम तथा मस्तिष्क की उत्पादन शक्ति बौद्धिक श्रम कहलाती है।
- **पूँजी**- मानव निर्मित संसाधनों की उत्पादन शक्ति को पूँजी कहते हैं। स्वरूपगत लक्षणों के आधार पर इसे तीन भागों में बाँटा जाता है-
 - भौतिक पूँजी
 - वित्तीय पूँजी
 - बौद्धिक पूँजी
- **उद्यम**- यह एक संश्लिष्ट उत्पादन शक्ति है जो निम्न तीन प्रकार की उत्पादन प्रवृत्तियों से मिलकर बनी होती है।
 - **नवाचार प्रवृत्ति**- किसी कार्यक्रम में नये विचारों एवं संसाधनों के उपयोग को अपनाने की प्रवृत्ति नवाचार कहलाती है।
 - **प्रबंधन प्रवृत्ति**- विभिन्न प्रकार के संसाधन धारकों के उत्पादन प्रयासों को संगठित करके निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति की प्रवृत्ति को प्रबंधन प्रवृत्ति कहते हैं।
 - **जोखिम प्रवृत्ति**- नपे-तुले रूप में जानबूझ कर जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को जोखिम प्रवृत्ति कहते हैं।

आर्थिक संवृद्धि, विकास और अल्पविकास (Economic Growth, Development and Under Development)

आजकल सभी लोग आर्थिक संवृद्धि की बात करते हैं और इस प्रकार के वातावरण में अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत पर लगातार ध्यान देना और उसका विकास करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परंतु तमाम विवेचन के बाद भी आर्थिक संवृद्धि की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन पाई है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'आर्थिक संवृद्धि' का अर्थ अलग-अलग लगाया है। कुछ अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में मूलभूत अंतर हैं जबकि कुछ अन्य की परिभाषा में केवल सतही अंतर हैं। अर्थशास्त्रियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो आर्थिक संवृद्धि की निश्चित परिभाषा देने की आवश्यकता ही नहीं समझता। इस वर्ग के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि' का अर्थ अपने आप में स्पष्ट है और आर्थिक संवृद्धि को आसानी से राष्ट्रीय आय संबंधी समग्र राशियों (National Income Aggregates) के रूप में मापा जा सकता है। इस विचारधारा का प्रतिपादन हमें संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों द्वारा किए गए अध्ययन Measures of Economic Development in Underdeveloped Countries में मिलता है। कई अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि स्पष्ट और दोषरहित परिभाषाओं का होना आवश्यक है। इस संदर्भ में रोनाल्ड ए. शीयरर का मत है कि सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनावश्यक वाद-विवाद और भ्रामक विचारों का प्रमुख कारण ही यह है कि मूल परिभाषाओं के बारे में उपयुक्त सावधानी नहीं बरती जाती। हमारा भी यही मत है कि भ्रान्तियों के निवारण के लिए आर्थिक संवृद्धि को किन्ही मापनीय कसौटियों (Measurable criteria) के रूप में परिभाषित करना आवश्यक है।

- प्रस्तुत अध्याय में हम निम्नलिखित विषयों पर विचार करेंगे।
- आर्थिक संवृद्धि की संकल्पना क्या है?
- आर्थिक विकास की संकल्पना क्या है?
- संवृद्धि और विकास में क्या अंतर है?
- अल्पविकास का अर्थ क्या है और उसके क्या सूचक हैं?
- अल्पविकसित देशों के क्या सामान्य लक्षण हैं?

आर्थिक संवृद्धि की संकल्पना (Concept of Economic Growth)

आर्थिक संवृद्धि को हम एक ऐसी वृद्धि के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो अत्यंत नीचे जीवन स्तर में फंसी हुई किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को अल्पावधि में ही ऊंचे जीवन स्तर पर पहुंचा सके। जो देश पहले से ही विकसित हैं उनमें इसका अर्थ होगा विद्यमान संवृद्धि दरों को बनाए रखना। यदि ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो तेज आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ औद्योगिकरण की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है। परंतु सही रूप में देखा जाए तो आर्थिक क्रियाओं का अधिकाधिक वाणिज्यिकरण ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक है।

आर्थिक संवृद्धि अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि- कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक संवृद्धि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद लगातार दीर्घकाल तक बढ़ता रहता है। इस संदर्भ में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) और सकल घरेलू उत्पाद (Gross domestic product) में अंतर का ध्यान रखना जरूरी है। ऐसा हो सकता है कि किसी देश के नागरिक अन्य देशों में भारी निवेश करें। इससे सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो बढ़ जाएगा परंतु अर्थव्यवस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए सकल घरेलू उत्पाद तो बढ़ जाएगा परंतु अर्थव्यवस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की बात करना अधिक तर्कसंगत है। एक और बात जिसकी इस संदर्भ में चर्चा करनी आवश्यक है, वह यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि लगातार काफी लम्बे समय तक होती रहनी चाहिए। केवल कुछ समय के लिए वृद्धि (जैसे व्यापार-चक्र के समृद्धि काल में होती है) संवृद्धि नहीं कहलाएगी।

प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि- परंतु आर्थिक संवृद्धि को उपर्युक्त रूप से परिभाषित करना सही नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट होगी। निश्चय ही हम इसे आर्थिक संवृद्धि नहीं कहेंगे।

इसलिए बहुत से अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। वस्तुतः आर्थिक संवृद्धि को इस रूप में परिभाषित करना सबसे अधिक उपयुक्त व तर्कसंगत है। इसलिए, इस पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में हमने भी आर्थिक संवृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पाद (या प्रति व्यक्ति आय) में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। परंतु इस संदर्भ में इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि देश की अर्थव्यवस्था में समयोपरि होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन कई बार प्रति व्यक्ति उत्पाद में होने वाली वृद्धि से भी अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं, इसलिए उन पर विचार करना चाहिए। चार्ल्स बीतलहाइम ने ठीक ही कहा है कि "आर्थिक संवृद्धि की चर्चा करते समय उद्देश्य केवल मात्रात्मक परिवर्तन (अधिक उत्पादन) न होकर गुणात्मक परिवर्तन (अधिक श्रमिक उत्पादकता) भी होना चाहिए। केवल गुणात्मक परिवर्तन द्वारा ही अर्थव्यवस्था उच्च (विकसित) स्तर पर पहुँच सकती है।

आर्थिक विकास क्या है? (What is Economic Development?)

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक अर्थशास्त्र में 'आर्थिक विकास' को अधिकतर 'आर्थिक संवृद्धि' के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता था। परंतु अब इन दोनों संकल्पनाओं में अंतर किया जाता है। जहाँ आर्थिक संवृद्धि को राष्ट्रीय या घरेलू उत्पाद या प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में मापा जाता है वहाँ आर्थिक विकास में गुणात्मक पहलुओं पर भी विचार किया जाता है। अब केवल सकल घरेलू उत्पाद या सकल राष्ट्रीय उत्पाद तक सीमित न रहकर अर्थशास्त्री 'विकास प्रक्रिया' पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है: "विकास की प्रमुख समस्या गरीबी की सबसे भयानक किस्मों पर सीधा प्रहार करना है। गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अशिक्षा, बेरोजगारी और असमानताओं जैसी समस्याओं के

उन्मूलन को विकास के मुख्य लक्ष्यों में शामिल किया जाना चाहिए। हमें यह सिखाया गया था कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को बढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि इससे गरीबी का निवारण होगा। अब समय आ गया है कि हम इस संबंध को उलट दें। अब जरूरत इस बात की है कि हम मुख्यतया गरीबी पर ध्यान केंद्रित करें। इसके जरिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अपने आप उचित महत्व मिल जाएगा। दूसरे शब्दों में, अब सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर पर कम और उसकी संरचना पर अधिक ध्यान देना जरूरी है।

परम्परागत विचारधारा (The Traditional Approach)- आज विकास अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास से संबंधित दो मुख्य धारणाएं पाई जाती हैं। पहली धारणा जिसे 'परम्परागत धारणा' कहा जा सकता है, आर्थिक विकास को आर्थिक संवृद्धि के रूप में परिभाषित करती है। परम्परागत विचारधारा में आर्थिक विकास एक ऐसी स्थिति है जिसमें सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद 5 से 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ता रहे और उत्पादन एवं रोजगार संरचना में इस प्रकार परिवर्तन हो कि उसमें कृषि का हिस्सा कम होता जाए और विनिर्माण क्षेत्र (Manufacturing Sector) तथा तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector) का हिस्सा बढ़ता जाए।

आर्थिक विकास की नई विचारधारा (New View of Economic Development)- जब व्यावहारिक तौर पर यह देखा गया कि बीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दशक में अल्पविकसित देशों की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या को आर्थिक संवृद्धि से कोई भी लाभ नहीं हुआ और इसकी स्थिति में किसी तरह का सुधार नहीं हुआ तो बहुत से अर्थशास्त्रियों ने 'परम्परागत' विकास विचारधारा को तिलांजलि दे दी। आठवें दशक में आर्थिक विकास की संकल्पना को पुनः परिभाषित किया गया और आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य गरीबी, असमानता और बेरोजगारी का निवारण रखा गया। इस दौर में 'पुनर्वितरण के साथ संवृद्धि' (Redistribution with growth) का नारा दिया गया।

अल्प विकास : अर्थ एवं सूचक (Underdevelopment : Meaning & Indicators)

पिछले कुछ दशकों में अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं में काफी रुचि दिखाई है। इस काल में अनेक अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास से जुड़े हुए प्रश्नों पर काफी विस्तार के साथ लिखा है, परंतु फिर भी 'अल्प-विकास' की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा दे सकना सहज नहीं है। संसार के विभिन्न क्षेत्रों को भी 'विकसित' और 'अल्पविकसित' में विभाजित कर सकना कठिन है। दरसल राष्ट्रों के बीच प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के वितरण में भारी असमानता है। उनके पूंजी निर्माण के स्तर, तकनीकी ज्ञान और आर्थिक संगठन में भी महत्वपूर्ण अंतर हैं। ये सभी विषमताएँ इस प्रकार की हैं कि किसी भी मापदण्ड के आधार पर राष्ट्रों को विकसित और अल्पविकसित के बीच विभाजित करना पूर्ण रूप से ठीक प्रतीत नहीं होता। संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में प्राकृतिक साधनों की बहुतायत है। ये सभी देश विकसित माने जाते हैं। परंतु लैटिन अमेरिका तथा मध्य पूर्व के कुछ देश संपन्न प्राकृतिक संसाधनों के होते हुए भी अल्पविकसित कहे जाते हैं। भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, इंडोनेशिया आदि देशों में जनसंख्या की अधिकता है जबकि अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के देशों में जनसंख्या का भार कम है। इन दोनों ही श्रेणियों में आने वाले देश अल्पविकसित हैं। अतः जनसंख्या की सघनता के आधार पर भी इस संबंध में कुछ निर्णय कर सकना कठिन है।

व्यावसायिक वितरण और अल्पविकास (Occupational Distribution and Underdevelopment)

अक्सर जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण की दृष्टि से राष्ट्रों को विकसित और

अल्पविकसित की श्रेणियों में रखा जाता है। यह आधार निस्संदेह उपयोगी है परंतु विश्लेषण की दृष्टि से इसे पूरी तरह विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। यह धारणा सामान्यतः बनी हुई है कि अल्पविकसित देशों में राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग कृषि तथा अन्य प्राथमिक क्षेत्रों में उत्पादित होता है। भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, इथोपिया, नाइजीरिया जैसे देशों के विषय में यह सत्य है। परंतु मैक्सिको, ब्राजील तथा अर्जेन्टिना की स्थिति इससे भिन्न है।

अल्पविकास के सूचक के रूप में नीची प्रति व्यक्ति आय (Low Per Capita Income as an Index of Underdevelopment)

संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने अल्पविकसित देश उसे माना है जिसमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोप की तुलना में कम है। इस प्रकार इस परिभाषा में अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिकी देशों की 'कम प्रति व्यक्ति वास्तविक आय' पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

'गरीबी' पर आधारित अल्पविकास की संकल्पना (Poverty Based Concept of Underdevelopment)

आधुनिक अर्थशास्त्री अब विकास को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जिसके द्वारा गरीबी, आर्थिक असमानताओं और बेरोजगारी जैसी समस्याओं का निवारण हो सके। इसी प्रतिप्रेक्ष्य में देखें तो अल्पविकास एक अत्यंत दुःखदायी भौतिक व मानसिक स्थिति है।

अल्पविकसित/विकासशील देशों के सामान्य लक्षण (Common Characteristics of Underdeveloped/Developing Economies)

अल्प-विकास के विषय में मतभेद के बावजूद अल्पविकसित देशों के कुछ ऐसे लक्षण हैं जिनके बारे में प्रायः सहमति है। ये लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. **प्रति व्यक्ति आय का नीचा स्तर** (Low per capita income)- प्रायः सभी अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में जनसंख्या का अधिकांश भाग बहुत गरीबी में गुजर-बसर कर रहा है।
2. **पूंजी का अभाव** (Scarcity of capital)- अधिकतर अल्पविकसित देशों में व्यापक गरीबी के कारण पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है। जब आय-स्तर अधिक होता है तो बचत करने की क्षमता भी अधिक होती है। यही कारण है कि जापान में (जो अति-विकसित देश है) पूंजी निर्माण की दर बहुत ज्यादा है। कई अन्य विकसित देशों में उपभोक्तावाद (consumerism) के चलते बचत दर अपेक्षाकृत कम है।
3. **जनसंख्या का भार** (Burden of population)- अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर 2 प्रतिशत वार्षिक या उससे भी अधिक है। विकसित देशों का चिकित्सा संबंधी ज्ञान तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ जैसे ही अल्पविकसित देशों में मिलने लगती हैं, मृत्यु दर गिरने लगती है लेकिन गरीबी, अज्ञानता और धार्मिक रूढ़िवादों के कारण परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को अधिक सफलता नहीं मिल पाती। अतः इन देशों में जनसंख्या तेजी से बढ़ती है। इस स्थिति में आर्थिक विकास कठिन होता है।
4. **कृषि पर निर्भरता** (Dependence on agriculture)- अल्पविकसित देशों में लगभग 30 से 75 प्रतिशत तक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। बायर तथा यामें के शब्दों में "अविकसित देशों में सम्पूर्ण क्रियाओं एवं उत्पादन में कृषि का महत्वपूर्ण भाग होता है तथा आर्थिक कृषि जोतों की स्थापना, विस्तार एवं सुधार की दिशा में काफी प्रयास करने पड़ते हैं।" अल्पविकसित देशों

में कृषि पर अत्यधिक निर्भरता होने के बावजूद भी कृषि विकास का स्तर नीचा ही होता है। फलतः कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली आय इस व्यवसाय में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात में नीची होती है।

5. **औद्योगिक पिछड़ापन (Industrial backwardness)**- अल्पविकसित देशों में अधिक उद्योग नहीं होते। नतीजा यह होता है कि जहां एक ओर इस क्षेत्र में बहुत थोड़े लोगों को रोजगार मिलता है, वहीं दूसरी ओर क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है।
6. **श्रम उत्पादकता का नीचा स्तर (Low labour productivity)**- अल्पविकसित देशों में श्रम उत्पादित बहुत कम है। यह जीवन के नीचे स्तर का कारण (cause) भी है और प्रभाव (effect) भी। उत्पादित के नीचे स्तरों पर आय का स्तर भी नीचा होता है और छोटे से वर्ग को छोड़कर, जनसंख्या का एक बड़ा भाग अत्यन्त गरीबी में रहता है।
7. **तकनीकों का पिछड़ापन (Outmoded techniques)**- अल्पविकसित देशों में उत्पादन संबंधी तकनीक पिछड़े हुए हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इन देशों में साधनों की कमी के कारण अनुसंधान एवं विकास (Research and Development) पर बहुत कम खर्च किया जाता है।
8. **बेरोजगारी (Unemployment)**- अकुशल श्रमिकों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी अल्पविकसित देशों की प्रमुख विशेषता है। इन देशों के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अधिकतर बेरोजगारी अनैच्छिक (involuntary) है। व्यापक गरीबी के कारण इन देशों में औद्योगिक वस्तुओं के बाजार अत्यन्त सीमित हैं।
9. **मानव कल्याण का नीचा स्तर (Lower level of human wellbeing)**- सामान्यतः एक व्यक्ति के कल्याण के माप के लिए तीन प्रकार के सूचकों का प्रयोग किया जाता है। ये सूचक हैं- उसकी चालू और संभाव्य वास्तविक आय, उसकी स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी उपलब्धियां। हम इस अध्याय में पहले लिख आए हैं कि अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति तथा सकल राष्ट्रीय आय बहुत कम है। जब हम इस तथ्य के साथ दो अन्य सूचकों पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में मानव कल्याण का स्तर बहुत अधिक नीचा है।
10. **आर्थिक असमानताएं (Economic disparities)**- विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानताएं अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए यदि हम आय असमानताओं को मापने के लिए राष्ट्रीय आय में निर्धनतम 10 प्रतिशत लोगों के हिस्से की तुलना में सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों के हिस्से के साथ करें तो पाएंगे कि अधिकतर अल्पविकसित देशों जैसे कीनिया, नाइजीरिया, जांबिया, कोलंबिया, मलेशिया, ब्राजील, मेक्सिको, थाइलैंड इत्यादि में काफी अधिक आय असमानताएं हैं। इसके विपरीत, डेन्मार्क, नीदरलैंड, स्वीडन, जर्मनी, फ्रांस, जापान इत्यादि विकसित देशों में आय असमानताएं अपेक्षाकृत काफी कम हैं।
11. **व्यापक गरीबी (High incidence of poverty)**- अल्पविकसित देशों में कम प्रति व्यक्ति आय के कारण तथा आय- असमानताओं के कारण, व्यापक स्तर पर गरीबी पाई जाती है।
12. **आर्थिक निर्भरता (Economic dependence)**- एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अल्पविकसित देश बहुत समय तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। इनका औपनिवेशिक शोषण करने वाले पूंजीवादी देशों ने इन पर विदेशी व्यापार का ऐसा ढांचा थोपा जिससे ये देश प्राथमिक कृषि वस्तुओं (Primary Agricultural goods) के उत्पादक व निर्यातक बनकर रह गए और औद्योगिक वस्तुओं की मांग को पूरा करने के लिए इन पूंजीवादी देशों पर निर्भर हो गए। राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद भी काफी

अरसे तक 'आर्थिक निर्भरता' की यह स्थिति चलती रही। यही कारण है कि भारत चाय और पटसन के निर्यात पर निर्भर बना रहा और ब्राजील कफ़ा के निर्यात पर, मलेशिया रबड़ के निर्यात पर तथा क्यूबा चीनी के निर्यात पर। पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक आयोजन की प्रक्रिया के कारण अनेक अल्पविकसित देशों के उत्पादन और व्यापार ढांचे में विविधीकरण हुआ है तथा औद्योगिक वस्तुओं के लिए विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है।

आर्थिक विकास के कारक (Factors In Economic Development)

आर्थिक विकास एक जटिल प्रक्रिया है। आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व आर्थिक और अनार्थिक दोनों ही हैं। जहां तक आर्थिक तत्वों का संबंध है इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं- पूंजी स्टॉक (capital stock) तथा संचयन (accumulation) की दर, विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी-उत्पाद अनुपात, जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर, कृषि क्षेत्र में आधिक्य (surplus) तथा भुगतान शेष की स्थिति। अनार्थिक कारकों में महत्वपूर्ण हैं- राजनीतिक स्वतंत्रता (या, दूसरे शब्दों में, औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति), न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन, तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि, भ्रष्टाचार से मुक्ति, सामाजिक व्यवस्था और विकास के प्रति लोगों की 'तीव्र इच्छा' एवं दृढ़ संकल्प। इन सबसे अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और प्रायः विकास की सीमाएं निर्धारित करती है।

प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक बहुत से अर्थशास्त्री विभिन्न देशों के विकास अथवा अल्पविकास का विवेचन उनमें प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्षिक (relative) उपलब्धि के द्वारा करते थे। जेकब वाइनर (Jacob Viner), विलियम जे. बॉमाल (William J. Baumol) तथा आर्थर ल्यूइस (Arthur Lewis) ने आर्थिक विकास के निर्धारकों में प्राकृतिक संसाधनों को बहुत महत्वपूर्ण माना है। जेकब वाइनर के शब्दों में, "आर्थिक विकास बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर करता है कि भौतिक पर्यावरण अथवा मेरी शब्दावली में प्राकृतिक संसाधनों की श्रेणी या गुणवत्ता उत्पादन की दृष्टि से क्या है। प्रतिकूल भौतिक पर्यावरण विकास में एक प्रमुख बाधा बन सकता है।"

आर्थिक कारक (Economic Factors)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में आर्थिक कारकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पूंजी स्टॉक और पूंजी संचयन की दर अक्सर इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी समय-विशेष पर उस देश की संवृद्धि हो पाएगी अथवा नहीं (या फिर संवृद्धि की दर क्या होगी)। अन्य कारकों में जनसंख्या का आकार तथा उसमें वृद्धि, शहरी जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों का आधिक्य, भुगतान शेष की स्थिति, आर्थिक प्रणाली का स्वरूप इत्यादि महत्वपूर्ण हैं परंतु इन सब कारकों का महत्व उतना अधिक नहीं है जितना कि पूंजी निर्माण का।

1. **पूंजी निर्माण (Capital formation)**- उत्पादन के स्तर को बढ़ाने के दृष्टिकोण से पूंजी निर्माण के महत्व को अर्थशास्त्री हमेशा के स्वीकार करते रहे हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विकास अर्थशास्त्र के प्रसार के साथ ही, पूंजी निर्माण पर और ज्यादा जोर दिया जाने लगा है। वस्तुतः हेराल्ड-डोमर मॉडल में पूंजी को आर्थिक संवृद्धि में निर्णायक भूमिका दी गई है। प्रायः जब राष्ट्रीय आय का एक बड़ा अंश बचाकर पुनः निवेश किया जाता है तो आर्थिक विकास की गति तेज होती है।
2. **कृषि का विक्रेय अधिशेष (Marketable surplus of agriculture)**- देश के आर्थिक विकास के लिए निस्संदेह कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता

में वृद्धि महत्वपूर्ण हैं परंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कृषि के विक्रेय अधिशेष में वृद्धि। विक्रेय अधिशेष (या बिक्री योग्य अधिशेष) कृषि उत्पादन का वह हिस्सा है जो ग्रामीण जनसंख्या की निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद बच जाता है। इस विक्रेय अधिशेष पर ही शहरी क्षेत्रों के लोगों का गुजर बसर होता है।

3. **विदेशी व्यापार की शर्तें** (Conditions and terms of foreign trade)- बहुत लम्बे समय तक कई अर्थशास्त्रियों ने व्यापार के क्लासिकल सिद्धांत का सहारा लेकर यह तर्क दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन सब देशों के लिए लाभदायक है जो व्यापार में हिस्सा लेते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जाता रहा है कि अल्पविकसित देशों को कृषि पदार्थों तथा कच्चे माल का उत्पादन व निर्यात करना चाहिए क्योंकि इनका तुलनात्मक लागत लाभ इसी में है। परंतु, जैसा कि लिस्ट (List) और कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया है, विशिष्टीकरण का यह स्वरूप अल्पविकसित देशों के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ है।

4. **आर्थिक प्रणाली** (Economic system)- आर्थिक विकास की दृष्टि से अर्थप्रणाली बहुत महत्वपूर्ण है। एक समय ऐसा था जब सरकारी हस्तक्षेप रहित पूँजीवादी अर्थप्रणाली को अपना कर तेजी से आर्थिक विकास करना सम्भव था जैसा कि इंग्लैंड ने किया परंतु आज की बदली हुई परिस्थितियों में इंग्लैंड की भांति विकास कर पाना असंभव है क्योंकि अल्पविकसित देशों के पास औपनिवेशिक शोषण की वैसी संभावनाएं नहीं हैं जैसी कि इंग्लैंड के पास थीं। जापान और जर्मनी ने भी पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली को अपनाया परंतु वहां विकास-पथ इंग्लैंड से नितान्त भिन्न था। आज के अल्पविकसित देशों को अपना विकास-पथ स्वयं चुनना होगा। इन देशों के सामने अब दो रास्ते हैं। प्रथम पूँजीवादी प्रणाली में आर्थिक आयोजन जैसा कि भारत में किया गया। इसमें विकास की दर धीमी रहती है। लेकिन दक्षिण कोरिया तथा कुछ दूसरे देशों ने पूँजीवादी ढांचे में ही सरकारी सहयोग से तेजी के साथ विकास किया है। दूसरा रास्ता समाजवादी आर्थिक आयोजन का है। चीन ने इस रास्ते को अपनाया है और इसके द्वारा तेज आर्थिक विकास प्राप्त करने में सफलता पाई है।

आर्थिक विकास के अनार्थिक कारक (Non-Economic Factors in Economic Development)

ऐसा ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अनार्थिक तत्व आर्थिक तत्वों से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। यहां पर हम संक्षेप में आर्थिक विकास के निर्धारक अनार्थिक तत्वों का विश्लेषण करेंगे।

1. **मानव संसाधन** (Human resources)- आर्थिक विकास में जनसंख्या एक महत्वपूर्ण कारक है। मानव से ही उत्पादन कार्य के लिए श्रम की उपलब्धि होती है। यदि किसी देश में श्रम शक्ति कुशल होने के साथ-साथ कार्यक्षम भी है तो उसकी उत्पादन सामर्थ्य निश्चय ही अधिक होगी। दुर्बल, अशिक्षित, कुशल, और रूढ़ियों में फंसे हुए व्यक्तियों की उत्पादकता कम होती है और आर्थिक विकास में उनका योगदान भी अधिक नहीं होता।
2. **राजनैतिक स्वतंत्रता** (Political freedom)- विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि संसार में विकास और अल्पविकास की प्रक्रियाएं एक साथ चली हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मलेशिया, कीनिया आदि देशों का अल्पविकास इंग्लैंड के विकास का परिणाम है। इंग्लैंड ने इन उपनिवेशों का जिस प्रकार शोषण किया उससे इंग्लैंड में तो भारी विकास हुआ परंतु ये सभी देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ गए। इसी प्रकार फ्रांस का विकास अल्जीरिया तथा हिंदचीन के अल्पविकास, नीदरलैंड्स का विकास इंडोनेशिया के अल्पविकास और लैटिन अमेरिकी देशों का अल्पविकास संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास से जुड़ा हुआ है।

3. **न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन** (Just social organisation)- विकास की प्रक्रिया उसी समय तेज हो सकती है जब देश के विकास कार्यक्रमों में सभी व्यक्तियों की भागीदारी हो और उसी समय संभव होगा जब सामाजिक संगठन न्यायपूर्ण है। जिस समाज का गठन इस प्रकार का है कि राष्ट्रीय आय में होने वाली सम्पूर्ण वृद्धि देश में सबसे अधिक सम्पन्न वर्गों के पास पहुंच जाती है। वहां जनसाधारण से आर्थिक विकास में योगदान की आशा करना व्यर्थ है।

4. **तकनीकी ज्ञान एवं सामान्य शिक्षा** (Technical knowledge and general education)- सभी लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि तकनीकी ज्ञान का विकास दर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति होती है वैसे-वैसे उत्पादकों को अधिक उत्पादकता वाली तकनीकों का ज्ञान होता है जिससे उत्पादन दर स्तर तेजी से बढ़ता है।

5. **भ्रष्टाचार से मुक्ति** (Eradication for corruption)- अल्पविकसित देशों में व्याप्त भ्रष्टाचार का इन देशों के आर्थिक विकास पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जब तक सरकारी तन्त्र भ्रष्ट है उस समय तक लोकतंत्रीय प्रणाली में सम्पन्न पूँजीपति, व्यापारी तथा अन्य लोग विभिन्न प्रकार से अपने व्यक्तिगत हित में राष्ट्रीय साधनों का दुरुपयोग करेंगे।

6. **विकास के लिए आकांक्षा** (Desire to develop)- विकास प्रक्रिया को एक मशीनी प्रक्रिया नहीं समझा जाना चाहिए। किसी भी देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति उस देश के लोगों की विकास के लिए आकांक्षा पर निर्भर होती है। यदि चेतना का स्तर नीचा है और जनसाधारण ने गरीबी को अपना भाग्य मान लिया है तो आर्थिक विकास की अधिक संभावना नहीं होगी।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index- H.D.I.)

UNDP द्वारा प्रकाशित का प्रतिपादन पाकिस्तानी अर्थशास्त्री 'महबूब-उल-हक' द्वारा किया गया था। वर्ष 2010 से इसके अन्तर्गत तीन प्रतिमानों को शामिल किया जाता है। यथा-

1. जीवन प्रत्याशा सूचकांक (1/3)
2. शिक्षा सूचकांक (1/3)
3. आय सूचकांक (1/3)

ज्ञातव्य है कि सूचकांक का मान 0 से 1 के मध्य होता है। जिस देश के सूचकांक का मान जितना ही अधिक होता है। वह देश मानव सूचकांक की श्रेणी में उच्चस्थ रहता है। UNDP मानव विकास निर्मित करने के लिए उक्त सूचकों के न्यूनतम तथा अधिकतम मान का निर्धारण करती है। विभिन्न वर्षों के विभिन्न संघटकों के कई मानव मूल्य लेने के पश्चात् UNDP द्वारा मानव विकास सूचकांक के घटकों का न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य निम्न रूप में निर्धारित किया गया है।

इसके बाद प्रत्येक सूचक का मान ज्ञात किया जाता है। जो इन तीनों का औसत मानव विकास सूचकांक होता है।

HDI के उपरोक्त घटकों के सूचकांक निर्माण हेतु अधोलिखित सूत्र प्रयुक्त किया जाता है यथा-

$$\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविक मूल्य-न्यूनतम मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य- न्यूनतम मूल्य}}$$

मानव विकास सूचकांक (HDI) तीनों सूचकांकों का ज्यामितीय माध्य होता है।
आयाम सूचकांकों से HDI प्राप्त करना (Calculating HDI from

Dimension Indices)- HDR 2016 में HDI को तीनों आयाम सूचकांकों के ज्यामितीय माध्य के रूप में परिभाषित किया गया है, अर्थात्

$$HDI = (I_{जीवन सं.}^{1/3} I_{शिक्षा}^{1/3} I_{आय}^{1/3})$$

HDI 2010 से पूर्व की रिपोर्टों में ज्यामितीय माध्य के स्थान पर साधारण माध्य का प्रयोग किया जाता था। कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस विधि की आलोचना की थी क्योंकि साधारण माध्य के प्रयोग का अर्थ यह है कि सूचकांक के आयामों में पूर्ण प्रतिस्थापन किया जा सकता है। ज्यामितीय माध्य का प्रयोग इस तथ्य पर आधारित है कि आयामों में पूर्ण प्रतिस्थापन संभव नहीं है।

मानव विकास रिपोर्ट 2020 में विश्व के 189 देशों को मानव विकास सूचकांक के आधार पर निम्न चार भागों में विभाजित किया गया है-

1. **अत्यधिक उच्च मानव विकास सूचकांक वाले देश**- जिनका सूचकांक 0.800 से अधिक है।
 2. **उच्च मानव विकास सूचकांक वाले देश**- जिनका सूचकांक 0.700 से 0.799 तक के मध्य है।
 3. **मध्यम मानव विकास सूचकांक वाले देश**- जिनका सूचकांक 0.550 से 0.700 तक के मध्य है।
 4. **निम्न मानव विकास सूचकांक वाले देश**- जिनका सूचकांक 0.550 से कम है।
1. **जीवन प्रत्याशा सूचकांक** (Life Expectancy Index)- यह सूचकांक किसी भी देश की जनसंख्या का जन्म के समय सापेक्ष जीवन प्रत्याशा की उपलब्धि का मापन करता है। जिसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है।

$$LEI = \frac{\text{वास्तविक जीवन प्रत्याशा-न्यूनतम जीवन प्रत्याशा}}{\text{अधिकतम जीवन प्रत्याशा-न्यूनतम जीवन प्रत्याशा}}$$

ज्ञातव्य है कि वर्ष 2019 के जन्म के समय भारत की जीवन प्रत्याशा HDR रिपोर्ट-2020 के अनुसार- 69.7 वर्ष है।

2. **शिक्षा सूचकांक** (Education Index-EI)- यह दो नये आंकड़ों पर आधारित है। यथा-
 - (i) **स्कूलावधि के औसत वर्ष** (MYS : Mean Years of Schooling): 25 वर्षीय वयस्क द्वारा स्कूल में बिताए गए वर्ष, और
 - (ii) **स्कूलावधि के अनुमानित वर्ष** (EYS : Expected Years of Schooling): बालक द्वारा अपने जीवन में स्कूल में बिताए जाने वाले वर्ष।
3. **आय सूचकांक** (Income Index)- जीवन निर्वाह स्तर के मापन हेतु प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) को प्रति व्यक्ति PPP आधारित सकल राष्ट्रीय आय (GNI) से प्रतिस्थापित किया गया है।

मानव विकास सूचकांक - 2021-22

मानव विकास सूचकांक का विचार इस बात पर जोर देने के लिए विकसित हुआ कि किसी देश के विकास का आकलन करने के लिए लोगों और उनकी क्षमताओं को, न कि केवल आर्थिक वृद्धि को अंतिम मानदंड होना चाहिए। HDI तीन आयामों में से प्रत्येक के लिए सामान्यीकृत सूचकांकों का ज्यामितीय माध्य है जिसमें लंबा और स्वस्थ जीवन, शिक्षा और एक सभ्य जीवन स्तर शामिल है। HDI पहली बार 1990 में प्रकाशित हुआ था और तब से, 2012 के अपवाद के साथ, इसे वार्षिक रूप से जारी किया गया है।

हालांकि, HDI की आलोचना की जाती है क्योंकि यह समाज में विभिन्न समूहों, निर्धनता, मानव सुरक्षा, सशक्तिकरण आदि के बीच मौजूद असमानताओं को प्रतिबिंबित नहीं करता है।

मानव विकास सूचकांक, 2021-22

मानव विकास सूचकांक, 2022 संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा जारी मानव विकास रिपोर्ट 2021-2022 का हिस्सा है। HDI 2022 में, 191 देशों को चार संकेतकों- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्ष, विद्यालयी शिक्षा के अपेक्षित वर्ष और प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) के आधार पर मापित उनके HDI मूल्य के आधार पर रैंक किया गया है।

मानव विकास सूचकांक 2022 को यूएनडीपी द्वारा मानव विकास रिपोर्ट 2021-22: अनसर्टेन टाइम्स, अनसेटल्लाडोस: शोपिंग अवर फ्यूचर इन ए ट्रांसफॉर्मिंग वर्ल्ड में जारी किया गया है।

भारत का मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक (HDI), 2021-22 में भारत 191 देशों में से 132वें स्थान पर है। यह तीन दशकों में पहली बार लगातार दो वर्षों में इस के स्कोर में गिरावट दर्शाता है। 2020 में, भारत 0.642 के HDI मूल्य के साथ 130वें स्थान पर है। COVID-19 के प्रकोप से पहले, 2018 में भारत का HDI मूल्य 0.645 था। HDI स्कोर में यह गिरावट वैश्विक प्रवृत्ति के अनुरूप है जो दर्शाता है कि देश COVID-19 महामारी के प्रकोप के बाद से मानव विकास में पिछड़ गए हैं। भारत में 2021 में HDI में गिरावट के लिए जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में गिरावट को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो 70.7 वर्ष से घटकर 67.2 वर्ष हो गई है।

भारत में विद्यालयी शिक्षा के अपेक्षित वर्ष 11.9 वर्ष हैं, और विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्ष 6.7 वर्ष हैं।

प्रतिव्यक्ति GNI स्तर 6,590 डॉलर है। COVID-19 महामारी ने लैंगिक असमानता को भी बढ़ा दिया है, जिसमें वैश्विक स्तर पर 6.7% की वृद्धि हुई है। एचडीआई 2021-22 में शीर्ष 3 रैंकिंग

1. स्विट्जरलैंड
2. आयरलैंड
3. आइसलैंड

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Economic Development)

आर्थिक विकास की कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जो एक-दूसरे के बाद क्रम से आती हैं। इसी को आर्थिक विकास की प्रक्रिया कहा जाता है। अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. रोस्टोव ने अपनी पुस्तक "The Problems of Economic Growth" में आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाएँ बतायी हैं। यथा-

परम्परावादी अवस्था (Traditional State)

इस अवस्था में देश के अधिकांश साधन कृषि व्यवसाय में लगे होते हैं तथा उद्योग-धन्धे बहुत ही पिछड़ी हुई अवस्था में होते हैं। उत्पादन का स्तर निम्न एवं प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम होती है। समाज का संगठन जातिवाद एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित होता है। देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था दुर्बल एवं अविकसित स्थिति में होती है।

आत्मस्फूर्ति से पूर्व की अवस्था (Pre take off to take-off)

इस अवस्था में समाज परम्परावादी विधियों को छोड़कर वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग करने लगता है। इस अवस्था में पूँजी-निवेश की मात्रा 10 प्रतिशत तक पहुँच जाती है तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन भी बढ़ जाता है। ग्रामीण जनसंख्या सड़कों व अन्य साधनों में वृद्धि होने के कारण शहरों में आकर बसने लगती है। खानदानों का उत्पादन आवश्यकतानुसार होने लगता है। औद्योगिक

कच्चे माल का उत्पादन भी बढ़ने लगता है। कृषि क्षेत्र की बचत उद्योगों में विनियोजित होने लगती है। सरकार द्वारा भी जन-कल्याण के कार्यों में अधिक योगदान दिया जाने लगता है।

आत्मस्फूर्ति अवस्था (Take-off Stage)

आत्मस्फूर्ति अवस्था को उस मध्यान्तर काल के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें विनियोग की दर इस प्रकार बढ़ती है कि जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन में वृद्धि होती है। इस अवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं तथा विकास अपने आप होने लगता है। कृषि व उद्योग में विकास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगता है। निर्माणी उद्योगों में विकास तेजी से होने लगता है। देश के उत्पादन में वृद्धि तेजी से होती है। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ता है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बढ़ती है।

परिपक्वता की अवस्था (Drive to Maturity Stage)

इस अवस्था को स्वप्रेरित विकास की अवस्था (Stage of Self-sustained Growth) भी कहते हैं। इस अवस्था में साधनों का उपयोग इस सीमा तक होने लगता है कि देश में सभी आवश्यक वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में बनने लगती हैं। देश का व्यवसाय आर्थिक आधार पर किया जाने लगता है। इसका अर्थ है कि आर्थिक दृष्टि से जिन वस्तुओं का उत्पादन लाभकारी होता है केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, शेष को आयात करके ही काम चलाया जाता है। इस अवस्था में 15 से 20 प्रतिशत तक राष्ट्रीय आय का विनियोजन किया जाता है। ग्रामीण जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहना अधिक पसन्द करती है।

अधिकाधिक उपभोग की अवस्था (Stage of High Mass Consumption)

यह आर्थिक विकास की अन्तिम अवस्था है। इसमें जनता की सामान्य आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो जाती हैं और सामान्य उपभोग स्तर ऊपर उठ जाता है तथा समाज का प्रत्येक व्यक्ति उपभोग की उच्चतम सीमा पर पहुँचना एवं विशिष्ट वस्तुओं को काम में लाना चाहता है।

आर्थिक विकास की रणनीति (Strategy of Economic Development)

अल्पविकसित देशों में 'गरीबी का दुष्चक्र' (Vicious circles of poverty) निर्धनता की जननी है। निर्धनता का दुष्चक्र एक ऐसी वृत्ताकार प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता से होता है और अन्त भी निर्धनता के रूप में ही होता है। अर्थात् गरीबी के दुष्चक्र से प्रभावित देशों की कम वास्तविक आय के कारण कम बचत, कम बचत के कारण कम विनियोग, कम विनियोग के कारण कम उत्पादन तथा फलस्वरूप कम वास्तविक आय का जन्म होता है। वहीं दूसरी तरफ मांग पक्ष पर भी ऐसा ही दुष्चक्र प्रदर्शित होता है- कम वास्तविक आय कम क्रयशक्ति को जन्म देती है, फलतः मांग कम होती है। परिणामस्वरूप कम विनियोग एवं कम उत्पादन आय की प्राप्ति होती है। ध्यातव्य है कि गरीबी का यह दुष्चक्र स्वतः नष्ट नहीं होता अपितु इसमें संचयी रूप से बढ़ने की प्रवृत्ति विद्यमान होती है। कारण स्वरूप एक निश्चित रणनीति के तहत गरीबी के उक्त दुष्चक्र को तोड़ने की आवश्यकता है। बिना इसे तोड़े आर्थिक विकास सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था को अल्प आय स्तर पर खींचने की प्रवृत्ति बहुत दृढ़ होती है।

एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को स्वप्रेरित अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए आर्थिक विकास की उचित रणनीति या संयोजन अपनायी जानी चाहिए। इस रणनीति या संयोजना को अपनाने में दो उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. न्यूनतम प्रयास से अधिकतम सम्भावित विकास दर प्राप्त करना व।
2. विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने में अधिक समय न लगना।

आर्थिक विकास की संयोजना के संबंध में अर्थशास्त्रियों में दो विचारधाराएँ हैं:

1. **संतुलित विकास (Balance Growth):** यह विकास बहुमुखी विकास के सिद्धान्त की अवधारणा पर आधारित है। इसमें अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों- कृषि, उद्योग एवं सेवाक्षेत्र, का एक साथ विकास किया जाता है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उत्पाद के लिए तैयार बाजार मिल सके और अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में संतुलन प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार की विचारधारा रखने वाले अर्थशास्त्रियों में रेगनर नर्कसे, लीविस, ऐलिन यंग, रोजेनस्टीन रोडॉ आदि प्रमुख हैं। ध्यातव्य है कि संतुलित विकास के समर्थक अर्थशास्त्री रोजेनस्टीन रोडॉ विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार- नियोजन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके निम्न-स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकल कर संचयी विकास पर आरूढ़ करना होना चाहिए अर्थात् अर्थव्यवस्था में एक बारगी बहुत अधिक मात्रा में विनियोग किया जाय, जिससे आर्थिक ढाँचे की जड़ता टूट जाये और अर्थव्यवस्था ऊँचे उत्पादकता और वास्तविक आय की ओर बढ़ने लगे उनके उक्त सिद्धान्त को प्रबल प्रयास सिद्धान्त (Big Push theory) की संज्ञा प्रदान की गई।
2. **असंतुलित विकास (Unbalance Growth):** इसमें पहले कुछ चुने हुए, विकास की सम्भावना वाले क्षेत्रों में ही विकास किया जाता है, जिनके लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अतः आरम्भ में विकास उन्हीं क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जो विकास को अधिक गति प्रदान कर सकते हैं। इसके लिए पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों को प्राथमिकता दी जा सकती है। ऐसा करने से उपभोक्ता उद्योगों के विकास के लिए आधार तैयार हो जाता है। बाद में उपभोक्ता उद्योगों को विकसित किया जा सकता है। यह संयोजना उन देशों के लिए बहुत ही उचित है जिनके साधन सीमित हैं। वे अपने विकास को धीरे-धीरे क्रमानुसार कर सकते हैं। असंतुलित विकास की विचारधारा को प्रतिपादित करने वाले अर्थशास्त्रियों में प्रो. रोस्टेव, पॉल स्ट्रीटन एवं प्रो. हर्शमैन प्रमुख हैं।
3. विकास अर्थशास्त्र का विश्लेषण भी किसी एक संयोजना का समर्थन नहीं करता है। विकास अर्थशास्त्र का इतिहास यह बताता है कि अमरीका व ब्रिटेन ने संतुलित विकास की नीति अपनायी थी, जबकि रूस ने असंतुलित विकास की, लेकिन बाद में उसने संतुलित विकास की नीति अपनायी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दोनों (1) एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं, (2) दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं, स्वतंत्र नहीं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण (Salient Feature of Indian Economy)

भारत को विश्व के विकासशील देशों में से एक मानते हुए इसकी मूल विशेषताओं को समझना बहुत महत्वपूर्ण है। यथा-

प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low per capita income)

भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा है। वैश्विक मानव विकास रिपोर्ट-2020 के अनुसार वर्ष 2019 में लिंचेस्टाइन एवं कतर का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) जहाँ क्रमशः 131032 एवं 92418 डॉलर रहा, वही भारत का प्रतिव्यक्ति GNI मात्र 6681 डॉलर था।

व्यावसायिक ढांचा

भारत का व्यावसायिक ढांचा प्राथमिक स्तर पर उत्पादनशील है। कुल रोजगार का 46.1% (2015-16) भाग कृषि और सहबद्ध कार्य में लगा है और राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान नई श्रृंखला 2011-12 के अनुसार GVA का वर्ष 2019-20 में 17.8% का अंश था, जो विकसित देशों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। जबकि कृषि

में प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादकता पाया जाता है। कारण स्वरूप कृषि एक मन्द उद्योग (Depressed Industry) माना जाता है।

बेरोजगारी और अल्परोजगार

भारत में श्रम प्रचुर तत्व (Abundant factor) होता है। फलतः समस्त कार्यकारी जनसंख्या को लाभकारी रोजगार दिलाना बहुत कठिन होता है। विकसित देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय (Cyclical) होती है और समर्थ मांग के अभाव (Deficiency of effective Demand) में ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है। भारत जैसे देशों में बेरोजगारी का स्वरूप संरचनात्मक (Structural) होता है तथा इसका बड़ा कारण पूँजी की कमी का होना है। कृषि में श्रम का सीमान्त उत्पादन नगण्य, शून्य अथवा नकारात्मक है। अतः कृषि में अरदृश्य अथवा गुप्त बेरोजगारी (Disguised unemployment) विद्यमान है। वर्ष 2011-12 में कुल श्रमशक्ति का 5.6% दैनिक स्थित (CDS) बेरोजगारी के आधार पर और 2.2% सामान्य प्रास्थिति आधारित (US) बेरोजगारी थी। इसमें खुली बेरोजगारी (Open unemployment) और अल्प रोजगार प्राप्त दोनों का समावेश था।

निम्नस्तरीय मानव पूँजी (Human Capital)

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण उसकी निम्न स्तरीय मानव-पूँजी की किस्म है। यही कारण है कि UNDP ने वैश्विक देशों को मानव विकास सूचकांक (HDI) के आधार पर स्थान दिया है। इस सूचकांक के आधार पर भारत का HDR: 2021 में 132 वाँ स्थान पर है।

पूँजी का अभाव (Capital Deficiency)

भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्प विकास का एक अन्य मूल कारण पूँजी का अभाव है जो दो रूपों में प्रकट होती है, प्रथम, प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूँजी की निम्न मात्रा और द्वितीय, पूँजी-निर्माण (Capital formation) की प्रचलित निम्न दर। ग्रामीण क्षेत्रों में 51 प्रतिशत परिवारों की कुल परिसम्पत्ति में भाग केवल 10 प्रतिशत ही है। इसके विरुद्ध, 9.6 प्रतिशत समृद्ध परिवारों के पास कुल परिसम्पत्ति का 49.0 प्रतिशत समीक्षा-2020-21 के अनुसार वर्ष 2018-19 में सकल घरेलू बचत-GDP का 30.1% और सकल पूँजी निर्माण-GDP का 32.2% था। 12वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में बचत दर GDP के 36.2/38.9 प्रतिशत तथा सकल पूँजी निर्माण GDP के 38.7/41.4 प्रतिशत के स्तर तक लाने का लक्ष्य रखा गया था।

परिसम्पत्तियों का दोषपूर्ण वितरण (Mal-distribution of Assets)

भारतीय अर्थव्यवस्था में परिसम्पत्तियों के वितरण में घोर असमानता है शहरी क्षेत्रों में यह असमानता और भी गहरा है। जहाँ 50.7 प्रतिशत परिवारों के पास कुल परिसम्पत्ति का केवल 5.3 प्रतिशत है वहीं इसके विरुद्ध कुल परिसम्पत्ति के लगभग 66 प्रतिशत पर 14.2 प्रतिशत शहरी परिवारों का आधिपत्य है।

औसत भारतीय का निम्न जीवन स्तर

भारत में अधिकतर जनता को संतुलित भोजन प्राप्त नहीं होता और इसकी अभिव्यक्ति कैलोरी तथा प्रोटीन के निम्न उपभोग में परिलक्षित होती है। जहाँ अधिकतर विकसित देशों में खाद्य का औसत कैलोरी उपभोग 3400 से अधिक है, वहाँ भारत में यह केवल 2415 है। जीवन को कायम रखने के लिए 2100 कैलोरी के न्यूनतम स्तर से यह थोड़ा सा अधिक है।

जनांकिकीय लक्षण (Demographic Characteristics)

अल्पविकास के साथ संबंधित जनांकिकीय लक्षणों में जनसंख्या का अधिक

घनत्व, 0-15 आयु वर्ग में जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात और कार्यकारी आयुवर्ग अर्थात् 15 से 60 के बीच जनसंख्या का बड़ा अनुपात होते हुए भी अकुशल है। इसके अतिरिक्त जीवन की औसत प्रत्याशा कम होती है और शिशु मृत्यु दर अधिक होती है। ये सभी लक्षण भारतीय अर्थव्यवस्था में विद्यमान हैं।

आर्थिक दृष्टिकोणों का जोर

विकासशील देशों में प्रायः आर्थिक दृष्टिकोण कार्यशील रहते हैं, जिससे उनके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। भारत भी इस दोष से मुक्त नहीं है। ये चक्र मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-

1. माँग पक्ष पर,
2. पूर्ति पक्ष पर संक्षेप में, इनकी कार्य-विधि इस प्रकार की होती है।

(अ) निर्धनता- कम आवश्यकताओं की पूर्ति-शक्ति का हास-अल्प कार्यक्षमता-कम उत्पादकता-कम आय-और अधिक निर्धनता।

(ब) निम्न उत्पादकता- निम्न उत्पादन-अल्प-राष्ट्रीय आय-अल्प प्रति व्यक्ति आय- अल्प बचत-अल्प-पूँजी निर्माण-पूँजी का अभाव-कम विनियोजन-अति निम्न उत्पादकता।

बाजार की अपूर्णताएँ

प्रो. मायर तथा बाल्डविन का विचार है कि अर्द्ध-विकसित देशों के बाजारों में अनेक अपूर्णताएँ उपस्थित रहती हैं; जैसे- उत्पादन के साधनों की अगतिशीलता, मूल्यों का बेलोचपन, बाजार की परिस्थितियों से अनभिज्ञता, विशिष्टीकरण का अभाव आदि। अतः ऐसी स्थिति में उपलब्ध साधनों का भी उचित प्रयोग नहीं हो पाता, जिससे आर्थिक विकास को गति नहीं मिल पाती। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है।

कृषि का विक्रय अधिशेष

कृषि में, विपणन योग्य अधिशेष एक फसल के अधिशेष का प्रतिनिधित्व करता है जिसे लाभ के लिए बेचा जा सकता है जब एक किसान अपने खेत को बनाए रखने और संचालित करने की लागत को पूरा करने के लिए अपनी फसल बेचता है। किसान ने मशीनरी पर रखरखाव, श्रम लागत, उर्वरक और अपनी जमीन पर गिरवी भुगतान सहित खर्चे निर्धारित किए होते हैं। किसी भी किसान के लिए, उत्पाद का उत्पादन करते समय कई खर्च होते हैं जैसे निवेश की लागत, उत्पादन के लिए नियोजित कोई तकनीकी सुविधाएँ आदि। इन लागतों को किसानों को बाजार में अपने निवेश बेचकर वसूल करने की जरूरत है। इस प्रकार, विपणन योग्य अधिशेष, अधिशेष का केवल वह हिस्सा है जो अंतिम ग्राहकों को बेचने के लिए उपलब्ध होता है।

अधिकांश किसानों के पास घरेलू उपयोग से अधिक उत्पादन करने के लिए निवेश नहीं होता है जिसे बाजार में बेचा जा सकता है। अतः, ऐसे मामले में कम आय वाले क्षेत्रों के लिए विपणन योग्य अधिशेष लगभग शून्य होता है। चूँकि कृषि उद्योग बेतहाशा अप्रत्याशित हो सकता है और मौसम के उतार-चढ़ाव के लिए अतिसंवेदनशील हो सकता है, इसलिए यह अधिशेष खेत की असामान्य या अप्रत्याशित क्षति की लागत से जल्दी से खत्म हो सकता है।

1. घरेलू अधिशेष यह किसानों द्वारा स्व-उपभोग के उद्देश्य के लिए उपलब्ध फसलों की संख्या को संदर्भित करता है। यह उन फसलों की संख्या द्वारा प्रदर्शित होती है जिनका उपयोग किसान और उनके परिवार अपने दैनिक जीवन में उपभोग के लिए करते हैं।

- राष्ट्रीय अधिशेष- राष्ट्रीय अधिशेष को एक कृषि उत्पादन के रूप में समझा जा सकता है, जो उस समाज की जरूरतों से अधिक है जिसके लिए इसका उत्पादन किया जा रहा है, और भविष्य के समय के लिए निर्यात या संग्रहीत किया जा सकता है।
- कृषि अधिशेष- कृषि उत्पादन में अधिकता को बंपर फसल के रूप में जाना जा सकता है। कुछ वर्षों में, उपयुक्त मौसम की स्थिति, उन्नत सिंचाई सुविधाओं आदि जैसे कारकों के कारण अतिरिक्त कृषि उपज के उत्पादन में मदद मिलती है, इसे कृषि अधिशेष के रूप में जाना जाता है।

मानव विकास क्या है? (What is Human Development?)

1990 में सर्वप्रथम प्रकाशित Human Development Report ने मानव विकास को लोगों के सामने विकल्प (Choice) के विस्तार की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं- लम्बा और स्वस्थ जीवन यापन, शिक्षा प्राप्ति और अच्छा जीवन स्तर पाना। अन्य विकल्प हैं- राजनीतिक स्वतंत्रता, अन्य मानवाधिकारों की गारंटी, और आत्म-सम्मान के विविध तत्व। ये सभी जरूरी विकल्प हैं जिनके अभाव में दूसरे अवसरों में बाधा पड़ती है। अतः मानव विकास लोगों के विकल्पों में विस्तार के साथ-साथ होने वाले कल्याण के स्तर को ऊंचा करने की प्रक्रिया है। पॉल स्ट्रीटन ने ठीक ही लिखा है कि मानव विकास की संकल्पना मानव को कई दशकों के अंतराल के बाद पुनः केंद्रीय मंच पर प्रस्थापित करती है। इन बीते दशकों में तकनीकी संकल्पनाओं की भूल-भुलैया में यह बुनियादी दृष्टि अस्पष्ट बनी रही थी।

महबूब उल हक के अनुसार, “आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास की विचारधारा में परिभाषात्मक अंतर यह है कि जहां आर्थिक संवृद्धि में केवल एक विकल्प अर्थात् आय पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता है। वहाँ ‘मानव विकास’ में सभी मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है- ये विकल्प चाहे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक हों।”

सतत् विकास (Sustainable Development)

सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी) का जन्म रियो डि जेनेरियो में सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में हुआ था। इसका उद्देश्य सार्वभौमिक लक्ष्यों का एक समूह तैयार करना था, जो हमारी दुनिया के सामने आने वाली पर्यावरणीय, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना कर सके।

SDGs मिलेनियम डेवलपमेंट गोलस (MDGs) की जगह लेते हैं, जिसने गरीबी की गरिमा से निपटने के लिए वर्ष 2000 में एक वैश्विक प्रयास शुरू किया था। एमडीजी ने अत्यधिक गरीबी और भूख से निपटने, घातक बीमारियों को रोकने और अन्य विकास प्राथमिकताओं के साथ सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए औसत दर्जे का, सार्वभौमिक रूप से सहमत उद्देश्यों की स्थापना की।

15 वर्षों के लिए, एमडीजी ने कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रगति की है, आय गरीबी को कम करना, पानी और स्वच्छता तक पहुंच प्रदान करना, बाल मृत्यु दर को कम करना और मातृ स्वास्थ्य में सुधार लाना आदि। मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के लिए एक वैश्विक आंदोलन भी शुरू किया गया। जिससे प्रेरित देश अपनी भावी पीढ़ियों में निवेश कर सकें। सबसे महत्वपूर्ण रूप से, एमडीजी ने एचआईवी/एड्स और मलेरिया तथा तपेदिक जैसे अन्य उपचार योग्य रोगों का मुकाबला करने में भारी प्रगति की है।

इसके अंतर्गत 17 मुख्य तथा 169 सहायक लक्ष्यों को निर्धारित करते हुए 5पी (People, Planet, Peace, Prosperity and Partnership) पर जोर दिया गया है। यह 17 लक्ष्य निम्न है:

जिसमें से पहले दो लक्ष्य सीधे-सीधे गरीबी निवारण से जुड़े हुए हैं।

सतत् विकास के 17 लक्ष्य

- गरीबी की पूर्णतः समाप्ति
- भुखमरी की समाप्ति
- अच्छा स्वास्थ्य और जीवन तर
- गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा
- लैंगिक समानता
- साफ पानी और स्वच्छता
- सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा
- अच्छा काम और आर्थिक विकास
- उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचा का विकास
- असमानता में कमी
- टिकाऊ शहरी और सामुदायिक विकास
- जिम्मेदारी के साथ उपभोग और उत्पादन
- जलवायु परिवर्तन
- पानी और जीवन
- भूमि पर जीवन
- शान्ति और न्याय के लिए संस्थान
- लक्ष्य प्राप्ति में सामूहिक साझेदारी

विकास का गाँधीवादी बनाम नेहरूवादी मॉडल (Models of Development: Gandhian vs. Nehruvian)

जनता पार्टी के सत्ता में आने से पूर्व 1977 तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार नेहरू की निवेश रणनीति (Investment strategy) थी और इसी कारण इसे विकास का नेहरू मॉडल कहा जाता है। नेहरू मॉडल में भारी उद्योग को अर्थव्यवस्था का आधार माना गया और नेहरू यह चाहते थे कि अर्थव्यवस्था की बुनियाद मजबूत की जाए ताकि विदेशी सहायता पर निर्भरता कम की जा सके। एक मजबूत बुनियाद प्रतिरक्षा की दृष्टि से भी महत्व रखती है क्योंकि इसके बिना आर्थिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। नेहरू की विकास रणनीति के फलस्वरूप भारत विश्व के औद्योगीकृत राष्ट्रों में दसवाँ स्थान प्राप्त कर सका। हमारी पहली पाँच योजनाओं के दौरान हुई प्रगति के बारे में छठी योजना के प्रारूप ने लिखा: “यह वस्तुतः बड़े राष्ट्रीय गर्व की बात है कि इस काल के दौरान, एक अवरुद्ध एवं पराश्रित अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया और इसे अधिक आत्मनिर्भर बनाया गया।” नेहरू विकास मॉडल की अन्य विशिष्ट उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं-

- बीज-खाद टेक्नोलॉजी के प्रयोग से कृषि उत्पादित (Agricultural Productivity) में भारी वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप देश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया और खाद्यान्नों के भारी रक्षित भंडार इकट्ठे हो गए;
- पूँजी वस्तु क्षेत्र में कारगर औद्योगीकरण और इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख कार्यभाग अदा करना पड़ा। इससे भारत की औद्योगिक क्षमता का विस्तार एवं विशाखन हुआ। भारत अब उपभोग वस्तुओं में और मूल वस्तुओं अर्थात् इस्पात, सीमेंट में आत्मनिर्भर है जबकि नये उद्योगों अर्थात् उर्वरकों की क्षमता का तेजी से विस्तार हो रहा है।
- सिंचाई, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार आदि के रूप में आर्थिक आधार संरचना का विकास जो कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए आधार मुहैया कर सकता है; और
- एक आधुनिक औद्योगिक ढांचे को चलाने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी का विकास और तकनीकी एवं प्रबन्धकीय संवेगों (Technical and managerial cadres) की स्थापना एवं विकास।

नेहरू विकास मॉडल की कमजोरियाँ

भारी उद्योग पर आधारित नेहरू विकास मॉडल में कई कमजोरियाँ अनुभव की गयीं। लगभग तीन दशकों के आयोजन के बावजूद यह राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध कराने में असफल रहा। 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अब भी निर्धनता स्तर के नीचे रह रही थी। बेरोजगार और अल्परोजगार व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा थी और यह लगातार बढ़ रही थी। आय तथा सम्पत्ति की असमानताएँ और गम्भीर होती जा रही थी और कुछ लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बढ़ता जा रहा था। भू-सुधारों को सही ढंग से लागू नहीं किया गया और इस कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अधिक असंतोष है। इन सबके अतिरिक्त देश में कभी एक और कभी दूसरी वस्तु का अभाव बना रहता है और इसके परिणामस्वरूप देश में एक भयंकर स्फीतिकारी दबाव पैदा हो गया है। इन परिस्थितियों को देखते हुए श्री चरण सिंह जैसे कुछ राजनीतिज्ञों ने तथा कथित 'आर्थिक विकास के गाँधीवादी मॉडल' के प्रयोग का समर्थन किया।

विकास गाँधीवादी मॉडल

महात्मा गाँधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे और इसलिए उन्होंने विकास का कोई मॉडल तैयार नहीं किया। परंतु उन्होंने भारतीय कृषि, उद्योग आदि के विकास के लिए कुछ नीतियों का समर्थन अवश्य किया। आचार्य श्रीमन नारायण ने 1944 में गाँधीवादी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद में 1948 में उसकी पृष्टि की। ये प्रकाशन गाँधीवादी आयोजन या विकास के गाँधीवादी ढाँचे का आधार हैं।

गाँधीवादी योजना का मूल उद्देश्य यह है कि भारतीय जनता के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर को उन्नत किया जाए ताकि 10 वर्षों के अन्दर न्यूनतम जीवन-स्तर प्राप्त किया जा सके। गाँधीवादी योजना सबसे पहले भारत के 5 लाख गाँवों की आर्थिक दशा उन्नत करना चाहती है और इसलिए कृषि के वैज्ञानिक विकास और कुटीर उद्योगों के विस्तार पर बल देती है।

गाँधीवादी योजना का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय आर्थिक आयोजन में कृषि-सुधार को बढ़ावा देना है। कृषि विकास का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और खाद्य-पदार्थों में अधिकतम क्षेत्री स्वायत्तता प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए न केवल बड़ी मात्रा में अच्छे कृषि-आदानों का प्रयोग आवश्यक है बल्कि भू-सुधारों का प्रयोग भी करना होगा। इसके लिए काश्तकारी प्रणाली में परिवर्तन, भू-स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन, ज़ोतों की चकबन्दी, सहकारी समितियों का गठन आदि उपाय इस्तेमाल करने होंगे। महाजन-व्यवस्था को समाप्त करना होगा और किसानों को अधिक मात्रा में ऋण सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। गाँधीवादी योजना में डेरी उद्योग (Dairy farming) पर विशेष बल दिया गया और इसे कृषि का एक सहायक व्यवसाय माना गया।

कुटीर उद्योग

गाँधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज में अधिकतम आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है इसलिए इस योजना में कुटीर उद्योगों के पुनःस्थापन, विकास एवं विस्तार की समस्याओं का कृषि के साथ-साथ विस्तार वर्णन किया गया। कताई एवं बुनाई को प्रथम स्थान दिया गया। यह उल्लेख किया गया कि खादी के उत्पादन को उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए जितना कि चावल और गेहूँ के उत्पादन को दिया जाता है। "जैसे गाँवों के लोग अपनी रोटी और चावल बनाते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने निजी प्रयोग के लिए खादी तैयार करनी चाहिए। यदि वे अपनी आवश्यकता से अधिक पैदा करते हैं, तो इस अतिरिक्त को बेच सकते हैं।" गाँधीवादी योजना में प्रत्येक गाँव को कपड़े के उत्पादन में स्वावलम्बी बनाने की योजना दी गई है। इसके लिए प्रत्येक ग्रामवादी से यह आशा की जाती है कि यह ग्राम उद्योगों के विकास एवं गठन में सक्रिय भाग अदा करे। इसके साथ-साथ

गाँधीवादी योजना राज्य से यह अपेक्षा करती है कि वह ग्रामीण कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान एवं विकास को औद्योगिक आयोजन का मुख्य केंद्र बनाए। इसे दस्तकारों को हस्तशिल्पों के संबंध में तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी; कच्चे माल के क्रय और तैयार माल के विक्रय के लिए सहकारी समितियाँ कायम करनी होंगी, कुटीर उद्योगों को बड़े पैमाने की इकाइयों की अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा देनी होगी और कुछ ऐसे कुटीर उद्योगों को साहाय्य (Subsidies) देने होंगे जो इसके बिना विकसित ही नहीं हो सकते और साथ ही दस्तकारों एवं सहकारी समितियों को सस्ती दर पर वित्त उपलब्ध कराना होगा।

मूल उद्योग (Basic Industries)

गाँधीवादी के बारे में एक मिथ्या धारणा बनी हुई है कि वे बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध थे। इसके विरुद्ध गाँधीवादी योजना में कुछ चुने हुए मूल एवं कुंजी उद्योगों की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इनमें उल्लेखनीय हैं- प्रतिरक्षा उद्योग, जल-विद्युत एवं तापीय संचालन-शक्ति प्रजनन खानें तथा धातुकर्म, मशीनरी एवं मशीनी औजार, भारी इंजीनियरिंग और भारी रसायन। गाँधीवादी योजना यह चाहती है कि मूल उद्योगों का विकास कुटीर उद्योगों के विकास में हस्तक्षेप न करे या इनमें बाधा न बने। गाँधीवादी योजना का सबसे अधिक वैज्ञानिक पहलू यह है कि मूल तथा कुंजी उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबंध राज्य के हाथ में होना चाहिए या दूसरे शब्दों में ये उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित होने चाहिए।

गाँधीवादी की मशीनरी की धारणा के बारे में काफी गलतफहमी हैं साधारणतया, लोग यह समझते हैं कि गाँधीजी का कुटीर उद्योगों एवं हस्तशिल्पों पर बल देना उनके आधुनिक मशीनरी के प्रति विरोध का संकेत है। यह गलत है गाँधीजी सभी प्रकार की मशीनरी के विरुद्ध नहीं थे क्योंकि चरखा भी एक प्रकार की मशीन है किन्तु गाँधीजी मशीनरी की सनक और इसके अन्धाधुन्ध विस्तार के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि कारखाना पद्धति, मशीनरी का विस्तृत प्रयोग करके, कुछ पूंजीपतियों द्वारा श्रम के शोषण का साधन बन गयी है। वे मशीनरी और आधुनिक सुविधाओं का स्वागत करते थे परन्तु शर्त यह है कि इनके प्रयोग से ग्रामीणों का भार हल्का होना चाहिए और मानवीय श्रम का विस्थापन नहीं होना चाहिए। मशीनरी अच्छी है यदि यह सबके हित को प्रोन्नत करती है; यह एक अभिशाप है यदि यह कुछ लोगों के हित को बढ़ाती है।

यदि हम गाँधीवादी योजना का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें, तो हमें पता चलता है कि इसका उद्देश्य कृषि एवं उद्योगों का साथ-साथ विकास करना है और इनमें समन्वय स्थापित करना है। हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ-साथ रोजगार का भी विस्तार करना है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय समाज पर नेहरूजी छा गये थे और गाँधीजी तथा उनके आर्थिक विचार भुला दिए गए। इनकी अपेक्षा रूसी अनुभव के आधार पर भारतीय आयोजन का मॉडल लागू कर दिया गया। 25 वर्षों के बाद जब देश 1973 और 1975 के बीच आर्थिक संकट में ग्रस्त हो गया, तो लोगों ने विकास के नेहरू मॉडल की अपेक्षा गाँधीवादी योजना को एक सम्भव विकल्प के रूप में सोचना शुरू किया। जनता पार्टी शासन के छोटे से काल के दौरान इनमें से कुछ विचार छठी योजना के प्रारूप में सम्मिलित किए गए। भारतीय संदर्भ में विकास की गाँधीवादी योजना एक हद तक अवश्य ही लाभदायक हो सकती है और इसलिए इसकी सिफारिश की जा सकती है ठोस रूप में विकास के गाँधीवादी मॉडल के लिए आयोजन की वर्तमान प्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन करने होंगे-

1. **उत्पादन-प्रेरित आयोजन की अपेक्षा रोजगार-प्रेरित आयोजन की स्थापना** यहाँ मूल बात यह है कि बेरोजगारी हमारी सबसे बड़ी शत्रु है और इसके समाधान में ही निर्धनता एवं असमानताओं की समस्याओं का

समाधान निहित हैं इसलिए यह जरूरी है कि उत्पादन-प्रेरित आयोजन का प्रतिस्थापन रोजगार-प्रेरित आयोजन (Employment oriented Planning) द्वारा किया जाए। इसके लिए ऐसे क्षेत्र निर्धारित करने आवश्यक हैं जो अधिक रोजगार क्षमता रखते हों और जिनमें अधिक एवं कुशल उत्पादन भी सम्भव हो। “मोटे तौर पर पूंजी को अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग करना चाहिए और किसी भी हालत में सरकार को भविष्य में किसी पूंजी-प्रधान परियोजना की अनुमति नहीं देनी चाहिए जहाँ कहीं भी श्रम-प्रधान विकल्प उपलब्ध हो।”

2. **कृषि एवं रोजगार क्षमता**- कृषि के जिन क्षेत्रों में अधिक रोजगार कायम करने की अधिक क्षमता है, वे हैं; (क) खेती जिसमें पशुपालन, कम्पोस्ट तैयार करना, सफाई और गोबर गैस; (ख) ग्राम निर्माण कार्य अर्थात् सिंचाई परियोजनाएँ भू-रक्षण, (Soil conservation,) भू-उद्धरण (Soil reclamation) वनरोपण आदि और (ग) ग्राम तथा कुटीर उद्योग। गहन खेती के आधीन भूमि पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक श्रमिकों को रोजगार दिलाया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में 1971 में प्रति 100 एकड़ पर 39 श्रमिक लगे हुए थे और इस दृष्टि से भारत एक निम्न निष्पादन (Low performance) वाला देश माना जाता है परन्तु इसकी तुलना में जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान और मिश्र में 1965 के दौरान प्रति 100 एकड़ पर क्रमशः 87, 79 और 71 श्रमिक कार्य करते थे। ये देश उच्च-निष्पादन वाले राष्ट्र हैं जिनमें छोटी तथा अधिक श्रम-प्रधान फार्मों के आधार पर खेती की जाती है इन देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि में कुल उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ 500 से 600 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार दिलाया जा सकता है। नये सिंचाई प्राप्त क्षेत्रों में रोजगार क्षमता (Employment potential) को 60 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। यदि यन्त्रीकरण (Mechanisation) सीमित रखा जाए अर्थात् केवल ऐसी मशीनों का प्रयोग किया जाए जो मानवीय प्रयास में सहायक हों या इसको दबाने की अपेक्षा इसके बोझ को हल्का करें.... जापानी किस्म की फार्म-मशीनरी।”

3. **बड़े बनाम छोटे उद्योग**- विकास का गाँधीवादी मॉडल कुटीर तथा लघु स्तर के उद्योगों के पक्ष में है और यह ऐसे बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध है जो उपभोग वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। चरणसिंह ने लिखा, “भविष्य में किसी मध्यम या बड़े पैमाने के उद्यम की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसी वस्तुएँ या सेवाएँ उत्पन्न करता है जो कुटीर या लघु-स्तर के उद्यमों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं और किसी लघु स्तर उद्योग की स्थापना की इजाजत नहीं दी जाएगी जो ऐसी वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पन्न करेगा जो कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं।” चरणसिंह तो उपभोग-वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों के इतने अधिक विरुद्ध थे कि उनका कहना था कि ऐसी उत्पादन-इकाइयाँ या तो अपने सारे उत्पादन का निर्यात करें या वे बन्द कर देनी चाहिए।

4. **न्यायपूर्ण वितरण** (Equitable Distribution)- भले ही हम समाजवाद की रट लगाए हुए हैं, परन्तु कुछ हाथों में आर्थिक शक्ति का बढ़ता हुआ संकेद्रण और आय की असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की दो प्रमुख बुराइयाँ हैं। गाँधीजी वितरण की इस समस्या के संबंध में सम्भवतः सबसे उत्तम एवं स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत करते हैं। सम्पत्ति का संचयन एवं आर्थिक शक्ति का संकेद्रण प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन के साधनों के केंद्रीकरण एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के केंद्रीकरण का परिणाम है और जब कभी भी बड़े पैमाने का उत्पादन अनिवार्य हो जाए (जैसा कि मूल एवं कुंजी उद्योगों में), तो इसे सरकारी स्वामित्व एवं प्रबंध के आधीन करना चाहिए। गाँधीवादी मॉडल में वितरण की समस्या को उत्पादन के स्तर पर हल करने की चेष्टा की गई है, न कि उपभोग के स्तर पर।

गाँधीवादी मॉडल में राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर को कम से कम समय में प्राप्त करने की आशा व्यक्त की गई है। इसमें स्थिरता के साथ विकास और आय एवं सम्पत्ति के संकेद्रण को समाप्त करने का लक्ष्य भी रखा गया है। दूसरे शब्दों में, इसमें यह प्रयास किया गया है कि नेहरू-महलनोबिस मॉडल की कमजोरियाँ दूर की जा सकें।

राष्ट्रीय आय (National Income)

राष्ट्रीय आय से जुड़ी अवधारणाएँ (Concepts Related to National Income)

सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product)

किसी भी देश की घरेलू सीमा में एक वर्ष में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्यों के समग्र योग को GDP कहते हैं।

जी.डी.पी. की उपर्युक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए इसकी आवश्यक बातों को निम्न बिन्दुओं द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है-

- जी.डी.पी. में केवल उसी उत्पादन को ध्यान में रखा जायेगा, जो संबंधित राष्ट्र की आर्थिक घरेलू सीमा के भीतर हुआ हो। इस उत्पादन में विदेशी साधन की भूमिका स्वीकार्य है तथा संबंधित राष्ट्र के वे साधन जो अन्य राष्ट्रों की आर्थिक घरेलू सीमा में उत्पादन कर रहे हैं, उन्हें नहीं जोड़ा जाएगा।
- उत्पादन में केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ध्यान में रखा जाता है, न कि सभी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं को। यदि सभी वस्तुओं और सेवाओं को जोड़ा जायेगा तो दोहरी गणना की स्थिति पैदा हो जायेगी, जिसके कारण GDP का स्तर अवास्तविक रूप से बढ़ा हुआ दिखायी देगा। यदि अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं को ध्यान में नहीं रखना है तथा सभी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं को शामिल करना है, तो इसका एक विकल्प यह होता है कि उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं पर होने वाले मूल्य संवर्धन को आपस में जोड़ लिया जाए। भारत के द्वारा जनवरी 2015 में (SNA-System of National Account)- 2008 के अंतर्गत GDP का अनुमान लगाने के लिये इसी विधि को लागू किया गया है। इसमें GDP ज्ञात करने के लिये (GVA- Gross Value Added) का प्रयोग किया जाता है।
- GDP को बाजार मूल्यों में अभिव्यक्त किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाये तो जी.डी.पी. को आंकड़े में प्रस्तुत करना असंभव होगा तथा मूल्य संवर्धन भी नहीं निकाले जा सकेंगे और सेवाओं का मूल्यांकन नहीं हो पाएगा।
- GDP को एक समय सीमा के साथ जोड़ा जाता है, जो सामान्यतः एक वर्ष होती है।
- सांकेतिक (Nominal) GDP-** इसमें वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य की गणना चालू वर्ष की कीमतों पर की जाती है।
- वास्तविक (Real) GDP-** इसमें वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य की गणना आधार वर्ष की कीमतों पर की जाती है।

किसी देश की आर्थिक घरेलू सीमा

- सामान्यतया आर्थिक घरेलू सीमा में भौगोलिक सीमा को सम्मिलित किया जाता है पर दोनों बिल्कुल समान नहीं होती हैं। आर्थिक घरेलू सीमा में निर्मांकित को भी शामिल किया जाता है।
- वायु क्षेत्र, क्षेत्रीय जल क्षेत्र जिस पर मत्स्यन, खनिज दोहन का अधिकार हो।
- शेष विश्व में स्थित दूतावास, मिलिट्री बेस व प्रवसन कार्यालय।
- मुक्त क्षेत्र व कस्टम के नियंत्रण में आने वाले समुद्र तट के उद्यम।
- मछली पकड़ने की नौकाएँ, दो या उससे अधिक देशों के मध्य चलने वाले वायुयान व जहाज।
- इस सीमा के अंतर्गत विदेशी सरकारों के देश की सीमा में स्थित दूतावास, विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ या उनके कार्यालय या अन्य देशों के मिलिट्री बेस नहीं आते हैं।

सकल मूल्य वर्धन (Gross Value Added)

- यह कुल उत्पादन में से मध्यवर्ती उपभोग के मूल्य को घटाने पर प्राप्त अन्तिम उत्पादन मूल्य होता है। मूल्य वर्धन, उत्पादन प्रक्रिया में श्रम एवं पूंजी के योगदान को प्रदर्शित करता है। आधार मूल्य पर GVA में उत्पादन कर (Production Tax) को सम्मिलित किया जाता है तथा वस्तु पर प्रदान की गयी उत्पादन सब्सिडी को सम्मिलित नहीं किया जाता है।
- दूसरी ओर, साधन लागत पर GVA में कोई कर सम्मिलित नहीं किया जाता है तथा सब्सिडी को सम्मिलित किया जाता है।

आधार मूल्य पर $GVA = CE + OS/MI + CFC + \text{उत्पादन कर} - \text{उत्पादन सब्सिडी}$
साधन लागत पर $GVA = \text{आधार मूल्य पर GVA} - \text{उत्पादन कर} + \text{उत्पादन सब्सिडी}$
 $GDP = \Sigma \text{आधार मूल्य पर GVA} + \text{उत्पादन कर} - \text{उत्पादन सब्सिडी}$

CE - Compensation of Employees (कर्मचारियों को मुआवजा)।

OS - Operation Surplus - (परिचालन अधिशेष)। MI - Mixed Income - (मिश्रित आय)।

CFC - Consumption of Fixed Capital - (स्थिर पूंजी का उपभोग)

सकल मूल्यवर्धन में (GVA) में क्षेत्रवार वृद्धि (प्रतिशत में)

क्षेत्र	2019-20	2020-21	2021-22
	प्रथम संशोधित अनुमान	अग्रिम अनुमान	अग्रिम अनुमान
कृषि और संबद्ध क्षेत्र	4.3	3.6	3.9
उद्योग	-1.2	-7.0	11.8
खनन और उत्पादन	-2.5	-8.5	14.3
उत्पादन	-2.4	-7.2	12.5
बिजली, गैस, पानी की आपूर्ति और अन्य उपयोगी सेवाएं	2.1	1.9	8.5
निर्माण	1.0	-8.6	10.7
सेवाएं	7.2	-8.4	8.2
व्यापार, होटल, परिवहन, संचार और प्रसारण से संबंधित सेवाएं	6.4	-18.2	11.9
वित्तीय, रियल एस्टेट और पेशेवर सेवाएं	7.3	-1.5	4.0
लोक प्रशासन, रक्षा और अन्य सेवाएं	8.3	-4.6	10.7
मूलभूत कीमतों पर (GVA)	4.1	-6.2	8.6

शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product)

शुद्ध घरेलू उत्पाद किसी भी अर्थव्यवस्था की वह जीडीपी है, जिसे एक वर्ष के दौरान होने वाली मूल्य कटौती को घटाकर प्राप्त किया जाता है अर्थात् जिन संसाधनों द्वारा उत्पादन किया जाता है, उनमें उपयोग के दौरान उनके मूल्य में कमी हो जाती है, जिसका तात्पर्य उत्पाद के घिसने या टूटने-फूटने से होता है। इसमें मूल्य कटौती की दर सरकार निर्धारित करती है।

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद - घिसावट

स्पष्ट है कि किसी भी वर्ष में किसी भी अर्थव्यवस्था में एनडीपी, हमेशा उस वर्ष के जीडीपी से कम होगा।

शुद्ध घरेलू उत्पाद के प्रयोग

- इसका उपयोग घिसावट के चलते अर्थव्यवस्था को होने वाले नुकसान को समझने के लिये किया जाता है।
- किसी विशेष समयावधि के दौरान उद्योग-धंधे और कारोबार में अलग-अलग क्षेत्र की स्थिति का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है।
- अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में अर्थव्यवस्था की उपलब्धि को दर्शाने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

हरित सकल घरेलू उत्पाद (Green GDP)

- किसी भौगोलिक सीमा के अंतर्गत पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये बिना अर्थात् पर्यावरण का संरक्षण करते हुए आर्थिक विकास को प्राप्त करना ही हरित GDP है।
- हरित अर्थव्यवस्था में उन उत्पादों की गणना की जाती है, जिनकी उत्पादन प्रक्रिया के कारण पर्यावरणीय क्षति नहीं होती है।
- ग्रीन जी.डी.पी. देश के नागरिकों को दी गयी समयावधि में प्रतिव्यक्ति उत्पादन की वह मात्रा है जो कि देश की प्राकृतिक सम्पदा को स्थिर बनाये रखते हुए प्राप्त की जाती है। इसकी शुरुआत 1995 में विश्व बैंक द्वारा की गई।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product)

किसी भी अर्थव्यवस्था में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) उस आय को कहते हैं जो जीडीपी में विदेशों से होने वाली आय को जोड़कर प्राप्त होता है। इसमें देश की सीमा से बाहर होने वाली आर्थिक गतिविधियों को भी शामिल किया जाता है। विदेशों से प्राप्त होने वाली आय में शामिल हैं—

- निजी प्रेषण
- विदेशी कर्जे पर प्राप्त होने वाला ब्याज
- विदेशी अनुदान

स्पष्ट है कि

सकल राष्ट्रीय उत्पाद = GDP + विदेशों से प्राप्त होने वाली निवल आय

सकल राष्ट्रीय उत्पाद के उपयोग

- इसके अनुसार ही अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष क्रयशक्ति समतुल्यता के आधार पर दुनिया के देशों की रैंकिंग तय करता है। भारत क्रयशक्ति समतुल्यता के आधार पर विश्व में तीसरे स्थान पर है।
- राष्ट्रीय आय के मापन के लिये GNP, GDP की तुलना में विस्तृत पैमाना है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था की परिमाणात्मक के साथ-साथ गुणात्मक तस्वीर भी पेश करता है।
- यह किसी भी अर्थव्यवस्था के पैटर्न और उसके उत्पादन व्यवहार को समझने में मदद करता है।
- यह किसी अर्थव्यवस्था के दुनिया के दूसरे देशों की अर्थव्यवस्था से संबंध को बताता है।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product)

सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य कटौती को घटाने के बाद जो आय बचती है उसे ही किसी अर्थव्यवस्था का 'शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद' (एनएनपी) कहते हैं। अतः

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद - विदेशी आय - मूल्य ह्रास

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के उपयोग

- यह किसी भी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय है, यद्यपि GDP, GNP और NDP सभी राष्ट्रीय आय ही हैं लेकिन इन्हें राष्ट्रीय आय के तौर पर नहीं लिखा जाता।
- यह किसी भी देश की राष्ट्रीय आय को आकलित करने का सबसे बेहतर तरीका है।
- यदि हम NNP को देश की कुल जनसंख्या से भाग दें तो देश की प्रति व्यक्ति आय की गणना होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- राष्ट्रीय आय की गणना—लागत मूल्य पर की जाती है।
- लागत के आधार पर किसी वर्ष के लिये NNP कम होती है जबकि मूल्य के आधार पर यह अधिक होती है।
- लागत किसी उत्पाद का उत्पादन व्यय है, जिसे साधनों/ कारकों के मूल्यों को जोड़कर प्राप्त किया जाता है तथा उत्पाद का मूल्य उसकी लागत में अप्रत्यक्ष करों और उत्पादनकर्ता के लाभ को जोड़कर निकाला जाता है। लागत दो प्रकार की होती हैं—

कारक/साधन लागत (Factor cost)

- किसी उत्पाद के उत्पादन में उत्पादनकर्ता को उत्पादन के कारकों के लिये जितना भुगतान करना पड़ता है, उसे कारक लागत (FC) कहते हैं।
- ये कारक कच्चा माल, मजदूरी, बिजली, किराया, ऋण का ब्याज आदि होती है।
- इन्हें फैक्ट्री मूल्य भी कहा जाता है।

बाजार लागत (Market Cost)

- जब किसी उत्पाद के कारक लागत में शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को जोड़ा जाता है, एवं सब्सिडी को घटाया जाता है, तो बाजार लागत प्राप्त होती है।
- इसे पूर्व फैक्ट्री मूल्य भी कहा जाता है।

साधन लागत = बाजार मूल्य - निवल अप्रत्यक्ष कर (अप्रत्यक्ष कर - सब्सिडी)
मूल्य भी दो प्रकार के होते हैं—

स्थिर मूल्य (Constant Price)

- यह किसी उत्पाद का पिछले किसी वर्ष के स्तर पर बिक्री मूल्य है। जब वर्तमान में उत्पादित वस्तु का मूल्य पीछे के किसी आधार वर्ष पर निकालते हैं तो वह स्थिर मूल्य कहलाता है। स्थिर मूल्य महंगाई को स्थिर मानकर निकाला जाता है।
- किसी भी देश की संवृद्धि और विकास का गरीबी उन्मूलन पर प्रभाव जानने के लिये स्थिर मूल्य का प्रयोग किया जाता है।
- भारत का स्थिर मूल्य के लिये आधार वर्ष 2011-12 है।

चालू मूल्य (Current Price)

- किसी उत्पाद पर जो अधिकतम खुदरा मूल्य छपा होता है, वह उसका चालू मूल्य है। किसी उत्पाद का चालू मूल्य उसके स्थिर मूल्य में आधार वर्ष से अब तक की मुद्रास्फीति को जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है।
- चालू मूल्य महंगाई की वर्तमान स्थिति को बताता है।
- भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना स्थिर मूल्यों पर ही की जाती है।
- देश की आय संबंधी आँकड़े बाजार लागत पर और चालू मूल्यों पर भारत में वित्त मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं।

राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली (National Income Accounts Procedure)

- राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली एक वित्तीय वर्ष में किसी देश की अर्थव्यवस्था के क्रियाकलापों, उसकी कुल आय, वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य द्वारा मापने का उपकरण है।
- इस प्रणाली द्वारा राष्ट्रीय आय से संबंधित आँकड़े इस प्रकार व्यवस्थित व संकलित किये जाते हैं कि लेखों के परस्पर संबंध तथा लेखों की संरचना से विभिन्न क्षेत्रों के परस्पर संबंध को सरलता से समझा जा सके।
- वास्तव में राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली, व्यापारिक लेखा प्रणाली के नियमों और सिद्धांतों को राष्ट्रीय आय तथा उससे संबंधित समूहों की गणना करने में लागू करने का प्रयत्न करती है।
- राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली का विकास 17वीं शताब्दी में इंग्लैंड के सर विलियम पेटी तथा फ्रांस के बोयल गिल्बर्ट के द्वारा किया गया।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साइमन कुजनेट्स ने राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली का विकास किया, जिसके लिये उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला।
- संयुक्त राष्ट्र संघ, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक ने राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया।
- वर्ष 1931-32 में वी.के.आर.वी. राव ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक विधि से राष्ट्रीय आय की गणना की तथा राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली का प्रतिपादन किया। अतः उन्हें राष्ट्रीय आय लेखा प्रणाली का जनक माना जाता है।
- सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय की गणना का प्रयास दादा भाई नौरोजी ने वर्ष 1863 में किया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' में प्रति व्यक्ति आय 20 रुपये बताया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने वर्ष 1949 में पीसी. महालनोबिस की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आय समिति का गठन किया। इसी समिति की अनुशंसा पर केंद्रीय सांख्यिकी संगठन की स्थापना की गई।

वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income)

इसे स्थिर मूल्यों पर राष्ट्रीय आय भी कहते हैं। राष्ट्रीय आय को बाजार मूल्यों पर निकालने के कारण वृद्धि का ठीक से पता नहीं चल पाता है, क्योंकि बाजार मूल्य बदलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि बाजार मूल्यों को किसी एक निश्चित स्तर पर स्थिर कर दिया जाये। इस संदर्भ में CSO द्वारा किसी आधार वर्ष का चुनाव किया जाता है। इस प्रकार आधार वर्ष को ध्यान में रखकर निकाली गई राष्ट्रीय आय को 'वास्तविक राष्ट्रीय आय' कहते हैं। इस आय से वास्तविक वस्तुस्थिति का पता लगता है।

स्मरणीय तथ्य

- वर्ष 2015 से भारत में 2011-2012 को आधार वर्ष के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है।
- राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग के अनुसार 5 वर्ष के अन्तराल के बाद आधार वर्ष बदला जाना चाहिए।

मौद्रिक राष्ट्रीय आय (Nominal National Income)

इसे प्रचलित मूल्यों पर राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इस राष्ट्रीय आय में आधार वर्ष के मूल्यों का प्रयोग करने के स्थान पर उसी वर्ष के मूल्यों का प्रयोग किया जाता है, जिस वर्ष के लिये राष्ट्रीय आय निकाली जाती है। इस राष्ट्रीय आय का विशेष महत्त्व न होने के कारण ही इसे मौद्रिक राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इससे वृद्धि दर के बारे में भी सटीक जानकारी नहीं मिल पाती है।

व्यक्तिगत आय (Personal Income)

व्यक्तिगत आय, सभी व्यक्तियों या परिवारों द्वारा एक वर्ष में अर्जित कुल आय होती है। इसमें LPG सब्सिडी जैसे हस्तांतरण भुगतान भी शामिल हैं। राष्ट्रीय आय लेखांकन में कुछ ऐसी आय शामिल कर ली जाती है, जो व्यक्तियों की व्यक्तिगत आय होती है परन्तु व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होती है जैसे अवितरित लाभ, सामाजिक सुरक्षा हेतु कर्मचारी का योगदान, कॉर्पोरेट इन्कम टैक्स आय आदि। इसीलिए व्यक्तिगत आय का अनुमान लगाने हेतु इनको राष्ट्रीय आय से घटाया जाता है।

व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय + हस्तांतरण भुगतान - (कॉर्पोरेट प्रतिधारित आय, आयकर, सामाजिक सुरक्षा कर)

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय (Disposable Personal Income)

इस आय का आशय किसी व्यक्ति के पास व्यक्तिगत करों के भुगतान के बाद उपलब्ध वास्तविक व्यय योग्य राशि से है।

व्यक्तिगत प्रयोज्य आय = व्यक्तिगत आय - व्यक्तिगत कर

प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)

- जब किसी देश के शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अर्थात् राष्ट्रीय आय को उस देश की, उस वर्ष की मध्यावधि की जनसंख्या से विभाजित किया जाता है तो प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की जानकारी प्राप्त होती है।
- राष्ट्रीय आय को सभी अवधारणाओं में प्रति व्यक्ति आय लोगों के आर्थिक कल्याण को प्रदर्शित करने वाला सबसे बेहतर सूचक माना जाता है। इसका कारण यह है कि समग्र राष्ट्रीय आय अधिक होने पर भी लोगों का जीवन स्तर कम हो सकता है, यदि संबंधित राष्ट्र की जनसंख्या अधिक हो।

क्रय शक्ति समता (Purchasing Power Parity)

- यह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) तथा विश्व बैंक द्वारा विकसित अवधारणा है, जो किसी अर्थव्यवस्था की अंतर्राष्ट्रीय क्रय शक्ति किसी अन्य अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में आकलित करती है। वर्तमान में इसे अमेरिकी डॉलर में निरूपित करते हैं।
- इसकी गणना हेतु नई विनिमय दर निकाली जाती है, यह देखा जाता है कि कुछ निश्चित वस्तुओं की टोकरी को US डॉलर कितने में खरीदा जाता है और उसी टोकरी को संबंधित देश की मुद्रा द्वारा कितने मूल्य में खरीदा जाता है। इन दोनों मुद्राओं की मात्रा को बराबर मानकर विनिमय दर प्राप्त होती है।
- जीवन स्तर को व्यक्त करने के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले आधुनिकतम माप को क्रय शक्ति समता (PPP) के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत व्यापारिक तथा गैर व्यापारिक दोनों प्रकार की वस्तुएँ सम्मिलित हैं।
- इस सिद्धांत के अनुसार एक मुद्रा का बाह्य मूल्य इसकी आंतरिक क्रयशक्ति पर निर्भर करता है। यह सिद्धांत व्यक्त करता है कि एक मुद्रा तथा अन्य मुद्रा के मध्य विनिमय दर उस स्तर पर संतुलित होगी, जब उनकी आन्तरिक क्रय शक्तियाँ उस दर पर समान हों।
- विश्व बैंक के अनुसार 'PPP' आधार पर अमेरिकन डॉलर में भारतीय अर्थव्यवस्था का 'GDP' दुनिया में तीसरे स्थान पर है। इसमें चीन प्रथम तथा अमेरिका दूसरे स्थान पर है।

राष्ट्रीय आय को मापने की विधियाँ (Methods of Measuring National Income)

किसी भी देश की आय को मापने की तीन विधियाँ होती हैं-



उत्पादन विधि (Production Method)

- साइमन कुजनेट्स ने इस विधि को वस्तु सेवा विधि के नाम से परिभाषित किया है। इस पद्धति के अंतर्गत देश में एक वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं का शुद्ध मौद्रिक मूल्य ज्ञात किया जाता है तथा उसके योग को अन्तिम उत्पाद योग कहा जाता है। यह वास्तव में सकल घरेलू उत्पाद को दर्शाता है।

इस विधि में पुरानी वस्तुओं की खरीद व बिक्री, वित्तीय सौदे, शेर व ऋण पक्ष का क्रय विक्रय, हस्तांतरण भुगतान (वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता), पूंजीगत लाभ व हानि, अप्रत्याशित लाभ, फौकट्टी के वस्तुओं के उत्पादन हेतु मध्यवर्ती खर्च, किसी परिवार द्वारा अपने बगीचे में उत्पादित सब्जियों व फलों की कीमत, एक फर्म के द्वारा दूसरी फर्म को दिया गया लाभांश, सेवा निवृत्ति पेंशन व एक मुश्त गैरच्युटी को शामिल नहीं किया जाता है।

आय विधि (Income Method)

- इस पद्धति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना हेतु विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों तथा व्यवसायिक उपक्रमों की शुद्ध मौद्रिक आय का योग प्राप्त किया जाता है।
- इस विधि के अंतर्गत आयकर देने वाले सभी व्यक्तियों की आय को जोड़ा जाता है। ऐसा करने के लिये कभी-कभी देश में विभिन्न आय वर्गों के व्यक्तियों का चुनाव कर लिया जाता है तथा उनकी आय के आधार पर देश की कुल आय का अनुमान लगाया जाता है।
- उत्पादन के चार साधनों की तरह आय भी चार साधनों से प्राप्त होती है- लगान, मजदूरी, ब्याज व लाभ। इन आयों में अप्रत्यक्ष कर व मूल्य ह्रास जोड़ने पर तथा सब्सिडी घटाने पर हमें GDP प्राप्त होती है।

$GDP = \text{मजदूरी} + \text{ब्याज} + \text{लगान} + \text{लाभ} + \text{लाभांश} + \text{अप्रत्यक्ष कर} + \text{मूल्य ह्रास-सब्सिडी}$

व्यय विधि (Expenditure Method)

- व्यय विधि के अनुसार कुल आय या तो उपभोग पर खर्च की जाती है अथवा बचत पर। अतः राष्ट्रीय आय कुल उपभोग तथा कुल बचत का योग होती है। इस विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उपभोक्ताओं की आय तथा उनकी बचत से संबंधित आँकड़ों का उपलब्ध होना आवश्यक होता है। चूँकि इस प्रकार के आँकड़े आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते। इसलिए इस विधि का प्रयोग सामान्यतः कम किया जाता है।

कुल व्ययों को चार वर्गों में विभक्त किया जाता है- उपभोग (C), निवेश (I), सरकारी व्यय (G), निवल निर्यात (X-M)। इन सभी को जोड़ने पर GDP प्राप्त होती है।

$$GDP = C + I + G + (X - M)$$

- भारत में उत्पादन विधि तथा आय विधि का ही प्रयोग राष्ट्रीय आय की गणना हेतु किया जाता है।

निम्नांकित को राष्ट्रीय आय की गणना करते समय सम्मिलित किया जाता है-

- आय-गणना वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुएँ तथा सेवाएँ।
- स्वयं उपभोग के लिए किया गया उत्पादन।
- अप्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का स्टॉक तथा गणना वर्ष में उत्पादित परंतु उस वर्ष का न बिका स्टॉक।
- ब्रोकर्स कमीशन क्योंकि वह एक उत्पादक सेवा है।
- तथा सुरक्षा सेवाएँ।
- द्वारा जनता को प्रदान की गयी निःशुल्क सेवाएँ।
- लाभांश जो कम्पनियों के ही लाभ के भाग होते हैं, राष्ट्रीय आय में सम्मिलित होते हैं।
- भविष्य निधि कोष (Provident Fund) में मालिकों का अंशदान।
- घिसावट या पूंजी का उपभोग, सकल घरेलू उत्पाद में तो शामिल होता है पर राष्ट्रीय आय जो शुद्ध उत्पाद होता है, में शामिल नहीं होता है।
- भारत में विदेशी बैंकों द्वारा अर्जित लाभ जो विदेशी आय है, राष्ट्रीय आय में से घटा दी जाती है जबकि विदेशों में स्थित भारतीय बैंकों की किसी शाखा द्वारा अर्जित लाभ, राष्ट्रीय आय में जोड़ा जायेगा।
- संसद सदस्य को दिया जाने वाला भत्ता।
- विदेशी पयर्ट कों द्वारा भारत में किया गया व्यय राष्ट्रीय आय में सम्मिलित होगा।
- विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ को दिया गया वेतन राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।

प्रति व्यक्ति आय, उत्पाद एवं अन्तिम खपत

सकल घरेलू उत्पाद (GDP)	1,51,760	1,45,680	1,69,625	-4.0	16.4
सकल राष्ट्रीय आय (GNI)	1,50,320	1,44,320	1,68,340	-4.0	16.6
शुद्ध राष्ट्रीय आय (NNI)	1,34,186	1,28,829	1,50,326	-4.0	16.7
सकल राष्ट्रीय डिस्पोजेबल आय (GNDI)	1,54,349	1,48,504	1,72,714	-3.8	16.3
निजी अन्तिम उपभोग व्यय (PFCE)	91,790	85,348	97,563	-7.0	14.3

उत्पादन (Production)					
		2018 - 2019	2019 - 2020	2020 - 2021	2021 - 2022
उत्पादन खाद्यान्न	(मि. टन)	285.2	296.7	308.65 (अनु.)	316.06 (मि. टन)
थोक कीमत सूचकांक (WPI)	(प्रतिशत)	4.3	1.7	-0.1	12.5%
उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI)	(प्रतिशत)	3.4	4.8	6.6	5.2%
चालू खाता शेष	(GDP का %)	-2.1	-0.9	2	-0.2
विदेशी मुद्रा भंडार	(बिलियन US\$)	411.9	475.6	586.1	633.6
सकल राजकोषीय घाटा	(GDP का %)	3.4	3.8	3.5	6.8%
राजस्व घाटा	(GDP का %)	2.3	2.4 (वास्तविक)	1.8 (बजट अनुमान)	5.1%
प्राथमिक घाटा	(GDP का %)	0.3	1.6 (वास्तविक)	0.4 (बजट अनुमान)	6.97%

राष्ट्रीय उत्पाद (National Product)

किसी देश के नागरिकों द्वारा एक निश्चित समयावधि में उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है। राष्ट्रीय उत्पाद की अवधारणा स्टॉक से संबंधित है।

स्टॉक- स्टॉक से अभिप्राय समय के किसी निश्चित बिंदु पर एक चर के मूल्य से है। यह एक स्थैतिक अवधारणा है। स्टॉक का समय काल निश्चित नहीं होता है। इसे समय के किसी निश्चित बिंदु पर मापा जाता है।

उदाहरण- राष्ट्रीय सम्पत्ति, श्रम बल, बैंक जमा।

समावेशी विकास (Inclusive Growth)

परिचय(Introduction)

विकास की वह प्रक्रिया, जिसमें सभी लोग (जैसे कि अमीर और गरीब), सभी भौगोलिक क्षेत्र (जैसे कि अगड़े राज्य और पिछड़े राज्य), शहरी क्षेत्र और ग्रामीण क्षेत्र आदि, और सभी आर्थिक क्षेत्र (जैसे कि कृषि, उद्योग, सेवायें आदि) उचित भागीदारी करते हों तो इसे 'समावेशी विकास' कहते हैं। अर्थात् समावेशी विकास उसे कहते हैं, जिसमें विकास का लाभ हर क्षेत्र व हर वर्ग के व्यक्ति को मिल सके। समावेशी विकास दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य के दृष्टिकोण को अपनाता है। इसके तहत लोगों के लिए आय बढ़ाने के साधन के रूप में प्रत्यक्ष आय पुनर्वितरण पर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर उत्पादक रोजगार पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाता है। गरीबों पर विभिन्न नीतियों के नकारात्मक प्रभावों को कम करने और संवृद्धि हेतु शुरुआती छलांग लगाने के उद्देश्य से सरकार लघु अवधि में आय वितरण योजनाओं का उपयोग कर सकती है। परंतु ऐसी हस्तांतरण योजनाएं लम्बे समय तक लाभदायी नहीं हो सकती हैं।

समावेशी विकास, संवृद्धि की गति और पैटर्न दोनों को दर्शाती है। ये दोनों एक-दूसरे से अतः संबंधित हैं। अतः इन दोनों को एक साथ संबंधित किये जाने की आवश्यकता है। 'समावेशन' एक ऐसी अवधारणा है, जिसमें समता, अवसर की समानता और बाजार एवं रोजगार में संक्रमणकालीन अवधि में संरक्षण शामिल है। अतः समावेशन किसी भी सफल संवृद्धि रणनीति का एक अनिवार्य घटक है। समावेशी विकास न केवल नैतिक रूप से ही जरूरी है बल्कि व्यावहारिक रूप से भी जरूरी है। यदि विकास समावेशी नहीं होता है तो उसका धीरे-धीरे पतन होने लगेगा, इसका कारण यह होता है कि अमीर लोगों की उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति न केवल कम होती है बल्कि संपन्नता के बढ़ने के साथ और कम होने लगती है।

भारत न केवल अपने अतीत की तुलना में, बल्कि अन्य राष्ट्रों के मुकाबले भी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, लेकिन इसी में आत्म संतोष नहीं किया जा सकता। वास्तव में वर्तमान में समावेशी विकास की आवश्यकता है। इसका आशय यह है, भारत अधिक तेजी से विकसित हो सके ताकि विकास के लाभों को अधिक व्यापक तरीके से फैलाया जा सके। अर्थात् विकास का लाभ एक छोटे वर्ग तक सीमित न रहकर समस्त जनसंख्या को व्यापक तौर पर उपलब्ध हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि, देश एवं राज्य के विकास को बढ़ावा देने के लिए ऐसी नीतियां होनी चाहिए, जो विकास की प्रक्रिया में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सके। साथ ही ऐसा तंत्र बनाया जाए, जो ये लाभ उन लोगों को पुनः प्रदान करें, जो बाजार प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते हैं और पिछड़ जाते हैं।

भारत में समावेशी विकास की चुनौतियाँ

भारत समूचे विश्व में चर्चा का विषय बना हुआ है। हमारी अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व दर से होने वाली संवृद्धि तथा समृद्ध लोकतंत्र वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व में लोगों को हमारे विषय में विचार करने को बाध्य कर रही है। परंतु यह अपनी वास्तविक क्षमता तक पहुंचने से अभी काफी दूर है। सभी क्षेत्रों में विकास समरूप नहीं हैं और आबादी का बहुत बड़ा अंश इसकी परिधि से बाहर है। संवृद्धि की उच्च दर को बनाए रखने तथा साथ ही साथ इस संवृद्धि को समावेशी बनाने के लिए विविध सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक कारकों से निपटने की आवश्यकता है।

भारत में समावेशी विकास से संबंधित प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं-

- देश भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, आयु संबंधी सामाजिक बाधाओं तथा पारदर्शिता के अभाव से ग्रसित है।
- बाल श्रम का उन्मूलन, महिला सशक्तिकरण, जातिगत बाधाओं का निवारण तथा कार्य संस्कृति में सुधार विभिन्न सामाजिक चुनौतियां हैं। इनसे निपटने के लिए भारतीय समाज को आत्मविश्लेषण करने की आवश्यकता है।
- समावेशिता की सुरक्षा के लिए राजनीतिक प्रयास, समाज के सभी वर्गों को संवृद्धि में समान हितधारक बनाना तथा सबसे ऊपर सुशासन द्वारा समावेशी विकास को सुनिश्चित करना।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र संवृद्धि, सुनियोजित एवं लक्षित शहरी विकास, अवसरचना में वृद्धि, शिक्षा में सुधार, भविष्य की ऊर्जा आवश्यकताओं को सुनिश्चित करना तथा एक स्वस्थ सार्वजनिक-निजी भागीदारी वस्तुतः तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय विकास के मुद्दे से निपटने के लिए कुछ बुनियादी आवश्यकताएं हैं।
- उच्च स्तरों पर भ्रष्टाचार से निपटना, निर्वाचन प्रणाली की बुराइयों का निराकरण, आंदोलनों की राजनीति को त्यागना तथा राष्ट्रीय हित को संकीर्ण राजनीति से ऊपर रखना देश के नीति निर्माताओं के प्रमुख लक्ष्य होने चाहिए।

11वीं व 12वीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार समावेशी विकास (Inclusive Development According to 11th & 12th Five Year Plan)

11वीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य 'समावेशी विकास' था। इस संदर्भ में समावेशी विकास द्वारा तीन विभाजक रेखाओं को मिटाने के संदर्भ में प्रयास किया गया, ये विभाजक रेखा निम्न हैं-

- अमीर और गरीब के मध्य विभाजक रेखा।
- गांवों और शहरों के मध्य विभाजक रेखा।
- अगड़े और पिछड़े राज्यों के मध्य विभाजक रेखा।

11वीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास को प्राप्त करने की रणनीति

शिक्षा द्वारा सशक्तिकरण

- 'सर्व शिक्षा अभियान' के माध्यम से 6-14 वर्ष की आयु समूह के सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना।
- माध्यमिक शिक्षा के विस्तार पर जोर देना। इस संदर्भ में निजी और सरकारी दोनों प्रयासों की आवश्यकता महसूस की गई।
- सूचना प्रौद्योगिकी के भारत में अच्छे विकास को देखते हुए भारत के सभी विद्यालयों में सूचना प्रौद्योगिकी, बीमा, बैंकिंग, पर्यटन, रिटेल व्यापार आदि व्यवसायों पर जोर डालने वाली शिक्षा दी जानी चाहिए।
- भारत में संबंधित आयु समूह के 8% लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं जबकि अन्य विकासशील राष्ट्रों में यह 20-25% है। अतः उच्च शिक्षा की पहुंच को बढ़ाये जाने की आवश्यकता है, लेकिन इसके साथ गुणवत्ता में भी सुधार होना चाहिए।

श्रेष्ठ स्वास्थ्य के लिए रणनीति

पोषक अनुपूरक आहार की उपलब्धि।

- सभी चिकित्सा केंद्रों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना।
- स्वच्छ पेयजल की पहुंच का विस्तार करना।
- स्वच्छता की स्थिति में सुधार करना।
- गर्भवती महिलाओं की संस्थागत प्रसूति।
- प्राथमिक स्वास्थ्य रख-रखाव प्रणाली में सुधार

ग्रामीण आधारभूत संरचना का निर्माण

इस संदर्भ में भारत निर्माण कार्यक्रम पर जोर देने के लिए कहा गया है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की आधारभूत संरचना का यह एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है, इसमें 6 प्रकार की ग्रामीण आधारभूत संरचना को सम्मिलित किया गया है (सिंचाई, सड़कें, मकान, जलापूर्ति, बिजली, टेलीफोन)।

अन्य उपाय

- गरीबी निवारण की एक व्यापक रणनीति जो गरीब के लिए पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा जाल भी उपलब्ध करवाती हो।
- श्रम रोजगार एवं स्वरोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से अधिकाधिक रोजगार अवसरों का सृजन।

11वीं पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियाँ

- **GDP वृद्धि दर**— 11वीं पंचवर्षीय योजना में GDP की संवृद्धि दर लगभग 8% रही। यह 10वीं पंचवर्षीय योजना के 7.6% से अधिक थी। 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि में 7.9% की संवृद्धि दर, उस अवधि में दो वैश्विक वित्तीय संकट झेलने वाले किसी भी अन्य देश की संवृद्धि दर की तुलना में अधिक थी।
- 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि GDP में 3.7 प्रतिशत की औसत दर से तीव्र संवृद्धि दर्ज की गई। यह 10वीं पंचवर्षीय योजना में 2.4 प्रतिशत थी।
- गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या में 2004-05 से 2009-10 की अवधि में प्रति वर्ष लगभग 1.5% की दर से कमी आई।
- संस्थागत प्रसव के मामले में 2007-08 के मध्य 1.6% बिंदु की उच्चतर वृद्धि दर्ज की गई।
- प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर सकल नामांकन दर 2009-10 में बढ़कर 98.3% हो गई। स्कूल छोड़ने की दर (कक्षा I-VIII) में सुधार देखने को मिला।

12वीं पंचवर्षीय योजना

- 1 अप्रैल, 2012 से 31 मार्च, 2017
- लक्षित विकास दर - 8%

मुख्य उद्देश्य

- तीव्र, अधिक समावेशी व सतत विकास।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के 25 मुख्य निगरानी योग्य लक्ष्य

आर्थिक विकास

- 8% तक वास्तविक जीडीपी विकास दर।
- 4% तक कृषि विकास दर।
- 10% तक विनिर्माण वृद्धि दर।
- 11वीं योजना के दौरान प्राप्त दर से प्रत्येक राज्य को उच्च विकास दर प्राप्त करनी चाहिए।

गरीबी और रोजगार

- 11वीं योजना के अंत में गरीबी दर की तुलना में गरीबी दर 10% तक कम करना।
- गैर-कृषि क्षेत्र में 5 नए काम के अवसर और कौशल प्रमाणन, जिससे 50 मिलियन नए रोजगार का सृजन हो सके।

शिक्षा

- स्कूल की पढ़ाई का औसत वर्ष 7 साल तक बढ़ाना।
- उच्च शिक्षा में प्रत्येक आयु वर्ग के लिए 20 लाख सीटें।
- स्कूल नामांकन में लिंग अंतर और सामाजिक अंतर की समाप्ति।

स्वास्थ्य

- मातृ मृत्यु दर को 212 से 100 तक लाना।
- शिशु मृत्यु दर को 44 से 25 लाना।
- बाल लिंग अनुपात को बढ़ाकर 950 करना।
- कुल प्रजनन दर को 2.4 से कम करके 2.1 तक लाना।
- कुपोषित बच्चों की संख्या को 40% से 23% तक लाना।

अवसंरचना

- सकल सिंचित क्षेत्र को 103 मिलियन हेक्टेयर करना (90 मिलियन हेक्टेयर से)।
- सभी गांवों को बिजली; तकनीकी और वाणिज्यिक हानियाँ (एटी एंड सी) को 20% तक कम करना।
- ऑल वेदर रोड्स के साथ गांवों को जोड़ना।
- पूर्वी और पश्चिमी समर्पित फ्रंट कॉरिडोर को पूरा करना।
- ग्रामीण टेली-घनत्व 70% तक बढ़ाना।
- प्रतिदिन 40 लीटर प्रति व्यक्ति के अनुसार ग्रामीण आबादी के 50% तक को पेयजल; सभी ग्राम पंचायतों के 50% गांवों को निर्मल ग्राम का दर्जा।
- हर साल 1 मिलियन हेक्टेयर तक ग्रीन कवर बढ़ाना।
- पंचवर्षीय अवधि में 30,000 मेगावाट तक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता को बढ़ाना।
- 2020 तक सकल घरेलू उत्पाद की उत्सर्जन तीव्रता 2005 के 20-25% तक कम करना।

सेवा प्रदान करना

- 90% भारतीय घरों में बैंकिंग सेवाएं।
- आधार आधारित 'डायरेक्ट कैश ट्रांसफर स्कीम' के माध्यम से सब्सिडी और कल्याण से संबंधित भुगतान करना।

अतः हम पाते हैं कि 12वीं पंचवर्षीय योजना अधिक समावेशन की ओर केंद्रित थी।

भारतीय समावेशी विकास का मापन तथा बढ़ावा देने के उपाय (Measurement of Inclusive Development of India)

समावेशी विकास की दृष्टि से प्रगति का अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि समावेशिता एक व्यापक अवधारणा है। किन्तु यह भी सच है कि समावेशी विकास से यदि गरीबी के प्रतिशत में कमी होती है, तो साथ ही शिक्षा एवं स्वास्थ्य के स्तर में व्यापक सुधार भी होता है। यदि मजदूरी रोजगार, पानी, बिजली, सड़क, सफाई एवं आवास जैसी सुविधाओं की व्यवस्था में सुधार परिलक्षित हो तो निश्चित ही हम समावेशी विकास का अनुमान लगा सकते हैं हालांकि इसे अभी भी मापना कठिन है। फिर भी समावेशी विकास की अवधारणा को स्पष्ट रूप

देने का एक तरीका राष्ट्र की प्रगति को उसके सबसे गरीब हिस्से की प्रगति के आधार पर मापा जा सकता है। अर्थात् जनसंख्या के निचले 20% हिस्से की प्रति व्यक्ति आय के आधार पर समावेशी विकास की प्रगति को मापा जा सकता है। यदि इस प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, तो यह 'समावेशी विकास' कहलाता है। तकनीकी रूप से निचले 20% हिस्से की प्रति व्यक्ति आय को 'क्विन्टाइल आय' नाम दिया गया है। इसीलिए समावेशी विकास की अवधारणा स्पष्ट रूप से इस तथ्य पर जोर देती है कि भारत को उच्च विकास दर हासिल करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए, परंतु साथ ही हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समाज का सबसे कमजोर गरीब वर्ग इस विकास से लाभान्वित अवश्य हो, परन्तु वर्तमान भारत में गरीबी की जो स्थिति है, वह सही अर्थों में समावेशी विकास और 9% की विकास दर पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न है, क्योंकि 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' (UNDP) द्वारा जारी की गई मानव विकास रिपोर्ट दर्शाती है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में सबसे ज्यादा गरीब रहते हैं।

समावेशी विकास को हम निम्नांकित आधार पर माप सकते हैं:

- **प्रति व्यक्ति आय के आधार पर**— इस माप को आर्थिक समीक्षा 2009-10 में विकसित किया गया तथा आर्थिक समीक्षा 2010-11 में इस पर बल दिया गया। इसके अनुसार, यदि जनसंख्या के निचले पांचवें हिस्से की प्रति व्यक्ति आय को मापा जा सकता है तथा यदि इस हिस्से की
- **मानव विकास सूचकांक माप आधार**— मानव विकास सूचकांक (HDI) आर्थिक विकास का सबसे विश्वसनीय माप माना जाता है। समग्र रूप से व्यक्त एच.डी.आई. इस पर प्रकाश डालता है कि आर्थिक विकास हो रहा है तथा साथ ही लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है अथवा नहीं यदि हम जनसंख्या के निचले पांचवें भाग के संदर्भ में एच.डी.आई. की गणना करें तो इसका बढ़ना यह व्यक्त करेगा कि निचले वर्ग की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है। हम रोजगार अवसर वक्र, जेन्डर डिस्पैरिटी इन्डेक्स, इन्फ्लेशन सेन्सिटिविटी इन्डेक्स के भी आधार पर समावेशी विकास की स्थिति पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- **बहु आयामीय गरीबी सूचकांक (Multi-dimensional Poverty Index-MPI)**— MPI को 2010 में एच.डी.आर. में विकसित किया गया है। MPI को विभिन्न देशों के बीच गरीबी की स्थिति (जो राष्ट्रीय गरीबी रेखा या अंतर्राष्ट्रीय

विकास और समावेशी संवृद्धि (Development & Inclusive Growth)

विकास की अवधारणा गुणात्मक (Qualitative) है, वहीं संवृद्धि परिणामात्मक (Quantitative) होती है। संवृद्धि, अंकगणित के नंबरों के माध्यम से किसी अर्थव्यवस्था में उत्पाद वृद्धि को दर्शाता है जबकि विकास की अवधारणा में उत्पाद वृद्धि से हुए लाभ को समाज के सबसे निचले स्तर तक पहुंचाना होता है। विकास का आशय अर्थव्यवस्था में समान वितरण से भी है।

ट्रिकल डाउन थ्योरी (Trickle Down Theory)

पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि प्रारंभ में वृद्धि में बढ़ोत्तरी होनी चाहिए और तत्पश्चात् विकास 'नीचे रिसने वाले सिद्धांत' (Trickle Down Theory) के तहत होगा। इसका आशय यह है कि वृद्धि में बढ़ोत्तरी का लाभ नीचे छनते हुए समाज के सबसे निचले स्तर तक पहुंचेगा और समान वितरण सुनिश्चित होगा। भारत में 2005 से ऊंची वृद्धि दर प्राप्त होते हुए भी उसका लाभ, 'नीचे रिसने वाला सिद्धांत' के आधार पर समाज के सबसे निचले स्तर तक नहीं पहुंच पाया है और इसलिए इस सिद्धांत की सत्यता पर संदेह उठ खड़ा होता है। इस सिद्धांत के बावजूद अत्यंत गरीबी का स्तर अप्रभावित रहा, बेरोजगारी भी यथावत रही और क्षेत्रीय विषमताएं भी पूर्व की भांति ज्यों की त्यों बनी रहीं (बल्कि और भी ज्यादा परिलक्षित हुई है)। नीचे रिसने वाले सिद्धांत के, भारत के परिप्रेक्ष्य में सफल न होने के कई कारण हैं। सर्वप्रथम, भारतीय अर्थव्यवस्था की एक ढांचागत समस्या यह है कि यहां की आर्थिक निर्भरता अत्यधिक रूप से कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। लगभग 65% जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। सकल मूल्य संवर्धन (GVA) में, कृषि का योगदान मात्र 17.8% है।

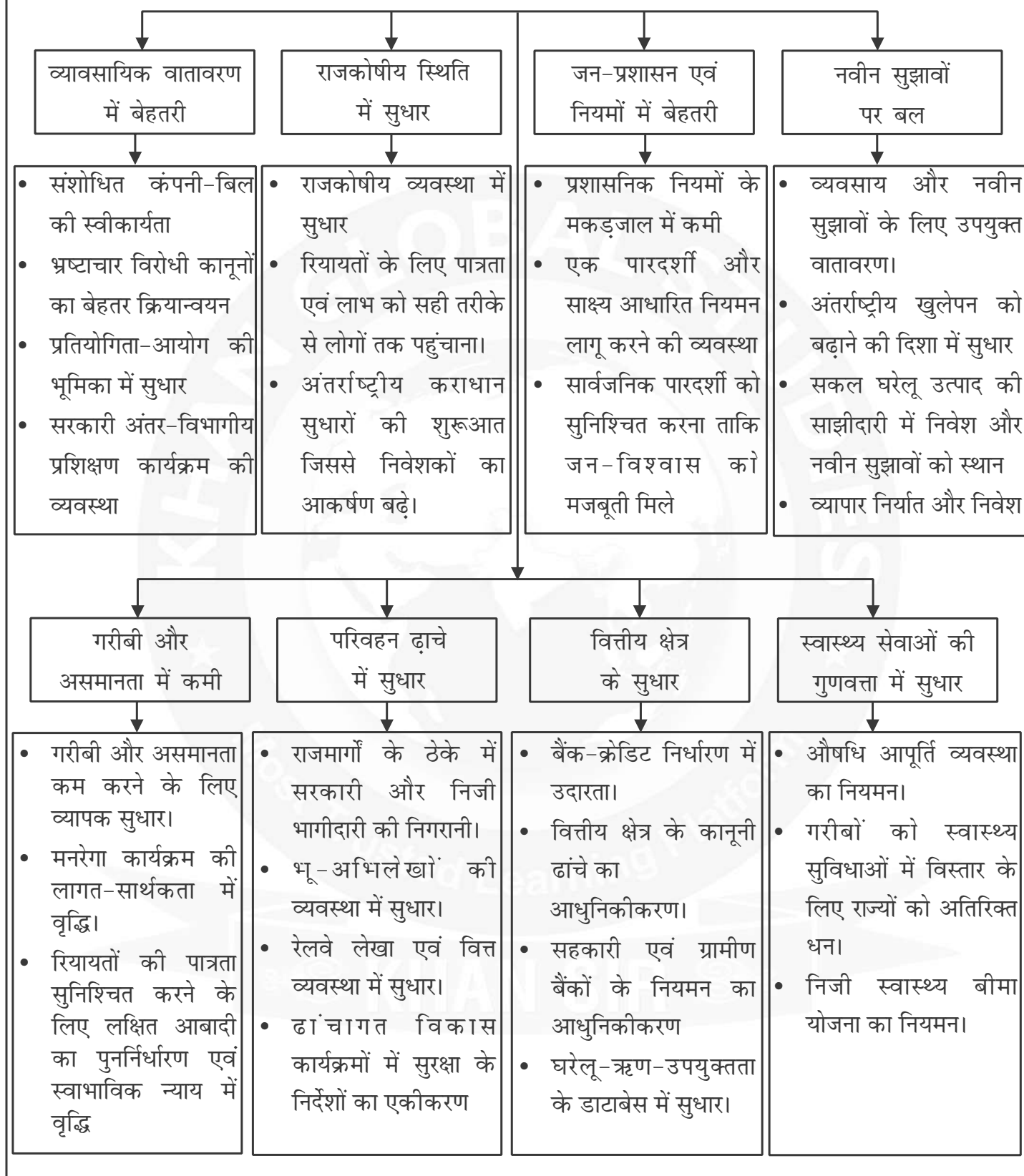
लगभग 54.3% का सबसे बड़ा योगदान प्रदत्त सेवाओं का है। श्रेष्ठ 27.9% अनुपूरक क्षेत्र (Secondary Sector) का है, जिसमें 14% ही औद्योगिक क्षेत्र का है। कृषि जो क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में, सबसे कम योगदान करता है, इसके उलट उस पर जनसंख्या की सबसे ज्यादा निर्भरता है (कृषि) और सर्वाधिक योगदान वाले क्षेत्र (प्रदत्त सेवाएं) पर जनसंख्या की सबसे कम निर्भरता है।

दूसरा कारण भारत की संवृद्धि प्रक्रिया में एक कड़ी गायब है और वह है देश में प्रदत्त सेवाओं का क्षेत्र जो औद्योगिक क्षेत्र से तुलनात्मक रूप से पहले परिपक्व हो गया। आदर्श परिस्थितियों में औद्योगिक क्षेत्र की परिपक्वता पहले आनी चाहिए थी या कम से कम सेवा क्षेत्र के बराबर अवधि में होनी चाहिए थी। यह एक महत्वपूर्ण लक्षण है कि औद्योगिक क्षेत्र एवं कृषि क्षेत्र में एक जुड़ाव होता है। चाहे वह कच्चे माल के जरिए हो या औद्योगिक उत्पादों के माध्यम से हो। साथ ही, रोजगार अवसर भी जोड़ने की कड़ी का काम करते हैं। कुल मिलाकर इनसे अर्थव्यवस्था में दीर्घकालिक वृद्धि होती है।

इस प्रकार हाल के वर्षों में बढ़ी हुई संवृद्धि का लाभ, सेवा क्षेत्र को ज्यादा मिला है और तुलनात्मक रूप से औद्योगिक क्षेत्र को काफी कम और कृषि क्षेत्र को तो बिल्कुल ही नहीं मिला है जहां हमारी अधिकांश जनसंख्या निवास करती है। कुछ हद तक कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता के पीछे कम सरकारी प्रयास भी जिम्मेदार है। जैसे-सरकार गांवों के ईर्द-गिर्द मूलभूत, कारगर, संरचनात्मक ढांचा तैयार कर सकती है और सड़क, रेल मार्ग को आपस में जोड़ सकती है। इसका उद्देश्य होना चाहिए कि अखिल भारतीय (Pan India) सड़क एवं रेल यातायात सुगम हो। इससे एक तो आसानी से हर जगह पहुंचा जा सकेगा और साथ ही श्रमिकों की गतिशीलता भी बढ़ जाएगी।

इतिहास साक्षी है कि जर्मनी, अमेरिका एवं हाल ही में चीन में सड़क यातायात में उन्नति से विकास के द्वार खुले। भारत में इस वास्तविकता की जागृति अभी हाल में ही आयी है और अब सड़क निर्माण को उचित महत्व दिया जा रहा है। इसलिए भारत में कई महत्वपूर्ण परियोजनाओं का क्रियान्वयन हो रहा है, जैसे स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना, (देश के चार महानगरों व मुंबई, कोलकाता, दिल्ली और चेन्नई को जोड़ने के लिए), उत्तर दक्षिण कॉरिडोर (श्रीनगर, कन्याकुमारी) और पूर्व-पश्चिम कॉरिडोर (सिलचर पोरबंदर) आदि।

भारत में समावेशी संवृद्धि के सुझाव



गरीबी रेखा पर व्यक्ति गरीबी को अधिक व्यापक आयाम प्रस्तुत करता है) तथा समावेशित विकास को व्यक्त करने के लिए किया जा सकता है।

- **सामाजिक तथा ग्रामीण क्षेत्र पर होने वाला व्यय**- सामाजिक तथा ग्रामीण क्षेत्र पर सरकार द्वारा किया जाने वाला व्यय समावेशी विकास की दिशा में प्रयास को प्रदर्शित करता है।
- **ग्रामीण क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी में वृद्धि**- एक ऐसी अर्थव्यवस्था, जहां अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करती है वहां इस क्षेत्र में बढ़ती वास्तविक मजदूरी दर में वृद्धि को समावेशन के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है।
- **शिक्षा व स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार**- शिक्षा व स्वास्थ्य दो ऐसे सामाजिक संरचनाएं हैं, जो गरीबी से बाहर निकालने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपायों में से एक माने जाते हैं। अतः इनमें सुधार स्वतः ही गरीबी को कम करने में उत्तरदायी होते हैं।
- समावेशी विकास कोई नयी अवधारणा नहीं है, परंतु इससे यह इंगित होता है कि सरकार विकास को किस दृष्टि से देख रही है। पहले यह विश्वास किया जाता था कि विकास के लिए वृद्धि एक आवश्यक मानक है। समावेशी संवृद्धि के परिवर्तित अभिप्राय से यह भावना प्रकट होती है कि किसी भी प्रकार की वृद्धि से होने वाला लाभ आम जनता तक पहुंचे, इसका आधार बड़ा हो और इस बढ़ोत्तरी की उन्मुखता आम जन (Masses) की ओर हो, न केवल विशिष्ट वर्ग (Classes) की ओर। इस प्रकार समावेशी-विकास में संवृद्धि और विकास दोनों ही तत्त्व समाहित हैं और इनको अलग-अलग न देखकर, वर्तमान सहित भविष्य में विकास के एक रूप में देखना चाहिए। (अर्थात् वर्तमान विकास के साथ-साथ इस बात का भी ख्याल रखना होगा कि भविष्य में विकास बना रहे।)

यहां समावेशिता (Inclusivity) से आशय ऊंची संवृद्धि से प्राप्त लाभ का ज्यादा से ज्यादा न्याय-संगत वितरण (Equitable) से है, परंतु न्याय संगत वितरण एक अर्थव्यवस्था में अंकगणितीय आधार पर समान वितरण नहीं है। यह सिर्फ सैद्धांतिक रूप से संभव है। न्यायसंगत वितरण से आशय 'ईमानदार और न्याययुक्त' वितरण को आम जनता, विशेषकर गरीबों के लिए सुनिश्चित करना है। हम देख चुके हैं कि 'समावेशी संवृद्धि' आम जनता की ओर उन्मुख है, तब यह जानना जरूरी है कि समावेशी संवृद्धि से क्या-क्या मिलना चाहिए? अथवा यह कब कहा जा सकता है कि संवृद्धि अब समावेशी हो गयी है और इसके परिणाम आने शुरू हो गये हैं समावेशी-संवृद्धि से निम्न दशाएं प्राप्त होनी चाहिए।

- प्रारंभिक स्तर (Entry Level) पर आम जन के लिए रोजगार के अवसर, जीवन-यापन की सुविधाएं, बढ़ोत्तरी और उनके कल्याण में वृद्धि। इन सभी के सम्मिलित योगदान से अत्यंत निर्धन वर्गों में कमी आयेगी।
- क्षेत्रीय असंतुलन में कमी।
- कौशल-विकास के अवसर पैदा करना।
- उद्योगों का देश में बेहतर विस्तार।
- कृषि आधारित उद्योगों में बढ़ोत्तरी।
- धीरे-धीरे कृषि क्षेत्र आधारित, आर्थिक आय की अत्यधिक निर्भरता को कम करना और रोजगार संचालित कृषि आधारित जनसंख्या का आशावादी स्थानान्तरण (Positive Migration) सुनिश्चित करना।
- व्यवसाय परक रोजगार में वृद्धि (बढ़ईगरी, कार मैकेनिक, स्कूटर, टी.वी. मोबाइल, बागवानी इत्यादि)।

समावेशी-संवृद्धि की एक और आवश्यकता है कि केंद्र व राज्य सरकारें अपनी सोच-समझ में बदलाव लायें, साथ मिलकर ऐसा 'योग्य बनाने वाला वातावरण' (Enabling Environment) पैदा करें कि उपरोक्त सुविधाएं समाज में उपलब्ध हो सकें। इस प्रकार के वातावरण निर्माण में निम्न आवश्यकताओं का पूरा होना आवश्यक है:

- पूरे देश में रेल-सड़क का जाल बिछाना ताकि हर स्थान के लिए सुगम

यातायात के साधन उपलब्ध हो सकें तथा यात्रियों और माल की ढुलाई तेजी से हो सके।

- जन-सेवाओं की सबके लिए उपलब्धता (जैसे प्राथमिक चिकित्सा सुविधा, शिक्षा-सुलभता), जन उपयोगी सुविधाएं (बिजली, पानी और स्वच्छता), जन-केंद्र (सामाजिक उपयोग वाली सुविधाएं जैसे सामुदायिक केंद्र इत्यादि)।
- कौशल-विकास के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को पुनः स्फूर्तिमान बनाना।
- निजी क्षेत्र द्वारा पूंजी निवेश के लिए उदार नीतिगत परिवर्तन (उदाहरणस्वरूप टाटा कंपनी को नैनो गाड़ी बनाने के लिए गुजरात जाना)।
- कार्यशील जनसंख्या की रोजगार पर सीधे पहुंच।

भारत को भविष्य में समावेशी-संवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए सक्षम बनाने वाले वातावरण का निर्माण पहली आवश्यकता है। बढ़ोत्तरी एवं विकास अथवा समावेशी-संवृद्धि, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हर सरकार का स्वीकृत लक्ष्य रहा है। इस उद्देश्य में आज भी कोई संदेह नहीं है, परंतु इसके लक्ष्य की प्राप्ति के तौर-तरीकों में अंतर परिलक्षित है।

पूर्व की सरकारों ने वृद्धि को बढ़ाने और न्याय-संगत वितरण दोनों की जिम्मेदारी खुद पर ले रखी थी। इस कारण उपलब्ध संसाधन दोनों ही क्षेत्रों में बंट गये और पूरा प्रयास कमजोर पड़ गया। इससे न तो वांछित संवृद्धि प्राप्त हो सकी और न ही न्यायसंगत वितरण निश्चित किया जा सका।

1991 में किये गये आर्थिक सुधारों में महत्वपूर्ण बदलाव यह लाया गया कि निजी क्षेत्र को निवेश और संवृद्धि की बड़ी भूमिका अदा करने का प्रावधान किया गया। सरकार ने अपनी भूमिका कल्याणकारी कार्यक्रमों और सक्षम बनाने वाले वातावरण के निर्माण तक सीमित कर दी, ताकि अर्थव्यवस्था में भविष्य में समावेशी-संवृद्धि के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। ऐसा इस अवधारणा पर भी आधारित है कि निजी क्षेत्र आधारित संवृद्धि में बड़ी भागीदारी से ज्यादा-से-ज्यादा टैक्स प्राप्त होगा और सरकार का सामाजिक क्षेत्र में दखल का दायरा बढ़ेगा और इस प्रकार लाभ को आवश्यक जगहों पर पुनर्वितरित किया जा सकेगा।

समावेशी-संवृद्धि कोई नयी विचारधारा नहीं है, बल्कि पहले कही जाने वाली वृद्धि, विकास और न्याय-संगत वितरण का सम्मिलित स्वरूप है, जिसे आज समावेशी-संवृद्धि की संज्ञा दी गयी है। यह विशिष्ट रूप तथा अवधारणा स्वयं में अकेली है, जो भारत ने अपने लिए अपनायी है। भविष्य में चुनौती मात्र उच्चतर संवृद्धि दर प्राप्त करने की नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करने की है कि कैसे समावेशिता का दायरा बढ़ाकर उसका आधार और भी बड़ा बनाया जाए जो आमजन के लिए लाभप्रद हो। समावेशी-संवृद्धि 11वीं पंचवर्षीय योजना में एक चुनौती स्वरूप रखी गयी थी और इस अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए 12वीं पंचवर्षीय योजना में इसे और भी बड़ी चुनौती के रूप में स्वीकार किया गया है।

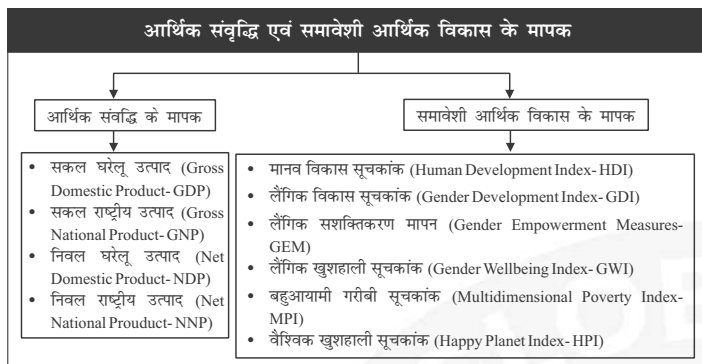
समावेशी विकास संबंधी सूचकांक (Inclusive Development Related Index)

मानव विकास सूचकांक

- मानव विकास सूचकांक की संकल्पना के विकास में पाकिस्तानी अर्थशास्त्री महबूब उल हक तथा भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
- मानव विकास सूचकांक का मान 0 से 1 के मध्य होता है। जिस देश के सूचकांक का मान जितना अधिक होता है, वह देश मानव विकास सूचकांक की श्रेणी में उतना ही अधिक ऊपर होता है।
- वर्ष 1990 में संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme) द्वारा मानव विकास सूचकांक (Human

Development Index - HDI) को प्रस्तुत किया गया।

- मानव विकास सूचकांक की गणना में निम्नलिखित तीन आयामों (Dimensions) तथा सूचकों (Indicators) का प्रयोग किया जाता है।



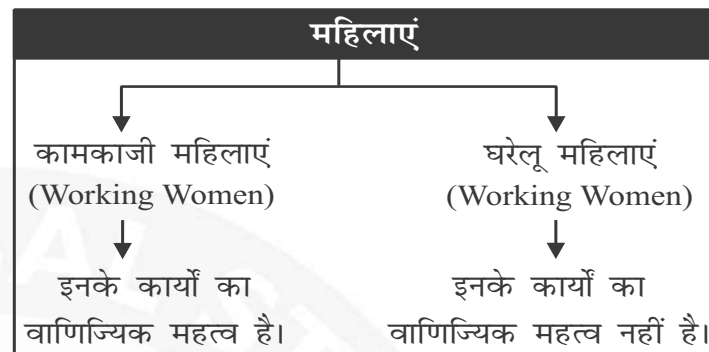
मानव विकास सूचकांक के आयाम की गणना (Dimensions and Calculation of HDI)		
आयाम (Dimensions)	सूचक (Indicators)	गणना (Calculation)
दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन (Long and Healthy Life) (1) अर्थात् जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy at Birth)	जीवन प्रत्याशा सूचकांक (Life Expectancy Index-LEI)	$LEI = \frac{LE - 20}{85 - 20}$ LEI = 1, जब जीवन प्रत्याशा (LE) 85 होगी तथा LEI = 0, जब जीवन प्रत्याशा (LE) 20 होगी
(2) ज्ञान (Knowledge)	शिक्षा सूचकांक (Education Index-EI) 1. स्कूल जाने के औसत वर्षों का सूचकांक (Mean Years of Schooling Index-MYSI) $MYSI = \frac{MYS}{18}$ 1. स्कूल के प्रत्याशित वर्षों का सूचकांक (Expected Years of Schooling Index) $MYSI = \frac{EYS}{18}$	$EI = \frac{MYSI + EYSI}{2}$
प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) (3) अर्थात् PPP के आधार पर प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI Per Capital @ PPP) आधार पर	आय सूचकांक (Income Index-II)	$II = \frac{\ln(GNI_{FC}) - \ln(100)}{\ln(75,000) - \ln(100)}$ जब GNI_{FC} (GNI Per Capital) \$ 7500 होगा तब आय सूचकांक का मान 1 होगा तथा जब GNI_{FC} \$ 100 होगा तब आय सूचकांक का मान शून्य (Zero)
नोट- मानव विकास सूचकांक (HDI) = $\sqrt[3]{LEI \times EI \times II}$		

- लिंग आधारित असमानता सूचकांक की रचना के लिए सर्वप्रथम जन्म के समय महिला तथा पुरुष की अलग-अलग जीवन प्रत्याशा को ज्ञात किया जाता है। महिला की जीवन प्रत्याशा को आधार रूप में लिया जाता है, जिससे यह पता चल सकेगा कि वे दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रही हैं या नहीं। पुरुष तथा महिला के ज्ञान अथवा मानसिक विकास की जानकारी के लिए अलग-अलग शिक्षा सूचकांक ज्ञात किया जाता है। किसी देश में लैंगिक असमानता के विद्यमान न होने पर मानव विकास सूचकांक तथा लिंग आधारित विजयता सूचकांक दोनों ही समान होंगे।

लैंगिक खुशहाली सूचकांक (Gender Wellbeing Index: GWI)

- इसकी शुरुआत, UNDP के द्वारा वर्ष 2010 में की गई थी। इस सूचकांक से महिलाओं की सामाजिक एवं पारिवारिक खुशहाली का पता चलता है।

- इस सूचकांक का उद्देश्य घरेलू कार्य करने वाली महिलाओं को कामकाजी महिलाओं में बदलना है ताकि महिलाओं के घरेलू कार्यों को वाणिज्यिक दर्जा प्राप्त हो सके।
- इस सूचकांक से महिलाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा जिससे उनका सम्मान बढ़ेगा तथा उनकी पहचान भी बनेगी।



जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index-PQLI)

- जीवन के भौतिक गुणवत्ता सूचकांक के प्रतिपादन का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका की एक निजी संस्था 'ओवरसीज विकास परिषद्' (Overseas Development Council) को दिया जाता है। इस सूचकांक में विभिन्न देशों को उनकी उपलब्धियों के आधार पर 1 से 10 तक सूचकांक प्रदान किए जाते हैं।
- यह सूचकांक निम्नलिखित चारों पर निर्भर करता है:
 - साक्षरता
 - जन्म के समय जीवन प्रत्याशा
 - शिशु मृत्यु दर

$$PQLI = \left[\frac{1}{3} (LEI + BLI + IMI) \right]$$

LEI (Life Expectancy Index) = जीवन प्रत्याशा सूचकांक

BLI (Basic Literacy Index) = मौलिक साक्षरता सूचकांक

IMI (Infant Mortality Index) = शिशु मृत्यु सूचकांक

- मौलिक साक्षरता सूचकांक से आशय किसी देश की कुल जनसंख्या में साक्षर लोगों के प्रतिशत से है।
- इस सूचकांक के अनुसार, जीवन प्रत्याशा अधिक होनी चाहिए, शिशु मृत्यु दर कम होनी चाहिए तथा साक्षर लोगों का प्रतिशत अधिक होना चाहिए। यह विकास का सूचक है क्योंकि इसके लिए उच्च आय तथा उच्च सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

सामाजिक प्रगति सूचकांक (Social Progress Index)

यह सूचकांक सोशल प्रोग्रेस इम्पेरेटिव द्वारा जारी किया जाता है। यह सूचकांक तीन प्रमुख आयामों में बांटा गया है:

मूलभूत आवश्यकता

- पोषण तथा मूलभूत चिकित्सा सुविधा।

मानव विकास सूचकांक के आयाम की गणना (Dimensions and Calculation of HDI)

आयाम (Dimensions)	सूचक (Indicators)	गणना (Calculation)
दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन (Long and Healthy Life) (1) अर्थात् जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy at Birth)	जीवन प्रत्याशा सूचकांक (Life Expectancy Index-LEI)	$LEI = \frac{LE - 20}{85 - 20}$ LEI = 1, जब जीवन प्रत्याशा (LE) 85 होगी तथा LE t = 0, जब जीवन प्रत्याशा (LE) 20 होगी
(2) ज्ञान (Knowledge)	शिक्षा सूचकांक (Education Index-EI) 1. स्कूल जाने के औसत वर्षों का सूचकांक (Mean Years of Schooling Index-MYSI) $MYSI = \frac{MYS}{18}$ 1. स्कूल के प्रत्याशि वर्षों का सूचकांक (Expected Years of Schooling Index) $MYSI = \frac{EYS}{18}$	$EI = \frac{MYSI + EYSI}{2}$
प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) (3) अर्थात् PP के आधार पर प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI Per Capital @ PPP) आधार पर	आय सूचकांक (Income Index-II)	$II = \frac{\ln(GNI_{FC}) - \ln(100)}{\ln(75,000) - \ln(100)}$ जब GNI_{FC} (GNI Per Capital) \$ 7500 होगा तब आय सूचकांक का मान 1 होगा तथा जब GNI_{pc} \$ 100 होगा तब आय सूचकांक का मान शून्य (Zero)
नोट- मानव विकास सूचकांक (HDI)– $\sqrt[3]{LEI \times EI \times II}$		

- **दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन-** जन्म के समय जीवन प्रत्याशा।
- **ज्ञान-** स्कूल के औसत वर्ष तथा स्कूल के प्रत्याशित वर्ष।
- **जीवन स्तर-** प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय।

- यू.एन.डी.पी. ऊपर बताए गए तीन मानकों के आधार पर अर्थव्यवस्थाओं को एक की स्केल (यानी 0.000-1.000) के बीच उनके प्रदर्शन के आधार पर स्थान देता है। इन उपलब्धियों के आधार पर देशों को मुख्य तौर

पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, जिसके लिए सूचकांक में अंकों की श्रेणियां बनी होती हैं।

- **उच्च मानव विकास वाले देश**– सूचकांक में 0.800 से 1.000 अंक।
- **दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन**– जन्म के समय जीवन प्रत्याशा।
- **ज्ञान**– स्कूल के औसत वर्ज तथा स्कूल के प्रत्याशित वर्ज।
- **जीवन स्तर**– प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय।
- यू.एन.डी.पी. ऊपर बताए गए तीन मानकों के आधार पर अर्थव्यवस्थाओं को एक की स्केल (यानी 0.000-1.000) के बीच उनके प्रदर्शन के आधार पर स्थान देता है। इन उपलब्धियों के आधार पर देशों को मुख्य तौर पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, जिसके लिए सूचकांक में अंकों की श्रेणियां बनी होती हैं।
- **उच्च मानव विकास वाले देश**– सूचकांक में 0.800 से 1.000 अंक।
- **मध्यम मानव विकास वाले देश**– सूचकांक में 0.500 से 0.799 अंक।
- **निम्न मानव विकास वाले देश**– सूचकांक में 0.000 से 0.499 अंक।
- वर्ज 2010 से पहले UNDP द्वारा GDPFC (GDP at Factor Cost) का प्रयोग किया जाता था। परंतु, वर्ष 2010 में UNDP द्वारा यह कहा गया कि, भूमण्डलीकरण (Globalisation) के कारण कई राष्ट्रों का जीवन स्तर विदेशी साधन आय से प्रभावित हो रहा है। इसलिए विदेशी साधन आय का ध्यान रखना आवश्यक है। इसी संदर्भ में वर्ष 2010 से UNDP द्वारा GNI का प्रयोग प्रारंभ कर दिया गया।
- UNDP द्वारा शामिल किए जाने वाले सभी राष्ट्रों की GNI को अमेरिकन डॉलर (US\$) में बदला जाता है।
- UNDP द्वारा जारी मानव विकास रिपोर्ट (HDR) 2021-22 के अनुसार, वर्ष 2021 के सूचकांक में भारत 132वें स्थान पर है।

असमानता समायोजित मानव विकास सूचकांक (Inequality Adjusted Index - HDI)

- इसे वर्ष 2010 में प्रारंभ किया गया था। यह माना गया कि असमानता जीवन की गुणवत्ता (Inequality of life) पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। ऐसी अवस्था में HDI में उनका समायोजन आवश्यक है।
- विषमता समायोजित HDI निकालने के लिए HDI में शामिल किए गए प्रत्येक मानक को लेकर संबंधित राष्ट्रों में असमानता का पता लगाया जाता है एवं उनके आधार पर HDI के मूल्य को नीचे लाया जाता है। उदाहरणतः भारत का वर्ष 2019 का HDI मूल्य (जोकि वर्ष 2020 में जारी किया गया) 0.645 है। यदि इसमें असमानता को समायोजित किया जाए तो IHDI का मूल्य 0.537 आया। इस प्रकार असमानता के कारण भारत का HDI मूल्य 16.8% नीचे चला जाता है।

लैंगिक (जेंडर) विषमता की माप (Measures of Gender Inequality)

लैंगिक विषमता सूचकांक (GII), लैंगिक विषमता मानव विकास में सबसे प्रमुख अवरोधक रही है और अब भी यह एक समस्या के रूप में बनी हुई है। बीजिंग में हुए चौथे महिला सम्मेलन के पहले 1995 में HDR 1995 में दो सूचकांक (i) लैंगिक विकास सूचकांक (Gender Related Development Index- GDI) तथा (ii) लैंगिक सशक्तिकरण माप (Gender Empowerment Measure- GEM) जारी किए गए। लैंगिक विकास सूचकांक (GDI), मानव विकास सूचकांक (HDI) आयामों में लिंग के कारण विषमता को ध्यान में रखता है। जहां मानव विकास सूचकांक तथा लैंगिक विकास सूचकांक औसत उपलब्धि को इस प्रकार समायोजित करता है जिससे यह पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच विषमता को प्रदर्शित कर सके वहीं लैंगिक सशक्तिकरण माप राजनैतिक भागीदारी (महिलाओं को प्राप्त पार्लियामेंट सीट के आधार पर) आर्थिक

संसाधनों पर अधिकार (भागीदारी आय अंतराल के आधार पर) पर बल देता है। वर्ष 2020 में जारी रिपोर्ट में GII में भारत 123वें स्थान पर है जबकि पिछले साल ये 122वें स्थान पर था।

लैंगिक विकास सूचकांक (GDI: Gender Development Index)

- GDI वर्ज 1995 में UNDP द्वारा विकसित किया गया था। लैंगिक दृष्टि से यह HDI से बेहतर सूचकांक है, जो स्त्रियों एवं पुरुषों के मध्य मानव विकास की भिन्नता के स्तर का पता लगाना संभव बनाता है अर्थात् यह मानव विकास की सटीक पहचान करवाता है। इसीलिए इसे समान विकसित सूचकांक (Equality Development Index) भी कहा जाता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$\text{लैंगिक विकास सूचकांक} = \frac{\text{महिलाओं हेतु मानव विकास सूचकांक}}{\text{पुरुषों हेतु मानव विकास सूचकांक}}$$

- भारत का वर्ष 2019 के लिए GDI मूल्य .820 है।
- **लैंगिक सशक्तिकरण मापन (Gender Empowerment Measures-GEM)** GEM भी वर्ष 1995 में UNDP द्वारा विकसित किया गया था। इसमें तीन प्रकार के अधिकारों को शामिल किया गया है:

राजनैतिक अधिकार (Political Rights)

- मत देने का अधिकार (Right to vote)
- चुनाव लड़ने का अधिकार (Right To Election)
- नकारने का अधिकार (Right To Reject)
- चुने हुए प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार (Right to Recall)

आर्थिक अधिकार (Economic Rights)

- कानून एवं योजनाओं के लागू होने में महिलाओं की भागीदारी।
- रोजगार, स्वरोजगार आदि में महिलाओं का हिस्सा।

सामाजिक अधिकार (Social Rights)

- सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों से लाभ प्राप्त करने का अधिकार।
- सामाजिक सम्मान का अधिकार।

प्रमुख बिन्दु

- वैश्विक स्तर पर लैंगिक अंतराल को 68.0% तक कम किया गया है, दूसरे शब्दों में आज भी दुनिया में औसतन 32.0% लैंगिक अंतराल व्याप्त है। 89 देशों में लैंगिक अंतराल को कम करने की दिशा में सुधारात्मक और दिशात्मक प्रवृत्ति देखी गई है। रिपोर्ट में शामिल चार उप-सूचकांकों में सबसे अधिक लैंगिक विषमता राजनीतिक सशक्तिकरण के मामले में है, जो वर्तमान में 77.1% है। इसके बाद दूसरी सबसे अधिक लैंगिक असमानता वाला क्षेत्र आर्थिक भागीदारी और अवसर है जो वर्तमान में 41.9% है।
- शिक्षा प्राप्ति तथा स्वास्थ्य एवं उत्तरजीविता में यह अंतराल क्रमशः 4.4% और 4.6% है। उल्लेखनीय है कि केवल आर्थिक भागीदारी और अवसर के

क्षेत्र में यह अंतराल पिछले वर्ष की तुलना में थोड़ा कम हुआ है।

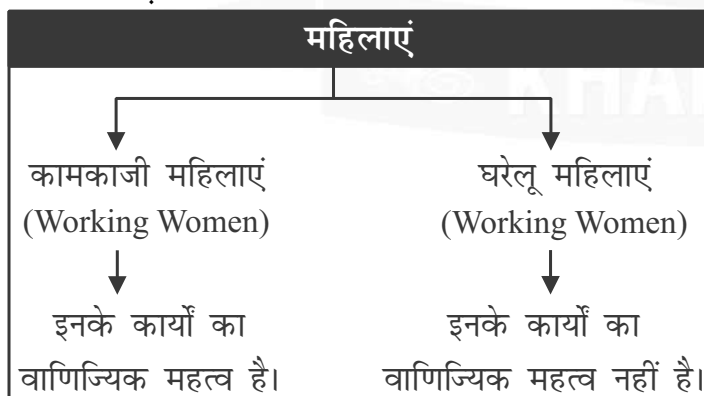
- यद्यपि आर्थिक अवसर के क्षेत्र में अंतराल इस वर्ष थोड़ा कम हुआ है, लेकिन विशेष रूप से श्रम बल के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में प्रगति धीमी रही है।
- राजनीतिक सशक्तीकरण के संदर्भ में पिछले दशक में हासिल की गई प्रगति में भी धीरे-धीरे कमी आनी शुरू हो गई है।
- उल्लेखनीय है कि पश्चिमी देशों में लैंगिक समानता में थोड़ी कमी आई है, जबकि अन्य स्थानों पर इस क्षेत्र में औसत प्रगति जारी है।
- शिक्षा विशिष्ट लिंग अंतर अगले 14 वर्षों के भीतर कम होकर समानता के मार्ग पर अग्रसर है।
- स्वास्थ्य के क्षेत्र में लैंगिक अंतराल में भले ही 2006 के बाद थोड़ी वृद्धि हुई हो, लेकिन वैश्विक रूप से यह लगभग समाप्त हो गया है मूल्यांकन में शामिल देशों के तीसरे हिस्से में यह पूरी तरह से समाप्त हो चुका है।

लिंग आधारित असमानता सूचकांक (Gender Based Inequality Index)

- लिंग आधारित असमानता सूचकांक महिला एवं पुरुष वर्ग के अलग-अलग, शिक्षा सूचकांक, जीवन प्रत्याशा सूचकांक तथा आय सूचकांक का औसत होता है।
- लिंग आधारित असमानता सूचकांक = $1/3$ (जीवन प्रत्याशा सूचकांक + शिक्षा सूचकांक + आय सूचकांक)
- लिंग आधारित असमानता सूचकांक की रचना के लिए सर्वप्रथम जन्म के समय महिला तथा पुरुष की अलग-अलग जीवन प्रत्याशा को ज्ञात किया जाता है। महिला की जीवन प्रत्याशा को आधार रूप में लिया जाता है, जिससे यह पता चल सकेगा कि वे दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रही हैं या नहीं। पुरुष तथा महिला के ज्ञान अथवा मानसिक विकास की जानकारी के लिए अलग-अलग शिक्षा सूचकांक ज्ञात किया जाता है। किसी देश में लैंगिक असमानता के विद्यमान न होने पर मानव विकास सूचकांक तथा लिंग आधारित विषमता सूचकांक दोनों ही समान होंगे।

लैंगिक खुशहाली सूचकांक (Gender Wellbeing Index: GWI)

- इसकी शुरुआत, UNDP के द्वारा वर्ष 2010 में की गई थी। इस सूचकांक से महिलाओं की सामाजिक एवं पारिवारिक खुशहाली का पता चलता है।
- इस सूचकांक का उद्देश्य घरेलू कार्य करने वाली महिलाओं को कामकाजी महिलाओं में बदलना है ताकि महिलाओं के घरेलू कार्यों को वाणिज्यिक दर्जा प्राप्त हो सके।
- इस सूचकांक से महिलाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा जिससे उनका सम्मान बढ़ेगा तथा उनकी पहचान भी बनेगी।



जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index-PQLI)

- जीवन के भौतिक गुणवत्ता सूचकांक के प्रतिपादन का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका की एक निजी संस्था 'ओवरसीज विकास परिषद्' (Overseas Development Council) को दिया जाता है। इस सूचकांक में विभिन्न देशों को उनकी उपलब्धियों के आधार पर 1 से 10 तक सूचकांक प्रदान किए जाते हैं।
- यह सूचकांक निम्नलिखित चरों पर निर्भर करता है:
 1. साक्षरता
 2. जन्म के समय जीवन प्रत्याशा
 3. शिशु मृत्यु दर

$$PQLI = \left[\frac{1}{3} (LEI + BLI + IMI) \right]$$

LEI (Life Expectancy Index) =

जीवन प्रत्याशा सूचकांक

BLI (Basic Literacy Index) =

मौलिक साक्षरता सूचकांक

IMI (Infant Mortality Index) =

शिशु मृत्यु सूचकांक

- मौलिक साक्षरता सूचकांक से आशय किसी देश की कुल जनसंख्या में साक्षर लोगों के प्रतिशत से है।
- इस सूचकांक के अनुसार, जीवन प्रत्याशा अधिक होनी चाहिए, शिशु मृत्युदर कम होनी चाहिए तथा साक्षर लोगों का प्रतिशत अधिक होना चाहिए। यह विकास का सूचक है क्योंकि इसके लिए उच्च आय तथा उच्च सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

सामाजिक प्रगति सूचकांक (Social Progress Index)

यह सूचकांक सोशल प्रोग्रेस इम्पेरेटिव द्वारा जारी किया जाता है। यह सूचकांक तीन प्रमुख आयामों में बांटा गया है:

मूलभूत आवश्यकता

- पोषण तथा मूलभूत चिकित्सा सुविधा।
- पेयजल तथा स्वच्छता।
- आश्रय (Shelter)।
- व्यक्तिगत सुरक्षा।

जीवन निर्वाह के आधार स्तंभ

- मूलभूत ज्ञान तक पहुंच।
- सूचना तथा संवहन तक पहुंच।
- स्वास्थ्य।
- पर्यावरणीय गुणवत्ता।

अवसर

- व्यक्तिगत अधिकार।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता।
- सहिष्णुता तथा समावेशन।
- उच्च शिक्षा तक पहुंच।

सामाजिक प्रगति से आशय नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति के अलावा समाज में रह रहे लोगों की जीवन गुणवत्ता को पोषित रखने से है। जिससे

नागरिकों के जीवन संभाव्य क्षमता में वृद्धि लाई जा सके।

ज्ञातव्य है कि विश्व बैंक, OECD तथा यूरोपियन आयोग आर्थिक विकास की माप के लिए SPI को अपनाने पर बल दे रहे हैं। HDI तथा सकल राष्ट्रीय खुशहाली सूचकांक आर्थिक विकास के मापक के रूप में प्रयोग में लाए जाते हैं लेकिन इनमें जी.डी.पी. प्रयोग में लाया जाता है। SPI (Social Progress Index) की धारणा अमर्त्य सेन, डग्लाज नार्थ तथा जोसेफ स्टिलज के लेखों पर आधारित है।

समावेशी विकास सूचकांक (Inclusive Development Index)

2017 में आर्थिक प्रगति के भविष्य को आकार देने के लिए वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम सिस्टम इनिशिएटिव द्वारा शुरू किया गया एक वार्षिक आर्थिक सूचकांक है। यह तीन मानकों के आधार पर देशों को रैंक प्रदान करता है इसके तीन मानक हैं।

- संवृद्धि व विकास।
- समावेशन।
- अंतर पीढ़ीगत साम्यता तथा धारणीयता।

समावेशी विकास सूचकांक, विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum: WEF) एक प्रोजेक्ट है, जिसका उद्देश्य नेतृत्व का विश्लेषण, रणनीतिक वार्ता, ठोस सहयोग तथा कॉर्पोरेट कार्यवाही के माध्यम से सामाजिक प्रभाव में तेजी लाना है। इसके उद्देश्य से मजबूत सार्वजनिक निजी सहयोग के माध्यम से सतत और समावेशी आर्थिक प्रगति के बारे में देशों में जागरूकता फैलाना व उस दिशा में प्रभावी रूप से कार्य करना है।

वर्ष 2020 को विश्व आर्थिक मंच द्वारा जारी किए गए समावेशी विकास सूचकांक-2020 में 74 अर्थव्यवस्थाओं में भारत की रैंकिंग 62वीं (गत वर्ष 60वां स्थान प्राप्त) है।

वैश्विक खुशहाली सूचकांक (Global Happiness Index)

किसी देश की खुशहाली मापने का यह पैमाना वर्ष 2012 से प्रारंभ हुआ था, जब संयुक्त राष्ट्र की वैश्विक पहल सतत विकास समाधान नेटवर्क ने पहली रिपोर्ट दी थी। इस सूचकांक में विभिन्न देशों की स्थिति जांचने के लिए छह कारकों पर ध्यान दिया जाता है।

1. प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (Per Capita GDP)
2. स्वस्थ जीवनकाल (Healthy Life Expectancy)
3. सामाजिक अवलंबन (Social Support)
4. जीवन में विकल्प चुनने की स्वतंत्रता (Freedom to make life choice)
5. भ्रष्टाचार बोध (Perceptions of Corruption)
6. उदारता (Generosity)

उपर्युक्त कारकों में से सामाजिक सुरक्षा, आय और स्वस्थ जीवनकाल इन तीनों कारकों में दिखने वाला अंतर ही किसी देश की रैंकिंग तय करने का मुख्य आधार बनता है। वर्ष 2022 में जारी रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक खुशहाली सूचकांक में भारत 146 देशों में 136वें स्थान पर है, जबकि फिनलैंड पाँचवीं बार सर्वाधिक प्रसन्न देशों की सूची में प्रथम स्थान पर है। अफगानिस्तान विश्व का सबसे दुःखी देश है।

समावेशी विकास को लेकर सरकार की नीतियां

- 'समावेशी विकास' को पूर्ववर्ती योजना आयोग के 11वें और 12वें योजना दस्तावेजों में भारी जोर मिला। 2001 के बाद से लगभग सभी सरकारी नीतियों और योजनाओं में समावेशी विकास पर जोर देना शुरू कर दिया।
- नियत समय में, सरकार ने विकास से बहिष्कृत विषय को शामिल करने की दिशा में अपनी नीतियों को विकसित करना शुरू कर दिया। सरकार की नीति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। अल्पावधि और दीर्घकालिक नीति।

समावेशी विकास हेतु नीतिगत पहल

अल्प अवधि
की नीतियां

लंबी अवधि
की नीतियां

अल्पावधि नीति

- अल्पावधि समावेशी विकास नीतियों का उद्देश्य समाज के सबसे वंचित और हाशिये पर रहने वाले लोगों को न्यूनतम और आवश्यक वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध कराना है। इनमें खाद्य सुरक्षा योजना (राष्ट्रीय सुरक्षा मिशन, स्कूलों में मध्याह्न भोजन योजना) हेल्थ केयर (राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन और संबंधित योजनाएं जैसे कि आयुष्मान भारत, आशा और एएनएम आदि। स्वच्छता (स्वच्छ भारत अभियान) आवास योजनाएं (PMGAY); पेयजल (राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम); शिक्षा (सर्व शिक्षा अभियान, आरएमएसए आदि) योजनाएं शामिल हैं।

लंबी अवधि की नीति

- अल्पकालिक नीतियों के साथ समस्या यह है कि वे सब्सिडी आधारित योजनाएं हैं और राष्ट्रीय खजाने पर अत्यधिक भार देती हैं, तब भी वे लोगों को आत्मनिर्भर नहीं बनाती हैं, इसलिए दीर्घकालीन योजनाएं अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं जो समावेशी विकास का अधिक स्थायी तरीका है। इस प्रकार, सरकारी योजना का यह हिस्सा (दीर्घकालिक नीतियां) मांग आधारित रोजगार प्रदान करने, स्वरोजगार के लिए उपकरण और कौशल प्रदान करने, कौशल विकास और नवाचार मिशनों को बढ़ावा देने और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि पर केंद्रित है। हाल के वर्षों में समावेशी विकास के लिए कौशल विकास एक महत्वपूर्ण मंत्र रहा है।

समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए सरकार विभिन्न कार्यक्रमों/योजनाओं को लागू कर रही है

अतः हम पाते हैं कि वर्तमान में समावेशी विकास हासिल करना सरकार की मुख्य प्राथमिकताओं में से एक रहा है। समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए, सरकार बेहतर रोजगार के अवसर पैदा करने, सामाजिक बुनियादी ढांचे को मजबूत बनाने और आबादी के सभी वर्गों को कवर करने के लिए पानी, बिजली, सड़क, स्वच्छता और आवास जैसी बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों/योजनाओं को लागू कर रही है। 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम योजना' (MGNREGA), 'प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम' (PMEGP), 'प्रधानमंत्री रोजगार योजना, दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना' (डीडीयूजीकेवाई) और 'दीनदयाल अंत्योदय योजना' - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (डी.डी.ए.वाई.-एन.यू.एल.एम.) देश के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में सरकार द्वारा लागू की जा रही है, जिसका उद्देश्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा करना है।

केंद्रीय बजट 2021-22 में आजीविका, कृषि और संबद्ध गतिविधियों और ग्रामीण बुनियादी ढांचे के निर्माण पर अधिक खर्च करके ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतम आजीविका का अवसर प्रदान करने के लिए विभिन्न उपायों की घोषणा की गई है। रणनीतियों में कृषि आधारित उद्योगों और मध्यम, लघु तथा सूक्ष्म उद्यमों (एमएसएमई) को प्रोत्साहित करके श्रम प्रधान क्षेत्रों को बढ़ावा देना शामिल है। श्रम गहन कपड़ा क्षेत्र के विकास पर भी ध्यान दिया गया है।

सामाजिक सुरक्षा के लिए, आयुष्मान भारत के तहत 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा योजना', केंद्रीय बजट 2018-19 में प्रस्तावित की गई थी, जिसमें 10 करोड़ गरीब और कमजोर परिवारों (लगभग 50 करोड़ लाभार्थियों) को कवर करने की उम्मीद है, जो उनके परिवार को 5 लाख रुपये तक का कवरेज प्रदान करेगा। सरकार के एजेंडे में असमानता कम करना भी महत्वपूर्ण है, भारत सरकार द्वारा गरीबी व असमानता को समाप्त करने के लिए 'प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना' (दुर्घटना बीमा), 'अटल पेंशन योजना' (असंगठित क्षेत्र), 'प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना' (जीवन बीमा) के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा जाल को विस्तृत करने का प्रयास किया जा रहा है। मुद्रा बैंक के माध्यम से उद्यमशीलता को संस्थागत समर्थन के साथ-साथ भारत के ग्रामीण इलाकों में उद्यमियों को माइक्रो फाइनेंस प्रदान करने के लिए और SC/ST उद्यमियों के लिए एक नेशनल हब बनाया गया है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को बैंक खाते तक पहुंच सुनिश्चित कराने के लिए प्रधानमंत्री जन धन योजना को लागू किया गया है।

भारत में समावेशी और स्थायी विकास के लिए सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य व सामाजिक सुरक्षा जैसे सामाजिक बुनियादी ढांचे को अत्यधिक प्राथमिकता दी जा रही है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) द्वारा एकत्रित घरेलू खपत व्यय का डेटा आर्थिक असमानता को पकड़ने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले प्रमुख उपायों में से एक है। घरेलू उपभोक्ता व्यय पर उपलब्ध नवीनतम एनएसएसओ के आंकड़ों (2011-12) के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में गिनी गुणांक (जनसंख्या के विभिन्न व्यय वर्गों के बीच असमानता को मापने) 2004-05 और 2011-12 लगभग एक समान रहा है (क्रमशः 0.27 व 0.281) शहरी क्षेत्रों में गिनी गुणांक 2004-05 में मामूली रूप से 0.35 से बढ़कर 2011-12 में 0.37 हो गया है।

क्या भारत में विकास समावेशी नहीं है।

भारत में विकास की प्रक्रिया समावेशी नहीं है। यह उत्तरोत्तर अपवर्जी होती जा रही है। इस संदर्भ में निम्न तत्वों व बातों पर विचार किया जा सकता है। Lucas Chancel और Thomas Piketty द्वारा जारी किए गए एक रिसर्च पेपर (From British Raj to Billionaire Raj) में यह बताया गया कि 1920 में आयकर लागू होने के बाद वर्तमान में भारत में आय की विषमताएं अपनी चरम सीमा पर हैं। इन्होंने बताया भारत में 2020 में विषमता, 1922 के मुकाबले कई ज्यादा हैं। इनके अनुसार 1980 के बाद भारत के शीर्ष 1% जनसंख्या की आय में तेजी से वृद्धि हुई है, जिसने असमानता को बढ़ाया है। उनके अनुसार भारत की ऊपर की 1% जनसंख्या भारत की कुल राष्ट्रीय आय में 22% भूमिका रखती है।

Global Wealth Report, 2020 में Credit Suisse Research Institute द्वारा भारत के संदर्भ में संपत्तियों की विशेषता को लेकर निम्न महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया गया।

- भारत की ऊपर की 1% जनसंख्या के पास भारत की कुल सम्पत्ति का मात्र 60% है।
- भारत की नीचे की 50% जनसंख्या के पास भारत की कुल सम्पत्ति का मात्र 4.1% है।
- ऑक्सफैम रिपोर्ट वर्ष 2020-21 के अनुसार भारत में शीर्ष 1 प्रतिशत जनसंख्या के पास अब 73% संपत्ति है, जबकि 670 मिलियन नागरिकों, जिसमें देश के सबसे गरीब शामिल हैं, ने अपनी संपत्ति में केवल 1% की वृद्धि दिखाई।

यह ध्यान देने योग्य है कि गिनी गुणांक आय की विषमताओं को मापने का एक महत्वपूर्ण सूचक होता है। जिसका मूल्य 0-1 के बीच में होता है। लेकिन कभी-कभी इसे 100 से गुणा कर लिया जाता है।

यदि इसका मूल्य बढ़ा हुआ है तो आय की बढ़ी हुई विषमताओं का अनुमान लगाया जा सकता है। जनवरी, 2016 में NSSO द्वारा घरेलू वस्तु और

उत्तरदायित्व के विषय पर आयोजित किए गए 70वें चक्र के कुछ आंकड़ें जारी किए गए इसमें कुछ निम्न प्रकार है-

- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों के AVA (Average Value of Assets) का स्तर रुपया 10.07 लाख का पाया जाता है। जबकि भारत के शहरी क्षेत्रों के परिवारों के AVA का स्तर रुपया 22-85 लाख तक पाया गया।
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ऊपर की 1% परिवारों के AVA का स्तर रुपया 57 लाख का पाया गया, जबकि नीचे के 10% परिवारों के AVA का स्तर रुपया 25,071 का पाया गया।
- भारत के शहरी क्षेत्रों के ऊपर की 10% परिवारों के AVA का स्तर रुपया 146 लाख का पाया गया जब कि नीचे के 10% परिवारों का AVA का स्तर मात्र रुपया 291 का पाया गया।

उपर्युक्त तथ्यों व बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में समावेशी विकास नहीं है जरूरी है कि एक उपर्युक्त रणनीति के माध्यम से समावेशी विकास किया जाना चाहिए।

विकास से संबंधित अन्य बहसें

यू.एन.डी.पी. की टीम ने यद्यपि इस बात पर सहमति बना ली है कि विकास के घटक क्या होंगे लेकिन दुनिया भर में शिक्षाविद् और विशेषज्ञ इस पर बहस कर रहे हैं। 1995 तक दुनिया भर में अर्थव्यवस्थाओं ने यू.एन.डी.पी. द्वारा प्रतिपादित मानव विकास के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था। मूल रूप से विश्व बैंक ने 1990 के दशक से ही सदस्य देशों में विकासपरक प्रयासों की गुणवत्ता को बढ़ाने और उसके अनुरूप सस्ते विकासपरक कोष आवंटित करने के लिए यू.एन.डी.पी. द्वारा तैयार 'मानव विकास रिपोर्ट' का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। स्वाभाविक रूप से सदस्य देशों ने अपनी नीतियों में आय, शिक्षा और जीवन प्रत्याशा जैसे मानकों पर जोर देना शुरू कर दिया और इस तरह से इसे दुनिया भर में स्वीकार्यता मिल गई।

काफी सालों तक विशेषज्ञ और विद्वान विकास को परिभाषित करने के अपने-अपने प्रारूप लेकर आते रहे। वे विकास को परिभाषित करने वाले कारकों पर असमान रूप से वजन देते रहे। इसके साथ ही उन्होंने कई बार पूरी तरह से अलग मानकों का चयन किया जो उनके अनुसार विकास को ज्यादा स्पष्ट तरीके से परिभाषित करते थे, क्योंकि विकास, गुणवत्ता मूल्यों (Values) को तय करने और नियामक परिकल्पना का मामला है इसलिए इस प्रस्तुति की भी गुंजाइश थी। इनमें से अधिकतर प्रयास वैकल्पिक विकास सूचकांक के लिए सही नहीं थे, लेकिन वे वास्तव में बौद्धिक व्यंग्यों के जरिये मानव विकास सूचकांक के अपूर्ण होने को दर्शाने की कोशिश कर रहे थे। ऐसा ही एक प्रयास 1999 में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स (गैर-आधिकारिक प्रयास) के अर्थशास्त्रियों और विद्वानों ने किया, जिन्होंने अपने अध्ययन में बांग्लादेश को दुनिया में सर्वाधिक विकसित राष्ट्र तथा अमेरिका, नॉर्वे, स्वीडन आदि देशों को सूचकांक में सबसे निचले पायदान पर दिखाया।

वास्तव में ऐसे सूचकांक के जरिये ये काफी हद तक संभव है। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं, कि मानसिक शांति विकास और मानव जीवन की बेहतरी के लिए बेहद जरूरी तत्व है, जो काफी हद तक इस तथ्य पर निर्भर करता है कि हर दिन हम कितना सो पाते हैं। घरों में चोरी या लूटपाट की आशंका पर निर्भर करता है कि हम कितने निश्चित होकर सो सकते हैं, जो दूसरे शब्दों में इस बात पर निर्भर करता है कि इनके न होने को लेकर हम कितने आश्वस्त हैं। इसका मतलब हम अच्छी नींद के बारे में जानने की कोशिश घरों में चोरी और लूटपाट की घटनाओं के आंकड़ों से कर सकते हैं। छोटी-मोटी चोरियों के बारे में आमतौर पर पुलिस में रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई जाती, ऐसे में सर्वेक्षण करने वाले ऐसे मामले में मान लीजिए देश में एक साल में तालों की बिक्री के आंकड़ों से इसे

जानने की कोशिश करते हैं। ऐसे में उन देशों में लोगों को सबसे ज्यादा बेफिक्र सोने वाला माना जाना चाहिए, जहां लोगों के पास चोरी होने या लूटपाट होने का जोखिम जैसी कोई बात न हो, यानी उन्हें सबसे बेहतर मानसिक शांति उपलब्ध हो इसलिए वो सबसे विकसित देश होगा।

वास्तव में 'मानव विकास सूचकांक' को मापने का एक ऐसा संभव आधार माना जा सकता है, जिसे लेकर अधिकतर जानकारों के बीच सहमति हो। लेकिन जिन तय पैमानों पर यह सूचकांक देशों के विकास का आकलन करता है वह वास्तव में कई दूसरे अहम कारकों को छोड़ देता है जो किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास और जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं। विशेषज्ञों के मुताबिक, ऐसे दूसरे कारक, जो हमारे जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं, निम्नलिखित हो सकते हैं-

- अर्थव्यवस्था के सांस्कृतिक पहलू।
- पर्यावरण की शुद्धता और सौंदर्यबोध को लेकर नजरिया।
- अर्थव्यवस्था के नियम और प्रशासन से संबंधित पहलू।
- खुशहाली और प्रतिष्ठा को लेकर लोगों के विचार।
- मानव जीवन को लेकर नैतिक परिदृश्य।

विकास का आत्मविश्लेषण (Introspecting of Development)

विकास के असली अर्थ को लेकर भ्रम तब शुरू हुआ जब विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अस्तित्व में आए। विशेषज्ञ विकासशील देशों में विकास प्रक्रिया एवं विकसित देशों के प्रदर्शन की रिपोर्टों का सर्वेक्षण कर रहे थे। एच.डी. आई. में जब पहले 20 स्थान पाने के बाद पश्चिमी दुनिया को विकसित देश घोषित कर दिया गया तब सामाजिक वैज्ञानिकों और अर्थव्यवस्थाओं जीवन की दशा का मूल्यांकन शुरू किया। ऐसे अधिकतर अध्ययनों में पाया गया कि पश्चिमी देशों में जीवन में सब कुछ था, सिवाय खुशी के अपराध, भ्रष्टाचार, लूटपाट, फिरौती, मादक पदार्थों की तस्करी, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, नरसंहार, नैतिक पतन, यौन विकृति आदि सभी प्रकार के तथाकथित विकार विकसित देशों में बढ़ रहे थे। इसका मतलब था कि विकास उन्हें मानसिक शांति, खुशहाली और अच्छे हालात में रहने का अनुभव देने में विफल रहा। विद्वानों ने दुनियाभर में विकास के लिए किए गए प्रयासों पर ही प्रश्न उठाने शुरू कर दिए। उनमें से अधिकतर ने विकास को फिर से परिभाषित करने पर बल दिया जो मनुष्य को खुशियां दे सके।

विकसित दुनिया में विकास के कारण खुशी क्यों नहीं आई? इस सवाल का जवाब किसी एक तथ्य में नहीं छिपा है बल्कि ये मानव जीवन के कई पहलुओं को छूता है। पहला जब कभी भी अर्थशास्त्री प्रगति की बात करते हैं तो उनका आशय मानव जीवन की संपूर्ण खुशी से होता है।

सामाजिक वैज्ञानिक हालांकि 'खुशी' के पर्यायवाची के तौर पर प्रगति, वृद्धि, विकास, संपन्नता और कल्याण का इस्तेमाल करते हैं। खुशी एक मानक (Normative) धारणा के साथ ही एक मनोदशा (State of mind) है, जो समय एवं स्थान के अनुसार भिन्न हो सकती है।

दूसरा, जिस अवधि में विकास को परिभाषित किया गया, ये माना जाता है कि कुछ निर्धारित भौतिक संसाधनों की आपूर्ति से इंसानी जिंदगी को बेहतर बनाया जा सकता है। इन संसाधनों को इस तरह से निर्दिष्ट किया गया जो बेहतर आय का स्तर, पोषण का उचित स्तर, स्वास्थ्य सुविधाएं, साक्षरता और शिक्षा आदि। खुशी विकास से कहीं ज्यादा व्यापक अवधारणा है। वो तथाकथित 'विकास' जिसे हासिल करने के लिए दुनिया पिछले कई दशकों से कड़ी मेहनत कर रही है वो इंसानों को सिर्फ भौतिक खुशी देने में ही सक्षम है। खुशी का एक गैर-भौतिक पहलू भी है। इसका आशय है कि जब तक दुनिया अपने विकास के परिदृश्य (यानी भौतिक खुशी) को और पुष्ट करने में लगी रहेगी तब तक उसे खुशी का गैर-भौतिक हिस्सा हासिल नहीं हो सकता। हमारे जीवन का गैर-भौतिक हिस्सा, मूल्यों, धर्म, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा है, जैसे- विकास या

मानव विकास को भौतिक संदर्भों में परिभाषित किया गया है, ये हमें भौतिक खुशी ही प्रदान कर सकता है जो विकसित दुनिया में देखी जा सकती है। विकास की आंशिक परिभाषा के कारण विकसित राष्ट्र विकास हासिल कर पाए लेकिन खुशहाली नहीं। खुशी के गैर-भौतिक हिस्से के लिए हमें स्वाभाविक रूप से विकास की अवधारणा को आज नहीं तो कल नए सिरे से परिभाषित करना होगा। किसी तरह एक छोटा राष्ट्र विकास को अपने तरीके से परिभाषित कर पाया, जिसमें जिंदगी के भौतिक और गैर-भौतिक दोनों पहलू मौजूद थे और उसने इसे 'ग्रॉस नेशनल हैप्पीनेस' (जी.एन.एच) कहा, ये राष्ट्र था- भूटान।

सामाजिक मानदंड, संस्कृति और विकास (Social Norms, Culture and Development)

आर्थिक विकास न सिर्फ राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति और कराधान को सही करने पर निर्भर करता है, बल्कि इसका आधार इंसान के मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, संस्कृति और नैतिक मानदंडों में भी होता है। अर्थशास्त्र के पेशे में इसका थोड़ा विरोध हुआ क्योंकि इसका अर्थ एक तरह से शास्त्रों को आस-पास रखने का आधार देना होता। वर्ष 2015 की विश्व विकास रिपोर्ट (डब्ल्यूडीआर) विकास के व्यवहारपरक और सामाजिक आधारों पर केंद्रित थी और उसे अच्छी स्वीकृति भी मिली।

सरकारी दस्तावेज (सामान्यतः रूखे, स्पष्ट) अक्सर विकास और आर्थिक क्षमता को बढ़ाने में सामाजिक मानदंडों और संस्कृति का कोई उल्लेख नहीं करते। हालांकि अब ऐसी रचनाएं बढ़ती जा रही हैं, जो बताती हैं कि सामाजिक मानदंड और सांस्कृतिक परंपराएं आर्थिक क्षमता और विकास के महत्वपूर्ण अंग हैं। आज इसे दर्शाने वाले देश में व्यापक शोध और लैबोरेट्री एक्सपेरिमेंट मौजूद हैं। अक्सर कहा जाता है कि, किसी देश का विकास इसके संसाधनों, मानव शक्ति और आर्थिक नीतियों, उदाहरण के लिए राजकोषीय और मौद्रिक नीति की दिशा पर निर्भर करता है लेकिन इसके साथ ही सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड भी हैं, जो समाज में व्याप्त हैं। ऐसे समाज जो निजी शराफत और विश्वास से उत्पन्न होते हैं, उन्हें यह स्वाभाविक लाभ होता है कि किसी तीसरे पक्ष को अनुबंध (Contract) नहीं करना पड़ता। बाहर वालों के लिए यह जानकारी विश्वसनीय है, जो व्यापार और कारोबार करने के लिए काफी होती है। विकास के इन 'सामाजिक' कामों को आर्थिक नीतियों पर रचनाओं में पर्याप्त पहचान क्यों नहीं मिलती, इसकी एक वजह यह है कि अर्थशास्त्र के लिए मददगार यह सामाजिक गुण कैसे हासिल किए जाते हैं। इसे पूरी तरह समझा नहीं जा सकता है। सौभाग्य से एक नया विषय व्यवहारपरक अर्थशास्त्र हमें परंपराओं और स्वभाव के निर्माण पर कुछ ज्ञान देता है।

- उदाहरण के लिए यह मानी हुई बात है कि, जिन भवनों और कार्यस्थलों का रख-रखाव ज्यादा साफ सुथरा व सुंदर किया जाता है, वहां लोग ज्यादातर ईमानदार और भ्रष्ट आचरण से बचने वाले होते हैं। यह लगभग इसी तरह है कि हमारा मानसिक झुकाव हो कि हम एक अच्छे वातावरण को अपने भ्रष्ट आचरण से बर्बाद न करें।
- न्यूयॉर्क शहर में दीवारों से ग्रेफिटी (भित्ति चित्र) हटाकर और शहर की सफाई करके वहां अन्य चीजों के अलावा भारी संख्या में होने वाले अपराधों पर भी नियंत्रण पाया गया। न्यूयॉर्क पुलिस विभाग ने गुंडागर्दी रोकने और सार्वजनिक स्थलों को विकृत (Scar) करने वाले भित्तिलेखन (Graffiti) हटाने का फ़ैसला लिया। शहर के सौंदर्यबोध (Aesthetic) के द्वारा ज्यादा सुंदर बनाने से संभावित अपराधियों को कम अपराध करने को प्रेरित किया जा सका।
- इसका आम उदाहरण मेट्रो में सफर करने वाले दिल्ली वालों के व्यवहार में दिख सकता है। व्यापक रूप से यह देखा गया है कि लोग दिल्ली की साफ-सुथरी मेट्रो में यात्रा के दौरान बेहतर बर्ताव करते हैं (कुछ का कहना है कि वे अपने बुरे बर्ताव को वापस जमीन तक आने के लिए टाल देते हैं)।

इस तरह यह समाजशास्त्र के प्रभावशाली टूटी खिड़की (Broken Window) सिद्धांत के अनुरूप ही है। इसके अनुसार अगर हम छोटे स्तर के असामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए छोटे-छोटे कदम उठाते हैं तो इससे स्वाभाविक रूप से बड़े अपराधों और भ्रष्टाचार के कृत्यों पर एक निरोधी असर होता है। इसके अलावा नागरिकों के कुछ सामूहिक गुणों जैसे कि ईमानदारी, विश्वसनीयता की असली पहचान और जागरूकता समूचे समाज को इन गुणों को अपनाने के काबिल बनाती है और सर्वव्यापी मुफ्त के फायदे उठाने की समस्या से निजात दिलाती है।

अर्थशास्त्र में इस तरह की रचनाएं बढ़ रही हैं जिनके अनुसार समाज-अनुकूल व्यवहार, (जिसमें परोपकारिता और विश्वसनीयता शामिल हैं), इंसानों में जन्मजात होता है और अर्थव्यवस्था को प्रभावी ढंग से चलाए रखने के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में काम करता है। दूसरे शब्दों में, इंसानों में दूसरे लोगों के लिए निजी फायदे से ऊपर उठने की स्वाभाविक क्षमता होती है जो सामाजिक समरसता व विकास के मनोवैज्ञानिक पहलू को सुदृढ़ बनाता है। यह विशेषता भले ही इंसान में क्रमिक विकास से ही हो लेकिन आज इसकी मौजूदगी को हाल के अध्ययनों में लैबोरेट्री टेस्ट के जरिए दर्शाया गया है।

पर्यावरणीय नैतिकता (Environmental Ethics)

- पर्यावरणीय नैतिकता, व्यावहारिक नीतिशास्त्र की एक शाखा है इसका तात्पर्य, मानवीय मूल्यों तथा नैतिक सिद्धांतों के आधार मनुष्य एवं उसके पर्यावरण के मध्य संबंधों की ऐसी व्याख्या है, जिसमें पर्यावरणीय नियम एवं सिद्धांत (Environmental Rules and Theory) भी शामिल होते हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति के स्व कर्तव्य का बोध होता है।
- मनुष्य को अगर सतत् विकास (Sustainable Development) के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो मनुष्य के लिए पर्यावरण की रक्षा एक नैतिक जिम्मेदारी बनती है और यहीं से पर्यावरणीय नैतिकता (Environmental Ethics) की शुरुआत होती है जो पर्यावरणीय संरक्षण (Environmental Protection) पर जाकर खत्म होती है।
- इसी को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'हरित सकल घरेलू उत्पाद' (Green GDP), 'हरित अर्थव्यवस्था' (Green Economy) जैसी अवधारणाओं का विकास किया गया है।

मूल्य और अर्थशास्त्र (Values and Economics)

मनोविज्ञान और विकासपरक जीव विज्ञान में एक शोध से दर्शाया गया है कि नैतिकता, परोपकार और मूल्य मानी जाने वाली अन्य बातें इंसानी दिमाग का जन्मजात हिस्सा होती हैं, फिर भी जिस परिवेश में एक व्यक्ति रहता है, वह उनका पोषण कर सकती है या कुचल सकती है। हालांकि इन इंसानी और नैतिक गुणों की पहचान का आर्थिक विकास पर भारी असर पड़ सकता था, लेकिन इसका अर्थशास्त्र में देरी से प्रवेश हुआ। इसलिए इस पर रचनाएं नई और छोटी हैं। दरअसल हालिया शोध दिखाते हैं कि समाज में कुछ 'अच्छे' लोग होने से व्यवहार का स्तर ऊपर उठ सकता है जिससे हम कुल मिलाकर एक बेहतर समाज बना सकते हैं। इसके भी प्रमाण हैं कि सामाजिक मानदंड और आदतें जो पहली नजर में किसी समाज में अंदर तक सीमाएं बनाती हैं, अल्पकाल में ही बदल सकती है। इस तर्क से तो किसी देश के लिए सामाजिक मानदंडों को विकसित और पोषित किया जा सकता है जो अधिक सक्रिय अर्थव्यवस्था को सक्षम करें।

एक देश की आर्थिक प्रगति की बात करते हुए सारा ध्यान, (प्रशंसा और आलोचना दोनों) सामान्यतः सरकार पर केंद्रित रहता है। हालांकि यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि वह, कुछ नागरिक समाज (Civil society), फर्मों, किसानों और

आम नागरिकों पर भी निर्भर होती है। सामाजिक मानदंड और सामूहिक विश्वास जो इन पक्षों के व्यवहार को आकार देते हैं, किसी देश के प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ईमानदारी, समयबद्धता, वायदे पूरे करने की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार के प्रति नजरिया ऐसी विशेषताएं हैं जो सामाजिक विश्वास और मानदंड से बनती हैं और व्यवहार के तरीके आदत बन सकते हैं। इसके अलावा भारत जैसे एक लोकतंत्र में सरकार क्या कर सकती है, यह काफी हद तक इस पर निर्भर करता है कि आम लोग क्या सोचते हैं और किस पर यकीन करते हैं। चुनावी राजनीति का अर्थ यही है। पहले इस पर ज्यादा ध्यान क्यों नहीं गया, इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि पारंपरिक अर्थशास्त्र के बारे में इतना ज्यादा लिखा गया था कि जैसे जीवन के ये गैर अर्थशास्त्री पहलू महत्वहीन हैं। लेकिन अब हम जानते हैं कि एक बाजार आधारित अर्थव्यवस्था नहीं चल सकती अगर लोग पूरी तरह स्व-हित की सोच से ही काम करें। जहां निजी-हित आर्थिक विकास का एक मुख्य कारक है, यह भी महत्वपूर्ण है कि ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता उस सीमेंट का काम करते हैं जो समाज को बांधता है। एक समय था जब अर्थशास्त्री इन सामाजिक मानदंडों, प्राथमिकताओं और परंपराओं को अपरिवर्तनीय मानकर व्यवहार करते थे। अगर ऐसा था तो उनके ऊपर विश्लेषण करने का कोई खास फायदा नहीं है। लेकिन हम जानते हैं कि लोगों में यह गुण बदले जा सकते हैं। ईमानदारी और शराफत को पोषित किया जा सकता है और भ्रष्टाचार से विमुखता को मजबूत किया जा सकता है।

अगर किसी देश में ऐसे गुण अपर्याप्त हैं या नहीं हैं तो यह संभव है कि वह देश स्थिर (Stagnate) हो जाएगा और अराजक गरीबी के जाल में फंसा रहेगा। उदाहरण के लिए उन अनुबंधों (Contracts) को लीजिए जो बाजार को विकसित होने और आर्थिक जिंदगी का आधार तैयार करते हैं। अगर किसी देश में अनुबंध की व्यवस्था इतनी कमजोर होगी कि अगर कोई बैंक मकान खरीदने के लिए किसी व्यक्ति को 20 साल का ऋण देता है, जिससे लौटाए न जाने की बहुत ज्यादा आशंका है तो इसका असर यह नहीं पड़ेगा कि उस देश में बैंक भारी घाटे में जाएंगे। बल्कि इसका असर यह होगा कि बैंक ऋण नहीं देंगे और मकान का बाजार बहुत अल्पविकसित रहेगा और मकानों की कुल संख्या बहुत कम रहेगी। जटिल और बड़े अनुबंध लागू करने, विशेषकर जिन्हें लंबे समय तक सुरक्षा दी गई हो, की जिम्मेदारी राज्य की है। राज्य कानून और व्यवस्था उपलब्ध करवाता है ताकि लोग अनुबंध कर सकें। आर्थिक जीवन रोजमर्रा के अनुबंधों से भरा होता है (उदाहरण के लिए, आप मुझे अपनी टैक्सी में यात्रा करने देते हैं और उसके अंत में आपको भुगतान करता हूँ, दूसरा आप मेरा घर अगले दो दिन तक पेंट करते हैं और मैं उसके बाद आपको पैसे देता हूँ)। रोजमर्रा की इन स्थितियों में राज्य और अदालतों को लाना बहुत बोझिल होगा। यहां मुख्य जमानती लोगों की व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता होनी चाहिए। जिन समाजों ने सफलतापूर्वक इन गुणों को विकसित कर लिया है उन्होंने अच्छा प्रदर्शन किया है, जो समाज इन विशेषताओं में पीछे रह गए उनकी आर्थिक प्रगति भी कमजोर रही है।

इसका सही तरीका पता नहीं है कि इन मूल्यों को समाज में कैसे शामिल किया जाए। लेकिन उम्मीद की जा सकती है कि इनके महत्व के बारे में लिखते रहने से बदलाव की प्रेरणा मिलेगी, जैसे ही आम लोगों को यह अहसास होगा कि आर्थिक प्रगति के लिए ये सामाजिक गुण उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने कि वह नीतियां जो सीधे अर्थव्यवस्था से संबंधित हैं, जैसे- स्टॉक मार्केट का चलना या बाजार में प्रतियोगिता के नियम तय करना इत्यादि। इसके अलावा, मौलिक साक्षरता और बेहतर शिक्षा भी मददगार होगी, क्योंकि फिर लोग खुद ही, अपने स्तर पर विचार कर सकते हैं और निष्कर्ष निकाल सकते हैं। साक्षरता का और फायदा है जब इसका परिणाम यह होता है कि सामान्य जन ऐसी नीतियों की मांग करते हैं, जो वास्तव में बेहतर होती हैं, न कि मात्र ऐसी नीतियां जो सिर्फ सतह पर

बेहतर दिखती हैं। इससे भारत जैसे लोकतांत्रिक समाज में राजनेता बेहतर नीतियां चुनना शुरू करेंगे। अंततः राजनेता और नीति-निर्माता अगर ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता के गुणों के आदर्श बनें तो गाड़ी चल पड़ेगी। नीति-निर्माण में इंसानी जीवन के व्यवहारपरक पहलुओं को शामिल करना लोगों के कल्याण में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकता है।

इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे

आयुष्मान भारत डिजिटल विधेयक, 2021

- आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन, सितम्बर, 2021 को लांच किया गया। इसे नागरिकों को डिजिटल हेल्थ आईडी प्रदान करने के लिए किया गया है।
- इस कार्यक्रम का उद्देश्य, स्वास्थ्य देखभाल पेशेवर रजिस्ट्री बनाना भी है। यह स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे और चिकित्सा पेशेवरों के लिए आसान इलेक्ट्रॉनिक पहुँच की अनुमति देता है। यह दवाओं के पारम्परिक और आधुनिक प्रणाली दोनों के क्षेत्र में सभी स्वास्थ्य विशेषज्ञों के बारे में जानकारी रखने वाले एक व्यापक भंडार के रूप में कार्य करती है।
- इस मिशन से, मरीजों को अपने मेडिकल रिकॉर्ड की बेहतर पहुँच प्रदान करता है। यह उपचार की समय पर डिलीवरी सुनिश्चित करता है।
- यह मरीजों के ई-फार्मसी और टेली परामर्श जैसी स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान करता है। मेडिकल रिकॉर्ड जैसे डिस्चार्ज डायग्नोस्टिक रिपोर्ट को सुरक्षित रूप से स्टोर करने की अनुमति देता है।
- मिशन के माध्यम से नागरिकों के पास सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य देखभाल, दोनों तक पहुँचने का विकल्प है।

अंकटाड डिजिटल इकोनॉमी रिपोर्ट, 2021

- हाल ही में, व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अंकटाड) द्वारा अंकटाड डिजिटल अर्थव्यवस्था रिपोर्ट, 2021 जारी किया गया है।
- रिपोर्ट में बताया गया है कि, अंकटाड ने फिलीपींस को उन पाँच देशों में रखा, जो सीमा-पार डेटा के मुक्त प्रवाह की अनुमति देता है। डिजिटल अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए डेटा के मुक्त प्रवाह की आवश्यकता है।
- सीमा पार डेटा के मुक्त प्रवाह की अनुमति देने वाले पाँच देशों में शामिल हैं- कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, मेक्सिको, सिंगापुर और संयुक्त राज्य अमेरिका, अब फिलीपींस को भी इसमें शामिल कर लिया गया है, इस प्रकार अब कुल 6 देश हो गये। ये देश डेटा प्रवाह के लिये 'लाइट-टच अप्रोच' का उपयोग करते हैं।
- अंकटाड ने सिफारिश की है कि, वैश्विक समुदाय को सीमा पार, डिजिटल डेटा के मुक्त प्रवाह को सक्षम बनाना चाहिए। इससे दुनिया भर में डेटा साझा करने की सुविधा मिलेगी तथा वैश्विक डिजिटल सार्वजनिक वस्तुओं का विकास होगा।

- भारत, चीन, इंडोनेशिया, नाइजीरिया, पाकिस्तान, वियतनाम आदि देशों द्वारा सीमा पार डेटा प्रवाह के लिए 'प्रतिबध्नात्मक' या 'संरक्षित' दृष्टिकोण का पालन किया जाता है।

आईएफएससीए द्वारा सतत् वित्त पर विशेष समिति की स्थापना

हाल ही में, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सेवा केंद्र प्राधिकरण ने सतत् वित्त हब के विकास की दिशा में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया है।

- इस विशेषज्ञ समिति की अध्यक्षता 'पर्यावरण : वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय' के पूर्व सचिव सी.के. मिश्रा कर रहे हैं। इस समिति में कुल 10 सदस्य हैं, जो एक सतत् वित्तीय केंद्र विकसित करने तरीकों की सिफारिश करेंगे।
- भारत सरकार ने भारत में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सेवा केंद्रों को विकसित और विनियमित करने के लिए वर्ष 2020 में आईएफएससीए की स्थापना की है।
- इस समिति में स्थायी वित्त क्षेत्र के नेता शामिल हैं, जिनमें अंतर्राष्ट्रीय एजेंसिया, फंड, शिक्षा, मानक निर्धारक निकाय शामिल हैं।
- 'गुजरात इंटरनेशनल फाइनेंस टेक-सिटी' गाँधीनगर में स्थित है। यह भारत का पहला अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सेवा केंद्र है। गिफ्ट सिटी का मुख्य उद्देश्य बिजली, गैस, पानी डिस्ट्रिक्ट क्लिंग, टेलीकॉम, सड़क और ब्रॉडबैंड जैसी उच्च गुणवत्ता वाली भौतिक अवसंरचना प्रदान करना है ताकि इसमें वित्त और तकनीकी फर्मों के संचालन को स्थानांतरित किया जा सके।

भारत के MPI पर नीति आयोग की रिपोर्ट

नीति आयोग द्वारा भारत के 'बहुआयामी' गरीबी सूचकांक, (MPI) पर रिपोर्ट प्रकाशित की गयी है।

2021 के लिये भारत का MPI

- यूएनडीपी और ओपीएचआई द्वारा शुरू किये गये वर्ष 2021 के लिए MPI रिपोर्ट में बताया गया कि भारत की बहुआयामी गरीबी 27.9 प्रतिशत है।
- इस सूचकांक में 109 देशों में भारत 62वें स्थान पर है। जिसमें MPI स्कोर 0.123 है।
- पर्याप्त पोषण, बेहतर जल की कमी, या कम से कम छह साल की स्कूली शिक्षा जैसे 10 संकेतकों के आधार पर सूचकांक तैयार किया जाता है।
- रिपोर्ट में, शहरों में प्रतिदिन 47 रुपये से कम खर्च करने वाले और गांवों में 32 रुपये से कम खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीब माना गया। हालांकि, MPI को मापने के इस दृष्टिकोण को नीति आयोग ने छोड़ दिया था।
- एमपीआई शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर जैसे तीन आयामों पर आधारित है (प्रत्येक आयाम का सूचकांक में एक-तिहाई भारत होता है।) इन आयामों में 12 खण्ड, पोषण, प्रसवपूर्व देखभाल, बाल और किशोर मृत्यु दर, स्कूल में उपस्थिति, स्कूल शिक्षा, खाना पकाने का ईंधन, पेयजल, स्वच्छता, आवास, बिजली बैंक खाते और सम्पत्ति शामिल है।

गरीबी (Poverty)

परिचय (Introduction)

‘गरीबी से अभिप्राय है, जीवन, स्वास्थ्य तथा कार्यकुशलता के लिए न्यूनतम उपभोग आवश्यकताओं की प्राप्ति की अयोग्यता’ (Poverty is the inability to get the minimum consumption requirements for life, health and efficiency)। इन न्यूनतम आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधी न्यूनतम मानवीय आवश्यकताएं शामिल होती हैं। इन न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं के पूरा न होने से मनुष्य को कष्ट तथा दुःख झेलने पड़ते हैं तथा स्वास्थ्य कार्यकुशलता की हानि होती है। जिसके फलस्वरूप, उत्पादन में वृद्धि करना तथा भविष्य में गरीबी से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप, गरीबी तथा उत्पादन का नीचा स्तर एक दूसरे का पीछा करना शुरू कर देते हैं।

वर्तमान में भारत सहित दुनिया के अधिकांश राष्ट्र गरीबी को आय अथवा खर्च की कमी के रूप में परिभाषित करते हैं। तथा गरीबी दूर करने के लिए इस बात पर अधिक ध्यान देते हैं कि निर्धन लोगों की आय को किस प्रकार बढ़ाया जाये। इस संदर्भ में प्रो. अमर्त्य सेन अलग विचार रखते हैं। उनके अनुसार, ‘क्षमताओं’ का अभाव गरीबी होती है, केवल लोगों की आय बढ़ाने से यह जरूरी नहीं है कि गरीबी दूर हो जाये।

आय बढ़ने के साथ-साथ लोगों की क्षमताओं का विकास भी होना चाहिए। आय की क्षमता में परिवर्तन स्वतः नहीं होता है, यह कई शर्तों व बातों पर निर्भर करता है।

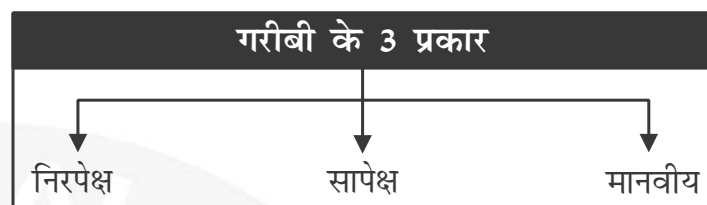
वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) जैसी संस्थाएं गरीबी को समझने के लिये बहुआयामी दृष्टिकोण को लागू कर रही हैं। वर्ष 2010 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा बहुआयामी ‘निर्धनता सूचकांक’ का निर्माण किया गया। इसमें गरीबी का पता लगाने के लिये लोगों की आय अथवा खर्च को ध्यान में रखने के बजाय शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर से जुड़े हुए 10 मानकों के तहत लोगों की वंचनाओं की स्थिति को ध्यान में रखा जाता है।

कुपोषण (Malnutrition)

- पोषण की कमी (Lack of Nutrition) ही कुपोषण है।
- हमारे शरीर को निम्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जो विभिन्न जैव रासायनिक क्रिया के लिए सहायक होते हैं।
- कार्बोहाइड्रेट एवं वसा - ऊर्जा के लिए।
- प्रोटीन- वृद्धि एवं विकास के लिए।
- विटामिन, खनिज लवण एवं पानी- उपापचय (Metabolism) के लिए।
- अमीनो एसिड- जैविक पदार्थों के जनन अर्थात् जीवद्रव्य के निर्माण के लिए।
- भारत जैसे अल्पविकसित देशों में भुखमरी की समस्या यद्यपि कम पायी जाती है लेकिन लोगों (गरीबों) के द्वारा जो भोजन किया जाता है, वह केवल पेट भरने के लिए ही हो पाता है। अर्थात् उन्हें जीवित रहने के लिए कार्बोहाइड्रेट के रूप में ऊर्जा तो मिल जाती है लेकिन आवश्यक प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण आदि नहीं मिल पाते हैं, जो सम्पूर्ण शरीर के जैव रासायनिक क्रिया में सहायक होते हैं। इससे शरीर की वृद्धि एवं विकास सम्पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है जिसे पोषण की कमी अर्थात् ‘कुपोषण’ कहा जाता है।

गरीबी के प्रकार (Types of Poverty)

गरीबी को मुख्यतः 3 प्रकार में विभाजित किया जा सकता है:



- निरपेक्ष गरीबी (Absolute Poverty)**- जब ऊर्जा को आधार बनाकर गरीबी का निर्धारण किया जाता है तो उसे ‘निरपेक्ष गरीबी’ कहते हैं। अर्थात् जब व्यक्ति दैनिक ऊर्जा की प्राप्ति हेतु आवश्यक भोजन नहीं जुटा पाता तो उसे निरपेक्ष रूप से गरीब कहते हैं। भारत में ऊर्जा को गरीबी मापन का आधार बनाया गया जो शहरी क्षेत्र हेतु प्रति व्यक्ति 2100 कैलोरी हैं तो वहीं ग्रामीण क्षेत्रों हेतु प्रति व्यक्ति ऊर्जा की मात्रा 2400 कैलोरी निर्धारित की गई है।
- सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty)**- सापेक्ष गरीबी से अभिप्राय विभिन्न वर्गों, प्रदेशों या दूसरे देशों की तुलना में पाई जाने वाली गरीबी से है। जिस देश या वर्ग के लोगों का जीवन निर्वाह स्तर नीचा होता है वे उच्च निर्वाह स्तर के लोगों या देश की तुलना में गरीब या सापेक्ष रूप से गरीब माने जाते हैं।
- मानवीय गरीबी (Human Poverty)**- मानवीय गरीबी में ऊर्जा के साथ-साथ न्यूनतम रूप में आवश्यक शिक्षा, स्वास्थ्य आदि से जुड़े खर्चों को ध्यान में रखा जाता है। यहाँ पर न्यूनतम रूप से उचित मानव जीवन से जुड़ी आवश्यकताओं को आधार बनाया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार, ‘गरीबी’, व्यक्ति को मिलने वाले विकल्पों एवं अवसरों से उसे वंचित करना एवं मानव गरिमा का उल्लंघन है। गरीबी के कारण व्यक्ति समाज में प्रभावी रूप से सहभागिता नहीं कर पाता है। इसका तात्पर्य परिवार के लिए भोजन एवं वस्त्र जुटाने में अक्षमता से है। गरीब व्यक्ति के क्रेडिट तक पहुंच न होने के कारण वह स्कूल या अस्पताल जाने में सक्षम नहीं होता है। संक्षिप्त में गरीबी से तात्पर्य व्यक्तियों, परिवारों एवं समुदायों की असुरक्षा, शक्तिहीनता तथा बहिष्कार से है।

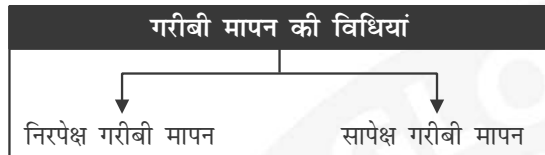
कुल मिलाकर गरीबी कई रूपों में दिखाई दे सकती है। भूख व कुपोषण इसके रूप तो हैं ही साथ ही इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य बुनियादी सेवाओं तक पहुंच का अभाव होता है। बीमारियों के कारण अस्वस्थता तथा मृत्यु दर बढ़ जाती है। इसके अंतर्गत आवास विहीनता या असुरक्षित पर्यावरण, सामाजिक भेदभाव तथा बहिष्कार देखने को मिलता है। इसे निर्णय निर्माण क्षमता में कमी तथा नागरिक द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में सहभागिता के हास के रूप में भी देखा जाता है। विकासशील देशों तथा विकसित देशों के भी कुछ क्षेत्रों में व्यापक गरीबी दिखाई देती है। आर्थिक मंदी के कारण आजीविका खोने, संघर्ष या प्राकृतिक आपदा के कारण अचानक गरीबी पैदा होती है। कम मजदूरी वाले कामगारों में, पारिवारिक सहायता, सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों से बाहर हो गए लोगों में भी गरीबी पाई जाती है।

किसी भी व्यवहारिक समाज में जीवन स्तर का अंतर पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पाता है, इसलिए ‘वर्ल्ड बैंक’ के अनुसार ‘We are always to live with Poverty’ विकसित राष्ट्रों में निरपेक्ष तथा मानवीय गरीबी चर्चा में नहीं रहती है, वहाँ सापेक्षिक गरीबी अधिक चर्चा में रहती है। इसके विपरीत भारत जैसे राष्ट्रों

में निरपेक्ष तथा मानवीय गरीबी अधिक चर्चा में रहती है। हालांकि समावेशी विकास के लक्ष्य के लागू होने के बाद भारत में सापेक्षिक गरीबी भी नीति निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान लेती जा रही है।

कई बार सापेक्षिक गरीबी लोगों को निरपेक्ष गरीबी की ओर ढकेल देती है। ऐसा उस समय होता है जब लोग सामाजिक बहिष्करण (Social exclusion) से बचने के लिए जीवन स्तर को अनावश्यक रूप से ऊँचा करने की कोशिश करते हैं जबकि उनकी आर्थिक स्थिति उसके अनुसार नहीं होती है।

गरीबी मापन में प्रयोग आने वाली विधियाँ (Methodology use in Measurement of Poverty)



निरपेक्ष गरीबी मापन

भारत में निर्धनता का अनुमान

- भारत में गरीबी का अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Organisation- NSSO) द्वारा शीर्ष गणना अनुपात (Head Count Ratio- HCR) विधि का प्रयोग किया जाता है।
- इस विधि में लोगों के उपभोग हेतु न्यूनतम निर्णायक खर्चों को ध्यान में रखा जाता है। यदि किसी व्यक्ति/परिवार का खर्च निर्णायक खर्च से नीचे आता है तो उसे निर्धन माना जाता है। इस संदर्भ में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के लिए न्यूनतम निर्णायक खर्च अलग-अलग निर्धारित किया जाता है।
- उपर्युक्त विधि से निर्धन लोगों की संख्या का अनुमान लगाया जाता है। निम्न सूत्र का प्रयोग करते हुए HCR प्राप्त किया जाता है-

$$\text{शीर्ष गणना अनुपात (HCR)} = \frac{\text{निर्धनों की अनुमानित संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 100$$

अलग समिति (1979) ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में एक वयस्क के लिए क्रमशः 2400 और 2100 कैलोरी की न्यूनतम दैनिक आवश्यकता के आधार पर गरीबी रेखा निर्धारित की। इसके बाद लकड़वाला समिति (1993) की सिफारिश पर भारत में राज्य विशेष गरीबी रेखा तैयार की जाती है। अतः उपर्युक्त HCR प्रत्येक राज्य के लिये भी निकाले जाते हैं।

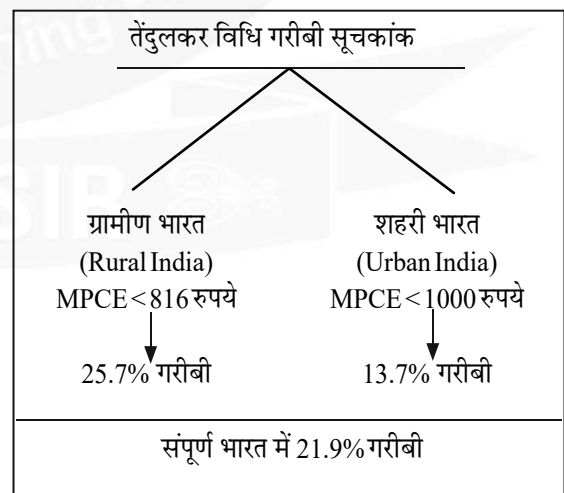
भारत में गरीबी मापने की विधि की कई आधारों पर आलोचना की जाती है। जैसे कि-

- शीर्ष गणना अनुपात (HCR) से यह तो पता लग जाता है कि जनसंख्या का कितना भाग गरीबी से पीड़ित है। लेकिन उससे यह पता नहीं लग पाता है कि संबंधित लोग गरीबी से कितने प्रभावित हैं। अर्थात् गरीबी की गहनता का पता नहीं लग पाता है।
- कई लोगों के अनुसार खर्च विधि अधिक उपर्युक्त नहीं होती है। कई बार खर्च इसलिये अधिक हो जाते हैं कि लोगों द्वारा उधार ले लिया गया हो और कई बार खर्च इसलिए कम पड़ सकते हैं, कि लोगों द्वारा बचत कर ली गई हो।
- भारत में वंचनाओं के आधार पर शीर्ष गणना अनुपात नहीं निकाला जाता है। जबकि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम जैसी संस्थाएं इस पर अधिक जोर दे रही हैं।
- यह विधि सभी निर्धनों की आय को समान समझती है जबकि निर्धनों की आय में भी विषमता पायी जाती है।

निर्धनता रेखा (Poverty Line)

- इससे अभिप्राय उस सीमा बिंदु (Cut off Point) से है। (सामान्यतः प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में) जो किसी क्षेत्र के लोगों को निर्धन तथा धनी में विभाजित करता है। उदाहरण के लिए, 500 रुपये प्रति मास प्रति व्यक्ति व्यय को सीमा बिंदु मान लिया जाए, तब 500 रुपये से कम व्यय करने वाला निर्धन और 500 रुपये से अधिक व्यय करने वाले को समृद्ध कहा जाएगा।
- निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत को व्यक्ति गणना अनुपात (Head Count Ratio) अथवा निर्धनता प्रभाव अनुपात (Poverty Incidence Ratio) कहा जाता है।
- निर्धनता सीमा रेखा का निर्धारण या तो आय के रूप में या उपभोग के रूप में किया जा सकता है।
- आय की तुलना में उपभोग एक बेहतर मापदंड (Parameter) है। इसका कारण यह है कि उपभोग किसी व्यक्ति द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं के वास्तविक प्रयोग को दर्शाता है, जबकि आय केवल खरीदने की क्षमता व्यक्त करती है।
- आय के वितरण संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं (जबकि उपभोग से संबंधित व्यापक आंकड़े उपलब्ध हैं)। उपभोग स्तर को भारत में प्रायः निर्धनता रेखा की एक सीमा माना जाता है।
- निरपेक्ष निर्धनता का अनुमान लगाने के लिए भारत में निर्धनता रेखा (Poverty Line) की अवधारणा का प्रयोग किया गया है। निर्धनता रेखा वह रेखा है, जो प्रति व्यक्ति औसत मासिक व्यय को व्यक्त करती है। जिसके द्वारा लोग अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।
- भारत में 816 रुपये ग्रामीण क्षेत्र तथा 1,000 रुपये शहरी क्षेत्र में प्रति मास उपभोग को निर्धनता रेखा माना गया है। जिन लोगों का प्रतिमाह उपभोग व्यय इससे कम है उन्हें निर्धन माना जाता है।
- निर्धनता रेखा की नई परिभाषा के आधार पर वर्ष 2011-12 में भारत में निर्धनता अनुपात 21.9 प्रतिशत है।
- अर्थव्यवस्था में गरीबी अभी भी एक बड़ी चुनौती है, हालांकि भारत में गरीबी थोड़ा पहले से कम हुई है। यहाँ लगभग 84 मिलियन लोग अत्यधिक गरीबी में जी रहे हैं, जो मई 2021 तक इसकी कुल आबादी का 6% है। कोविड-19 महामारी के कारण इस वर्ष 90-115 मिलियन लोग अत्यधिक गरीबी का शिकार हो गये, कुल मिलाकर वर्ष 2021 तक यह 400 मिलियन तक हो गया।

भारत में गरीबी मापने की तेंदुलकर विधि (तेंदुलकर समिति, 2009)



सुरेश तेंदुलकर समिति द्वारा गरीबी के अनुमानों की विधि में बदलाव

वर्तमान में भारत में तेंदुलकर विशेषज्ञ दल द्वारा सुझाए गये बदलावों के आधार पर गरीबी के अनुमानों का संग्रहण किया जाता है। ये बदलाव मुख्य रूप से निम्न हैं-

1. ऊर्जा के साथ-साथ शिक्षा और स्वास्थ्य से जुड़े न्यूनतम खर्चों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
2. गांवों और शहरों के लिए (Poverty Line Basket-PLB) एक समान होनी चाहिए। इसे खरीदने की मौद्रिक आवश्यकताएं अलग-अलग हो सकती हैं।
3. गरीबी का अनुमान लगाते समय NSSO, MRP- (Mixed Recall/Reference Period) का प्रयोग करता है। इसके लिए खाने-पीने की वस्तुओं को 30 दिन के संदर्भ में तथा शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए 365 दिन के संदर्भ में व्यय को शामिल किया जाता है।

30 दिन → खाद्य वस्तु

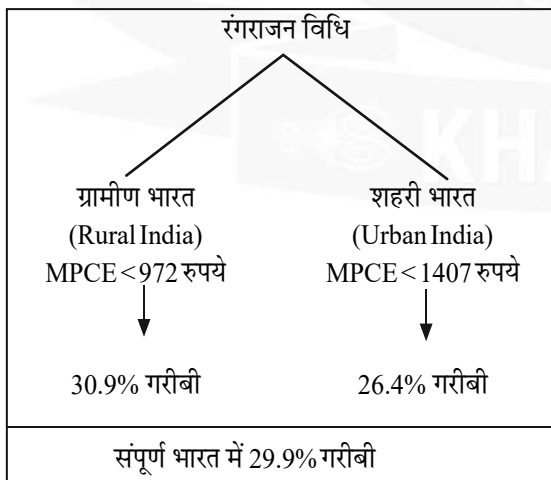
365 दिन → शिक्षा और स्वास्थ्य।

नोट- ध्यातव्य है कि NSSO के द्वारा तेंदुलकर कमेटी की अधिकांश अनुशंसा को मापते हुए गरीबी मापन की नई विधि MMRP (Modified Mixed recall Period) का प्रयोग किया जा रहा है। इसमें खाने पीने की वस्तुओं के 30 दिन के स्थान पर 7 दिन का Recall period निर्धारित किया गया है हालांकि शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए 365 दिन की ही अवधि निर्धारित की गई है।

गरीबी पर रंगराजन समिति की रिपोर्ट, 2012 (Rangarajan Committee Report on Poverty-2012)

वर्ष 2011-12 में तेंदुलकर कमेटी की रिपोर्ट पर आधारित NSSO द्वारा लगाया गया अनुमान विवादास्पद रहा। इसी संदर्भ में रंगराजन कमेटी का गठन किया गया। रंगराजन कमेटी के द्वारा तेंदुलकर कमेटी की अनुशंसा को तो स्वीकार कर लिया गया परंतु MPCE (Monthly per capita Expenditure) को ऊंचा कर दिया गया। डॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों के लिए इस समिति का गठन किया गया था-

- गरीबी स्तर के अनुमानों के लिए वैकल्पिक पद्धति उपलब्ध कराना तथा इस बात का परीक्षण करना कि क्या गरीबी रेखा का निर्धारण केवल खपत (Consumption Basket) के आधार पर करना चाहिए या कोई अन्य तार्किक मापदंड भी हो सकता है।
- अंतर्राष्ट्रीय गरीबी अनुमानों की पद्धतियों की समीक्षा करना तथा इस बात का संकेत करना कि क्या इन आधारों पर भारत में व्यवहारिक गरीबी अनुमानों के लिए किसी विशिष्ट पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है।
- इस बात की अनुशंसा करना कि किस तरह गरीबी के इन अनुमानों को भारत सरकार के विभिन्न स्कीमों की योग्यता एवं अधिकारिता से जोड़ा जा सकता है। इस समिति ने जुलाई 2014 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी है।



इस तरह योजना आयोग समय-समय पर गठित विशेषज्ञ समूह की अनुशंसाओं के आधार पर गरीबी का मापन करता रहा है। गरीबी अनुमानों के आँकड़ें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) के खपत व्यय सर्वेक्षणों से लिए जाते हैं। जिसे सामान्य रूप से आर्थिक विशेषज्ञों एवं नीति निर्माताओं द्वारा विश्वसनीय माना जाता है। भारत में गरीबी अनुमानों को निर्धारित करते समय प्रमुख विवादित मुद्दा यह होता है कि खपत के अंतर्गत कौन सी वस्तुएँ शामिल की जानी चाहिए एवं इनका मौद्रिक मूल्य (Monetary Value) क्या होना चाहिए?

रंगराजन समिति की रिपोर्ट के अनुसार, गरीबी रेखा का अनुमान प्रति व्यक्ति मासिक व्यय रुपये 1407 शहरी क्षेत्रों में तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 972 रुपये होनी चाहिए।

सशक्तिकरण रेखा

- मैकेन्जी ग्लोबल इंस्टीट्यूट (MGI) द्वारा भारत में गरीबी के वास्तविक स्तर का पता लगाने के लिए एक नई अवधारणा का प्रयोग किया गया है। इसे सशक्तीकरण रेखा के नाम से संबोधित किया गया है। यह रेखा भारत सरकार की गरीबी की रेखा से काफी ऊंची रखी गई है। (MPCE = 1336 रुपये)।
- सशक्तिकरण रेखा निर्धारित समय MGI का मूल भाव यह रहा कि लोगों को तीन बातों का ध्यान हमेशा रहना चाहिए-

- आर्थिक सुरक्षा (Economic Security)
- अवसर (Opportunity)
- सम्मान (Dignity)

गरीबी रेखा से ऊपर निकालने के लिए निम्नलिखित आठ मूलभूत आवश्यकताओं को सुनिश्चित किया जाना चाहिए-

- भोजन (Food)
- शिक्षा (Education)
- स्वच्छता (Sanitation)
- पेयजल (Drinking Water)
- ऊर्जा (Energy)
- सामाजिक सुरक्षा (Social Security)
- स्वास्थ्य देखभाल (Health Care)
- आवास (Housing)

सापेक्ष गरीबी मापन

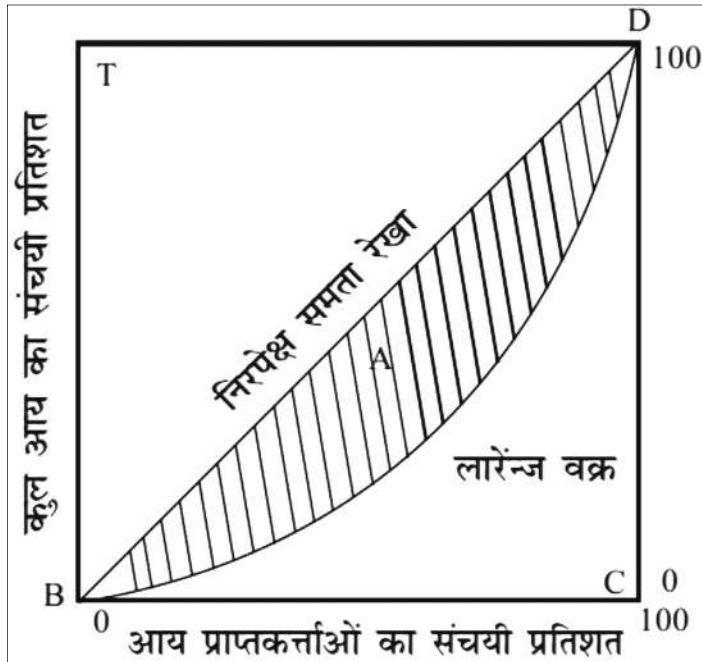
इस प्रकार की गरीबी मापन के संबंध में दो विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं- लॉरेंज वक्र विधि तथा गिनी गुणांक (Gini Coefficient)। लॉरेंज वक्र को 1905 में मैक्स ओ लॉरेंज (Max O. Lorenz) ने विकसित किया जबकि गिनी गुणांक को 1912 में इटैलियन सांख्यिक कोरेडो गिनी (Corrado Gini) ने विकसित किया।

लॉरेंज वक्र को खींचने के लिए हम X अक्ष पर परिवारों का संचयी % (Cumulative %) रखते हैं जबकि Y अक्ष पर कुल आय का संचयी प्रतिशत लेते हैं। स्पष्ट है लॉरेंज वक्र शून्य से शुरू होकर 100 पर समाप्त होगा। यदि समाज के 10% लोगों के पास कुल आय का 10% ही हो, 20% के पास 20% ही आय हो या यूँ कहिए कि X% के पास x% ही आय हो तो इन्हें प्रदर्शित करने वाली रेखा 45° रेखा होगी, रेखाचित्र में BD रेखा ऐसी रेखा है जिसे हम पूर्ण समता रेखा (Perfect Equality line) कहते हैं। यदि जिस चर को नापा जा रहा है उसका मूल्य ऋणात्मक (Negative) नहीं हो सके तो-

- लॉरेंज वक्र पूर्ण समता रेखा के ऊपर नहीं उठेगी।
 - पूर्ण असमानता रेखा के नीचे नहीं जा सकती।
 - बढ़ती हुई होगी तथा उत्तल फलन (Convex function) होगी।
- पूर्ण समता रेखा को हम निरपेक्ष समता रेखा (Equality line) भी कह सकते हैं। यह एक मानक या काल्पनिक रेखा होगी। वास्तविक आंकड़ों पर आधारित लॉरेंज वक्र इस समता रेखा से जितनी दूर होगी, विषमता उतनी ही अधिक होगी जैसा रेखाचित्र में प्रदर्शित है।

स्पष्ट है लॉरेंज वक्र जितनी ही निरपेक्ष समता रेखा के पास होगा, आय की

विषमता उतनी ही कम होगी। यदि सम्पूर्ण आय किसी एक ही व्यक्ति के पास हो तो पूर्ण असमान आय वितरण होगा और इसे प्रदर्शित करने वाली रेखा BT होगी। सापेक्ष गरीबी के माप की एक दूसरी विधि गिनी गुणांक की है। गिनी गुणांक आय के वितरण के विषमता की माप की सबसे प्रचलित विधि है।



जो आय के प्रत्येक युग्म के बीच आय अन्तर (Income difference) की माप करती है। यह वास्तविक लारेंज वक्र तथा निरपेक्ष समता रेखा के बीच का क्षेत्रफल तथा निरपेक्ष समता रेखा के नीचे के संपूर्ण क्षेत्र के बीच अनुपात प्रदर्शित करता है।

ऊपर दिये गये चित्र में गिनी गुणांक (G)=

छायांकित क्षेत्रफल (A)

समता रेखा के नीचे का संपूर्ण क्षेत्रफल (BCD)

यदि $G=0$ तो प्रत्येक व्यक्ति को एक ही आय मिल रही है यदि $G=1$ तो एक ही व्यक्ति पूरी आय प्राप्त कर रहा है। इसलिए गिनी गुणांक का अधिकतम मूल्य 1 के बराबर होगा (उस समजय जबकि पूर्ण विषमता हो) तथा न्यूनतम मूल्य शून्य के बराबर होगा (जबकि पूर्ण समता हो)। उल्लेखनीय है कि आर्यंगर तथा ब्रह्मनंद ने भारत के संबंध में पहली योजना से लेकर छठी योजना तक के लिए ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के लिए उपभोग व्यय पर लारेंज का गिनी गुणांक निकाला और पाया कि पिछले 20 वर्षों में शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विषमता ज्यों की त्यों रही है।

गिनी गुणांक में यदि 100 से गुणा कर दें तो हमें गिनी सूचकांक मिल जायेगा। उल्लेखनीय है कि लारेंज वक्र तथा गिनी गुणांक आय की विषमता की माप से सम्बन्धित हैं, आय की विषमता को प्रतिव्यक्ति आय या कूटजनेत्स विषमता वक्र से नहीं मापा जा सकता। इसे विभिन्न आय वर्गों में जनसंख्या के प्रतिशत बंटवारे के आधार पर ही मापा जा सकता है। प्रतिव्यक्ति आय इससे संबंधित नहीं है।

गरीबी का सेन दृष्टिकोण

गरीबी का यह दृष्टिकोण, इस बात पर ध्यान नहीं देता है कि गरीबी रेखा से नीचे आने वाले सभी समानरूप से गरीब नहीं होंगे, जो गरीबी रेखा से जितना ही दूर होगा वह उतना ही अधिक गरीब होगा। अर्थशास्त्र में 1998 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री प्रो. ए. के. सेन ने अपने 'इकोनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिकल वीकली 1973' में प्रकाशित लेख 'Poverty, Inequality and Unemployment' में एक विधि विकसित किया, जिसके आधार पर हम गरीबी की गहनता (Intensity of poverty) ज्ञात कर सकते हैं।

विषमता समायोजित प्रतिव्यक्ति आय-धारणा

इस धारणा का प्रतिपादन नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन ने किया। उन्होंने आय के स्तर तथा उसके वितरण के आयाम को जोड़कर आर्थिक कल्याण की माप के लिए इस धारणा को विकसित किया उनके अनुसार

$$W = \mu(1 - G)$$

जिसमें W = कल्याण

μ = प्रति व्यक्ति आय

G = विषमता की आय

स्पष्ट है कल्याण (W) में वृद्धि होगी यदि प्रतिव्यक्ति आय (μ) में वृद्धि हो या G में कमी आये।

सरल रूप में इसे आप इस प्रकार समझ सकते हैं। मान लीजिए गरीबी रेखा 200 रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिमाह है, अर्थात् 200 रुपया प्रतिमाह से नीचे अर्जित करने वाले सभी व्यक्ति गरीब हैं। इन सभी व्यक्तियों को हम अवरोही क्रम (Decending Order) जैसे- 200, 199, 198, 197, 196 में रख लेते हैं, इस क्रम में जो व्यक्ति जितना अधिक ऊपर होगा वह उतना ही कम गरीब होगा। इसीलिए प्रो. ए. के. सेन यह स्पष्ट करते हैं कि यह जानना पर्याप्त नहीं है कि कितने लोग गरीब हैं बल्कि किस प्रकार वे ठीक रूप से गरीब हैं। प्रो. सेन ने इस कमी को दूर करने के लिए एक निर्देशांक विकसित किया जिसे हम 'सेन का निर्देशांक' या 'सेन का गरीबी गुणांक' कहते हैं। सेन के अनुसार, गरीबी की सही तस्वीर ज्ञात करने के लिए हमें गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को नहीं गिनना चाहिए, बल्कि हमें प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में गरीबी रेखा से आय की गिरावट को देखना चाहिए। हमें यह देखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति की आय गरीबी रेखा से कितना नीचे है। उनके अनुसार गरीबों की आय की गरीबी रेखा से गिरावट को भारांकित करके गरीबी को मापा जा सकता है। सेन के अनुसार, भारांकन की सबसे अच्छी विधि यह होगी कि गरीबी रेखा से नीचे के सापेक्षिक रूप से धनी व्यक्ति को आय की गरीबी रेखा से गिरावट की तुलना में उससे गरीब व्यक्ति की आय को गरीबी रेखा से गिरावट को अधिक भार दिया जाए। इस प्रकार यदि गरीबी रेखा से नीचे आय वाले लोग हों, तो आय की कमी वाला सबसे धनी गरीब को भार 1 प्राप्त होगा, उसके बाद वाला दूसरे धनी को भार 2 प्राप्त होगा तथा इस प्रकार अन्तिम गरीब को Q भार प्राप्त होगा। इसके आधार पर गरीबी के मापक P को ज्ञात किया जा सकता है। इस रूप में जो सबसे अधिक गरीब है, उसकी गरीबी की गहनता अधिक प्रतिबिम्बित होती है। सेन का P सूचकांक 'हेडकाउन्ट अनुपात' से अधिक व्यावहारिक, अर्थपूर्ण तथा सही है। सेन के अनुसार P गुणांक तथा गिनी गुणांक में कुछ समानता (Affinity) अवश्य है पर यह वास्तविक नहीं। P एक निरपेक्ष माप है, इसलिए इसके आधार पर स्पष्टतः कल्याण सम्बन्धी निर्णय (Unambiguous Welfare Judgement) लिया जा सकता है। यह हेड काउन्ट अनुपात तथा सापेक्ष विषमता सम्बन्धी सभी मापों से

उत्तम है। गिनी गुणांक तथा लॉरेंज की तुलना में P में कम आँकड़ा एकत्रित करने की आवश्यकता होती है।

भारत में गरीबी का स्तर (Poverty Level in India)

भारत सरकार के अनुसार भारत में वर्ष 2011-12 के लिए गरीबी का स्तर 21.9% पाया गया जो NSSO के गरीबी के 68वें चक्र के अनुमान (20 जून, 2013) पर आधारित है। इस सारणी में अन्य वर्षों को भी शामिल किया गया है।

निर्धनता अनुपात (प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	संपूर्ण भारत
1993-94	50.1	30.8	45.3
2004-05	41.8	25.7	37.2
2011-12	25.7	13.7	21.9

- भारत में गरीबी के स्तर को लेकर भारतीय एवं वैश्विक संगठनों में एकमत देखने को नहीं मिलता है। 'United National Development Programme'-(UNDP) के अनुसार, भारत में गरीबी का वास्तविक स्तर 2011 के लिए 53.4% है। यहां पर UNDP गरीबों की गणना करने हेतु बहुआयामी निर्धनता सूचकांक का प्रयोग करता है।
- मैकेंजी द्वारा जारी की गयी एक रिपोर्ट (McKinsey Global Institute-MGI, Mumbai) में भारत में गरीबी का स्तर 56% बताया गया है। यह संगठन इस संदर्भ में सशक्तिकरण संकल्पना का प्रयोग करता है।
- ग्लोबल MPI रिपोर्ट इंगित करती है कि वर्ष 2020 में भारत 107 देशों में 62वें स्थान पर है, जिसमें MPI स्कोर 0.123 है और 27.9% जनसंख्या बहुआयामी गरीबी में है। यह संख्या ग्रामीणों के लिए 36.8% और शहरी के लिए 9.2% है।

भारत में गरीबी के संबंध में विभिन्न संगठनों के अनुमान योजना आयोग (Planning Commission)

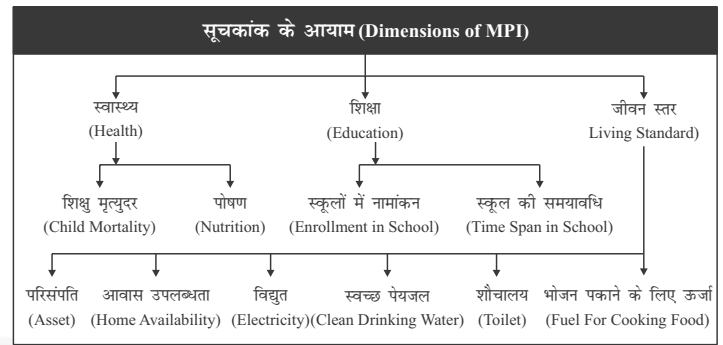
योजना आयोग (Planning Commission)	21.9% (तेंदुलकर विधि)
एन.एस.एस.ओ. (NSSO)	29.9% (रंगराजन विधि)

- विश्व बैंक (World Bank)।
 - ♦ प्रतिदिन/प्रतिव्यक्ति आय < \$ 1.25 - 32.68%
 - ♦ प्रतिदिन/प्रतिव्यक्ति आय < \$ 2.00 - 74.00%

बहुआयामी गरीबी सूचकांक (Multidimensional Poverty Index-MPI)

- यह सूचकांक UNDP द्वारा वर्ष 2010 में विकसित किया गया था। इसमें 3 मुख्य आयामों को 10 उप आयामों में विभाजित किया गया है।
- इनके माध्यम से गरीबी की व्यापक समझ विकसित होती है और उसका मूल्यांकन सरल हो जाता है।

ऊपर दिए गए चार्ट से स्पष्ट है कि MPI को प्रभावित करने वाले 10 संकेतक हैं जो मुख्य आयाम-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा जीवन निर्वाह के स्तर से संबंधित हैं। MPI की गणना में परिवार के इकाई के रूप में लिया जाता है। बहुआयामी रूप से गरीबी की पहचान के लिए प्रत्येक परिवार का प्रत्येक संकेतक के संबंध में वंचन स्कोर ज्ञात किया जाता है तथा सबको जोड़कर परिवार का वंचन स्कोर (Household Deprivation-C) ज्ञात किया जाता है।



MPI का मूल्य दो मापकों- (क) बहुआयामी हेडकाउंट अनुपात (H) तथा (ख) गरीबी की गहनता (Intensity of Poor) (A) का गुणनफल है। इसमें H बहुआयामी गरीब जनसंख्या का कुल जनसंख्या में अनुपात प्रदर्शित करता है-

$$(H) = \frac{q}{n}$$

जिसमें q बहुआयामी गरीबों की संख्या तथा n कुल जनसंख्या प्रदर्शित करता है। सूत्र में प्रयुक्त A उन भारित संकेतकों के अनुपात को प्रदर्शित करता है जिसमें औसतन गरीब लोग वंचन की स्थिति में हैं। केवल गरीब परिवारों के लिए वंचन स्कोर का योग किया जाता है तथा उसे गरीबों की संख्या से भाग कर दिया जाता है-

$$(A) = \frac{\sum c}{qd}$$

जिसमें c भारित वंचन की कुल संख्या है जिसे गरीबों द्वारा महसूस किया गया, d संकेतकों की कुल संख्या है।

$$MPI = H \times A.$$

MPI 2021 को सितम्बर 2021 में रिलीज किया गया। ग्लोबल एमपीआई वर्ष 2020 में भारत 107 देशों की सूची में 62वें स्थान पर है।

वर्ष 2020 में भारत के पड़ोसी देशों की रैंकिंग-

श्रीलंका	-	25
नेपाल	-	65
बांग्लादेश	-	58
म्यांमार	-	69
पाकिस्तान	-	73
चीन	-	13

नीति आयोग का बहुआयामी गरीबी सूचकांक

राष्ट्रीय बहु-आयामी निर्धनता सूचकांक: बेसलाइन रिपोर्ट राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 पर आधारित है, जिसे 2015-16 में संचालित किया गया था। एनएफएस का संचालन भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के तहत अंतराष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (आईआईपीएस) द्वारा किया जाता है।

राष्ट्रीय एमपीआई (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 पर आधारित, डेटा अवधि-2015-16): आयाम, संकेतक और निष्कर्ष

- भारत का राष्ट्रीय एमपीआई स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर के तीन वृहद आयामों में परिवारों द्वारा सामना किए जाने वाले कई और

एकसाथ अभावों को शामिल करता है। राष्ट्रीय एमपीआई आयाम, संकेतक और मापन नीचे दिए गए हैं:

- राष्ट्रीय एमपीआई हेडकाउंट अनुपात और तीव्रता के अनुमान न केवल राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के लिए बल्कि सभी जिलों के लिए भी प्रस्तुत किए गए हैं, जो इस रिपोर्ट की एक अनूठी विशेषता है। यह न केवल राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के बीच, बल्कि एक राज्य के जिलों के बीच तुलनात्मक और सापेक्ष प्रदर्शन के विश्लेषण को प्रस्तुत करेगा। यह देश के संघीय ढांचे और हस्तक्षेपों तथा योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जिला प्रशासन की भागीदारी को महत्वपूर्ण मानता है।
- सरकारी थिंक टैंक नीति आयोग द्वारा पहली बार नवम्बर 2021 में जारी बहुआयामी गरीबी सूचकांक के अनुसार बिहार में सर्वाधिक 50% से

अधिक आबादी बहुआयामी रूप से गरीब है।

महत्वपूर्ण तथ्य

सूचकांक के अनुसार बिहार में 51.9% आबादी बहुआयामी रूप से गरीब है, इसके बाद झारखण्ड (42.16%), उत्तरप्रदेश (37.79%), मध्यप्रदेश (36.65%) और मेघालय (32.67%) का स्थान है।

दूसरी ओर, केरल में सबसे कम जनसंख्या (0.71%) बहुआयामी रूप से गरीब है, इसके बाद पुडुचेरी (1.72%), लक्षद्वीप (1.82%), गोवा (3.76%) और सिक्किम (3.82%) का स्थान रहा। राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक कि यह आधारभूत रिपोर्ट राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की 2015-16 की संदर्भ अवधि पर आधारित है।

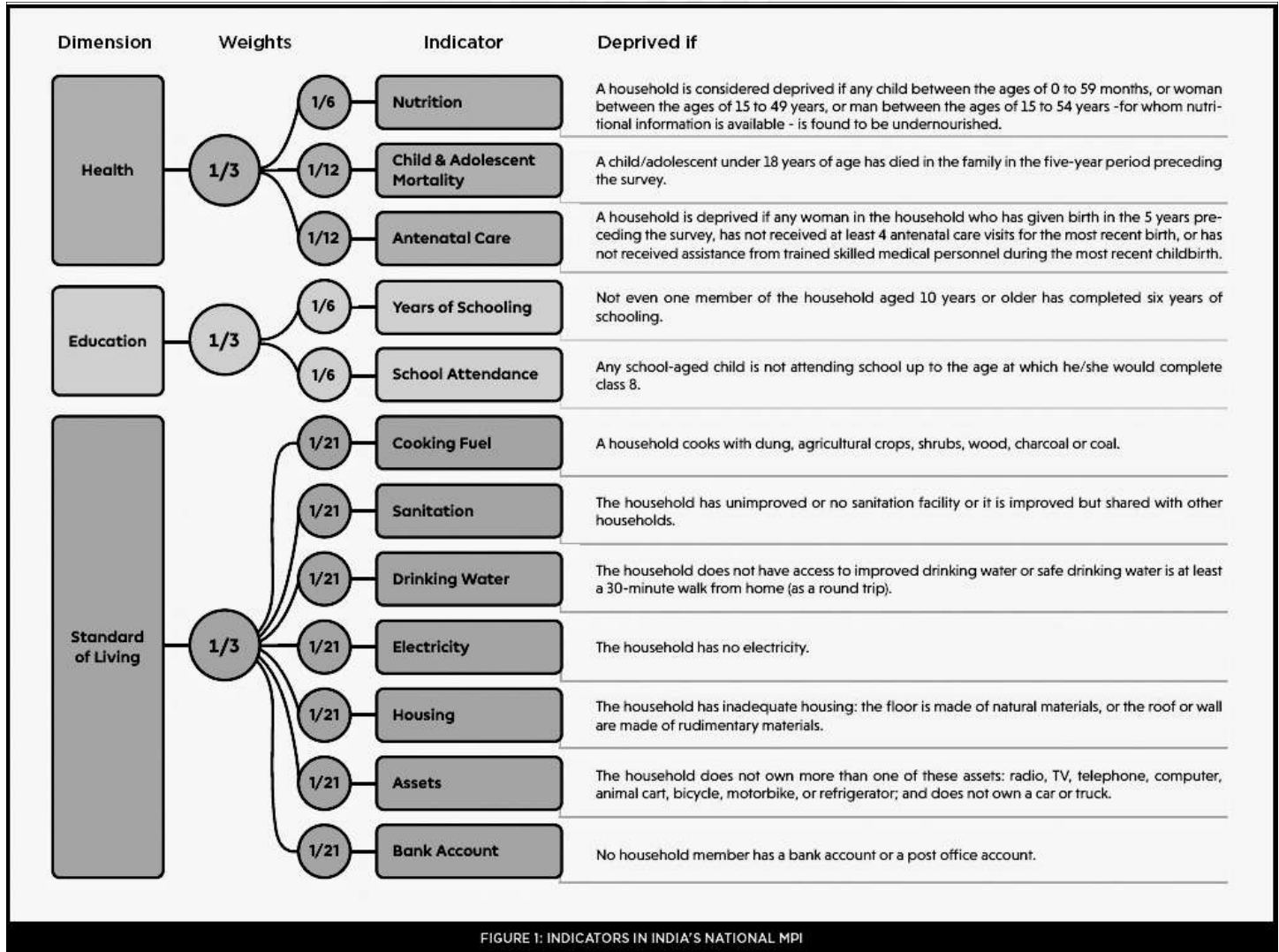


FIGURE 1: INDICATORS IN INDIA'S NATIONAL MPI

दादर और नागर हवेली (27.36%), जम्मू कश्मीर और लद्दाख (12.58%), दमन और दीव (6.82%) और चण्डीगढ़ (5.97%) सबसे गरीब केंद्र शासित प्रदेश के रूप में उभरे हैं।

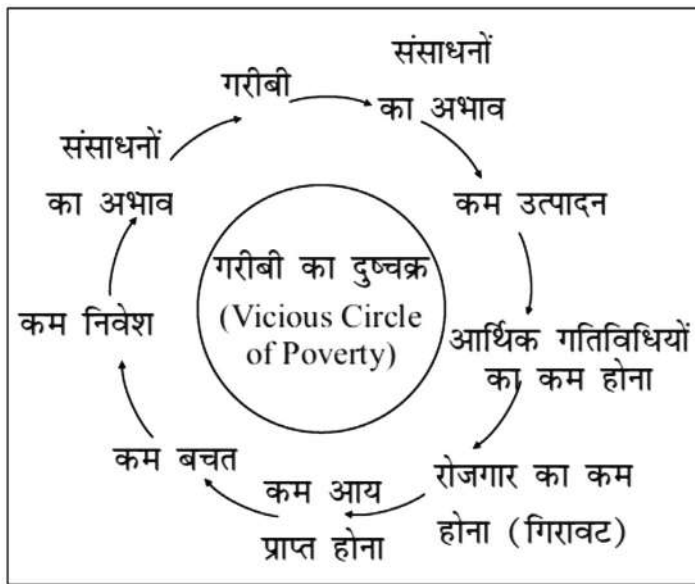
गरीबी का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)

- 'गरीबी का दुष्चक्र' का सिद्धांत प्रो. रेगनर नर्कसे (Prof. Ragnar Nurkse) के द्वारा दिया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार, गरीबी का कारण गरीबी है। कोई व्यक्ति गरीब है क्योंकि वह गरीब है।

अर्थात् किसी देश के गरीबी का कारण उसकी गरीबी है। जैसे- भारत के किसान गरीब हैं क्योंकि वे गरीब हैं। उनके गरीब होने के कारण वे समय पर सिंचाई, बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि की सुविधा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। जिससे उत्पादन कम होता है और उनकी गरीबी बढ़ती जाती है यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, गरीबी आर्थिक क्रियाओं का ऐसा दुष्चक्र है जो एक दूसरे से इस प्रकार क्रिया करते हैं कि एक गरीब व्यक्ति हमेशा गरीब बना रहता है।

- यह चक्र तब तक नहीं टूट सकता है जब तक अतिरिक्त निवेश (Investment) न हो। इसलिए भारत सरकार के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से निवेश किया जा रहा है।



गरीबी के कारण (Causes of Poverty)

भारत में गरीबी की समस्या तथा उसके कारणों की विवेचना को दो भागों में बांटा जा सकता है, अल्प विकसित अर्थव्यवस्था तथा आय का असमान वितरण। **भारतीय अर्थव्यवस्था की अल्प विकसितता के संदर्भ में गरीबी (Poverty with Reference to Underdevelopment of the Indian Economy)** भारत की अर्थव्यवस्था का अल्पविकसित होना गरीबी का मुख्य कारण है। यह निम्नलिखित आधार पर समझ सकते हैं।

- राष्ट्रीय उत्पाद का निम्न स्तर (Low Level of National Product)** - भारत का कुल राष्ट्रीय उत्पादन जनसंख्या की तुलना में काफी कम है। इस कारण प्रति व्यक्ति आय कम रही है।
- विकास की कम दर (Low Rate of Growth)** - भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की दर बहुत कम रही है। योजनाओं की अधिकतर अवधि में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर मात्र 4 प्रतिशत रही है।
- जनसंख्या का अधिक दबाव (Heavy Pressure of Population)** - भारत में जनसंख्या अत्यन्त द्रुतगति से बढ़ रही है, इस वृद्धि का कारण पिछले कई वर्षों से मृत्यु दर का कम होना, परन्तु जन्म दर का लगभग स्थिर रहना है।
- स्फीतिक दबाव (Inflationary Pressures)** - उत्पादन की नीची दर तथा जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर के फलस्वरूप भारत जैसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं स्फीतिक दबाव के जाल में फंस जाती है। मुद्रास्फीति भारतीय अर्थव्यवस्था का एक स्थाई लक्षण बना हुआ है। इसका तात्पर्य है कीमतों में निरंतर वृद्धि की स्थिति। कीमत वृद्धि से गरीब वर्ग सर्वाधिक प्रभावित होता है। अतः गरीब को और अधिक गरीब होने की प्रवृत्ति बनती चली जाती है।
- निरन्तर रहने वाली बेरोजगारी (Chronic Unemployment and Under Employment)** - भारत में चिरकालीन बेरोजगारी व अर्द्ध बेरोजगारी है। यहां शिक्षित बेरोजगारी से भी बड़ी समस्या कृषि में अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) का होना है। पुनः इस प्रकार की

बेरोजगारी गरीबी की दर को ऊंचा रखने में जिम्मेदार है।

- पूंजी की अपर्याप्तता (Capital Deficiency)** - पूंजी आर्थिक विकास का एक सहायक तत्व है। पूंजी संचय को किसी देश की उत्पादन क्षमता के एक सूचक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। धारणीय विकास के लिए आवश्यक पूंजी का स्टॉक तथा पूंजी का निर्माण दुर्भाग्यवश अभी भी निष्क्रिय अवस्था (Dormant State) में चल रहा है। निम्न पूंजी निर्माण का अर्थ है कम उत्पादन क्षमता जिससे गरीबी बढ़ती है।
- योग्य एवं निपुण उद्यमकर्ताओं का अभाव (Paucity of Able and Efficient Entrepreneurs)** - किसी भी देश में औद्योगिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में साहस और कल्पना शक्ति (Initiative and Imagination) रखने वाले, जोखिम उठाने की योग्यता रखने वाले तथा अपने कार्य में दक्ष, निपुण एवं चतुर उद्यमकर्ताओं की आवश्यकता होती है पर दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसे उद्यमकर्ताओं की बहुत कमी है। फलस्वरूप, देश में उत्पादन प्रक्रिया बहुत निम्न स्तर पर रही है। उत्पादन प्रक्रिया के निम्न स्तर का अर्थ रोजगार का निम्न स्तर तथा गरीबी का उच्च स्तर है।
- पुरानी सामाजिक संस्थाएं (Outdated Social Institutions)** - हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मूल सामाजिक आधार पुरानी सामाजिक संस्थाएं तथा रूढ़ियां हैं जैसे- जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा और उत्तराधिकार के नियम आदि हैं। ये सब हमारी अर्थव्यवस्था के गत्यात्मक परिवर्तनों में बाधा उपस्थित करते हैं। इससे विकास दर में रूकावट पड़ती है तथा इसका परिणाम गरीबी होता है।
- आधारिक संरचना का अभाव (Lack of Infrastructure)** - आर्थिक आधारिक संरचना के प्रमुख घटक जैसे ऊर्जा, यातायात, संचार तथा सामाजिक आधारिक संरचना के प्रमुख घटक जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाएं बहुत ही बुरी अवस्था में हैं। संवृद्धि तथा विकास के कार्यक्रम में ये सभी एक आधारशिला का कार्य करते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश 55 वर्षों की योजना अवधि के बावजूद भी यह आधारशिला अभी भी अपनी शिशु अवस्था में है। गरीबी का निरंतर बने रहना विकास प्रवृत्तियों की धीमी बढ़ोत्तरी के स्पष्ट परिणाम है।

आय के असमान वितरण के संदर्भ में गरीबी (Poverty in Reference Unequal Distribution of Income)

भारत में गरीबी का दूसरा प्रमुख कारण आय का असमान वितरण है।

- योजनाओं में प्रगतिशील कर प्रणाली तथा दूसरे उपायों द्वारा आय के असमान वितरण को दूर करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु इन उपायों के बावजूद आय तथा धन की असमानता बढ़ती जा रही है।
- National Council for Applied Economic Research-NCAER द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट के अनुसार देश के शीर्ष 20% धनी लोगों के पास देश की कुल आय का 53.2% भाग है। जबकि नीचे के 40% लोगों के पास कुल आय का मात्र 15.9% भाग है।
- एकाधिकार जांच आयोग (Monopolies Inquiry Commission) के अनुसार, देश की 1536 कंपनियां केवल 75 परिवारों के नियंत्रण में हैं। आय का असमान वितरण न केवल वर्तमान निर्धनता प्रकट करता है बल्कि, यह धनी लोगों तथा निर्धन वर्ग के मध्य अत्यधिक अंतर को भी दर्शाता है।

गरीबी दूर करने के उपाय (Remedies to Poverty Reduction)

भारत में व्याप्त निर्धनता को दूर करने के सभी उपायों को चार श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है, जो निम्नवत हैं-

सकल घरेलू उत्पाद में संवृद्धि के द्वारा निर्धनता का सामना करना (Combating Poverty Through GDP Growth)

- सकल घरेलू उत्पाद में तीव्र संवृद्धि प्राप्त करके निर्धनता के विरुद्ध प्रभावी कदम उठाए जा सकते हैं। जब जीडीपी की वृद्धि दर ऊंची होती है तब रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं। कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरों को रोजगार उपलब्ध होता है। जिससे निर्धन वर्ग की आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार वे धीरे-धीरे निर्धनता की स्थिति से बाहर निकल आते हैं।
- **रोजगार-रहित विकास से बचना (Avoid Jobless Growth)** – जब जीडीपी में वृद्धि उत्तम प्रौद्योगिकी के कारण होती है और रोजगार का सृजन नहीं होता है, तो इसे रोजगार-रहित वृद्धि कहा जाता है। निर्धनता केवल तब ही कम होगी जब विकास के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उत्पादन प्रक्रिया पूंजी प्रधान तकनीक के स्थान पर श्रम प्रधान हो।

आय के वितरण में राजकोषीय तथा कानूनी उपायों के माध्यम से निर्धनता का सामना करना (Combating Poverty by Improving the Distribution of Income Through Fiscal and Legislative Measures)

- राजकोषीय उपाय (Fiscal Measures) कराधान और आर्थिक सहायता से संबंधित हैं। निर्धनता कम करने के लिए सरकार प्रगतिशील कर प्रणाली को अपना सकती है। इसका अर्थ है, धनी वर्ग की आय एवं संपत्ति पर कर की अपेक्षाकृत ऊंची दर रखना। आर्थिक सहायता का अर्थ है कि, सरकार को कर प्राप्ति का प्रयोग समाज के निर्धन वर्ग द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं हेतु सब्सिडी के रूप में किया जा सकता है।
- कानूनी उपायों (Legislative Measures) के अंतर्गत, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (Minimum Wages Act) शामिल है, जिसमें अनुबंधित न्यूनतम मजदूरी प्रदान करने का प्रावधान है जो नियोक्ताओं के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी है। कानूनी उपायों के अंतर्गत कृषि उत्पादों की खरीद के लिए आधार कीमत (Floor Price) जैसी नीतियां भी शामिल हैं। आधार कीमत से अभिप्राय उस अनुबंधित न्यूनतम कीमत से है, जिस पर किसानों के उत्पाद क्रय किए जाते हैं। शिक्षा का अधिकार (Right to Education) जैसे प्रावधान कानूनी उपायों के अन्य उदाहरण हैं जो समाज के निर्धन वर्ग के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए आवश्यक है।

जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी

गरीबी को दूर करने के लिए जनसंख्या की वृद्धि दर पर रोक लगाना आवश्यक है। भारत का अनुभव यह दर्शाता है कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि काफी मात्रा में निष्प्रभावी रही है। इसके फलस्वरूप प्रतिव्यक्ति आय (राष्ट्रीय आय/जनसंख्या) निम्न ही बनी हुई है। गरीबी का बंधन तभी तोड़ा जा सकता है जब जनसंख्या की वृद्धि पर रोक लगाई जाए ताकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि का प्रतिबिंब प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के रूप में दिखलाई दे। प्रति व्यक्ति आय में जैसे कि महत्वपूर्ण वृद्धि दिखलाई देती है, इसका अधिक बचत तथा निवेश के माध्यम से आय में वृद्धि पर गुणक प्रभाव पड़ेगा। अधिक आय (प्रतिव्यक्ति) का अर्थ होगा अधिक बचत, अधिक निवेश, अधिक उत्पादन, अधिक रोजगार और अन्ततः कम निर्धनता।

निर्धनों के जीवन में गुणवत्ता को बढ़ाने वाले अन्य उपाय

- **कृषि का विकास (Development of Agriculture)** – मिन्हास का यह विचार है कि गरीबी को दूर करने के लिए कृषि का विकास करने का

विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिए। कृषि का यंत्रीकरण तथा आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए। उन्नत बीज, सिंचाई के साधनों तथा रासायनिक और कम्पोस्ट खाद का विशेष प्रयोग किया जाना चाहिए, छोटे किसानों को उचित प्रकार की आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। भूमिहीन किसानों को अधिक भूमि दी जानी चाहिए। इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप जनसाधारण स्तर पर गरीबी को कम या दूर किया जा सकता है।

- **कीमत स्तर में स्थिरता (Stability in the Price Level)** – गरीबी उन्मूलन के लिए कीमत स्थिरता एक आवश्यक शर्त है। यदि कीमतों में निरंतर वृद्धि होती रहेगी तो गरीब लोगों का जीवन स्तर और भी नीचा होता जाएगा। कीमतों में स्थिरता तभी लाई जा सकती है जब (i) खाद्य तथा अन्य आम वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाएगा और (ii) सामान्य उपभोग वाली वस्तुओं का गरीब वर्ग में वितरण 'उचित मूल्य दुकानों' द्वारा किया जाएगा।

बेरोजगारी का उन्मूलन (Eradication of Unemployment) – यदि गरीबी को दूर करना है तो बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी तथा छिपी बेरोजगारी को दूर करने के विशेष उपाय अपनाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने के अधिक अवसर हैं, उसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में विशेष रूप से कुटीर उद्योग, निर्माण आदि क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शिक्षित बेरोजगारी को कम करने के लिए शिक्षा प्रणाली को व्यावसायिक बनाना समय की मांग है।

- **उत्पादन तकनीक में परिवर्तन (Change in Technique of Production)** – प्रो. गुन्नार मिर्डल के अनुसार, भारत में उत्पादन की श्रम प्रधान तकनीक (Labour Intensive Technique) अपनाई जानी चाहिए। इस तकनीक को अपनाने से रोजगार की मात्रा बढ़ेगी तथा गरीबी दूर हो सकेगी।
- **न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of minimum Needs)** – सरकार को गरीबों की न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे पीने का पानी, प्राथमिक चिकित्सा, प्राथमिक शिक्षा आदि को संतुष्ट करने के प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक से अधिक व्यय करना चाहिए। इसी क्रम में एक प्रभावी सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक महत्वपूर्ण पहल है।
- **पिछड़े क्षेत्रों पर विशेष ध्यान (Special Focus on Backward Regions)** – भारत में कुछ क्षेत्र जैसे उड़ीसा, नागालैंड, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में गरीबों का अनुपात दूसरे प्रदेशों से अधिक है। सरकार को पिछड़े इलाकों में विशेष सुविधाएं देनी चाहिए, जिससे निजी पूंजी उन प्रदेशों में निवेश की जा सके।
- **स्वयं रोजगार के लिए अवसर (Opportunities for Self Employment)** – स्वयं रोजगार की अवस्था प्राप्त करने के लिए अवसरों की अधिक खोज की जानी चाहिए। औद्योगिक तथा उद्यमीय शिक्षा प्रदान करने के लिए अधिक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (Industrial Training Institutes) खोले जाने चाहिए। स्वयं रोजगार के साधनों के रूप में लघु उद्यम स्थापित करने के लिए कम ब्याज दरों पर ऋण (बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा) उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम (Steps Taken by Government)

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (Swarn Jayanti Gram Swarozgar Yojana SGSY)

'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना' गांवों में रहने वाले गरीबों के लिए स्व-रोजगार (Self Employment) का एक अकेला कार्यक्रम है। यह योजना 1 अप्रैल, 1999 को शुरू की गई। इस योजना में स्व-रोजगार के लिए पहले से लागू

की जाने वाली सभी योजनाओं को शामिल कर लिया गया है। जैसे—(i) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme-IRDP)] (ii) स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training for Rural Youth for Self Employment- TRYSEM) आदि। इस योजना की विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

इस योजना के अंतर्गत गांवों में भारी संख्या में छोटे-छोटे उद्यमों की स्थापना की गयी। इन छोटे उद्यमों को व्यक्तिगत रूप में तथा सामूहिक रूप में आत्म निर्भर समूहों (Self Help Groups- SHG) के आधार पर संगठित किया जाता था। वर्ष 2011-12 में SGSY के 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' में पुनर्नियोजित कर दिया गया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (National Rural Rozgar Yojana-SGRY)

यह कार्यक्रम 2012-13 से औपचारिक रूप से देश में लागू किया गया। प्रारंभ में इस योजना को 2012-13 में 150 जिलों में लागू किया, 2016-17 तक इस योजना से 90 लाख लोगों को स्व-रोजगार के अवसर प्रदान करने का लक्ष्य था। नवंबर, 2015 में, कार्यक्रम का नाम बदलकर 'दीनदयाल अंत्योदय योजना' कर दिया गया।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (Pradhanmantri Gramoday Yojana-PGY)
यह योजना 2000-2001 में आरंभ की गई थी इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए पांच महत्वपूर्ण क्षेत्रों, (i) स्वास्थ्य, (ii) प्राथमिक शिक्षा, (iii) पेयजल, (iv) आवास तथा (v) सड़कों का विकास करना है। बाद में विद्युतीकरण का एक अतिरिक्त घटक इनमें जोड़ा गया।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (The Swarn Jayanti Shahri Rozgar Yojana)

इस योजना का आरंभ 1 दिसंबर, 1997 से हुआ है। इस योजना में शहरी बेरोजगारी (Urban Unemployed) को रोजगार प्रदान करने से संबंधित योजनाओं जैसे (i) नेहरू रोजगार योजना (Nehru Rozgar Yojana) तथा (ii) प्रधानमंत्री समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन प्रोग्राम (Prime Minister's Integrated Urban Poverty Eradication Programme- PMIUPEP) आदि को मिला दिया गया है। इस योजना का उद्देश्य शहरी बेरोजगारी तथा अल्परोजगार वाले लोगों को स्वरोजगार अथवा मजदूरी रोजगार प्रदान करना है। इसके अंतर्गत दो योजनाएं शामिल हैं।

- शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम (Urban Self Employment Programme-USEP)।
- शहरी वेतन रोजगार कार्यक्रम (Urban Wage Employment Programme-UWEP)।

इस योजना का 75% खर्च केंद्रीय सरकार तथा 25% खर्च राज्य सरकार द्वारा दिये जाने का प्रावधान था।

अंत्योदय अन्न योजना (AAY)

'अंत्योदय अन्न योजना' (AAY) भारत में 2000 से लागू सार्वजनिक वितरण प्रणाली योजनाओं में से एक है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना व भूख मुक्त भारत बनाना है।

इस योजना में देश के 1 करोड़ सबसे गरीब परिवारों को प्रतिमाह 35 किलोग्राम अनाज विशेष रियायती मूल्य पर उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना के तहत जारी किये जाने वाले गेहूँ व चावल का केंद्रीय निर्गम मूल्य क्रमशः ₹. 2/ कि.ग्रा. तथा ₹. 3/कि.ग्रा. है। यह योजना केंद्रीय उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं

सार्वजनिक वितरण मंत्रालय (Ministry of Consumer Affairs Food and Public Distribution) के तहत प्रारंभ की गई है, जिसके अंतर्गत लगभग 5 करोड़ लोग (1 करोड़ परिवार) लाभान्वित होते हैं।

अन्नपूर्णा योजना (Annapurna Yojana)

वर्ष 2000 में गरीबी रेखा के नीचे (BPL) जीवनयापन करने वाले वृद्धजनों की सहायता के लिए शुरू की गई। इस योजना का लक्ष्य, उन वरिष्ठ नागरिकों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराना, जो किसी कारण से 'राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना' के अंतर्गत कवर किए जाने से छूट गये हों। 'अन्नपूर्णा योजना' को कालांतर में नए संशोधित 'राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना' (National Old Age Pension Scheme-NOAPS) में विलय कर दिया गया।

15 अगस्त, 1995 से शुरू किए गए 'राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम' (National Social Assistance Programme - NSAP) के एक घटक (Component) के रूप में कार्यान्वित राष्ट्रीय 'वृद्धावस्था पेंशन योजना' के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे 65 वर्ष से अधिक उम्र के वृद्ध बेसहारा लोगों को मासिक पेंशन उपलब्ध कराई जाती है।

भारत निर्माण योजना (Bharat Nirman Yojana)

केन्द्र सरकार द्वारा देश भर के गाँवों में आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए भारत निर्माण योजना की शुरुआत नई दिल्ली में 16 दिसम्बर, 2005 को की गई। कुल 1,74,000 रुपये करोड़ वाली इस महत्वाकांक्षी परियोजना (Ambitious Project) के अंतर्गत देश की ग्रामीण अवसंरचना के निर्धारित छह प्रमुख क्षेत्रों में तय किए गए लक्ष्यों को चार वर्षों में प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। ये छह प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

- **सिंचाई (Irrigation):** लक्ष्य वर्ष तक निर्धारित अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की व्यवस्था करना। (1 करोड़ हेक्टेयर भूमि की अतिरिक्त सिंचाई)।
- **आवास (Shelter):** लक्ष्य वर्ष तक 'इंदिरा आवास योजना' के अंतर्गत गरीबों के लिए आवासों का निर्माण करना।
- **सड़क (Roads):** लक्ष्य वर्ष तक 500 की आबादी वाले सभी जनजातियों और पहाड़ी गाँवों तथा 1000 तक की आबादी वाले सभी गाँवों को 'प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना' (PMGSY) के अंतर्गत एक-दूसरे से जोड़ना।
- **जलापूर्ति (Water Supply):** लक्ष्य वर्ष तक सभी गाँवों को पीने का पानी उपलब्ध कराना। साथ ही घटिया पेयजल वाले क्षेत्रों में पेयजल की गुणवत्ता सुधारना।
- **दूरसंचार (Tele Communication):** लक्ष्य वर्ष तक गाँवों में टेलीफोन की सुविधा उपलब्ध कराना।
- **विद्युतीकरण (Electrification):** लक्ष्य वर्ष तक बचे हुए सभी गाँवों में बिजली पहुँचाना तथा राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (RGGVY) के तहत शेष घरों को बिजली कनेक्शन की सुविधा प्रदान करना। भारत सरकार की इस महत्वाकांक्षी परियोजना के लिए विशाल बजटीय राशि देने का निर्णय लिया गया। विश्व बैंक (World Bank) ने भी भारत के ग्रामीण अवसंरचना (Infrastructure) के विकास के लिए तीन वर्षों में एक-एक अरब डॉलर प्रति वर्ष के हिसाब से 3 अरब डॉलर की सहायता की पेशकश की।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (National Rural Health Mission-NRHM)

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन नामक कार्यक्रम की शुरुआत 12 अप्रैल, 2005

पोषण अभियान

को ग्रामीण क्षेत्रों (Rural Areas) में निर्धनतम परिवारों (Poorest Families) को विश्वसनीय तथा गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ (Quality Health Services) उपलब्ध कराने हेतु की गई थी।

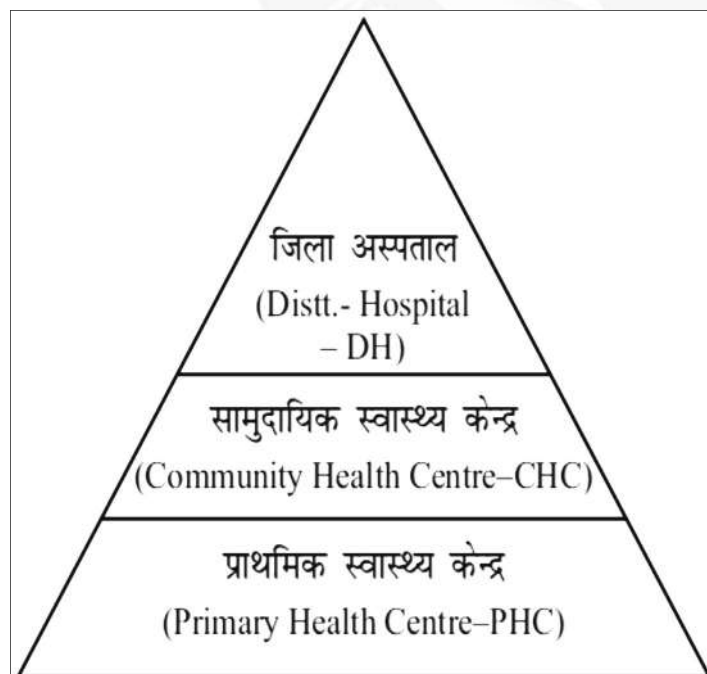
इस कार्यक्रम को पूरे देश में कार्यान्वित किया जा रहा है और 18 राज्यों पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस मिशन का उद्देश्य राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (National Population Policy, 2000) और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (National Health Policy) दोनों के ही लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

मिशन के संभावित निष्कर्षों में शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Ratio – IMR) में 30 प्रति 1000 जीवित जन्म (Live Birth) से नीचे तक कटौती, मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Ratio – MMR) के 100 प्रति 1,00,000 जीवित जन्म से नीचे आने तथा कुल प्रजनन दर (Total Fertility Ratio – TFR) को 2.1 प्रति महिला पर लाना सम्मिलित था।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की क्रियाविधि (Process to Conduct National Rural Health Mission): हर गाँव में कुछ महिलाओं को स्वास्थ्य परिचारिका का प्रशिक्षण (Training) दिया जाता है और फिर इन परिचारिकाओं को सरकारी स्वास्थ्य केंद्र (Government Health Centre) द्वारा औपचारिक (Formal) मान्यता प्रदान की जाती है, जिसके बाद उन्हें सरकार से प्रतिमाह भत्ता मिलने लगता है, ताकि वे लोगों को स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में उचित परामर्श (Consultancy) दे सकें। इन स्वास्थ्य परिचारिकाओं को मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता – आशा (Accredited Social Health Activist – ASHA) के नाम से जाना जाता है। इन्हें एक अन्य नाम भी दिया गया है – ‘सखी’ या ‘स्वास्थ्य सखी’। लगभग प्रति 1000 ग्रामीण जनसंख्या पर एक ‘आशा’ कार्य करती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाओं का पुनरुत्थान किया गया है जो कि त्रिस्तरीय होती है:

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) के तहत स्वास्थ्य कर्मियों की भर्ती की प्रक्रिया में इन दिनों काफी तेजी आई है तथा निजी स्वास्थ्य कर्मियों के ऊपर सरकारी स्वास्थ्य संस्थाओं की प्रतिस्पर्धा पैदा की गई है। इससे स्वास्थ्य अधिकारिता में सुधार आया है और स्वास्थ्य अधिकारिता में सुधार से मातृ मृत्यु दर व शिशु मृत्यु दर में कमी आई है।



1 दिसम्बर, 2017 को सरकार ने नेशनल न्यूट्रिशन मिशन शुरू करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया तथा जिसे 2018 से शुरू किया गया। यह योजना महिला तथा बाल विकास, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय, जल संसाधन तथा नीति आयोग के संयुक्त सहयोग से शुरू हुई। यह स्वास्थ्य क्षेत्र की यह एक अत्यन्त ही महत्वाकांक्षी योजना है। यह स्वास्थ्य मंत्रालय का फ्लैगशिप प्रोग्राम है, जो विभिन्न कार्यक्रमों के अभिसरण पर आधारित है यथा आंगनवाड़ी सेवा, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना, जननी सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, स्वच्छ भारत मिशन, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, मनरेगा इत्यादि। इसके प्रमुख बिन्दु निम्नांकित हैं-

- मिशन के अंतर्गत एक शीर्षस्थ संस्था (Apex body) का निर्माण किया जाना है, जो सभी मंत्रालयों के बीच पोषण सम्बन्धी हस्तक्षेपों के सम्बन्ध में मॉनिटरिंग, पर्यवेक्षण, सुपरविजन, लक्ष्य निर्धारण आदि कार्य करेगी।
- यह स्कीम निम्नांकित से संबंधित होगी।
 - कुपोषण से संबंधित सभी स्कीमों को एक साथ जोड़ना। इन्हें मिलाने के संबंध में व्यापक तथा प्रभावी प्रणाली विकसित करना।
 - लक्ष्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों को प्रोत्साहित करना।
 - आंगनवाड़ी कार्मिकों को आइटी आधारित तरीकों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना।
 - आंगनवाड़ी केंद्रों पर बच्चों की ऊँचाई की माप की व्यवस्था करना।
 - मिशन के अंतर्गत होने वाले कार्य की प्रगति की जांच के लिए सामाजिक आडिट (Social Audit) की व्यवस्था करना, न्यूट्रिशन रिसोर्स सेन्टर खोलना तथा जन आंदोलन के द्वारा लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।
- मिशन के अंतर्गत बच्चों में नाटेपन (Stunning) को 38.4 प्रतिशत से घटाकर 2022 तक 25 प्रतिशत लाने का लक्ष्य रखा गया है। मिशन में जन्म के समय अल्पवजन को 2 प्रतिशत तथा छोटे बच्चों, औरतों तथा किशोर लड़कियों में खून की कमी एनीमिया (Aneamia) में 3 प्रतिशत वार्षिक कमी लाने का लक्ष्य रखा गया है।
- मिशन के अंतर्गत क्रियान्वयन की मॉनिटरिंग अधिक उत्तम ढंग से करने के लिए इससे लाभार्थियों को आधार के साथ जोड़ा जायेगा। इस मिशन के तहत, पहले चरण में कवर होने वाले 42 लाख बच्चों में से 50 प्रतिशत पहले से भी इसके साथ जुड़े हैं।
- मिशन पोषण 2.0 देश के स्वास्थ्य एवं खुशहाली हेतु पोषण को एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में रेखांकित किया गया है। पोषण को मजबूत करने हेतु केंद्रीय बजट 2021-22 में 'संपूरक पोषण कार्यक्रम तथा पोषण अभियान' का विलय करते हुए 'पोषण मिशन 2.0' प्रारंभ करने की घोषणा की गयी।
- **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना** : ये श्रम बाजार, विशेष रूप से श्रम बाजार और कक्षा X और XII छोड़ने वालों के लिए प्रशिक्षण देकर स्किल का विकास करना है जिससे इन्हें भविष्य में रोजगार के अवसर मिल सके।
- **प्रधानमंत्री जन-धन योजना** - इसका उद्देश्य सब्सिडी, पेंशन, बीमा आदि का प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण करना था और 1.5 करोड़ बैंक खाते खोलने का लक्ष्य प्राप्त किया। यह योजना विशेष रूप से असंवद्ध गरीबों को लक्षित करती है।
- **महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) 2005** - यह अधिनियम प्रत्येक ग्रामीण परिवार को हर साल 100 दिनों का सुनिश्चित रोजगार प्रदान करता है। कार्यक्रम के तहत, यदि किसी आवेदक

को 15 दिनों के भीतर रोजगार प्रदान नहीं किया जाता है, तो वो दैनिक बेरोजगारी भत्ता पाने का हकदार है।

कोरोना काल में मनरेगा के तहत, सबसे ज्यादा रोजगार लोगों को मिला। भारत सरकार मनरेगा में काम करने वाले मजदूरों की प्रतिदिन मजदूरी बढ़ाकर 202 रुपये कर दी। बजट वित्त वर्ष 2022-23 में मनरेगा के लिए 73,000 करोड़ रुपये बजट का प्रावधान किया गया है।

- **प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना:** इस योजना का उद्देश्य सभी कमजोर भूमि धारी किसान जिनके पास 2 हेक्टेयर तक खेती योग्य भूमि है, उन्हें 6000 रुपये प्रतिवर्ष प्रदान किया जाएगा। (2000 रुपये की तीन किस्त में) यह योजना पूरी तरह से केंद्र प्रायोजित योजना है। इसके लिए बजट वर्ष 2022-23 में 68,000 करोड़ रुपये का प्रावधान है।

कुपोषण मुक्त भारत-नेशनल न्यूट्रिशन स्ट्रैटेजी

बच्चों, औरतों तथा किशोरियों में कुपोषण की गम्भीरता को दृष्टि में रखते हुए नीति आयोग ने 'नेशनल न्यूट्रिशन स्ट्रैटेजी' का प्रारूप तैयार किया। नीति आयोग के चेयरमैन राजीव कुमार ने 5 सितम्बर, 2017 को लागू किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य कुपोषण मुक्त भारत की संकल्पना 2022 को साकार करना है तथा पोषण को 'डेवलेपमेंट एजेन्डा' के केंद्र बिन्दु में स्थापित करना है। कुपोषण मुक्त भारत को स्वच्छ भारत तथा स्वस्थ भारत की संकल्पना के साथ जोड़ दिया गया है। कुपोषण मुक्त भारत, स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, नेशनल हेल्थ मिशन, नेशनल न्यूट्रिशन मिशन आदि सभी परस्पर संबद्ध धारणाएँ हैं।

स्ट्रैटेजी में पोषण के कुछ क्षेत्रों को रेखांकित किया गया है- जिनमें स्वास्थ्य सेवाएँ, खाना, पेयजल, सफाई, आय एवं जीवन निर्वाह आदि शामिल हैं। इन्हें परस्पर संबंधित करने तथा एक साथ अभिसरण (कनवरजेन्स) करने की कोशिश की गयी है।

यह स्ट्रैटेजी प्रभावी क्रियान्वयन के लिये रोडमैप (खाका) तैयार करती है, जिससे पोषण के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। यह स्थानीय प्रवर्तन तथा विकेंद्रीकृत योजना के द्वारा राज्यों को स्ट्रैटेजिक चुनावों (Choices) के लिए मौका देती है।

'नेशनल न्यूट्रिशन स्ट्रैटेजी' के अंतर्गत निगरानी योग्य लक्ष्य इस प्रकार हैं-

निगरानी योग्य परिणाम		वर्तमान स्थिति	लक्ष्य 2022 तक
1.	5 वर्ष से कम उम्र अल्प वजन (2SD से नीचे) के प्रतिशत में कमी लाना	35.7	30.7
2.	6-59 महीनों के बच्चों में प्रायः पायी जाने वाली एनीमिया में कमी लाना	58.4	19.5
3.	औरतों तथा लड़कियों (15- 49 वर्ष) में पायी जाने वाली एनीमिया में कमी लाना	53.1	17.1

स्पष्ट है कि 'नेशनल न्यूट्रिशन स्ट्रैटेजी' राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों, जिससे समावेशी विकास के लक्ष्य तथा गरीबी व उसके प्रभाव को कम करने के लक्ष्य को भी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। इसी के द्वारा हम दीर्घकाल में मातृत्व मृत्युदर तथा शिशु मृत्युदर में कमी लाने के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम- एक आलोचनात्मक मूल्यांकन (Poverty Alleviation Programmes- A Critically Evaluation)

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के निष्पादन का मूल्यांकन करने हेतु किए गए अध्ययन से ज्ञात होता है कि गरीबी उन्मूलन की दिशा में कुछ प्रगति हुई है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं।

- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के प्रतिशत में कमी हुई है। सन् 1973-74 में यह 55% थी जो 2011-12 में 21.9 प्रतिशत रह गई है।
- गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के कारण निर्धन लोगों की मजदूरी अर्थात् आय में वृद्धि हुई है। इससे उनके पोषण स्तर (Nutritional Level) में वृद्धि को सहायता प्राप्त हुई है। किन्तु इन कार्यक्रमों से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। इनकी विफलता के कारण निम्नलिखित हैं-
 - जटिल कार्यविधि के कारण प्रशासन तथा कार्यान्वित करने वाले कर्मचारीगण प्रभावपूर्ण ढंग से अपना कार्य संपन्न नहीं कर सके। उनकी प्रगति के पर्यवेक्षण का भी कोई प्रबंध नहीं था।
 - कार्यक्रम को चलाने वाले अधिकारी भी निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा धनी, शिक्षित तथा साधन संपन्न व्यक्तियों का ही समर्थन करते थे।
 - दूरस्थ क्षेत्रों तथा निर्धन गृहस्थों जो गांवों के भीतरी भागों में रहते थे उनकी अवहेलना की गई क्योंकि उन तक पहुंचना कठिन था।
 - साख, विपणन, आदि सुविधाएं प्रदान करने वाली जिन संस्थाओं की आवश्यकता थी, उनसे विशेष समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।
 - कई लोगों के लिए 'निर्धन' की परिभाषा स्पष्ट नहीं थी। फलस्वरूप कई 'गैर निर्धन' व्यक्तियों ने कार्यक्रमों का लाभ उठाया।
 - गांवों के स्थानीय शक्तिशाली समूहों ने कार्यक्रम को कार्यान्वित करने वाले अधिकारियों से मिल कर वितरण प्रणाली को अपने पक्ष में कर लिया। फलस्वरूप, वास्तव में जो निर्धन हैं वह समूह कार्यक्रम के लाभों से वंचित रहा।
 - गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सरकार द्वारा समर्थित कार्यक्रम थे, आम जनता का इसे समर्थन प्राप्त नहीं था।

भारत में गरीबी दूर करने की रणनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के छह दशकों के बाद भी देश में इतने गरीब क्यों हैं? इसके प्रमुख कारण हैं- कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता, जीवन निर्वाह के परंपरागत तरीकों में ठहराव, जनसंख्या को रोजगार का अवसर न मिलना, प्रौढ़ अशिक्षा की ऊंची दर, भूमिहीनों की ज्यादा संख्या और सीमांत किसानों के लिए किसी भी प्रकार की आय का सहारा न होना। साथ ही अत्यधिक निर्धनता का एक और प्रमुख कारण है, औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का अभाव। यहां यह महत्वपूर्ण नहीं है कि निर्धनता को अशोधित तरीके से या परिष्कृत रूप से कैसे परिभाषित किया जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि अच्छी नियत से बनायी गयी योजनाओं के बाद भी बड़े पैमाने पर गरीबी उन्मूलन नहीं हो सका है।

रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित करना, इस संदर्भ में निम्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों पर जोर दिया जा सकता है-

- विनिर्माण (Manufacturing)
- निर्माण (Construction)
- Labour- Intensive service

इन गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जा सकता है: विश्वस्तरीय आधारीक संरचना सुनिश्चित करना।

- श्रम बाजार संबंधी सुधार करना।
- स्वस्थ प्रतियोगिता को बाजार में बढ़ावा देना।
- व्यवसाय करने के वातावरण को आसान बनाना।
- लोगों को व्यवसायिक शिक्षा व प्रशिक्षण देना।

कृषि उत्पादकता को बढ़ाना, इसके लिये निम्न बातों पर ध्यान दिया जा सकता है-

- कृषि से जुड़े बुनियादी ढांचे का विकास करना, विशेष रूप से सिंचाई संबंधी सुविधाओं का।
- कीमत समर्थनों का विवेकीकरण करना,
- नई तकनीकों को लागू करना,
- किसानों तक तकनीकों को पहुँचाना,
- भूमि सुधारों को लागू करना।

मूलभूत सेवाओं पर सरकारी खर्च को बढ़ाना भी गरीबी निवारण की एक महत्वपूर्ण रणनीति है। यह कहा जाता है कि भारत की मूलभूत सेवायें 50% तक ही प्रभावी हैं। इस संदर्भ में निम्न बातों पर ध्यान दिया जा सकता है—

- सामुदायिक भागीदारी,
- निजी व सामाजिक क्षेत्र की भागीदारी,
- तकनीकी का प्रयोग।

टपकन थ्योरी और गरीबी (Trickle Down Theory & Poverty)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत के सामने 'गरीबी' सबसे बड़ी समस्या थी, जिसे दूर करने के लिए जवाहर लाल नेहरू जी के नेतृत्व में 'पंचवर्षीय योजना' का निर्माण किया गया और गरीबी निवारण का उपाय ढूँढ़ा गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसके लिए औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया गया।

इस समय औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए ब्याज की दरों को कम किया गया। औद्योगिक क्षेत्र के करों में छूट दी गयी ताकि पूँजी की मात्रा को बढ़ाया जा सके। यह माना जाता है कि इससे Growth का स्तर बढ़ेगा, लोगों की आय बढ़ेगी और वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर लेंगे। औद्योगिक सब्सिडी एवं निवेश को भी प्रोत्साहित किया गया। साथ ही औद्योगिक विकास को मजबूत करने हेतु आवश्यक कुशल मानवीय संसाधन के निर्माण हेतु IIT, IIM जैसे तकनीकी संस्थान की भी स्थापना की गई।

इसके पीछे मान्यता या उद्देश्य यह था कि औद्योगिक क्षेत्र के विकास से एवं तकनीकी संस्थानों के विकास से विकास का एक क्रम पूरे देश में चलेगा और वह विकास छन-छन कर नीचे की तरफ अर्थात् गरीबों तक पहुँचेगा। जिसे ऊपर से नीचे विकास का क्रम (Top to Bottom) कहा गया। इस सिद्धांत में श्रम सुधार, राजकोषीय सुधार आदि बातों पर तो ध्यान दिया गया, परन्तु कृषि जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ (Backbone) थी उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया जबकि इसी पर भारतीय ग्रामीण समाज का एक बड़ा वर्ग निर्भर था।

भारत समेत दुनिया के लगभग सभी राष्ट्रों में टपकन थ्योरी (Trickle Down Theory) की रणनीति लगभग विफल हो गयी। निःसंदेह यह सिद्धांत विफल माना जा सकता है क्योंकि इसमें भारतीय कृषि, कुटीर एवं लघु उद्योग की उपेक्षा की गई, जिससे समाज का औद्योगिक वर्ग तो अमीर होता गया परन्तु एक वर्ग गरीबी की दलदल में फँसता गया जो वर्तमान में इंडिया एवं भारत के रूप में देश की दो अलग-अलग तस्वीर प्रस्तुत करता है।

भारत में टपकन थ्योरी (Trickle Down Theory) की रणनीति के विफल होने के पीछे निम्न कारणों को उत्तरदायी माना जा सकता है—

- आर्थिक उदारीकरण के लागू होने के बाद भारत के कृषि क्षेत्र पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया जबकि भारत की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 49% भाग अपने रोजगार के लिये कृषि पर निर्भर है।
- विश्व बैंक के अर्थशास्त्री गौरवदत्त के अनुसार 'आर्थिक उदारीकरण के साथ भारत में ग्रामीण औद्योगिकीकरण पर ध्यान नहीं दिया गया।'
- भारत में MSMEs के विकास पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया जब कि ये बड़े उपक्रमों की तुलना में 7 गुना अधिक (Labour Intensive) श्रम गहन होते हैं अर्थात् ये बड़े उपक्रमों की तुलना में 7 गुना अधिक रोजगार दे सकते हैं।

- आर्थिक उदारीकरण के लागू होने के बाद भारत में न केवल ब्याज दरें कम हुई बल्कि FDI के उदारीकरण तथा घरेलू वित्त बाजार में सुधारों के कारण पूँजी की उपलब्ध मात्रा में बढ़ोत्तरी हुयी। इसके कारण उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम के स्थान पर पूँजी के प्रतिस्थापन को अधिक बढ़ावा मिला।

- प्रो. विजयशंकर व्यास के अनुसार, भारत में टपकन थ्योरी के विफल होने का एक कारण यह भी रहा है कि निर्धन लोगों को आय अर्जन करने वाली संपत्तियों का वितरण नहीं किया गया। इस संदर्भ में विजयशंकर व्यास द्वारा कुशलताओं को भी सम्पत्ति माना गया।

इस प्रकार भारत में उपर्युक्त कारणों के चलते टपकन की रणनीति लगभग विफल हो गयी है। अतः जरूरी है कि भारत में नीचे वाले गरीब लोगों को उठाने की रणनीति को लागू किया जाए। इसके अलावा विकास के लिए बुनियादी सुविधाओं (Basic Needs Approach to Development) को तो लागू किया ही जाना चाहिए।

गरीबी निवारण के अन्य रणनीतिक उपाय

भारतीय अर्थव्यवस्था में 'जाम' (जनधन, आधार, मोबाइल) का प्रसार (Spreading JAM Across India's Economy)

वृहद स्तर पर, टेक्नोलॉजी की सहायता में लाभांश का सीधा हस्तांतरण (DBT) होने की स्थिति में देश के गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार अपेक्षित है। और इस प्रक्रिया में 'जाम' त्रिमूर्ति (जन-धन, आधार और मोबाइल) सरकार के प्रयास को सफल कर सकेंगे। गत वर्षों में 'जाम' की पैठ, आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है और लगभग 4 मिलियन एकाउंट, प्रति सप्ताह की दर से खोले गये हैं और कई मोबाइल-मनी-ऑपरेटर्स को लाइसेंस दिये गये हैं। सीधे नकदी हस्तांतरण से देश के गरीबों के आर्थिक जीवन में सुधार आ सकता है, आर्थिक क्षमता में वृद्धि हो सकती है, भ्रष्टाचार रूक सकता है और बाजार की उथल-पुथल पर काबू पाया जा सकता है। वृहद पैमाने पर लाभांश का सीधा हस्तांतरण, वास्तविक समय में, भारत सरकार का प्रमुख लक्ष्य है और गत वर्षों में इसमें उल्लेखनीय प्रगति भी हुई है।

'जाम' त्रिमूर्ति- जन-धन, आधार और मोबाइल के द्वारा सरकार को सीधे लाभांश हस्तांतरण योजना पर अमल करने में प्रभावी सहायता मिली है। उदाहरणस्वरूप यदि सरकार, कल 1000/- रु. प्रत्येक भारतीय के खाते में हस्तांतरित करना चाहे तो निम्न आवश्यकता होगी—

- सरकार द्वारा लाभार्थियों को चिह्नित करना।
- सरकार उनके खाते में धन का हस्तांतरण सीधे तौर पर कर सके।
- लाभार्थी को यह धनराशि आसानी से उपलब्ध हो।

पहले ही चरण की असफलता के कारण आगे की गलतियाँ जैसे धन का गलत जगह पहुँचना और धनी तथा अदृश्य घरों को उसका लाभ मिल जाता है। इससे सरकार को राजस्व हानि होती है। आगे के दो चरणों की असफलता से पात्र लाभार्थी, सरकारी लाभ से वंचित रह जाते हैं। सरकार को इन वंचित लाभार्थियों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए, क्योंकि इससे अत्यधिक निर्धन सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

“जाम” के संघटक (Ingredients of JAM): 'जाम' के आवश्यक संघटक इस प्रकार हैं—

- **सरकार → लाभार्थी: सही पहचान की चुनौती**— इस कार्य के लिए सरकार के पास आवश्यक डाटा-बेस होना आवश्यक है। लाभार्थियों का डाटा-बेस, 'आधार' व्यवस्था के पहले से मौजूद है परन्तु उसकी सत्यता और वैधता पर प्रशासनिक तथा राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण संदेहास्पद है। इसको तैयार करने में राजनैतिक एवं प्रशासनिक ढिलाई से पहचान-पत्र जैसे

बी.पी. एल कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस या वोटर में गड़बड़ियां और तत्पश्चात् लाभांश में हेरा-फेरी की संभावना बनी रहती है। 'आधार' की गुणवत्ता, मानवीय विचारशीलता के स्थान पर टेक्नोलॉजी आधारित है, परंतु इसे सरल बनाते हुए नागरिकों को अंगुलियों के निशान और पुतलियों की पहचान का तरीका अपनाया गया है। वर्ष 2015 में 210 मिलियन आधार-कार्ड, यानी 4 मिलियन कार्ड प्रति सप्ताह के दर से पंजीकृत किये गये हैं।

- **सरकार → बैंक: लाभार्थियों को भुगतान की चुनौती**- लाभार्थियों की पहचान के बाद सरकार द्वारा उन्हें लाभांश हस्तांतरित किया जाना चाहिए। जिसके लिए सरकार के पास इनकी खाता-संख्या होनी चाहिए। इस कठिनाई पर, 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना' के माध्यम से काफी हद तक काबू पा लिया गया है। गत वर्ष, रिकॉर्ड तेजी से 120 मिलियन बैंक खाते खोले गये, लगभग 3 लाख खाते प्रतिदिन। जन-धन की इस आश्चर्यजनक सफलता के बावजूद भी बचत खाते की पैठ, प्रदेशों में एकसमान नहीं रही है। अतः नीति-निर्धारकों को इस बात का संज्ञान लेना पड़ेगा, जन-धन योजना से वंचित लाभार्थियों तक सरकारी अनुदान कैसे पहुंच सकता है। जन-धन योजना और आधार की पैठ को तुलनात्मक रूप से देखने से यह प्रतीत होता है कि गैर-बैंकिंग कवरेज वाली जनसंख्या 'जाम' के प्रकार में एक अवरोधक के रूप में है।
- **बैंक → लाभार्थी: लाभार्थियों तक, अंतिम चरण के रूप में, धन पहुंचाने की चुनौती**- ग्रामीण-भारत के लाभार्थियों के घरों तक, अंतिम-मील या चरण के रूप में धन पहुंचाना एक बड़ी चुनौती है। देश में केवल 27% गांव ही ऐसे हैं जो किसी बैंक के पांच किमी के दायरे में स्थित हैं। इस समस्या से निपटने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने वर्ष 2015 में 23 नये बैंकों को (2 सर्वभौम बैंक, 11 अदायगी बैंक और 10 लघु वित्तीय बैंक) लाइसेंस दिया है। देश में 'जाम' के प्रसार से यह परिलक्षित होता है कि मोबाइल की पैठ पूरे भारत में, काफी गहरी हो चुकी है। इसके अतिरिक्त देश में, वर्तमान में लगभग 1.4 मिलियन एजेंट्स या सेवा-स्थल (Service Posts) मौजूद हैं जो 1010 मिलियन मोबाइल उपयोक्ताओं को (1:720 के अनुपात में) सेवा प्रदान कर रहे हैं।

भारत को गहरी मोबाइल पैठ और बड़े एजेंट नेटवर्क का लाभ उठाते हुए, मोबाइल टेक्नोलॉजी का अधिकाधिक इस्तेमाल करते हुए, सेवा-प्रदाता की गुणवत्ता में सुधार लाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, मोबाइल के जरिये ग्राहकों/लाभार्थियों को यह सूचना प्रदान की जा सकती है कि स्थानीय दुकान में राशन या खाद आ गयी है। यद्यपि इस वर्ष कुछ महत्वपूर्ण बदलाव किये गये हैं जिससे अंतिम-मील की वित्तीय-संबद्धता में सुधार हो सके। 'जाम' की शृंखला में बैंक एवं लाभार्थियों की चेन अब भी एक कमजोर कड़ी है।

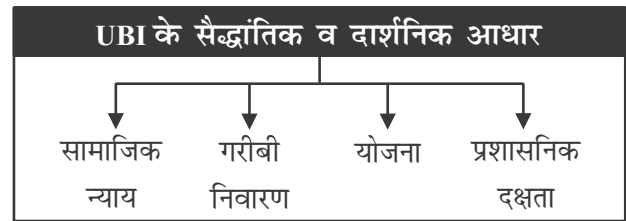
यूनिवर्सल बेसिक इनकम (Universal Basic Income - UBI)

यूबीआई एक न्यूनतम आधारभूत आय की गारंटी है जो प्रत्येक नागरिक को बिना किसी न्यूनतम योग्यता के जीविकोपार्जन हेतु प्रत्येक माह में सरकार के द्वारा दी जाएगी। यह व्यक्ति को किसी अन्य स्रोत से प्राप्त हो रही आय के अतिरिक्त प्राप्त आय होगी। यह बिना किसी उत्तरदायित्व के सभी व्यक्तियों को प्राप्त अधिकार है इसके लिए व्यक्ति को केवल भारत का नागरिक होना आवश्यक है।

यूबीआई की पृष्ठभूमि

- यूबीआई की अवधारणा को लागू करने के संदर्भ में स्विट्जरलैंड पहला ऐसा देश है, जिसने पिछले साल इस पर जनमत संग्रह किया। परन्तु यूबीआई के वित्तीय प्रभाव और इसकी वजह से लोगों में काम करने की प्रेरणा के खत्म होने की आशंका से स्विट्जरलैंड की जनता ने इसे खारिज कर दिया।

- वर्तमान में फिनलैंड ने यूबीआई को पायलट प्रोजेक्ट के तौर पर शुरू किया है, जिसके तहत बहुत थोड़े से लोगों को हर महीने 595 डॉलर के बराबर की राशि दी जाएगी।



यूबीआई के पक्ष में तर्क

- प्रत्येक व्यक्ति को एक न्यूनतम आय की गारंटी प्रदान करने का यह विचार, निश्चित तौर पर संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किए गए गरिमायुक्त जीवन जीने के अधिकार को वास्तविकता प्रदान करेगा।
- सरकार द्वारा नियत राशि दिये जाने से गरीबी और गरीबी के कगार पर खड़े लोग उपभोग के एक निश्चित स्तर को प्राप्त कर सकेंगे और इस तरह वे अपनी आर्थिक दशा सुधारने में सक्षम हो सकेंगे।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में जहाँ असंगठित क्षेत्र में 90% कामगार हैं, बहुत से लोग जो निःशक्त व भिक्षावृत्ति से जुड़े हैं, एवं विभिन्न प्रकार की अनियोजित विकासात्मक गतिविधि के कारण पलायन को मजबूर हैं, उन्हें आर्थिक असुरक्षा के भय से मुक्ति मिलेगी।
- कल्याणकारी व्यय के उपयोग की जिम्मेदारी अब नागरिकों पर भी होगी एवं लेटलतीफी, अफसरशाही, लाभों के मनमाने वितरण आदि की समस्याओं से मुक्ति मिलेगी।

यूबीआई के संभावित लाभ

- यूबीआई का सबसे बड़ा लाभ है, इसका यूनिवर्सल या सार्वभौमिक होना, अर्थात् किसी वर्ग विशेष को या किसी जरूरतमंद वर्ग समूह को अलग से चिह्नित या लक्षित न करके सभी को एक न्यूनतम धनराशि उपलब्ध कराना।
- साथ ही मौसमी व प्रच्छन्न बेरोजगारी, आपदा, रोगावस्था, निःशक्तता एवं नियोजित शोषण की अवस्था में व्यक्ति रोजगार के अभाव में भी अपना जीवनयापन कर सकेगा।
- प्रणाली क्षरण (System Leakage) की समस्या कम होगी एवं जैम प्रणाली (जनधन, आधार, मोबाइल) के उपयोग से लाभार्थी तक सीधे पहुँचा जा सकेगा।
- धन के आवंटन, निगरानी व भ्रष्टाचार पर अंकुश के अनावश्यक दायित्व से नौकरशाही मुक्त होगी।
- जिससे विकास के अन्य कार्यों को गति मिलेगी।

यूबीआई के विपक्ष में तर्क

- एक सतत् सर्वजनीन बुनियादी आय लोगों में कार्य करने के प्रोत्साहन को कम कर सकती है।
- हमारे पितृसत्तात्मक समाज में सरकार द्वारा महिलाओं को जो बुनियादी आय प्रदान की जाएगी, उस पर संभव है कि पुरुषों का नियंत्रण हो जाए।
- यूबीआई से मजदूरी की दर बढ़ने से, वस्तुओं या सेवाओं की मूल्य वृद्धि से महंगाई का ऊर्ध्वाधर चक्र शुरू हो जाएगा।
- बेसिक आय के स्तर को उच्च बनाए रखने में भारत का राजकोषीय संतुलन प्रभावित होगा।

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न (Some Important Question)

- क्या यूबीआई जनकल्याण की अन्य दूसरी योजनाओं को विदा कर देगी? यदि हाँ तो सरकारी सहायता के अभाव और मांग में वृद्धि से उत्पन्न महंगाई को बेसिक आय कैसे संतुलित कर पाएगी?
- सबसे जटिल प्रश्न यह है कि बेसिक आय का 'मापदंड' क्या होगा? यदि गरीबी रेखा हो तो ग्रामीण क्षेत्र में रुपये 32 एवं शहरी क्षेत्र में औसतन रुपये 40 के अनुसार लगभग रुपये 1200 प्रतिमाह व वर्ष के रुपये 19,400 होंगे। क्या इससे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर पाएगा? फिर इस योजना के लिए सरकार पर जो बोझ होगा, वह भारतीय GDP का 9 से 10 फीसदी तक होगा। इस आर्थिक बोझ को सरकार कैसे वहन करेगी?

निष्कर्ष

यूबीआई निश्चित तौर पर सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा के संबंध में एक आकर्षक विचार है। किन्तु इसका खाका व्यवहारिक आधारों पर होना चाहिए, ताकि वित्तीय बोझ व राजकोषीय असंतुलन का खतरा न रहे।

इस योजना से धनी व उच्च मध्यवर्गीय लाभार्थियों को बाहर किया जाना चाहिए। निर्धन ब्लॉक एवं जिलों में 'पायलट प्रोजेक्ट' के तौर पर लागू कर इसका बारीकी से मूल्यांकन करना चाहिए। इसके बाद ही चरणबद्ध तरीके से इस योजना को पूरे भारत में लागू करना चाहिए।

ग्लोबल हंगर सूचकांक, 2022 (Global Hunger Index, 2021)

इस रिपोर्ट का संयुक्त प्रकाशन Concern Worldwide and Welthungerhilfe द्वारा किया गया है और इस सूचकांक का मुख्य फोकस 'Forced Migration and Hunger' है।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2021, 4 संकेतक पर आधारित हैं-

- अल्पपोषण की व्यापकता (Prevalance of Undernourishment)।
- आयु के अनुपात में बच्चों (5 वर्ष से कम आयु) की लंबाई या बौनापन (Child Stunting)।
- लंबाई के अनुपात में बच्चों का वजन (5 वर्ष से कम आयु) (Child Wasting)।
- बाल मृत्यु दर (5 वर्ष से कम आयु) (Child Mortality)।

वैश्विक भूख सूचकांक 2022 (2022 Global Hunger Index- GHI) जारी किया गया। इस सूचकांक में 121 देशों का आकलन किया गया। जिसमें भारत की रैंकिंग 107 है, जबकि वर्ष 2021 में भारत की रैंकिंग 101 थी। इस प्रकार से देखा जाए तो भारत द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाओं के संचालन के बावजूद सापेक्ष रूप से स्थिति बदतर हुई है। इसका मूल कारण इन योजनाओं का ठीक ढंग से क्रियान्वयन न किया जाना है। भारत में भूख का स्तर गंभीर (Serious) है।

सतत् विकास लक्ष्य, 2030 (Sustainable Development Goal, 2030)

लक्ष्यों पर पृष्ठभूमि

सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी) का जन्म रियो डि जेनेरियो में सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में हुआ था। इसका उद्देश्य सार्वभौमिक लक्ष्यों का एक समूह तैयार करना था, जो हमारी दुनिया के सामने आने वाली पर्यावरणीय, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना कर सके।

SDGs मिलेनियम डेवलपमेंट गोलस (MDGs) की जगह लेते हैं, जिसने गरीबी की गरिमा से निपटने के लिए वर्ष 2000 में एक वैश्विक प्रयास शुरू किया था।

एमडीजी ने अत्यधिक गरीबी और भूख से निपटने, घातक बीमारियों को रोकने और अन्य विकास प्राथमिकताओं के साथ सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए औसत दर्जे का, सार्वभौमिक रूप से सहमत उद्देश्यों की स्थापना की।

15 वर्षों के लिए, एमडीजी ने कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रगति की है, आय गरीबी को कम करना, पानी और स्वच्छता तक पहुंच प्रदान करना, बाल मृत्यु दर को कम करना और मातृ स्वास्थ्य में सुधार लाना आदि। मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के लिए एक वैश्विक आंदोलन भी शुरू किया गया। जिससे प्रेरित देश अपनी भावी पीढ़ियों में निवेश कर सकें। सबसे महत्वपूर्ण रूप से, एमडीजी ने एचआईवी/एड्स और मलेरिया तथा तपेदिक जैसे अन्य उपचार योग्य रोगों का मुकाबला करने में भारी प्रगति की है।

इसके अंतर्गत 17 मुख्य तथा 169 सहायक लक्ष्यों को निर्धारित करते हुए 5पी (People, Planet, Peace, Prosperity and Partnership) पर जोर दिया गया है। यह 17 लक्ष्य निम्न है:



जिसमें से पहले दो लक्ष्य सीधे-सीधे गरीबी निवारण से जुड़े हुए हैं।

लक्ष्य-1 नो पॉवर्टी

अपने सभी रूपों में गरीबी का उन्मूलन मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। जबकि 1990 और 2015 के बीच चरम गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या में गिरावट आई है, परंतु बहुत से लोग अभी भी बुनियादी मानवीय जरूरतों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

2020 तक, लगभग 736 मिलियन लोग अभी भी प्रतिदिन 1.90 अमेरिकी डॉलर से कम पर जीवन गुजार रहे थे, अनेकों के जीवन में भोजन, स्वच्छ पेयजल और स्वच्छता की कमी है। चीन और भारत जैसे देशों में तेजी से विकास ने लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकाला है, लेकिन प्रगति असमान है। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में गरीब होने की अधिक संभावना है क्योंकि उनके पास काम, शिक्षा और खुद की कम संपत्ति है।

दक्षिण एशिया और उप-सहारा अफ्रीका जैसे अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति सीमित रही है, जहां अत्यधिक गरीबी में रहने वाले 80 प्रतिशत लोगों की उपस्थिति है। जलवायु परिवर्तन, संघर्ष और खाद्य असुरक्षा द्वारा होने वाले खतरे, लोगों को गरीबी से बाहर लाने के लिए और भी अधिक काम करने की आवश्यकता को इंगित करते हैं।

एसडीजी एक ठोस प्रतिबद्धता है जो हमने शुरू की, और 2030 तक सभी रूपों और आयामों में गरीबी को समाप्त करने का संकल्प लिया।

तथ्य व आंकड़े

- 736 मिलियन लोग अभी भी अत्यधिक गरीबी में रहते हैं।
- दुनिया की 10 प्रतिशत आबादी अत्यधिक गरीबी में रहती है, जो 1990 में 36 प्रतिशत थी।
- लगभग 1.3 बिलियन लोग बहुआयामी गरीबी में रहते हैं।
- गरीबी में रहने वाले लोगों में से आधे की उम्र 18 से कम है।
- 1.90 डॉलर से कम पर रहने वाले 80 प्रतिशत लोग दक्षिण एशिया और उप-सहारा अफ्रीका में हैं।

लक्ष्य-2 जीरो हंगर

तेजी से आर्थिक विकास और कृषि उत्पादकता में वृद्धि के कारण पिछले दो दशकों में कुपोषित लोगों की संख्या लगभग आधी हो गई है। कई विकासशील देश जो अकाल और भूख से पीड़ित थे, अब अपनी पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। मध्य और पूर्वी एशिया, लैटिन अमेरिका और कैरेबियन सभी ने अत्यधिक भूख को मिटाने में भारी प्रगति की है।

दुर्भाग्य से, अत्यधिक भूख और कुपोषण कई देशों में विकास के लिए एक बड़ी बाधा बने हुए हैं। पर्यावरणीय गिरावट, सूखा और जैव विविधता के नुकसान के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में 2021 तक कुल लगभग 821 मिलियन लोगों के कुपोषित होने का अनुमान है, पांच साल से कम उम्र के 90 मिलियन से अधिक बच्चे खतरनाक रूप से कम वजन वाले हैं। अफ्रीका के लगभग सभी क्षेत्रों के साथ-साथ दक्षिण अमेरिका भी गंभीर खाद्य असुरक्षा की ओर बढ़ती जा रही है। एसडीजी का उद्देश्य 2030 तक सभी प्रकार की भूख और कुपोषण को समाप्त करना है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि सभी लोग विशेष रूप से बच्चे पूरे वर्ष पर्याप्त और पौष्टिक भोजन प्राप्त करें। इसमें स्थायी कृषि को बढ़ावा देना, छोटे पैमाने पर किसानों का समर्थन करना और भूमि, प्रौद्योगिकी और बाजारों तक समान पहुंच बनाना शामिल है। कृषि उत्पादकता में सुधार के लिए बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी में निवेश सुनिश्चित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की भी आवश्यकता है।

तथ्य और आंकड़े

- 2021 में कुपोषित लोगों की संख्या 821 मिलियन तक पहुंच गई।
- 2021 में एशिया में दुनिया की भूख से पीड़ित जनसंख्या का लगभग दो तिहाई (63%) था।
- 8 में से 1 से अधिक वयस्क मोटे होते हैं।
- प्रजनन आयु की 3 में से 1 महिला एनीमिक है।
- 26 प्रतिशत श्रमिक कृषि में कार्यरत हैं।

वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 (Global Nutrition Report 2021)

वैश्विक पोषण रिपोर्ट (Global Nutrition Report, 2021) जारी की गयी जिसके अनुसार भारत ने एनीमिया और बचपन की बर्बादी पर कोई प्रगति नहीं की है।

वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 चर्चा में:

- हाल ही में 2021 की वैश्विक पोषण रिपोर्ट जारी की गयी जिस के अनुसार भारत ने एनीमिया और बचपन की बर्बादी पर कोई प्रगति नहीं की है।

वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के महत्वपूर्ण बिंदु:

- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार 15-49 आयु वर्ग की आधी से अधिक भारतीय महिलाएँ एनीमिया से पीड़ित हैं।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार 2016 के बाद से एनीमिया से

पीड़ित भारतीय महिलाओं में वृद्धि हुई है।

- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार भारत भी उन 23 देशों में शामिल है, जिन्होंने 'बचपन की बर्बादी' को कम करने पर कोई प्रगति नहीं की है या बिगड़ रहे हैं।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार दुनिया भर में:
 1. 5 साल से कम उम्र के अविकसित बच्चे : 149.2 मिलियन बच्चे
 2. वेस्टेड : 45.4 मिलियन बच्चे
 3. अधिक वजन वाले : 38.9 मिलियन बच्चे
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार सभी पुरुषों और महिलाओं में से 40% से अधिक (लगभग 2.2 बिलियन लोग) अधिक वजन वाले या मोटे हैं।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार 161 देशों में एनीमिया के स्तर में कोई प्रगति या नुकसान नहीं दिख रहा है।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2021 के अनुसार आहार संबंधी जोखिमों के कारण समय से पहले होने वाली मौतों का अनुपात:
 1. सबसे अधिक: उत्तरी अमेरिका और यूरोप (प्रत्येक में 31%)
 2. सबसे कम: अफ्रीका (17%)

वैश्विक पोषण रिपोर्ट के बारे में:

- वैश्विक पोषण रिपोर्ट की कल्पना 2013 में ग्रोथ इनिशिएटिव समिट (N4G) के लिए पहले न्यूट्रिशन फॉर ग्रोथ इनिशिएटिव समिट (N4G) के बाद की गई थी, जो सरकारों, सहायता दाताओं, नागरिक समाज, संयुक्त राष्ट्र और व्यवसायों में फैले 100 हितधारकों द्वारा की गई प्रतिबद्धताओं पर नजर रखने के लिए एक तंत्र के रूप में थी।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट की उद्देश्य सभी प्रकार के कुपोषण को समाप्त करने के लिए सरकारों, दाताओं, नागरिक समाज संगठनों, व्यवसायों और अन्य लोगों को प्रेरित करना है।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट को प्रगति और चुनौतियों पर प्रकाश डालने के लिए प्रत्येक वर्ष डेटा-आधारित और उत्पादित किया जाता है।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट मानव स्वास्थ्य और ग्रह पर खराब आहार के प्रभाव का भी मूल्यांकन करता है।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट पोषण वित्त पोषण परिदृश्य का आकलन करता है।
- वैश्विक पोषण रिपोर्ट विकास प्रतिबद्धताओं के लिए पिछले पोषण पर रिपोर्टिंग का एक व्यापक अवलोकन प्रदान करता है।

भारत में कुपोषण से लड़ने के लिए किए गए उपाय

मध्याह्न भोजन योजना:

- मध्याह्न भोजन योजना भारत में एक स्कूली भोजन कार्यक्रम है जिसे स्कूली उम्र के बच्चों के पोषण स्तर को बेहतर बनाने के लिए डिजाइन किया गया है।
- इसमें सरकारी स्कूलों, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों, विशेष प्रशिक्षण केंद्रों के कक्षा 1 से 8 तक के सभी स्कूली छात्र शामिल हैं, जिनमें समग्र शिक्षा अभियान के तहत समर्थित मदरसे भी शामिल हैं।

पोषण अभियान:

- पोषण अभियान को 2017 में मंजूरी दी गई थी।
- पोषण अभियान 2022 तक कुपोषण मुक्त भारत की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए एक बहु-मंत्रालयी अभिसरण मिशन है।
- पोषण अभियान को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय (MWCD) द्वारा लागू किया जा रहा है।

मातृत्व सहयोग योजना:

- इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना (IGMSY) एक सशर्त मातृत्व लाभ (CMB) योजना है जिसे 2010 में शुरू किया गया था।
- यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में क्रियान्वित की जा रही है।
- इसे गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए शुरू किया गया था ताकि गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को नकद प्रोत्साहन प्रदान करके पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए उनके स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार किया जा सके।

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना:

- प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना (केंद्र प्रायोजित योजना) 2017 में शुरू की गई थी।
- डिलीवरी के लिए बेहतर सुविधाएं प्राप्त करने के लिए 6,000 सीधे गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के बैंक खातों में स्थानांतरित किए जाते हैं और परिवार के पहले बच्चे इसके पात्र होते हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन:

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को 2007-08 में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा केंद्र प्रायोजित योजना के रूप में लॉन्च किया गया था।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) की कृषि उप-समिति की सिफारिशों पर आधारित था।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता वृद्धि के माध्यम से लक्षित फसलों के उत्पादन में सतत वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करता है।

एकीकृत बाल विकास सेवाएं:

- एकीकृत बाल विकास सेवा 2 अक्टूबर, 1975 को शुरू की गयी थी। और यह योजना बचपन की देखभाल और विकास के लिए दुनिया के सबसे बड़े और अनूठे कार्यक्रमों में से एक का प्रतिनिधित्व करता है।
- यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित है।
- एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के तहत निम्नलिखित लाभार्थी इस योजना का फायदा उठा सकते हैं:
 1. 0-6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चे,
 2. गर्भवती महिलाएं और स्तनपान कराने वाली माताएं

राष्ट्रीय पोषण मिशन:

- राष्ट्रीय पोषण मिशन बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए पोषण संबंधी परिणामों में सुधार के लिए सरकार का प्रमुख कार्यक्रम है।
- राष्ट्रीय पोषण मिशन का उद्देश्य बच्चों, किशोरियों और गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के बीच स्टैटिंग और वेस्टिंग को 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष (2022 तक कुल 6 प्रतिशत) और एनीमिया प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत (2022 तक कुल 9 प्रतिशत) कम करना है।
- महिला एवं बाल विकास मंत्रालय राष्ट्रीय पोषण मिशन के लिए नोडल मंत्रालय है।

राज्य खाद्य सुरक्षा सूचकांक रिपोर्ट-2021-22

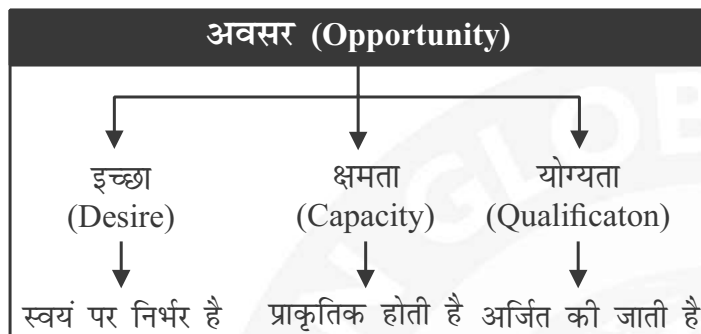
हाल ही में, केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा तीसरा राज्य खाद्य सुरक्षा सूचकांक रिपोर्ट जारी किया गया है। खाद्य सुरक्षा के पाँच मापदण्डों पर राज्यों का प्रदर्शन मापने के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (FSSAI) द्वारा सूचकांक विकसित किया गया है।

- बड़े राज्यों में तमिलनाडु रैंकिंग में शीर्ष स्थान पर है, उसके बाद गुजरात और महाराष्ट्र का स्थान रहा है।
- छोटे राज्यों में गोवा शीर्ष पर है, उसके बाद मणिपुर और सिक्किम का स्थान रहा है।
- केंद्रशासित प्रदेशों में जम्मू-कश्मीर, दिल्ली और चण्डीगढ़ क्रमशः शीर्ष स्थान पर है।
- खाद्य सुरक्षा रिपोर्ट यह सुनिश्चित करती है कि, खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक चरण में उत्पादन से लेकर कटाई, प्रसंस्करण, भंडारण, वितरण, तैयारी और उपभोग तक सभी तरह से भोजन सुरक्षित रहे।
- दुनिया भर में अनुमानित 4,20,000 लोग प्रतिवर्ष दूषित भोजन खाने से मर जाते हैं और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे खाद्य जनित बीमारी से ग्रसित हैं, जिसमें से प्रतिवर्ष 1,25,000 की मौत हो जाती है।
- भारत में खाद्य सुरक्षा और पोषण के क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाले अनुसंधान को प्रोत्साहित करने व मान्यता देने के लिए 'ईट राइट रिसर्च अवार्ड्स' तथा अनुदान भी शुरू किये गये हैं।

बेरोजगारी (Unemployment)

परिचय (Introduction)

बेरोजगारी वह दशा है जब एक व्यक्ति सक्रियता से रोजगार की खोज करता है, परंतु वह रोजगार पाने में अक्षम रहता है। नीति आयोग के द्वारा बेरोजगारी को निम्न आधार पर स्पष्ट किया गया है-



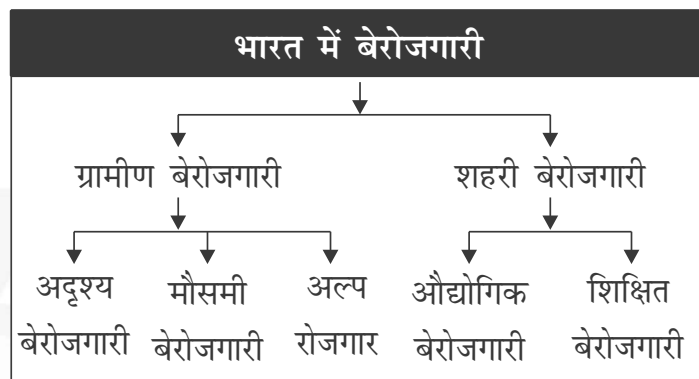
रोजगार के अवसर की उपलब्धता इच्छा, क्षमता एवं योग्यता पर निर्भर करती है। कई बार ऐसा होता है कि पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने के बावजूद व्यक्ति के अंदर इच्छा, योग्यता या क्षमता नहीं होती है तो उसे रोजगार नहीं मिल पाता है और व्यक्ति बेरोजगार रह जाता है। अतः हम बेरोजगारी को निम्न रूप से परिभाषित कर सकते हैं- इस प्रकार यदि इच्छा, क्षमता एवं योग्यता (Desire, Capacity, Qualification) रहने के बावजूद जब किसी व्यक्ति को रोजगार नहीं मिल पाता है तो उसे बेरोजगार कहा जाएगा। अर्थात् एक सक्षम व्यक्ति द्वारा मांगने पर भी रोजगार नहीं मिलने की स्थिति को बेरोजगारी कहते हैं। सक्षमता की कोई ऊपरी सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता, इसीलिये न्यूनतम रूप से यह देखा जाता है कि संबंधित व्यक्ति कार्यशील उम्र (Working Age) से जुड़ा हुआ हो। भारत में कार्यशील उम्र 15 से 59 वर्ष की होती है।

जनसांख्यिकी विभाजन

जनसांख्यिकी विभाजन को सबसे पहले 'यूनाइटेड नेशन पॉपुलेशन फंड' द्वारा परिभाषित किया गया है। इस संस्था के अनुसार जब किसी राष्ट्र के कार्यशील जनसंख्या का अनुपात अकार्यशील जनसंख्या के अनुपात से अधिक हो तो उसे 'जनसांख्यिकी विभाजन' कहते हैं। इस अनुपात से किसी देश की अर्थव्यवस्था की क्षमता बढ़ती है। यदि इस कार्यशील जनसंख्या को किन्हीं कारणों की वजह से रोजगार न मिले तो निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति का ह्रास होगा, क्योंकि वास्तव में यह कार्यशील जनसंख्या अर्थव्यवस्था के क्षमता निर्माण में वास्तविक योगदान नहीं कर रही है। लेकिन रोजगारहीन वृद्धि से कुशलता का विकास नहीं हो सकता। जनवरी 2018 में विश्व बैंक ने 'Systematic & Diagnostic Country' नामक रिपोर्ट में भारत की स्थिति पर वक्तव्य दिया कि भारत Demographic Curse का रूप भी ले सकता है, क्योंकि कार्यशील जनसंख्या के अनुपात में रोजगार को उत्पन्न न कर पाने की समस्या विकट रूप धारण कर सकती है। जिससे बेरोजगारी बढ़ेगी और मौजूदा संसाधनों पर दबाव भी बढ़ेगा।

भारत में बेरोजगारी का वर्गीकरण (Classification of Unemployment in India)

भारत में बेरोजगारी का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है-



ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी (Rural Unemployed)

भारत के गांवों में 80% से भी अधिक श्रमिक कृषि के कार्यों में लगे हुए हैं। गैर-कृषि क्षेत्र में लगे हुए अधिकतर ग्रामीण श्रमिक घरेलू उद्योगों जैसे- लोहारगिरी, बढ़ईगिरी आदि तथा विभिन्न प्रकार की सेवाओं में लगे हुए हैं। यह अनुमान लगाया जाता है कि, दो तिहाई से भी अधिक ग्रामीण श्रमिक अपने कार्यों में लगे हुए हैं। केवल एक तिहाई श्रमिक दूसरों के लिये कार्य करते हैं। गांवों में अनैच्छिक बेरोजगारी (Involuntary Unemployment) की समस्या अधिक नहीं है।

ग्रामीण क्षेत्र में मुख्य रूप से अदृश्य बेरोजगारी तथा मौसमी बेरोजगारी पाई जाती है-

- **अदृश्य या प्रचछन्न/बेरोजगारी (Disguised Unemployment):** अदृश्य बेरोजगारी से यह अभिप्राय है कि यद्यपि श्रमिक ऊपरी तौर पर रोजगार में लगे दिखाई देते हैं, परंतु श्रमिकों की संख्या के अनुपात में कार्य की मात्रा नहीं होती है। किसी कार्य को करने के लिये जितने श्रमिकों की आवश्यकता होती है उससे अधिक श्रमिक काम पर लगे हुए होते हैं। यदि कुछ श्रमिकों को काम पर से हटा दिया जाए तो कुल उत्पादन में कमी नहीं होगी। उदाहरण के लिए किसी खेत पर खेती करने के काम हेतु केवल दो श्रमिक ही पर्याप्त हैं। परन्तु यदि उसी खेत पर पाँच श्रमिक लगे हुए हों तो तीन श्रमिक अदृश्य बेरोजगारी को व्यक्त करते हैं। यदि इन तीन श्रमिकों को काम पर से हटा दिया जाए तो भी उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। भारत में संयुक्त परिवार, खेतों का आकार छोटा होने के फलस्वरूप तथा रोजगार के वैकल्पिक अवसरों के अभाव के कारण परिवार के सभी सदस्य, पारिवारिक भूमि पर खेती करने के काम में लगे रहते हैं। इसलिए ऊपरी तौर पर तो यह प्रकट होता है कि वे रोजगार में लगे हुए हैं किन्तु वास्तव में उनके कारण उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हो रही है।
- इसलिए यदि उनमें से कुछ लोगों को किसी दूसरे काम पर लगा दिया जाए तो खेत के उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी। इसलिए उन्हें 'अदृश्य बेरोजगार' कहा जाएगा। भारत के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या काफी गंभीर है।
- **मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment):** भारत के ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली दूसरे किस्म की बेरोजगारी 'मौसमी बेरोजगारी' है। इसका कारण यह है कि कृषि एक मौसमी व्यवसाय है अर्थात् कृषि में मौसम के अनुसार फसलें बोई जाती हैं। खाली मौसम में अक्सर कृषि में काम करने वाले किसान व मजदूर बेकार रहते हैं। इस बेरोजगारी की मात्रा कितनी है

यह इस बात पर निर्भर करता है कि खेती-बाड़ी करने की विभिन्न राज्यों में क्या दशाएं अथवा विधियां हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि आमतौर पर जो किसान साल में एक फसल बोता है वह 5 व 7 महीने तक बेरोज़गार रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त और भी कई मौसमी कार्य हैं जैसे गन्ना पेराई, ईंटों के भट्टे, आदि। इन कार्यों में लगे हुए श्रमिकों को वर्ष के केवल कुछ महीनों तक काम मिलता है। बाकी समय के लिए ये बेरोज़गार रहते हैं।

शहरी क्षेत्र में बेरोज़गारी (Urban Unemployment)

शहरी क्षेत्र में बेरोज़गार व्यक्तियों का नाम प्रायः रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत होता है। इसलिए शहरी क्षेत्र में बेरोज़गारी खुली बेरोज़गारी के समान होती है, ग्रामीण क्षेत्र के अदृश्य बेरोज़गारी के समान नहीं। इसमें सन् 1961 से 2016 तक लगभग 8 गुना की वृद्धि हुई है। शहरी क्षेत्रों में पाई जाने वाली बेरोज़गारी को दो भागों में बांटा जा सकता है:-

- **औद्योगिक बेरोज़गारी (Industrial Unemployment)**- इस क्षेत्र में उन व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है जो उद्योगों, खनिज, यातायात, व्यापार, निर्माण आदि व्यवसायों में काम करने के इच्छुक हैं। औद्योगिक क्षेत्र में भी बेरोज़गारी की समस्या जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण प्रकट हुई है। इसके अतिरिक्त पिछले कई वर्षों से शहरों में, विशेषकर औद्योगिक क्षेत्रों में, श्रमिकों की पूर्ति बढ़ गई है। आम तौर पर गांवों के लोग शहरों में तब रोजगार ढूँढने आते हैं, जब उनका खेती बाड़ी में काम खत्म हो जाता है। किन्तु भारत में अभी इतने उद्योग स्थापित नहीं हुए हैं कि सारी बढ़ी हुई श्रम शक्ति को अपने में खपा सकें। अतः सबको रोजगार के अवसर प्राप्त न होने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में बेरोज़गारी की मात्रा में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी देशों की भांति भारत में भी कई उद्योगों ने श्रम बचत विधियों (Labour Saving Devices) का उपयोग करना शुरू कर दिया है इसके फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में बेरोज़गारी की मात्रा दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।
- **शिक्षित वर्ग में बेरोज़गारी (Educated Unemployment)**: भारत में शिक्षित वर्ग में भी बेरोज़गारी की समस्या काफी गम्भीर है। यह बेरोज़गारी देश की स्थिरता तथा सुरक्षा के लिये बड़ा भारी खतरा है। यह सारे भारत की समस्या है।
- **शिक्षित बेरोज़गारी के कई कारण हैं-**
 - स्वतन्त्रता के पश्चात्, देश में शिक्षण संस्थाओं जैसे विश्वविद्यालय, कॉलेजों, स्कूलों आदि की संख्या में वृद्धि होने के कारण शिक्षित लोगों की संख्या में काफी अधिक वृद्धि हो गई।
 - भारत में शिक्षा, व्यवसाय प्रेरक नहीं है। इसलिए शिक्षित लोग कई व्यवसायों के लिए अनुपयुक्त होते हैं।
 - भारत में रोजगार के अवसरों में उतनी वृद्धि नहीं हुई है जितनी शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। इसलिए रोजगार के दफ्तरों में पंजीकृत शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

बेरोज़गारी के सामान्य प्रकार (Common Types of Unemployment)

भारत में शहरों और गाँवों दोनों में ही निम्नलिखित प्रकार की बेरोज़गारियां पाई जाती हैं:-

- **खुली बेरोज़गारी (Open Unemployment)**- खुली बेरोज़गारी वह स्थिति है जिसमें यद्यपि श्रमिक काम करने के लिए तैयार होता है तथा उसमें काम करने की योग्यता भी होती है परन्तु उसे काम नहीं मिलता। वह पूरे समय के लिए बेकार रहता है। उसे अपनी आय के लिए परिवार पर निर्भर रहना पड़ता

है। इस प्रकार की बेरोज़गारी खेतिहर मजदूरों में, शिक्षित व्यक्तियों में तथा उन लोगों में पाई जाती है, जो गाँवों से शहरों में काम करने के लिए आते हैं परन्तु उन्हें काम नहीं मिल पाता। भारत में खुली बेरोज़गारी भी काफी संख्या में पाई जाती है।

- **संरचनात्मक बेरोज़गारी (Structural Unemployment)**- संरचनात्मक बेरोज़गारी वह बेरोज़गारी है जो देश की अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती है। संरचनात्मक परिवर्तन मुख्य रूप से दो प्रकार का है-

- प्रौद्योगिकी (Technology) में परिवर्तन के फलस्वरूप पुराने तकनीकी कारीगरों की आवश्यकता नहीं रहती, वे बेरोज़गार हो जाते हैं।

- मांग के प्रतिमान (Pattern) में परिवर्तन के फलस्वरूप कुछ उद्योग बन्द हो जाते हैं और श्रमिकों को उद्योगों से बाहर कर दिया जाता है।

भारत जैसे कम विकसित देश को संरचनात्मक परिवर्तन के फलस्वरूप विकास की प्रक्रिया में काफी क्षति पहुँचती है। इसलिए यहां ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में संरचनात्मक बेरोज़गारी की एक ऊँची मात्रा पाई जाती है।

- **अल्प-रोजगार (Under-employment)**- जब एक श्रमिक को जितने समय काम करना चाहिए, उससे कम समय काम मिलता है अथवा वर्ष में कुछ महीनों के लिये बेकार रहना पड़ता है तो इस अवस्था को अल्परोजगार (Under-employment) की अवस्था कहा जाता है। बेरोज़गारी अर्थव्यवस्था में रोजगार और श्रम उपयोग का एक उपाय है जो ये देखता है कि कौशल, अनुभव और उपलब्धता के मामले में श्रम का कितनी अच्छी तरह से उपयोग किया जा रहा है। ऐसे श्रमिक जो अत्यधिक कुशल हैं लेकिन कम वेतन या कम कौशल वाली नौकरी करते हैं, उन्हें अल्प रोजगार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। {Note- NSS (National Sample Survey)} के आंकड़ों के अनुसार यदि एक व्यक्ति प्रति सप्ताह केवल 28 घण्टे काम करता है तो यह अति अल्परोजगार कहलायेगा। इसके विपरीत वह प्रति सप्ताह 29 से 42 घण्टे तक काम करता है तो इस अवस्था को सीमित अल्परोजगार कहा जायेगा। अल्परोजगार दो प्रकार का होता है:

- **दृश्य अल्प रोजगार (Visible Underemployment)**- इस अवस्था में लोगों को काम करने के सामान्य घण्टों से कम काम मिलता है। जैसे भारत में एक व्यक्ति सामान्यतः 8 घण्टे काम करता है। यदि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल 4 घण्टे काम करना पड़े तो इस अवस्था को 'दृश्य अल्परोजगार' कहा जायेगा।

- **अदृश्य अल्प रोजगार (Invisible Underemployment)**- इस अवस्था में लोग काम तो पूरा समय करते हैं परन्तु उनकी आय बहुत कम होती है अथवा उन्हें ऐसे काम करने पड़ते हैं जिनमें कि उनकी योग्यता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता जैसे एम.ए. पास व्यक्ति को चपरासी का काम करना पड़े तो वो 'अदृश्य अल्परोजगार' कहलायेगा।

- **घर्षणात्मक बेरोज़गारी (Frictional Unemployment)**- विभिन्न व्यवसायों में श्रमिकों की गतिशीलता में अपूर्णता के कारण यह बेरोज़गारी उत्पन्न होती है। एक व्यक्ति एक काम/व्यवसाय से दूसरे काम/व्यवसाय में जाने के लिए इच्छुक होता है, परन्तु परिवर्तन की प्रक्रिया के दौरान कुछ देर के लिए वह बेरोज़गार हो सकता है (या बेरोज़गार रहना पसंद कर सकता है)। (उदाहरणतः काम करने वाली महिलाएं शादी हो जाने के बाद कुछ हफ्तों या महीनों के लिए नौकरी के बिना रहने का निर्णय ले लेती हैं)। इसे ही 'घर्षणात्मक बेरोज़गारी' कहते हैं। कुछ व्यक्तियों की कुछ देर या कुछ सीमा तक बेरोज़गार बने रहने का अपना स्वयं का चुनाव या निर्णय होता है, इस प्रकार की बेरोज़गारी को 'ऐच्छिक बेरोज़गारी' का एक घटक या भाग माना जा सकता है।

- **चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical unemployment)**- यह बेरोजगारी बाजार आधारित पूँजीवादी राष्ट्रों में आर्थिक उतार-चढ़ावों के कारण उत्पन्न होती है जिसका मुख्य कारण समग्र माँग में कमी होती है। यह बेरोजगारी तुलनात्मक रूप से कम चुनौतीपूर्ण होती है। मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के उपयुक्त संयोजन के माध्यम से बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है।

भारत में बेरोजगारी के कारण (Causes of Unemployment in India)

भारत में बेरोजगारी का सबसे बड़ा कारण विकास की धीमी प्रक्रिया है। भारत में बेरोजगारी के प्रमुख कारणों में निम्नलिखित को रखा जा सकता है:-

- **रोजगार विहीन आर्थिक विकास (Jobless Economic Growth)**- भारत की अर्थव्यवस्था विकासशील है और आर्थिक विकास की दर उच्च है। इसके बावजूद, जनसंख्या के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं हो पाए हैं। यह रोजगार विहीन आर्थिक विकास की स्थिति है।
- **कुटीर और लघु उद्योगों का निम्न विकास (Slow Growth of Cottage and Small Industries)**- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योग रोजगार एवं आय के महत्वपूर्ण साधन हैं। परंतु इनके विकास पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है इसलिए, ये उद्योग रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित करने में असफल रहे हैं।
- **कम बचत तथा निवेश (Low Saving and Investment)**- भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्याप्त पूँजी का अभाव है। जो पूँजी है भी उसका निवेश समुचित प्रकार से नहीं किया जा रहा है। पूँजी का अधिकांश भाग वृहद उद्योगों में निवेश किया जा रहा है, जहाँ पूँजी उत्पाद अनुपात (प्रति इकाई उत्पाद के लिए पूँजी की आवश्यकता) अधिक है।
- **जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (Rapid Population Growth)**- यह ग्रामीण भारत में बेरोजगारी का प्रमुख कारण है। जनसंख्या वृद्धि ने प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगारी को बढ़ाया है। जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में रोजगार वृद्धि दर कम होने के कारण यह स्थिति पैदा होती है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक संसाधनों में कमी लाकर भी बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न करती है।
- **सीमित भूमि (Limited Land)**- ग्रामीण क्षेत्रों के लोग अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष रूप से जमीन पर निर्भर हैं। जनसंख्या की तुलना में जमीन काफी कम है। यह स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर निर्भर लोगों के बीच बेरोजगारी उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है।
- **मौसमी खेती (Seasonal Agriculture)**- ग्रामीण समाज में कृषि रोजगार का महत्वपूर्ण साधन है। हालाँकि ज्यादातर ग्रामीण लोग प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्य में संलग्न हैं लेकिन भारत में कृषि कार्य एक मौसमी मामला है। यह वर्ष के कुछ महीनों में ही रोजगार दे पाता है। जैसे फसल बोने एवं काटने के दौरान लोगों को पूर्णतया रोजगार मिला होता है, लेकिन फसल काटने और अगले फसल बोने तक लोग बेरोजगार बने रहते हैं। इससे उनका जीवन-स्तर प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।
- **भूमि का विखंडन (Fragmentation of Land)**- भारत में भूमि पर बहुत ज्यादा दबाव होने के कारण भूमि का विखंडन होता है। यह कृषि कार्य में बाधा डालता है जिससे कृषि कार्य पर निर्भर लोग बेरोजगार रह जाते हैं। इससे रोजगार की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे ग्रामीणों में गरीबी भी बढ़ती है।
- **दोषपूर्ण शिक्षा (Defective Education)**- अधिसंख्या लोगों के मामले में भारत में शिक्षा व्यवस्था दोषपूर्ण है। शिक्षा प्रणाली प्रमाणपत्र बांटने

वाली व्यवस्था बनकर रह गई है। इससे रोजगार प्राप्त करने की संभावना बहुत कम होती है, क्योंकि रोजगार आधारित शिक्षा का अभाव बना हुआ है। सामान्य शिक्षा प्राप्त कर अधिकांश लोग किसी तरह का कार्य करने में सक्षम नहीं होते हैं और वे बेरोजगार बने रहते हैं। साथ ही उद्योग जगत व शिक्षा प्रणाली में दूरी बनी हुई है, जिससे बाजार की माँग के अनुरूप शिक्षा नहीं उपलब्ध कराई जाती है। इस मामले में हम चीन से सीख सकते हैं जहाँ त्रिस्तरीय शिक्षा प्रणाली, मुख्यतः रोजगार आधारित विकसित की गई है।

- **रोजगार संबंधी अपर्याप्त योजना (Inadequate Employment Planning)**- जनसंख्या वृद्धि की तुलना में सरकार की रोजगार संबंधी योजना पर्याप्त नहीं है। इसके कारण रोजगार अवसरों एवं बढ़ती जनसंख्या के बीच एक बड़ा अंतराल उत्पन्न हो गया है। सरकार के सामने सभी के लिए रोजगार उत्पन्न कराना एक कठिन कार्य है। सरकार की रोजगार संबंधी गलत नीतियों के कारण बेरोजगारी की स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है।
- **सामाजिक मूल्य-** भारत में उद्यमशीलता से अधिक लोगों को नौकरी की तलाश रहती है। यही कारण है यहाँ रोजगार सृजन करने वाले नवीन उद्यमों का अवतरण नहीं हो पाता है। साथ ही यहाँ नवोन्मेषिता की कमी बनी रहती है। भारत में बेरोजगारी की समस्या हेतु यह कारण भी जिम्मेदार है।

बेरोजगारी के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम (Economic & Social Consequences of Unemployment)

बेरोजगारी, निम्न प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम पैदा करती हैं-

आर्थिक परिणाम (Economic Consequences)

- **मानवशक्ति का समुचित प्रयोग नहीं (Non Utilisation of Manpower)**- जिस सीमा तक देश में लोग बेरोजगार रहते हैं, उस सीमा तक देश में मानवीय संसाधन का प्रयोग समुचित नहीं हो पाता।
- **उत्पादन की हानि (Loss the Output)**- जिस सीमा तक मानवशक्ति का प्रयोग नहीं हो पाता, उस सीमा तक उत्पादन की भी हानि होती है। बेरोजगार व्यक्ति केवल उपभोक्ता की तरह जीते हैं, उत्पादकों की तरह नहीं।
- **पूँजी निर्माण में गिरावट (Decline in Capital Formation)**- उपभोक्ता के रूप में जीवनयापन करने से और उत्पादन में कुछ भी अंशदान न देने से बेरोजगार व्यक्ति केवल उपभोग में ही वृद्धि करते हैं। वे न तो धन अर्जित करते हैं और न ही निवेश के लिए बचत करते हैं। इससे पूँजी निर्माण की दर से कमी होती है।
- **निम्न उत्पादकता (Low Productivity)**- अदृश्य बेरोजगारी (जो अधिकतर कृषि क्षेत्र में होती है) के फलस्वरूप उत्पादकता का निम्न स्तर (प्रति श्रमिक या प्रति हेक्टेयर उत्पादन) होता है। निम्न उत्पादकता का अर्थ है संवृद्धि की निम्न दर।

संक्षेप में, बेरोजगारी के आर्थिक परिणाम न केवल वर्तमान उत्पादन के निम्न स्तर को व्यक्त करते हैं (क्योंकि मानवशक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता) बल्कि निवेश के लिए कम संसाधनों की उपलब्धता के कारण भावी उत्पादन के कम स्तर को भी व्यक्त करते हैं।

सामाजिक परिणाम (Social Consequences)

- **जीवन की कमतर गुणवत्ता (Low Quality of Life)**- बेरोजगारी जीवन की गुणवत्ता को कम कर देती है जिसका अर्थ है निरंतर वेदना (Suffering) की अवस्था।
- **अत्यधिक असमानता (Inequality)**- बेरोजगारी की मात्रा जितनी अधिक होगी, आय तथा संपत्ति के वितरण में असमनता की मात्रा भी

अधिक होगी। ऐसी स्थिति में विकास सामाजिक न्याय की अवधारणा को पूर्ण नहीं कर पाएगा।

- **सामाजिक अशांति (Social Unrest)** – सामाजिक अशांति के कई कारण हो सकते हैं। परंतु बेरोजगारी के कारण आत्म निराशा का योगदान इसमें किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है।
- **वर्ग संघर्ष (Class Struggle)** – बेरोजगारी समाज को धनी और निर्धन में बांट देती है। इसके फलस्वरूप वर्ग संघर्ष जन्म लेता है जो सामाजिक अशांति को और भी बढ़ावा देता है।

भारत में बेरोजगारी दूर करने के सम्बन्ध में सुझाव (Suggestions to Solve the Problem of Unemployment in India)

पिछले 20 वर्षों में भारत में श्रमशक्ति में 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हुई है, जबकि रोजगार में 2.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप बेरोजगार रहने वाले लोगों की संख्या में समय के साथ-साथ काफी वृद्धि हुई है। सितंबर, 2018 में सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 31 मिलियन लोग बेरोजगार थे। जबकि कोरोना महामारी के दौरान बेरोजगारी दर निरंतर बढ़ी है। ILO डेटाबेस के अनुसार, भारत की बेरोजगारी दर वर्ष 2019 में 5.27% थी, जो वर्ष 2020 में तेजी से बढ़कर 7.11% हो गयी। इस समस्या का समाधान कैसे किया जा सकता है? रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिये कृषि, औद्योगिक क्षेत्र तथा सेवा क्षेत्र के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ अग्रलिखित सुझाव दिए गए हैं:-

- **कृषि क्षेत्र से संबंधित सुधार** – कृषि में बहुफसली पद्धति (Multiple Cropping) को बढ़ावा देना चाहिए। इसके साथ ही बागवानी व वाणिज्यिक फसलों को भी बढ़ावा देना चाहिए। मत्स्यपालन एवं पशुपालन जैसी गतिविधियों को बढ़ावा देना चाहिए।
- **उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production)** – रोजगार बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि, देश में कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाये जाये। लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को अधिक प्रोत्साहन दिया जाये। विदेशी व्यापार, खनिज तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया जाये। जितना उत्पादन अधिक होगा, उतनी ही श्रम की मांग में वृद्धि अधिक होगी। श्रम की मांग का श्रम की उत्पादकता से सीधा सम्बन्ध है। अधिक उत्पादकता से अधिक लाभ का सृजन होता है। इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता (अर्थात् कुशलता) में सुधार अवश्य होगा।
- **पूंजी निर्माण की ऊंची दर (High Rate of Capital Formation)** – देश में पूंजी निर्माण की दर अधिक रखनी चाहिए। पूंजी निर्माण ऐसे कार्यों में अधिक किया जाना चाहिए जिससे देश में रोजगार के अवसर अधिक बढ़ सकें। पूंजी उत्पादन अनुपात (Capital Output Ratio) को कम रखा जाना चाहिए। पूंजी उत्पादन अनुपात अधिक होने से पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने का उत्पादन तथा रोजगार पर कोई असर नहीं पड़ेगा। इसलिए पूंजी निर्माण की दर बढ़ाने के साथ-साथ पूंजी उत्पाद अनुपात में कमी की जानी चाहिए।
- **स्वयं-रोजगार में लगे लोगों को अधिक सहायता (More Help to Self-employed Persons)** – भारत में लगभग 52 प्रतिशत लोग स्वयं-रोजगार में लगे हुए हैं। इनमें से अधिकतर लोग कृषि क्षेत्र में हैं। इसके अतिरिक्त व्यापार, कुटीर और लघु उद्योग, भवन निर्माण, जलपान गृह, यातायात आदि में काफी लोग स्वयं-रोजगार वाले हैं। सरकार को लघु तथा सीमान्त किसानों को भूमि, सिंचाई, अच्छे बीज, खाद, यन्त्र, साख आदि की सुविधाएं देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में रहने वाले स्वरोजगार लोगों को साख, मार्केटिंग, कच्चे माल, टेक्निकल प्रशिक्षण कार्य आदि की सुविधाएं दी जानी चाहिए।

- **शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Change in Educational Patterns)** – देश में शिक्षा प्रणाली को पूर्ण रूप से बदलने की आवश्यकता है। शुरू से ही शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली (Vocational Education) पर बल दिया जाना चाहिए। गांव में शिक्षित व्यक्तियों को अध्यापक, डॉक्टर आदि के रूप में काम करने की भावना अपने अन्दर जागृत करनी होगी। सरकारी सहायता से लघु उद्योग स्थापित करने की व्यवस्था होनी चाहिए। रोजगार सूचना एवम निर्देशन संस्थाओं को सुदृढ़ करके उन्हें रोजगार एजेंसियों के समीप लाना चाहिए।

- **औद्योगिक तकनीक में परिवर्तन (Change in Industrial Technique)** – देश के बड़े उद्योगों में श्रम प्रधान तकनीकों (Labour in Intensive Techniques) का अधिक प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे उद्योगों की स्थापना पर बल दिया जाना चाहिए, जिनसे उत्पादन तुरन्त आरम्भ (Quick Yielding) हो जाता है। आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों के उद्योगों के विकास पर अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

- **सहकारी उद्योग (Co-operative Industries)** – बेरोजगार लोगों को संगठित करके सहकारिता के आधार पर नये उद्योग स्थापित किए जाने चाहिए। केरल सरकार ने कोचीन के 600 बेरोजगारों को संगठित करके एक कपड़ा मिल की स्थापना की, जिसमें प्रत्येक बेरोजगार ने 500 रुपये लगाए हैं और बाकी धन सरकार ने लगाया है। इसी प्रकार अन्य राज्य सरकारें भी सहकारिता का विकास करके बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में सहायता कर सकती हैं।

- **योजनाओं में रोजगार के कार्यक्रमों को अधिक महत्व (More Importance to Employment Programmes in Plans)** – योजनाओं के अन्तर्गत ऐसे कार्यक्रमों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, जिससे रोजगार का स्तर सामान्य रूप से बढ़ता जाये। इसके लिए सिंचाई, सड़कें, बाढ़ नियन्त्रण, बिजली, कृषि, वन, ग्रामीण विद्युतीकरण, भूमि संरक्षण, लघु उद्योगों का विकास तथा निर्माण अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ऐसे प्रोग्रामों पर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनसे भविष्य में रोजगार के अधिक अवसर बढ़ाने का मौका मिलेगा इसके विपरीत रोजगार बढ़ाने वाले आपातकालीन कार्यक्रमों (Crash Programmes) को नहीं अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि इसके फलस्वरूप अपव्यय अधिक होता है तथा रोजगार में स्थायी रूप से वृद्धि नहीं होती।

भारत में बेरोजगारी दूर करने के मुख्य कार्यक्रम (Major Programmes for poverty Eradication in India)

- **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP)** – प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (REGP) व प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) के विलय के पश्चात् 15 अगस्त, 2008 से प्रारंभ की गई। इस योजना के अंतर्गत, उत्पादक परियोजनाओं के लिए 10 लाख या 15 लाख रुपये व्यापार एवं सेवा क्षेत्र के लिए 10 लाख रुपये की क्रेडिट सीमा या ऋण सीमा होगी। यदि वे परियोजना क्रमशः 10 लाख या 5 लाख रुपये से अधिक की हों तो न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता 8वीं पास होगी।
- **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना** – युवाओं को प्रशिक्षण एवं कौशल विकास हेतु प्रमुख योजना है। इसके अंतर्गत पाठ्यक्रमों में सुधार बेहतर रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया जाता है। इस योजना का शुभारंभ जुलाई 2015 को विश्व युवा कौशल दिवस के अवसर पर आरंभ किया गया। इसके अंतर्गत, कौशल प्रशिक्षण उद्योगों द्वारा तय मानकों पर आधारित होगा। स्कूल छोड़ने वाले व्यक्तियों को अल्पावधि प्रशिक्षण एवं पूर्व में अर्जित कौशल को मान्यता तथा प्रमाणन। प्रशिक्षण

केंद्रों द्वारा प्रेस के माध्यम से प्रतिमाह एक कौशल और रोजगार मेले का आयोजन किया जायेगा। इसके अंतर्गत 2016-2020 की अवधि हेतु 1 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया था।

- **संकल्प योजना (Sankalp Yojana)** - केंद्र सरकार ने विश्व बैंक की सहायता से 6,655 हजार करोड़ रुपये की लागत से आजीविका संवर्द्धन के लिए क्षमता एवं ज्ञान संवर्द्धन योजना-संकल्प को स्वीकृति दी गई है। इस योजना का उद्देश्य दक्षता विकास दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक प्रशिक्षण हेतु गुणवत्ता एवं बाजार की आवश्यकता के अनुसार सुधार करना है। राष्ट्रीय कौशल विकास निगम, राज्य कौशल विकास निगम, क्षेत्रीय एकता परिषद्, आई.टी.आई. आदि संस्थाओं की कार्यपद्धति में सुधार लाना भी इसका एक उद्देश्य है।
- **प्रधानमंत्री युवा योजना (Pradhan Mantri Yuva Yojana)** - यह योजना कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) की पहल है। इसके अंतर्गत, मंत्रालय पांच वर्षों 2016-17 से 2020-21 की अवधि में 499.94 करोड़ रुपये की परियोजना लागत से 3,050 संस्थानों के माध्यम से 7 लाख से अधिक प्रशिक्षुओं को उद्यमशीलता प्रशिक्षण और शिक्षा उपलब्ध कराना है।
- **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)** - पहले से चली आ रही 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना' का ही पुनर्गठन 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' के रूप में हुआ है। यह कार्यक्रम, जून 2011 से औपचारिक रूप से देश भर में लागू किया गया। इस कार्यक्रम के पीछे मूल विचार SHG के रूप में गरीबों को संगठित करना और उन्हें स्वरोजगार के लिए सक्षम बनाना है। नवंबर, 2015 में इस कार्यक्रम का नाम बदलकर 'दीनदयाल अंत्योदय योजना' कर दिया गया।
- **राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (NULM)** - 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सितंबर 2013 से 'राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन' आरंभ किया जिसने 'स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना' का स्थान लिया है। 'राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन' में शहरी गरीबों को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने, उन्हें कौशल युक्त बनाते हुए बाजार आधारित रोजगार के अवसर सृजित करने और ऋण की आसानी से सुलभता सुनिश्चित कराते हुए स्वरोजगार उद्यम स्थापित करने में सहायता देने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। सितंबर, 2015 में इस योजना का नाम बदलकर 'दीनदयाल अंत्योदय योजना' (राष्ट्रीय आजीविका मिशन) कर दिया गया।
- **महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून (MGNREGA)** - यह कानून राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून (National Rural Employment Guarantee Act) के रूप में सितंबर, 2005 को पारित हुआ तथा इसकी शुरुआत 2 फरवरी, 2006 आंध्र प्रदेश से की गई। शुरू में इसे देश के 200 सबसे बड़े जिलों में लागू किया गया। दूसरे चरण में अन्य 130 जिलों तथा 1 अप्रैल, 2008 से बाकी बचे सभी जिलों में लागू कर दिया गया। 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून' का नाम बदलकर 2 अक्टूबर, 2009 से 'महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून' (MGNREGA) कर दिया गया। मनरेगा योजना में ग्रामीण लोगों को (इसमें गरीबी रेखा की कोई सीमा नहीं है) अपने परिवेश में रोजगार प्राप्त हो जाता है, केंद्र सरकार ने इस योजना के अंतर्गत 100 कार्य दिवस के रोजगार की गारंटी दी है (कुछ राज्यों ने कार्य दिवस की सीमा बढ़ा दी है)।

दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना (Deen Dayal Upadhyay Antyodaya Yojana) - दीनदयाल अंत्योदय योजना (डीएवाई) जिसका उद्देश्य, कौशल विकास के माध्यम से स्थायी आजीविका के अवसरों को बढ़ाकर शहरी गरीब लोगों के उत्थान के लिए है। यह योजना 'राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन'

(एनयूएलएम) और 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' (एनआरएलएम) का एकीकरण है।

शहरी गरीब परिवारों को गरीबी और भेद्यता को कम करने के लिए उन्हें लाभकारी स्वरोजगार और कुशल मजदूरी रोजगार के अवसरों का उपयोग करने में सक्षम बनाने के परिणामस्वरूप मजबूत जमीनी स्तर के निर्माण के माध्यम से स्थायी रूप से उनकी आजीविका में एक सहायनीय सुधार हुआ। मिशन का उद्देश्य, शहरी बेघरों को आवश्यक सेवाओं से सुसज्जित आश्रय प्रदान करना होगा। यह योजना उभरते बाजार के अवसरों तक पहुंचने के लिए शहरी सड़क विक्रेताओं के लिए उपयुक्त स्थान, संस्थागत ऋण और सामाजिक सुरक्षा और कौशल के साथ सुविधा प्रदान करके शहरी सड़क विक्रेताओं की आजीविका की चिंता को भी दूर करती है।

दीनदयाल श्रमेव जयते योजना (Deen Dayal Upadhyay "Shramev Jayate" Yojana) - 16 अक्टूबर, 2014 को नई दिल्ली में राज्य सरकारों के श्रम एवं रोजगार मंत्रियों, स्वास्थ्य मंत्रियों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण मंत्रियों के एक दिवसीय सम्मेलन के दौरान 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रमेव जयते कार्यक्रम' की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा शुरुआत की गई।

इस योजना को 'मेक इन इंडिया' कैम्पेन की सहायक योजना के रूप में प्रस्तावित किया गया है।

इस कार्यक्रम के निम्नलिखित प्रमुख घटक हैं-

- **समर्पित श्रम सुविधा पोर्टल** - यह लगभग 6 लाख इकाइयों को श्रम पहचान संख्या आवंटित करेगा और उन्हें 44 श्रम कानूनों में से 16 के लिए ऑनलाइन स्वीकृति दायर करने की अनुमति देगा।
- **आकस्मिक निरीक्षण की नई योजना** - निरीक्षण के लिए इकाइयों के चयन में तकनीकी का इस्तेमाल और इंस्पेक्शन के 72 घंटे के अंदर रिपोर्टों का निरीक्षण करना होगा।
- **यूनिवर्सल खाता संख्या** - इससे 4.17 करोड़ कर्मचारियों का अपना पोर्टेबल, परेशानी मुक्त और ऐसा भविष्य निधि खाता होगा, जिस तक कहीं से भी पहुंचा जा सकता है।
- **प्रशिक्षु प्रोत्साहन योजना** - इससे प्रशिक्षुओं को पहले दो वर्ष के दौरान भुगतान की जाने वाली राशि का 50% लौटाकर मुख्य रूप से निर्माण इकाइयों और अन्य प्रतिष्ठानों को मदद मिलेगी।
- **पुनर्गठित राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना** - असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को स्मार्ट कार्ड देना, जिसमें दो और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विवरण होगा।
- **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना** - यह योजना केंद्र सरकार द्वारा स्वरोजगार की सुविधा के लिए शुरू की गयी है। जिसके तहत छोटे और लघु उद्यमों और व्यक्तियों के लिए 10 लाख रुपये तक की व्यवस्था की गयी है, जिससे वह अपना व्यवसाय स्थापित कर सकें।
- **राष्ट्रीय कैरियर सेवा परियोजना** - ये एक डिजिटल पोर्टल है, जिसके द्वारा नौकरी चाहने वाले और नियोजकों के लिए एक गतिशील, कुशल और उत्तरदायी तरीके से नौकरी के लिए एक ऑनलाइन मंच प्रदान करता है।

अनियमितीयकरण व अनौपचारिकरण (Casualisation & Informalisation)

अनियमितीयकरण (Casualisation)

- भारतीय कार्य बल में तथा हमारे कार्यबल (Workforce) में अनियमित श्रमिकों का प्रतिशत अधिक है और इसमें निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है।

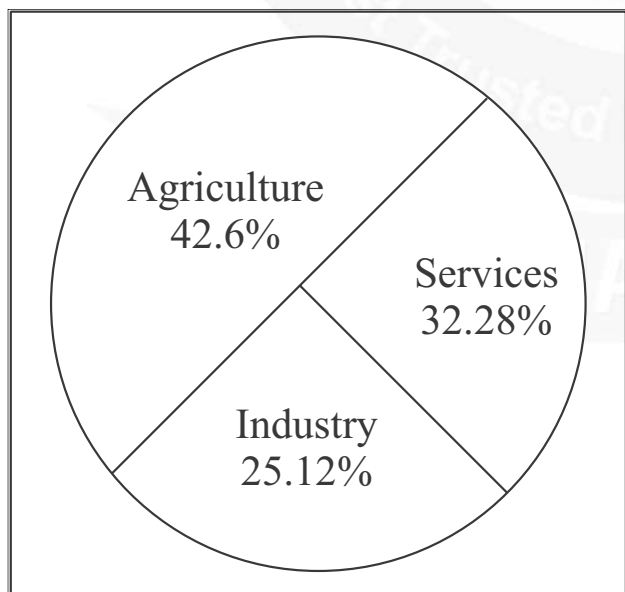
भारतीय कार्यबल में अनियमित श्रमिक (Casually Hired Workers in Workforce Indian)

वर्ष	प्रतिशत भाग
1972-1973	23%
1990-2000	33%
2009-2010	39.3%
2013-2014	30.9%
2015-2016	33%

- कार्यबल का अनियमतीकरण (Casualisation) एक ऐसी स्थिति है जिसमें लगातार कुल कार्यबल में अनियमित श्रमिकों का प्रतिशत बढ़ता जाता है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त बेरोजगारी के कारण अनियमतीकरण श्रम बल का एक सामान्य लक्षण बन गया है।
- रोजगार को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है-
 - औपचारिक क्षेत्र का रोजगार (Formal Sector Employment)।
 - अनौपचारिक क्षेत्र का रोजगार (Informal Sector Employment)।
- औपचारिक क्षेत्र, अर्थव्यवस्था का संगठित क्षेत्र है। जिसके अंतर्गत सभी सरकारी विभाग, सार्वजनिक उद्यम तथा निजी उद्यम सम्मिलित किये जाते हैं। यह प्रत्येक संगठित क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जिसमें 10 या उससे अधिक श्रमिक एक संगठित रूप में कार्य करते हैं।
- अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र को अनौपचारिक क्षेत्र कहते हैं। इसके अंतर्गत वे सभी निजी उद्यम शामिल किये जाते हैं। जिनमें 10 से कम श्रमिक कार्य करते हैं। इस क्षेत्र में संगठन का अभाव होता है।
- कृषि तथा स्वनियोजित जोखिम उद्यमों को भी असंगठित क्षेत्र में शामिल किया जाता है।

नोट

- भारत में लगभग 47.2 करोड़ कार्य बल (Work Force) है।
- कार्यबल (Workforce)**- 15 से 59 आयु वर्ग (Age Group) के रोजगार युक्त युवाओं को कार्य बल माना जाता है।
- श्रम बल (labour Force)**- 15-59 आयु वर्ग के सभी लोगों/युवाओं को श्रम बल माना जाता है।
- भारत में रोजगार का व्यवसायिक वितरण (Occupational Distribution)



- भारत में रोजगार के अजबसर उत्पन्न नहीं होने के कारण भारत की समृद्धि को 'रोजगार विहीन संवृद्धि' कहा जाता है।
- देश में श्रमिकों का औपचारिक क्षेत्र से अनौपचारिक क्षेत्र की ओर पलायन बढ़ा है। सरकारी क्षेत्र में भी ठेका मजदूरों (Contract Labour) की संख्या बढ़ी है।
- संगठित क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों को औपचारिक श्रमिक (Formal Workers) तथा असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों को अनौपचारिक श्रमिक (Informal Workers) कहा जाता है।
- वर्तमान समय में कुल कार्यबल का केवल 10% औपचारिक क्षेत्र में तथा 90% अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है।

अनौपचारिकीकरण (Informalisation)	
जब औपचारिक क्षेत्र में कार्यबल के प्रतिशत के घटने की तथा अनौपचारिक क्षेत्र में बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है तो इस स्थिति को कार्यबल का अनौपचारिकीकरण कहते हैं।	
औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र श्रमिक में तुलना	
औपचारिक श्रमिक (Formal Workers)	अनौपचारिक श्रमिक (Informal Workers)
ये अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र में काम करते हैं।	ये अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं।
इन्हें सामाजिक सुरक्षा के लाभ (जैसे- भविष्य निधि, बीमा, पेंशन आदि) प्राप्त होते हैं।	इन्हें किसी सामाजिक सुरक्षा के लाभ प्राप्त नहीं होते हैं।
औपचारिक श्रमिक विभिन्न श्रमिक संगठनों का निर्माण करते हैं।	अनौपचारिक श्रमिक संगठनों का निर्माण नहीं करते हैं।
औपचारिक श्रमिक नियमित (Regular) श्रमिक होते हैं।	अनौपचारिक श्रमिक दैनिक मजदूरी वाले श्रमिक होते हैं।
विभिन्न श्रम कानून बाजार की अनिश्चितताओं से इन्हें सुरक्षा (Protection) प्रदान करते हैं।	कोई भी श्रम कानून इन्हें सुरक्षा प्रदान नहीं करता और इसलिए ये बाजार की अनिश्चितताओं के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

रोजगार विहीन संवृद्धि (Jobless Growth)

- आर्थिक संवृद्धि तब होती है, जब देश में वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि होती है अर्थात् उत्पादन के स्तर में वृद्धि होती है। उत्पादन के स्तर में वृद्धि दो प्रकार से होती है-
 - आर्थिक रोजगार द्वारा
 - बेहतर प्रौद्योगिकी द्वारा
- आर्थिक संवृद्धि तभी पूर्णतः सफल मानी जाती है, जब उससे रोजगार के अवसरों में व्यापक वृद्धि होती है, क्योंकि रोजगार आय में वृद्धि करता है और बड़ी हुई आय से निर्धनता में कमी आती है। परंतु यदि आर्थिक संवृद्धि केवल बेहतर प्रौद्योगिकी के माध्यम से होती है तो इससे रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न नहीं होते हैं। ऐसी संवृद्धि को ही नौकरी रहित संवृद्धि अथवा 'रोजगार विहीन संवृद्धि' (Jobless Growth) कहा जाता है।

क्या भारत में Jobless Growth है?

वर्तमान में भारत Jobless Growth की स्थिति से गुजर रहा है। इस संदर्भ में निम्न बिंदु विचारणीय है-
विश्व बैंक द्वारा जारी किये गये SCD में यह बताया गया कि 2005-2012 तक की

समयावधि में भारत में औसत रूप में प्रति वर्ष 3 मिलियन से रोजगार के अवसर बढ़े हैं जब कि प्रति वर्ष रोजगार की औसत आवश्यकता 13 मिलियन की थी। NSSO के अनुसार वर्ष 2018-19 में भारत में कुल रोजगार की निम्न स्थिति देखी गयी-

- बेरोजगारी दर-6.1%
- श्रम भागीदारी दर-36.9%
- श्रम जनसंख्या अनुपात-34.7%
- शहरी बेरोजगारी-7.8%
- ग्रामीण बेरोजगारी-5.3%
- महिला श्रम भागीदारी दर- 17.5%

भारत में स्वरोजगार तथा अस्थायी रोजगार का उच्च स्तर न केवल Jobless Growth को दिखाता है बल्कि यह भी प्रदर्शित करता है कि रोजगार की गुणवत्ता सही नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि, भारत में न केवल अनौपचारिक क्षेत्र का रोजगार में सर्वाधिक योगदान (93%) है बल्कि औपचारिक क्षेत्र (Formal Sector) में अनौपचारिक रोजगार (Informal employment) बढ़ रहा है। इसे श्रम बाजार का अनौपचारिकरण (Informalization of labours market) कहते हैं।

इस प्रवृत्ति के दो मुख्य कारण हैं-

- भूमण्डलीकरण से जुड़ी प्रतियोगिता का मुकाबला करने के लिए लागतों को कम करना।
- भारत के जटिल श्रम कानूनों से बचना।

इन दोनों को ध्यान में रखते हुए नियोजकों द्वारा अस्थायी एवं संविदा आधारित श्रमिक (Temporary and contract workers) से अधिक कार्य करवाने की कोशिश की जाती है। अमेरिका जैसे राष्ट्रों में इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था को gig-economy के नाम से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में रोजगार विहीन संवृद्धि Jobless Growth है।

समाचार पत्र के अनुसार, पिछले 5 साल में 2 करोड़ लोगों ने अपने रोजगार को खोया है तथा बेरोजगारी की यह दर पिछले 45 साल में सर्वाधिक है।

इसके अलावा भारत की शिक्षा व्यवस्था में कमी है जिसकी वजह से बेरोजगारी दर अत्यधिक है। शिक्षा का बाजार की मांग के अनुरूप न होना, इसे हम निम्न दो तथ्यों से समझ सकते हैं-

1. भारत में हर साल पास होने वाले इंजीनियरिंग ग्रेजुएट में 60% इंजीनियरों के पास बाजार की मांग वे अनुरूप कौशल नहीं हैं।
2. 57% इंजीनियरिंग ग्रेजुएट ऐसे क्षेत्र में नौकरी कर रहे हैं जहां इंजीनियरिंग पास होने की अर्हता की जरूरत ही नहीं है।

अतः भारत में शिक्षा प्रणाली व पाठ्यक्रम का उद्योगों से अपयुग्मन (De-linkage) होना मुख्य समस्याओं में से एक है।

अतः उद्योग एवं शिक्षा जगत के बीच एक बेहतर संपर्क स्थापित किया जाना चाहिए। भारत में रोजगार के पर्याप्त अवसर किस प्रकार सृजित किये जा सकते हैं। इसके लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-

अतः भारत सरकार के द्वारा ऐसी नीति का प्रतिपादन होना चाहिए जो न केवल श्रम बल का समुचित उपयोग कर सके बल्कि इनके लिए उचित रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करा सके। अर्थात् इसके लिए रोजगार बढ़ाने के विशेष नीति पर ध्यान देना आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना होगा जो निम्नलिखित हैं-

कृषि क्षेत्र

- कृषि क्षेत्र में पूंजीनिर्माण पर ध्यान देना।
- भूमि सुधार एवं कास्तकारों को शोषण से मुक्त करना।

- सार्वजनिक एवं निजी निवेश को बढ़ाना।
 - तकनीकी विकास पर बल देना।
 - कृषि विपणन सुविधा को मजबूत करना।
 - MSP में सुधार करना एवं कृषि निर्यात का विस्तार।
 - जैविक कृषि द्वारा पर्यावरणीय एवं मानवीय क्षति को रोकना।
- इन सभी उपायों से कृषि क्षेत्र में रोजगार एवं आय दोनों ही बढ़ेंगे।

विनिर्माण

- ग्रामोद्योगीकरण - कुटीर एवं लघु उद्योग का विस्तार।
 - पारंपरिक उद्योगों, हस्तशिल्प का विकास।
 - MSMEs - Micro, Small, Medium Enterprises को बढ़ावा।
 - विनिर्माण में तकनीकी हस्तांतरण।
- राष्ट्रीय विनिर्माण नीति, 2011 के अनुसार, निम्न क्षेत्रों को अधिक रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र घोषित किया गया है। जिनमें रोजगार की अपार संभावना है-
- कपड़ा एवं सिले-सिलाए वस्त्र (Textile & Garments)।
 - चमड़ा एवं जूता उद्योग।
 - हीरा जवाहरात उद्योग (आभूषण)।
 - खाद्य प्रसंस्करण उद्योग।
 - हथकरघा एवं हस्तशिल्प उद्योग।

बैंकिंग

- साख सुविधा का विस्तार।
- बीमा का विस्तार।
- बैंकिंग सेवा को कुशल एवं सुलभ बनाना।

अन्य क्षेत्र

- विश्वस्तरीय आधारभूत संरचना का निर्माण।
- Single Window System के द्वारा व्यापार को आसान बनाना।
- व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप को कम करना।
- खाद्य प्रसंस्करण एवं कृषि आधारित उद्योगों को प्राथमिकता।
- Skilled India के द्वारा कुशल श्रम शक्ति का निर्माण।
- श्रम सुधार।
- बचत एवं निवेश की दर को बढ़ाना।
- पूंजी उत्पादकता में वृद्धि।
- डिजाइन तथा नवाचार को बढ़ाना।
- महिलाओं को रोजगार एवं स्वरोजगार के लिए प्रेरित करना।
- असंगठित क्षेत्र के रोजगार सुविधा को बढ़ावा देना।

अतः हम कह सकते हैं कि सवाल रोजगार की संभावना का नहीं वरन उन संभावनाओं को वास्तविकता में उतारने हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति का है तथा उस आर्थिक-सामाजिक आंदोलन का है जो उद्यमशीलता उन्मुख हो जो भारतीय युवा को नौकरी खोजी (Job Seeker) की जगह नौकरी प्रदाता (Job Provider) में बदल दे।

आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (Periodic Labour Force Survey - PLFS)

हाल ही में, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) द्वारा आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) 2018-19 जारी किया गया है।

- वर्ष 2017 में, NSSO ने रोजगार एवं बेरोजगारी के संकेतकों, मुख्य रूप से श्रमिक-जनसंख्या अनुपात (Worker Population Ratio: WPR) श्रम बल भागीदारी दर (Labour Force Participation Rates: LFPR) बेरोजगारी दर

(Unemployment Rate: UR) आदि का अनुमान लगाने के लिए (PLFS) का शुभारंभ किया था।

- LFPR इसे जनसंख्या में श्रम बल (अर्थात् कार्यरत या कार्य करने की आकांक्षा रखने वाले या कार्य के लिए उपलब्ध व्यक्ति) के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है।
- WPR: इसे जनसंख्या में नियोजित व्यक्तियों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है।

- बेरोजगारी दर (UR) इसे श्रम बल में शामिल कुल लोगों में बेरोजगार व्यक्तियों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है।

पीएलएफएस, वार्षिक रिपोर्ट के मुख्य निष्कर्ष

सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए पीएलएफएस के दौरान सामान्य स्थिति (पीएस+एसएस) में एलएफपीआर, डब्ल्यूपीआर और यूआर (प्रतिशत में)

अखिल भारतीय									
दरें	ग्रामीण			शहरी			ग्रामीण + शहरी		
(1)	पुरुष	महिला	व्यक्ति	पुरुष	महिला	व्यक्ति	पुरुष	महिला	व्यक्ति
(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(10)
पीएलएफएस 2020-21									
एलएफपीआर	57.1	27.7	42.7	58.4	18.6	38.9	57.5	25.1	41.6
डब्ल्यूपीआर	54.1	27.1	41.3	54.9	17.0	36.3	54.9	24.2	38.8
यूआर	3.9	2.1	3.3	6.1	8.6	6.7	4.5	3.5	4.2
पीएलएफएस 2019-20									
एलएफपीआर	56.3	24.7	40.8	57.8	18.5	38.6	56.8	22.8	40.1
डब्ल्यूपीआर	53.8	24.0	39.2	54.1	16.8	35.9	53.9	21.8	38.2
यूआर	4.5	2.6	4.0	6.4	8.9	7.0	5.1	4.2	4.8
पीएलएफएस 2018-19									
एलएफपीआर	55.1	19.7	37.7	56.7	16.1	36.9	55.6	18.6	37.5
डब्ल्यूपीआर	52.1	19.0	35.8	52.7	14.5	34.1	52.3	17.6	35.3
यूआर	5.6	3.5	5.0	7.1	9.9	7.7	6.0	5.2	5.8
पीएलएफएस 2017-18									
एलएफपीआर	54.9	18.2	37.0	57.0	15.9	36.8	55.5	17.5	36.9
डब्ल्यूपीआर	51.7	17.5	35.0	53.0	14.2	33.9	52.1	16.5	34.7
यूआर	5.8	3.8	5.3	7.1	10.8	7.8	6.2	5.7	6.1

नोट: (पीएस + एसएस) = (प्रमुख कार्यकलाप की स्थिति + सहायक आर्थिक कार्यकलाप की स्थिति)

नियत कालिक रोजगार (Fixed Term Employment)

हाल ही में, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय ने विनिर्माण, खनन और सेवा क्षेत्र, सभी के लिए आदर्श स्थायी आदेश, 2020 (Model Standing Orders, 2020) के प्रारूप को अधिसूचित किया है। इस प्रारूप दस्तावेज में कामगारों के वर्गीकरण में से एक के रूप में नियत कालिक रोजगार का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।

- प्रारूप आदेश में नियत कालिक रोजगार (फिक्स्ड टर्म एम्प्लॉयमेंट) को रोजगार की एक श्रेणी में शामिल किया गया है, किंतु सूची से 'आकस्मिक कार्य' (Casual Work) को हटा दिया गया है। प्रदत्त सूची में श्रमिकों को स्थायी (Permanent) रूप दिया जाएगा और औद्योगिक संबंध संहिता अधिनियम, 2020 (Industrial Relations Code Act 2020) के साथ एकीकृत किया जाएगा।

नियत कालिक रोजगार की वैधानिक स्थिति की पृष्ठभूमि

- औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 (Industrial Employment (Standing Order) Act 1946) के अनुसार, नियत कालिक

रोजगार आरंभ में (वर्ष 2016 में), केवल परिधान निर्माण क्षेत्रक और उसके बाद वर्ष 2017 में संशोधनों के माध्यम से फुटवियर निर्माण क्षेत्रक के लिए उपलब्ध कराया गया था।

- औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) केंद्रीय (संशोधन) नियम, 2018 ने सभी उद्योगों को एक सुनिश्चित कार्यकाल के लिए अनुबंध पर श्रमिकों को नियुक्त करने की अनुमति दी।
- इसी की तर्ज पर, केंद्रीय श्रम मंत्रालय ने (वर्ष 2018 में) सभी राज्यों से सभी उद्योगों में नियत कालिक रोजगार (FTE) की अनुमति के लिए अलग-अलग आदेश जारी करने का आग्रह किया था।

नियत-कालिक रोजगार क्या है?

- मोटे तौर पर, नियत कालिक रोजगार एक अनुबंध है, जिसमें एक कंपनी (या एक उद्यम) किसी कामगार को एक विशिष्ट अवधि के लिए काम पर रखती है। ज्यादातर मामलों में, यह एक वर्ष के लिए होता है, लेकिन आवश्यकता के आधार पर अवधि समाप्त होने के बाद इसे नवीनीकृत किया जा सकता है।
- इस आदर्श स्थायी आदेश में नियत कालिक रोजगार के संबंध में निम्नलिखित पहलुओं को रेखांकित किया गया है-

- नियत कालिक रोजगार से अभिप्राय किसी निर्धारित अवधि के लिए नियोक्ता द्वारा लिखित अनुबंध के आधार पर किसी कामगार को प्रदत्त रोजगार से है, किंतु यह निम्नलिखित शर्तों के अधीन है-
- उसके कार्य के घंटे, वेतन, भत्ते और अन्य लाभ समान काम करने वाले या समान प्रकृति के कार्य करने वाले किसी स्थायी कर्मचारी से कम नहीं होंगे।
- वह किसी स्थायी कामगार को उपलब्ध, उसके द्वारा की गई सेवा की अवधि के समान अनुपात में सभी सांविधिक लाभों का पात्र होगा, भले ही उसके नियोजन की अवधि, विधि में अपेक्षित पात्रता नियोजन अवधि के बराबर न हो।
- यदि वह एक वर्ष की अवधि के लिए अनुबंध के तहत सेवा प्रदान करता है, तो वह उपदान (ग्रेच्यूटी) के लिए पात्र होगा। (ग्रेच्यूटी एक कर्मचारी को रोजगार की अवधि के अंत में भुगतान की गई राशि का उल्लेख करती है।)
- सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष या छः महीने से अधिक के प्रत्येक भाग के लिए, नियोक्ता 15 दिनों के वेतन की दर से कामगार को ग्रेच्यूटी का भुगतान करेगा।
- आदेश में यह भी स्पष्ट किया गया है कि, कार्यकाल पूरा होने के परिणामस्वरूप किसी कार्यकर्ता की सेवा को समाप्त करना छंटनी (Retrenchment) नहीं माना जाएगा।
- प्रारूप यह प्रस्तावित करता है कि, वेतन भुगतान अधिक पारदर्शी होगा और एक कामगार की कार्य अवधि पूर्ण होने के बाद अधिकतम सात दिनों के भीतर सभी पारिश्रमिक का भुगतान कर दिया जाएगा।
- इसमें यह भी कहा गया है कि, वेतन दरों (Wage Rates) को इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस या नोटिस बोर्ड और औद्योगिक प्रतिष्ठान की वेबसाइट या मानव संसाधन (HR) पोर्टल पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए। यह जानकारी उस भाषा (हिन्दी, अंग्रेजी या स्थानीय भाषा) में उपलब्ध कराई जानी चाहिए, जिससे अधिकांश श्रमिक परिचित हैं।
- अधिकांश देशों के विपरीत, भारत में निजी कंपनियों द्वारा नियत कालिक अनुबंधों के नवीनीकरण की कोई अधिकतम संख्या तय नहीं की गई है।

कौशल विकास से संबंधित सुधार (Improvement Related to Skill Development)

स्किल्स बिल्ड रिगनाइट कैम्प (Skills Build Reignite (SBR) And Skills Build Innovation Camp (SBIC))	• यह कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) तथा IBM के मध्य एक साझेदारी है। • SBR इसके अंतर्गत नौकरी के इच्छुक व्यक्तियों को कोर्सवर्क की सुविधा और उद्यमियों को परामर्श प्रदान किया जाता है, ताकि वे क्रमशः अपने कैरियर एवं व्यवसायों में परिवर्तन कर नवाचार को अपनाने में सक्षम हो सकें। • SBIC, 10 सप्ताह का एक कार्यक्रम है, जो उन सभी शिक्षार्थियों को 100 घंटे का औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान करता है, जो उन सभी शिक्षार्थियों को 100 घंटे का औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान करता है, जो ज्ञान प्राप्त करने और नेटवर्क तैयार करने तथा अपनी रोजगार क्षमता को बढ़ाने के लिए परियोजना के माध्यम से अनुभव प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं।
राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् [National Council of Vocational Education and Training (NCVET)]	• हाल ही में, कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) और NCVET ने कौशल परिस्थितिकी तंत्र को और सुदृढ़ करने हेतु प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र प्रदाता निकाय और मूल्यांकन एजेंसियों के लिए नए दिशा-निर्देश तथा प्रचालन विवरणिका (Operation Manuals) का अनावरण किया। • NCVET के बारे में- ✓ इसे वर्ष 2018 में कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय द्वारा अधिसूचित किया गया था। ✓ इसे मौजूदा कौशल नियामक निकायों, तथा- राष्ट्रीय कौशल विकास एजेंसी तथा राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् को एकीकृत कर गठित किया गया था तथा यह एक अतिमहत्वपूर्ण कौशल नियामक के रूप में कार्य करेगा। ✓ यह व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण में लगे हुए संस्थाओं के कामकाज को नियंत्रित करता है (दोनों दीर्घ कालिक और अल्पकालिक), और ऐसी संस्थाओं के कामकाज के लिए न्यूनतम मानक स्थापित करता है।
‘गोईंग ऑनलाइन ऐज लीडर्स’ (गोल) परियोजना [Going Online As Leaders (GOAL) Project]	• GOAL वस्तुतः एक डिजिटल कौशल निर्माण एवं परामर्श (Mentorship) पहल है। इस पहल के माध्यम से देश भर के अनुसूचित जनजाति के युवकों को व्यक्तिगत रूप से परामर्श (Mentor) प्रदान करने के लिए व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति, कला एवं उद्यमशीलता के क्षेत्र से जुड़े अग्रणी व्यक्तियों एवं विशेषज्ञों से जोड़ा जाएगा। • इसके अंतर्गत डिजिटल साक्षरता, जीवन कौशल तथा उद्यमशीलता के संबंध में परामर्श प्रदान किया जाएगा। • GOAL परियोजना को फेसबुक के साथ साझेदारी में जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा प्रारंभ किया गया है।
द अर्बन लर्निंग इंटरनशिप प्रोग्राम (TULIP)	• ट्यूलिप वस्तुतः देशभर के सभी शहरी स्थानीय निकायों (ULBs) और स्मार्ट शहरों में नए स्नातकों को इंटरनशिप के अवसर प्रदान करने का एक कार्यक्रम है- ✓ आवेदक भारतीय नागरिक होने चाहिए जिन्होंने विगत 18 महीनों के भीतर कॉलेज का अंतिम वर्ष पूरा कर लिया हो। ✓ इस कार्यक्रम का अपना कोई बजट नहीं है। ✓ इसे पहले केंद्रीय बजट 2020-21 की घोषणा में प्रस्तावित किया गया था। • इसमें एक एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म होगा जो प्रशिक्षुओं (Inters) और सभी (ULBs/स्मार्ट शहरों को एक छत के नीचे अंतः क्रिया करने और एकजुट होने की अनुमति प्रदान करता है। ✓ आवासन और शहरी कार्य मंत्रालय (MoHUA) ट्यूलिप के अंतर्गत ULBs और स्मार्ट शहरों की भागीदारी को सक्षम करने के लिए राज्य सरकारों के साथ साझेदारी में क्षमता निर्माण संबंधी पहल भी आरंभ करेगा।

भारतीय आयोजन (Planning in India)

परिचय (Introduction)

भारत में विकास की आवश्यकताओं की तुलना में कम मात्रा में संसाधन उपलब्ध है। अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि उपलब्ध संसाधनों का इस प्रकार प्रयोग किया जाए कि उनके प्रयोग से अधिकतम कल्याण का सृजन किया जा सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति तभी संभव है जब सब तरह के दुरुपयोग से बचा जा सके। भारतीय अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि 1947 से 2017 के 70 वर्षों की अवधि में 65 वर्ष आयोजनबद्ध विकास के रूप में बीते हैं। योजना में (प्रत्येक पांच वर्षों की योजना) विकास के उद्देश्य, इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक उत्पादन एवं उपभोग के लक्ष्य तथा आवश्यक वित्तीय संसाधनों का उल्लेख रहता है। साधारण शब्दों में, यह आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों का योजनाबद्ध तरीके से विकास किया जाए। अर्थात् हमें उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का ब्यौरा तैयार करना होगा। प्राथमिक संसाधनों का विभिन्न वैकल्पिक प्रयोगों में प्राथमिकता के आधार पर आवंटन किया जाना चाहिए। उपलब्ध संसाधनों का ब्यौरा देते हुए एवं इनका प्राथमिकता अनुसार विभिन्न प्रयोगों में आवंटन का उल्लेख करते हुए एक कार्यक्रम तैयार किया जाता है, जिसमें लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित होते हैं, इन्हें एक निश्चित अवधि, सामान्यतः पांच वर्षों में, प्राप्त करना होता है। आवश्यकतानुसार उपलब्ध संसाधनों के आवंटन तथा उनके उपयोग हेतु तैयार किये कार्यक्रम की इस क्रिया को 'आर्थिक आयोजन' का नाम दिया जाता है। योजना कितनी सफल रही इस बात पर निर्भर करता है कि निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव हो पाया या नहीं।

आदेशात्मक नियोजन (Imperative Planning)

- आदेशात्मक नियोजन एक केंद्रीकृत व्यवस्था है, जिसमें राज्य सरकारी संस्थाओं का व्यापक एवं प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता है।
- इस नियोजन में केंद्रीय स्तर पर एक शीर्ष संस्था होती है जो योजनाओं के निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है। इस मॉडल में निर्णय प्रक्रिया केंद्रीकृत होती है, इसलिए इसे 'केंद्रीकृत नियोजन' भी कहा जाता है।

निर्देशात्मक नियोजन (Directional Planning)

- निर्देशात्मक नियोजन एक विकेंद्रीकृत व्यवस्था है जिसमें राज्य एवं सरकारी संस्थाओं का सांकेतिक एवं परोक्ष हस्तक्षेप होता है। इसमें सरकार केवल नीतियां बनाने का कार्य करती है तथा इसका क्रियान्वयन निजी क्षेत्रों के द्वारा किया जाता है।

संरचनात्मक नियोजन (Structural Planning)

- यदि आर्थिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए संसाधनों के वर्तमान स्वामित्व के ढांचे, उत्पादन की विधि एवं संस्थागत व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किया जाए तो यह संरचनात्मक नियोजन कहलाता है। जैसे- भूमि सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन करके अर्थव्यवस्था की बुनियादी क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

प्रकार्यात्मक नियोजन (Functional Planning)

- यदि आर्थिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए संसाधन स्वामित्व के ढांचे, उत्पादन की विधि अथवा संस्थागत व्यवस्था में कोई मूलभूत परिवर्तन लाने की बजाय उसके अनुकूलतम दोहन की रणनीति अपनाई जाए तो यह 'प्रकार्यात्मक

नियोजन' कहलाता है जैसे- हरित क्रांति के द्वारा कृषि क्षेत्र में यह विधि अपनाई गई।

केंद्रीकृत नियोजन (Centralised Planning)

- केंद्रीकृत नियोजन में समस्त आर्थिक निर्णय केंद्रीय सत्ता द्वारा लिए जाते हैं। अतः इस प्रकार का नियोजन साम्यवादी देशों में अपनाया जाता है। इसे ऊपर से नीचे की ओर नियोजन भी कहते हैं।

विकेंद्रीकृत नियोजन (Decentralised Planning)

इस प्रकार के नियोजन में कुछ विशेष निर्णय केंद्रीय सत्ता द्वारा लिए जाते हैं तथा शेष समस्त निर्णय लेने का अधिकार निम्नस्तरीय संस्थाओं को होता है। अतः इस प्रकार का नियोजन प्रजातांत्रिक देशों में पाया जाता है। इसे नीचे से ऊपर की ओर नियोजन भी कहते हैं।

भारत में वर्ष 1993 में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन के द्वारा स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करते हुए विकेंद्रीकृत नियोजन की दिशा में बढ़ने का प्रयास किया गया है। इसे नीतिगत नियोजन या निर्देशात्मक नियोजन भी कहते हैं।

दीर्घावधिक नियोजन (Long Term Planning)

दीर्घावधिक नियोजन के अंतर्गत लक्ष्यों को तय किया जाता है तथा रणनीतियों का निर्धारण एक लंबे समय के लिए होता है। जैसे- विजन 2020, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (इसका दीर्घकालिक लक्ष्य वर्ष 2070 तक देश की जनसंख्या वृद्धि दर को स्थिर करना है)। सामान्यतः इसे परिप्रेक्ष्य योजना उद्देश्य कहा जाता है।

अनवरत योजना (Rolling Plan)

इस योजना के अंतर्गत दीर्घकाल के लिए योजनाओं के लक्ष्यों और रणनीतियों का निर्धारण किया जाता है तथा वार्षिक आधार पर उसका मूल्यांकन करते हुए संशोधित लक्ष्यों का निर्धारण भी किया जाता है, जिससे निश्चित समय सीमा के भीतर लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

भारत में वर्ष 1978 में जनता पार्टी सरकार द्वारा 'अनवरत योजना' (Rolling Plan) शुरू की गई थी। बजट भी एक वार्षिक वित्तीय विवरण है।

अल्पकालिक नियोजन (Short Term Planning)

सामान्यतः वार्षिक आधार पर योजना के लक्ष्यों और रणनीतियों का निर्धारण करना ही 'अल्पकालिक योजना' कहलाती है, इसकी अवधि तीन या चार वर्ष तक भी हो सकती है।

राष्ट्रीय नियोजन (National Planning)

जब शीर्ष केंद्रीय संस्था द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर योजना के लक्ष्यों और रणनीतियों का निर्धारण किया जाता है तो उसे 'राष्ट्रीय नियोजन' कहते हैं, जैसे- 12वीं पंचवर्षीय योजना में 8% आर्थिक संवृद्धि दर का लक्ष्य रखना, स्वच्छ भारत अभियान का क्रियान्वयन करना आदि।

क्षेत्रीय नियोजन (Regional Planning)

जब किसी क्षेत्र-विशेष को ध्यान में रखकर योजना के लक्ष्यों और रणनीतियों का

निर्धारण किया जाता है तो उसे 'क्षेत्रीय नियोजन' कहते हैं। प्रायः क्षेत्रीय नियोजन राष्ट्रीय नियोजन का ही हिस्सा होता है, जैसे- भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों के लिए विकास परियोजनाओं का निर्धारण करना आदि।

भारत में विकासात्मक योजनाओं का युग (Era of Development Plans in India)

भारत में आर्थिक आयोजन की क्रिया पहली पंचवर्षीय योजना के साथ 1 अप्रैल, 1951 को प्रारंभ हुई। वैसे उससे पहले ही देश में योजना के मार्ग को अपनाने की बात विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा सोची जा रही थी।

स्वतंत्रता पूर्व आयोजन संबंधित विचार (Ideas on Planning Before Independence)

स्वतंत्रता पूर्व अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओं ने देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार किये थे तथा इस पर अपने विचार प्रस्तुत किये थे।

- सबसे पहले श्री एम. विश्वेश्वरैया ने सन् 1934 में 'प्लांड इकोनॉमी ऑफ इंडिया' (Planned Economy of India) नामक पुस्तक में योजना की प्रथम रूपरेखा रखी थी।
- बाद में सन् 1938 में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' (National Planning Committee) की नियुक्ति की गयी जिसने देश के आर्थिक विकास के लिए योजना का एक मसौदा (Draft Outline) प्रकाशित किया।
- इसके बाद देश के समक्ष एक-एक करके तीन विकास योजनाएं रखी गयीं। सर्वप्रथम, भारत में चुने हुए आठ व्यवसायियों ने सन् 1943 में एक योजना प्रस्तुत की जो 'बंबई योजना' (Bombay Plan) के नाम से जानी जाती है। इस योजना का उद्देश्य 12 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करना था।
- ठीक उसी समय श्री एम.एन. राय ने जन योजना (People's Plan) नामक एक नई योजना प्रस्तुत की। इस योजना में कुल मिलाकर 10,000 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया।
- श्री मन्न नारायण द्वारा एक और योजना तैयार की गयी जिसे 'गांधी योजना' (Gandhi Plan) के नाम से जाना जाता है।

किंतु इनमें से किसी भी योजना को व्यावहारिक रूप देना संभव नहीं हो पाया, क्योंकि देश गुलाम था तथा विदेशी शासक देश के आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम में रुचि नहीं लेते थे।

पंचवर्षीय योजनाएं (Five Year Plans)

योजना आयोग ने देश के आर्थिक विकास के लिए पहली पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1951 से आरंभ की। इसका मुख्य उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध और देश विभाजन के कारण उत्पन्न असंतुलन को दूर करना था। तब से ही हमारा प्रयास रहा है कि प्रत्येक पांच वर्ष के बाद नई योजना आरंभ की जाए जिसमें बढ़े हुए लक्ष्य सामने रखे जाए। दूसरी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1956 से 31 मार्च 1961 तक चली। इसके बाद 1 अप्रैल, 1961 से 31 मार्च, 1966 तक तीसरी पंचवर्षीय योजना लागू रही। इस तरह हम अपने प्रयासों में सफल भी हुए हैं, हालांकि कभी-कभी कुछ विघ्न या रुकावटें हमारे रास्ते में आती रही हैं। उदाहरण के लिए, यह देश का दुर्भाग्य ही था कि तीसरी योजना के पांच वर्षों के दौरान दो बार पड़ोसी देशों ने हम पर हमला किया-1962 में चीन ने और 1965 में पाकिस्तान ने। इन हमलों के दबाव में हमें बहुत सारी धन राशि विकास कार्यक्रमों में से निकाल कर रक्षा संबंधी कार्यक्रमों पर खर्च करने के लिए बाध्य होना पड़ा। साथ ही, घरेलू परिस्थितियां भी कुछ प्रतिकूल रहीं। 1965-66 के

दौरान देश में भयंकर सूखा पड़ा, अकाल जैसी स्थिति देश में बनी रही। कृषि उत्पादन में भयंकर गिरावट के परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में भी कमी आ गई, कीमतें तेज गति से बढ़ने लगीं। ऐसी परिस्थितियों में हमें योजना के कार्यक्रमों को कुछ देर के लिए स्थगित करने के लिए मजबूर होना पड़ा। लेकिन यह परिवर्तन केवल तीन साल के लिए ही था। इन तीन वर्षों को (1966-1969) तक आयोजन अवकाश (Plan Holidays) का काल माना जाता है। इन तीन वर्षों में वार्षिक योजनाएं तैयार की गईं। इनका मुख्य उद्देश्य तीसरी योजना के दौरान खोए संतुलन को दोबारा प्राप्त करना था।

योजनावकाश	1966-67
	1967-68
	1968-69
अनवरत योजना	1978-80
योजनावकाश	1990-91
	1991-92

पुनः 1978-80 की अवधि में भी दो वार्षिक योजनाएं ही बनाई गईं। इसी तरह 1990-92 के दो वर्षों में केवल वार्षिक योजनाएं ही बनाई गईं। आठवीं पंचवर्षीय योजना की कार्य अवधि 1992-97 तथा 9वीं योजना की कार्य अवधि 1997-2002 रही। 1 अप्रैल, 2002 से 2007 की अवधि के लिए 10वीं पंचवर्षीय योजना लागू रही। 1 अप्रैल, 2007 से 2012 की अवधि के लिए 11वीं योजना बनी तथा 1 अप्रैल, 2012 से 12वीं योजना लागू हुई, जिसका कार्यकाल मार्च, 2017 था।

पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (Objectives of Five Year Plan)

भारत में आर्थिक आयोजन का सहारा देश से गरीबी हटाने के लिए लिया गया है। इस तरह, भारत में आयोजन का मूल या केन्द्रीय उद्देश्य (Basic or Central Objective) गरीबी को दूर करना और जन साधारण के जीवन स्तर को यथासंभव ऊपर उठाना है। इस मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक संबंधित उप-उद्देश्यों (Related Sub- Objectives) की पूर्ति आवश्यक है। इनमें से मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

उत्पादन की मात्रा में तीव्र वृद्धि (Rapid Increase in Production)

भारत में आयोजन का सबसे बड़ा ध्येय उत्पादन को बढ़ाना है। राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि का ही परिणाम होती है। 'राष्ट्रीय आय' में वृद्धि के परिणामस्वरूप देशवासियों के आय स्तर में वृद्धि होती है और उन्हें अधिक मात्रा में वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध होती हैं। किन्तु राष्ट्रीय आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप केवल उसी ही दशा में देशवासियों की प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी संभव है जब राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर जनसंख्या की वृद्धि की दर से अधिक हो। उत्पादन में तेज गति से वृद्धि के लिए निम्न कदम आवश्यक हैं-

- कृषि में सुधार एवं इसकी उत्पादकता में वृद्धि (Improvement in Agriculture and Raising its Productivity) के लिए आवश्यक है कि कृषकों को सिंचाई, खाद, उर्वरक, बेहतर बीज, वित्त एवं बेहतर बिक्री की सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाए।
- औद्योगिक विकास में वृद्धि (Helping Industrial Growth) के लिए आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश की राशि बढ़ाई जाए तथा निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जाए।
- व्यापार, व्यवसाय एवं विभिन्न प्रकार की सेवाओं (Trade, Commerce

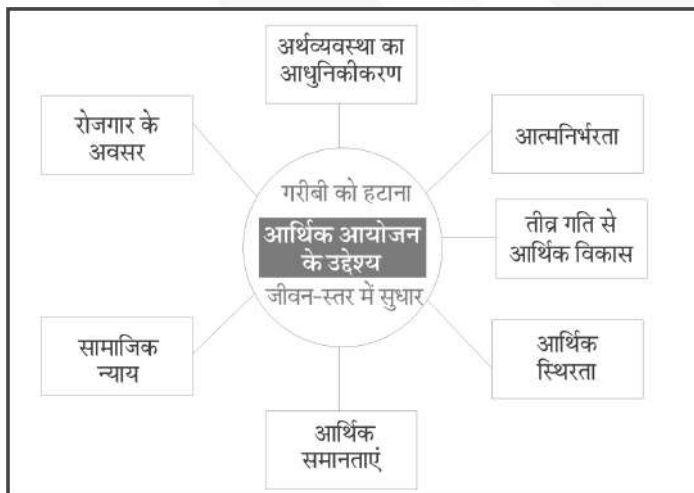
and Different Types of Services) को विकसित एवं प्रोत्साहित किया जाए। तेज गति से विकसित अर्थव्यवस्था शीघ्र ही आत्मनिर्भरता के लक्ष्य (Goal of Self-Reliance) को भी प्राप्त कर लेती है। आत्म-निर्भरता से अभिप्राय है कि देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक निवेश के स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त संसाधन देश में ही उपलब्ध होने चाहिए। रोजगार के अवसरों में तीव्र वृद्धि (Rapid Increase in Employment) बेरोजगारी को दूर करना अथवा रोजगार के अवसरों में वृद्धि लाना आयोजन का प्रमुख उद्देश्य है। इससे रोजगार की सहायता से उपलब्ध मानवीय संसाधनों का उचित प्रयोग करना और देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को जीविका के साधन प्रदान करना संभव हो पाएगा।

आर्थिक समानताओं की उपलब्धि (Achievement of Economic Equality)

आयोजन का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य आर्थिक समानता है ताकि देश में सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके। धन व आय की असमानताएं सामान्य जीवन स्तर को ऊपर उठाने में बाधक होती हैं। स्वस्थ आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि इन असमानताओं को दूर किया जाए। आयोजन का मुख्य उद्देश्य देश में समाजवादी ढंग से समाज (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना करना है।

इस तरह के समाज की स्थापना के लिए देश में उत्पादन की मात्रा में तेज वृद्धि लाना और उसका उचित और न्यायपूर्ण वितरण करना अति आवश्यक है। विकास की इस प्रक्रिया को हमारी योजनाओं में सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास (Economic Growth with Social Justice) की संज्ञा दी गई है।

आर्थिक समानताओं के उद्देश्य को 11वीं योजना में एक व्यापक रूप दिया गया। इसके अनुसार अब हमारा प्रयास 'समावेशी विकास' (Inclusive Growth) का लक्ष्य प्राप्त करना होगा। समावेशी विकास का अर्थ है कि विकास प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों की बराबर भागीदारी होनी चाहिए एवं विकास से सभी वर्ग लाभान्वित होने चाहिए।



आर्थिक स्थिरता (Economic Stability)

आर्थिक आयोजन का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाना और उसे बनाए रखना है। आर्थिक स्थिरता से यह अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था में होने वाले विभिन्न नियमित उतार-चढ़ावों को समाप्त किया जाए ताकि अर्थव्यवस्था सही ढंग से आगे बढ़ सके और जन साधारण के जीवन स्तर में समय के साथ सुनिश्चित सुधार लाया जा सके।

अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण (Modernisation of the Economy)

हमारी योजनाओं में इस तत्व पर बल दिया गया है कि विभिन्न उत्पादन क्रियाओं में अद्यतन तकनीक तथा आधुनिकतम उपकरणों एवं मशीनों का प्रयोग किया जाए। आधुनिकीकरण के अनेक परिणाम होते हैं—

- उत्पादकता के स्तर में सुधार संभव हो पाता है।
 - वस्तुओं की गुणात्मक श्रेष्ठता बढ़ती है।
 - संसाधनों के कुशलतम उपयोग से उत्पादन लागत में कमी संभव होती है।
- संक्षेप में, आयोजन के मौलिक उद्देश्य, अर्थात् गरीबी को दूर करने की प्राप्ति के लिए अर्थव्यवस्था में अधिक उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता, स्थिरता एवं आधुनिकीकरण आदि उद्देश्यों पर बल दिया गया है। ये सभी उद्देश्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं एवं इससे एक-दूसरे को बढ़ावा मिलता है। उदाहरणतः उत्पादन में वृद्धि से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है, असमानताएं कम होती हैं एवं स्थिरता बढ़ती है। ये सब बेहतर जीवन स्तर में परिलक्षित होती हैं।

अन्य उद्देश्य (Other Objectives)

उपरोक्त पांच प्रमुख लक्ष्यों के अलावा भी हमारे आयोजन में कुछ अन्य उद्देश्यों का भी उल्लेख किया गया है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

- **आर्थिक क्रियाओं में विविधीकरण (Diversification of Economic Activities)**— स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से कृषि प्रधान थी। समग्र GDP का 60% भाग इसी क्षेत्र से प्राप्त होता था। कुल श्रम शक्ति के 70% को इसी क्षेत्र से जीविका उपलब्ध होती थी। हमारे कुल निर्यातों में से तीन-चौथाई निर्यात कृषि क्षेत्र से उपलब्ध होते थे। हमारी योजनाओं में इस तरह के असंतुलन को दूर करने के सफल प्रयास किए गए। इसलिए आवश्यक था कि औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहित किया जाए।
- **संसाधनों का अधिकतम प्रयोग संभव (Maximum the Usage of Resource)**— मात्र उत्पादन क्षमताओं में वृद्धि से ही लोगों के कल्याण में सुधार नहीं आता। यह आवश्यक है कि उत्पादन की जिस अतिरिक्त क्षमता का निर्माण किया जाता है उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग भी किया जाए। इसलिए हमारी योजनाओं में संसाधनों के अधिकतम संभव उपयोग पर बल दिया गया है।
- **कीमत प्रतिस्पर्धा शक्ति प्राप्त करना (Achieving Price Competitiveness)**— जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि हमारा प्रमुख उद्देश्य है, कीमत स्तर में स्थिरता बनी रहे। इसी के साथ जुड़ा है, प्रतिस्पर्धा शक्ति प्राप्त करने का उद्देश्य। इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी उत्पादन लागतों में बराबर कमी लाने का प्रयास करना है। उत्पादन लागतों में कमी से हम कम कीमतों पर अपने उत्पाद बेच सकने में समर्थ होंगे। अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में बड़ी मात्रा में हमारे उत्पादों की मांग की जाएगी।
- **भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना (Establishment of the Mixed Economy in India)**— हमारी योजनाओं में मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना एवं इसको प्रोत्साहित करने के उद्देश्य पर भी बल दिया गया है। मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के बीच समझौते की स्थिति है।

भारतीय योजनाओं की प्रमुख विशेषताएं (Important Features of Indian Plans)

- **निर्देशात्मक आयोजन (Indicative Planning)**— समाजवादी देशों में योजनाओं में पाया जाने वाला अनिवार्यता का तत्व भारतीय योजनाओं में नहीं है। भारतीय योजनाएं अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों के लिए भी लक्ष्य

निर्धारित करती हैं जिन पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होता। उदाहरणार्थ भारत में संपूर्ण कृषि निजी क्षेत्र में है लेकिन सरकार योजनाओं में इस क्षेत्र के लिए भी लक्ष्य निर्धारित करती है।

- **व्यापक योजनाएं (Comprehensive Plans)** – उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से पहले भारतीय योजनाएं व्यापक होती थीं और इनके अंतर्गत सभी क्षेत्रों में संपन्न होने वाली आर्थिक क्रियाएं आती थीं। इस दृष्टि से वे पश्चिम यूरोप में लागू किए जाने वाले आर्थिक आयोजन से पूरी तरह भिन्न होती थी। पश्चिम यूरोप में कुछ समय बिन्दुओं पर आंशिक आयोजन अपनाया गया है जो महज कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है। इन देशों में आयोजन का प्रयास राजकोषीय उपायों के द्वारा रोजगार का ऊँचा स्तर बनाए रखना होता है। यदि कभी कुछ जरूरी वस्तुओं का अभाव हो जाता है तो राशनिंग व्यवस्था अथवा कीमत नियंत्रणों के द्वारा उनके न्यायोचित वितरण की व्यवस्था की जाती है। इस तरह के आंशिक आर्थिक आयोजन की तुलना में भारतीय आर्थिक आयोजन व्यापक रहा है। इस दृष्टि से भारतीय आयोजन का स्वरूप कुछ-कुछ समाजवादी देशों के आर्थिक आयोजन से मिलता था।
- **भौतिक आयोजन (Physical Planning)** – आर्थिक आयोजन दो प्रकार से हो सकता है। (i) भौतिक आयोजन और (ii) वित्तीय आयोजन। भौतिक आयोजन से अभिप्राय श्रम, पदार्थ, ऊर्जा आदि के रूप में योजना में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साधनों का आवंटन करना होता है। इसके विपरीत वित्तीय आयोजन में लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों को वित्तीय साधनों का आवंटन किया जाता है। दोनों तरह के आयोजन एक-दूसरे के पूरक होते हैं और विवेकपूर्ण आयोजन में दोनों को एक साथ करना जरूरी होता है।
- **सामाजिक आयोजन (Social Planning)** – भारतीय आयोजन विशुद्ध आर्थिक आयोजन नहीं है। यह वस्तुतः सामाजिक आयोजन है। इसी कारण से इसके आर्थिक स्वरूप में कुछ विसंगतियां पैदा हो गई हैं। इसके सामाजिक स्वरूप की वजह से उन सभी कारकों का प्रभाव जो राजनीतिक वातावरण को प्रभावित करते हैं, भारतीय आयोजन पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। जहां तक राजनीतिक वातावरण का प्रश्न है पूंजीपति वर्ग, जमींदारों और बड़े किसानों का प्रभाव स्पष्ट है।
- **अविश्वसनीय आंकड़े (Unreliable Data)** – अर्थपूर्ण आयोजन के लिए विश्वसनीय आंकड़ों का होना जरूरी है। बिना विश्वसनीय आंकड़ों के सभी प्रक्षेपण (Projections) अटकलबाजी मात्र होंगे और विश्लेषण में गंभीर आर्थिक तर्क की कमी होगी, तथापि भारत में आंकड़ें गुणात्मक दृष्टि से अच्छे नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं है कि 1951 में जब आर्थिक आयोजन का प्रारंभ हुआ तब से आंकड़ों में बहुत सुधार हुआ है। तथापि इस दिशा में अब भी बहुत कुछ करना बाकी है। इस समय राज्य स्तर से नीचे के आंकड़े बहुत शोचनीय स्थिति में हैं या तो ये आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं या फिर इनमें गलतियां हैं।

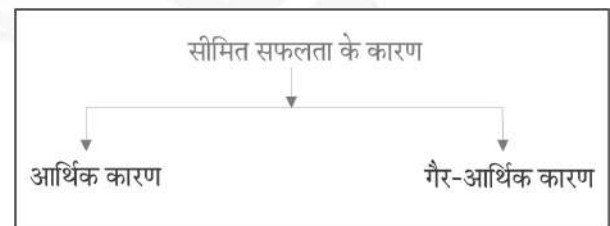
आयोजन की प्रमुख उपलब्धियाँ एवं विफलताएं (Major Achievements & failures of Planning)

भारत में आयोजन काल के दौरान देश में आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे में अनेक परिवर्तन हुए हैं। हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह रही कि भारत में उपलब्ध साधनों का प्रयोग औपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों के स्वार्थों की पूर्ति के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि साधनों का प्रयोग देश के सामान्य जीवन स्तर को सुधारने के लिए किया जाता है। देश से गरीबी, अज्ञानता और बीमारी (Poverty, Ignorance & Disease) को हटाने के लिए सुदृढ़ आर्थिक ढांचा विकसित किया गया है। इस ढांचे में अभिलाषित सुधारों को लाने की पर्याप्त क्षमता है। भारत की राष्ट्रीय आय में निरंतर वृद्धि जारी है वृद्धि की यह दर जो 1950-75 की अवधि में मात्र 3.5 प्रतिशत, 1975-91 में बढ़कर 5 प्रतिशत

तथा उसके बाद 6 प्रतिशत से अधिक हो चुकी है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में बराबर कमी आती जा रही है। जन्म दरों में गिरावट आ रही है। जीवन प्रत्याशा बढ़ी है। खाद्यान्न पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। निर्यातों में वृद्धि का क्रम जारी है। अनेक उद्योगों में हम आत्मनिर्भर हो चुके हैं। औद्योगिक विकास दर तेज हो चुकी है। कृषि विकास की संभावनाएं बेहतर हो चुकी हैं, आदि। निःसंदेह, भारत में आर्थिक आयोजन की उपलब्धियां महत्वपूर्ण रही हैं। किंतु अनेक क्षेत्रों में घोर कमियां एवं दुर्बलताएं भी स्पष्ट रूप से दिखती हैं। उदाहरण के लिए, 55 वर्षों के इस निरंतर प्रयास के बावजूद भी गरीबी का विकराल रूप और आय तथा संपत्ति में भयंकर असमानताएं उसी तरह से विद्यमान हैं। विकास की गति अन्य देशों की तुलना में धीमी है। पूंजी उत्पाद अनुपात दुगुना हो चुका है। घरेलू बचतों में उल्लेखनीय सुधार नहीं आए हैं। व्यापार घाटे बढ़ते जा रहे हैं, आदि।

आयोजन की सीमित सफलता के कारण

भारत में आयोजन की सीमित सफलता के अनेक कारण हैं। इन विभिन्न कारणों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है 1. आर्थिक कारण 2. गैर-आर्थिक कारण।



आर्थिक कारक (Economic Factors)

भारतीय अर्थव्यवस्था के निम्न गति से विकसित होने के लिए निम्नलिखित आर्थिक कारक जिम्मेदार हैं।

पहला, आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा अपर्याप्त पूंजी द्वारा प्रस्तुत की गई है। पूंजी के अभाव में अन्य उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग संभव नहीं हो पाता, फलतः अर्थव्यवस्था अपनी क्षमता के अनुरूप काम नहीं कर पाती जिससे रोजगार अवसरों का निर्माण नहीं हो पाता।

दूसरा, तकनीकी पिछड़ेपन के कारण अविकसित उत्पादन तकनीकें प्रयोग में बनी रहती हैं। फलतः उत्पादकता का स्तर निम्न दर्जे का बना रहता है।

तीसरा, अनुकूल आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के अभाव में गत्यात्मक उद्यमशीलता विकसित नहीं हो पाती।

चौथा, आर्थिक विकास के मार्ग में कुशल एवं कौशल-युक्त श्रम का अभाव एक बड़ी बाधा बना हुआ है।

पांचवां, भारत में उत्पादकता का स्तर निम्न दर्जे का है जो कि ऊंची ICOR में प्रदर्शित होता है।

गैर-आर्थिक कारक (Non-Economic Factors)

इस वर्ग में हम उन सभी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों जैसे जाति-प्रथा संयुक्त परिवार प्रणाली राजनीति से प्रभावित फैसले, युद्धों की बारंबारता आदि को शामिल कर सकते हैं जो आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए हैं। आर्थिक विकास के लिए आर्थिक एवं गैर-आर्थिक दोनों तरह के कारकों के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता है।

पंचवर्षीय योजनाओं का व्यौरा

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1st Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1951-31 मार्च, 1956

- मॉडल - हैराल्ड डोमर मॉडल पर आधारित।
- लक्षित विकास दर - 2.1%
- प्राप्त विकास दर - 3.60% (सफल योजना)

मुख्य उद्देश्य- कृषि एवं सिंचाई की व्यवस्था को सुदृढ़ करना।

- देश के विभाजन तथा युद्ध से उत्पन्न असंतुलन को दूर करना।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों का पुनरुद्धार करना।
- औद्योगीकरण की वांछित पृष्ठभूमि तैयार करना।
- खाद्यान्न आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ना।
- संतुलित विकास का रोडमैप तैयार करना।

प्रमुख तथ्य

- प्रथम योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 2378 करोड़ रु. के संशोधित व्यय का लक्ष्य रखा गया था किंतु वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रु. हो पाया।
- इस योजना की प्राथमिकता कृषि एवं सिंचाई साधनों का विस्तार था।
- इस योजना के दौरान प्रतिव्यक्ति आय में 1.8% की वृद्धि दर्ज की गयी।
- दामोदर घाटी, भाखड़ा नांगल, हीराकुण्ड जैसी बहुउद्देशीय परियोजनाओं का निर्माण किया गया।
- 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम', 1952 (Community Development Programme, 1952) तथा 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' (National Extension Services) का विस्तार किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (2nd Five year Plan)

- 1 अप्रैल, 1956- 31 मार्च, 1961
- मॉडल - पी.सी. महालनोबिस मॉडल पर आधारित।
- लक्षित विकास दर - 4.5%
- प्राप्त विकास दर - 4.2%

मुख्य उद्देश्य- तीव्र औद्योगीकरण

- तीव्र औद्योगीकरण के लिए भारी एवं आधारभूत उद्योग पर अधिक बल।
- उद्योग के माध्यम से रोजगार क्षेत्र में वृद्धि।
- आय एवं संपत्ति के बंटवारे में समानता।
- राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि।
- आर्थिक विकास का समान वितरण।

प्रमुख तथ्य

- योजना पी.सी. महालनोबिस के क्षेत्रीय मॉडल पर आधारित थी- जिसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं-
 - पूंजीगत वस्तु क्षेत्र पर जोर।
 - उद्योग उत्पादित उपयोग वस्तु क्षेत्र पर जोर।
 - लघु इकाई उत्पादन क्षेत्र पर जोर।
 - घरेलू उद्योग क्षेत्र पर जोर।
 - इस आयोजन में आधारभूत तथा भारी उद्योगों पर विशेष बल के साथ औद्योगीकरण को लक्ष्य बनाया गया।
 - सार्वजनिक क्षेत्र पर 4800 करोड़ रुपये का संशोधित व्यय प्रस्तावित किया गया किंतु 4672 करोड़ रुपये खर्च हो सके।
 - राउरकेला (उड़ीसा), भिलाई (छत्तीसगढ़), दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) में इस्पात संयंत्रों की स्थापना की गई।
 - इन्टेग्रल कोच फैक्टरी तथा चितरंजन लोकोमोटिव्स की आधारशिला रखी गई।
- प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रयुक्त 'Harrod Domar Model' में कृषि क्षेत्र पर विशेष बल दिया गया था। इसमें उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन पर

कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। इस कमी को दूर करने के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 'पी.सी. महालनोबिस मॉडल' को सामने रखा गया जिसे 'प्रशांत नेहरू मॉडल' भी कहा जाता है क्योंकि इस समय योजना आयोग के अध्यक्ष तथा देश के प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू थे।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (3rd Five Year Plan)

- 1961 से 31 मार्च, 1966
- मॉडल - जे. सैण्डी व सुखमय चक्रवर्ती मॉडल
- लक्षित विकास दर - 5.6%
- प्राप्त विकास दर - 2.7%

मुख्य उद्देश्य - आत्मनिर्भर एवं स्वतः स्फूर्त अर्थव्यवस्था।

- आधारभूत उद्योगों की अवहेलना किये बिना कृषि क्षेत्र पर विशेष बल दिया गया।
- मानव संसाधन का अधिक से अधिक उपयोग एवं रोजगार में वृद्धि।
- खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता।
- उद्योग एवं निर्यात की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पाद में वृद्धि।
- आय तथा धन की विषमता को कम करना।
- अर्थव्यवस्था को स्वतः स्फूर्त बनाना।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- इस योजना के Plan Model का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। लेकिन इसमें निम्नलिखित मॉडल (प्रतिमानों) की झलक मिलती है।
 - महालनोबिस का पूंजीगत निवेश मॉडल
 - जे सैण्डी का Demonstration Planning Model
 - सुखमय चक्रवर्ती का योजना मॉडल
 - चक्रवर्ती मॉडल - आगत-निर्गत मॉडल
- सार्वजनिक व्यय की राशि 7500 करोड़ रुपये तय की गई थी लेकिन व्यय हुआ 8577 करोड़।
- लक्षित विकास दर 5.6% थी लेकिन 2.7% ही प्राप्त हो सकी। इसका कारण- 1962 का चीन-भारत युद्ध, 1965 का पाक-भारत युद्ध, 1965-66 का राष्ट्रव्यापी सूखा रहा।

चौथी पंचवर्षीय योजना (4th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1969 से 31 मार्च, 1974
- मॉडल - खुली निरंतरता मॉडल (अशोक रूद्र व एलेन मन्ने)
- लक्षित विकास दर - 5.7%
- विकास दर प्राप्ति - 3.3% (असफल योजना)

मुख्य उद्देश्य- स्थिरता के साथ आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति। (Growth with Stability and Progress towards Self Reliance)

- राष्ट्रीय आय एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि।
- संतुलित विकास पर जोर।
- आय एवं संपत्ति वितरण तथा क्षेत्रीय असमानता में कमी लाना।
- कृषि के लिए नये अवसर उपलब्ध कराना।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- चौथी FYP का प्रारूप योजना आयोग के उपाध्यक्ष डी.आर. गाडगिल ने तैयार किया था इसलिए इसे गाडगिल योजना भी कहा जाता है।
- योजना का प्रस्तावित व्यय 15900 करोड़ रुपये था, वास्तविक व्यय 15779 करोड़ रुपये हो पाया।

- इस योजना में कृषि एवं सिंचाई पर पुनः प्राथमिकता दी गई।
- इस योजना के तहत ही 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।
- MRTPA Act 1969 तथा बफर स्टॉक (Buffer Stock) की धारणा को सामने लाया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (5th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च, 1979
- मॉडल - डी.डी. धर द्वारा प्रस्तावित आगत-निर्गत मॉडल (Input-output Model)
- लक्षित विकास दर - 4.4%
- प्राप्त विकास दर - 4.8% (सफल योजना)

मुख्य उद्देश्य - गरीबी उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति।

- न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम, जैसे- प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा, भूमिहीनों के लिए आवास, पोषण, ग्रामीण सड़क, विद्युतीकरण जैसे मूलभूत आवश्यकताओं आदि पर बल दिया गया।
- न्यायपूर्ण मजदूरी कोमत।
- आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्द्धन।
- खाद्यान्न भंडार एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
- आर्थिक, सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमानता को कम करना।
- कृषि के लिए आधुनिकीकरण।
- उद्योग के माध्यम से आम उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- यह मॉडल गाडगिल योजना पर ही आधारित था। इसमें आगत-निर्गत के 60 क्षेत्रों को शामिल किया गया।
- इस योजना को जनता पार्टी की सरकार ने समय से एक वर्ष पूर्व समाप्त कर दिया और छठी योजना (1978-80) को लागू किया जिसे 'अनवरत योजना' (Rolling Plan) कहा गया।
- Rolling Plan का प्रतिपादन गुन्नार मिडाल ने किया था तथा इसे भारत में लागू करने का श्रेय डी.टी लकड़वाला को जाता है।
- इसके तहत गरीबी निवारण हेतु 20 सूत्री कार्यक्रम चलाया जाता है।

छठी पंचवर्षीय योजना (6th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1980 से 31 मार्च, 1985 तक
- मॉडल - योजना आयोग का मॉडल
- लक्षित विकास दर - 5.2%
- प्राप्त विकास दर - 5.4% (सफल)

मुख्य उद्देश्य - 'गरीबी निवारण एवं रोजगार सृजन'

इंदिरा गांधी सरकार के द्वारा पांचवीं योजना के दौरान ही 'गरीबी उन्मूलन' का लक्ष्य रखा गया था तथा उन्होंने 1971 के चुनाव में 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। इसे ध्यान में रखते हुए 6th FYP में रोजगार सृजन एवं गरीबी निवारण का उद्देश्य रखा गया। छठी पंचवर्षीय योजना राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही कारणों से महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस योजना के पूर्व भारत आजादी के बाद के अनेक राष्ट्रीय आपातों की स्थिति से गुजर चुका था। चीन, पाकिस्तान युद्ध, सुरक्षा एवं श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा लगाये गये राष्ट्रीय आपात के साथ कृषि आयात में अधिक निर्भरता, रुपये के अभाव में योजना अवकाश, ऐसे कई मुद्दे थे जिसका सरकार पर चौतरफा दबाव था। इस बीच एक अच्छी घटना यह घटी कि भारत 'हरित क्रांति' को प्राप्त कर चुका था, फलतः जिससे राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न की कमी को पूरा किया गया और आयात हतोत्साहित हो सका।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- इस योजना में लक्षित व्यय 95500 करोड़ रुपये था जबकि वास्तविक व्यय 109292 करोड़ रुपये था।
- इस योजना के दौरान 'मानक व्यक्ति वर्ष' (Standard Person Year) को रोजगार मापने के लिए अपनाया गया। जिसके तहत प्रतिदिन 8 घंटे (Hour) काम के समय को तय किया गया और वार्षिक 273 दिन जिसे 'मानक व्यक्ति वर्ष' कहा गया।
- ग्रामीण बेरोजगारी उन्मूलन के लिए IRDP, NREP, TRYSEM, DWACRA, RLEGP योजनाएं चलाई गईं।
- योजना आयोग द्वारा 1977 में 'गरीबी निर्देशांक तैयार' किया गया तथा गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी के रूप में परिभाषित किया गया।
- छठी पंचवर्षीय योजना को 15 वर्ष की दीर्घ अवधि को ध्यान में रखकर बनाया गया जिसे Perspective Planning कहा जाता है।
- अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण को पहली बार छठी योजना में ही अपनाया गया। गरीबी निवारण, आर्थिक विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय जैसे दीर्घकालिक उद्देश्यों को एक साथ जोड़ा गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (7th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1985 से 31 मार्च, 1990
- मॉडल - उदारीकरण पर जोर देते हुए योजना आयोग का मॉडल
- लक्षित विकास दर - 5%
- प्राप्त विकास दर - 5.8%

मुख्य उद्देश्य - इस योजना का प्रमुख उद्देश्य आधुनिकीकरण को स्वीकृति प्रदान करना था।

- खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य।
- एक स्वतंत्र आत्मनिर्भर भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव रखी गई।
- साम्य एवं न्याय पर आधारित आर्थिक प्रणाली की स्थापना।
- पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संरक्षण।
- ऊर्जा संरक्षण एवं गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास।

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- यह योजना उदारीकरण की तरफ मुड़ने का संकेत थी क्योंकि पहली बार दीर्घकालीन विकास युक्तियों पर जोर देते हुए उदारीकरण पर बल दिया गया।
- 7th FYP की उसकी प्रमुख रणनीति गरीबी, बेरोजगारी तथा क्षेत्रीय विषमता की समस्याओं पर प्रत्यक्ष प्रहार करना था।
- खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए राष्ट्रीय पहलू के सभी मार्गों पर ध्यान दिया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (8th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1992 से 31 मार्च, 1997
- मॉडल - 'जॉन डब्ल्यू मुलर' मॉडल
- लक्षित विकास दर - 5.6%
- प्राप्त विकास दर - 6.68%

मुख्य उद्देश्य - 'मानव संसाधन विकास', 'रोजगार सृजन', 'जनसंख्या नियंत्रण'।

- 1991 में LPG को भारत के द्वारा अपना लिया गया था। अतः इसके कुशल क्रियान्वयन के लिए पूंजी के साथ-साथ कुशल मानव संसाधन की भी

आवश्यकता थी। भारत अधिक जनसंख्या के कारण श्रम शक्ति से संपन्न देश था। अतः पूँजी निर्माण के लिए मानव संसाधन के कुशलता पर ध्यान दिया गया।

- 20वीं शताब्दी के अंत तक पूर्ण रोजगार की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया।
- प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिक लक्ष्य रखा गया साथ ही 15 से 35 वर्ष आयु समूह में निरक्षरता उन्मूलन पर ध्यान दिया गया।
- सभी गांवों में शुद्ध पेयजल, एवं प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध करवाना।
- ऊर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई आदि सुविधाओं का विस्तार करना।
- खाद्य पदार्थों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा कृषि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए कृषि विकास तथा फसल विविधीकरण (Diversification) पर ध्यान देना।
- जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने के लिए सहयोग प्रेरणा (Incentives) तथा हतोत्साहन (Disincentives) का मार्ग अपनाना।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- 7th FYP 13 मार्च, 1990 को समाप्त हुआ था लेकिन आठवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1992 से शुरू हो पायी। वर्ष 1990-91 एवं 1991-1992 योजना अवकाश वर्ष रहा और वर्षीय विकास नीति अपनायी गई।
- योजना व्यय की राशि 434000 करोड़ थी, वास्तविक व्यय 495670 करोड़ रुपये हुए।
- 8th FYP से निर्देशात्मक योजना (Indicative Planning) का दौर प्रारंभ हुआ।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (9th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 1997 से 2002
- लक्षित विकास दर - 7%
- प्राप्त विकास दर - 5.6% (असफल योजना)

मुख्य उद्देश्य - सामाजिक न्याय एवं समता के साथ विकास (Growth with Social Justice and Equity)

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया गया-

- रोजगार निर्माण एवं गरीबी निवारण के लिए कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गई।
- खाद्यान्न तथा पोषण सुरक्षा (Food and Nutritional Security) का लक्ष्य रखा गया।
- जनसंख्या वृद्धि दर पर नियंत्रण।
- प्रत्येक स्तर पर जनता की भागीदारी एवं विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण पर जोर दिया गया।
- समाज के वंचित वर्ग, महिलाओं, अनुसूचित जाति- जनजाति, पिछड़े वर्गों एवं अल्पसंख्यकों को मजबूत बनाने की योजना रखी गयी। महिला सशक्तीकरण पर अधिक बल दिया गया।
- जन-भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायती एवं सहकारी संस्थाओं के विकास पर बल दिया गया।
- जन सामान्य को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया गया।
- स्थिर मूल्य स्तर के साथ आर्थिक विकास दर को अधिक तीव्र करना।

योजना से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण बिंदु

- नवीं पंचवर्षीय योजना को 1 अप्रैल, 1997 से शुरू किया गया लेकिन केंद्रीय मंत्रिमंडल के द्वारा इसकी मंजूरी 9 जनवरी, 1999 को प्राप्त हुई। बाद

में 19 जनवरी, 1999 को NDC द्वारा इसे स्वीकृति प्रदान की गयी।

- शेष अवधि के लिए NDC द्वारा इसमें विकास दर को 7% लक्षित किया गया था जबकि पूरी योजना अवधि के दौरान इसके विकास दर 6.5% निर्धारित की गयी।
- कृषि एवं ग्रामीण विकास को ध्यान में रखते हुए कृषि क्षेत्र निवेश को बढ़ाकर 2,68,300 करोड़ रुपये कर दिया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (10th Five Year Plan)

- 1 अप्रैल, 2002 से 31 मार्च, 2007
- लक्षित विकास दर - 8%
- प्राप्त विकास दर - 7.2%

10th FYP भारतीय योजना के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस योजना में नवीनता लाने के स्थान पर पहले से चली आ रही योजना लक्ष्यों को पूरा करने का लक्ष्य रखा गया तथा इस बात को स्वीकारा गया कि आर्थिक विकास के प्रथम चरण में औद्योगिक विकास पर जोर दिया गया और कृषि विकास की अवहेलना की गई। यह योजना काल की औसत वार्षिक वृद्धि दर 8% निर्धारित की गई। इस समय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधार का दौर चरम पर था। इस योजना को रणनीति के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया-

- विगत वर्षों में प्राप्त उपलब्धियों को अक्षुण्ण बनाए रखना एवं इन्हीं पर आगे विकास की रणनीति तैयार करना।
- विगत वर्षों में तय किये गये क्षेत्रों के विकास में आई बाधाओं को दूर करना। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्न लक्ष्यों पर ध्यान दिया गया।
- 1 करोड़ वार्षिक के आधार पर 5 करोड़ योजनान्तर्गत रोजगार सृजन का लक्ष्य रखा गया।
- कर GDP अनुपात 14.9% से बढ़ाकर 16.5% तक पहुंचाना।
- 2007 तक साक्षरता दर 75% पहुंचाना।
- 2007 तक साक्षरता एवं लिंग मजदूरी संबंधी विभाजन को 50% तक कम करना।
- निर्धनता अनुपात को 2007 तक 21% तक तथा 2012 तक 11% तक लाने का लक्ष्य रखा गया।
- दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर (Decaded Growth 2001 & 2011) को 16.2% स्तर तक लाना।
- वन आच्छादन में 2007 तक 25% तथा 2012 तक 33% की वृद्धि का लक्ष्य।
- 2007 तक देश की सभी बड़ी नदियों के प्रदूषण की सफाई एवं 2012 तक अन्य जल स्रोतों की सफाई।
- राजकोषीय घाटे को GDP का 4.7% तथा राजस्व घाटे को GDP का 2.9% तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

11वीं पंचवर्षीय योजना (11th Five Year Plan)

- समयावधि - 1 अप्रैल, 2007 से 31 मार्च, 2012
- लक्षित विकास दर - 9.0%
- प्राप्त विकास दर - 7.9%

मुख्य उद्देश्य - तीव्रतर और अधिक समावेशी विकास (Faster and More Inclusive Growth)

तीव्रतर और अधिक समावेशी विकास के लक्ष्य के अंतर्गत निम्न प्रमुख लक्ष्यों को शामिल किया गया।

- 70 मिलियन नये रोजगार के अवसर सृजित करना तथा शैक्षिक बेरोजगारी को 5% से नीचे लाना।

- 2001 से 2011 तक दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर को 16.2% के स्तर पर लाना।
- कुल प्रजनन दर 2.1 तक लाना।
- 0-3 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में कुपोषण की दर को वर्तमान से आधा करना।
- 0-6 आयु वर्ग में लिंगानुपात को 2011-12 तक बढ़ाकर 935 तथा 2016-17 तक 950 करना।
- 2012 तक सभी गांवों में स्वच्छ पेयजल आपूर्ति करना।
- नवंबर 2007 तक देश के प्रत्येक गांव में टेलीफोन सुविधा तथा 2012 तक प्रत्येक गांव में ब्रॉडबैंड सुविधा प्रदान करना।
- 78% साक्षरता दर को प्राप्त करना तथा 10% तक साक्षरता लिंगीय अन्तराल को लाना।

इस योजना में उच्च शिक्षा की दिशा में तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं को जोड़ा गया, वे थे विस्तार (Expansion), निष्पक्षता (Equity), विशिष्टता (Excellence) तथा स्किल डेवलपमेंट मिशन बनाया गया जिसका लक्ष्य 50 मिलियन लोगों को कुशल बनाना था।

12वीं पंचवर्षीय योजना

- 1 अप्रैल, 2012 से 31 मार्च, 2017
- लक्षित विकास दर - 8%

मुख्य उद्देश्य - तीव्र, अधिक समावेशी व सतत् विकास।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के 25 मुख्य निगरानी योग्य लक्ष्य आर्थिक विकास

- 8% तक वास्तविक जीडीपी विकास दर
- 4% तक कृषि विकास दर।
- 10% तक विनिर्माण वृद्धि दर।
- 11वीं योजना के दौरान प्राप्त दर से प्रत्येक राज्य को उच्च विकास दर प्राप्त करनी चाहिए।

गरीबी और रोजगार

- 11वीं योजना के अंत में गरीबी दर की तुलना में गरीबी दर 10% तक कम करना।
- गैर-कृषि क्षेत्र में 5 नए काम के अवसर और कौशल प्रमाणन जिससे 50 मिलियन नए रोजगार का सृजन हो सके।

शिक्षा

- स्कूल की पढ़ाई का औसत वर्ष 7 साल तक बढ़ाना।
- उच्च शिक्षा में प्रत्येक आयु वर्ग के लिए 20 लाख सीटें।
- स्कूल नामांकन में लिंग अंतर और सामाजिक अंतर की समाप्ति।

स्वास्थ्य

- मातृ मृत्यु दर को 212 से 100 तक लाना।
- शिशु मृत्यु दर को 44 से 25 लाना।
- बाल लिंग अनुपात को बढ़ाकर 950 करना।
- कुल प्रजनन दर को 2.4 से कम करके 2.1 तक लाना।
- कुपोषित बच्चों की संख्या को 40% से 23% तक लाना।

अवसंरचना

- सकल सिंचित क्षेत्र को 103 मिलियन हेक्टेयर करना (90 मिलियन हेक्टेयर से)।

- सभी गांवों को बिजली; एटी एंड सी नुकसान को 20% तक कम करना।
- ऑल वेदर रोड्स के साथ गांवों को जोड़ना।
- पूर्वी और पश्चिमी समर्पित फ्रेट कॉरिडोर को पूरा करना।
- ग्रामीण टेली-घनत्व 70% तक बढ़ाना।
- प्रतिदिन 40 लीटर प्रति व्यक्ति के अनुसार ग्रामीण आबादी के 50% तक को पेयजल; सभी ग्राम पंचायतों के 50% गांवों को निर्मल ग्राम का दर्जा।
- हर साल 1 मिलियन हेक्टेयर तक ग्रीन कवर बढ़ाना।
- पंचवर्षीय अवधि में 30,000 मेगावाट तक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता को बढ़ाना।
- 2020 तक सकल घरेलू उत्पाद की उत्सर्जन तीव्रता 2005 के 20-25% तक कम करना।

सेवा प्रदान करना

- 90% भारतीय घरों में बैंकिंग सेवाएं।
- आधार आधारित डायरेक्ट कैश ट्रांसफर स्कीम के माध्यम से सब्सिडी और कल्याण से संबंधित भुगतान करना।

अतः हम पाते हैं 12वीं पंचवर्षीय योजना अधिक समावेशन की ओर केंद्रित थी।

नीति आयोग (NITI Aayog)

नीति आयोग (NITI - National Institution for Transforming India) का गठन, केन्द्रीय कैबिनेट के एक प्रस्ताव द्वारा 1 जनवरी, 2015 को किया गया। नीति आयोग भारत सरकार का एक प्रमुख प्रबुद्ध मंडल (Think Tank) है, जो कि दिशा-निर्देश के साथ-साथ नीतियों के बारे में उपयोगी जानकारी प्रदान करता है। भारत सरकार के लिए सामाजिक कार्यनीति एवं दीर्घकालीन नीतियां तथा कार्यक्रमों की डिजाइन तैयार करने के साथ साथ नीति आयोग, केन्द्र और राज्यों को आवश्यक तकनीकी सलाह भी देता है।

सरकार ने अपने सुधार में एजेंडों को आगे बढ़ाते हुए 1950 में गठित योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग बना दिया। इसके गठन के पीछे उद्देश्य था कि आयोग जनमानस की अपेक्षाओं पर खरा उतर सके और उनकी आकांक्षाओं को बेहतर ढंग से पूरा कर सके (क्योंकि योजना आयोग इन अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पा रहा था)। नीति आयोग सरकार के लिए सर्वोत्कृष्ट प्लेटफार्म उपलब्ध कराता है, जिस पर सभी राज्य एकजुट होकर राष्ट्रीय हित में कार्य करते हैं और इससे सहयोगात्मक संघवाद की भावना को बल मिलता है।

नोट- नीति आयोग, योजना आयोग की तरह संविधानेतर संस्था है, यह वित्त आयोग निर्वाचन आयोग

तथा अंतर्राज्यीय परिषद की तरह संवैधानिक संस्था नहीं है।

नीति आयोग की संरचना (Structure of NITI Aayog)

- **अध्यक्ष** - प्रधानमंत्री
- **गवर्निंग काउंसिल** - सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और संघीय क्षेत्रों के उप राज्यपालों से मिलकर बनेगी।
- **क्षेत्रीय परिषद**- विशिष्ट मुद्दों और ऐसे आकस्मिक मामले जिनका संबंध किसी क्षेत्र विशेष (एक या अधिक राज्यों से संबंधित) से हो को देखने के लिए क्षेत्रीय परिषद का गठन किया जाएगा, जो विशिष्ट कार्यकाल के लिए बनायी जाएगी। इस परिषद के बैठक की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे। इसमें संबंधित क्षेत्र के मुख्यमंत्री और केन्द्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होंगे।
- **विशेष आमंत्रित**- संबंधित क्षेत्र की जानकारी रखने वाले विशेषज्ञ व पेशेवर लोग जो प्रधानमंत्री द्वारा नामित होंगे।
- **पूर्णकालिक संगठनात्मक ढांचा**- पूर्णकालिक संगठनात्मक ढांचे में (प्रधानमंत्री) होने के अलावा निम्न होंगे-

- **उपाध्यक्ष**– प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त
- **पूर्णकालिक सदस्य**– प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त
- **अंशकालिक सदस्य**– अग्रणी विश्वविद्यालय, शोध संस्थानों से संबंधित अधिकतम दो पदेन सदस्य तथा केंद्रीय मंत्री परिषद के अधिकतम 4 सदस्य।
- **पदेन सदस्य**– केन्द्रीय मंत्रिपरिषद से अधिकतम चार सदस्य प्रधानमंत्री द्वारा नामित होंगे।
- **मुख्य कार्यकारी अधिकारी**– प्रधानमंत्री द्वारा नियत कार्यकाल के लिए भारत सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी को सीईओ नियुक्त किया जाएगा।
- **सचिवालय** – आवश्यकता के अनुसार।

नीति आयोग के कार्य (Work of NITI Aayog)

- राष्ट्रीय विकास के प्राथमिक क्षेत्रों एवं कार्यनीति के निर्धारण में राज्यों के सक्रिय भागीदारी के साथ, राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक साझा दृष्टिकोण विकसित करना।
- मजबूत राज्य से मजबूत राष्ट्र का निर्माण होता है, इस भावना के साथ सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा देने के लिए सहायता पहल का तंत्र स्थापित करना जिसके माध्यम से राज्यों के साथ सतत रूप से कार्य किया जाए।
- ग्राम स्तर पर विश्वसनीय योजनाओं को निरूपित करने के लिए एक तंत्र का निर्माण करना।
- समाज के उन वर्गों पर विशेष ध्यान देना जो देश में हो रही आर्थिक प्रगति से पर्याप्त रूप से लाभान्वित नहीं हो सके हैं।
- दीर्घकालिक नीतियों तथा कार्यनीति की डिजाइन तैयार करना और उसकी समीक्षा के लिए कार्यक्रमों की रूप रेखा तय करना तथा पहल करना ताकि उसकी प्रगति को आंका जा सके।
- अंतःक्षेत्रीय एवं अंतर्विभागीय मसलों के हल के लिए प्लेटफार्म प्रस्तुत करना ताकि विकास का एजेंडा और उसे लागू करना सर्वोपरि हो सके।
- सक्रिय समीक्षा एवं कार्यक्रमों को लागू करने तथा सरकारी पहल का मूल्यांकन करते हुए नीति आयोग, संसाधनों की आवश्यकता की पहचान एवं आपूर्ति की व्यवस्था कर सके, जिससे सफलता की संभावनाएं एवं कार्यक्रमों को लाभार्थियों तक पहुंचाया जा सके।
- राष्ट्रीय विकास के एजेंडे का क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यकतानुसार अन्य गतिविधियां शुरू करना।

नीति आयोग का 'इंडिया विजन'

भारत की 12वीं पंचवर्षीय योजना 31 मार्च, 2017 को पूरी होने के साथ ही देश में पंचवर्षीय योजनाओं की व्यवस्था समाप्त हो गई है। इसके स्थान पर पंद्रह वर्षीय दृष्टिकोण, सात वर्षीय रणनीति व तीन वर्षीय कार्य योजना (Fifteen Year Vision, Seven Year Strategy and Three Year Action Plan) लाई गयी है। नीति आयोग (Vision) 2031–32 में ऐसे भारत की कल्पना की गई है, जिसमें पूरी तरह शिक्षित समाज हो तथा सभी को स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध हो। नीति आयोग का लक्ष्य 2031–32 वस्तुतः SDGs लक्ष्यों के समरूप ही है। क्योंकि SDGs लक्ष्यों की भी अवधि 2030 ही है। नीति आयोग ने अपने Vision Document में प्रस्तुत किया है कि 2000–15 के दौरान चीन ने 300% वृद्धि हासिल की है। वहीं भारत ने इस अवधि में केवल 200% वृद्धि हासिल की। नीति आयोग ने अगले 15 वर्षों में 250% वृद्धि का लक्ष्य रखा है।

नीति आयोग ने 'न्यू इंडिया' के लिए मुख्य बेंचमार्क निर्धारित किये हैं:-

- सभी के लिए शौचालय, रसोई गैस, बिजली व डिजिटल कनेक्टिविटी के

साथ सभी के लिए आवास।

- स्वास्थ्य देखभाल के लिए सार्वभौमिक पहुंच के साथ एक पूरी तरह से साक्षर आबादी।
 - सड़कें, रेलवे, जलमार्ग और हवाई संपर्क का एक बड़ा और आधुनिक नेटवर्क।
 - एक स्वच्छ भारत: स्वच्छ वायु व जल, स्वच्छ शहर व गांव।
- 15 वर्षीय दृष्टिकोण (Vision) व 7 वर्षीय रणनीति (Strategy) को नीति आयोग द्वारा अंतिम रूप अभी दिया जा रहा है। इसके तहत तीन वर्षीय कार्य योजना (Action Agenda) का मसौदा नीति आयोग की गवर्निंग काउंसिल की 23 अप्रैल, 2017 की बैठक में आयोग के उपाध्यक्ष अरविंद पनगढ़िया ने जारी किया।

नीति आयोग का एक्शन एजेंडा (Action Agenda of NITI Aayog)

उत्तरोत्तर उदार हो रही अर्थव्यवस्था, पिछले दशकों के अनुभव एवं बदलती वैश्विक आर्थिक गतिविधि के मद्देनजर देश की विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए नये उपकरणों (Tools) एवं दृष्टिकोणों (Approaches) की आवश्यकता है (पंचवर्षीय योजनाएं इन वास्तविकताओं के प्रति उतनी संवेदनशील नहीं रह गई थी।) केन्द्र, राज्य एवं अन्य हितधारकों (Stakeholders) के मध्य हुए विस्तृत विचार-विमर्श के उपरान्त नीति आयोग द्वारा 'तीन वर्षीय कार्यवाही एजेंडा' को अंतिम रूप दिया गया, जिसमें कुल 7 भाग एवं 24 अध्याय हैं। इस प्रारूप पत्र का एक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

राजस्व एवं व्यय (Revenue and Expenditure)

इसमें केन्द्र सरकार के लिए एक 'मध्यावधि व्यय की रूपरेखा' (Medium Term Expenditure Framework) का विवरण है। राजस्व के पूर्वानुमानों के आधार पर इसमें क्षेत्रवार व्यय आवंटन का प्रस्ताव है-

- इसके अंतर्गत वर्ष 2019-20 तक राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3% एवं राजस्व घाटे को जीडीपी के 0.9% तक घटाने का प्रस्ताव है।
- अतिरिक्त राजस्व को उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर व्यय करने की सलाह दी गयी है, जैसे- स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, ग्रामीण विकास, प्रतिरक्षा रेलवे, सड़क एवं अन्य पूंजीगत व्यय।

कृषि (Agriculture)

- किसानों की आय को वर्ष 2022 तक दोगुनी करना।
- 'जीरो बजट प्राकृतिक कृषि' तकनीकों को बढ़ावा देना।
- कृषि उत्पादों से किसानों की लाभकारी आमदनी हो इसके लिए कृषि उत्पाद के विपणन (Marketing) में सुधार।
- सिंचाई सुधार, तेज बीज विकास एवं बदलाव तथा 'सटीक कृषि' (Precision Agriculture) के माध्यम से कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना।
- कृषि क्षेत्र के लिए एक अलग 'रोड मैप' भी तैयार किया गया है (नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद द्वारा)।

उद्योग एवं सेवाएं (Industry and Services)

- अधिकतम रोजगार सृजन सुनिश्चित करने के लिए श्रम कानूनों का पूर्ण संहिताकरण तथा अप्रेंटिसशिप को बढ़ाने हेतु बड़े पैमाने पर प्रयास की आवश्यकता है।
- निर्यात संवर्द्धन एवं उच्च उत्पादकता वाले रोजगार के सृजन के लिए 'तटीय रोजगार क्षेत्रों' (Coastal Employment Zones) के निर्माण की सलाह।
- संबद्ध कानून में सुधार करके लचीले श्रम बाजार का निर्माण।

- विशेष क्षेत्रों के लिए कार्य बिन्दुओं की सलाह, यथा कपड़ा, चमड़ा और जूता, इलेक्ट्रॉनिक्स खाद्य प्रसंस्करण, रत्न एवं आभूषण, पर्यटन, वित्त एवं रियल एस्टेट।

शहरी विकास (Urban Development)

भूमि के मूल्यों में कमी करना ताकि ज्यादा शहरी भूमि के द्वारा सस्ते आवास (Affordable Houses) की व्यवस्था हो सके। इसके लिए निम्न चार बिन्दुओं पर कार्य करना तय किया गया है:

- भूमि परिवर्तन (Conversion) संबंधी लचीले कानून की व्यवस्था।
- रुग्ण (Sick) इकाइयों (सरकारी एवं निजी कंपनियों) के भूमि को अन्य उपयोग में लाने की व्यवस्था।
- जहां भी संभव हो भूमि को शहरी भूमि के रूप में उपलब्धता की व्यवस्था।
- फ्लोर स्पेस (Floor Space) संकेतक को उदार बनाना।
- इसके अतिरिक्त इस दिशा में कुछ अन्य प्रमुख बिन्दुओं पर भी कार्य करने का प्रस्ताव है:-
 - किराया नियंत्रण (Rent Control) कानून में 'मॉडल टेनेंसी एक्ट' की तर्ज पर सुधार करना।
 - कई बिस्तर वाले (Dormitory) आवास को बढ़ावा देना।
 - शहरी भूमि के स्वामित्व में सुधार।
 - नगर परिवहन एवं कचरा से जुड़े मुद्दों पर ध्यान देना।

प्रादेशिक रणनीति (Regional Strategy)

- निम्न प्रदेशों के विकास पर केंद्रित कार्य योजना।
 - पूर्वोत्तर प्रदेश।
 - तटीय एवं द्वीप प्रदेश।
 - उत्तर हिमालयी राज्य प्रदेश।
 - रेगिस्तान एवं सूखा संभावित प्रदेश।

परिवहन एवं डिजिटल संपर्क (Transportation and Digital Connectivity)

- सड़क, रेल, नौपरिवहन एवं बंदरगाह, अंतर्देशीय जलमार्ग तथा नागरिक उड्डयन की आधारभूत संरचना का सुदृढीकरण।
- परिवहन के विभिन्न तरीकों (मोड) को एकीकृत करने हेतु आई.टी. सक्षम प्लेटफॉर्म विकसित करना। यह बहु मॉडल व डिजिटल गतिशीलता को बढ़ावा देगा।
- रेल विकास प्राधिकरण (आर.डी.ए) की स्थापना में तेजी लाना (नोट-आर.डी.ए, एकीकृत, पारदर्शी व गतिशील मूल्य निर्धारण तंत्र हेतु रेल को सलाह देगा।
- डिजिटल संपर्क को सुनिश्चित करना ताकि ई-अभिशासन (e-governance) एवं वित्तीय समेकन की व्यवस्था को सुदृढ किया जा सके। इसके लिए बुनियादी ढांचे के सुदृढीकरण के साथ-साथ भुगतान संरचना में सरलीकरण एवं ई-साक्षरता जैसे मदों पर बल दिया जाना है।
- 2019 में 'भारत नेट कार्यक्रम' के पूरा होने के साथ, सभी 2.5 लाख ग्राम पंचायतों को डिजिटल रूप से जोड़ा गया। सभी सरकारी सेवाओं को 2022-23 तक डिजिटल रूप में पहुंचाने का लक्ष्य।
- इस क्षेत्र में सार्वजनिक निजी साझेदारी (PPP) को बढ़ावा देने पर बल। इसके लिए 'इंडिया इन्फ्रास्ट्रक्चर फाईनेंस कंपनी लिमिटेड' (IIFCL) को पुर्वोन्मुख करने, सस्ते ऋण उपादानों की व्यवस्था करने तथा राष्ट्रीय आधारभूत निवेश कोष (NIIF) के संचालन की सलाह दी गयी है।

ऊर्जा (Energy)

- वर्ष 2022 तक सभी घरों में बिजली, गरीबी रेखा के नीचे के सभी घरों में एलपीजी की आपूर्ति करना, वर्ष 2022 तक 'ब्लैक कार्बन' (Black Carbon) का उन्मूलन तथा 100 स्मार्ट शहरों में गैस वितरण उपलब्धता जैसे उपभोक्ता अनुकूल कार्यक्रम के संचालन पर ध्यान दिया जाना है।
- उद्योगों को प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर बिजली की आपूर्ति करने के उद्देश्य से बिजली की क्रॉस सब्सिडी (Cross Subsidy) में कमी करना।
- कोयला क्षेत्र के लिए एक नियामक (Regulator) की व्यवस्था करना तथा कोयले के व्यावसायिक खनन (Commercial Mining) को बढ़ावा देना तथा श्रम उत्पादकता में सुधार।

विज्ञान एवं तकनीक (Science and Technology)

- सरकारी योजनाओं का व्यापक 'डाटाबेस' तैयार करना तथा उनके मूल्यांकन द्वारा उनमें आवश्यक सुधार करना।
- शिक्षा एवं उद्योगों में मांग के आधार पर अनुसंधान करने के लिए क्षेत्र में सार्वजनिक निजी साझेदारी (PPP) के दिशा-निर्देश का विकास करना (R&D में निजी क्षेत्र के योगदान को 26% से बढ़ाकर 50% तक करना। ताकि उद्योग एवं शिक्षा जगत के बीच एक बेहतर संपर्क स्थापित किया जा सके।
- विज्ञान व तकनीक को विकास की चुनौतियों के समाधान के लिए उपयोग में लाना शिक्षा, पर्यावरण, आर्थिक पहुंच के भीतर स्वास्थ्य, कृषि उत्पादकता में सुधार, अवशिष्ट जल प्रबंधन (Waste Water Management) ऊर्जा ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें नवोन्मेष के माध्यम से भारत वैश्विक नेता बन सकता है।
- राष्ट्रीय समस्याओं की पहचान एवं उनके समाधान के लिए फ्रेमवर्क तैयार करने के लिए एक राष्ट्रीय विज्ञान, तकनीक एवं अन्वेषण फाउंडेशन (NSTIF) के स्थापना की सलाह।
- पेटेंट व्यवस्था में सुधार करना।

अभिशासन (Governance)

- दूसरे प्रशासनिक आयोग की संस्तुतियों को नवीन तकनीकी परिवर्तन के साथ लागू करने का प्रयास।
- मध्यस्थता प्रक्रिया को शीघ्र व लागत प्रभावी बनाने हेतु एक नया स्वायत्त निकाय प्रस्तावित।
- सरकारी गतिविधियों का पुनःआकलन (Recalibration) ताकि इसकी भूमिका सार्वजनिक प्रावधानों से जुड़े क्षेत्रों में बढ़ाई जा सके और गैर-सार्वजनिक प्रावधानों में घटाई जा सके।
- घाटे में चल रहे चुनिंदा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बंद करना तथा निर्धारित किए गए 20 ऐसे उपक्रमों का रणनीतिक विनिवेश (Strategic Disinvestment) करना।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के क्षेत्र में सरकार की भूमिका को बढ़ाना।
- बेहतर मानव संसाधन प्रबंधन द्वारा सिविल सेवाओं का सुदृढीकरण, ई-अभिशासन, सचिवों के कार्यकाल से जुड़ी विसंगतियों पर ध्यान देना तथा वैशेषिकता (Specialisation) को बढ़ाते हुए इन सेवाओं में पार्श्व (Lateral) प्रवेश की व्यवस्था करना।

कराधान एवं विनियमन (Taxation and Regulation)

- कर की चोरी रोकने तथा कर के आधार को विस्तृत करने संबंधी सुधार करना।

- सभी क्षेत्रों से जुड़ी सरकारी विनियमन व्यवस्था की व्यापक समीक्षा तथा सुधार करके प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने के लिए एक संस्थानिक व्यवस्था की स्थापना करना।
- सार्वजनिक खरीद (Procurement) को सुदृढ़ीकरण करना।

कानून का नियम (Rule of Law)

- व्यापक वैधानिक सुधारों पर बल, जिनमें अधिक-से अधिक सूचना एवं संचार तकनीक का इस्तेमाल शामिल हो साथ ही सरचनात्मक निष्पादन मूल्यांकन एवं वैधानिक कार्यभार को कम करने पर बल हो।
- राज्यों की पुलिस व्यवस्था से जुड़े विधायी, प्रशासनिक एवं परिचालन संबंधी सुधारों की सलाह।

शिक्षा एवं कौशल विकास (Education and Skill Development)

- मौलिक ज्ञानार्जन को ध्यान में रखकर स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर बल।
- आगत आधारित (Input Base) मूल्यांकन व्यवस्था से निष्पादन आधारित (Output Base) मूल्यांकन व्यवस्था की तरफ अग्रसर होना।
- हर क्षेत्र में 'निष्पादन' की 'रैंकिंग' (Ranking)।
- शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीक का न्याय संगत उपयोग करना।
- आठवीं कक्षा तक स्वतः पदोन्नति (Automatic Promotion) की नीति की पुनः समीक्षा करना।
- विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के लिए श्रेणीकृत (Tiered) विनियमन की व्यवस्था जिसमें शीर्षस्थ विश्वविद्यालयों को अधिकांश स्वायत्तता देने की व्यवस्था हो।
- 'विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय' योजना के अंतर्गत सरकारी विश्वविद्यालयों में उचित निवेश करना।

स्वास्थ्य (Health)

- सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में सरकारी व्यय को बढ़ाने पर बल तथा इसके लिए समर्पित कार्य बल की व्यवस्था एवं जिला स्तर पर इससे जुड़े आंकड़ों को 'समरूप' बनाना।
- स्वास्थ्य के लिए एक मॉडल मानव संसाधन नीति का निर्माण तथा प्राथमिक स्तर पर कार्य करने वाली नर्सों एवं आयुष कार्मिकों के लिए एक तीन वर्षीय 'ब्रिज कोर्स' (Bridge Course) का विकास करना।
- इंडियन मेडिकल काउंसिल (IMC) अधिनियम तथा होम्योपैथिक एवं भारतीय चिकित्सा पद्धति से जुड़े अधिनियमों में सुधार करना।
- राष्ट्रीय पोषण मिशन (NNM) की शुरुआत के साथ-साथ व्यापक पोषण सूचना व्यवस्था (NES) का विकास करने की सलाह।

समावेशी समाज का निर्माण (Building Inclusive Society)

- महिलाओं, बच्चों, युवाओं, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों, ओबीसी, विकलांगों एवं वयोवृद्ध नागरिकों के कल्याण में वृद्धि करना।
- देश में महिलाओं की प्रस्थिति (Status) की जानकारी के लिए एक 'सामाजिक लिंग आधारित सूचकांक' (Composite Gender Based Index) का विकास करना।
- कौशल आधारित शिक्षा एवं पाठ्येतर गतिविधियों को स्कूली पाठ्यक्रम का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग बनाना तथा लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अन्वेषण आधारित नकद हस्तांतरण योजनाओं का निर्माण करना।

पर्यावरण एवं जल संसाधन (Environment and Water Resources)

- धारणीयता (Sustainability) पर ध्यान देते हुए विनियमन सरचना को कारगर/सरल (Streamline) बनाना एवं उच्च वृद्धि को प्रोत्साहित करना।
- शहरों के वायु प्रदूषण के समाधान के लिए उचित कदम उठाना।
- निजी भूमि पर वृक्षों की कटाई तथा वृक्षों के स्थानांतरण संबंधी नीतियों की समीक्षा।
- भूमिगत जल के प्रबंधन को बेहतर करके तथा विशिष्ट औद्योगिक इकाइयों के लिए 'स्मार्ट' वॉटर मीटर की व्यवस्था करके जल के संपोषणीय इस्तेमाल को बढ़ावा देना। इस दिशा में उपर्युक्त पर्यावरणीय विनियमन की व्यवस्था करना।

'स्वच्छ भारत मिशन' के दायरे का विस्तार करते हुए लैण्डफिल, प्लास्टिक कूड़ा प्रबंधन आदि से जुड़ी पहलों को बढ़ावा देना व कचरे से धन पैदा करने हेतु पहलकारी भूमिका निभाना।

नीति आयोग का 'एक्शन एजेंडा' व्यवहार्य (Actionable) होने के साथ-साथ आकांक्षीय (Aspirational) भी है। हालांकि इस एजेंडा का निष्पादन देश की संघवादी परिपक्वता पर निर्भर करेगा लेकिन भविष्य की नीति को सुधारने के लिए यह एक शैक्षणिक आधार की तरह कार्य करेगा।

नीति आयोग की महत्वपूर्ण पहलें

सतत विकास लक्ष्य भारत सूचकांक, 2021

(Sustainable Development Goals India Index, 2021)

नीति आयोग द्वारा तीसरे संस्करण की सतत विकास लक्ष्य (SDGs) भारत इंडेक्स और डैशबोर्ड वर्ष 2020-21 जारी किया गया।

- इस रिपोर्ट को सांख्यिकी व कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार, ग्लोबल ग्रीन ग्रोथ इंस्टीट्यूट तथा संयुक्त राष्ट्र (भारत) के सहयोग से तैयार किया गया है।
- यह 'रिपोर्ट वर्ष 2030 सतत विकास लक्ष्यों' को प्राप्त करने में भारत के राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों की प्रगति दर्शाती है।

सतत विकास लक्ष्य भारत सूचकांक, 2020-21 का आधार (Base of Sustainable Development Goals India Index, 2020-21)

- एसडीजी भारत सूचकांक, वर्ष 2020-21 सम्यक 115 संकेतकों पर आधारित है, जिनका चयन नीति आयोग द्वारा किया गया है। इस सूची में 17 सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में से 16 के आंकड़ों को शामिल किया गया है तथा लक्ष्य 17 पर गुणात्मक मूल्यांकन के साथ, और 70 SDGs लक्ष्यों को कवर करते हैं।
- यह सूचकांक वर्ष 2018-19 और वर्ष 2019-20 संस्करणों में एक सुधार है जिसमें 39 लक्ष्यों और 13 लक्ष्यों में 62 संकेतकों और 54 लक्ष्यों एवं 16 लक्ष्यों 100 संकेतकों का उपयोग किया गया है।
- वर्तमान में आकांक्षी और उपलब्धि श्रेणी में कोई राज्य नहीं है, 15 राज्यों या केंद्रशासित प्रदेश परफॉर्मर श्रेणी में हैं और 22 राज्य या केंद्रशासित प्रदेश सबसे आगे की श्रेणी में हैं।
- यदि किसी राज्य/केंद्रशासित प्रदेश ने 100 अंक प्राप्त किए हैं, तो इसका अर्थ है कि उस राज्य ने वर्ष 2030 के राष्ट्रीय लक्ष्यों को हासिल कर लिया है।

सतत विकास लक्ष्य भारत सूचकांक

के वर्गीकरण का आधार

आकांक्षी (Aspirant)

0-49 अंक

अच्छा प्रदर्शन (Performer)	50-64 अंक
अग्रणी (Front Runner)	65-99 अंक
लक्ष्य प्राप्तकर्ता (Achiever)	100 अंक

परिणाम

इस सूचकांक में केरल का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ रहा। केरल राज्य को SDGs भारत के सूचकांक स्कोर 75 के साथ 'अग्रणी' की श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। उसके बाद तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश दोनों को संयुक्त रूप से दूसरा स्थान (72 स्कोर) प्राप्त हुआ।

नीति आयोग का योगदान

यह एसडीजी भारत सूचकांक, 2020-21 के लिए दोहरी जिम्मेदारी निभा रहा है। आयोग एक तरफ देश में सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के कार्यान्वयन की निगरानी की जिम्मेदारी निभा रहा है, तो दूसरी तरफ राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों के बीच प्रतिस्पर्धात्मक और सहयोगी संघवाद को प्रोत्साहित करने की भी जिम्मेदारी निभा रहा है।

नीति आयोग का यह निरंतर प्रयास है कि वह साक्ष्य आधारित नीति निर्माण करे और राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों के विकास में समर्थन प्रदान करे।

इसके लिए आयोग प्राथमिक क्षेत्रों की पहचान करता है और सर्वोत्तम अभ्यासों को साझा करता है। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्रधानमंत्री के 'सबका साथ सबका विकास' कार्यक्रम से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

इसमें वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों के 5पी, (People, Prosperity, Partnership, Peace, Planet) को शामिल किया गया है।

अटल नवोन्मेष मिशन (Atal Innovation Mission)

उद्देश्य

- आगामी वर्षों में भारत की नवाचार और उद्यमशीलता आवश्यकताओं पर विस्तृत अध्ययन और विचार-विमर्श के आधार पर देश में नवाचार पारितंत्र को पर्याप्त बढ़ावा देना तथा उद्यमशीलता की भावना को उत्प्रेरित करना।
- इसकी परिकल्पना एक अम्ब्रेला नवाचार संगठन के रूप में की गई है, जो केंद्रीय, राज्य और क्षेत्रीय नवाचार योजनाओं के मध्य नवाचार नीतियों के संरेखण (Alignment) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

मुख्य विशेषताएं

- इसके दो प्रमुख कार्य हैं-
 - स्व-रोजगार और प्रतिभा उपयोग (Self-Employment and Talent Utilization-SETU) योजना के माध्यम से उद्यमशीलता को प्रोत्साहन, जिसमें नवोन्मेषक (Innovators) को सफल उद्यमी बनने हेतु समर्थन एवं परामर्श प्रदान किया जाएगा।
 - नवाचार को प्रोत्साहन- नवाचारी विचारों के सृजन के लिए मंच उपलब्ध करवाना।

- समग्र रूपरेखा में निम्नलिखित शामिल हैं-

- अटल टिंकरिंग लैब (ATLs)**- यहां छठी से बारहवीं कक्षा तक के छात्र नवाचार कौशलों को सीखते हैं तथा विचारों का विकास करते हैं।
- अटल टिंकरिंग मैराथन**- यह मैराथन भारत के सर्वश्रेष्ठ छात्र नवोन्मेषकों की खोज करने हेतु 6 विषयगत क्षेत्रों जैसे स्वच्छ ऊर्जा, जल संसाधन, अपशिष्ट प्रबंधन, स्वास्थ्य सेवा, स्मार्ट मोबिलिटी, और कृषि तकनीक में देशव्यापी चुनौती प्रस्तुत करता है।
- अटल इन्व्यूबेशन सेंटर (AICs) & अटल कम्युनिटी इनोवेशन सेंटर (ACIC)**- इन्हें विश्वविद्यालयों तथा उद्योगों में उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने हेतु विश्वविद्यालय, गैर-सरकारी संगठन, लघु एवं मध्यम उद्यम (SMEs) तथा कॉर्पोरेट उद्योग स्तरों पर स्थापित किया जाएगा।
- अटल न्यू इंडिया चैलेंज और अटल ग्रैंड चैलेंज**- सामाजिक एवं वाणिज्यिक प्रभाव हेतु प्रौद्योगिकी चालित नवाचारों तथा उत्पाद सृजन को प्रोत्साहन।
- 'मैटर इंडिया' अभियान**- यह देश के अग्रणी लोगों (जो छात्रों का मार्गदर्शन और उन्हें परामर्श प्रदान कर सकते हैं) को शामिल करने हेतु एक रणनीतिक राष्ट्र निर्माण पहल है। उद्योग, शैक्षणिक समुदाय, सरकार और वैश्विक सहयोग इस अभियान की सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

नीति आयोग द्वारा अटल इनोवेशन मिशन और यूनिसेफ ने यंग चैंपियंस अवाार्ड्स की घोषणा की थी। यह पुरस्कार देश भर के शीर्ष छह सबसे नवीन समाधानों हेतु प्रस्तुत किए गए, जिन्हें अटल टिंकरिंग मैराथन द्वारा सूचीबद्ध किया गया था।

मानव पूंजी के रूपांतरण के लिए स्थायी कार्यक्रम (साथ)

उद्देश्य

- शिक्षा एवं स्वास्थ्य क्षेत्रों का कार्याकल्प करना।
- इसका लक्ष्य भविष्य के 'रोल मॉडल' राज्यों का चयन और निर्माण करना है।

प्रमुख विशेषताएं

- नीति आयोग अंतिम लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राज्य मशीनरी के साथ घनिष्ठ सहयोग से कार्य करेगा। इसके माध्यम से हस्तक्षेपों के लिए एक सुदृढ़ रोडमैप तैयार करने, कार्यक्रम कार्यान्वयन के ढांचे के विकास, निगरानी एवं अन्वेषण तंत्रों की स्थापना करने व कार्यान्वयन के दौरान राज्य की संस्थाओं को सहारा देने के लिए सहयोग किया जाएगा। साथ ही अनेक अन्य संस्थागत उपायों को भी समर्थन प्रदान किया जाएगा।
- स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए नीति आयोग के उत्तर प्रदेश, असम और कर्नाटक का जबकि शिक्षा क्षेत्र के लिए मध्य प्रदेश, झारखंड तथा ओडिशा का चयन किया है।

निवेश मॉडल (Investment Models)

भारत में आर्थिक सुधार कार्यक्रम शुरू होने के बाद आधारभूत संरचना के क्षेत्र पर काफी दबाव है तथा इस क्षेत्र में निवेश की कमी है। अर्थव्यवस्था में अधिक वृद्धि प्राप्त करने के मार्ग में आधारभूत संरचना हमेशा एक अड़चन बनी हुई है। भारत में आधारभूत संरचना के क्षेत्र में व्यापक रूप से सरकारी तथा निजी निवेश की आवश्यकता है। चूंकि इस क्षेत्र में अत्यधिक निवेश की आवश्यकता है इसलिए निजी तथा सरकारी निवेश एक-दूसरे के विकल्प नहीं बल्कि एक-दूसरे के संपूरक हैं। आधारभूत संरचना के क्षेत्र में सरकारी निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी उगाहने की क्षमता पर निर्भर करता है।

विशेषज्ञों का यह कहना है कि इस क्षेत्र में सरकारी निवेश में वृद्धि की जानी चाहिए साथ ही साथ निजी निवेश (देशी अथवा विदेशी) को भी आकर्षित करने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए। आधारभूत संरचना के क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए एक अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है, जिसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए-

- आधिकारिक अनुमति प्रदान करने की प्रक्रिया का सरलीकरण तथा उनमें पारदर्शिता।
- किसी भी आधारभूत संरचना की परियोजना को अलग-अलग खंडों में विभाजित करना ताकि निजी क्षेत्र उस भाग में निवेश कर सकें, जिसका वहन वे आसानी से कर सकेंगे।
- विश्वसनीय तथा स्वतंत्र नियमन ढांचा प्रदान करना ताकि निजी क्षेत्र के निवेशकों को कठिनाई का सामना न करना पड़े।

आधिकारिक संरचना (Infrastructure)

कुशल तथा कार्यक्षम आधारभूत संरचना भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए नितांत आवश्यक है। अब इस बात पर व्यापक आम सहमति है कि सभी प्रकार की आधारभूत संरचना के लिए सिर्फ सरकार पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता है, क्योंकि इस क्षेत्र से जुड़ी हुई कई समस्याएं हैं-

जैसे- पर्याप्त निवेश की कमी, तकनीकी कार्यकुशलता में कमी, उपभोग शुल्क को समुचित रूप से लागू नहीं किया जाना तथा बाजार में प्रतिस्पर्द्धा, लेकिन आधारभूत संरचना के लिए निजी क्षेत्र पर पूरी तरह निर्भर रहना, खासकर पर्याप्त नियमन के बिना अपेक्षाकृत नतीजे नहीं दे पाएगा।

भारत में आधारभूत संरचना के क्षेत्र में एक ओर जहां सरकारी निवेश को धीरे-धीरे बढ़ाया जा रहा है, वहीं ऐसे उपयुक्त नीतिगत ढांचे भी तैयार किए जा रहे हैं, जिसके तहत इस क्षेत्र में निजी कंपनियों को व्यापक रूप से निवेश करने के लिए प्रोत्साहन एवं आत्मविश्वास प्राप्त हो सके। साथ-ही-साथ सरकार पारदर्शिता, प्रतिस्पर्द्धा तथा नियमन के द्वारा इस क्षेत्र में अपना नियंत्रण बनाए हुए तथा संतुलन कायम रखे हुए है।

अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि आधिकारिक संरचना क्षेत्र के निजीकरण एवं व्यवसायीकरण की आवश्यकता निम्न कारणों से उत्पन्न होती है-

- **निवेश के लिए बड़ी राशि की आवश्यकता (Massive Investment Needs)-** आधिकारिक संरचना क्षेत्र में तेज गति का विकास तभी संभव है जबकि इस क्षेत्र में बड़ी राशि में निवेश किया जाए। सरकारी खजाने से इस बड़ी रकम की व्यवस्था नहीं की जा सकती।
- **सार्वजनिक क्षेत्र में प्रबन्धकीय योग्यता का अभाव (Management Constraints in the Public Sector):** आधिकारिक संरचना क्षेत्र के

व्यवस्थित विकास के वास्ते यह आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों को विधिवत् तरीके से जुटाया जाए, विभिन्न उप-क्षेत्रों में इनका आदर्श आवंटन किया जाए और इनके प्रभावी उपयोग के वास्ते उचित निगरानी सुनिश्चित की जाए। इस प्रकार की प्रभावी प्रबन्धकीय योग्यता की कल्पना सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं की जा सकती।

- **तकनीकी परिवर्तन (Changes in Technology)-** इस क्षेत्र में जिस गति से तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं उनके परिणामस्वरूप इन सेवाओं की कीमत-प्रणाली भी बदलती जा रही है। अब पहली बार व्यापक स्तर पर आधिकारिक संरचना के व्यवसायीकरण की संभावनाएँ बन पाई हैं।
- **वैश्वीकरण (Globalisation)-** आधिकारिक संरचना की उपलब्धि, गुणवत्ता, कीमत एवं विश्वसनीयता कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जोकि विदेशी निवेश को आकृष्ट करते हैं। परिवहन, संचार एवं स्टोरेज टेक्नोलॉजी में प्रगति के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण की प्रवृत्ति तेज गति से बढ़ पाई है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में यह सम्भव हो पाया है कि निजी पूँजी इस क्षेत्र में निवेश करने के लिए आकर्षित हो।

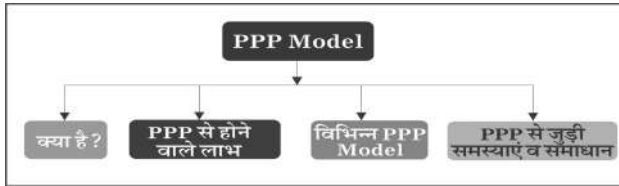
निजी निवेश की अनिवार्य शर्तें (Prerequisites for Private Investment)

आधिकारिक संरचना में निजी निवेश मात्र नीतिगत पहलों का परिणाम नहीं हो सकता है। इस तरह के निवेश को प्रेरित करने के लिए कुछ अन्य शर्तें भी पूरी करनी होंगी जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं-

- **आधिकारिक संरचना का व्यावसायीकरण (Commercialisation of Infrastructure)-** आधिकारिक संरचना को सार्वजनिक वस्तु का नाम नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि इनका व्यवसायीकरण किया जाना चाहिए। ये किसी को भी निःशुल्क प्राप्त नहीं होनी चाहिए और जो व्यक्ति इसकी कीमत का भुगतान नहीं करते उनको इनके उपभोग से वंचित रखा जाना चाहिए।
- **कीमत-निर्धारण की नीति (Pricing Policy)-** निजी क्षेत्र की भूमिका वित्त के स्रोत तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए। इसे संरचना सुविधा को कुशल तरीके से उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी भी निभानी होगी। इस संदर्भ में संरचना सेवा की कीमत निर्धारण करना एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये समस्त सेवाएँ लागत से बहुत कम कीमत पर प्रदान की जाती रही हैं। बाजार अर्थव्यवस्था में यह नीति व्यवहार्य नहीं है।
- **सेवाओं की माँग-उन्मुखता (Demand Orientation of Services)-** आधिकारिक संरचना को वित्तीयन की वर्तमान प्रणाली योजना आवंटन पर निर्भर करती है तथा इसमें आपूर्ति-उन्मुख नीति का पालन किया जाता है। ऐसी नीति के परिणामस्वरूप अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक होगा कि माँग-उन्मुख नीति का पालन किया जाए तथा जिस सेवा की जितनी सम्भावित माँग हो उतनी ही मात्रा में इसका उत्पादन किया जाए।
- **जोखिम का बँटवारा (Allocation of Risk)-** आधिकारिक संरचना जोखिमपूर्ण कार्य है। निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि सम्बद्ध जोखिम का अनेक वर्गों में बँटवारा कर दिया जाना चाहिए।
- **सरकार की प्रत्यक्ष भागीदारी (Direct Participation by Government)-** आधिकारिक संरचना की परियोजनाओं में निजी निवेश के

साथ-साथ सरकार को भी कुछ जिम्मेदारी निभानी होंगी अर्थात् इस क्षेत्र में सार्वजनिक निजी साझेदारी की आवश्यकता है।

सार्वजनिक निजी भागीदारी मॉडल (पीपीपी के विभिन्न मॉडल)



पीपीपी मॉडल क्या है? (What is Public Private Partnership Model?)

अनेक सरकारों, जन-निजी भागीदारों, शिक्षा शास्त्रियों द्वारा पीपीपी अर्थात् जन-निजी भागीदारी को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है, जो इसके विभिन्न पहलुओं को दर्शाती है। भारत सरकार ने पीपीपी को इस प्रकार परिभाषित किया है। 'पीपीपी परियोजना का अर्थ उस परियोजना से है जिसमें एक तरफ सरकार और दूसरी तरफ निजी क्षेत्र की कंपनी के बीच एक अनुबंध या रियासती अनुबंध होता है, जिसमें प्रावधान होता है कि परियोजना में निजी क्षेत्र की इकाई निवेश करती है व निर्दिष्ट अवधि के लिए प्रबंधन करती है। निजी व सार्वजनिक इकाईयों के मध्य जोखिम आवंटन स्पष्ट व अच्छी तरह से परिभाषित होता है तथा निजी क्षेत्र की इकाई को प्रदर्शन के आधार पर भुगतान प्राप्त होता है। नीति आयोग के अनुसार, 'जन-निजी भागीदारी PPP एक ऐसा मॉडल है, जिसमें सेवा प्रदान का कार्य निजी क्षेत्र द्वारा होता है, जबकि सेवा प्रदान करने की जिम्मेदारी सरकार पर होती है। इस प्रकार सरकार निजी भागीदारी के साथ अनुबंध में शामिल रहती है, निजी क्षेत्र को सेवा प्रदान करने की प्रतिपूर्ति करती है।' वास्तव में पीपीपी एक तरह का निजीकरण है, जिसमें कंपनी या कंपनियों का संघ सार्वजनिक बुनियादी ढांचा योजनाओं जैसे- अस्पताल आदि का डिजाइन निर्माण, संचालन और अनेक प्रकरणों में वित्त व्यवस्था को अपने हाथ में लेती है।

PPP के अंतर्गत संबंधों का सामान्य ढांचा

इसे निम्न चित्र की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है-



PPP से होने वाले फायदे

- PPP से इंफ्रा परियोजनाओं की लागत कम होती है। इससे देश के संसाधनों की बचत होती है। यह ध्यान देने योग्य है कि निजी कंपनी का मुख्य लक्ष्य लाभ कमाना होता है। ऐसी स्थिति में वे प्रयोक्ता शुल्कों के एक बार निर्धारित हो जाने पर लागतों को कम करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार देश के संसाधनों की बचत होती है।
- PPP के कारण इंफ्रा सेवाएं समय पर उपलब्ध हो पाती हैं। निजी क्षेत्र पर बड़ी मात्रा में वित्तीय जोखिम होती है, इसीलिए यह शीघ्रता से परियोजना पूरी करने की कोशिश करता है। इस प्रकार जनता को इंफ्रा समय पर उपलब्ध हो पाती है।
- PPP से सरकारी क्षेत्र के परियोजनाओं के डिजाइन, निर्माण, संचालन,

रख-रखाव आदि कार्यों से मुक्त हो जाता है इससे वह अन्य महत्वपूर्ण कार्यों पर ध्यान दे सकता है। जैसे कि निष्पादन पर नजर रखना आदि।

- PPP से सरकार के खर्च में बचत होती है, जिसका प्रयोग वह उन क्षेत्रों के इंफ्रा विकास में कर सकती है जिसमें निजी क्षेत्र की कंपनियां इंफ्रा विकास के लिए अधिक रुचि नहीं रखती हैं।
- पीपीपी मॉडल द्वारा परियोजनाओं को पूरा करने में श्रम और पूंजी संसाधन की उत्पादकता बढ़ाकर अर्थव्यवस्था की क्षमता को बढ़ाया जाता है।
- पीपीपी मॉडल के तहत होने वाले जोखिम को सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है।
- पीपीपी मॉडल से सरकार को उसकी बजटीय समस्या व उधार लेने की सीमाओं से मुक्ति मिलती है तथा राजकोषीय समेकन को बल मिलता है।

PPP के विभिन्न मॉडल

आधारभूत ढांचा विकास के लिए पर्याप्त राशि का प्रबंध करना भारत के लिए हमेशा से ही चुनौतीपूर्ण रहा है। आर्थिक सुधारों के काल में सरकार ने पीपीपी के लिए निजी क्षेत्र से निवेश आकर्षित करने के लिए (घरेलू एवं विदेशी) एक सरकारी निजी भागीदारी (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप-पीपीपी) के विचार पर काम किया। हम देख सकते हैं कि इस मामले में निजी क्षेत्र से भी उत्साहजनक भागीदारी हो रही है। लेकिन 2013-14 तक पीपीपी निजी क्षेत्र के लिए अनाकर्षक हो गया मुख्यतः पीपीपी मॉडल के अंदर मौजूद कमियाँ, विनियम संबंधी कारणों से, हालांकि बाहरी कारण भी मौजूद थे (पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में मंदी की वजह से देश की अर्थव्यवस्था की रफ्तार भी ढीली हुई)।

आर्थिक सर्वेक्षण के कई खंडों एवं केलकर समिति ने पीपीपी के मौजूदा मॉडल में कई कमियों पर चर्चा की, जो मुख्यतः देश में सड़क परियोजनाओं के लिए इस्तेमाल किया गया था। इस पृष्ठभूमि में सरकार ने 2016 की शुरुआत में एक बेहतर पीपीपी मॉडल की घोषणा की 'हाईब्रिड एन्युटी मॉडल' (एचएएम- 'हैम')। मुख्य पीपीपी मॉडलों की एक संक्षिप्त समीक्षा (इनमें से कुछ गैर पीपीपी मॉडल भी हैं) नीचे दी गयी है-

- **बीओटी-टोल**- 'बनाओ-चलाओ-स्थानांतरित करो-टोल' (बिल्ड ऑपरेटर ट्रांसफर टोल) पीपीपी का सबसे शुरुआती नमूना था। इस मॉडल में निजी निर्माता न सिर्फ परियोजना के लागत को साझा करता है (सरकार के साथ) बल्कि सड़क बनाता है, रख-रखाव करता है और वाहनों के आवागमन पर टोल भी वसूल करता है। नीलामी उसी कंपनी के नाम की जाती है, जो सरकार को अधिकतम टोल राजस्व देने का प्रस्ताव देती है। निजी पक्ष 'सभी जोखिमों' भूमि अधिग्रहण, निर्माण (टूट-फूट), मुद्रास्फीति, विलंब और व्यावसायिक कारणों से लागत बढ़ने से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्व को उठाता है। सरकार सिर्फ विनियमन से जुड़ी अनुमति दिलाने का दायित्व उठाती है।
- **बीओटी-एन्युटी**- ये बीओटी टोल मॉडल में एक सुधार था, जिसका लक्ष्य निजी क्षेत्र को सड़क परियोजनाओं में घटती रुचि को वापस बढ़ाना था, जो मुख्यतः निजी क्षेत्र का जोखिम कम करके किया जाना था। परियोजना की लागत साझा करने के साथ ही निजी पक्ष को सड़क को बनाना, रख-रखाव करना और चलाना था, लेकिन यातायात से टोल जमा करने की जिम्मेदारी के बिना। निजी पक्ष को बदले में हर साल एक निश्चित राशि का प्रस्ताव दिया गया था (जिसे वार्षिक वृत्ति एन्युटी कहते थे), जो सबसे कम 'वार्षिक वृत्ति' की बोली लगाता था उसे ही परियोजना मिल जाती थी। टोल जमा करना सरकार की जिम्मेदारी थी।
- यह पुराने मॉडल (बीओटी-टोल) से एक मायने में अलग था, निजी पक्षों को व्यावसायिक खतरा (यातायात) नहीं उठाना पड़ रहा था लेकिन उन्हें

अन्य खतरों का सामना करना ही था (भूमि अधिग्रहण में देरी, मुद्रास्फीति, लागत का बढ़ना, निर्माण)। जिन जोखिमों का निजी क्षेत्र को सामना करना था उनकी वजह से समय के साथ ये ढांचा भी उसके लिए अलाभकारी हो गया।

- **ईपीसी मॉडल-** जिस पीपीपी मॉडल को आधारभूत ढांचा परियोजनाओं को प्रोत्साहन देने की दिशा में एक बेहतर तरीका माना गया था, वह 2010 तक स्पष्ट रूप से नाकाम हो गया था और सरकार निजी पक्ष को सड़क क्षेत्र की ओर लाने में कामयाब नहीं हो पा रही थी। इसी पृष्ठभूमि में अभियांत्रिकी अधिप्राप्ति निर्माण (इंजीनियरिंग प्रॉक्यूरमेंट कंस्ट्रक्शन) मॉडल की घोषणा की गई। इस मॉडल में पूरी लागत सरकार को वहन करनी थी। (इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक सामान्य अनुबंध था जो बोली लगाने वाले को दिया गया था) और इसके साथ ही ज्यादातर जोखिम भी यथा भूमि अधिग्रहण, देरी के कारण लागत बढ़ना, मुद्रास्फीति और व्यावसायिक, सरकार को ही वहन करने थे। परियोजना को विकसित करने वाले निजी पक्ष से उम्मीद की जाती है कि वह सड़क परियोजना का प्रारूप तैयार करेगा, निर्माण करेगा और फिर सरकार को सौंप देगा। रख-रखाव, संचालन और टोल वसूली सरकार की जिम्मेदारी होती है। अनुबंध उन निजी पक्षकारों से किया जाता था जो इच्छित गुणवत्ता के स्तर को न्यूनतम लागत/मूल्य पर देने का वायदा करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि निजी पक्षकार को इस मॉडल में सिर्फ निर्माण से जुड़े जोखिम उठाने होते हैं, जो एक सामान्य जोखिम है। ईपीसी मॉडल सड़क परियोजनाओं को विकसित करने का एक अस्थाई या कामचलाऊ तरीका ही हो सकता है, क्योंकि इसके लिए सारी राशि सरकार देती है। सुधार के काल में सरकार का लक्ष्य एक 'व्यावसायिक मॉडल' के जरिए निजी पक्षकारों से सड़क परियोजनाओं के लिए निवेश आकर्षित करना है और ऐसे में आवश्यकता एक नए पीपीपी मॉडल की आ गई। इस पृष्ठभूमि में हम देखते हैं कि सरकार सड़क परियोजनाओं के लिए एक नए पीपीपी मॉडल के साथ सामने आई है। जिसे हाइब्रिड एन्युटी मॉडल (एचएएम) का नाम दिया गया।
- **एचएएम-** हाइब्रिड एन्युटी मॉडल (एचएएम) यह ईपीसी और बीओटी एन्युटी मॉडलों का मिश्रण है। इस मॉडल में परियोजना की लागत सरकार और निजी पक्षकार द्वारा क्रमशः 40 : 60 के अनुपात में वहन की जाती है। निजी पक्षकार का दायित्व सड़क के निर्माण और उसे सरकार को सौंप देने का होगा, जो टोल वसूलेगी (अगर चाहे तो) वार्षिक वृत्ति के समय तक रख-रखाव का दायित्व निजी पक्षकार का रहेगा। निजी पक्षकार को आर्थिक क्षतिपूर्ति के रूप में सरकार द्वारा एक तय समय के लिए (जो कि सामान्यतः 15 साल होता है) एक निश्चित राशि दी जाती है। (जिसे पुराने बीओटी-एन्युटी मॉडल की तर्ज पर वार्षिक वृत्ति कहते हैं।) जो निजी पक्षकार सबसे कम वार्षिक वृत्ति की मांग करता है (बोली में) उसे ही अनुबंध मिलता है।
- इस मॉडल में अधिकतर बड़े जोखिम सरकार उठाती है। भूमि अधिग्रहण, अनुमति, संचालन, टोल वसूली और व्यावसायिक जबकि मुद्रास्फीति और लागत बढ़ने के जोखिम को परियोजना लागत को साझा करने के अनुपात में दोनों झेलते हैं। लेकिन निजी पक्षकार को अब भी निर्माण और रख-रखाव के जोखिमों का सामना करना पड़ता है (सरकारी पक्ष द्वारा अनुमतियों और भूमि अधिग्रहण में देरी की वजह से निजी पक्षकार द्वारा वहन किये जाने वाले जोखिम की मात्रा बढ़ जाती है)। लेकिन कुल मिलाकर यह पीपीपी मॉडल पहले की कमियों को दूर करता है। निजी क्षेत्र ने इस मॉडल को लेकर अच्छी प्रतिक्रिया दी है। वर्ष 2018 के प्रारंभ में सरकार द्वारा इस मॉडल को अन्य आधारभूत संरचना क्षेत्रों के लिए भी अधिसूचित कर दिया गया।

- **स्विस चुनौती मॉडल-** भारत सरकार ने पहली बार देश में रेलवे स्टेशनों के पुनर्विकास के लिए इस मॉडल के इस्तेमाल की घोषणा की (2015 के अंत में)। यह अनुबंध किये जाने के मामले में (जैसे सरकारी खरीद) एक बहुत लोचशील तरीका है, जिसे पीपीपी रूप के साथ ही गैर-पीपीपी परियोजनाओं में भी प्रयोग किया जा सकता है।
- इसमें सरकार द्वारा एक बोलीकर्ता को उस परियोजना के लिए प्रस्ताव जमा करने के लिए कहा जाता है, जिसे सार्वजनिक कर दिया जाता है। उसके बाद कई दूसरे बोलीकर्ता अपने प्रस्ताव जमा करते हैं ताकि मूल (पहली) बोली में सुधार कर और उसे पछाड़ सकें अंततः एक बेहतर बोली (जिसे प्रति प्रस्ताव कहते हैं) को चुन लिया जाता है। अगर मूल बोलीकर्ता प्रति प्रस्ताव का मुकाबला नहीं कर पाता है तो परियोजना प्रति बोलीकर्ता को दे दी जाती है। सरकार ने इसके लिये एक ऑनलाइन तरीका बनाया है।
- हालांकि, भारत सरकार इस मॉडल का इस्तेमाल पहली बार कर रही है, लेकिन अब तक कई राज्य सड़क और मकान परियोजनाओं के लिए इसका प्रयोग कर चुके हैं यथा कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब और गुजरात। 2009 में उच्चतम न्यायालय ने अनुबंध करने के इस तरीके को अनुमति प्रदान की थी।
- **अन्य क्षेत्रों के लिए पीपीपी मॉडल-** हालांकि पीपीपी का विचार मूलतः आधारभूत ढांचे के विस्तार के लिए आया था लेकिन हालिया समय में अन्य क्षेत्रों में इसके इस्तेमाल के प्रस्ताव भी आए हैं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और तो और कृषि में भी इस मॉडल को देश के स्थानीय निकायों से भी उत्साहित सहयोग मिल रहा है और यह विश्वास है कि स्मार्ट सिटी योजना में यह एक बहुत आकर्षक भूमिका निभाएगा।
- **पीपीपीपी मॉडल-** विशेषज्ञों ने देश में कुछ क्षेत्रों में सरकारी निजी लोगों की साझेदारी (पब्लिक प्राइवेट पीपल पार्टनरशिप 'पीपीपीपी') मॉडल की भी सलाह दी है। हालांकि सिंचाई सहभागिता के विकास के लिए ऐसा मॉडल 2000-2001 से कृषि क्षेत्र में इस्तेमाल किया जा रहा है। 1974 के 'कमांड एरिया डेवलपमेंट' प्रोग्राम (जिसका 2004 में नाम बदलकर 'कमांड एरिया डेवलपमेंट एंड वॉटरशेड मैनेजमेंट प्रोग्राम' कर दिया गया)। इसके तहत खेतों में नालियां और नाले बनाने के लिए किसानों द्वारा व्यक्तिगत वित्तीय भागीदारी की जाती है (कुल लागत का लगभग 15 प्रतिशत)। माना जाता है कि इस मॉडल द्वारा स्थानीय सार्वजनिक परिसंपत्तियों का विकास, रख-रखाव और सुरक्षा बहुत प्रभावी ढंग से की जा सकती है। भविष्य में स्थानीय शहरी निकाय के साथ-साथ ग्रामीण निकाय भी सामाजिक और आर्थिक आधारभूत ढांचे के विकास के लिए इस मॉडल का इस्तेमाल कर सकते हैं।

PPP से जुड़ी हुई समस्याएं/आशंकाएं व समाधान

- PPP के कारण सार्वजनिक संपत्तियों पर सार्वजनिक नियंत्रण कमजोर हो जाता है। निजी क्षेत्र की कंपनी पर परियोजना से जुड़ी जोखिम का एक बड़ा भाग होता है। ऐसी स्थिति में उसे विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताएं देनी पड़ती हैं, जिसके कारण जनकल्याणकारी मुद्दों को लेकर सार्वजनिक नियंत्रण कमजोर हो जाता है।
 - कई बार अनुबंध के स्पष्ट न होने की स्थिति में अनुबंध से जुड़ी विभिन्न परियोजनाओं में असफलताओं के उत्पन्न होने पर किसी को भी जवाबदेह बनाने में कठिनाई होती है।
 - PPP अनुबंधों से सार्वजनिक क्षेत्र पर जोखिम के अधिक भार वहन की अपेक्षा बनी रहती है।
- यद्यपि सावधानीपूर्वक संपन्न किया गया PPP अनुबंध विभिन्न प्रकार के जोखिमों

को स्पष्टतापूर्वक निर्धारित कर सकता है, लेकिन इसके बावजूद विभिन्न प्रकार की अप्रत्याशित जोखिमों की संभावना बनी रह सकती है। अधिकांश मामलों में इन जोखिमों को सार्वजनिक क्षेत्रों को वहन करना पड़ जाता है। चूंकि सार्वजनिक क्षेत्र जनता के प्रति अधिक जवाबदेह होता है इसीलिए वह इन जोखिमों से नहीं बच पाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि RBI के अनुसार इफ्रा क्षेत्र Non-Performing Assets (NPA) की समस्या से प्रभावित पांच सबसे बड़े क्षेत्रों में एक है।

इन परियोजनाओं के विवादों को लेकर निम्न बातें भी महत्वपूर्ण हैं-

- प्राप्त होने वाले राजस्व पर लगायी जाने वाली लागत के बारे में सही अनुमान नहीं लगा पाना।
- सेवाओं की गुणवत्ता में बदलाव किये बिना प्रयोक्ता शुल्कों को बढ़ाना।
- विवादों के समाधान के लिए एक अनन्य प्रणाली का न होना। भूमि अधिग्रहण, पर्यावरण, वानिकी से जुड़ी अनुमतियों से संबंधित विवाद।
- सभी प्रकार की PPP परियोजनाओं के लिए एक ही MCA (Model Concessional Agreement) को लागू करना आदि।

समाधान

भारत में PPP में निजी क्षेत्र की कम होती हुई रुचि की स्थिति से निपटने के लिए आवश्यक सुझाव देने हेतु मई, 2015 में केलकर समिति का गठन किया गया। समिति द्वारा नवंबर, 2015 में रिपोर्ट दी गयी।

केलकर समिति की रिपोर्ट

समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्न हैं-

- विभिन्न क्षेत्रों की अवरूद्ध परियोजनाओं को संबोधित करने के लिए स्वतंत्र नियामकों की स्थापना।
- निर्णय निर्माण एवं कार्यों में भ्रष्टाचार तथा वास्तविक गलतियों के बीच अंतर को स्पष्ट करने के लिए भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम में संशोधन करना।
- ऐसी परियोजनाओं के लिए आसान फंडिंग तथा सरकारों, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा जीरो कूपन बांड (बंधन) को प्रोत्साहन देना। इसके निम्नलिखित संभावित परिणाम होंगे-
 - लंबी परिपक्वता अवधि वाली पीपीपी परियोजनाओं की व्यवहार्यता सुनिश्चित हो सकेगी। उदाहरण के लिए-हवाई अड्डों, बंदरगाहों और रेलवे का विकास।
 - अवसंरचना क्षेत्र में उपयोग शुल्क से सुलभ ऋण के लक्ष्य को हासिल करने में मदद मिलेगी।
 - इंजीनियरिंग, खरीद और निर्माण डिलीवरी (आपूर्तिकर्ता) के बाद स्थिर राजस्व प्रवाह वाली व्यवहार्य परियोजनाओं के लिए मौद्रिकरण के प्रावधान किये जाने चाहिए।

'3पी इंडिया' की स्थापना का समर्थन

- समिति जोरदार तरीके से '3पीआई' का अनुमोदन करती है जो पीपीपी में उत्कृष्टता के केंद्रों के रूप में काम करने के अतिरिक्त, अनुसंधान, समीक्षा तथा क्षमता के निर्माण के लिए गतिविधियों को शुरू करने और अनुबंधकारी तथा विभिन्न हितधारकों के मध्य उनका वितरण करने के लिए उनके द्वारा प्राप्त होने वाली सेवा की गुणवत्ता पर ध्यान देने का कार्य करेगी।
- **उद्देश्य-** ऐसी परियोजना के संदर्भ में आने वाली समस्याओं से निपटना।
- **संगठन-** अर्थशास्त्र पृष्ठभूमि से एक विशेषज्ञ और अन्य क्षेत्रों जैसे इंजीनियरिंग (अभियंता) और कानून से एक या अधिक विशेषज्ञ।
- **अध्यादेश-** पीपीपी आधारित ऐसी आधारभूत संरचना से संबंधित

परियोजनाएं जो दी हुई समय सीमा के अंतर्गत अपने कार्य को समाप्त नहीं कर पाती है, के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए और उचित कानूनी कार्यवाहियों को सुझाते हुए यह समिति अपनी रिपोर्ट (विवरण) एक निश्चित समय सीमा के भीतर प्रस्तुत करेगी।

अवसंरचना पीपीपी अधिनिर्णय न्यायाधिकरण (आईपीएटी)

- सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) के पूर्व न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इसके अध्यक्ष होंगे।
- कम से कम एक तकनीकी और एक वित्तीय सदस्य का होना प्रस्तावित है।

मॉडल (आदर्श) कंसेशन (छूट) अग्रीमेंट (समझौता) के अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधानों को अपनाना-

- इसके अंतर्गत प्रबंध जोखिम का उचित मूल्यांकन हो।
- इसके अंतर्गत बोली लगाने वाले दस्तावेज में ही पुनः वार्ता का विकल्प हो।
- उपयोगकर्ताओं, परियोजना समर्थकों, रियायत दाताओं, उधारदाताओं और बाजार सहित सभी हितधारकों के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक क्षेत्र के मॉडल (आदर्श) रियायत समझौते में क्षेत्र विशिष्ट सिफारिशें हों। इसके अलावा क्षेत्रवार सिफारिशें निम्न हैं-
 - **विमानपत्तन-** सरकार को ग्रीनफील्ड और ब्राउनफील्ड परियोजनाओं में पीपीपी मॉडल (आदर्श) को प्रोत्साहन करना चाहिए।
 - **रेलवे-** पीपीपी अवसरों का दोहन करने में मदद करने के लिए एक स्वतंत्र प्रशुल्क नियामक प्राधिकरण की स्थापना करनी चाहिए।
 - **सड़क-** बीओटी [(बिल्ड (निर्माण)-ऑपरेट (संचालित)-ट्रांसफर (स्थानांतरण)] परियोजनाओं के लिए रियायत की अवधि बढ़ानी चाहिए।
 - **ऊर्जा-** कई ऊर्जा परियोजनाएं पीपीपी के तहत नहीं हैं। इस क्षेत्र में वित्तीय समाधान की जरूरत है क्योंकि इससे बैंक ऋण पर असर पड़ रहा है।
 - **बंदरगाह-** प्रमुख बंदरगाहों के लिए पुरानी टैरिफ (दर सूची) अथॉरिटी (अधिकार) के स्थान पर नई टैरिफ अथॉरिटी लाना।

निम्नलिखित प्राधिकारी वर्ग के सोच एवं नजरिए में बदलाव

- निजी क्षेत्र के साथ साझेदार सार्वजनिक एजेंसियां (शाखाएं)।
- पीपीपी का पर्यवेक्षक करने वाले सरकारी विभाग।
- समिति ने बहुत छोटी परियोजनाओं के लिए पीपीपी मॉडल के उपयोग के खिलाफ सलाह दी है क्योंकि छोटी पीपीपी परियोजनाओं को वितरित करने का लाभ-परिणामी लागतों और लंबी अवधि में इस तरह की साझेदारी प्रबंधन की जटिलता के अनुरूप नहीं हो सकते हैं।
- अनापेक्षित प्रस्तावों ('स्विज चैलेंज') को हतोत्साहित किया जाना चाहिए, क्योंकि वे खरीद प्रक्रिया में जटिलता उत्पन्न कर सकते हैं तथा खरीद प्रक्रिया में सूचना असममिता लाते हैं। उनका परिणाम पारदर्शिता में कमी एवं खरीद प्रक्रिया में संभावित बोलीकर्ताओं के साथ अनुचित एवं असमान बर्ताव के रूप में सामने आ सकता है।
- राज्य के स्वामित्व वाली संस्थाएं SOE/PSU अनिवार्य रूप से सरकारी संस्थाएं हैं और सरकारी ढांचे के भीतर काम करती हैं, इसलिए उन्हें पीपीपी परियोजनाओं के लिए बोली लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।
- वित्त मंत्रालय द्वारा एक राष्ट्रीय पीपीपी नीति दस्तावेज को विकसित व प्रकाशित किया जाना चाहिए और इसे संसद द्वारा कार्यकारी एजेंसियों के साथ-साथ विधायी और नियामकीय एजेंसियों पर निगरानी रखने और जिम्मेदारियों को लागू करने के लिए एक आधिकारिक ढांचा प्रदान करने का समर्थन किया जाना चाहिए।

व्यवहार्यता अंतर अनुपात (VGF- Viability Gap Funding)

भारत में PPP को बढ़ावा देने के लिए 2006 में VGF को शुरू किया गया। इसके अंतर्गत वित्त मंत्रालय के अधीन कार्यरत PPP Cell इफ्रा परियोजनाओं की कुल लागत का अधिक से अधिक 20% निजी क्षेत्र की कंपनी को अनुदान के रूप में उपलब्ध कराती है। संबंधित सरकारी प्राधिकरण चाहें तो अपनी ओर से भी अधिक से अधिक 20% अनुदान के रूप में उपलब्ध करवा सकता है। इस प्रकार VGF के अंतर्गत सरकार की ओर से अधिक से अधिक 40% अनुदान के रूप में निजी कंपनी को सहायता दी जा सकती है।

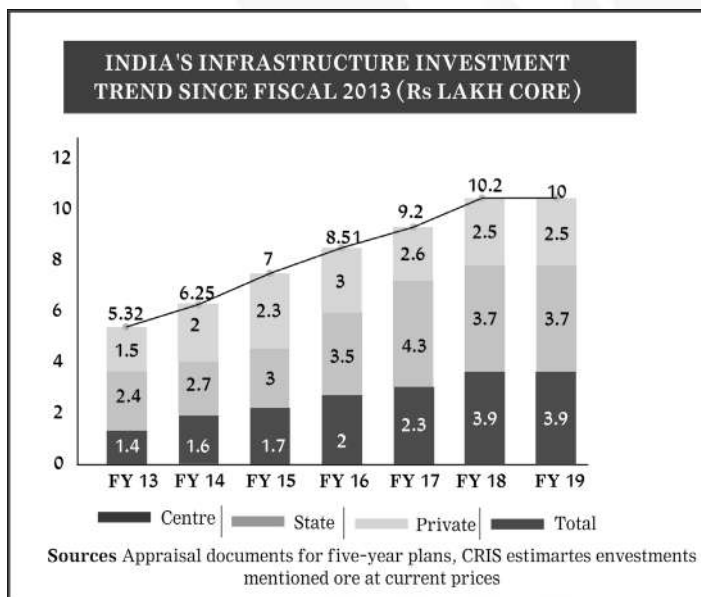
अनुदान उपलब्ध करवाते समय नीलामी की प्रक्रिया को लागू किया जाता है जो कंपनी सबसे कम अनुदानों की मांग करती है, उसे संबंधित इफ्रा परियोजना सौंपी जाती है। यह ध्यान देने योग्य है कि VGF उन परियोजनाओं के लिए उपलब्ध करवायी जाती है, जिनकी वापसी की आर्थिक दर (ERR : Economic Rate of Return) तो अच्छी होती है, लेकिन वापसी की वित्तीय दर (FRR : Financial Rate of Return) अच्छी नहीं होती। ध्यातव्य हो कि VGF को लेकर यह आलोचना की जाती है कि भारत में यह Crony Capitalism को बढ़ावा दे रही है।

टिप्पणी- ERR, FRR से इस आशय में भिन्न होता है कि ERR के अनुसार वास्तविक परियोजना लागत के अंतर्गत मूल नियंत्रण, सब्सिडी व कर छूटों जैसे कारकों को भी ध्यान में रखा जाता है।

राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन (National Infrastructure Pipeline: NIP)

हाल ही में, वित्त मंत्रालय द्वारा वर्ष 2019-2025 के लिए राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन पर गठित कार्य बल की रिपोर्ट को पब्लिक डोमेन में रखा गया।

- भारत में अवसंरचनात्मक परियोजनाओं से जुड़ी अद्यतन (अपडेटेड) जानकारी को सभी हितधारकों के लिए उपलब्ध कराने हेतु एक वन स्टॉप समाधान के रूप में इस ऑनलाइन डैशबोर्ड की परिकल्पना की गई है।
- इस ऑनलाइन डैशबोर्ड को इंडिया इन्वेस्टमेंट ग्रिड (IIG) पर होस्ट किया जा रहा है। IIG एक इंटरैक्टिव ऑनलाइन प्लेटफॉर्म है। यह देश में निवेश अवसरों के बारे में अद्यतन और वास्तविक समय पर जानकारी देता है।



- IIG वस्तुतः उद्योग संवर्धन और आंतरिक व्यापार विभाग (वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय) तथा इन्वेस्ट इंडिया (नेशनल इन्वेस्टमेंट प्रमोशन एंड फैसिलिटेशन एजेंसी) की एक पहल है।

- भारत को अपनी संवृद्धि दर बनाए रखने के लिए वर्ष 2030 तक अवसंरचना पर 4.5 ट्रिलियन डॉलर व्यय करने की आवश्यकता है।
- सरकार ने वर्ष 2025 तक 102 लाख करोड़ रुपये की अवसंरचना परियोजनाओं को कार्यान्वित करने की घोषणा की है।

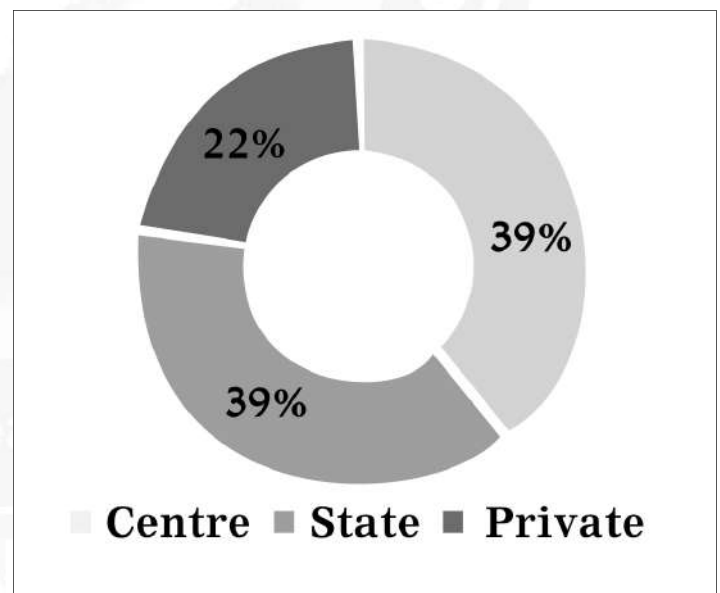
Constituents of NIP
Economic and social infrastructure projects of per Harmonised Master List of Infrastructure
Projects $\geq$ Rs. 100 crore per project, greenfield under construction
Brownfield (development of completed projects)
Project under conceptualisation
NIP

- NIP द्वारा इसे कुशल तरीके से क्रियान्वित और सुव्यवस्थित किया जाएगा।
- NIP की रूपरेखा निर्मित करने के लिए, अवसंरचना की सामंजस्यपूर्ण मास्टर लिस्ट के अनुसार सभी आर्थिक और सामाजिक अवसंरचना परियोजनाओं पर बल देते हुए इन परियोजनाओं की पहचान की गई है।

एनआईपी में केंद्र, राज्यों और निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी

केंद्र (39%) और राज्यों (39%) को बुनियादी ढांचा क्षेत्र में किए जाने वाले पूंजीगत व्यय के बराबर हिस्सा होने की उम्मीद है, इसके बाद निजी क्षेत्र (22%) का स्थान आता है।

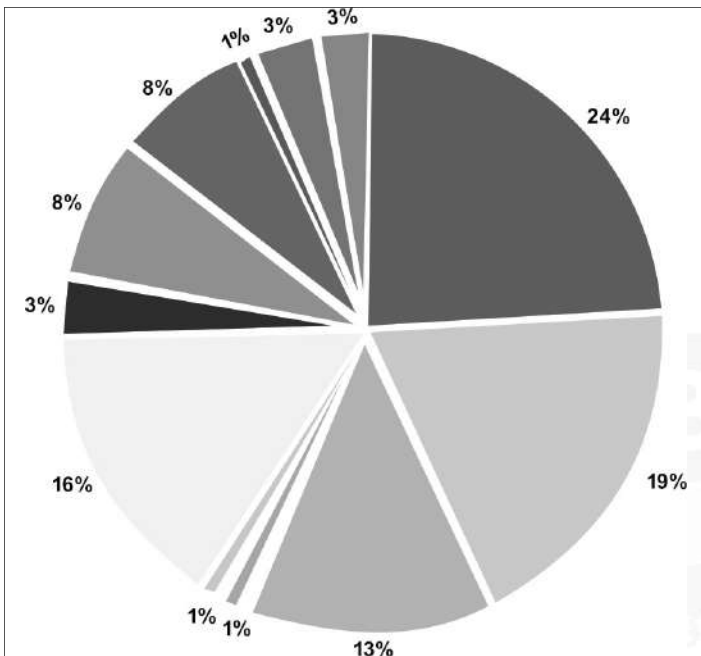
एनआईपी में केंद्र, राज्यों और निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी



एनआईपी क्षेत्रवार सारांश

वित्तीय वर्ष 2020 से 2025 के दौरान भारत में बुनियादी ढांचा क्षेत्रों में कुल परियोजना पूंजीगत व्यय 102 लाख करोड़ रुपये होने का अनुमान है। क्षेत्रवार वार्षिक अनुमानित पूंजीगत व्यय का विवरण नीचे दिया गया है। वित्त वर्ष 2020 से 2025 के दौरान, ऊर्जा (24%), शहरी (16%), रेलवे (13%) और सड़कों (19%) जैसे क्षेत्रों में भारत में अनुमानित बुनियादी ढांचा निवेश का 70% हिस्सा था।

FY20-25 के दौरान 102 लाख करोड़ रुपये के परियोजना पूंजीगत व्यय का क्षेत्रवार विवरण



राष्ट्रीय मुद्राकरण पाइपलाइन

- इसका उद्देश्य ब्राउनफील्ड परियोजनाओं में निजी क्षेत्र को शामिल करना और उन्हें राजस्व अधिकार हस्तांतरित करना है, हालाँकि इसके तहत परियोजनाओं के स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं किया जाएगा, साथ ही इसके माध्यम से उत्पन्न पूंजी का उपयोग देश भर में बुनियादी अवसंरचनाओं के निर्माण के लिये किया जाएगा।
- NMP का प्राथमिक कार्य मुद्राकरण के लिये एक स्पष्ट ढाँचा प्रदान करना और संभावित निवेशकों के लिये मुद्राकरण हेतु उपलब्ध संपत्ति की एक सूची तैयार करना है।
- केंद्रीय बजट 2021-22 के तहत स्थायी बुनियादी अवसंरचना के वित्तपोषण हेतु मौजूदा सार्वजनिक बुनियादी अवसंरचना परिसंपत्तियों के मुद्राकरण को एक प्रमुख साधन के रूप में मान्यता दी गई थी।
- वर्तमान में इसके तहत केवल केंद्र सरकार के मंत्रालयों और केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (CPSE) की संपत्ति को ही शामिल किया गया है।
- सरकार ने स्पष्ट किया है कि ब्राउनफील्ड संपत्तियाँ वे संपत्तियाँ हैं, जिन्हें सरकार द्वारा 'जोखिम रहित' माना गया है और इसलिये निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जा रहा है।
- सड़क, रेलवे और बिजली क्षेत्र की संपत्ति में मुद्राकृत होने वाली संपत्ति के कुल अनुमानित मूल्य का 66% से अधिक शामिल होगा, इसके अलावा इसमें दूरसंचार, खनन, विमानन, बंदरगाह, प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम उत्पाद पाइपलाइन, गोदाम और स्टेडियम भी शामिल हैं।
 - मूल्य के अनुसार वार्षिक चरणबद्धता के संदर्भ में चालू वित्त वर्ष में

0.88 लाख करोड़ रुपये के सांकेतिक मूल्य के साथ 15% परिसंपत्तियों को इसी वित्तीय वर्ष में मुद्राकृत किया जाएगा।

- 'राष्ट्रीय मुद्राकरण पाइपलाइन' दिसंबर 2019 में घोषित 100 लाख करोड़ रुपये की 'राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन' (NIP) के साथ-साथ क्रियान्वित की जाएगी।
- मुद्राकरण के माध्यम से जुटाई जाने वाली अनुमानित राशि 'राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन' के तहत केंद्र के 43 लाख करोड़ रुपये के प्रस्तावित परिव्यय का लगभग 14% है।
- 'राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन' बुनियादी अवसंरचना परियोजनाओं पर एक सकारात्मक दृष्टि कोण प्रदान करेगी, जो रोजगार पैदा करने, जीवन यापन में सुधार और सभी के लिये बुनियादी अवसंरचना तक समान पहुँच सुनिश्चित करने में मददगार होगी, जिससे विकास अधिक समावेशी हो सकेगा। इसमें मुख्यतः आर्थिक और सामाजिक बुनियादी अवसंरचना परियोजनाएँ शामिल हैं।
- बुनियादी अवसंरचना विकास से संबंधित अन्य पहलों में 'राज्यों के पूंजीगत व्यय हेतु विशेष सहायता योजना' और 'औद्योगिक गलियारे' आदि शामिल हैं।

संबंधित चुनौतियाँ:

- विभिन्न संपत्तियों में पहचान योग्य राजस्व धाराओं का अभाव।
 - इसके अलावा ट्रेनों में हाल ही में शुरू की गई PPP पहल में कम-से-कम उत्साह जनक बोलियों से यह संकेत मिलता है कि निजी निवेशकों की रुचि को आकर्षित करना इतना आसान नहीं है।
 - गैस और पेट्रोलियम पाइपलाइन नेटवर्क में क्षमता उपयोग का निम्न स्तर।
 - विद्युत क्षेत्र की परिसंपत्तियों में विनियमित टैरिफ।
 - फोरलेनसेनीचे के राष्ट्रीय राजमार्गों के लिये निवेशकों में कम दिलचस्पी।
 - उदाहरण के लिये कोंकण रेलवे में राज्य सरकारों सहित कई हितधारक हैं, जिनकी कंपनी में हिस्सेदारी है।

सुझाव

- क्रियान्वयन ही सफलता की कुंजी है: सरकार ने NMP ढाँचे में बुनियादी ढाँचे के विकास के कारण कई चुनौतियों का समाधान करने की कोशिश की है, योजना का क्रियान्वयन इसकी सफलता के लिये महत्वपूर्ण है।
- विवाद निवारण तंत्र: इसके अलावा एक कुशल विवाद समाधान तंत्र की आवश्यकता है।
- बहु-हितधारक दृष्टिकोण: बुनियादी ढाँचे की विस्तार योजना की सफलता अन्य हितधारकों संबंधी उनकी उचित भूमिका निभाने पर निर्भर करेगी।
 - इनमें राज्य सरकारें और उनके सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम व निजी क्षेत्र शामिल हैं।
 - इस संदर्भ में 15वीं Finance commission ने केंद्र और राज्यों के वित्तीय उत्तरदायित्व कानून की फिर से जाँच करने के लिये एक उच्चाधिकार प्राप्त अंतर-सरकारी समूह की स्थापना की सिफारिश की है।

भारतीय कृषि (Indian Agriculture)

भूमि सुधार (Land Reform)

स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश शासन के समय से ही भूमि नीति चर्चा का महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। प्रचलित कृषि समस्या एवं कांग्रेस की 'भूमि जोतने वालों की' (Land to the Tiller) नीति के कारण किसानों ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

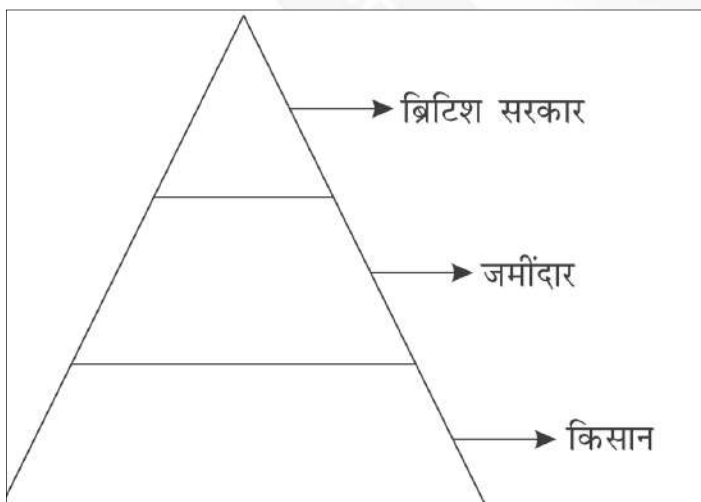
ब्रिटिश काल में लगान संग्रहण के मुख्यतः तीन प्रकार थे, जिनकी भारत में कृषि व भूमि संबंधी समस्याओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

जमींदारी व्यवस्था (Zamindari System)

ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा आय बढ़ाने के उद्देश्य से इस व्यवस्था को लाया गया। इसके आधार पर जमींदारों को लगान एकत्रित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया और उन्हें अपने-अपने क्षेत्रों का मालिक भी बना दिया गया। अंग्रेज शासकों को जमींदारी प्रथा के विषय में विश्वास था, कि इससे जमींदारों का भूमि में हित उत्पन्न हो जाने के कारण कृषि का विकास होगा तथा इससे जमींदारों को खेती में निवेश करने के लिए प्रेरणा मिलेगी। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ क्योंकि जमींदार विलासितापूर्ण जीवन जीने के लिए किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करना चाहते थे। परिणामस्वरूप यह व्यवस्था कृषि विकास तथा सामाजिक न्याय दोनों ही पहलुओं से अनुपयुक्त सिद्ध हुई।

महालवाड़ी व्यवस्था (Mahalwari System)

महालवाड़ी व्यवस्था में मालगुजारी की दृष्टि से सम्पूर्ण गाँव इकाई होता था। इस बन्दोबस्त द्वारा गाँव के लिए निर्धारित मालगुजारी को राजकोष में जमा करने का दायित्व गाँव के मुखिया का होता था। मुखिया गाँव के सभी भूमिधारियों से लगान वसूल करता था। कांग्रेस भूमि सुधार समिति के अनुसार इस व्यवस्था में भू-सम्पत्ति का स्वामित्व सामूहिक अथवा सामाजिक था। इस व्यवस्था में बन्दोबस्त की अवधि व मालगुजारी का निर्धारण आदि भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग थी।



रैयतवाड़ी व्यवस्था (Raiyatwari System)

रैयतवाड़ी व्यवस्था दक्षिणी भारत तमिलनाडु, महाराष्ट्र, बरार, पूर्वी पंजाब, असम तथा कुर्ग में लागू की गई थी। इस व्यवस्था में रैयत अथवा काश्तकार ही

भूमि का स्वामी होता था और उसके तथा राज्य के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता था। रैयत को भूमि बेचने, हस्तांतरण करने, गिरवी रखने तथा उपहार में देने का अधिकार प्राप्त था। जब तक वह बन्दोबस्त द्वारा निर्धारित समय पर मालगुजारी देता रहता था, उस समय तक उसे 'भूमि अधिकार' से बेदखल नहीं किया जा सकता था। जमींदारी व्यवस्था में ये अधिकार काश्तकारों को प्राप्त नहीं थे।

आजादी के समय विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न भू-राजस्व एवं स्वामित्व प्रणाली, लगान वसूलने वाले मध्यस्थों की उपस्थिति, सीमांत किसानों के पास भूमि का अधिकांश हिस्सा का होना, पट्टे पर कृषि, जिसमें कृषक को भूमि जोत संबंधी असुरक्षा एवं शोषणकारी उत्पादन संबंध विद्यमान थे। स्वतंत्रता के तुरंत बाद स्वर्गीय जे.सी. कुमाराप्पा की अध्यक्षता में भू-समस्याओं के अध्ययन के लिए एक समिति गठित की गई। इस समिति ने कृषि सुधार हेतु व्यापक उपायों की अनुशंसा की। कुमाराप्पा द्वारा पहचान की गई समस्याओं के हल के लिए कई वैधानिक उपाय किए गए। इन वैधानिक उपायों में से ज्यादातर त्रुटिपूर्ण थे और इन उपायों में से बहुत कम उपाय गंभीरता से लागू किए गए।

उस समय नीति निर्माताओं द्वारा सामना किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे निम्नलिखित थे-

- भूमि का मालिकाना हक कुछ हाथों तक सीमित था और मध्यस्थों की व्यापक उपस्थिति थी, जो स्वयं कृषि नहीं करते थे।
- किराये/पट्टे पर कृषि की बहुलता थी और पट्टे/किराये पर कृषि करने वालों का शोषण सर्वव्यापी था।
- भूमि रिकॉर्ड बेहद खराब थे, जिसके कारण मुकदमेबाजी अधिक थी। यह दुर्भाग्य है कि वर्ष 1989 में उच्चतम न्यायालय को टिप्पणी करनी पड़ी कि राजस्व रिकॉर्ड, अधिकार के वैधानिक दस्तावेज नहीं हैं।

भूमि सुधार के उद्देश्य (Objectives of Land Reform)

- भूमि सुधार का मौलिक उद्देश्य समानता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना तथा कृषक समाज से निर्धनता एवं असमानता का उन्मूलन करना है।
- पुराने भूमि संबंधों को समाप्त करना तथा एक ऐसी नई व्यवस्था को जन्म देना, जिसमें भूमि पर खेती करने वाले ही उसके वास्तविक स्वामी हों।
- कृषि भूमि के वितरण की असमानताओं को समाप्त करके, भूमि का पुनर्वितरण करना तथा समानता के आधार पर सामाजिक ढाँचे के निर्माण की व्यवस्था करना।

यद्यपि भूमि सुधार संबंधी विधि अभी भी सक्रिय है, किन्तु हाल के वर्षों में भूमि नीति में भूमि सुधार पर कम, भूमि विकास और प्रबंधन पर अधिक बल दिया जाता है। स्वतंत्रता के बाद भूमि नीति को मोटे तौर पर चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

- **प्रथम चरण-** वर्ष 1952-72 के दौरान मध्यस्थों का उन्मूलन, किरायेदारी में सुधार, भूमि की हदबंदी के उपयोग द्वारा भूमि का पुनर्वितरण प्रमुख विषय थे। मध्यस्थों का उन्मूलन अपेक्षाकृत सफल था, किन्तु किरायेदारी में सुधार एवं हदबंदी को बहुत कम सफलता मिली।
- **दूसरा चरण-** वर्ष 1972-85 के दौरान गैर कृषि भूमि को कृषि भूमि के अंतर्गत लाने का प्रयास किया गया।
- **तीसरे चरण-** वर्ष 1985-95 के दौरान वॉटरशेड डेवलपमेंट, सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) और मरुस्थल क्षेत्र विकास कार्यक्रम (DADP) के द्वारा जल और मृदा संरक्षण पर अधिक फोकस किया गया।

बंजर और निम्नीकृत भूमि पर ध्यान देने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा बंजर भूमि विकास एजेंसी (Wasteland Development Agency) की स्थापना की गई।

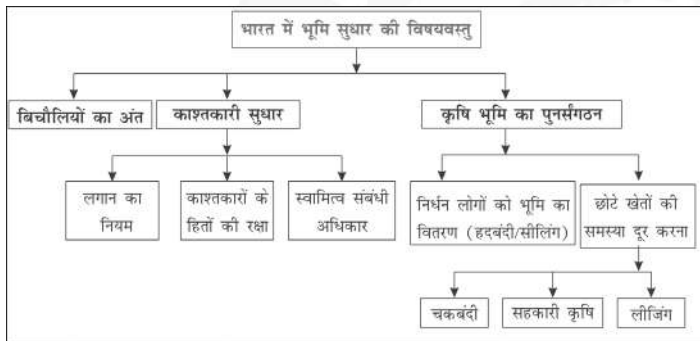
- **चौथा चरण**— वर्ष 1995 से अद्यतन, भूमि कानून एवं भूमि राजस्व प्रशासन में सुधार लाने हेतु विशेष रूप से भूमि रिकार्ड पर अधिक केन्द्रित है।

भारत में भूमि सुधार न केवल कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है बल्कि खाद्य सुरक्षा, गरीबी निवारण, महिला एवं निर्धनों का सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय, श्रम बाजार में भागीदारी, पर्यावरणीय टिकाऊपन और समावेशी विकास के लिए भी आवश्यक है। किन्तु भूमि, राज्य सूची का विषय होने के कारण अलग-अलग राज्यों में भूमि-सुधार की स्थिति अलग-अलग रही है।

भारत में भूमि सुधारों की मुख्य विषय-वस्तु (Major Content of Land Reform in India)

भारत में भूमि सुधारों के अंतर्गत निम्न तीन उपायों को मुख्य रूप से सम्मिलित किया जाता है—

- बिचौलियों का अंत।
- काश्तकारी सुधार।
- कृषि भूमि का पुनर्गठन।



बिचौलियों का अंत (End of Middle Man)

भारत में उपर्युक्त लगान संग्रहण प्रणालियों (जमींदारी, महालवाड़ी एवं रैय्यतवाड़ी) के अंतर्गत बिचौलियाँ वास्तविक रूप से कृषि करने वाले काश्तकारों का शोषण करते थे एवं ऊँचा लगान वसूलते थे। औपनिवेशिक आर्थिक नीति के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय हस्तशिल्पों को नष्ट किया गया, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों की ओर जनसंख्या का पलायन बढ़ा, इससे कृषि योग्य भूमि की मांग में बढ़ोतरी हुई। साथ ही, ब्रिटिश शासन द्वारा अधिकाधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए लगान दर को उच्च बनाए रखा गया। भारत में मद्रास राज्य के द्वारा सबसे पहले 1948 में बिचौलियों के अंत की शुरुआत की गयी, धीरे-धीरे अन्य राज्यों के द्वारा भी कदम उठाये गए। 1972 में औपचारिक रूप से बिचौलियों का अंत कर दिया गया। भारत में इसे सर्वाधिक सफल भूमि सुधार माना गया।

बिचौलियों के अंत को लेकर सबसे बड़ी समस्या न्यायपालिका द्वारा किए गए हस्तक्षेप थे, जिनका संबंध उचित क्षतिपूर्ति से था। विश्व बैंक के अनुसार, भारत उन अपवादिक राष्ट्रों में से एक है, जो भूमि सुधारों को लागू करते समय क्षतिपूर्ति का प्रावधान करता है, इससे भूमि सुधारों की गति धीमी हो जाती है।

काश्तकारी सुधार (Tenancy Reform)

इस कदम के अंतर्गत तीन कार्य किए गए—

- **लगान का नियमन**— जोतदारों के द्वारा भूमि मालिक को दिए जाने वाले लगान की एक दर नियत कर दी गई।

- **बटाईदारों के हितों की रक्षा**— जमीन जोतने वाले (बटाईदार) का जोत अधिकार (Tenure Right) सुरक्षित रहे, इसकी संस्थागत व्यवस्था की गई।
- **काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार**— काश्तकारों/ बटाईदारों को अंत में उनके द्वारा जोते जा रहे जमीन का स्वामी बनाने की कोशिश की गई।

कृषि भूमि का पुनर्गठन (Restructure of Agricultural Land)

कृषि भूमि के पुनर्गठन से आशय खेतों को इस प्रकार से व्यवस्थित करना है, ताकि जोतों का आकार इस स्तर पर बना रहे कि उस पर प्रभावकारी कृषि की जा सके।

- **भूमि का पुनर्वितरण (हदबंदी/सीलिंग (Redistribution of Land))**— हदबंदी कानून लागू कर भूमिहीन गरीब लोगों के बीच भूमि का पुनर्वितरण कुछ राज्यों को छोड़कर, जैसे— पश्चिम बंगाल, केरल तथा आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में विफल रहा, शेष भारत में (जहाँ भी इसे लागू किया गया) सफल रहा।

भारत में हदबंदी की विफलता के कई कारण हैं जिनमें निम्न मुख्य हैं—

- भारत में लंबे समय तक (1972 तक) हदबंदी के लागू होने की इकाई के रूप में परिवार के स्थान पर व्यक्ति को रखा गया है।
- धार्मिक और चैरिटेबल संस्थाओं को हदबंदी के दायरे से बाहर रखा।
- भूमि के बेनामी और अन्य प्रकार के हस्तांतरण आदि।

चकबंदी (Consolidation)

इसके अंतर्गत लोगों के स्वामित्व में बदलाव करके छोटे खेतों को बड़े खेतों में बदला जाता है। चकबंदी स्वैच्छिक अथवा अनिवार्य हो सकती है, स्वैच्छिक चकबंदी में सरकार की ओर से कोई दबाव नहीं डाला जाता है, जबकि अनिवार्य चकबंदी में राज्य द्वारा संबंधित कानूनों का प्रयोग करते हुए दबावपूर्वक चकबंदी की जाती है। अधिकांश साम्यवादी राष्ट्रों में अनिवार्यता के कारण चकबंदी सफल रही है।

प्रजातांत्रिक राष्ट्रों में चकबंदी स्वैच्छिक होती है, जबकि साम्यवादी राष्ट्रों में यह अनिवार्य होती है। भारत में चकबंदी को लेकर कुछ राज्यों में ही सफलता देखने को मिलती है, जैसे— उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा इत्यादि। हालाँकि इन राज्यों में भी पुनर्चकबंदी की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

भारत में कृषि जोत का आकार

भारत में जोत के आकार के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं—

- कृषि जोतों को हम पाँच वर्गों में रख सकते हैं—
 - ♦ सीमांत (Marginal) — 1 हेक्टेयर से कम।
 - ♦ लघु (Small) — 1 से 2 हेक्टेयर के मध्य।
 - ♦ लघु-मध्यम — 2 से 4 हेक्टेयर के मध्य।
 - ♦ मध्यम (Medium) — 4 से 10 हेक्टेयर के मध्य।
 - ♦ बड़े (Large) — 10 हेक्टेयर तथा इससे ऊपर।
- भारत में जोतों के आकार के संबंध में आँकड़े राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के आठवें, सोलहवें, सत्रहवें तथा 26वें चक्र के सर्वेक्षण तथा भारतीय कृषि गणना जो 1970-71 से शुरू होकर प्रत्येक 5 वर्ष के अन्तराल पर आधारित होती है, में जोत संबंधी आँकड़े एकत्रित किए गए हैं। अन्तिम कृषि गणना 2015 में हुई थी।
- स्वतंत्रता के समय लगभग 5 मिलियन जोत थे, इस समय लगभग 110 मिलियन जोत हैं अर्थात् भूमि का अत्यधिक बंटवारा हुआ है, फलस्वरूप औसत जोत आकार में कमी आई है।

- वर्ष 2015-16 की कृषि जनगणना रिपोर्ट में खेती के रकबे में वर्ष 2010-11 की तुलना में 1.53 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। इस गणना के प्रारंभिक आंकड़ों के अनुसार, देश में खेती का रकबा 15 करोड़ 71.4 लाख हेक्टेयर है। इस दौरान कृषि में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।
- प्रारंभिक आंकड़ों के अनुसार, 2015-16 में कृषि जोत का औसत आकार घटकर 1.08 हेक्टेयर रह गया। 2010-11 में यह 1.15 हेक्टेयर था।
- गणना रिपोर्ट के अनुसार, 2010-11 में कृषि जोत रखने वालों में महिलाओं का हिस्सा 12.79 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2015-16 में 13.87 प्रतिशत हो गया। इसी तरह खेती के रकबे के हिसाब से महिलाओं का हिस्सा 10.36 प्रतिशत से बढ़कर 11.57 प्रतिशत हो गया।
- ‘वर्ष 2010-11 में देश में खेती जोत की कुल संख्या 13.8 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2015-16 में 14.6 करोड़ हो गई है। यह इसमें 5.33 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाती है।’ इसके विपरीत खेती-बाड़ी का कुल रकबा 2010-11 के 15 करोड़ 95.9 लाख हेक्टेयर से घटकर 2015-16 में 15 करोड़ 71.4 लाख हेक्टेयर रह गया।
- इस कृषि गणना में कुल जोत में लघु एवं सीमांत जोत (दो हेक्टेयर से कम की जोत) का अनुपात 86.21 प्रतिशत है। 2010-11 में ऐसी जोतों का हिस्सा 84.97 प्रतिशत था। कुल कृषि क्षेत्र में छोटे और सीमांत किसानों के पास की जमीन का हिस्सा इस समय 47.34 प्रतिशत है। 2010-11 में यह हिस्सा 44.31 प्रतिशत था। वर्ष 2015-16 में अर्ध-मध्य और मध्य आकार वाली जोतों (दो से 10 हेक्टेयर) का हिस्सा संख्या के हिसाब से 13.22 प्रतिशत और क्षेत्रफल के हिसाब से 43.61 प्रतिशत हिस्सा था। वर्ष 2015-16 में बड़ी जोत (10 हेक्टेयर या ऊपर) वाले किसान 0.57 प्रतिशत थे और उनके पास का रकबा कुल कृषि रकबे का 9.04 प्रतिशत था। 2010-11 में उनकी संख्या 0.71 प्रतिशत और उनका रकबा कुल रकबे का 10.59 प्रतिशत था।
- देश भर में कुल 14.6 करोड़ जोत में उत्तर प्रदेश दो करोड़ 38.2 लाख भू-धारकों की संख्या के साथ पहले स्थान पर था। इसके बाद बिहार (एक करोड़ 64.1 लाख), महाराष्ट्र (एक करोड़ 47.1 लाख), मध्य प्रदेश (एक करोड़), कर्नाटक में (86.8 लाख), आंध्र प्रदेश (85.2 लाख), तमिलनाडु (79.4 लाख), राजस्थान (76.5 लाख) और पश्चिम बंगाल (72.4 लाख) का नंबर आता है।
- कुल कृषि क्षेत्र में राजस्थान का हिस्सा दो करोड़ 8.7 लाख हेक्टेयर, महाराष्ट्र का एक करोड़ 98 लाख हेक्टेयर, उत्तर प्रदेश एक करोड़ 74.5 लाख हेक्टेयर, मध्य प्रदेश एक करोड़ 56.7 लाख हेक्टेयर और कर्नाटक का हिस्सा एक करोड़ 17.2 लाख हेक्टेयर था। जोतों की संख्या में सर्वाधिक वृद्धि मध्य प्रदेश में सर्वाधिक 12.74 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई है। इसके बाद आंध्र प्रदेश 11.85 प्रतिशत, राजस्थान 11.12 प्रतिशत, केरल 11.02 प्रतिशत, मेघालय 10.9 प्रतिशत, कर्नाटक 10.78 प्रतिशत और नागालैंड में 10.5 प्रतिशत दर्ज की गई है। हालाँकि, गोवा में जोत की संख्या में सबसे अधिक (28.17 प्रतिशत) गिरावट दर्ज की गयी। मणिपुर में गिरावट न्यूनतम (0.09 प्रतिशत) रही।
- गणना के अनुसार कुल जोतों की संख्या का 91.03 प्रतिशत और कुल क्षेत्र का 88.08 प्रतिशत 14 राज्य- आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, तमिलनाडु, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के खाते में आता है। व्यक्तिगत, संयुक्त और संस्थागत जोतों की संख्या में पिछली गणना के बाद से क्रमशः 5.04 प्रतिशत, 7.07 प्रतिशत और 10.88 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

- आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2015-16 में कृषि जोत का औसत आकार घटकर 1.08 हेक्टेयर रह गया है। जबकि वर्ष 2010-11 में 1.15 हेक्टेयर था। महिलाओं की हिस्सेदारी 2010 (12.79%) से बढ़कर 2015 में (13.87%) हो गयी है। भारत में कुल जोतों में लघु एवं सीमांत जोत का अनुपात वर्ष 2015-16 में 86.21% है, जो वर्ष 2010-11 में 72% था। बड़ी जोत वाले किसानों का अनुपात वर्ष 2015-16 में 0.57% हो गया, जो वर्ष 2010-11 में 0.71% था। विपणन आधिक्य की कमी के कारण किसानों की सामूहिक सोदेबाजी की शक्ति अत्यन्त कम होती है, इन्हें जो मूल्य मिलता है उसे स्वीकार करना पड़ता है। इसलिए इनकी आय अति निम्न होती है। कृषि भूमि के संबंध में भारत का विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरा स्थान है। जोतों के उपविभाजन के कारण भारत में जोतों का उपविभाजन एवं उपखंडन विभिन्न कानूनी, सामाजिक, आर्थिक तथा जनांकिकीय कारणों से है।

जोतों के उपविभाजन के कारण

भारत में जोतों का उपविभाजन एवं उपखंडन विभिन्न कानूनी, सामाजिक, आर्थिक तथा जनांकिकीय कारणों से है।

जोतों के उपविभाजन के कारण

जोतों के उपविभाजन और उपखंडन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

- निजी संपत्ति का अधिकार
- उत्तराधिकार का नियम

- भूमि पर जनभार में वृद्धि
- संयुक्त परिवार का विघटन
- महाजनों और साहूकारों की भूमिका
- बंटाई प्रथा

जोतों के उपविभाजन एवं उपखंडन के दोष

- भूमि का अपव्यय
- कृषि विधियों के सुधार में कठिनाई
- निम्न उत्पादकता
- प्रचलित बेरोजगारी
- पारस्परिक विवाद

चकबंदी की धीमी प्रगति के कारण (Reason Behind Slow Consolidation)

भारत में चकबंदी की विफलता के पीछे कई कारणों को उत्तरदायी माना जा सकता है, जैसे कि-

- काश्तकारों की बेदखली का डर**- विभिन्न राज्यों में भूमि की चकबंदी के कारण काश्तकारों की बेदखली के मामलों को देखा गया। अतः राज्य सरकारों द्वारा चकबंदी के लिए अधिक दबाव नहीं डाला गया। यदि काश्तकारों का कोई पंजीकरण नहीं है तो हमेशा इस बात की आशंका बनी रहेगी कि बड़े भू-स्वामी चकबंदी के बहाने काश्तकारों को बेदखल न कर दे। ‘कृषि संबंधों पर कार्यदल’ (1973) के अनुसार चकबंदी से संबंधित

कार्यक्रमों की एक मुख्य कमजोरी यह रही कि इनमें काश्तकारों की सुरक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया।

- **कृषि जोत का छोटा आकार**- विभिन्न राज्यों में चकबंदी के लिए खेतों के बड़े आकार को न्यूनतम आकार के लिए लिया गया ऐसी स्थिति में इस न्यूनतम आकार से छोटी जोतों की चकबंदी नहीं हो पाई, अतः जरूरी है कि अब इस तरह के प्रावधानों में परिवर्तन हो।
- **अनिवार्य चकबंदी के कानूनी प्रावधानों का अभाव**- पश्चिम बंगाल, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में चकबंदी के कार्यक्रम इसलिए भी असफल हुए क्योंकि इनमें चकबंदी अनिवार्य न होकर स्वैच्छिक थी। इसके अलावा केरल, तमिलनाडु, मणिपुर, त्रिपुरा और नागालैंड में चकबंदी के कानून बनाये नहीं गए।
- **भूमि के मूल्य निर्धारण की समस्या**- पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश इत्यादि में चकबंदी को लागू करने के दौरान इस बात को देखा गया कि खेतों के आपसी विनिमय करने के दौरान भूमि का मूल्य किस आधार पर निर्धारित हो। ऐसी समस्या भारत में अन्य राज्यों में भी देखी गयी। कई बार गैर आर्थिक कारण भी मूल्य निर्धारण में एक बड़ी बाधा के रूप में देखे गये।
- उपर्युक्त के अलावा **अद्यतन अभिलेखों** की कमी, **प्रशिक्षित स्टॉफ** की कमी, राज्य सरकारों की **वित्तीय कठिनाइयाँ** आदि भी चकबंदी के मार्ग में मुख्य बाधाएँ थी।

सहकारी कृषि (Cooperative Farming)

सहकारी कृषि में स्वामित्व को बदले बिना संबंधित किसानों द्वारा आपस में मिलकर कृषि कार्य किया जाता है। इस संदर्भ में उनके द्वारा संबंधित राज्य के सहकारिता अधिनियम के अंतर्गत एक समिति का पंजीकरण करवाया जाता है। इस प्रकार सहकारी कृषि से न केवल छोटे खेतों को बड़े खेतों में बदला जा सकता है बल्कि कृषि कार्य संगठित भी हो जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि सहकारी खेती में वे लोग भी सम्मिलित हो सकते हैं जो केवल 'कृषि मजदूर' के रूप में कार्य करते हैं तथा जिनके पास कोई भूमि नहीं है। इस प्रकार सहकारी खेती चकबंदी की तुलना में काश्तकारों के लिए कम बाध्यता रखती है, इसके अलावा स्वामित्व परिवर्तन नहीं होने के कारण इसे अधिक सहजता से लागू किया जा सकता है।

भारत में सहकारी कृषि को लेकर भी कोई विशेष सफलता देखने को नहीं मिलती है अभी तक केवल लगभग 2% किसान ही इससे जुड़ पाये हैं। भारत में इसकी विफलता के पीछे निम्न कारणों को उत्तरदायी माना गया है-

- शिक्षा का अभाव।
- कई प्रकार की व्यावहारिक समस्याएँ जैसे कि लाभों व मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार हो।
- समितियों के पंजीकरण में विलंब।
- गैर कार्यकारी (Non Executive) नेतृत्व का अभाव।
- अंकेक्षण की ऊँची फीस।
- प्रशासनिक स्टाफ की कमी।
- राज्य सरकारों की उदासीनता।
- अनिवार्यता का प्रावधान न होना।

लीजिंग (Leasing)

नीति आयोग द्वारा इस बात का सुझाव दिया गया है कि राज्य सरकारें लीजिंग को लागू करके न केवल छोटे खेतों की समस्या से निपट सकती हैं, बल्कि कृषि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की योजनाओं का लाभ वास्तविक रूप से कृषि कार्य करने

वाले व्यक्ति तक पहुंचाया जा सकता है।

लीजिंग के अंतर्गत एक अनुबंध के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी भूमि को किसी अन्य व्यक्ति को कृषि कार्य के लिए निर्धारित समय के लिए निर्धारित प्रतिफल के आधार पर दे सकता है। इस अनुबंध में वर्णित रहता है कि भू-स्वामी का भू-स्वामित्व प्रभावित नहीं होगा।

लीजिंग से छोटे खेत बड़े खेतों में बदले जा सकते हैं। इसके अलावा फसल बीमा, अकाल सहायता प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (Direct Benefit Transfer) आदि को वास्तविक रूप में कृषि कार्य करने वालों तक पहुंचाया जा सकता है।

लीजिंग के संदर्भ में एक डर इस बात को लेकर हो सकता है कि कुछ लोगों के हाथों में कृषि योग्य भूमि का केंद्रीकरण हो सकता है, हालांकि इसके लिए हदबंदी से जुड़ी सीमा को ध्यान में रखा जाता है।

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन अधिनियम-2013 (Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act-2013)

वर्तमान में कृषि क्षेत्र की जमीन को गैर-कृषि कार्य के लिए उपयोग का काफी विरोध किया जाता है। यह विषय राज्य सरकारों का है। हाल तक भूमि अधिग्रहण नीति, भू-अधिग्रहण कानून, 1894 (जो कि अब बदला जा चुका है) के अंतर्गत क्रियान्वित किया जाता रहा।

औद्योगिक संस्थान, भूमि-अधिग्रहण और पर्यावरण संबंधी मंजूरी में देरी के कारण, उद्योगों की स्थापना में हो रहे अत्यधिक विलंब और पर्यावरण संबंधी हरी झंडी न मिलने से लम्बित पड़े हैं।

उद्योगों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश न हो पाने से संवृद्धि का स्तर ऊपर नहीं जा पायेगा। भारत पहले ही संवृद्धि में धीमी गति और सुस्त निवेश का अनुभव कर रहा है और इसे गति प्रदान करने की आवश्यकता है। यह संसाधनों की उपलब्धि का प्रश्न नहीं है (वे पहले से ही उपलब्ध हैं), बल्कि उनका निवेश के रूप में रूपांतर का प्रश्न है। इसी संदर्भ में नया भूमि अधिग्रहण बिल, जिसे "भूमि अर्जन, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकार और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम-2013 (Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition Act 2013) कहा गया, पारित किया गया और पुराने बिल को रद्द किया गया।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- इस अधिनियम में सार्वजनिक उद्देश्य को परिभाषित किया गया है ताकि मनमाने तौर पर भूमि अधिग्रहण न हो सके।
- **भूमि का अधिग्रहण**- निजी परियोजना के लिए, 80% प्रभावित परिवारों को सहमत होना चाहिए। पीपीपी परियोजना के लिए, 70% प्रभावित परिवारों को सहमत होना चाहिए, तभी जमीन का अधिग्रहण किया जा सकता है।
- **सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन (SIA)**- सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन (SIA) के अंतर्गत भी प्रभावित कारीगरों, मजदूरों, श्रम-क्रॉपर्स, बटाईदार किसानों आदि की सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, जिनकी (सतत) आजीविका दी गई परियोजना के कारण प्रभावित होगी।
- **मुआवजा**- मार्केट रेट से मुआवजा अनुपात।
 - ग्रामीण क्षेत्र में मार्केट रेट का 4 गुना।
 - शहरी क्षेत्र में 2 गुना।
 - प्रभावित कारीगरों, छोटे व्यापारियों, मछुआरों आदि को एकमुश्त भुगतान दिया जाएगा, भले ही वे किसी जमीन के मालिक न हों।
- **खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु**- उपजाऊ, सिंचित बहु-फसली कृषि भूमि केवल अंतिम उपाय में ही अधिग्रहित की जा सकेगी। यदि ऐसी उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, तो सरकार को समान आकार की बंजर भूमि को कृषि के उद्देश्य हेतु विकसित करना होगा।

- **निजी संस्थाएँ**– यदि सरकार निजी कंपनी के लिए भूमि का अधिग्रहण करती है, तो उक्त निजी कंपनी प्रभावित लोगों के राहत और पुनर्वास के लिए जिम्मेदार होगी। एससी/एसटी भू-स्वामियों को अतिरिक्त पुनर्वास पैकेज प्रदान करना होगा।
- **सुरक्षा उपाय**– राज्य सरकार भूमि-अधिग्रहण, पुनर्वास और विवाद निपटान प्राधिकरण के रूप में एक व्यक्ति को नियुक्त करेगी, जिसके पास सिविल कोर्ट की शक्ति होगी, जो जिला न्यायाधीश हो या उसे कम-से-कम 7 वर्षों का वकालत करने का अनुभव हो।
- **जवाबदेही**– सरकार की ओर से किसी भी अपराध के लिए विभाग के प्रमुख को जिम्मेदार बनाया जाएगा। यदि परियोजना 5 साल में शुरू नहीं होती है, तो भूमि को मूल मालिक या भूमि बैंक को वापस करना होगा।

- बाद में NDA सरकार द्वारा पुनः उपर्युक्त कानून में संशोधन हेतु नया 'भूमि कानून 2015' लाया गया, जो राज्यसभा में पास न हो सका अतः उसे पुनः अध्यादेश के रूप में लाया गया। जिसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे।
- लोगों की सहमति व सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन (SIA) से 5 प्रकार के क्षेत्रों के प्रोजेक्ट्स को छूट मिली। इन क्षेत्रों में रक्षा, ग्रामीण-अवसंरचना, किराये की आवास, औद्योगिक गलियारा (सरकार द्वारा स्थापित) आदि शामिल हैं।
- 2013 के एक्ट में संचित बहु फसली भूमि को राज्य सरकारों की निर्धारित सीमा से अधिक अधिग्रहण नहीं किया जा सकता था परंतु अध्यादेश में उपर्युक्त 5 क्षेत्रों से संबंधित प्रोजेक्ट के मामले यह सीमा भी हटाई गई।
- 2013 एक्ट के अनुसार यदि अधिग्रहित भूमि पर 5 वर्ष तक कार्य की शुरुआत नहीं हो पाती है तो भूमि अधिकार को वापस लेने का प्रावधान था परंतु अध्यादेश के माध्यम से यह समय सीमा '5 वर्ष अथवा प्रोजेक्ट शुरू करते वक्त निर्धारित समय' कर दी गई।
- हालाँकि कालांतर में यह अध्यादेश निष्प्रभावी हो गया व भारी विरोध के कारण उपर्युक्त प्रावधान, अधिनियम का हिस्सा नहीं बन पाए।
- अंत में केंद्र सरकार ने यह राज्यों पर छोड़ दिया कि वह इन प्रावधानों को अपने यहां लागू करते हैं अथवा नहीं। चूंकि 'भूमि' राज्य का विषय है तथा 'भूमि अधिग्रहण' समवर्ती सूची का विषय है। अतः राज्य ऐसा कर सकते हैं और बहुत से राज्यों ने इस विषय में तत्परता भी दिखाई और अध्यादेश के प्रावधानों को अपने यहां लागू भी किया है।

राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति, 2013 (National Land Reform Policy, 2013)

ग्रामीण भूमि विकास योजना और प्रबंधन के जरिए भूमि संसाधनों का अधिकतम इस्तेमाल सुनिश्चित करने के लिए, नीतिगत ढांचे की जरूरत पर जोर देते हुए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति 2013 तैयार की है। नीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

- **राष्ट्रीय भूमि उपयोग योजना**– केन्द्र सरकार को तहसील, जिलों, क्षेत्रों और राज्यों की सूचना के आधार पर एक राष्ट्रीय भूमि उपयोग योजना का निर्माण करना होगा।
- **भूमिहीनों को भूमि प्रदान करना**– राज्य सरकारों को भूमिहीनों को भूमि प्रदान करने के लिए व्यापक नीतियाँ विकसित करनी होंगी।
- **अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और खानाबदोश समुदायों के लिए भूमि अधिकार**– राज्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और खानाबदोश समुदायों से संबंधित भूमि के अलगाव/हस्तांतरण से संबंधित मौजूदा कानूनों और नीतियों की समीक्षा करेंगे और अवरोधों को दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाएंगे।
- **घुमंतू (Nomads) परिवारों के लिए भूमि**– केन्द्र सरकार को न्यूनतम भूमि अधिग्रहण कानून को अधिनियमित करना चाहिए, जिसके माध्यम से प्रत्येक खानाबदोश परिवार न्यूनतम पांच एकड़ कृषि योग्य भूमि का

अधिकारी होगा।

- **महिलाओं के लिए भूमि अधिकार**– महिलाओं की भूमि तक पहुंच में सुधार करने के लिए विभिन्न सुझाव दिए गए हैं जिनमें अन्य उपायों के साथ ही, होमस्टेड (Homestead) भूमि पर पति के साथ संयुक्त स्वामित्व के स्थान पर केवल महिला को स्वामित्व और/या महिलाओं के समूह को सामूहिक भू-स्वामित्व प्रदान करना भी शामिल है।
- **विवाद समाधान**– राज्य सरकार उप जिला स्तर पर एक प्राधिकरण स्थापित करेगी और राज्य स्तर पर भूमि से संबंधित विवाद के समाधान हेतु एक न्यायाधिकरण स्थापित करेगी।
- **भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण**– भूमि अभिलेखों के आधुनिकीकरण को सक्षम करने के लिए भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटीकरण हेतु एक राष्ट्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरणों की स्थापना की अनुशंसा करती है।
- **निगरानी और मूल्यांकन**– सभी राज्य सरकारों द्वारा भूमि अधिकारों की प्राप्ति पर की गई प्रगति की समीक्षा हेतु सभी राज्य सरकारों को राज्य भूमि अधिकार आयोग (SLRC) की स्थापना करना आवश्यक है। प्रशासन के लिए प्रत्येक राज्य अकादमी में एक भूमि सुधार इकाई स्थापित की जानी चाहिए। केन्द्र सरकार को ग्रामीण विकास मंत्रालय के भूमि संसाधन विभाग के तहत इस नीति के लिए एक निगरानी तंत्र स्थापित करना होगा।
- **लैंड पूलिंग**– यह एक भूमि अधिग्रहण रणनीति है जिसमें व्यक्ति के भू-खंड संबंधी निजी अधिकार किसी नियुक्त की गई एजेंसी को हस्तांतरित कर दिए जाते हैं। परिणामस्वरूप इन भू-खंडों का संचयन (पूलिंग) होता है। संचित भूमि का उपयोग एजेंसी अवसंरचना के विकास के लिए करती है। अवसंरचना विकास के पश्चात् संचित भूमि के नए, भूखंडों में मूल भू-स्वामियों को उनकी मूल संपत्ति के अंश का निर्धारित अनुपात हस्तांतरित कर दिया जाता है।

भूमि बैंक (Land Bank)

भूमि बैंक एक प्रकार का लैंड पूल है जो भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया की प्रतीक्षा किए बिना सरकार द्वारा निवेशकों को भूमि देने की अनुमति प्रदान करता है। इसकी परिकल्पना नियामक प्रक्रिया को समाप्त करने और भूमि अधिग्रहण संबंधी किसी भी विवाद से बचने के लिए की गई है।

लैंड पूलिंग एवं भूमि बैंक के महत्त्व

- **ईज ऑफ डूइंग बिजनेस में सुधार**– राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक उपयोग के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा है और इन स्थानों पर सभी सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।
- **निवेश आकर्षित करना**– भूमि बैंक का सृजन विभिन्न क्षेत्रों में निवेश (FDI/स्थानीय निवेश) को आकर्षित करने में सहायता करेगा तथा साथ ही इसमें रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करने की क्षमता है।
- **किसानों को जल्दबाजी में भूमि बेचने से सुरक्षित करना**– इसके कारण किसान अब आवश्यकता पड़ने पर सरकार को अपनी भूमि बेच सकते हैं, फलतः अब जबरन भूमि अधिग्रहण भी नहीं किया जाएगा।

भूमि सुधार का मूल्यांकन एवं सुझाव (Evaluation & Suggestion of Land Reform)

भूमि सुधार का मूल्यांकन

भूमि सुधारों को विशेषज्ञों द्वारा एक असफल कोशिश मानी जाती है। इसे

विशेषज्ञों द्वारा मानव इतिहास की सबसे जटिल सामाजिक-आर्थिक समस्या माना जाता है। भूमि सुधार के आंकड़े उत्साहजनक नहीं हैं।

- भूमि सुधार द्वारा देश के किसानों को काश्त अधिकार सुनिश्चित किया गया, लेकिन यह भारत की सकल परिचालित भूमि (Total Operated Area) के मात्र 4 प्रतिशत हिस्से पर ही लागू किया जा सका।
- इसी तरह इस दौरान देश के कुल परिचालित भूमि के मात्र 2 प्रतिशत का ही स्वामित्व पुनर्वितरण किया जा सका।
- इस प्रकार भूमि सुधार का लाभ देश के मात्र 6 प्रतिशत भूमि तक ही पहुंच सका तथा इसका सकारात्मक प्रभाव सामाजिक-आर्थिक रूप से भी नगण्य था।

उपरोक्त कार्यक्रम के तहत बिचौलिया वर्ग की पूर्णतः समाप्ति नहीं हो पायी है, जोतों के अधिकतम सीमा का निर्धारण भी पूरी तरह सफल नहीं रहा है और बड़े-बड़े भू-स्वामियों ने अपने-अपने रिश्तेदारों को अतिरिक्त भूमि हस्तांतरित करके अपने भू-स्वामित्व को बरकरार रखा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन कृषक अधिक विद्यमान हैं और आज भी मौखिक या अनौपचारिक रूप से बटाईदारी प्रथा प्रचलित है। भू-धारण सुरक्षा संबंधी कानून उन्हीं राज्यों में सफल रहा है, जहां पहले से शासन का समाजवादी ढांचा प्रचलित है जैसे- पश्चिम बंगाल एवं केरल में। बिहार, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात आदि राज्यों में काश्तकारों एवं बटाईदारों को आज भी पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। ग्रामदान एवं भूदान से प्राप्त भूमि जो किसानों को वितरित की गयी है, वह अधिकांशतः बंजर थी, जिसे किसान अभी तक उपजाऊ नहीं बना सके हैं। चकबंदी एवं सहकारी कृषि कानून पूरी तरह सफल नहीं रहा है। कुछ राज्यों में इसके लिए सक्रिय प्रयास किए गए। जबकि झारखंड, बिहार जैसे कुछ ऐसे भी राज्य हैं, जो इस दिशा में उदासीन रहे हैं। भूमि सुधार की विफलता के कारण ही आने वाले वर्षों में सरकार ने हरित क्रांति की शुरुआत की। सरकार ने उत्पादकता बढ़ाने पर बल दिया, क्योंकि भूमि सुधार इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाए थे।

भूमि सुधारों की विफलता के कारण (Reasons for Failure of Land Reforms)

विशेषज्ञों के अनुसार भारत में भूमि सुधार की विफलता के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

- भारत में भूमि सामाजिक प्रतिष्ठा तथा पहचान का प्रतीक है, जबकि अन्य देशों में जहां भूमि सुधार सफल रहा है, वहाँ आय अर्जित करने के लिए एक आर्थिक संपत्ति मात्र है। सामंतवादी सामाजिक संरचना में यह सुधार कम सफल रहा है। इस तथ्य की पुष्टि पंजाब एवं हरियाणा की बिहार के साथ तुलना द्वारा संभव है। बिहार में चूँकि पंजाब एवं हरियाणा की अपेक्षा सामंती समाज के अधिकार प्रबल होने के कारण वहाँ यह कार्यक्रम तुलनात्मक रूप से कम सफल रहा।
- राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण भी भूमि सुधार एक सफल कार्यक्रम में परिवर्तित नहीं हो सका।
- भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं नेतृत्व की कमी के कारण भी भूमि सुधार विफल रहा है।
- कानूनी जटिलता, देर से न्याय तथा महंगी न्याय व्यवस्था ने भी गरीब भूमिहीन श्रमिकों को इन कार्यक्रमों से प्राप्त लाभ से वंचित रखा।
- परिवार के बजाए व्यक्ति के आधार पर जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण तथा भूमि की कुछ श्रेणियों (जैसे- चाय, कॉफी एवं रबर के बागान, दूध एवं ऊन से संबंधित कृषि फार्म आदि) को इस कानून से मिली छूट भी इस कार्यक्रम की एक प्रमुख कमी रही है, जिसने इस कार्यक्रम की सफलता को बाधित किया है।

भूमि सुधार में सफलता हेतु निम्न सुझाव अपेक्षित हैं-

- **राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति: भूमि उपयोग में कुशलता (National Land Use Policy: Land Use Proficiency)**- भूमि देश का दुर्लभ संसाधन है और इसका कुशल उपयोग, चाहे वह कृषि कार्य में हो या किसी अन्य में, सुनिश्चित करना आवश्यक है। केंद्रीय सरकार के स्तर पर यह उचित होगा कि एक 'राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति' बने, जिसके अंतर्गत राज्य सरकारें अपने यहां की भूमि उपयोग नीति का निर्धारण करें। इससे भूमि का बेहतर उपयोग किया जा सकेगा और सरकार की प्राथमिकताओं के आधार पर कुशलता एवं उत्पादकता में प्रतियोगात्मक उपयोग को बढ़ावा मिलेगा। इसका महत्व इस यथार्थ पर भी आधारित होगा कि यह नीति, भूमि अधिग्रहण नीति का आधार बने, न कि इसके विपरीत, पहले भूमि अधिग्रहण हो जाए, तत्पश्चात् उसके उपयोग पर विचार प्रारंभ हो।
- **एग्रीकल्चरल लैंड लीज (Agricultural Land Lease)**- वर्तमान में भूमि को पट्टे पर, सिर्फ गैर-कृषि कार्य के लिए दिया जा सकता है। कृषि-योग्य भूमि का उपयोग सिर्फ खेती करने या बेचने में होता है। मौजूदा कानून कृषि-भूमि को पट्टे पर देने की इजाजत नहीं देता। वे किसान जो स्वयं खेती नहीं कर सकते या जिनमें अभिरुचि नहीं है, उन्हें जमीन को उन लोगों को पट्टे पर देना चाहिए, जो खेती करने के इच्छुक हैं या भूमिहीन हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि होगी और उत्पादकता भी बढ़ेगी, साथ ही कृषि को व्यावसायिक पहचान मिल सकेगी जो कि अभी तक मात्र जीवन-निर्वाह का ही साधन है। कृषि भूमि को पट्टे पर देना प्रतिबंधित होने के कारण एक स्वस्थ-ग्रामीण जनसंख्या का स्थानांतरण प्रभावित होता है। वे किसान जो गांव से स्थान-परिवर्तन कर शहर में बसना चाहते हैं, उन्हें या तो अपनी जमीन खाली छोड़नी पड़ती है या घर के एक सदस्य को कृषि-कार्य हेतु पीछे छोड़ना पड़ता है। इन प्रतिबंधों को हटा लेने से भूमिहीनों को लाभ पहुंचेगा। वे कृषि योग्य जमीन प्राप्त कर सकेंगे और स्थानांतरित होने वाले भू-स्वामियों को बेहतर शिक्षा एवं कौशल से उद्योगों में नौकरी या सेवा-क्षेत्र से जुड़ने का अवसर मिल सकेगा। नीति आयोग के अनुसार **मॉडल एग्रीकल्चरल लैंड लीजिंग एक्ट 2016** को बेहतर तरीके से लागू करने हेतु राज्यों को प्रोत्साहित किया जाए।

मॉडल एग्रीकल्चरल लैंड लीजिंग एक्ट 2016

नीति आयोग द्वारा तैयार और अनुमोदित मॉडल लैंड लीज अधिनियम, 2016 स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के लिए अपने स्वयं के विधानों का मसौदा तैयार करने के लिए एक उपयुक्त टेम्पलेट प्रदान करता है।

- कृषि दक्षता, इक्विटी और भूमि तक पहुंच को बढ़ावा देने के लिए भूमि पट्टे को वैध बनाना। इससे कृषि की उत्पादकता में सुधार के साथ-साथ लोगों की व्यावसायिक गतिशीलता और तेजी से ग्रामीण परिवर्तन में भी मदद मिलेगी।
- यह भूमि सुधारों के लिए बहुत महत्वपूर्ण कदम है, जिसके माध्यम से भू-मालिक के साथ-साथ पट्टे धारक की जरूरतों का भी ध्यान रखा गया है।
- इस अधिनियम के माध्यम से भू-स्वामी कृषि और संबद्ध गतिविधियों के लिए आपसी सहमति से भूमि को कानूनी रूप से पट्टे पर दे सकता है। इस अधिनियम में यह ध्यान रखा गया है कि किसी भी परिस्थिति में भूमि पर पट्टे धारक का दावा मान्य नहीं होगा।
- पट्टे धारकों को संस्थागत ऋण, बीमा और आपदा राहत मिल सकेगी ताकि वह कृषि में अधिक से अधिक निवेश कर सकें।
- भू-मालिक और पट्टे धारक के बीच विवाद को हल करने के लिए, सिविल कोर्ट में 'विशेष भूमि न्यायाधिकरण' का प्रावधान किया गया है।

- **नेशनल लैंड रिकॉर्ड्स मॉडर्नाइजेशन प्रोग्राम (एनएलआरएमपी)** - आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13 के अनुसार, नेशनल लैंड रिकॉर्ड मॉडर्नाइजेशन प्रोग्राम (NLRMP), जो 2008 में प्रारंभ किया गया था, का उद्देश्य था कि भूमि-अभिलेखों का 12वीं योजना की समाप्ति तक पूरी तरह से अंकीकरण (Digitize) कर दिया जाए। राष्ट्रीय भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम (LNRMP) में उप-पंजीयक के कार्यालयों को कम्प्यूटरीकृत करने तथा भूमि अभिलेख अनुरक्षण प्रणाली के समेकन का प्रस्ताव किया जाए तथा इसे 'डिजिटल इंडिया स्कीम' से जोड़ा जाए। अंततः इरादा था कि भू-अभिलेखों में आनुमानिक उपाधियाँ स्वामित्व की जगह निर्णायक उपाधि (Conclusive Title) की स्थिति में पहुँच जाए। आनुमानिक-उपाधि में रजिस्ट्रेशन करने पर भी भू-स्वामित्व, कानूनन वैध नहीं हो जाता जबकि निर्णायक-उपाधि में स्वामित्व, वैध माना जायेगा। अंकीकरण करने से भूमि के क्रय-विक्रय की प्रक्रिया सस्ती होगी, निर्णायक-उपाधि से वैधानिक अनिश्चितता समाप्त होगी और सरकार को, भू-अधिग्रहण के समय मध्यस्थता करके भू-स्वामित्व-उपाधि की गारंटी नहीं देनी पड़ेगी। अंकीकरण एक समय लेने वाली प्रक्रिया है और इसमें राज्य सरकारों की सक्रियता अपेक्षित है, जहाँ टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल कर समयबद्ध तरीकों से काम पूरा किया जाना चाहिए परंतु एक बार अंकीकरण का कार्य पूरा हो जाने पर भूमि संबंधी मामलों में पारदर्शिता आयेगी तथा उचित मूल्यांकन हो सकेगा और साथ ही एक संगठित बाजार विकसित हो सकेगा।
 - **भू-अभिलेखों का कंप्यूटरीकरण (Computerization of Land Records)**- भूमि संबंधी मामलों में ज्यादातर लोगों द्वारा उठायी जाने वाली परेशानी का कारण जटिल भू-अभिलेख व्यवस्था और 'निचले दर्जे के अधिकारियों' का अत्यधिक नियंत्रण है। आवश्यकता है कि भूमि अभिलेखों को सुलभ और सरल बनाया जाए ताकि इसे गांव में रहने वाला आम आदमी भी समझ सके। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भू-अभिलेखों के लंबे इतिहास के बाद भी भारत के अधिकांश भागों में भूमि प्रशासन और प्रबंधन अपेक्षित रहा है। ऐसा तब है जबकि पिछले कुछ दशकों से सरकार और प्रशासन का एजेंडा, विकास का रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नियमित भू-सर्वेक्षण और जमीन का व्यवस्थापन (Settle) करने की कारवाई को एक गलत अवधारणा के आधार पर स्थगित कर दिया गया क्योंकि इस प्रक्रिया का कुल उद्देश्य भू-राजस्व बढ़ाना है, जिसका प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है, खासकर जब राजस्व बढ़ाने के अन्य साधन उपलब्ध हैं।
- इस बात का अंदाजा उस समय नहीं लगाया जा सका कि सही और वैज्ञानिक तरीके से अपडेटेड (Updated) रिकॉर्ड न केवल कृषि-विकास के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि संपूर्ण विकास प्रक्रिया की रीढ़ है। भू-अभिलेखों का हाथ से रख-रखाव एवं उनकी सत्यता की जांच पड़ताल, अंकीकरण प्रक्रिया की पूर्व आवश्यकता है। भारत सरकार के स्तर पर एक 'नेशनल अथॉर्टी फॉर कम्प्यूटराइजेशन ऑफ लैंड रिकॉर्ड्स (NACLAR) की स्थापना की जानी चाहिए। ज्यादातर राज्यों में अंकीकरण का कार्य भू-अभिलेख एवं सर्वेक्षण निदेशालय (Directorate of Land Records and Survey) द्वारा संपन्न किया जा रहा है। इस विभाग की और भी जिम्मेदारियाँ होने के कारण, भू-अभिलेखों का अंकीकरण का काम धीमी गति से बिना किसी प्राथमिकता के चल रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राज्य स्तर पर एक समर्पित संस्था इस काम को पूरा करे जैसे कि NACLAR की तर्ज पर एक स्टेट अथॉर्टी फॉर कम्प्यूटराइजेशन ऑफ लैंड रिकॉर्ड्स (SACLAR) का गठन किया जाना चाहिए। यह संस्था विशेष रूप से भू-अभिलेखों के अंकीकरण का काम करे और समयबद्ध तरीके से राष्ट्रीय स्तर की संस्था के साथ ताल-मेल से पूरा करे।
- इस प्रकार के अंकीकृत भू-अभिलेख राष्ट्रीय भूमि पोर्टल तैयार करने में उपयोगी

होंगे और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से चल रहे भूमि-सुधार के प्रयासों को बल प्रदान करेंगे।

उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त निम्न अन्य सुझाव भी अपेक्षित हैं-

- खुदकाश की परिभाषा उचित ढंग से दी जानी चाहिए। इस संदर्भ में निम्न बातों को ध्यान में रखा जा सकता है-
 - खुदकाश का दावा करने वाला व्यक्ति या उसका परिवार ही संबंधित खेत पर कृषि कार्य करें।
 - वह या उसका परिवार संबंधित खेत के आसपास रहता हो।
 - कृषि ही उसकी आय का मुख्य स्रोत हो।
 - भारत में अनौपचारिक काशतकारों की पहचान करके उनका औपचारिकरण किया जाना चाहिए, इस संदर्भ में सामाजिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।
 - सर्वप्रथम वैश्वीकरण एवं नवीन आर्थिक नीति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए इस कार्यक्रम में संशोधन किया जाए।
 - इस कार्यक्रम को दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ लागू किया जाए।
 - प्रशासनिक स्तर पर सभी तरह के अकुशलता एवं खामियों को दूर किया जाए।
 - व्यक्ति के बजाए परिवार के आधार पर जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण किया जाए।
 - कानूनी जटिलता में कमी की जाए तथा सस्ती एवं त्वरित न्याय व्यवस्था को स्थापित किया जाए।
 - शिक्षा के प्रसार द्वारा जनता को अधिक से अधिक जागरूक किया जाए और सूचना के अधिकार कानून को व्यवहारिक स्तर पर सफल बनाया जाए।
- भूमि से संबंधित विषय एवं भूमि-सुधार राज्यों का विषय है। परिणामतः इस संवेदनशील विषय को राज्यों द्वारा दी गई प्राथमिकता और उसकी प्रगति सभी जगह एक समान नहीं है। इसका कारण निहित स्वार्थी कतिपय लोगों का समूह और राजनीतिक दलों के बीच साठ-गांठ है। हमें इन सबसे ऊपर उठने की आवश्यकता है और भूमि सुधारों को लागू करने में एक निर्णायक जोर लगाने की आवश्यकता है। यह न सिर्फ राष्ट्रीय हित में होगा, बल्कि बहुत बड़ी आबादी जिसमें भूमिहीन भी शामिल हैं के लिए लाभप्रद होगा।

सरप्लस भूमि की पहचान और पुनर्वितरण

- वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने अपने बजट भाषण में निष्क्रिय परिसंपत्तियों यानी नॉन-कोर परिसंपत्तियों का उल्लेख किया है जिसमें मुख्यतः सरकारी मंत्रालयों/विभागों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पैराग्राफ 89) की सरप्लस भूमि शामिल है। ग्रामीण विकास मंत्रालय सरप्लस सरकारी भूमि की पहचान करने, भूमि के बाजार मूल्य का पता लगाने और भूमि के स्वामित्व के हस्तांतरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- बजट भाषण के पैराग्राफ 89 में कहा गया है कि "निष्क्रिय परिसंपत्तियाँ आत्मनिर्भर भारत में योगदान नहीं देंगी।" मुख्य फोकस मुख्यतः सरकारी मंत्रालयों/ विभागों/ सार्वजनिक क्षेत्र/उपक्रमों की सरप्लस भूमि से बनी नॉन-कोर परिसंपत्तियों की पहचान करने पर है, उसके बाद विशेष प्रयोजन वाहन (एसपीवी) के उपयोग के साथ भूमि के मुद्रीकरण की प्रक्रिया को अपनाने पर है। यह विभाग एसपीवी का नीचे बताए गए तीन चरणों में समर्थन कर सकता है।
- **प्रथम चरण (सरप्लस सरकारी भूमि की पहचान)**- विभाग एक व्यापक एमआईएस प्रणाली में राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के भू-अभिलेखों के डाटाबेस को बनाए हुए है और लगातार अपडेट कर रहा है। एमआईएस

में 90% से अधिक गांवों (कुल 6.55 लाख गांवों में से 5.90 लाख गांव) के संबंध में जानकारी भूमि रिकॉर्ड में शामिल है। इसलिए विभाग संबंधित विभाग द्वारा उपयोग नहीं किए जाने वाली भूमि की पहचान करने में विशेष प्रयोजन वाहन (एसपीवी) की मदद कर सकता है।

- **द्वितीय चरण (भूमि के बाजार मूल्य का पता लगाना)** - सरकार के पास उपलब्ध सरप्लस भूमि का मुद्रिकरण करने के लिए यह अनिवार्य होगा कि भूमि की कीमत के लिए उसके न्यूनतम आधार मूल्य का पता लगाया जाए। भविष्य में एसपीवी के लिए देश भर में फैली जमीन का वास्तविक बाजार मूल्य पता लगाना मुश्किल काम होने वाला है। विभाग सरप्लस सरकारी भूमि के मुद्रिकरण के लिए आवश्यक न्यूनतम आधार मूल्य का पता लगाने में विशेष प्रयोजन वाहन (एसपीवी) की सहायता कर सकता है।
- **तीसरा चरण (भूमि के स्वामित्व का हस्तांतरण)** - भूमि के मुद्रिकरण की प्रक्रिया में, इसके बाद में, यह प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा है कि भूमि का स्वामित्व मांगने वाली संस्थाओं को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। विभाग पंजीकरण अधिनियम, 1908 का इस्तेमाल भी कर रहा है, जिसमें पंजीकरण के साथ स्वामित्व का हस्तांतरण अधिनियम के समुचित प्रावधानों का उपयोग कर इस विभाग द्वारा केंद्रीय रूप से प्रदान किया जा सकता है।

कृषि से संबंधित क्रांतियाँ

- भारत में कृषि की समृद्धि, संपन्नता व उत्पादकता के लिए कई क्रांतियाँ हुईं। 27 अप्रैल, 1871 में लॉर्ड मेयो द्वारा कृषि, राजस्व व वाणिज्य के एक संयुक्त विभाग की स्थापना की गयी।
- अकाल आयोग, 1880 के निर्देशानुसार 1881 ई. में कृषि का एक अलग केंद्रीय विभाग खोला गया।
- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (Indian Agricultural Research Institute - IARI) की स्थापना 1905 ई. में पूसा (बिहार) में की गयी।
- सन् 1960 ई. में भारत में प्रथम कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना पतनगर (उत्तराखंड) में हुई।

हरित क्रांति (Green Revolution)

हरित क्रांति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1968 ई. में अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. विलियम गाड द्वारा किया गया।

- सन् 1960 के दशक के मध्य में मैक्सिको से लाये गए गेहूँ के उन्नत बीजों से भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने संस्करण (Breeding) द्वारा नई गेहूँ की अधिक उपज देने वाली प्रजाति को विकसित किया, जिनकी प्रति हेक्टेयर उत्पादन क्षमता 60-65 क्विंटल थी।
- देश में 1970 के दशक के मध्य में हरित क्रांति आयी और परिणामस्वरूप खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई इसका श्रेय नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कृषि वैज्ञानिक डॉ. नॉरमान बोरलॉग को जाता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन को जाता है।
- हरित क्रांति का प्रभाव मुख्यतः गेहूँ पर पड़ा लेकिन कुछ सीमा तक धान व मक्के की फसल पर भी दिखायी पड़ता है। इसकी सफलता का मुख्य कारण अधिक उपज देने वाली बीज के किस्मों का प्रयोग था। साथ ही साथ रासायनिक उर्वरक, लघु सिंचाई आदि का प्रभाव रहा है।
- हरित क्रांति का प्रभाव संपूर्ण भारत में न होकर कुछ विशेष क्षेत्र जैसे- पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश आदि तक सीमित रह गया।
- भारत में हरित क्रांति का तात्पर्य 1966-67 के नई कृषि नीति में अपनाये गए अधिक उपज देने वाले बीजों (High Yielding Variety Seeds) एवं बहुफसली कार्यक्रम के परिणामस्वरूप उत्पादन में तीव्र वृद्धि से संबंधित था।

हरित क्रांति का दुष्प्रभाव

निःसंदेह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार में वृद्धि के साथ-साथ कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा मिला, वरन् इस क्रांति का लाभ देश के कुछ ही हिस्सों (पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गंगानगर, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि) को प्राप्त हुआ।

- देश के कई राज्य इससे अप्रभावित रहे, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा मिला।
- रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा मिला।
- हरित क्रांति का सर्वाधिक प्रभाव गेहूँ के उत्पादन पर पड़ा जबकि अन्य फसलों को उस अनुपात में लाभ प्राप्त नहीं हुआ।

द्वितीय हरित क्रांति या सतत हरित क्रांति

- सर्वप्रथम राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने द्वितीय हरित क्रांति का आह्वान किया।
- पहली हरित क्रांति के दुष्प्रभावों को दूर करने के उद्देश्य से स्वामीनाथन ने सर्वोत्तम उत्पादन तकनीकी का प्रयोग, जैविक खेती को बढ़ावा देना, रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर बायो कीटनाशकों का प्रयोग, जल तथा पर्यावरण का संरक्षण, वर्षा जल संचयन (Rain Water Harvesting) तथा किसानों को उचित मूल्य पर साख व्यवस्था उपलब्ध कराने पर बल दिया।
- इसमें मोटे अनाजों के उत्पादन पर भी बल दिया गया। इसके अंतर्गत उन्नत बीजों का चयन क्षेत्रीय भूमि की दशा के आधार पर किया जायेगा। इसके साथ ही वाटर शेड मैनेजमेंट द्वारा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने के भी उपाय किये जायेंगे। प्रथम हरित क्रांति उत्पादकता से संबंधित थी जबकि द्वितीय हरित क्रांति आय वृद्धि से संबंधित है।

भारत में महत्वपूर्ण अन्य क्रांति

श्वेत क्रांति (White Revolution)

- भारत में श्वेत क्रांति की शुरुआत 1964-65 में 'सघन पशु विकास कार्यक्रम' के अंतर्गत दूध के क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के लिए शुरू की गयी थी।
- वर्ष 1970 में इस क्षेत्र में तीव्रगति के लिए ऑपरेशन फ्लड चलाया गया, जिसके सूत्रधार डॉ. वर्गीज कूरियन थे।
- श्वेत क्रांति के फलस्वरूप भारत आज विश्व में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में शीर्ष स्थान पर है।
- वर्ष 1955 में नेशनल डेरी रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना करनाल (हरियाणा II) में की गयी।
- आर्थिक समीक्षा 2020-21 के अनुसार देश में दूध की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता प्रतिदिन लगभग 427 ग्राम हैं।
- राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के अनुसार सभी महिला डेयरी सहकारी समितियों की वार्षिक विकास दर लगभग 10 प्रतिशत है।
- आर्थिक समीक्षा 2020-21 में भारत में दुग्ध का उत्पादन 209.69 मिलियन टन हुआ।
- ऑपरेशन फ्लड को तीन चरणों में लागू किया गया, पहला चरण 1970 से 1978 तक, द्वितीय चरण 1978 से 1978 एवं तृतीय चरण 1985 से 1995 तक चलाया गया।

पीली क्रांति (Yellow Revolution)

- पीली क्रांति तिलहन से संबंधित है। हरित क्रांति के सफल उपलब्धि के पश्चात कृषि क्षेत्र में अगली कड़ी पीली क्रांति से है।
- पीली क्रांति के तहत तिलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दृष्टि से उत्पादन, प्रसंस्करण और प्रबंधन प्रौद्योगिकी का सर्वोत्तम उपयोग करने के उद्देश्य से तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन 1986 में प्रारंभ किया गया
- वर्ष 2020-21 में सकल तिलहन उत्पादन 36.1 मिलियन टन रहा।

नीली क्रांति (Blue Revolution)

- नीली क्रांति मत्स्य उत्पादन से संबंधित है। इस क्रांति को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय मत्स्य विकास बोर्ड' की स्थापना 9 सितंबर, 2006 को एक स्वायत्त संस्था के रूप में की गयी थी, जिसका मुख्यालय हैदराबाद में है।
- देश में वर्ष 1950-51 में मछली का कुल उत्पादन 7.5 लाख टन था जो वर्ष 2020-21 में बढ़कर 145 लाख टन हो गया।
- वर्तमान में भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा मछली उत्पादक है। विश्व में सर्वाधिक मछली का उत्पादन चीन में होता है।

इंद्रधनुषी क्रांति (Rainbow Revolution)

- जुलाई, 2000 में नई कृषि नीति की घोषणा की गयी, जिसमें इसका वर्णन इंद्रधनुषी क्रांति के रूप में किया गया है।
- वर्तमान में प्राथमिक क्षेत्र में व्याप्त हरी, नीली, पीली, श्वेत, गुलाबी, गोल, धूसर, रजत, सुनहरी व भूरी क्रांतियों को समेकित करते हुए इंद्रधनुषी क्रांति के अंतर्गत शामिल किया जायेगा।

सदाबहार क्रांति (Evergreen Revolution)

- हरित क्रांति की सफलता के पश्चात भारत को अब द्वितीय हरित क्रांति की अर्थात् एवरग्रीन रिवॉल्यूशन की ओर बढ़ना है।
- सदाबहार क्रांति की पहली बार परिकल्पना प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन ने की थी। इसके अंतर्गत जैविक व हरित कृषि के अलावा कीट प्रबंधन, संगठित पौष्टिकता आपूर्ति तथा प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन का प्रयोग किया जाता है।

रजत क्रांति (Silver Revolution)

- भारत में मुर्गियों द्वारा अंडा तथा मांस की उत्पादकता अत्यंत कम थी। विगत 4 दशकों के दौरान भारत में मुर्गा-मुर्गी उत्पादन में तेजी से वृद्धि दर्ज की गयी है।
- वर्ष 2016-17 के दौरान हमारे देश में मुर्गा-मुर्गियों की कुल संख्या 729.21 मिलियन थी। (मवेशियों के संबंध में की 19वीं आम गणना के अनुसार) तथा अंडे का उत्पादन लगभग 88.12 बिलियन अंडे था। वर्ष 2020-21 में इसकी प्रतिव्यक्ति उपलब्धता प्रतिवर्ष लगभग 91 अंडे हैं।

विविध क्रांतियाँ

श्वेत क्रांति	दुग्ध उत्पादन
पीली क्रांति	तिलहन उत्पादन
नीली क्रांति	मछली उत्पादन
गुलाबी क्रांति	झींगा/प्याज उत्पादन
काली क्रांति	पेट्रोलियम उत्पादन
गोल्डेन क्रांति	समस्त बागवानी/हनी उत्पादन
गोल क्रांति	आलू उत्पादन

धूसराII क्रांति	उर्वरक उत्पादन
रजत (Silver) क्रांति	अंडा उत्पादन से
स्वर्ण फाइबर क्रांति	जूट उत्पादन
चांदी फाइबर क्रांति	कपास उत्पादन
लाल क्रांति	मांस/टमाटर उत्पादन
इंद्रधनुषी क्रांति	कृषि का समग्र विकास

कृषि कीमत नीति

भारत में कृषि विकास की रणनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू उचित कृषि कीमत नीति को लागू करना रहा है। इस संदर्भ में न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) किसानों के हितों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारत सरकार द्वारा शुरू की गई योजना है। इस योजना के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा विभिन्न कृषि उत्पादों का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किया जाता है और किसानों को भरोसा दिया जाता है कि इन उत्पादों के कीमत गिरने की स्थिति में उनके उत्पादों को इस न्यूनतम मूल्य पर सरकार द्वारा खरीद लिया जाएगा। भारतीय खाद्य निगम, इस योजना के कार्यान्वयन हेतु नोडल एजेंसी है। पहली बार इस योजना की घोषणा वर्ष 1965 में की गई थी। यदि किसी फसल के लिए बम्पर उत्पादन होने या बाजार में अधिकता होने के कारण बाजार मूल्य कम है तो न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) किसानों को बाजार जोखिम (Market Risk) के प्रति सुरक्षा प्रदान करती है। न्यूनतम समर्थन मूल्य का मुख्य उद्देश्य किसानों को मजबूरन सस्ते कीमत पर फसल बिक्री करने से बचाना और खाद्यान्न की अधिप्राप्ति करना है।

सरकारी कृषि नीति के तीन मुख्य घटक हैं-

- न्यूनतम समर्थन मूल्य
- बफर स्टॉक
- सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के तहत खाद्यान्न वितरण।
- इन तीनों के बीच अंतर्संबंधता स्पष्ट है और न्यूनतम समर्थन मूल्य इस नीति को लागू करने का प्रथम चरण है।

भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) की अवधारणा को लक्ष्मीकांत झा समिति की सिफारिशों पर 1965 में लागू किया गया था। इसके निर्धारण का कार्य कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP- Commission on Agricultural Cost and Prices) द्वारा किया जाता है। MSP की घोषणा फसलों की बुआई से पहले की जाती है, ताकि किसान किसी फसल को बोने या नहीं बोने का निर्णय कर सकते हैं। सरकार 22 अनिवार्य फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है साथ ही गन्ने हेतु उचित व लाभकारी मूल्य (FRP) की घोषणा की जाती है। अनिवार्य फसलों में 14 फसलें खरीफ की, 6 रबी की व दो वाणिज्यिक फसलें हैं। इसके अलावा तोरिया व नारियल (जटा नारियल) का MSP क्रमशः सरसों व खोपरा (नारियल गिरी) के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

भारत में बागवानी फसलों (Horticulture Crops) पर MSP घोषित नहीं की जाती है। हालांकि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में इन्हें सम्मिलित किया गया है। इसके अलावा 2015 में इसके लिए मूल्य स्थिरीकरण कोष (PSF - Price Stabilization Fund) शुरू किया गया है। लेकिन इसमें अब तक केवल टमाटर, आलू व प्याज को सम्मिलित किया गया है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के बारे में सुझाव कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP - Commission on Agricultural Cost and Price) द्वारा दिया जाता है। लेकिन उसके बारे में अंतिम निर्णय आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति (CCEA - Cabinet Committee on Economic Affairs) द्वारा किया जाता

है। गन्ने के लिये उचित एवं लाभकारी मूल्य (FRP - Fair and Remunerative Price) के संदर्भ में भी इसी प्रक्रिया को लागू किया जाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की गणना (Calculation of Minimum Support Price)

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा महत्वपूर्ण फसलों पर न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है। आयोग द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य मापन के लिए कुछ पद्धतियों को अपनाया जाता है। इस मापन पद्धति के संबंध में अभिजीत सेन एवं स्वामीनाथन आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी थी, जिसमें अभिजीत सेन ने कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को C_2 लागत आधारित मूल्य निर्धारित करने की सलाह दी, जबकि स्वामीनाथन आयोग C_2 के ऊपर 50 प्रतिशत का लाभ जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य को निर्धारित करने के लिए कहा।

न्यूनतम समर्थन मूल्य का मापन निम्न आधार पर किया जाता है- लागत $(Cost) A_2 =$ इस लागत में कुल व्यय जिसमें सभी नकद एवं वस्तु सम्मिलित है, उन्हें जोड़ा जाता है।

लागत $(Cost) A_2 + FL =$ इस लागत के अंतर्गत कुल भुगतान के अलावा पारिवारिक श्रम (Family Labor) जिस श्रम का कोई भुगतान नहीं करना पड़ता इत्यादि को शामिल किया जाता है।

लागत $(Cost) C_2 =$ कृषि में यह लागत काफी व्यापक है। इस लागत में भूमि मालिक द्वारा उत्पादन प्रक्रिया में संपूर्ण नकद व्यय मूल्य + पट्टे पर ली गई भूमि पर दिया गया लगान + पारिवारिक श्रम का अनुमानित मूल्य + पूंजी संपत्ति (जैसे- ट्रैक्टर, हार्वेस्टर आदि) के मूल्य पर दिया गया ब्याज + धारित मूल्य पर लगान आदि को सम्मिलित किया गया है।

लागत $(Cost) C_3 =$ इसके अंतर्गत C_2 लागत का 10% जो कि किसान प्रबन्धन में खर्च करता है, उसे सम्मिलित किया गया है।

केन्द्र सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य के विषय में विभिन्न मुद्दों पर समीक्षा करने हेतु प्रो. वाई. के. अलघ की अध्यक्षता में समिति गठित की थी। बाद में हुडा पैनल ने भी स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार किया। अभी सरकार किस लागत पद्धति को अपना रही है यह उतना स्पष्ट नहीं है, पर अभी $A_2 + FL$ और C_2 के बीच की लागत के आधार पर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय किया जा रहा है।

वहीं समिति द्वारा यह कहा गया कि कृषक को एक प्रबन्धक के रूप में देखा जाना चाहिए। इस संदर्भ में समिति ने कहा कि ' C_2 ' लागत का 10% अतिरिक्त रूप से जोड़ा जाना चाहिए। इसके अलावा इस बात को भी निरन्तर उठाया जा रहा है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य से किसानों के लिए न केवल लागत निकले बल्कि उन्हें मुनाफा भी मिले ताकि वे कृषि को एक अच्छे व्यवसाय के रूप में देख सकें।

भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ कुछ विशेष क्षेत्रों और क्षेत्र विशेष के उत्पादों को अधिक हुआ है। इसके कारण फसल के विविधिकरण पर विपरीत असर पड़ा है। पूर्व में देखा गया है कि मोटे अनाज और दालों के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण गेहूँ और चावल की तुलना में कम रहता था, जिसके कारण इनके उत्पादन पर विपरीत असर पड़ा। लेकिन वर्तमान केन्द्र सरकार ने इनके समर्थन मूल्य में न सिर्फ वृद्धि की बल्कि इनको बढ़ावा देने एवं इनका रकबा (क्षेत्रफल) बढ़ाने के लिए वर्ष 2018 को राष्ट्रीय मोटे अनाज का वर्ष भी घोषित किया है। साथ ही, संयुक्त राष्ट्र ने विश्व में पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारत की पहल पर मुहर लगा दी है, इसके तहत 2023 को मोटा अनाज वर्ष घोषित किया जाएगा। भारत ने इसके लिए दलील दी कि मोटे अनाज वाली फसलों की खेती से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में मदद मिलेगी।

स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट

18 नवम्बर, 2004 को केंद्र सरकार द्वारा एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया गया था। स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट में निम्नलिखित अनुशंसाएं की गई हैं-

- फसल उत्पादन मूल्य से पचास प्रतिशत ज्यादा दाम किसानों को मिलें।
- किसानों को अच्छी गुणवत्ता के बीज कम दामों में उपलब्ध कराये जाए।
- गांवों में किसानों के लिए विलेज नॉलेज सेंटर की स्थापना की जाए।
- महिला किसानों की मदद के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जाए।

- किसानों के लिए कृषि जोखिम फंड बनाए जाए।
- सरप्लस और इस्तेमाल नहीं हो रही जमीन के टुकड़ों का वितरण किया जाए।
- खेतीहर जमीन और वन भूमि को गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए कॉर्पोरेट को न दिए जाए।
- फसल बीमा की सुविधा पूरे देश में हर फसल के लिए मिले।
- खेती के लिए कर्ज की व्यवस्था हर गरीब और जरूरतमंद तक पहुँचे।
- कर्ज की वसूली में राहत, प्राकृतिक आपदा या संकट से जूझ रहे इलाकों में ब्याज से राहत, हालात सामान्य होने तक जारी रहे।
- लगातार प्राकृतिक आपदाओं की सूत में किसान को मदद पहुँचाने के लिए एक एग्रीकल्चरल रिस्क फंड बनाया जाए।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) की नीति में बदलावों की चर्चा (Discussion of Change in Minimum Support Price Policies)

भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य की सरकारी नीति में कई प्रकार के बदलावों के सुझाव देखने को मिलते हैं। हनुमंत राव समिति (1990) के अनुसार भारत में ' C_2 ' के स्थान पर ' C_3 ' को लागू किया जाना चाहिए। इस समिति का यह कहना था, कि किसान प्रबंधन का कार्य भी करता है, इसीलिए उसे ' C_2 ' का 10% अतिरिक्त रूप में दिया जाना चाहिए। रमेश चन्द्र समिति 2013 के अनुसार ' C_2 ' के अंतर्गत मुख्य किसान को कुशल मजदूरों की मजदूरी के अनुसार मजदूरी दी जानी चाहिए। राष्ट्रीय किसान आयोग के अनुसार न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण ' C_2 ' की तुलना में 50% ऊपर होना चाहिये। वर्तमान में कई किसान संगठन इसे लागू करने की मांग कर रहे हैं।

भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण में कई बार राजनीतिक हितों को ध्यान में रखा जाता है, विशेष रूप से गेहूँ व चावल के मामले में। वर्ष 2006-07 से 2011-12 की अवधि में गेहूँ की न्यूनतम समर्थन मूल्य को ' C_2 ' की तुलना में 29% से 66% तक ऊँचा रखा गया है। चावल में भी लगभग यही स्थिति देखने को मिलती है। इसके अलावा, कुछ राज्य बाजार मूल्य (MP- Market Price) पर अपनी ओर से बोनास कीमतें घोषित कर रहे हैं। इसके कारण न केवल फसल पद्धति (Cropping Pattern) प्रभावित हो रही है, बल्कि भण्डारण व बढ़ी हुई खाद्य सब्सिडी की समस्याएं भी उत्पन्न हो रही हैं। अंतर फसल कीमत समता (Inter Crop Price Parity) का सिद्धांत बुरी तरह से प्रभावित हो गया है। कुछ लोगों के अनुसार न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण में प्रादेशिक दृष्टिकोण ध्यान में रखा जाना चाहिए जो वर्तमान में नहीं है। इसका तर्क यह दिया जाता है कि प्रादेशिक आधार पर उत्पादन लागत में परिवर्तन होता है, जैसे- कई कारणों से अन्य राज्यों की तुलना में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि में उत्पादन की लागत अधिक है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य पर रमेश चन्द्र समिति (Ramesh Chandra Committee on MSP)

वर्ष 2013 में न्यूनतम समर्थन मूल्य के बारे में सुझाव देने के लिए भारत सरकार द्वारा इस समिति का गठन किया गया। समिति द्वारा निम्न महत्वपूर्ण सिफारिशें की गईं-

भारत में सरकार द्वारा सभी राज्यों से न्यूनतम समर्थन मूल्य के आधार पर फसलों का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है इसीलिए भारत में मूल्य न्यूनता भुगतान (DPP- Deficiency Price Payment) या मूल्य बीमा (PI- Price Insurance) की व्यवस्था को लागू किया जा सकता है।

इस व्यवस्था में सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य को घोषित किया जाता है, लेकिन किसानों को यह कहा जाता है कि वे अपना माल खुले बाजार में बेचे। यदि न्यूनतम समर्थन मूल्य की तुलना में बाजार की कीमत कम रहती है तो

सरकार द्वारा प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT - Direct Benefit Transfer) के माध्यम से क्षतिपूर्ति कर दी जाती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि कुछ समय पहले वर्षा में कपास (Cotton) के मामले में इस व्यवस्था को लागू किया गया था, इसका अनुभव अच्छा रहा है। अधिकांश विकसित राष्ट्रों में इस व्यवस्था को चलाया जा रहा है। इसके अलावा मूल्य निर्धारण हेतु भी समिति ने महत्वपूर्ण निम्न सुझाव दिये।

- कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा 'C₂' का मूल्यांकन करते समय एक ब्लॉक से एक गांव का चयन करने की बजाय दो गाँवों का चयन किया जाना चाहिए।
- 'C₂' के अंतर्गत मुख्य किसान की मजदूरी कुशल श्रमिक की मजदूरी के अनुसार होनी चाहिए।
- भूमि पर लगान की मात्रा वास्तविक रूप में प्रचलित लगान के अनुसार होनी चाहिए।

न्यूनतम समर्थन मूल्य के लाभ (Benefits of Minimum Support Price)

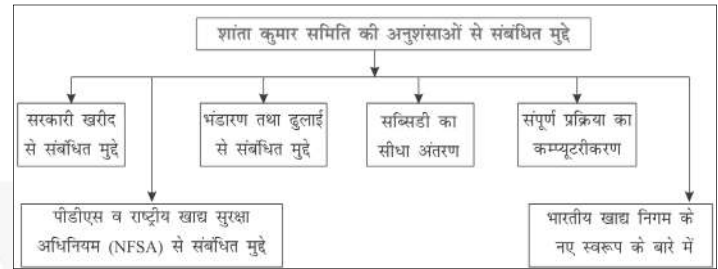
- न्यूनतम समर्थन मूल्य किसानों में कृषि की नयी तकनीकी को लोकप्रिय बनाने में मदद करती है। कृषि की नयी तकनीकी अधिक उत्पादन से जुड़ी होती है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य को एक सामाजिक न्याय के कदम के भी रूप में भी देखा जा सकता है। इसके माध्यम से निर्धन किसानों की आर्थिक सहायता की जाती है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से कृषि वस्तुओं की व्यापार शर्तों (TOT-Terms of Trade) में सुधार किया जा सकता है। इससे कृषि उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से देश की फसल पद्धति (Cropping Pattern) को वांछित दिशा में बदला जा सकता है, जैसा कि भारत में गेहूँ व चावल के संदर्भ में देखने को मिलता है। वर्तमान में न्यूनतम समर्थन मूल्य को बढ़ाकर दालों के पक्ष में फसल पद्धति (Cropping Pattern) को बदलने की कोशिश की जा रही है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मपूर्णाता की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।
- भारत एक विकासशील देश है, जहां रंगराजन समिति के अनुसार लगभग 29.9% जनसंख्या गरीब है, ऐसे में भारत की राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन योजना को सफल बनाने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य को बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि यह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को ही संरक्षण प्रदान करती है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य से संबंधित कृषि फसलों की कीमतों में स्थिरता (Stabilization) आती है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की कमियां व सुधार के उपाय (Demerit of MSP)

- भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य की सरकारी नीति के कारण मोटे अनाज व दालों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।
- भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ कुछ विशेष क्षेत्रों (जैसे कि पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि) और कुछ विशेष लोगों (जैसे कि बड़े किसान) को अधिक मिला है। इसके कारण भारत में प्रादेशिक और आय की विषमता बढ़ी है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ सभी किसानों को मिले इसके लिए यह जरूरी है कि भारतीय खाद्य निगम (FCI) द्वारा सभी स्थानों से किसानों के

माल का अधिग्रहण किया जाए, लेकिन भारत में इस पहलू पर आपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है।

इस संदर्भ में गठित शांता कुमार कमेटी भारतीय खाद्य निगम (FCI) में निहित महत्वपूर्ण कमियों को दूर करने हेतु महत्वपूर्ण उपाय प्रस्तुत करती है।



सरकारी खरीद से संबंधित मुद्दे

- उच्चस्तरीय समिति सिफारिश करती है कि गेहूँ, धान और चावल की सरकारी खरीद से संबंधित सभी ऑपरेशन भारतीय खाद्य निगम (FCI) द्वारा राज्यों को सौंप दिये जाएं, जिन्हें इस संबंध में पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो चुका है तथा उन्होंने प्रोक्योरमेंट के लिए पर्याप्त ढांचागत सुविधाएं बना ली हैं। भारतीय खाद्य निगम को उन राज्यों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए जहां किसान न्यूनतम समर्थन मूल्य से काफी कम दाम पर अपना अनाज बेच रहे हैं। जहां ज्यादातर छोटे किसान हैं जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम आदि। यह वह पट्टी है जहां दूसरी हरित क्रांति अपेक्षित है और जहां भारतीय खाद्य निगम को अपनी ओर से सक्रियता दिखाने की जरूरत है।
- भारत सरकार को अपनी एमएसपी नीति पर दुबारा विचार करने की जरूरत है वर्तमान में 22 जिलों के लिए एमएसपी की घोषणा की जाती है लेकिन वास्तव में मूल समर्थन ऑपरेशन मूलतः चावल, गेहूँ के लिए ही संचालित किये जाते हैं वह भी केवल चुने हुए राज्यों में। इसके कारण गेहूँ और चावल के पक्ष में अत्यधिक लाभप्रद संरचना का निर्माण होता है। जबकि देश में दालों और तिलहन (खाद्य तेलों) की कमी है तथा प्रभावी मूल्य समर्थन के अभाव में उनकी कीमतें प्रायः एमएसपी के नीचे चली जाती है। व्यापार नीति एमएसपी नीति से स्वतंत्र रूप में कार्य करती है और अनेक अवसरों पर दालों का आयात उनके एमएसपी से बहुत कम दाम पर होता है। इससे विविधकरण (Diversification) पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उच्च स्तरीय समिति यह सिफारिश करती है कि दालों और तिलहनों को प्राथमिकता देने की जरूरत है तथा व्यापार नीति के साथ अपनी एमएसपी नीति का सामंजस्य बैठाना चाहिए।

पीडीएस व राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) से संबंधित मुद्दे

- समिति यह सिफारिश करती है कि भारत सरकार को NFSA, से संबंधित प्रतिबद्धता एवं क्रियान्वयन पर विचार करना चाहिए। भारत सरकार को उन राज्यों में NFSA के क्रियान्वयन को स्थगित कर देना चाहिए जिन्होंने आदि से अंत तक कंप्यूटरीकरण नहीं किया है। लाभार्थियों की सूची को ऑनलाइन नहीं किया है ताकि कोई भी उसकी जांच कर सके और जिन्होंने पीडीएस में होने वाली हेराफेरी को रोकने के लिए सतर्कता समिति का गठन नहीं किया है।
- समिति यह भी सिफारिश करती है कि वर्तमान में जनसंख्या के 67% के मौजूदा दायरे पर दुबारा विचार करना चाहिए और इसे घटाकर 40% के आस-पास लाना चाहिए जो बीपीएल परिवारों को सुविधा-पूर्वक कवर कर सकता है तथा कुछ सीमा तक इससे अधिक भी। प्राथमिकता वाले परिवारों को 5 किग्रा प्रति व्यक्ति अनाज प्रदान करने की बात स्थिति को असहज

बना रहा है जिन्हें Targeted Public Distribution System (TPDS) के तहत 7 किग्रा प्रति व्यक्ति मिलता था। इसलिये समिति सिफारिश करती है कि उन्हें 7 किग्रा प्रति व्यक्ति अनाज ही दिया जाए। केंद्रीय निगम मूल्य के बारे में समिति सिफारिश करती है कि फिलहाल अंत्योदय परिवार को रु. 3/2/1 की दर पर अनाज दिया जा सकता है लेकिन प्राथमिकता वाले परिवारों के लिए मूल्यों को एमएसपी से संबद्ध किया जाए जो एमएसपी का 50% हो सकता है।

- उक्त समिति सिफारिश करती है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली में क्रमिक रूप से नगद राशि अंतरण करने की शुरुआत की जाए।

भंडारण तथा ढुलाई से संबंधित मुद्दे

- उच्चस्तरीय समिति यह सिफारिश करती है कि भारतीय खाद्य निगम को अपने भंडारण ऑपरेशन को केंद्रीय भंडारण निगम, राज्य भंडारण निगम, निजी क्षेत्र को आउटसोर्स कर देना चाहिए। इसे प्रतिस्पर्धी बोली के आधार पर विभिन्न स्टॉक होल्डर को आमंत्रित करते हुए प्रतिस्पर्धी को बढ़ावा देते हुए करना चाहिए ताकि भंडारण की लागत को कम किया जा सके।
- खाद्यान्नों की ढुलाई कंटेनरों के माध्यम से किया जाये जिसे ढुलाई के दौरान होने वाले हानि में कमी लायी जा सके।

सब्सिडी का सीधा अंतरण

- भारत उर्वरकों पर सब्सिडी देता है, यूरिया का मूल्य डीएपी (डाई-अमोनिया फास्फेट) और एमओपी (म्यूरिएट ऑफ पोटाश या पोटेशियम क्लोराइड) की तुलना में बहुत कम स्तर पर रखा जाता है। इससे N, P और K के इस्तेमाल में बड़ा असंतुलन पैदा होता है। समिति सिफारिश करती है कि किसानों को नगद सब्सिडी का सीधा भुगतान किया जाये और उर्वरक क्षेत्र को डी-रेगुलराइज कर दिया जाये। इससे यूरिया के गैर कृषि क्षेत्रों में इस्तेमाल को रोका जा सकेगा तथा पड़ोसी देशों को भेजने पर भी रोक लगेगी। इससे उर्वरकों के कुशल प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा। यह भी उल्लेखनीय है कि किसानों को इस प्रकार की नकद सब्सिडी के सीधे अंतरण को लंबे समय तक फायदा होगा किसानों को उधार देने वालों से उर्वरक तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए मनमानी ब्याज दर पर ऋण भी नहीं लेना पड़ेगा। इससे कृषि क्षेत्र को बड़ी राहत मिलेगी।

नई यूरिया नीति, 2015 (New Urea Policy, 2015)

13 मई, 2015 को नई यूरिया नीति को स्वीकृति प्रदान की गई। नई यूरिया नीति के प्रमुख उद्देश्यों में स्वदेशी यूरिया उत्पादन में वृद्धि करने और यूरिया इकाइयों की ऊर्जा दक्षता में वृद्धि करने के साथ सरकार पर सब्सिडी के बोझ को कम करना शामिल है। यह नीति घरेलू क्षेत्र की 30 यूरिया उत्पादन इकाइयों को अधिक ऊर्जा कुशल बनाने में सहायता करेगी और सब्सिडी बोझ को तार्किक बनाने के साथ यूरिया इकाइयों को अपने उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। इससे किसानों को समान अधिकतम खुदरा मूल्य (MRP) पर समय से यूरिया आपूर्ति सुनिश्चित होगी तथा आयात पर निर्भरता भी कम होगी।

संपूर्ण प्रक्रिया का कंप्यूटरीकरण

- समिति सिफारिश करती है कि किसानों से अधिप्राप्ति के स्तर से लेकर भंडारण, ढुलाई और अंत में टीपीडीएस के माध्यम से वितरण तक (अधिप्राप्ति भंडारण ढुलाई वितरण) शुरू से अंत तक संपूर्ण खाद्य प्रबंधन प्रणाली का कंप्यूटरीकरण किया जाये तथा इसे वास्तविक समय के आधार

पर किया जाये। कुछ राज्यों ने अधिप्राप्ति ऑपरेशंस के कंप्यूटरीकरण के कार्य में सराहनीय प्रगति की है लेकिन टीपीडीएस में परिचालन और वितरण के साथ इसका तालमेल कमजोर रहा है।

भारतीय खाद्य निगम के नये स्वरूप के बारे में

- भारतीय खाद्य निगम का नया स्वरूप एक ऐसी एजेंसी के रूप में होगा जो खाद्य प्रबंधन प्रणाली के क्षेत्र में नई सोच और नई अवधारणा से लैस हो। जिसका मूल उद्देश्य खाद्यान्न आपूर्ति शृंखला के प्रत्येक स्तर पर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना है- अधिप्राप्ति से लेकर भंडारण तक, परिचालन से लेकर टीपीडीएस के माध्यम से अंतिम वितरण तक, इस प्रणाली के समग्र लागत को व्यापक रूप से घटाया जा सके, लीकेज को बंद किया जा सके और यह बहुसंख्य किसानों और उपभोक्ताओं को बेहतर सेवा प्रदान कर सके। इस प्रयास में इसे अधिक लचीला और कार्यकुशल बनना होगा (छरहरे आकार के साथ/आंचलिक कार्यालयों को समाप्त करके) अधिप्राप्ति के लिए पूर्वी राज्यों पर ध्यान केंद्रित करते हुए बल्क हैंडलिंग तथा आदि से अंत तक कंप्यूटराइजेशन के साथ संपूर्ण खाद्य आपूर्ति शृंखला को अपग्रेड करते हुए बेहतर सेवा देनी होगी। यह कार्य प्राइवेट सेक्टर से निवेश आमंत्रित करके तथा तकनीकी और प्रबंधकीय कुशलता लाकर किया जा सकेगा।

गन्ना मूल्य निर्धारित नीति

- भारत में गन्ना मूल्य निर्धारण नीति का उद्देश्य गन्ना उत्पादकों के लिए उचित मूल्य, उद्योग के लिए पर्याप्त प्रतिफल और उपभोक्ताओं के लिए उचित मूल्य पर चीनी की आपूर्ति सुनिश्चित करना है।
- गन्ने का मूल्य निर्धारण अनिवार्य अधिनियम (ECA), 1955 के अंतर्गत जारी किए गए गन्ना (नियंत्रण) आदेश, 1966 के सांविधिक प्रावधानों द्वारा शासित होता है।
- भारत में दोहरी गन्ना मूल्य निर्धारण प्रणाली:
 - ✓ उचित और लाभकारी मूल्य (Fair & Remunerative Price: FRP)- यह राज्य सरकारों और चीनी उद्योग के संघों से परामर्श करने के बाद कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) की अनुशंसाओं के आधार पर केंद्र सरकार द्वारा घोषित गन्ना मूल्य है।
 - ✓ राज्य परामर्शित मूल्य (State Advised Price: SAP)- राज्य सरकारों द्वारा घोषित किया जाता है। यह प्रायः FRP से अधिक होता है।
- SAP में हुई लोकलुभावन वृद्धि के परिणामस्वरूप गन्ने के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिसके कारण चीनी की आपूर्ति भी बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप मिल मालिकों पर किसानों के बकाये में अत्यधिक वृद्धि हुई है।
- सरकार ने चीनी मूल्यों में गिरावट को रोकने और चीनी मिलों की तरलता की स्थिति में सुधार लाने के लिए पहले से ही निम्नलिखित कदम उठाए हैं-
 - ✓ चीनी पर आयात शुल्क 50 से बढ़ाकर 100 प्रतिशत करना।
 - ✓ चीनी मिलों पर दो महीने तक स्टॉक होल्डिंग सीमा आरोपित करना।
 - ✓ न्यूनतम संकेतक निर्यात कोटा (MIEQ) नियत करना और।
 - ✓ विदेशी बाजारों में अधिशेष उत्पादन हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिए चीनी के निर्यात से सीमा शुल्क हटाना।

इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (Pradhanmantri Fasal Bima Yojana)

इसे वर्ष 2016 में लागू किया गया, इस योजना का लाभ ऋणी और गैर-ऋणी दोनों प्रकार के किसान उठा सकते हैं। हालांकि ऋणी किसानों के लिए इसे अनिवार्य किया गया है। इस योजना को पट्टेदार किसानों (Tenant Farmers) तथा बटाईदारों (Sharecroppers) तक भी विस्तृत किया गया है।

इस योजना के लागू होने के साथ ही संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (MNAIS- Modified National Agriculture Insurance Scheme) को हटा दिया गया, हालांकि मौसम आधारित फसल बीमा योजना (WBCIS- Weather Based Crop Insurance Scheme) को स्वतंत्र रूप से चलाया जा रहा है।

भारत में फसल बीमा की आवश्यकता (Requirement of Crop Insurance in India)

भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) या मूल्य स्थिरीकरण कोष (PSF- Price Stabilisation Fund) किसानों को मूल्य जोखिम (Price Risk) से सुरक्षित करते हैं लेकिन वे आय जोखिम (Income Risk) से सुरक्षित नहीं कर पाते हैं। किसानों के लिए मूल्य जोखिम (Price Risk) की तुलना में आय जोखिम (Income Risk) का अधिक महत्व है। भारत में सिंचाई सुविधाओं की कमी, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव आदि के कारण किसानों की आय में फसल बर्बादी के चलते भारी क्षति हो सकती है, इसलिए यह जरूरी है कि फसल नुकसान के संदर्भ में किसानों को आय सुरक्षा प्रदान की जाए। विश्लेषण की इस पृष्ठभूमि में भारत में फसल बीमा (Crop Insurance) की आवश्यकता को समझा जा सकता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की मुख्य विशेषताएं (Main Characteristics of Pradhanmantri Crop Insurance Scheme)

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं-

- **पर्याप्त सुनिश्चित बीमाकृत (Adequate Sure Insured)** - इस योजना में प्रीमियम की कोई ऊपरी सीमा नहीं है। हालांकि किसानों के योगदान को लेकर इसकी ऊपरी सीमा निर्धारित की गयी है, जो निम्न प्रकार है-

खरीफ फसलें	-	2%
रबी फसलें	-	1.5%
वाणिज्यिक एवं बागवानी फसलें	-	5%
- यदि बीमा कंपनी द्वारा इससे अधिक प्रीमियम लिया जाता है, तो बचा हुआ प्रीमियम केन्द्र व राज्य सरकारें बराबर-बराबर सब्सिडी के रूप में उपलब्ध करा देती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पहले वाली बीमा योजनाओं को केन्द्र सरकार द्वारा प्रीमियम पर ऊपरी सीमा लगाई गई थी जिसके कारण साधारण ब्याज पर 100% बीमा नहीं हो पाता था।
- **विस्तृत कवरेज (Wider Coverage)** - यह योजना पहली की बीमा योजनाओं में जोखिमों को लेकर अधिक विस्तृत है। इसमें फसल पूर्व (Pre Harvest), फसल बाद (Post Harvest) एवं खड़े फसल नुकसान (Standing Losses) आदि को ध्यान में रखा गया है, रोका बुआई (Prevented Sowing) के कारण होने वाले नुकसान को भी सम्मिलित किया गया है। उपर्युक्त के अलावा किसी क्षेत्र विशेष से जुड़े हुए जोखिमों को (जैसे कि उत्तराखंड में भूस्खलन आदि) को भी सम्मिलित किया गया है।
- **क्षति का शीघ्र भुगतान (Fastest Settlement)** - इस योजना में फसल के नुकसान का पता लगाने के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (Science & Technology) के प्रयोग पर जोर देने के लिए कहा गया है। इस संदर्भ में ड्रोन (Drones), उपग्रह (Satellite), स्मार्टफोन (Smartphone) आदि के प्रयोग के लिए कहा गया है।

क्रियान्वयन का मूल्यांकन (Evaluation of Execution)

इस योजना के एक वर्ष के क्रियान्वयन को लेकर विज्ञान और पर्यावरण के लिए केन्द्र (CSE- Centre for Science and Environment) द्वारा एक अनुसंधान किया गया, जिसमें निम्न महत्वपूर्ण कमियाँ दिखायी दीं-

- कई राज्य सरकारों द्वारा फसलों को विलंब से अधिसूचित (Notify) किया गया।

- कई राज्य सरकारों ने महत्वपूर्ण फसलों को बाहर छोड़ दिया।
 - कुछ राज्य सरकारों द्वारा सब्सिडी का समय पर भुगतान नहीं किया गया।
 - पट्टेदार किसानों (Tenant Farmers) तथा बटाईदारों (Sharecroppers) को शामिल नहीं किया जा सका।
 - मिश्रित फसल (Mixed Cropping) को ध्यान में नहीं रखा गया।
 - कई किसानों में इस योजना को लेकर जागरूकता देखने को नहीं मिली।
 - कई किसानों को नीति दस्तावेज (Policy Document) नहीं दिए गए।
- इस प्रकार इस योजना के क्रियान्वयन में कई प्रकार की समस्याएं देखने को मिली हैं, जिनका भविष्य में उचित समाधान किया जाना चाहिए।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना [Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi Scheme (PM-KISAN)]

अनेक राज्यों ने कृषकों हेतु आय सहायता योजनाओं की घोषणा की है। उल्लेखनीय है कि, वर्ष 2019-20 के अंतरिम बजट में केंद्र सरकार ने प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN) के शुभारंभ की घोषणा की थी। इस योजना की औपचारिक शुरुआत प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 24 फरवरी, 2019 को गोरखपुर (उ.प्र.) से की गयी।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN) योजना के बारे में

- **उद्देश्य**
 - कृषि योग्य भूमि धारण करने वाले सभी लघु एवं सीमांत किसान परिवारों को आय सहायता प्रदान करना।
 - अनुमानित कृषि आय के अनुरूप, बेहतर फसल और उचित पैदावार सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कृषि संबंधी इनपुट्स (आदानों) की खरीद में किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरकता प्रदान करना।
- **लाभ** - इस योजना के अंतर्गत, देश भर के सभी लघु एवं सीमांत भूमिधारक किसान परिवारों को निम्नलिखित वित्तीय लाभ उपलब्ध कराए जाएंगे-
 - 2 हेक्टेयर तक कुल कृषियोग्य भूमि जोत वाले किसान परिवारों को प्रति परिवार प्रति वर्ष 6,000 रुपये का लाभ प्रदान किया जाएगा। यह लाभ तीन समान किस्तों में देय होगा जो प्रत्येक चार-चार माह में प्रदान की जाएंगी।
 - पात्रता निर्धारित करने के लिए एकल परिवार द्वारा धारित अनेक भू-खंडों (चाहे प्रत्येक 2 हेक्टेयर से कम हो) को समग्र रूप से एक माना जाएगा।
 - यहां तक कि 10 हेक्टेयर से बड़ी जोतें भी, यदि कई परिवारों के स्वमित्व में हों तो वे इस योजना के अंतर्गत लाभ के पात्र होंगे (जैसे- यदि पांच भाई संयुक्त रूप से 10 हेक्टेयर की एक जोत के स्वामी हैं, तो उनमें से प्रत्येक योजना के लिए पात्र होगा)।
- योजना के अंतर्गत लाभ के लिए पात्र भूमि धारक किसान परिवार की पहचान करने का उत्तरदायित्व राज्य/संघ राज्य क्षेत्र की सरकार का होगा।
- पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए ग्राम स्तर पर पात्र लाभार्थियों की सूचियाँ प्रकाशित की जाएंगी।
- अपवर्जन- उच्च आर्थिक स्थिति वाले लाभार्थियों की कुछ श्रेणियाँ, जैसे- संस्थागत भूमि धारक, पूर्व और वर्तमान संवैधानिक पद धारक, विगत वित्तीय वर्ष में आयकर का भुगतान करने वाले व्यक्ति आदि इस योजना के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए पात्र नहीं होंगे।
- अपवर्जन के उद्देश्य से राज्य/संघ राज्य क्षेत्र की सरकार लाभार्थियों द्वारा की गयी स्व-घोषणा के आधार पर लाभार्थी की पात्रता को प्रमाणित कर सकती है।

- योजना के कार्यान्वयन के लिए एक समर्पित प्रधानमंत्री किसान पोर्टल लॉन्च किया जाएगा।
- यह एक केंद्रीय क्षेत्रक योजना है और इसे पूर्णतः भारत सरकार द्वारा वित्त पोषित किया जाएगा।
- इस योजना को 1 दिसंबर, 2018 से लागू किया गया है।
- लाभ के परिकलन हेतु लाभार्थियों की पहचान के लिए वर्तमान भूमि स्वामित्व प्रणाली का प्रयोग किया जाएगा।

प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान (Pradhan Mantri Annadata Aay Sanrakshan Abhiyan: PM-AASHA)

हाल ही में, केंद्रीय मंत्रिमंडल ने एक नई समग्र योजना- 'प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान' (PM-AASHA) को स्वीकृति प्रदान की है।

योजना के बारे में

इसमें MSP पर धान, गेहूं एवं अन्य अनाजों तथा मोटे अनाजों की सरकारी खरीद के लिए खाद्य तथा सार्वजनिक वितरण विभाग की वर्तमान योजनाओं के पूरक के रूप में निम्नलिखित तीन घटक विद्यमान हैं-

- **मूल्य समर्थन योजना (Price Support Scheme: PSS)**- इसके तहत दालों, तिलहन तथा खोपरा (नारियल गिरी) की भौतिक खरीद केंद्रीय नोडल एजेंसियों द्वारा की जाएगी। भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ लिमिटेड (NAFED) के अतिरिक्त, FCI भी PSS के अंतर्गत फसलों की खरीद करेगा। खरीद के दौरान होने वाले व्यय और क्षति को केंद्र सरकार द्वारा वहन किया जाएगा।
- **मूल्य न्यूनता भुगतान योजना (Price Deficiency Payment Scheme: PDPS)**- इसके अंतर्गत उन सभी तिलहन फसलों को सम्मिलित किया जाएगा जिनके लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य अधिसूचित किया गया है। केंद्र सरकार द्वारा MSP एवं वास्तविक बिक्री/मॉडल मूल्य के मध्य के अंतर का भुगतान सीधे किसानों को बैंक खाते में किया जाएगा। अधिसूचित अवधि के भीतर निर्धारित मंडियों में अपनी फसल बेचने वाले किसान इसका लाभ उठा सकते हैं।
- **निजी खरीद तथा स्टॉकिस्ट पायलट योजना (Pilot of Private Procurement and Stockiest Scheme- PPSS)**- तिलहनों के मामले में राज्यों के पास यह विकल्प होगा कि वे चयनित जिलों में PPSS आरंभ कर सकते हैं जहां कोई निजी अभिकर्ता बाजार मूल्यों के न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम हो जाने की स्थिति में न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसलों की खरीद कर सकता है। उस निजी अभिकर्ता को फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य के अधिकतम 15% तक के सेवा शुल्क के माध्यम से क्षतिपूर्ति की जाएगी। PM-AASHA खरीद मूल्य एवं क्षतिपूर्ति में विद्यमान अंतराल को कम करने के साथ-साथ गेहूं, धान और गन्ने के पक्ष में फसल संबंधी पूर्वाग्रह को कम करेगी तथा फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित करेगी। यह केंद्र को भंडारण लागत में बचत करने एवं अत्यधिक अपव्यय और लीकेज को कम करने में भी सहायता करेगी।

न्यूनतम समर्थन मूल्य संबंधित वर्तमान मुद्दे (Current Issues Related to Minimum Support Price)

केंद्र सरकार सितंबर 2020 में तीन नए कृषि विधेयक लाई थी, जो संसद की मंजूरी और राष्ट्रपति की मुहर लगने के बाद कानून बन गए लेकिन किसानों को ये कानून पसंद नहीं आए। उन्होंने उसी समय से इसका विरोध शुरू कर दिया। केंद्र सरकार द्वारा तीनों नए कृषि कानूनों को वापस लेने के फैसले से किसान खुश तो हैं, लेकिन अभी आंदोलन खत्म करने के मूड में नहीं हैं। आंदोलनकारी न्यूनतम

समर्थन मूल्य (MSP) की गारंटी को लेकर कानून बनाने की मांग कर रहे हैं।

पीएम मोदी ने एक समिति बनाने की घोषणा की

पीएम मोदी ने कहा है कि शून्य बजट आधारित कृषि को बढ़ावा देने, देश की बदलती जरूरतों के अनुसार खेती के तौर-तरीकों को बदलने और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को अधिक प्रभावी और पारदर्शी बनाने के लिए एक समिति गठित की जाएगी। इस समिति में केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, किसानों के प्रतिनिधियों के साथ साथ कृषि वैज्ञानिक और कृषि अर्थशास्त्री भी शामिल होंगे।

एमएसपी कानूनी गारंटी देने में क्या है अड़चन?

न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी कई कारणों से कानूनी गारंटी नहीं दी जा सकती। उसके प्रमुख कारण हैं-

1. एमएसपी उस समय की उपज है, जब देश खाद्यान्न संकट से गुजर रहा था और सरकार किसानों से अनाज खरीद कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली हेतु उसका भंडारण करती थी। आज अनाज की बहुलता है। यदि एमएसपी को कानूनी जामा पहनाया गया तो सरकार के लिए उसे खरीदना और भंडारण करना विकराल समस्या बन जाएगा।
2. सरकार उसका निर्यात भी नहीं कर पाएगी, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृषि उत्पाद सस्ते हो सकते हैं। यह संभव नहीं कि सरकार महंगा खरीद कर सस्ते में निर्यात करे।
3. यदि एमएसपी पर खरीद की कानूनी बाध्यता हो गई तो पैसा तो जनता की जेब से ही जाएगा और जो लोग एमएसपी को कानूनी बनाने का समर्थन कर रहे हैं, वे ही कल रोएंगे।
4. बड़े किसान छोटे किसानों से सस्ते दामों पर अनाज खरीद लेंगे और फिर सरकार को बड़े एमएसपी पर बेचेंगे, जिससे मुट्ठीभर किसान पूंजीपति बन जाएंगे, जो टैक्स भी नहीं देंगे, क्योंकि कृषि आय पर टैक्स नहीं है। आज भी बड़े किसान अपनी अन्य आय को कृषि आय के रूप में दिखा कर टैक्स बचा रहे हैं और बोझ नौकरी पेशा या मध्य वर्ग पर पड़ रहा है।
5. नए कानून किसानों को यह विकल्प देते थे कि वे अपना उत्पाद एमएसपी पर मंडी शुल्क देकर बेचें या बिना शुल्क दिए मंडी के बाहर देश में कहीं भी। यह व्यवस्था छोटे किसानों को मंडी शुल्क और मंडियों पर काबिज दबंग नेताओं/बिचौलियों से मुक्ति दिला सकती थी।
6. शांताकुमार समिति के अनुसार छह फीसद किसानों को ही एमएसपी का लाभ मिलता है। यदि 94 प्रतिशत किसान एमएसपी से बाहर हैं तो क्या किसान नेता केवल छह फीसद किसानों के हितों को लेकर आंदोलनरत हैं?

उपाय

- एम.एस.पी. दायरा बढ़ाया जाना।
- भावांतर को लागू करना।
- भंडारण की सुविधा में वृद्धि।
- कृषि उत्पादन का निर्यात प्रोत्साहन।
- गुणात्मक विविधता के अनुरूप एम.एस.पी. में विविधता।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली खाद्यान्नों के उचित प्रबंधन करने, वस्तुओं की आवश्यक आपूर्ति, जनता के पोषण स्तर को बनाये रखने के लिए मुख्य उपकरण के रूप में प्रयोग की जाती है। इसके माध्यम से लोगों तक खाद्यान्न की आपूर्ति उचित कीमत पर एवं उचित समय तक उपलब्ध कराई जा सकती है। इसका उद्देश्य किसी परिवार अथवा समाज के किसी वर्ग को इसके अंतर्गत वितरित

किसी वस्तु की समग्र मांग को उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि उसकी न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति करना है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा समवर्ती सूची के अंतर्गत संचालित की जाती है, जिसमें केन्द्र सरकार की भूमिका आवश्यक वस्तुओं का अधिग्रहण, उनका भंडारण तथा दुलाई और आवंटन की होती है, जबकि राज्य सरकारों की जिम्मेदारी लक्षित परिवारों की पहचान करने, राशन कार्ड जारी करने, उचित दर की दुकानों के कार्यकरण का पर्यवेक्षण करने आदि की होती है। फिलहाल सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत संघ/राज्य क्षेत्रों में गेहूँ, चावल, चीनी, मिट्टी के तेल, दाल, खाद्य तेल, आयोडीन युक्त नमक, मसाले आदि का वितरण किया जाता है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में खाद्यान्नों को उपलब्ध कराने का काम मुख्यतया भारतीय खाद्य निगम के द्वारा किया जाता है। भारतीय खाद्य निगम ही खाद्यान्नों का 'बफर स्टॉक' रखता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आवश्यकता क्यों पड़ी?

पहली पंचवर्षीय योजना तक अनाजों के खुदरा मूल्य में आई वृद्धि को रोकने के लिए तथा कृषि में निजी व्यापार की धांधली को नियंत्रित करने के लिए सरकार को अनाजों की खरीद की आवश्यकता महसूस हुई। उस समय जारी राशनिंग सिस्टम को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के रूप में पेश करने का निर्णय सरकार द्वारा लिया गया।

1965 में भारतीय खाद्य निगम और कृषि मूल्य आयोग ने घरेलू बाजार में स्टॉक को बनाए रखने तथा त्वरित उत्पन्न समस्या जैसे, कृषि उत्पादकता में कमी, भुखमरी आदि समस्या से निपटने के लिए पी.डी. एस को सामाजिक नीति के रूप में जारी रखने का निश्चय किया। निगम को यह भी जिम्मेदारी सौंपी गई कि वह सरकार की ओर से खाद्यान्नों के प्रतिरोधक भंडार बनाकर रखें ताकि आपात की स्थिति में परिस्थितियों से निपटा जा सकें।

खाद्यान्न सब्सिडी— यदि खाद्यान्नों का निकासी मूल्य आर्थिक लागत के बराबर हो तो सब्सिडी की बात नहीं उठेगी, पर यदि सरकार अपनी आर्थिक नीतियों के तहत आर्थिक लागत से कम मूल्य पर भारतीय खाद्य निगम से खाद्यान्नों की आपूर्ति कराती है अतः इन दोनों के अन्तर के बराबर उसे खाद्य निगम को आर्थिक सहायता देनी पड़ती है, जिसे 'खाद्यान्न सब्सिडी' कहते हैं।

आर्थिक लागत का निकासी मूल्य के ऊपर आधिक्य सब्सिडी होती है। अर्थात् **सब्सिडी = आर्थिक लागत - निकासी मूल्य**

जबकि आर्थिक लागत = न्यूनतम समर्थन मूल्य + बोनस + खरीद संबंधी सहायक खर्च + वितरण लागत तथा अधिप्राप्ति पर कर। उपभोक्ता खाद्यान्न सब्सिडी कुल खाद्यान्न सब्सिडी का एक बड़ा भाग है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार, भारतीय खाद्य निगम को 'बफर स्टॉक' कायम रखने के लिए तथा लागत को पूरा करने के लिए सहायता प्रदान करती है, जिसे हम 'बफर स्टॉक सब्सिडी' कहते हैं। इस प्रकार

खाद्यान्न सब्सिडी = उपभोक्ता खाद्यान्न सब्सिडी + बफर स्टॉक सब्सिडी
खाद्यान्न सब्सिडी का प्रमुख उद्देश्य गरीबों को सब्सिडी पर दिए गए खाद्यान्नों के द्वारा पोषणीय सहायता पहुंचाना तथा खाद्यान्नों के 'मूल्य में स्थिरता' लाना है तथा इस प्रकार देश में खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करने के एक अस्त्र के रूप में कार्य करना है।

विकेन्द्रित वसूली प्रणाली के अंतर्गत अखिल भारतीय स्तर पर केन्द्र द्वारा निर्धारित केन्द्रीय निर्गत मूल्य तथा राज्य के लिए निर्धारित आर्थिक लागत का अन्तर सब्सिडी होती है जो राज्यों को दी जाती है। खाद्यान्न सब्सिडी भारतीय खाद्य निगम (FCI- Food Corporation of India) के माध्यम से बाँटी जाती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को पुनर्गठित करने के लिए किए गए प्रयास (Effort Made to Reorganise the Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाने और सुप्रवाही बनाने और इसकी पहुंच दूर-दराज, पहाड़ी, सुदूरवर्ती और दुर्गम क्षेत्रों तक वृद्धि करने की दृष्टि से, जहां गरीबों की बड़ी आबादी रहती है, के लिए शुरू की गयी थी। इसमें 1775 ब्लॉकों को कवर किया गया था, जहां सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, एकीकृत जनजातीय विकास परियोजना, मरुस्थल विकास कार्यक्रम और विशेष लक्ष्य हेतु राज्य सरकारों के परामर्श से पहचान किए गए कुछ पहाड़ी क्षेत्र जैसे विशिष्ट कार्यक्रम कार्यान्वित किए गए थे। पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (आरपीडीएस) में वितरण हेतु खाद्यान्न केन्द्रीय निर्गम मूल्य से 50 प्रतिशत कम मूल्य पर जारी किए गए थे, निर्गम की मात्रा 20 किलोग्राम प्रति कार्ड तक थी। **पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली** में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की जिन्सों की प्रभावी पहुंच, राज्य सरकारों द्वारा पहचान किए गए क्षेत्रों में उचित दर की दुकानों तक उनकी सुपुर्दगी, छूट दिए गये परिवारों को अतिरिक्त राशन कार्ड, अतिरिक्त उचित दर की दुकान की भंडारण क्षमता इत्यादि जैसी इंफ्रास्ट्रक्चर संबंधी आवश्यकताओं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों के जरिए वितरण हेतु चाय, नमक, दाल, साबुन आदि जैसे अतिरिक्त वस्तुओं तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए क्षेत्र आधारित दृष्टिकोण शामिल थे।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Targeted Public Distribution System)

भारत सरकार ने गरीबों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए जून, 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की थी। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन राज्यों से यह अपेक्षा थी कि वे खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराने के साथ उचित दर की दुकान स्तर पर इनका पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से वितरण करने के लिए गरीबों की पहचान करने की पुख्ता व्यवस्था बनाए और क्रियान्वित करें।

जिस समय यह योजना लागू की गयी थी उस समय इसका उद्देश्य लगभग 6 करोड़ गरीब परिवारों को लाभान्वित करना था। योजना के अंतर्गत गरीबों की पहचान प्रोफेसर लकड़वाला की अध्यक्षता में 'गरीबों का अनुपात और संख्या के अनुमान संबंधी विशेषज्ञ समूह' की विधि पर आधारित वर्ष 1993-94 के लिए योजना आयोग के राज्यवार निर्धनता अनुमानों के अनुसार राज्यों द्वारा की गयी थी। राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को खाद्यान्नों का आवंटन विगत औसत खपत अर्थात् लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली आरंभ करते समय पिछले दस वर्षों के दौरान, लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन, खाद्यान्नों के औसत वार्षिक खपत के आधार पर किया गया था।

मौजूदा लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत अंतिम खुदरा मूल्य, थोक/ खुदरा विक्रेताओं के मार्जिन, दुलाई प्रभार, लेवी, स्थानीय कर आदि पर विचार करते हुए राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा निर्धारित किया जाता है। अंत्योदय अन्न योजना, जिसमें अंतिम खुदरा मूल्य गेहूँ के लिए 2 रुपये प्रति किलोग्राम और चावल के लिए 3 रुपये प्रति किलोग्राम रखा जाना है, को छोड़कर लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन खाद्यान्नों का वितरण करने के लिए खुदरा निर्गम मूल्य निर्धारित करने के लिए राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को लचीला रख अपनाने को अधिकार दिया गया है।

अंत्योदय अन्न योजना (Antyodaya Anna Yojana)

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत अंत्योदय अन्न योजना का लागू करना गरीबी रेखा से नीचे की आबादी के निर्धनतम वर्ग के बीच भुखमरी को कम करने की दिशा में उठाया गया एक कदम है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSS)

ने इस तथ्य की ओर संकेत किया था कि देश में कुल आबादी की लगभग 5% आबादी दो वक्त का भोजन किए बिना सोती है। आबादी के इस भाग को 'भूख ग्रस्त' कह सकते हैं। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आबादी के इस वर्ग के प्रति और अधिक केंद्रित और लक्षित करने के लिए एक करोड़ निर्धनतम परिवारों के लिए दिसम्बर, 2000 में 'अंत्योदय अन्न योजना' शुरू की गयी थी। अंत्योदय अन्न योजना (एएवाई) में राज्य में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन आच्छादित किए गए गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में से एक करोड़ निर्धनतम परिवारों की पहचान करने और उन्हें 2 रुपये प्रति किलोग्राम गेहूँ और 3 रुपये प्रति किलोग्राम चावल की अत्यधिक राज सहायता प्राप्त दरों पर खाद्यान्न प्रदान करने की परिकल्पना की गयी थी। राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों से यह अपेक्षित है कि वे डीलरों और खुदरा विक्रेताओं के मार्जिन सहित वितरण लागत और दुलाई लागत वहन करें। इस प्रकार, इस स्कीम के अधीन संपूर्ण खाद्य राजसहायता उपभोक्ताओं तक पहुंचाई जा रही है।

निर्गम की मात्रा जो प्रारंभ में 25 किलोग्राम प्रति परिवार प्रति माह थी, उसे 1 अप्रैल, 2002 से बढ़ाकर 35 किलोग्राम प्रति परिवार प्रति माह कर दिया गया है जिसमें 20 किलोग्राम गेहूँ तथा 15 किलोग्राम चावल शामिल है। अंत्योदय परिवारों की पहचान करने और इन परिवारों को विशिष्ट राशन कार्ड जारी करने की जिम्मेदारी संबंधित राज्य सरकारों की है। अंत्योदय परिवारों और विस्तारित अंत्योदय अन्न योजना के अधीन अंत्योदय परिवारों की पहचान करने के लिए राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं।

एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (Integrated Child Development Services)

एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) कार्यक्रम मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा बच्चों के समग्र विकास तथा माताओं के सशक्तिकरण के उद्देश्य से 1975 में केन्द्रीय कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के आयोजन तथा परिचालन लागतों का खर्च केन्द्र सरकार उठाती है, जबकि इसका कार्यान्वयन राज्य सरकारें करती हैं तथा अपने साधनों से पूरक पोषण (Supplementary Nutrition) सुविधाएँ प्रदान करती हैं। ICDS पूरक पोषण के साथ-साथ प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएँ तथा अनौपचारिक (Informal) शिक्षा सुविधाएँ भी प्रदान करता है। यह विश्व में सबसे बड़े बाल सेवा कार्यक्रमों में से एक है और इसमें 6 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिए तथा गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं (Nursing Mothers) के लिए छः मूल सेवाएँ प्रदान करने की व्यवस्था है-

- **पूरक खाना (Supplementary Feeding)** - जिसके तहत प्रत्येक बच्चे को साल में 300 दिनों के लिए 300 कैलोरी प्रतिदिन व 12.5 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन तथा प्रत्येक गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिला को 500 कैलोरी प्रतिदिन तथा 12-15 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन उपलब्ध कराने का प्रावधान है।
- बीमारियों के खिलाफ प्रतिरक्षण (Immunisation)।
- स्वास्थ्य परीक्षण (Health Test)।
- विशेषज्ञों से परामर्श की सुविधाएँ (Referral Services)।
- वयस्क स्त्रियों को स्वास्थ्य एवं पोषण के बारे में शिक्षा।
- 3-6 वर्ष के बच्चों को गैर औपचारिक पूर्व स्कूल शिक्षा (Non Formal Pre School Education) ICD का कार्यान्वयन 'आंगनबाड़ी' केन्द्र के माध्यम से किया जा रहा है। इसमें काम करने वाले कर्मचारियों में मुख्य विकास परियोजना अधिकारी (Chief Development Project Officer) सुपरवाइजर, आंगनबाड़ी, कार्यकर्ता तथा सहायक शामिल हैं।

मध्याह्न भोजन योजना (Mid-Day Meal Scheme)

प्राथमिक शिक्षा को 'पोषण सहायता' देने का राष्ट्रीय कार्यक्रम जिसे मध्याह्न भोजन योजना कहा जाता है, 1995 में केन्द्रीय सरकार द्वारा शुरू किया गया। इस योजना का उद्देश्य यह है कि स्कूलों में विद्यार्थियों की हाजिरी (Attendance) बढ़े, बच्चे नियमित रूप से स्कूल आए तथा बीच में ही स्कूल छोड़ देने की प्रवृत्ति (Drop Out Rate) कम की जा सके। इस योजना के माध्यम से यह भी प्रयास किया जा रहा है कि प्राथमिक स्कूल के बच्चों को बेहतर पोषण (अधिक पौष्टिक आहार) उपलब्ध कराया जा सके। यह कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा पोषणकारी कार्यक्रम है तथा इसका प्रयास देश भर में फैले प्राथमिक स्कूलों (कक्षा 1 से 5 तक) में (जिसमें सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त तथा स्थानीय संस्थाओं के स्कूल शामिल हैं) बच्चों को कम से कम 450 कैलोरी तथा 12 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन प्रति बच्चा के हिसाब से उपलब्ध कराना है जबकि 6 से 8 कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों को कम से कम 700 कैलोरी तथा 20 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन प्रति बच्चा है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के समक्ष चुनौतियाँ व मुख्य कमजोरियाँ (Challenges before the Public Distribution System and Major Weaknesses)

- भारत के कई राज्यों में राशन की दुकान माह में औसतन तीन दिन ही खुलती है, जिसका कारण एक ही प्रबंधन द्वारा संचालन किया जाना है। इससे लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है अतः इस व्यवस्था के संचालन का दायित्व, ग्रामसभा, पंचायत एवं स्वयं सहायता समूहों को सौंपा जाना चाहिए।
 - सरकार राशन दुकान संचालकों को किसी प्रकार की कार्यशील पंजी उपलब्ध नहीं करवाती इस कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भ्रष्टाचार देखने को मिलता है।
 - अभी तक सरकार गरीबी की कोई वास्तविक परिभाषा सुनिश्चित नहीं कर पाई है। अतएव इस पद्धति को लक्षित कर पाना उतना सरल नहीं है, क्योंकि अभी भी जरूरतमंद जो वर्तमान नियमों के अंतर्गत नहीं आ पा रहे हैं, उन तक यह सुविधा नहीं पहुँच पा रही है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली की समीक्षा हेतु सर्वोच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश **डी.पी. वाधवा की अध्यक्षता में समिति** का गठन किया गया। इस समिति की रिपोर्ट 2010 में आई।
- इस समिति ने रिपोर्ट में पी.डी.एस. को सबसे भ्रष्ट संस्था के रूप में इंगित किया और कहा गया कि इस प्रणाली से गरीबों तक खाद्यान्न नहीं पहुँच पाते हैं।
 - यह गरीबों को न तो उचित मात्रा में और न ही उचित गुणवत्ता के खाद्यान्न प्रदान करता है।
 - भारत में अभी भी कई दुर्गम इलाके हैं जहां उचित परिवहन के विकास और भंडारण सुविधा के ठीक न होने के कारण लोगों तक सुविधाएँ नहीं पहुँच पा रही हैं।
 - भारत में अभी भी शिक्षा का स्तर बहुत उच्च नहीं है। ऐसे में गरीब व जरूरतमंद लोगों को अनावश्यक कागजी कार्यवाही से बचाना भी एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली की चुनौती है।
 - सार्वजनिक वितरण प्रणाली की लोकप्रियता को लेकर भारत में प्रादेशिक विषमताएँ देखने को मिलती हैं। यह दक्षिणी भारत के राज्यों में अधिक लोकप्रिय है, इन राज्यों में अनाज आदि को खरीदने का स्तर 80-100% है जबकि इसके विपरीत उत्तर भारत के राज्यों में अनाज आदि को खरीदने का स्तर 35-50% है।

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली से निर्धन लोगों को सीमित मात्रा में ही लाभ मिल पाता है। एक अनुमान के अनुसार निर्धन लोग अपनी आवश्यकताओं का लगभग 25% भाग ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली से पूरा कर पाते हैं, जबकि उच्च आय वाले लोग सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अधिक लाभ उठा लेते हैं।
- भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का झुकाव शहरी क्षेत्र की ओर अधिक है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में रिसाव भी एक बड़ी समस्या है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आपूर्ति की जाने वाली वस्तुओं जिनमें विशेष रूप से अनाज की गुणवत्ता सही नहीं होती है जिसके कारण लोगों की रुचि कम हो जाती है जिससे उनका पोषण प्रभावित होता है। गुणवत्ता के कमजोर होने का मुख्य कारण अनाज आदि खरीदते समय निष्पक्ष औसत गुणवत्ता FAQ (Fair Average Quality) के मानकों को ठीक से ध्यान में नहीं रखना है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली के सही नहीं होने से खाद्यान्नों के निजी बाजार पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कई बार निर्धनों को उच्च कीमत पर निजी बाजार से खाद्यान्न खरीदने पड़ते हैं। इस प्रकार दोहरी बाजार प्रणाली निर्धनों के विपक्ष में जा रही है।
- उपरोक्त बिंदुओं से स्पष्ट होता है कि भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कई प्रकार की कमजोरियों से प्रभावित थी। स्वतंत्र मूल्यांकन कार्यालय IEO (Independent Evaluation Office) द्वारा 2014 में किये गये एक अध्ययन से यह पता लगता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से 1 रुपये के मूल्य का अनाज लोगों को उपलब्ध करवाने की लागत 3.65 रुपये आती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार हेतु किए जाने वाले उपाय (Remedies for Improvement in Public Distribution System)

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिये जा सकते हैं-

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आधार कार्ड से जोड़ा जाना चाहिए इससे न केवल जाली राशनकार्ड की समस्या से छुटकारा मिल सकेगा बल्कि लाभार्थियों से जुड़ा हुआ उच्च गुणवत्ता युक्त सूचना का आधार तैयार हो सकेगा। इस संदर्भ में भारत सरकार बायोमेट्रिकली प्रमाणीकृत शारीरिक अप्टेक (BAPU- Biometrically Authenticated Physical Uptake) व्यवस्था में POS (Point of sale) मशीनों के प्रयोग पर जोर दे रही है। इस व्यवस्था से सही लाभार्थियों को आधार कार्ड के आधार पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा वस्तुएं मिलेंगी। हालांकि कुछ अर्थशास्त्री इसे अधिक उचित नहीं मान रहे हैं। उनके अनुसार BAPU से लाभार्थियों के स्तर पर होने वाले भ्रष्टाचार को नहीं रोका जा सकता है, इसके अलावा कई बार फिंगर प्रिंट नहीं मिल पाते हैं तथा सिग्नल की समस्या भी रहती है, इससे निर्धन लोगों को उचित समय पर अनाज नहीं मिल पाता है।
- उचित मूल्य की दुकान का संचालन सामाजिक क्षेत्र को या उचित मूल्य की दुकान को निजी क्षेत्र को देने पर अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, जैसा कि छत्तीसगढ़ में लागू किया गया है और इसके अच्छे परिणाम दिख रहे हैं।
- उचित मूल्य की दुकान की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए तथा उन्हें सप्ताह के प्रत्येक दिन खोला जाना चाहिए।
- लोगों को किरातों में वस्तुएं खरीदने की छूट दी जानी चाहिए।
- प्रवासी श्रम के लिए 'रोमिंग राशन कार्ड' की आवश्यकता लागू की जा सकती है।
- भारतीय खाद्य निगम (FCI- Food Corporation of India) से लेकर खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO- Food & Agriculture Organization) तक की

समस्त प्रक्रिया का कम्प्यूटरीकरण किया जाना चाहिए। इसके अलावा उचित मूल्य की दुकान के संचालकों के लिए यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि वे उपलब्ध स्टॉक, वस्तुओं का वितरण आदि का साप्ताहिक विवरण तैयार करें और उसे विभागीय वेबसाइट पर उपलब्ध करायें।

- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (FPI- Food Processing Industry) के लाभ को बढ़ाने के लिए इसमें अन्य वस्तुओं को बेचने की छूट भी दी जा सकती है इसके अलावा संचालकों का कमीशन भी बढ़ाया जा सकता है।
- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की निगरानी रखने लिए पंचायती राज संस्थान (PRIs- Panchayati Raj Institutes) के सदस्यों को सम्मिलित करने वाली सतर्कता समितियों का निर्माण होना चाहिए।
- नकद हस्तांतरण को प्रोत्साहित किया जाए।

नकद हस्तांतरण (Cash Transfer)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में नकद हस्तांतरण से भी लोगों तक लाभ पहुँचाया जा सकता है। इससे सरकार पर सब्सिडी का भार कम पड़ेगा तथा रिसाव को रोकने में मदद मिलेगी। इसके द्वारा लोगों को वस्तुओं के बेहतर चुनाव का विकल्प मिलेगा। PDS में रिसाव के उच्च स्तर को देखते हुए इस बात का सुझाव दिया जाता है कि PDS में भौतिक रूप से खाद्यान्न आदि उपलब्ध करवाने के बजाए लोगों के बैंक खातों में खाद्य सब्सिडी ट्रांसफर कर दी जाए।

चुनौतियाँ (Challenges)

भारत में नकद हस्तांतरण (Cash Transfer) को लागू करने के मार्ग में कई प्रकार की चुनौतियाँ व समस्याएँ हैं, जिनके कारण इसकी प्रभावशीलता कम हो सकती है जैसे-

- लोगों द्वारा नकदी का प्रयोग अन्य वस्तुओं के लिए किया जा सकता है जैसे कि शराब, तंबाकू उत्पाद आदि में हालांकि भारतीय खाद्य निगम की पुनर्संरचना के मुद्दे पर गठित की गयी शांता कुमार समिति (2014) द्वारा, यह बताया गया कि नकद हस्तांतरण को लागू करने के बाद संबंधित क्षेत्र में शराब की बिक्री में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा लोगों द्वारा पहले की तुलना में मछली और अंडों का उपयोग बढ़ाया गया अर्थात् लोगों द्वारा बेहतर खाद्य विकल्प (Food Choice) का प्रयोग किया गया।
- इस संदर्भ में सशर्त नकद हस्तांतरण (CCT- Conditional Cash Transfer) को लागू किया जा सकता है जैसा कि ब्राजील में परिवार अनुदान (Balsa Familia) कार्यक्रम में देखने को मिलता है।
- भौगोलिक रूप से चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में नकद हस्तांतरण अधिक उपयुक्त नहीं होता है। उपयुक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए इन क्षेत्रों में वस्तुएं उपलब्ध करवायी जा सकती हैं।
- मुद्रास्फीति के कारण नकद हस्तांतरण की क्रय शक्ति कम हो जाती है। इससे निपटने के लिए किसी कीमत सूचकांक जैसे कि उपभोक्ता खाद्य कीमत सूचकांक (CFPI- Consumer Food Price Index) का प्रयोग किया जा सकता है।
- बैंकिंग इंफ्रास्ट्रक्चर एक बड़ी चुनौती हो सकती है, भारत में बैंक पहले से ही दबाव में है। अतः नकद हस्तांतरण पर अधिक निर्भर नहीं रह सकते हैं।

सुझाव

नकद हस्तांतरण को धीरे-धीरे लागू किया जा सकता है। सबसे पहले इसे खाद्य अधिशेष राज्यों में लाया जा सकता है। तत्पश्चात्, इसे खाद्य घाटा वाले राज्यों में विस्तृत किया जा सकता है। इस संदर्भ में दोनों प्रकार के राज्यों के बीच में खाद्य संगठन बनाया जाना चाहिए।

- नकद हस्तांतरण उत्पादन संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए विकल्प के

तौर पर हो सकता है क्योंकि भारतीय कृषि मानसून पर अधिक निर्भर है अतः उत्पादन में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। साथ ही राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन एवं राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन आदि पर पर्याप्त जोर दिया जाना चाहिए। उपर्युक्त के अलावा लोगों को नकद या वस्तु में पर्याप्त चुनाव की सुविधा दी जा सकती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर शांता कुमार समिति की रिपोर्ट (Shanta Kumar Committee Report on Public Distribution System)

शांता कुमार समिति 20 अगस्त, 2014 को 'भारतीय खाद्य निगम' की प्रचलनात्मक कार्य कुशलता और वित्तीय प्रबंधन में सुधार के लिए गठित की गयी। इस समिति ने 21 जनवरी, 2015 को 'भारतीय खाद्य निगम' की भूमिका को बढ़ाने तथा उसके पुनर्नवीनीकरण मुद्दों के बारे में अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को सौंपी।

इस समिति ने निम्न सिफारिशें दी हैं-

- गेहूँ, धान और चावल की सरकारी खरीद से संबंधित सभी क्रियाकलाप 'भारतीय खाद्य निगम' द्वारा राज्यों को सौंप दिए जाए, जिन राज्यों के पास पर्याप्त अनुभव हो और जिन्होंने ढांचागत सुविधाएं बना ली हों।
- केन्द्र भारतीय खाद्य निगम को प्रत्येक खरीद सत्र शुरू होने से पहले राज्यों के साथ लागत मानकों और सरकारी खरीद के मूलभूत नियमों के बारे में एक अनुबंध करना चाहिए जिसमें कमीशन सहित सांविधिक लेवी जो गुजरात में 3% है और पंजाब में 14.50% है, उसे एक समान रूप से एम.एस.पी पर 3% या अधिक से अधिक 4% तक होना चाहिए।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में क्रमिक रूप से नकद राशि हस्तांतरित करने की शुरुआत की जाए। इसकी शुरुआत एक मिलियन से अधिक आबादी वाले शहरों में की जाए।
- यह राशि परिवार की महिला के नाम हस्तांतरित की जाए तथा इसे 'जन धन योजना' और 'यूनिक आइडेंटिफिकेशन नंबर' के साथ जोड़ा जाए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाइसेंस में आरक्षण (Reservation in License of Public Distribution System)

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश-2016 के अंतर्गत राज्य सरकारें अनाज के वितरण के लिए राज्यों में राशन की दुकानों के लाइसेंस जारी करती हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली और उसके माध्यम से सस्ती दर पर अनाज की योजना समाज के गरीब और उपेक्षित वर्ग पर केन्द्रित होती हैं। इसलिए राज्य सरकारों से अपेक्षा है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों अथवा उनके समूह संगठनों को आरक्षण नीति के अनुसार प्राथमिकता दें।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाने हेतु सरकार द्वारा किए जा रहे अन्य प्रयास-

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और अधिक मजबूत बनाने के लिए सरकार ने इसे नागरिक अधिकार पत्र से जोड़ा है ताकि निर्धन वर्ग को खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान किया जा सके। इसके तहत पारदर्शिता, जवाबदेही एवं गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए मापदंड निर्धारित किए गए हैं। इसके साथ ही इसकी निगरानी के लिए जनभागीदारी को सुनिश्चित किया गया है, जिसके तहत सतर्कता समिति का गठन किया गया है। जिसमें सरकारी प्रतिनिधियों के अतिरिक्त स्वैच्छिक संगठनों के व्यक्ति, निर्वाचित जन प्रतिनिधि महिला और सामाजिक कार्यकर्ता का मनोनयन किया जाता है जिसके माध्यम से निगरानी रखी जाती है।

भारत में आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति को उचित कीमतों पर, उचित समय पर उपलब्ध करवाने तथा जनता के पोषण के उचित स्तर को बनाये रखने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को एक मुख्य उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली न केवल खुले बाजार में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को नियंत्रण में रखती है, बल्कि उनके सामाजिक वितरण को भी सुनिश्चित करने में मदद करती है।

खाद्य सुरक्षा (Food Security)

1980 के दशक के अंत तक भारत ने खाद्य के मामले में आत्म-निर्भरता हासिल कर ली थी। फिर भी खाद्य सुरक्षा की चिंता थी। खाद्य सुरक्षा का मतलब यह हुआ कि बगैर किसी बाधा के हर समय सस्ती दरों पर सबको अनाज मिले। हालाँकि, भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की विकास दर प्रभावशाली है और बीते कुछ दशकों से कृषि उत्पादन में भी वृद्धि आई है, किंतु भुखमरी और तंगहाली अब भी जनसंख्या के निर्धनतम वर्ग में मौजूद हैं।



खाद्य सुरक्षा की कमी कमजोर तबके की आबादी को पोषक खुराक देने में बाधा डालती है। भारत की बड़ी आबादी, खास तौर पर ग्रामीण इलाके में कैलोरी और प्रोटीन सामान्य मात्रा से कम लेती है। वैश्विक खाद्य सुरक्षा सूचकांक, 2020 के अनुसार, भारत की रैंकिंग 71 है जो भारत में खाद्य की भयावह स्थिति का द्योतक है। हालाँकि पहले से थोड़ा सुधार देखने को मिला है।

खाद्य सुरक्षा को आश्वासन देने के क्रम में भारत को मुख्यतः दो बाधाओं को पार करने की जरूरत है-

- **खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाना-** अगर खाना (यानी खाद्यान्न) सब तक पहुंचाया जाए, तो आज के समय में भारत के लिए तीन करोड़ टन खाद्यान्न कम पड़ जायेगा। यह भारत की खाद्य असुरक्षा के विभिन्न आयामों को दर्शाता है।
- **आपूर्ति शृंखला को मजबूत करना-** भंडारण, परिवहन, उचित रिटैलिंग और बंटे हुए कृषि बाजारों को राष्ट्रीय बाजार से जोड़ने जैसे मसलों का प्रबंधन करना होगा।

अल्पपोषण के उच्च स्तर और कृषि-कीमतों में अस्थिरता के कारण खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना है और इसके लिए भारत के पास दुनिया की सबसे बड़ी

खाद्य योजनाओं में से निम्नलिखित हैं-

- भोजन देने वाले कार्यक्रम, जैसे- समेकित बाल विकास योजना (आईसीडीएस- छह साल से कम उम्र के सभी बच्चों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को शामिल करती है)।
- मिड डे मील स्कीम।
- खाद्य सप्लाय कार्यक्रम, जैसे- लक्षित सार्वजनिक-वितरण प्रणाली (इसके जरिये राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून को लागू किया गया)।
- अन्नपूर्णा (बेहद गरीबों के लिए 10 किलोग्राम अनाज मुफ्त)।
- रोजगार कार्यक्रम, जैसे- खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना।
- 'प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना' कोरोना महामारी के दौरान मार्च, 2020 में इस योजना की घोषणा की गयी थी। इस योजना के माध्यम से 80 करोड़ राशन कार्ड होल्डर को मुफ्त में अनाज मुहैया कराया गया। जून 2021 के बाद इस योजना को समाप्त कर दिया गया।

जब तक कि कमजोर आबादी बाजार से जुड़ी क्रय-क्षमता प्राप्त नहीं कर सकती तब तक ये कार्यक्रम देश में खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के मामले में प्रासंगिक रहेंगे। लाभार्थियों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर इन योजनाओं को चलाने की जरूरत है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम-2013 (National Food Security Act-2013)

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सर्वाधिक पात्रों को शामिल करना एक बड़ी चुनौती रही है। सरकार ने वितरण प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन के प्रयास किये हैं और इस प्रणाली की मूल भावना - 'शामिल-करो' की जगह 'कितने लोग वंचित हैं' पर ध्यान देना शुरू किया है। दूसरे शब्दों में, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की पात्रता वाली जनसंख्या का अधिकाधिक भाग, राष्ट्रीय-खाद्य-सुरक्षा के अंतर्गत, शामिल हो, यह प्रयास प्रारंभ किया है।

लोकसभा द्वारा राष्ट्रीय-खाद्य-सुरक्षा अधिनियम, 2013, 03 जुलाई, 2013 को पारित किया गया। यह अधिनियम भारत की कुल आबादी (1.2 बिलियन) का 67% जनसंख्या को रियायती दर पर खाद्यान्न सुलभ होने का अधिकार देता है और इसमें ढिलाई बरतने वाले प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध दंड का भी प्रावधान है। यू.पी.ए. - 2 सरकार द्वारा लिये गए इस ऐतिहासिक फैसले से 1.3 ट्रिलियन रूपयों (22 बिलियन डॉलर) की महत्वाकांक्षी कल्याणकारी योजना, एक अध्यादेश द्वारा प्रारंभ की गयी जिसके माध्यम से देश की सैकड़ों मिलियन निर्धन जनता को रियायती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध हो सकेगा।

इस योजना में यह सुनिश्चित किया जायेगा कि निर्धन जनता को उचित और रियायती मूल्य पर सम्मानपूर्वक जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाये। यह कानून ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 75% और शहरी क्षेत्र की लगभग 50% आबादी को, लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत, रियायती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध करायेगा। इस प्रकार, लगभग दो तिहाई जनसंख्या को इस योजना के तहत कवर किया गया है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के विशेष प्रावधान इस प्रकार हैं-

- ग्रामीण क्षेत्र में तीन चौथाई आबादी और शहरी क्षेत्र में लगभग आधी आबादी को 5 किग्रा. अनाज रियायती दर पर (चावल 3 रु. प्रति किलो, गेहूँ 2 रु. प्रति किलो और मोटा अनाज 1 रु. प्रति किलो) उपलब्ध होगा।
- अत्यंत निर्धन परिवार 'अंत्योदय अन्न योजना' के अंतर्गत 35 कि.ग्रा. अनाज प्रति माह, रियायती दरों पर प्राप्त करते रहेंगे।
- गर्भवती महिलाएं और शिशु को स्तनपान कराने वाली महिलाओं को

जननी-लाभ के रूप में छः हजार रुपये मिलेंगे।

- छः माह से चौदह वर्ष आयु के बच्चों को या तो घर ले जाने के लिए राशन या पका खाना प्राप्त होगा।
- केंद्र सरकार खाद्यान्न को परिवहन से ढुलाई और उसके प्रबंधन के लिए सहायता प्रदान करेगी।
- महिलाओं को घर चलाने के लिए अधिक अधिकार देने के उद्देश्य से, वरिष्ठ गृहणी जो घर की मुखिया के हैसियत से रहती हैं उसके नाम से राशन कार्ड जारी किया जाएगा।

खाद्य सुरक्षा विधेयक से जुड़े मुद्दे

खाद्य सुरक्षा की परिकल्पना 'मूलभूत पोषण की वस्तुओं की एक टोकरी' पर आधारित होनी चाहिए जिसका उद्देश्य कुपोषण समाप्त करना हो और जनसंख्या के लिए 'पोषण सुरक्षा' निश्चित की जा सके। मात्र मोटे अनाज को इस पैकेज में रखने से आम जन के लिए पोषण-सुरक्षा नहीं मिल पायेगी। कई अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत के लिए भुखमरी और कुपोषण की समस्या से निजात पाना सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

कुपोषण और भूख, दोनों की दृष्टि में भारत की गणना निम्नतर देशों में होता है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्था की रेटिंग के अनुसार, भारत वैश्विक भूख सूचकांक वर्ष 2021 में 116 देशों में 101वें स्थान पर रहा।

भारत जैसे विशाल देश में इतने बड़े पैमाने पर खाद्य सुरक्षा नीति का क्रियान्वयन, वितरण-पद्धति की खामियों को दूर किये बिना और राज्यों की सापेक्षिक योग्यता में अंतर किए बिना, दोनों ही कारणों से गरीबों तक अन्न पहुँचाने की योजना असफल हो सकती है।

इस योजना के लिए इतनी विशाल मात्रा में खाद्यान्नों की सरकारी खरीद, भंडारण क्षमता को मजबूत करने के साथ ही, अतिरिक्त क्षमता बढ़ाने की आवश्यकता को भी पूरा करती है। इसके लिए भारत को उन खाद्यान्नों का आयात करना पड़ सकता है जो अंतर्राष्ट्रीय बाजार और भारत में भी कीमती प्रभावित करते हैं।

इस प्रक्रिया के कारण, भारी-भरकम सरकारी रियायतों के केवल मुहैया करने और वार्षिक बजट में प्रावधान तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि यह प्रत्येक चुनी सरकार के लिए शाश्वत और निरंतर जारी रहने वाली जिम्मेदारी है। प्रश्न यह है कि भविष्य में इसका कब तक निर्वाह किया जा सकता है? क्या इस प्रकार की योजनाएं जनमानस को अत्यधिक संतोषी और निकम्मा बनने की ओर प्रेरित तो नहीं कर रही हैं? क्योंकि यह योजना उन्हें खाद्यान्न की उपलब्धि की गारंटी, इसके लिए काम किये बगैर दे रही है।

खाद्य सुरक्षा के लिए क्या कुछ करने की जरूरत?

सर्वप्रथम एक ऐसे तंत्र की आवश्यकता है, जिसके द्वारा गरीब जनता की सही पहचान की जा सके। 'गरीबी रेखा से नीचे' का सूचक कार्ड धारकों को अंतिम रूप से इसका पात्र बताने का प्रमाण है, परंतु यह निर्धारित करने में असफल रहा है कि इसके धारक वास्तव में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग ही हैं। भारत में खाद्य सुरक्षा व्यवस्था के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है।

भारत ने 'भारत विशिष्ट पहचान प्राधिकरण' (UIDAI of India) की स्थापना करके जैवमिति (Biometric) पंजीकरण के माध्यम से 12 अंकों की एक विशिष्ट पहचान देने की महत्वाकांक्षी पहल की है। यह अपने-आप में इतने बड़े स्तर का, विश्व में अकेला, अनूठा प्रयास है जिसे 'आधार प्रोजेक्ट' के नाम से जाना जाता है। तथापि, यह विशिष्ट पहचान नंबर व्यक्ति की पहचान तो करेगा, परंतु वह निर्धन है या नहीं और उसके उपभोग-खर्च की जानकारी नहीं दे सकता और बिना इस जानकारी के पात्रता की पहचान नहीं हो सकती है।

इस समस्या के हल का अब तक का सबसे अच्छा तरीका, जो सरकार ने प्रस्तावित किया है, वह है 'अपवर्जन का तरीका' (Exclusion Method), जिसमें आबादी के कुछ वर्गों को निर्धनता के कारण मिलने वाली खाद्य-सुरक्षा की पात्रता से अलग कर दिया गया है और इस प्रकार निर्धन पात्रों को पहचानने की प्रक्रिया के बजाय, पहले से चिह्नित वर्गों को निर्धन श्रेणी से अलग माना गया है। हालाँकि कुछ वर्गों को निर्धनता की पात्रता से अलग करने की व्यवस्था पर आम सहमति आवश्यक होगी, क्योंकि एकरूपता किसी वर्ग-विशेष को निर्धनता की पात्रता से अलग कर देता है, वहीं दूसरा राज्य उसी वर्ग को शामिल भी कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि केंद्र सरकार इसके लिए सामान्य मापदंड आम सहमति के बाद सुनिश्चित कर दे और उसमें छोटे-मोटे सुधार राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दे। जैसा कि पहले कहा गया है, खाद्य सुरक्षा को 'पोषण-सुरक्षा' (Concretion Security) माना जाना चाहिए। कुपोषण से ग्रसित जनसंख्या को मात्र अनाज देना पर्याप्त नहीं है। सरकार का उद्देश्य न सिर्फ भोजन मुहैया कराना, बल्कि एक स्वस्थ आबादी तैयार करना भी होना चाहिए।

लक्ष्योन्मुखी सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS) जिसमें भंडारण, खाद्यान्नों की दुलाई और अंततः गरीबों में वितरण, इन सारी प्रक्रियाओं में आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करते हुए पूरे देश में कम्प्यूटरीकृत निगरानी (ट्रैकिंग) की व्यवस्था होनी चाहिए। यद्यपि लाभ मुश्किल है परंतु सरकारी स्तर पर आधार-कार्ड आधारित पूरी जनसंख्या का डाटा-बेस तैयार किया जा सकता है। इसके बाद खाद्यान्न मैनेजमेंट प्रणाली अधिक कुशल हो सकेगी।

निकट भविष्य में खाद्यान्न भंडारण क्षमता में 15-20 मिलियन टन की वृद्धि करने की आवश्यकता है। भंडारण की सुविधाएँ, खाद्यान्न दुलाई और प्रभावी डिलेवरी चेन की व्यवस्था में सुधार के लिए सरकारी एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी का मॉडल (PPP) अमल में लाने की आवश्यकता है।

सरकार द्वारा किसी भी प्रकार के रियायती मॉडल में चूक होने के भरपूर अवसर होते हैं चाहे उन्हें रोकने की कितनी भी व्यवस्था क्यों न कर दी जाए। रियायतें, सही पात्रों तक पहुँचाने का एक बेहतर तरीका यह हो सकता है कि निर्धन वर्ग को दी जाने वाली रियायत की सहायता सीधे उनके पास पहुँचे। उदाहरणस्वरूप यदि सरकार निर्धन परिवारों को 3 रुपये प्रति किग्रा. चावल देना चाहती है और बाजार भाव 15 रुपये प्रति किग्रा. है उस स्थिति में रियायत के 12 रुपये निर्धन पात्रों को सीधे उनकी आय के रूप में पहुँचाए जा सकते हैं। यह तभी संभव है जब सरकार उन पात्रों को चिह्नित कर चुकी हो और उनके बैंक खाते का ब्यौरा उपलब्ध हो ताकि रियायत की राशि सीधे उनके खाते में पहुँच सके। इसके अतिरिक्त यह भी एक तरीका हो सकता है कि निर्धन व्यक्तियों को स्मार्ट-चिप वाले कार्ड दे दिये जाएँ जिसमें रियायत के बराबर की आर्थिक मूल्य उपलब्ध हो जिससे कि वे बाजार भाव पर निर्धारित मात्रा में अनाज खरीद सकें।

अंततः सैद्धांतिक रूप से खाद्य सुरक्षा को, इस कहावत को चरितार्थ करनी चाहिए - एक गरीब व्यक्ति को मछली खाने के लिए नहीं देनी चाहिए, बल्कि उसे मछली पकड़ना सिखाना चाहिए ताकि फिर उसे मांगने की आवश्यकता न पड़े। भारत की समस्याओं का केंद्र बिंदु है, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना। भारत को इस दिशा में प्रयास करना है कि अधिकांश जनसंख्या को दीर्घकालिक खाद्य-सुरक्षा चक्र में लाया जा सके। इसके लिए उनकी सापेक्ष योग्यता के अनुसार उन्हें जीवनयापन का अवसर मिले और अपनी आय से इच्छानुसार खाद्यान्न खरीद कर खा सके। इसके लिए कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी करके आपूर्ति शृंखला को सुदृढ़ करने की जरूरत है जिससे कि 'न्यूनतम पोषण-पैकेज' उचित मूल्य पर निर्धन परिवारों के लिए हमेशा उपलब्ध हो सके। सरकारी रियायती खाद्यान्न उन दिव्यांगों, वरिष्ठ नागरिकों और इस प्रकार के लोग जो स्वयं जीविकोपार्जन करने में असमर्थ हैं, को उपलब्ध कराना चाहिए और ऐसा एक अपवाद के रूप में न होकर एक सामान्य नियम की तरह होना चाहिए।

खाद्य सुरक्षा को एक विस्तृत संदर्भ में देखना चाहिए जिसमें भूख, कुपोषण, अत्यंत निर्धनता, आपूर्ति शृंखला की कमियाँ, पात्रों की सही पहचान आदि सब कुछ सम्मिलित रूप से लोगों का जीवन स्तर ऊपर करने में सहायक हो और देश में 'अत्यंत-निर्धनता' वर्ग-श्रेणी समाप्त हो सके।

पीडीएस व खाद्य सब्सिडी (PDS & Food Subsidy)

सार्वजनिक-वितरण प्रणाली बीपीएल आबादी को समय पर और सस्ते दामों के जरिये खाद्य सुरक्षा दिलाने के लिए प्रयासरत है, क्योंकि बीपीएल तबका बाजार की कीमत पर अपने लिए अनाज नहीं खरीद सकता। इसमें सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन पर खाद्यान्न खरीदना, खाद्यान्न का भंडारण और उसकी देखभाल करना, उसका समय पर वितरण और आबादी के कमजोर तबके को उचित दामों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना शामिल है।



हालाँकि, पीडीएस में कई सारी कमियाँ हैं, जिनमें गड़बड़ियों से लेकर पूरे तंत्र से लक्षित लाभार्थियों को बाहर रखना तक शामिल है। पीडीएस अनाज खरीद, भंडारण और वितरण की भारी लागत को उठाता है। पीडीएस के कामकाज को दक्ष बनाने और इसके लागत को घटाने की गुंजाइश है। फिर भी पीडीएस पर सार्वजनिक खर्च या सब्सिडी का सिर्फ छोटा-सा हिस्सा लाभार्थियों तक पहुँचता है। अनाज व केरोसिन तेल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए डीबीटी (प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण) को लाने की भी बात है, आंध्र प्रदेश में यह प्रगति पर है। हालाँकि, डीबीटी को लागू करने में चुनौतियाँ हैं।

आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2020-21 में खाद्यान्न का उत्पादन 296.65 मिलियन टन रहा, जो वर्ष 2019-20 के 285.21 मिलियन टन से 11.4 मिलियन टन अधिक रहा फिर भी पीडीएस से इनकी आपूर्ति (Offtake) घटती गयी है। जो यह बताता है कि पीडीएस में अनाज की प्रचुर उपलब्धता और काफी महंगे अनाज के बावजूद, लोगों की पीडीएस से निर्भरता घटी है। ऐसा सिर्फ दो कारणों से हो सकता है-

- पीडीएस द्वारा अनाज समय पर उपलब्ध नहीं कराया जाना।
- खुले बाजार में उपलब्ध अनाजों की तुलना में पीडीएस द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे अनाज की गुणवत्ता का कमतर होना।

पीडीएस के अंतर्गत जो खाद्य प्रबंधन हैं, उनमें कुछ विसंगतियाँ हैं, जिन पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है-

- गेहूँ व चावल के आर्थिक मूल्य का प्रतिशत वितरण तेजी से बढ़ रहा है। खाद्यान्न का जमा मूल्य (न्यूनतम समर्थन मूल्य और राज्यों द्वारा प्रस्तावित बोनस का जोड़) गेहूँ व चावल के आर्थिक मूल्य का दो-तिहाई हो जाता

है। इस कारण भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) ने खाद्यान्न के आर्थिक मूल्य को बीते कुछ वर्षों में बढ़ाया है।

- मजदूरी, खाद, कीटनाशक दवाइयों और अन्य निवेशों के दाम बढ़ने से साल-दर-साल उत्पादन महंगा होता गया। इसने सरकार को न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने के लिए मजबूर किया।
- खाद्य सब्सिडी बिल में वृद्धि उस दर से निर्धारित होती है, जिस पर गेहूँ और चावल का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ता है। यह वृद्धि अनाज को रखने (उनकी खरीद, भंडारण और लक्षित घरों तक वितरण) के आर्थिक मूल्य के आधार पर निर्धारित होती है। खाद्य सब्सिडी बिल के बढ़ने के पीछे यह सबसे बड़ा कारण है। 2005-06 के 5 प्रतिशत से 2020-21 तक कृषि-जीडीपी के 20.2 प्रतिशत से भी अधिक खाद्य सब्सिडी बिल में वृद्धि का अनुमान है (सी.ए.सी.पी.)।

एक देश एक राशन कार्ड योजना

- 'एक देश, एक राशन कार्ड' (ओएनओआरसी) एक महत्वाकांक्षी योजना है और यह विभाग द्वारा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 (एनएफएसए) के तहत कवर किए जाने वाले सभी लाभार्थियों, चाहे वो देश में भौतिक रूप से कहीं भी रह रहे हों, को सब्सिडी वाली खाद्य-सुरक्षा संबंधी पात्रताओं का निर्बाध वितरण सुनिश्चित करने का एक प्रयास है।
- देश में टीपीडीएस संचालन के एंड-टू-एंड कम्प्यूटरीकरण के तहत पीडीएस सुधारों को अगले स्तर पर ले जाने के क्रम में, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग ने अप्रैल 2018 से 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एकीकृत प्रबंधन (आईएम-पीडीएस)' नामक एक केंद्रीय क्षेत्र की योजना के एक अभिन्न अंग के रूप में एनएफएसए के तहत राशन कार्डों की राष्ट्रव्यापी पोर्टेबिलिटी के लिए एक प्रौद्योगिकी संचालित सुधार का कार्यान्वयन शुरू किया था। यह योजना 127.30 करोड़ रुपये के कुल परिव्यय के साथ लागू की जा रही है और वर्तमान में, इस योजना की वैधता को कुल परियोजना लागत में वृद्धि किए बिना स्थायी वित्त समिति (एसएफसी) द्वारा 31.03.2022 तक बढ़ा दिया गया है।
- इसके अलावा, प्रवासियों को सशक्त बनाने की ओएनओआरसी की क्षमता के कारण, यह योजना अब "आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत प्रधानमंत्री के प्रौद्योगिकी संचालित प्रणालीगत सुधार" का भी हिस्सा बन गई है।

- गेहूँ व चावल की खरीद का खर्च मंडी-शुल्क व कर, टाट के बोरो की कीमतें, आढ़तिया दलाली, मंडी में मजदूरी, आगे बढ़ाने का शुल्क, अनाज को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने व इनका भंडारण करने का खर्च, ब्याज, प्रशासनिक शुल्क व अन्य दामों से तैयार होता है। इन दामों में से मंडी-शुल्क व कर कुल कीमत के 40 प्रतिशत से अधिक हो जाते हैं।

पीडीएस को चलाने का अवसर मूल्य भी बहुत ज्यादा हो गया है। खाद्य सब्सिडी की पूँजी का अन्य क्षेत्रों में बढ़ते इस्तेमाल के कारण सरकार कृषि क्षेत्र में पर्याप्त निवेश में मदद नहीं कर पाती है। यह इस क्षेत्र में क्षमता-निर्माण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है-

समय के साथ पीडीएस में कई कमियाँ आई हैं-

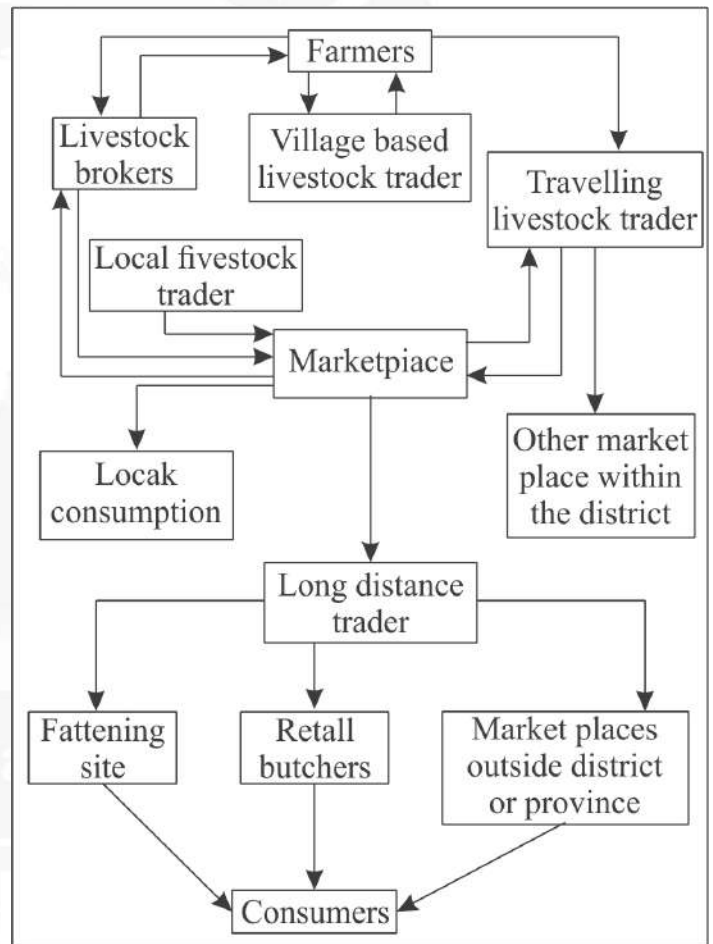
- उच्च परिचालन लागत।
- पूँजी रिसाव के कई स्तर।
- उच्च प्रशासनिक लागत।
- भ्रष्टाचार और कुप्रबंधन।

रियायतें यानी कि सब्सिडी कुछ समस्याएँ भी खड़ी करती है। पहले ये बाजार में विकृतियाँ लाती हैं जो घरेलू व बाहरी हितों के लिए रुकावट हैं। दूसरी, सरकारी खजाने का यह जबरदस्त दोहन करती हैं और बड़ी चुनौती तब आती है, जब घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय कीमतें उछाल मारती हैं और सरकार को न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अतः सरकार को उपर्युक्त समस्याओं का समुचित समाधान खोजने का प्रयास करना चाहिए।

कृषि विपणन प्रणाली

(Agricultural Marketing System)

कृषि विपणन प्रणाली में उन सारी विपणन संबंधी क्रियाओं तथा नीतियों को समाहित किया जाता है, जो किसानों द्वारा उत्पादित उत्पादों को बाजार तक पहुंचाने में सहायक होती है। इस प्रक्रिया में यह भी ध्यान रखा जाता है कि किसानों को उचित प्रतिफल मिले साथ ही, उपभोक्ताओं तक वस्तुएँ उचित कीमत पर पहुँचे। इस प्रकार, कृषि वस्तुओं का उचित तथा संतोषजनक विपणन कृषि विकास की आवश्यक तथा महत्वपूर्ण शर्त है।



भारत में कृषि विपणन की संरचना में कृषि विपणन, सहकारी समिति, परिवहन, प्रसंस्करण, भंडारण, प्रेडिंग आदि जैसी गतिविधियाँ शामिल हैं। ये सभी गतिविधियाँ प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में बहुत अहम भूमिका निभाती है तथा कृषि विपणन के अंतर्गत वनीय, बागानी और अन्य कृषि उत्पादों के भंडारण, प्रसंस्करण तथा विपणन के साथ-साथ कृषिगत मशीनरी का वितरण और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि वस्तुओं का आवागमन भी शामिल हैं। इसके अलावा कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु तकनीकी सहायता प्रदान करना और भारत में सहकारी

विपणन को प्रोत्साहन प्रदान करना भी कृषि विपणन गतिविधियों के अंतर्गत आता है। भारत में कृषि विपणन दोषपूर्ण है, जिससे कृषकों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। एक अच्छी कृषि विपणन प्रणाली में प्राथमिक उत्पादक को प्राप्त आय और अंतिम उपभोक्ता द्वारा प्रदत्त मूल्य के बीच अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही प्राथमिक उत्पादक का सर्वश्रेष्ठ प्रतिफल भी सुनिश्चित होना चाहिए।

भारत की कृषि विपणन प्रणाली की मुख्य समस्याएँ (Major Problems of Agricultural Marketing System of India)

- **भंडारण क्षमता की कमी (Lack of Storage Capacity)**- भारत में छोटे किसानों के पास अच्छी भंडारण सुविधा न होने से, किसान कृषि उपज को मिट्टी के बर्तनों तथा कच्चे कोठों में भंडारण करते हैं जिससे वह प्रायः जल्द ही सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप वे अपने उत्पादन का भंडारण लंबे समय तक नहीं कर पाते हैं और उत्पादन के तुरंत बाद ही जब बाजार में कीमत कम होती है तभी उन्हें अपना उत्पाद बेचना पड़ता है।
 - **धारण क्षमता का अभाव (Lack of Carrying Capacity)**- भारत में अधिकांश किसान लघु और सीमांत प्रकार के हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति काफी कमजोर है, जिसके कारण इनकी धारण क्षमता कम होती है। ये धन के लिए साहूकारों पर निर्भर रहते हैं जिसके कारण ये उपज को नहीं रख पाते हैं।
 - **सूचना की कमी (Lack of Information)**- किसानों को विभिन्न मंडियों में प्रचलित कीमतों की सही समय पर सूचना उपलब्ध न होने के कारण किसान उपर्युक्त निर्णय नहीं ले पाते तथा व्यापारी उन्हें जो भी मूल्य देता है वे उसे स्वीकार कर लेते हैं।
 - **मंडियों का अभाव (Lack of Mandis)**- भारत में मंडियों की संख्या पर्याप्त नहीं है। भारत में लगभग 28,994 लघु और वृहद मंडियाँ हैं, जिनमें से ग्रामीण मुख्य भौगोलिक क्षेत्र में लगभग 7557 मंडियाँ हैं। इन मंडियों में 2428 मुख्य बाजार से संबंधित तथा 5129 उप-बाजार के अंतर्गत प्रबंधित होती हैं। भारत में कृषि वस्तुओं के विपणन में औसतन रूप में 5 से 6 बिचौलिए देखने को मिलते हैं।
 - **मूलभूत सुविधाओं का अभाव (Lack of Infrastructure)**- कई गाँव में आज भी मूलभूत सुविधाएँ जैसे परिवहन, वेयर हाउस आदि सेवाओं का अभाव है। इसके अलावा अधिकांश सड़कें कच्ची हैं जो मोटर वाहनों के लिए ठीक नहीं है। यातायात की कमी के कारण उत्पाद को बाजार तक पहुँचाने की लागत बढ़ जाती है एवं कोल्ड स्टोरेज, भंडारण आदि की कमी के कारण कृषि फसल को नुकसान पहुँचता है।
 - **कृषि बाजार मूल्य निर्धारण नीति में दोष (Defect in Price Valuation Policy of Agricultural Market)**- कृषि बाजार में कृषि उपज का मूल्य निर्धारण करने की जो व्यवस्था है, उसमें काफी कमियाँ हैं। उदाहरणस्वरूप कृषि उत्पाद की बिक्री का भली-भाँति न होना, स्थानीय बाजार के मध्यस्थों द्वारा आपस में मिलकर कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारित करना।
- उपर्युक्त के अलावा निम्न समस्याएँ भी अतिरिक्त रूप से बनी हुई हैं-**
- कृषि मंडियों में ग्रेडिंग सुविधाओं की कमी के कारण किसानों के फसलों की ग्रेडिंग नहीं हो पाती।
 - आदतियों द्वारा किसानों से कमीशन की मांग, अनाज तौलने में हेरा-फेरी आदि अनेक तरीकों से शोषण किया जाता है।
 - मंडी प्रशासन द्वारा लगाए जाने वाले विभिन्न कर, जैसे कि विपणन शुल्क, ग्रामीण विकास शुल्क, निराश्रित शुल्क, क्रय कर आदि से किसानों पर बोझ बढ़ता जाता है।

- इसके अलावा यदि एक ही मंडी में किसी वस्तु का कई बार लेन देन होता है, तो हर बार विपणन शुल्क लगाया जाता है। इसी प्रकार किसी एक ही राज्य की किसी एक मंडी से दूसरी मंडी में माल ले जाया जाता है तो पुनः विपणन शुल्क लगाया जाता है। इस प्रक्रिया को बाजार शुल्क पर एकाधिक बिन्दु लेवी (Multiple Point Levy of Market Fees) कहते हैं। इससे कृषि वस्तुएँ मंहगी हो जाती हैं तथा राष्ट्रीय स्तर का बाजार नहीं बन पाता है। e-NAM में इस कमी को दूर करने की कोशिश की गई है। इसमें बाजार शुल्क पर एकल बिन्दु लेवी (Single Point Levy of Market Fees) को लागू किया गया है।

आजादी के बाद भारत सरकार ने कृषि विपणन की प्रणाली को बेहतर बनाने के लिए कई तरह के उपायों को अपनाया है, विनियमित बाजारों की स्थापना करना, गोदामों का निर्माण करना, उपज श्रेणी निर्धारण व मानकीकरण का प्रावधान, बाट-माप का मानकीकरण, ऑल इंडिया रेडियो पर कृषि फसलों की बाजार में कीमतों का दैनिक प्रसारण, परिवहन सुविधाओं में सुधार आदि महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। हालाँकि ऐसे अनेक उपाय किये गये हैं जिनके बारे में आगे हम चर्चा करेंगे।

राज्य कृषि उत्पादन बाजार समिति (State Agricultural Production Market Committee)

कृषि राज्य सूची का विषय है इसीलिए कृषि वस्तुओं के विपणन का कार्य राज्य स्तरीय संस्थाओं के प्रशासन के अधीन संचालित होता है। इन संस्थाओं को कृषि उत्पादन बाजार समिति कहा जाता है। इनकी स्थापना संबंधित राज्य के 'कृषि उत्पादन बाजार समिति अधिनियम' (APMC Act) के अंतर्गत की जा सकती है। भारत में कृषि उत्पादन बाजार समिति अधिनियम की कार्य प्रणाली को देखते हुए यह कहा जाता है कि जहाँ एक ओर किसानों को उनके उत्पादन का सही मूल्य नहीं मिल पा रहा है तो वहीं दूसरी ओर उपभोक्ताओं को कृषि वस्तुओं के लिये ऊँची कीमत देनी पड़ रही है। यह ध्यान देने योग्य है कि 'कृषि उत्पादन बाजार समिति अधिनियम' लाने का उद्देश्य यह था कि किसानों के माल का लेन-देन एक नियामकीय वातावरण में हो ताकि उनका शोषण न हो, लेकिन इस एक्ट के व्यवहारिक क्रियान्वयन का परिणाम कुछ इस तरह से रहा कि, किसानों के शोषण को बढ़ावा मिला तथा कुछ अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जैसे कि- कृषि वस्तुओं के विपणन में विलंब होना, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए लागतों का ऊँचा हो जाना, खाद्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि आदि।

राज्य कृषि उत्पादन बाजार समिति अधिनियम (State APMC Act) से जुड़ी कुछ मुख्य समस्याएँ-

- यह एक्ट इस बात का प्रावधान करता है कि कृषि वस्तुओं की प्रथम बिक्री कृषि उत्पादन बाजार समिति मंडियों में किया जाना जरूरी है। इस प्रावधान के कारण कृषि उत्पादन बाजार समिति मंडियों का विपणन तंत्र पर एकाधिकार प्राप्त (Monopolistic) हो जाता है।
- विनियामक का कार्य भी मार्केट की शक्तियों द्वारा ही किया जाता है अतः उनके स्वार्थ विनियामक कार्य को कमजोर करते हैं।
- यह एक्ट निजी क्षेत्र में मंडियों की स्थापना करने की अनुमति नहीं देता।
- नये व्यापारियों को कृषि उत्पादन एवं बाजार समिति द्वारा आसानी से लाइसेंस नहीं दिये जाते हैं तथा यह शर्त भी लगायी जाती है कि मंडी क्षेत्र में संबंधित व्यक्ति की दुकान हो।
- लाइसेंस जारी होने की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं होती है और आवेदन पत्रों पर लम्बे समय तक विचार नहीं किया जाता है, इस प्रकार मंडी क्षेत्र में प्रतियोगी वातावरण का निर्माण नहीं हो पाता है।

- यह एक्ट प्रत्यक्ष विपणन को अनुमति नहीं देता है, इससे किसानों और उपभोक्ताओं दोनों को हानि होती है।
 - दक्षिणी कोरिया में प्रत्यक्ष विपणन को अनुमति देने के बाद उपभोक्ताओं को कृषि वस्तुओं के लिए पहले की तुलना में 20-30% कम कीमत देनी पड़ रही है जबकि किसानों को 10-20% ऊंची कीमत मिल रही है।
 - भारत में किये गये एक अनुसंधान (V.P. गांधी और अन्य) के अनुसार यदि फल और सब्जियों में प्रत्यक्ष विपणन को लागू किया जाता है तो किसानों को उपभोक्ताओं द्वारा दी जाने वाली कीमत का 88% से 95.4% तक भाग मिल सकता है।
- यह एक्ट संविदा कृषि को अनुमति नहीं देता है, जिसके कारण खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से जुड़ी हुई विनिर्माता इकाइयों को सही गुणवत्ता वाला कच्चा माल उचित कीमतों पर तथा सही समय पर नहीं मिल पाता है। इससे इनकी सप्लाई चैन लम्बी एवं विखण्डित हो जाती है, जो उत्पादन की लागतों को उच्च कर देती है।
- 'कृषि उत्पादन एवं बाजार समिति' मंडियों में व्यापारियों द्वारा तौल, बट्टेदारी, गरदा आदि के आधार पर किसानों से वसूल की जाती है, जिससे किसानों का शोषण होता है।
- 'कृषि उत्पादन एवं बाजार समिति एक्ट' में कृषि अनुवर्ती बाजारों (RPMs - Rural Periodic Markets) के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है जबकि भारत में इनकी लगभग 20,000 संख्या है, इन्हें हाट बाजार भी कहा जाता है।
- 'कृषि उत्पादन बाजार समिति एक्ट' के आधार पर मंडियों में प्रशासन द्वारा कई प्रकार के शुल्क व कर वसूले जाते हैं जैसे कि विपणन शुल्क, ग्रामीण विकास शुल्क, निराश्रित शुल्क, क्रय कर आदि। इन सबका भार किसानों पर पड़ता है।
- कई कृषि उत्पादन एवं बाजार समिति मंडियों में भीड़-भाड़ का माहौल रहता है, जिसके कारण किसान समय पर अपना माल नहीं बेच पाते हैं। इसके अलावा विभिन्न सुविधाओं की कमी देखने को मिलती है जबकि उनके नाम पर शुल्क वसूले जाते हैं।

इस प्रकार भारत में राज्य कृषि उत्पादन बाजार समिति अधिनियम की कार्य प्रणाली संतोषप्रद नहीं रही।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2003 में केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों के अनुकरण के लिए एक मॉडल 'कृषि उत्पादन एवं बाजार समिति एक्ट' बनाया गया लेकिन राज्यों द्वारा इस एक्ट को लागू करने में कोई विशेष रूचि का प्रदर्शन नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार द्वारा नया कानून बनाया गया, जिसे कृषि उत्पादन और पशुधन विपणन (संवर्द्धन और सुविधा) अधिनियम 2017 (APLMA Act) के नाम से संबोधित किया गया है।

कृषि उत्पादन और पशुधन विपणन (संवर्द्धन और सुविधा) अधिनियम 2017 (APLMAgricultural Produce and Livestock Marketing Act-2017)

राज्य कृषि उत्पादन बाजार समिति (State APMC Act) की विभिन्न कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा नये एक्ट के प्रारूप पर विचार किया गया, इस संदर्भ में कृषि मंत्रालय के अधीन अगस्त 2016 में अशोक दलवाई की अध्यक्षता में एक समिति द्वारा इस एक्ट का प्रारूप तैयार किया गया। इस संदर्भ में नीति आयोग व राज्य सरकार के परामर्श भी महत्वपूर्ण रहे हैं। इसे 2017 में लागू किया गया है, हालाँकि ये राज्यों पर बाध्यकारी नहीं है।

APLM की आवश्यकता

- मध्यस्थों को समाप्त करने हेतु।
- लाइवस्टॉक को शामिल करने हेतु।

- इलेक्ट्रॉनिक कृषि को प्रोत्साहित करने हेतु।
- कृषि व्यापार को आसान व किसान हितैषी बनाने हेतु।

मुख्य विशेषताएं

- अधिसूचित क्षेत्र की अवधारणा को समाप्त कर दिया गया।
- Agricultural Produce Market Committee (APMC) का पूर्ण प्रजातंत्रीकरण किया गया जिससे उपभोक्ता, उत्पादक किसानों से सीधे माल खरीद सकते हैं।
- किसान व उपभोक्ताओं के बीच आने वाले मध्यस्थों को इस अधिनियम द्वारा समाप्त किए जाने का प्रावधान है।
- इस अधिनियम के माध्यम से एक बिन्दु लेवी (Single Point Levy of Market Price) को लागू करने की बात कही गई है जिससे अलग-अलग मंडियों में लगने वाली फीस व लाइसेंस को समाप्त कर दिया जाएगा।
- इस अधिनियम में ई-व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कहा गया है।
- पूरे राज्य में एकल व्यापार लाइसेंस होगा ताकि किसानों को यदि अलग-अलग मंडियों में व्यापार करना है तो उसे हर मंडी के लिए अलग-अलग लाइसेंस लेने व फीस देने की जरूरत न पड़े।
- इस अधिनियम द्वारा कोल्ड स्टोरेज तथा वेयर हाउस आदि को भी बाजार क्षेत्र (Market Place) घोषित कर दिया जाएगा। राष्ट्रीय स्तर के विशेष कमोडिटी बाजार (Special Commodity Markets) को स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। वेयरहाउस साइलो (Warehouse Silos) आदि को बाजार की परिभाषा में लाने के लिए कहा गया है ताकि किसानों के पास व्यापार के लिए अधिक विकल्पों की उपस्थिति हो। इस प्रकार निजी क्षेत्र की मंडियों को स्थापित किया जा सकता है।
- विपणन शुल्क व कमीशन की ऊपरी सीमाओं को निर्धारित किया गया है।

मूल्यांकन

इस अधिनियम में सरकार द्वारा कृषकों की आय बढ़ाने हेतु कई कदम उठाए गए हैं, जैसे एकल लाइसेंस प्रणाली, मध्यस्थों को समाप्त करना, पशुधन को कृषि विपणन के दायरे में लाना आदि। इस अधिनियम को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही राज्य सरकारों को यह विवेकाधिकार है कि वे इसे पूर्णतः या अंशतः लागू कर सकते हैं। इस प्रकार यह किसानों की आय को 2022 तक दुगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक सार्थक कदम है।

अनुबंध कृषि/संविदा कृषि (Contract Farming)

अनुबंध कृषि, खरीददार और किसानों के मध्य हुआ एक समझौता है जिसमें अनुबंध कृषि के तहत, खरीददार (जैसे- खाद्य प्रसंस्करण, इकाइयाँ और निर्यातक) और उत्पादक (किसान) के बीच हुए फसल-पूर्व समझौते के आधार पर कृषि उत्पादन (पशुधन और मुर्गीपालन सहित) किया जाता है। इसमें कृषि उत्पादों के उत्पादन और विपणन के लिये कुछ मानक स्थापित किए जाते हैं जिसके तहत किसान किसी विशेष कृषि उत्पाद की उपयुक्त मात्रा खरीददारों को देने के लिए सहमति व्यक्त करते हैं और खरीददार उस उत्पाद को खरीदने के लिए अपनी स्वीकृति देता है। प्रायः देखने में आता है कि पर्याप्त खरीददार न मिलने पर किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसका सबसे बड़ा कारण होता है, किसान और बाजार के बीच तालमेल की कमी। किसानों को भी उनके उत्पाद का उचित मूल्य दिलाने के लिए अनुबंध कृषि की जरूरत महसूस की गयी।

अनुबंध कृषि का उद्देश्य फसल उत्पाद के लिए बाजार तैयार करना, कृषि के क्षेत्र

में पूंजी निवेश को बढ़ावा देना है। इससे कृषि उत्पाद के कारोबार में लगी कई कॉर्पोरेट कंपनियों को कृषि प्रणाली को सुविधाजनक बनाने में आसानी रहती है, उन्हें अपनी पसंद का कच्चा माल तय समय और कम कीमत पर मिल जाता है तथा बिचौलियों का अंत होता है। इस प्रकार के अनुबंध से किसानों के लिए बाजार में उनकी उपज की मांग एवं इसके मूल्यों में उतार-चढ़ाव का जोखिम कम हो जाता है और इसी प्रकार कंपनियों के लिए कच्चे माल की अनुपलब्धता का जोखिम कम हो जाता है।

अनुबंध कृषि की चुनौतियाँ (Challenges of Contract Farming)

- **राज्य की अनिच्छा**– राजस्व हानि के भय से, राज्य सरकारें इन सुधारों को आगे बढ़ाने के प्रति अनिच्छुक रही हैं। अनुबंध कृषि समवर्ती सूची का विषय है जबकि कृषि राज्य सूची का विषय है। ऐसी स्थिति में राजस्व की हानि के भय की आशंका से अनेक राज्य इसके प्रति सकारात्मक रवैया नहीं रखते। अतः सभी राज्यों को इसके लिए सहमत कर पाना अपने-आप में एक बड़ी चुनौती है।
- **कर उत्पादों पर स्टॉक होल्डिंग सीमाएं**– आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत अनुबंधित उत्पादन पर स्टॉकहोल्डिंग सीमाएँ प्रतिबंधित हैं। ये क्रेताओं को अनुबंध के प्रति हतोत्साहित करती हैं।
- **कानूनों में समानता या एकरूपता का अभाव**– उत्पाद की किस्मों, परिस्थितियों आदि के संदर्भ में, विभिन्न राज्यों के कानूनों में समानता या एकरूपता का अभाव है। यह एकरूपता अनुबंध कृषि की अनुमति हेतु आवश्यक है।
- **क्षेत्रीय असमानता को बढ़ावा**– वर्तमान में यह कृषि क्षेत्र में विकसित राज्यों (पंजाब, तमिलनाडु आदि) में व्यवहार में लाया गया है। वहीं अधिकांशतः छोटे और सीमांत किसानों की आबादी वाले राज्य इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
- **आपूर्ति पक्ष से संबंधित मुद्दे**– लेन-देन और विपणन की उच्च लागतों के कारण खरीददारों को बड़ी संख्या में छोटे और सीमांत किसानों (जनगणना 2011 के अनुसार भारत में कृषि-जोत का औसत आकार 1.1 हेक्टेयर था) के साथ कृषि अनुबंध के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इस कारण बड़े किसानों को प्राथमिकता दी जा रही है जिससे सामाजिक-आर्थिक विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।
- **पर्यावरण अनुकूल कृषि का न होना**– यह कृषि की एक पूंजी-सघन और कम संधारणीय पद्धति है चूंकि यह उर्वरकों और कीटनाशकों के अधिक उपयोग को बढ़ावा देती है। ये प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण, मानव और पशुओं पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।
- **एकल कृषि (मोनोकल्चर फार्मिंग) को प्रोत्साहन**– यह केवल भूमि की उर्वरता पर ही प्रभाव नहीं डालेगा, बल्कि खाद्य सुरक्षा और खाद्यान्नों के आयात के लिए भी संकट उत्पन्न करेगा।
- **क्रय एकाधिकार**– इसके अंतर्गत, सामान्यतः अनुबंध कंपनियों द्वारा विभेदित (ऐसा कृषि उत्पाद जिसे अन्य प्रतिस्पर्द्धी उत्पादों से अलग किया जा सके) फसलों को उगाने के लिए कृषकों के साथ अनुबंध करती हैं। यह अनुबंध फर्म को उनके उत्पाद के एकमात्र क्रेता और कृषकों को, बाजार में प्रचलित मूल्य पर अपने उत्पाद की बिक्री करने के लिए बाध्य उत्पादक (प्राइस-टेकर्स) के रूप में परिवर्तित कर देता है। अनुबंध फर्म कृषकों को उनके उत्पाद की बाजार में कम कीमत बताकर इस स्थिति का लाभ उठा सकती हैं।
- **सूचना असममितता**– अनुबंध करने वाली फर्मों के पास उत्पादकता और

भूमि की गुणवत्ता के संबंध में संपूर्ण सूचना उपलब्ध नहीं होती है। इससे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जहाँ कृषक निम्न-गुणवत्ता वाली फसलों का उत्पादन करते हैं। दूसरी ओर कृषक कभी-कभी उत्पाद की मात्रा एवं गुणवत्ता या मूल्य परिवर्तन के प्रभाव जैसे अनुबंध में उल्लिखित विनिर्देशों को नहीं समझ पाते हैं। इसके साथ ही अनुबंध के अनजाने में किये गए उल्लंघन के कारण कृषक क्रेता के दंड के पात्र बन जाते हैं।

- पूर्व निर्धारित कीमतें, किसानों को उपज के लिए बाजार में प्रचलित उच्च मूल्यों के लाभों से वंचित कर सकती हैं।
- अनुबंध कृषि से प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन की आशंका बनी रहती है।

महत्त्व

- **कृषि में निजी भागीदारी**– यह कृषि में निजी क्षेत्र के निवेश को प्रोत्साहित करता है ताकि नई कृषि तकनीकों, अवसंरचना के विकास आदि को बढ़ावा दिया जा सके।
- **किसानों की उत्पादकता में सुधार**– यह बेहतर आगतों, वैज्ञानिक विधियों और ऋण सुविधाओं तक पहुँच में सुधार करके कृषि क्षेत्र की उत्पादकता और दक्षता को बढ़ाती है। इससे किसानों की आय में वृद्धि, रोजगार के नए अवसर और बड़े पैमाने पर खाद्य सुरक्षा को प्रोत्साहन मिलता है।
- यह कृषि को एक संगठित गतिविधि का स्वरूप प्रदान करती है तथा उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार लाने में सहायक है।
- **फसल कटाई के पश्चात् क्षति हेतु बीमा**– यदि फसल कटाई के पश्चात् कोई क्षति होती है, तो पूर्व निर्धारित कीमतें उस क्षति की भरपाई करने का अवसर प्रदान करती हैं।
- **निर्यात में वृद्धि**– यह किसानों को खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग हेतु आवश्यक फसलों के उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करती है। साथ ही, यह भारतीय किसानों को वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं (विशेष रूप से उच्च मूल्य वाले बागवानी उत्पाद के मामले में) से जोड़ती हैं। यह खाद्यान्न अपव्यय को भी उल्लेखनीय ढंग से कम करती है।
- **उपभोक्ता को लाभ**– विपणन दक्षता में वृद्धि, मध्यस्थों का उन्मूलन, विनियामक अनुपालन में कमी, उत्पादन में लायी जाने वाली कृत्रिम कमी आदि को उल्लेखनीय रूप से कम किया जा सकता है। साथ ही, खाद्य कीमतों से संबंधित मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया जा सकता है।

मॉडल संविदा कृषि अधिनियम, 2018 (Model Contract Farming Act, 2018)

किसानों की आय बढ़ाने और उपज की बेहतर कीमत दिलाने के लिए केंद्र सरकार ने अनुबंध (संविदा) कृषि पर 'मॉडल संविदा कृषि अधिनियम, 2018' पारित किया है। इसका मुख्य उद्देश्य फलों और सब्जियों का उत्पादन करने वाले किसानों का कृषि प्रसंस्करण इकाइयों से सीधे तौर पर (बिचौलियों के बिना) एकीकृत करना है, ताकि उन्हें बेहतर मूल्य मिल सकें और इसके साथ ही फसल की कटाई के बाद होने वाले नुकसान को भी कम किया जा सके।

इस अधिनियम की विशेषताएँ

- संविदा कृषि के उत्पादों के मूल्य निर्धारण से पूर्व, वर्तमान और आगामी उपज को समझौते में शामिल किया जाएगा।
- किसानों और संबंधित कंपनी के बीच होने वाले समझौते में प्रशासन तीसरा पक्ष होगा।
- संविदा कृषि में कृषि भूमि पर कोई स्थायी निर्माण करना संभव नहीं होगा।
- छोटे व सीमांत किसानों को एकजुट करने को किसान उत्पादक, संगठनों, कंपनियों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

- संविदा कृषि से संबंधित विवादों से त्वरित निपटान के लिए सुगम और सामान्य विवाद निपटान तंत्र का गठन किया जाएगा।
- नीति आयोग द्वारा तैयार किए गए, इस प्रस्तावित कानून में सभी कृषि जिनसे को शामिल किया जाएगा।
- संविदा कृषि के उत्पादों पर फसल बीमा के प्रावधान लागू किए जाएंगे।
- सभी वस्तुओं के लिये मूल्यशृंखला का निर्माण करने में भी सहायक होगा।
- उत्पादन में सुधार हेतु सहायता करने के बहाने खरीददार उत्पादक की भूमि पर किसी भी प्रकार की स्थायी संरचना का निर्माण नहीं कर सकेगा।
- यह किसानों के लिए कुशल बाजार संरचना तैयार करने और विपणन दक्षता बढ़ाने में मदद करेगा तथा उत्पादन में विविधता से जुड़े जोखिम को भी कम करेगा।

सुझाव

- मॉडल अधिनियम, अनुबंध कृषि को बढ़ावा देने की दिशा में एक उपर्युक्त कदम है। सरकार को कृषकों और क्रेताओं के मध्य प्रतियोगिता को बढ़ावा देकर और सूचना असममिता को समाप्त कर एक सक्षमकारी परिवेश प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जब तक ऐसा परिवेश प्रदान नहीं किया जाता है तब तक नया मॉडल अधिनियम प्रभावी रूप से अनुबंध कृषि को बढ़ावा देने में असमर्थ है।
- सरकार को कृषकों और क्रेताओं दोनों के लिए बाजार-आधारित प्रोत्साहन सृजित करना चाहिए। इसे संपूर्ण देश में स्पॉट बाजारों और मंडियों के साथ कृषकों के संपर्क में सुधार करना चाहिए।
- सरकार को कृषकों और अनुबंध फर्मों का एक सूचना भंडार बनाना चाहिए। यह भंडार भूमि उपलब्धता, डिफॉल्ट रेट और निष्पादन मानकों के संबंध में कृषकों या कृषक उत्पादक संगठनों के बारे में विवरण प्रदान कर सकता है। यह अनुबंधों में शामिल होने से पूर्व एक-दूसरे का मूल्यांकन करने में कृषकों और प्रायोजकों की सहायता करेगा।
- इसके अतिरिक्त सरकार फसलों के लिए मानकों की स्थापना और प्रवर्तन की सुविधा प्रदान कर सकती है। यह अनुबंधित फसल से संबंधित स्पष्ट अपेक्षाएं निर्धारित करेगा। सरकार कृषकों को शिक्षित कर सकती है और उन्हें अनुबंध खेती एवं मॉडल अनुबंधों के बारे में अधिक जागरूक बना सकती है।

कृषकों के हित के संरक्षण हेतु उठाए गए कदम (Steps Taken for the Protection of Farmer Interest)

कृषकों के हित को संरक्षित करने के लिए तथा उनके उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं, जो इस प्रकार हैं-

- **एगमार्क (AGMARK)**- कृषि वस्तुओं की गुणवत्ता को प्रमाणित करने के लिए 1937 में एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस (ग्रेडिंग एण्ड मार्केटिंग) एक्ट पारित हुआ, जिसके अंतर्गत उन उत्पादों पर जो उच्च गुणवत्ता के हैं तथा जिनकी गुणवत्ता सरकार द्वारा प्रमाणित है एगमार्क की मुहर (सील) लगा दी जाती है।
- **नियमित बाजार (Regulated Markets)**- देश में कृषि वस्तुओं का संगठित विपणन नियमित बाजारों के नेटवर्क के माध्यम से प्रवर्तित होता है। अधिकांश राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस मार्केटिंग कमेटी एक्ट (APMC Act) है जो कृषि वस्तुओं के उत्पाद के विपणन को नियमित करता है। कृषि वस्तुओं के विपणन की दिशा में नियमित बाजार सबसे प्रभावी कदम हैं। नियमित बाजार राज्य या स्थानीय सरकार द्वारा बनाये गये कानून के अंतर्गत स्थापित बाजार हैं जहां व्यापारिक व्यवहार कुछ निश्चित समय तथा नियंत्रणों के अंतर्गत होते हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य

बाजार में प्रचलित अस्वस्थ, कपटपूर्ण तथा अवांछित व्यवहारों को समाप्त करना है जिससे कृषक को अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिल सके। ये बाजार समिति द्वारा प्रबन्धित होते हैं। इस प्रबन्ध समिति में राज्य सरकार (स्थानीय सरकार), फसल उगाने वाले किसान, व्यापारी तथा कमीशन एजेंट के प्रतिनिधि रहते हैं। इस समिति का गठन सरकार द्वारा एक निश्चित समय के लिए किया जाता है। 1951 में नियमित बाजारों की संख्या लगभग 286 थी, जबकि 2019-20 में इनकी संख्या बढ़कर 7190 से अधिक हो गयी है। नियमित बाजार प्रायः उन क्षेत्रों में अधिक खोले जाते हैं जहां कपास, तंबाकू (गैर-परम्परागत फसलें) जैसी वाणिज्यिक फसलें बोयी जाती हैं तथा साप्ताहिक बाजारों तथा हाट में बेची जाती हैं।

- **सहकारी विपणन समितियां (Co-operative Marketing Committee)**- कृषि विपणन व्यवस्था में सहकारी विपणन समितियां अत्यंत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण कड़ी हैं। दस या दस से अधिक किसान मिलकर अपने उत्पादनों को बेचने के उद्देश्य से सहकारी विपणन समितियों या बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों का निर्माण करते हैं। 1954 से पहले सहकारी साख समितियां तथा सहकारी विपणन समितियां अलग-अलग बनायी जाती थीं, 1954 के बाद बहुउद्देश्यीय समितियों का गठन शुरू हुआ। इसके अंतर्गत सभी सदस्य अपना अतिरिक्त उत्पाद समिति को बेचने के लिए सहमत होते हैं, जब सदस्य अपना सामान समिति को देते हैं तो उन्हें कुछ अग्रिम रकम प्राप्त हो जाती है। समिति सदस्यों तथा गैर सदस्यों के अनाज अपने पास इकट्ठा करती है इससे स्पष्ट है कि यदि बाजार में मूल्य बहुत नीचा है तो वह कुछ दिन प्रतीक्षा करके उत्पादन बेचने की व्यवस्था करती हैं। उत्पादन के बिकने के बाद सदस्यों तथा गैर सदस्यों को शेष राशि का भुगतान कर दिया जाता है। व्ययों को अलग करने के बाद यदि समिति को लाभ होता है तो वह लाभांश के रूप में सदस्यों के बीच बाँट दिया जाता है। सरकारी विपणन समितियों के कारण जहाँ एक ओर विपणन व्यवस्था में पाये जाने वाले बिचौलियों की समाप्ति हो जाती है, तो वहीं दूसरी ओर किसानों को समय पर अपने उत्पादन के बदले अग्रिम भुगतान प्राप्त हो जाता है, यह समितियां कृषकों के संघ की भूमिका निभाती हैं जिससे उन्हें अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिल सके। विपणन समितियों के अतिरिक्त सहकारी प्रसंस्करण समाज (Co-operative Processing Societies) भी बनाया जा सकता है जिनसे कृषि विपणन में मदद मिल सकती है।
- **भंडारण तथा वेयर हाउसिंग सुविधा (Storage and Warehousing)**- मांग के अनुसार पूर्ति को नियंत्रित करने, मूल्य के स्थिरीकरण तथा बफर स्टॉक कायम रखने की दिशा में विपणन व्यवस्था में भंडारण तथा वेयर हाउसिंग एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वेयर हाउस एक प्रकार का गोदाम होता है जहाँ उत्पादन के स्थान से बाजार या उपभोग के स्थान पर जाने के दौरान सामानों का भंडारण किया जाता है। इस समय सार्वजनिक क्षेत्र में तीन संस्थाएँ हैं जो भंडारण तथा वेयर हाउसिंग में लगी हुई हैं। ये हैं-
 - भारतीय खाद्य निगम (FCI)
 - केन्द्रीय वेयर हाउसिंग निगम (CWC)
 - वर्ष 2020 में कृषि वेयर हाउसिंग बाजार 145.82 बिलियन रुपये मूल्य का था जो वर्ष 2024 तक 365.75 बिलियन रुपये तक पहुँचने की संभावना है। वर्ष 2020 तक भारत में कुल 3,34,567 मिलियन टन की कुल भंडारण क्षमता के 19 रेलसाइड वेयर हाउस का प्रचालन जारी है।
- **भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (NAFED- National Agricultural Co-operative Marketing Federation of India)**- यह राष्ट्रीय स्तर पर एक शीर्ष सहकारी संगठन है। इसका प्रमुख कार्य चुनी हुई कृषि वस्तुओं को प्राप्त करना, वितरण, निर्यात तथा आयात करना है। यह

कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा निर्यात को प्रवर्तित करता है। यह प्याज, दाल, मिर्च, अदरक, लहसुन आदि कृषि वस्तुओं को अतिरिक्त वाले क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों में ले जाने में मदद करता है। इसकी स्थापना 2 अक्टूबर, 1958 को हुई। यह दाल तथा तिलहन के समर्थित मूल्य प्रक्रिया (Price Support Operation) तथा बागवानी मर्दों जैसे माल्टा, प्याज, टमाटर, अंगूर, काली पीपल, लाल मिर्च आदि के संबंध में 'बाजार हस्तक्षेपक क्रिया' (Market Intervention Operation) में एक केन्द्रीय संस्था (Nodal Agency) के रूप में कार्य करता है। NAFED ने मूल्य स्तर के स्थिरीकरण तथा बाजार में दोनों ही उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

- **राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC- National Co-operative Development Corporation)** - इसकी स्थापना 1963 में हुई। इसका मुख्य उद्देश्य सहकारी समितियों के माध्यम से कृषि वस्तुओं तथा अन्य कुछ चयनित वस्तुओं के उत्पादन, विधायन, भंडारण तथा विपणन सम्बन्धी कार्यक्रमों को आयोजित तथा प्रवर्तित करना है।
- **भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिषद (TRIFED- Tribal Co-operative Marketing Development Federation of India Limited)** - इसकी स्थापना 1987 में जनजातियों को निजी व्यापारियों के शोषण से बचाने तथा उनके द्वारा उत्पादित अथवा निर्मित वस्तुओं के उचित मूल्य दिलाने के उद्देश्य से की गयी।
- **राज्यों द्वारा खाद्यान्नों का व्यापार (trade of food grains by the states)** - इसके संबंध में निम्नांकित तथ्य उल्लेखनीय हैं-
 - खाद्यान्न जाँच समिति (1957) ने यह संस्तुति की कि सरकार को धीरे-धीरे नियोजित रूप से खाद्यान्नों के थोक व्यापार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।
 - 1957 में अशोक मेहता समिति ने यह सुझाव दिया कि 100 करोड़ रुपये की पूँजी से भारत सरकार एक खाद्यान्न स्थिरीकरण संगठन स्थापित करे। फलतः 100 करोड़ रुपये पूँजी से 1 जनवरी, 1965 को भारतीय खाद्य निगम (FCI) की स्थापना की गयी। जिससे सरकार खाद्यान्नों का आंशिक व्यापार अपने हाथ में ले सके। भारतीय खाद्य निगम खाद्यान्नों के क्रय तथा विक्रय की सरकार की एकमात्र एजेंसी है। सम्पूर्ण विचारधारा इस बात पर आधारित है कि यदि सरकार खलिहान से ही एक वैधानिक मूल्य पर खाद्यान्नों का क्रय कर ले तो यह बाजार में खाद्यान्नों के मूल्य को पर्याप्त रूप से प्रभावित कर सकती है तथा किसानों को प्रोत्साहित कर सकती है।
- **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR)** - भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, खाद्य सुरक्षा को पुष्टा करके देश में वृद्धि एवं विकास की दिशा को सुनिश्चित कर रहा है। इस वर्ष अनाज की पैदावार के नए रिकॉर्ड स्थापित होते दिख रहे हैं। खरीफ वर्ष 2020-21 के अंतर्गत उत्पादन 144.52 मिलियन टन रहा है जो कि पिछले वर्ष 2019-20 में 1143.4 मिलियन टन से अधिक है। वहीं दूसरी ओर, कुपोषण और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों से जूझने के लिए आयोग, जैव सुदृढ़ीकरण, स्वास्थ्यवर्द्धक खाद्यान्न और कृषि को बदलती जलवायु से सुरक्षित करने जैसे क्षेत्रों पर भी काम कर रहा है। आईसीएआर ने 2016 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित 'दलहन वर्ष' के तौर पर मनाया था। इसके अंतर्गत, दलहन के बीजों की सरल उपलब्धता के लिए 150 दलहन बीज केन्द्रों की स्थापना की गई।
- **मूल्य स्थिरीकरण कोष (PSF) स्कीम** - इस कोष की स्थापना 20 फरवरी, 2003 को हुई, चाय, कॉफी, तंबाकू तथा रबर इसके दायरे में थे। मूलतः प्याज इसकी सीमा में नहीं था। यह स्कीम 2013 में खत्म हो गयी

थी पर जुलाई, 2014 में बजट के दौरान वित्तमंत्री ने इस स्कीम को पुनः शुरू करने की घोषणा की जिसे 29 मार्च 2015 में संघीय कृषि मंत्रालय ने अनुमोदित कर दिया। सरकार ने इसके संबंध में मूल्य में उच्चावचन की 20% की न्यूनतम सीमा को घटाकर 10% कर दिया है। इस फण्ड का आकार 500 करोड़ रु. है, जिसका प्रयोग जल्दी नष्ट होने वाले प्रायः कृषि-बागवानी वस्तुओं के मूल्यों के प्रबंधन में बाजार हस्तक्षेप की मदद से किया जाता है। शुरू में इस फण्ड का प्रयोग केवल प्याज और आलू के ही संबंध में किया गया। इसके क्रियान्वयन में होने वाली हानि केंद्र तथा राज्य के बीच वहनीय है। इस फण्ड का प्रयोग राज्य सरकारों तथा केंद्रीय एजेंसीज को ब्याज रहित ऋण देने में किया जाता है जिससे वे अपनी कार्यशील पूँजी तथा हस्तक्षेप और क्रय संबंधी आवश्यकता को पूरा कर सकें। इसके अंतर्गत वस्तुएँ कृषकों या कृषक संघटनों से सीधे क्रय किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए एक आवर्ती (Revolving) फण्ड की स्थापना राज्य सरकारों द्वारा अपने स्तर पर की गयी जिसमें उत्तरी पूर्वी राज्यों में केंद्र तथा राज्य का हिस्सा 75:25 है, जबकि अन्य राज्यों में यह हिस्सा 50:50 है। केंद्रीय एजेंसीज इस प्रकार के आवर्ती फण्ड की स्थापना पूर्णतया केंद्रीय सहायता के द्वारा करती है।

- **इंद्रधनुषी क्रांति (Rainbow Revolution)** - पूर्व में हरित-क्रांति, गेहूँ उत्पादन पर केंद्रित थी लेकिन अब आवश्यकता एक ऐसे समग्र-क्रांति की है, जिसमें पूरा कृषि क्षेत्र समाहित हो और इसको 'इंद्रधनुषी क्रांति' कहा जाएगा। इस प्रकार की क्रांति के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं-
 - देश में कृषि संबंधी कार्य, जो अब तक मुख्यतः जीविकोपार्जन के लिए किये जाते थे, अब उन्हें व्यावसायिक दृष्टिकोण दिया जाना चाहिए, जिसमें उत्पादन एवं लाभ कमाना प्रमुख उद्देश्य हों।
 - फसलों का विविधीकरण, व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं उसके महत्व को बढ़ावा देना।
 - अनुसंधान प्रयासों में वृद्धि और उनके परिणामों को किसानों तक पहुँचाना।
 - **कृषि विस्तार सेवा**, जिसका मूल उद्देश्य था उचित तकनीक का प्रयोगशाला से प्रयोग (Lab to Land) तक पहुँचाना, जो एक प्रकार से पूर्णतः ध्वस्त हो चुकी है। प्रतिशत से भी कम किसान, कृषि विस्तार सेवा (कृषि विज्ञान केंद्र) का लाभ उठाते हैं। कृषि संबंधित ज्ञान की खाई को पाटने के लिए नितान्त आवश्यक क्षेत्र में हो रही प्रगति को एकीकृत किया जाए।

कृषि विस्तार सेवाएँ

कृषि क्षेत्र के लिए एक और बड़ी चीज है- कृषि विस्तार सेवाएँ (ईईएस)। ये सेवाएँ समय पर परामर्श सेवाएँ देकर किसानों का उत्पादन बढ़ा सकती हैं। ये सेवाएँ खेती के अच्छे तरीकों, तकनीकों, समस्याओं से निपटने, बाजार की जानकारी देने का काम कर सकती हैं। ईईएस (इसे ग्रामीण परामर्श सेवाएँ भी कहते हैं) को इस तरह परिभाषित किया गया है कि 'किसानों द्वारा मांगी गई व जरूरी सभी सूचनाओं व सेवाओं को उपलब्ध कराना तथा उनके अपने तकनीकी कौशल, सांगठनिक व प्रबंधकीय कौशल के निर्माण में ग्रामीण क्षेत्रों के ही दूसरे सहयोगियों द्वारा मदद मिलना, ताकि इनका जीवन स्तर सुधरे और वे संपन्न हों।

- कृषि कार्य को आधुनिक विज्ञान, जैव प्रौद्योगिकी एवं जैव कृषि को आपस में मिश्रित अथवा एकीकृत किया जाए।
- किसानों को प्रतिवर्ष दो फसल आधारित खेती से आगे बढ़कर बहुफसली-खेती की ओर परिवर्तित होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- सिंचाई परियोजनाओं को समय से पूरा किया जाये ताकि अधिकाधिक

भू-क्षेत्र को सिंचित भूमि की श्रेणी में लाया जा सके।

- कृषि मौसम के दौरान, उसके बाद और पहले की अवधि में कृषकों के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाए।
- ग्रामीण परिवहन व्यवस्था की ओर ध्यान दिया जाए।
- उन्नति के लिए किये जा रहे सभी प्रयासों का केंद्र बिंदु या धुरी (Fulcrum) किसान होना चाहिए। उसके जीवन स्तर में सुधार ही कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था की उन्नति की पहचान है।

डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन को लगता था कि भारत की दीर्घकालीन समावेशिता सुनिश्चित करने के लिए सदा हरित क्रांति (Ever Green Revolution) की आवश्यकता है। यह एक प्रयास से प्राप्त नहीं की जा सकती इसके लिए उत्पादन को सुधारने के लगातार प्रयास करने पड़ेंगे, जिसमें परंपरागत और आधुनिक को मिश्रित, क्षेत्रीय नवीकरणीय ऊर्जा के साधनों पर ध्यान, जैविक कृषि और किसानों को ऋण उपलब्धता, जो आज के लिए मौलिक रूप से महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बाद से कृषि में लगातार बन रही पंचवर्षीय योजनाओं में निवेश बढ़ रहा है पर स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि विपणन के लिए एकीकृत योजना (Integrated Scheme for Agricultural Marketing: ISAM)

2014 में 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि की 6 योजनाओं को एक एकल एकीकृत योजना में मिला दिया गया इसे 'कृषि विपणन के लिए एकीकृत योजना' कहा गया।

उद्देश्य

- राज्य, सहकारी और निजी क्षेत्र के निवेशों को सब्सिडी सहायता प्रदान करके कृषि विपणन अवसंरचना के निर्माण को बढ़ावा देना।
- प्राथमिक संसाधनों के साथ किसानों को ऊर्ध्वाधर एकीकरण प्रदान करने के लिए एकीकृत मूल्यशृंखला (केवल प्राथमिक प्रसंस्करण के चरण तक सीमित) को बढ़ावा देना।
- कृषि विपणन में नई चुनौतियों के प्रत्युत्तर में किसानों को संवेदनशील और उन्मुख बनाने हेतु विस्तार के एक साधन के रूप में सूचना एवं संचार तकनीक (ICT) का प्रयोग करना।

मुख्य विशेषताएँ

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना (ISAM) में निम्नलिखित पांच घटक होंगे-

- कृषि विपणन अवसंरचना (AMI) का विकास करना: वर्तमान में चल रही ग्रामीण भंडार योजना (GBY) और कृषि विपणन अवसंरचना, ग्रेडिंग और मानकीकरण (AMIGS) का AMI में विलय कर दिया जाएगा।
- विपणन अनुसंधान और सूचना नेटवर्क (MRIN) को सुदृढ़ करना।
- एगमार्क ग्रेडिंग सुविधाओं को सुदृढ़ करना (SAGF)।
- वेंचर कैपिटल असिस्टेंस (VCA) और प्रोजेक्ट डेवलपमेंट फ़ैसिलिटी (PDF) के माध्यम से एग्री- बिजनेस डेवलपमेंट (ABD) का विकास करना।
- चौधरी चरण सिंह राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान (NIAM) के माध्यम से प्रशिक्षण, अनुसंधान व परामर्श देना।

भारत सरकार की कृषि पहल

- डिजिटल ग्रीन- किसानों के लिए उपयोगी जानकारी की विशेषज्ञों द्वारा बनाये गए वीडियो जिन्हें किसानों के समूह के मध्य डीवीडी प्लेयर, कंप्यूटर, टीवी के माध्यम से प्रसारित किया जाता है।

- ई चौपाल- यह वैकल्पिक मार्केटिंग चैनल, मौसम संबंधी सूचनाएं व कृषि पद्धतियों के बारे में जानकारी देने वाला क्रियोस्क है जो किसान को मांग आधारित सूचना प्रदान करता है जिसे एक प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा संचालित किया जाता है।
- आकाशगंगा- यह कंप्यूटर आधारित प्रणाली है जो दुग्ध संग्रहण, उसकी मापतौल तथा उसकी गुणवत्ता आदि को यूनिक आईडी आधारित तरीके से कार्यान्वित करता है।
- किसान कॉल सेंटर- इसका शुभारंभ 21 जनवरी, 2004 को कृषि मंत्रालय द्वारा किया गया। किसान एक टोल फ्री नंबर से 1800-180-1551 के माध्यम से किसान कॉल सेंटर में कॉल कर सकते हैं। किसान कॉल सेंटर एजेंट द्वारा किसानों का पंजीकरण किया जाता है। इस सेंटर के माध्यम से किसानों के सवालों के जवाब 22 स्थानीय भाषाओं में दिये जाते हैं।
- एसएमएस अलर्ट- किसान 51969 या 7738299899 पर एसएमएस भेजकर भी अपने प्रश्न पूछ सकते हैं। इस एसएमएस के लिए किसान से शुल्क लिया जाएगा हालांकि विशेषज्ञों और अधिकारियों से प्राप्त किए गए एसएमएस के लिए कोई शुल्क देय नहीं होगा।
- ई-कृषि केंद्र पोर्टल- यह एक ही स्थान पर डिजिटल कृषि सेवाएं प्रदान करने के लिए ओपन एक्सेस प्लेटफॉर्म है। यह प्लेटफॉर्म मुख्यतः ई-कृषि, ई-रिटेलिंग, ई-बाजार, ई-कृषि प्रशिक्षण तथा कृषि विस्तार सेवाओं पर केंद्रित है। यह विभिन्न स्रोतों के माध्यम से प्राप्त डाटा के आधार पर किसानों के लिए उपयोगी सूचनाएं सृजित करता है।
- e-NAM- भारत में कृषि वस्तुओं के लिए ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म है। यह किसानों, व्यापारियों और खरीददारों को कृषि वस्तुओं में ऑनलाइन ट्रेडिंग की सुविधा प्रदान करता है। यह बेहतर कीमत की खोज में मदद कर रहा है और किसानों के उपज के सुचारू विपणन की सुविधा मुहैया करा रहा है।

सरकार ने यह कोशिश की है कि कृषि वस्तुओं के आंतरिक व्यापार के संबंध में व्याप्त सभी प्रतिबंधों को दूर कर तथा साथ ही विभिन्न राज्यों तथा विभिन्न स्तर पर बिखरे हुए कानूनों को, जो कृषि को नियमित करते हैं, समाप्त करें। इस समय निम्नांकित चार विधान (Legislation) हैं-

- मॉडल एपीएमसी एक्ट-2017 जो धीरे-धीरे करके मार्केट के संबंध में राज्यों के विधानों को प्रतिस्थापित करेगा।
- एग्रीकल्चर प्रोड्यूस ट्रेडिंग (डेवलपमेंट एण्ड रेगुलेशन) एक्ट 2017।
- संविदा खेती (कान्ट्रैक्ट फार्मिंग) के संबंध में कानून।
- ई-नाम के नियमन के लिए कानून।

जल्दी खराब होने वाले कृषि वस्तुओं को मॉडल एपीएमसी एक्ट-2017 से बाहर रखा गया है। एपीएमसी एक्ट कृषि वस्तुओं के लिए, 'कॉमन राष्ट्रीय बाजार के प्रवर्तन के अलावा ग्रेडिंग, मानकीकरण, (Standardization) गुणवत्ता, प्रमाणीकरण, बाजार-फीस तथा कमीशन विवेकीकरण, पारदर्शिता के प्रवर्तन के लिए ई-ट्रेडिंग का प्रवर्तन आदि सम्मिलित है। मॉडल एक्ट में मार्केट कमेटी तथा मार्केटिंग बोर्ड के लोकतांत्रिकीकरण की भी व्यवस्था की गयी है।

संभावित लाभ

- किसानों को उचित मूल्य मिल सकेगा।
- उत्पादक कंपनियों के लिए सप्लाई चेन छोटी हो जायेगी।
- प्रत्यक्ष विपणन को बढ़ावा मिलेगा।
- कृषि वस्तुओं की बर्बादी कम करने में मदद मिलेगी।

कृषि में प्रौद्योगिकी की भूमिका (Role of Technology in Agricultural)

- भारतीय कृषि की महत्वपूर्ण विशेषता इसकी विभिन्न क्रांतियाँ हैं जिनसे इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। हरित क्रांति, नीली क्रांति, पीली क्रांति तथा श्वेत क्रांति भारतीय कृषि की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं। इन सभी क्रांतियों में एक सामान्य लक्षण प्रौद्योगिकी का उपयोग था। ध्यातव्य है कि प्रासंगिक प्रौद्योगिकियों के बिना इन क्रांतियों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, जिनके परिणामस्वरूप भारत कई महत्वपूर्ण खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में एक वैश्विक नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरा है।
- तकनीकी उपयोग में आमूल-चूल परिवर्तन ने भारत को खाद्यान्न का आयात करने वाले देश से एक आत्मनिर्भर देश और यहाँ तक कि खाद्यान्न का निर्यात करने वाले देश के रूप में परिवर्तित कर दिया है।
- कृषि में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्रेरित विकास के परिणामस्वरूप, पदार्थों की मांग में वृद्धि के अनुरूप उत्पादकता एवं विभिन्न फसलों व वस्तुओं के उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है।
- वर्तमान में कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे- गुणवत्तायुक्त जल की उपलब्धता की कमी, मृदा में पोषक तत्वों का अभाव, जलवायु परिवर्तन, कृषि-भूमि में ऊर्जा उपलब्धता, जैव विविधता की क्षति, नए कीटों तथा रोगों का उदय, कृषि भूमि का विखंडन, ग्रामीण-नगरीय प्रवास इत्यादि। इसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र पर दबाव उत्पन्न हो रहा है और वांछित/त्वरित वृद्धि की प्राप्ति नहीं हो रही है।

कृषि में कुछ महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग निम्नलिखित हैं-

- **संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ-** इनका लक्ष्य कम लागत पर अधिक उत्पादन करने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधन के आधार तथा मृदा की गुणवत्ता को भी अच्छी स्थिति में बनाए रखना है, जैसे- शून्य जुताई कृषि। ये किसानों के लिए आय के परिप्रेक्ष्य से तथा अंतिम उपभोक्ता के लिए मुद्रास्फीति दबाव को कम करने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।
- **अनावश्यक उत्पादन तथा उत्पादन में होने वाले घाटे को कम करना-** अवशिष्ट तथा उप-उत्पादों सहित खेत के समस्त कृषि उत्पादों को उपयोगी और आर्थिक रूप से लाभकारी वस्तुओं में परिवर्तित करना। इससे यह भी सुनिश्चित होगा कि इन अपशिष्ट उत्पादों के नुकसान की भरपाई हेतु उपभोक्ताओं के लिए प्रति इकाई मूल्य में बढ़ोतरी न हो। साथ ही यह उत्पादन की और अधिक मात्रा को मुद्रीकृत करने की अनुमति देता है।
- **फसल कटाई के पश्चात प्रयोग होने वाली (पोस्ट- हार्वेस्ट) प्रौद्योगिकियाँ-** पोस्ट-हार्वेस्ट अवसंरचना की अनुपस्थिति के कारण कृषि उत्पादन का एक बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जाता है।
 - शीत भंडार, प्रसंस्करण इकाइयाँ, अगम्य क्षेत्रों में सड़क नेटवर्क तथा पंचायत स्तर पर स्थानीय विनियमित बाजारों की स्थापना के रूप में उपयुक्त पोस्ट-हार्वेस्ट अवसंरचना सुनिश्चित कर, मूल्य वृद्धि तथा खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा देकर कृषि क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इससे दूसरों के लिए रोजगार के अवसर सृजित करने में भी सहायता मिल सकती है।
- **जलवायु प्रत्यास्थ प्रौद्योगिकियाँ-** इसका मूल उद्देश्य किसानों को स्वयं के संसाधनों के कुशल प्रबंधन के माध्यम से जलवायु की परिवर्तनशीलता का सामना करने में सक्षम बनाना है। देश की एक बड़ी जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता और उनके पास जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए उपयुक्त क्षमता का अभाव होने के कारण भारतीय कृषि जलवायु परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक सुभेद्य है।

- **जैव प्रौद्योगिकी (उच्च उपज प्रौद्योगिकी)-** कृषि में जैव प्रौद्योगिकी उपकरणों का उपयोग खाद्य फसलों को उच्च उपज प्रदान करने में समर्थ तथा जैविक एवं अजैविक दबावों के प्रति अधिक सुदृढ़ बना सकता है। यह खाद्य आपूर्ति में स्थिरता ला सकती है एवं उसमें वृद्धि कर सकती है, जो कि बढ़ती खाद्य मांग, जलवायु परिवर्तन तथा भूमि एवं जल के अभाव को देखते हुए महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, आनुवांशिकी रूप से संवर्द्धित (GM) फसलें।
- **नैनो प्रौद्योगिकी-** यह मृदा उत्पादकता को बढ़ाने एवं फसल पोषण को संतुलित करने, खर-पतवार का प्रभावी नियंत्रण करने, कार्बन नैनोट्यूब का उपयोग कर बीज के उद्भवन में वृद्धि करने, कृषि रसायनों की आपूर्ति, पर्यावरण गीय दबाव और फसल की स्थिति की निगरानी तथा पर्यावरणीय दबाव एवं रोगों के विरुद्ध पौधों के प्रतिरोधी लक्षणों में सुधार करने के लिए फील्ड-सेंसिंग सिस्टम के उपयोग को बढ़ावा देने में सहायक हो सकती है। उदाहरण- एंटीमाइक्रोबियल एजेंटों के रूप में नैनो आकार के चाँदी के कणों का उपयोग।
- **कृषि का मशीनीकरण-** भारत के कृषि क्षेत्र में श्रम की हिस्सेदारी (55%) कृषि पद्धति में मशीनीकरण (40%) की तुलना में काफी अधिक है। भारत में कृषि के कम लाभकारी होने के कारण कृषकों की निर्धनता में वृद्धि हुई है। भारतीय कृषि में यंत्रों के उपयोग में वृद्धि की जानी चाहिए क्योंकि इससे बीज की लागत में 15-20% की बचत, फसल गहनता में 5-20% की वृद्धि, समय में 20-30% की बचत, शारीरिक श्रम में 20-30% की कमी तथा कृषि उत्पादकता में 10-15% की समग्र वृद्धि की जा सकती है।
- **उभरती हुई प्रौद्योगिकियाँ-** बिग डेटा एनालिटिक्स, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IOT), ब्लॉक चेन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), रोबोटिक एवं सेंसर इत्यादि जैसी विकासशील प्रौद्योगिकियों का विकास अंतर-संबंधित है। इनका उपयोग कृषि मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन करने हेतु खेतों और किसानों द्वारा सृजित बिग डेटा के विश्लेषण के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रिया को इष्टतम करने के लिए किया जाता है। हाल ही में, नीति आयोग एवं IBM ने महत्वाकांक्षी जिलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के उपयोग द्वारा परिशुद्ध कृषि (Precision Agriculture) के विकास के लिए एक आशय ज्ञापन (स्टेटमेंट ऑफ इंटेंट) पर हस्ताक्षर किए हैं।

संभावनाएँ

- वर्तमान में इष्टतम दृष्टिकोण यही है कि ग्रामीण आय में वृद्धि के माध्यम से 'साइंस ऑफ डिस्कवरी' से 'साइंस ऑफ डिलीवरी' की ओर बढ़ना चाहिए।
- कृषकों को उनके उत्पाद को कुशलतापूर्वक बाजार में बेचने तथा लाभ प्राप्त करने में सहायता करने हेतु मांग-चालित नवाचार पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।
- सुदृढ़ तकनीकी आधार निर्मित करने के लिए प्रत्येक राज्य को उत्तरदायित्व लेने, पर्याप्त बजटीय समर्थन के साथ सुदृढ़ कार्यान्वयन योजनाओं का निर्माण करने तथा राष्ट्रीय स्टैक एंड स्पेशियल डेटा इंफ्रास्ट्रक्चर (Stack and Spatial Data Infrastructure: SDI) का लाभ उठाने की आवश्यकता है।

स्टैक एंड स्पेशियल डेटा इंफ्रास्ट्रक्चर

एसडीआई प्रौद्योगिकी मानकों, संस्थागत व्यवस्थाओं और नीतियों पर समझौतों की एक समन्वित मंथन है। जिसके 5 मुख्य घटक हैं-

- स्थानिक डाटा।
- प्रौद्योगिकी (हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर)।
- कानून और नीतियाँ।
- लोग अर्थात डाटा प्रदाता, सेवा प्रदाता, उपयोगकर्ता।
- डाटा के लिए अधिकरण, प्रतिनिधित्व और स्थानांतरण।

- प्राथमिकता के क्रम में समस्याओं का समाधान करने हेतु दक्षता एवं

विकसित प्रौद्योगिकियों के संदर्भ में सार्वजनिक शोध प्रणाली को प्रोत्साहित करने तथा उसे सुदृढ़ करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त जहाँ भी सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) से लाभ मिलने की संभावना हो वहाँ इसे सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

- बीज व्यवस्था पर नवाचारी मॉडल जो किसान उत्पादक संगठनों (FPO) और राज्य बीज निगमों (SSCs) के साथ बीज की किस्मों के सहभागी चयन का लाभ उठाते हैं, विभिन्न फसलों में वांछित बीज प्रतिस्थापन अनुपात को बनाए रखने में सहायक होंगे।
- SDI और आधार के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों तथा योजनाओं को जोड़कर कृषि-भूमि के स्तर पर क्षेत्रीय अभिसरण को बढ़ावा देने हेतु प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। यह कृषि में आगतों की उपयोग दक्षता (सिंचाई तथा उर्वरक जिसमें सूक्ष्म पोषक तत्व शामिल हैं) में वृद्धि करने के लिए सब्सिडी को खेतों और कृषकों की आवश्यकताओं की ओर लक्षित करेगा। इसके साथ ही ये बाजार मूल्य स्थिरीकरण का समर्थन करेगा और अंततः जोखिम में कमी करने के लिए फसल वृद्धि की ऋतु से पूर्व ही कृषकों के समक्ष सरल विकल्पों को प्रस्तुत करेगा (उत्पादन व बाजार) और आगतों को अनुकूलित कर संरचित बाजारों में एकीकृत करेगा।
- कृषि उत्पादकता तथा उपज में वृद्धि करने हेतु स्टार्ट-अप तथा नवीन तकनीक के माध्यम से कृषि में नवाचार को प्रोत्साहित करना।

केन्द्रीय बजट वर्ष 2021-22 के अनुसार एग्री प्रोड्यूस मार्केटिंग कमेटी (APMC) को एग्री इंफ्राफंड के तहत लाने की घोषणा की गयी, इसके माध्यम से सरकार 1,000 और मंडियों को e-NAM से जोड़ेगी और साथ ही 'ऑपरेशन ग्रीन स्कीम' में टमाटर, प्याज और आलू के अलावा 22 खराब होने वाली फसलें (Perishable Crops) को भी शामिल किया जाएगा।

राष्ट्रीय कृषि नीति

28 जुलाई, 2000 को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय कृषि नीति घोषित की गई। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं- भारतीय कृषि की छिपी हुई व्यापक विकास संभावनाओं को खोजकर उनका संपूर्ण लाभ उठाना, ग्रामीण अवसंरचना को और अधिक दृढ़ बनाना ताकि कृषि संबंधी विकास को प्रोत्साहन मिल सके, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन करना, कृषकों, कृषि श्रमिकों एवं उनके परिवारों हेतु समुचित जीवन स्तर की व्यवस्था करना, ग्रामीण क्षेत्रों की ओर से शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लगाना तथा आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण से उत्पन्न होने वाली विभिन्न चुनौतियों का सामना करना।

लक्ष्य

- कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक संवृद्धि दर प्राप्त करना।
- ऐसा कृषि विकास सुनिश्चित करना जो संसाधनों का कुशल प्रयोग कर सके तथा हमारे भूमि, जल एवं जैव-विविधता की रक्षा कर सके।
- विकास के साथ-साथ समानता अर्थात् ऐसा विकास जो सभी क्षेत्रों में और सभी किसानों को लाभान्वित कर सके।
- विकास मांग से प्रेरित हो तथा घरेलू बाजारों की आवश्यकता को पूर्ण करने के साथ-साथ आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण से उत्पन्न कृषि निर्यातों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके।
- विकास जो तकनीकी रूप से, पर्यावरण सुधार के रूप से तथा आर्थिक रूप से धारणीय हो।

ई-नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार)

{e-NAM (National Agricultural Market)}

राष्ट्रीय स्तर पर कृषि वस्तुओं को ई-प्लेटफॉर्म के द्वारा एक कॉमन मार्केट विकसित तथा प्रवर्तित करने के लिए कृषि मंत्रालय ने एग्री-टेक इन्फ्रास्ट्रक्चर फंड (ATIF) के द्वारा एक केन्द्र समर्थित 'स्कीम-प्रमोशन ऑफ नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट' (e-NAM) 14 अप्रैल, 2016 को शुरू किया। इस स्कीम का प्रमुख उद्देश्य सभी राज्यों में कृषि विपणन के लिए ई-प्लेटफॉर्म विकसित करना है। वर्ष 2021-22 के बजट में, देश की एक हजार मंडियों को राष्ट्रीय कृषि बाजार (e-NAM) प्लेटफॉर्म से जोड़ा जाएगा ताकि कृषि विपणन को मजबूत बनाया जा सके। इससे देश में कृषि उत्पादों के लिए 'वन नेशन वन मार्केट' का निर्माण होगा। विपणन क्षेत्र की चुनौतियों से निपटने तथा कृषि वस्तुओं के संबंध में कॉमन मार्केट विकसित करने में आने वाली बाधाओं से निपटने के लिए कृषि मंत्रालय ने एपीएमसी एक्ट, 2017 (न्यू मॉडल) तैयार किया तथा राज्यों को इसके उचित क्रियान्वयन के लिए निर्देशित किया गया है। 'वन नेशन वन मार्केट' का निर्माण होगा। विपणन क्षेत्र की चुनौतियों से निपटने तथा कृषि वस्तुओं के संबंध में कॉमन मार्केट विकसित करने में आने वाली बाधाओं से निपटने के लिए कृषि मंत्रालय ने एपीएमसी एक्ट, 2017 (न्यू मॉडल) तैयार किया तथा राज्यों को इसके उचित क्रियान्वयन के लिए निर्देशित किया गया है।

कृषि मंत्रालय ने राज्यों से इसकी व्यवस्थाओं के अनुसार APMC में परिवर्तन तथा संशोधन लाने तथा APLM को लागू करने के लिए कहा है। जिससे राज्य स्तर पर 'सिंगल लाइसेंस' (एकल लाइसेंस) तथा एक बिन्दु पर बाजार शुल्क (Market Fees) लगाया जाए तथा धीरे-धीरे करके यह राष्ट्रीय स्तर पर सिंगल लाइसेंस तथा एकल बिन्दु बाजार शुल्क में परिवर्तित हो सके। पूरा प्रत्यागम यह सुनिश्चित करता है कि पूरे देश में कृषक, व्यापारी कृषि वस्तुओं का बिना किसी अवरोध तथा कठिनाई के व्यापार कर सकें। ऐसी स्थिति में ही कृषि वस्तुओं के सम्बन्ध में ई-नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट (e-NAM) विकसित हो सकेगा।

कृषि जिनस का व्यापार

(Agricultural Commodity Trading)

एग्रीडेक्स (AGRIDEX)

- नेशनल कमोडिटी एंड डेरिवेटिव्स एक्सचेंज (NCDEX) ने एग्रीडेक्स नामक देश के पहले कृषि वायदा सूचकांक में ट्रेडिंग प्रारंभ करने की घोषणा की है।
- AGRIDEX, भारत का पहला रिटर्न आधारित जिनस वायदा सूचकांक है, जो NCDEX प्लेटफॉर्म पर कारोबार की जाने वाली 10 लिक्विड कमोडिटीज (दोनों खरीफ और रबी की फसलों) के प्रदर्शन को ट्रैक करता है।
 - इन 10 लिक्विड कमोडिटीज के अंतर्गत, अरंडी का बीज, चना, धनिया, कॉटन सीड, ऑयल केक, ग्वार गम, ग्वार सीड, जीरा, सरसों का बीज, रिफाइन सोया ऑयल और सोयाबीन सम्मिलित हैं।
 - विविधता सुनिश्चित करने के लिए इन जिनसों के किसी भी समूह का सूचकांक भार 40% से अधिक नहीं होना चाहिए।
- यह उत्पादों की मूल्य प्रत्याशा के आधार पर प्रतिभागियों को जिनस जोखिम से सुरक्षा प्रदान करेगा।
- यह भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (SEBI) द्वारा जारी दिशा-निर्देशों पर आधारित है, जिसके तहत जिनस सूचकांकों में वायदा कारोबार करने की अनुमति प्रदान की गयी है।
- रियल-टाइम NCDEX एग्रीडेक्स मूल्यों को बनाये रखने और प्रसारित करने के लिए NCDEX द्वारा नेशनल स्टॉक एक्सचेंज सूचकांक के साथ एक साझेदारी प्रारंभ की गयी है।

बीएसई ई-एग्रीकल्चर मार्केट्स लिमिटेड (BSE E-Agricultural Market's Limited)

- बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज ने अपनी सहायक कंपनी बी.एसई. इन्वेस्टमेंट्स के माध्यम से कृषि उत्पादों के लिए इलेक्ट्रॉनिक स्पॉट प्लेटफॉर्म 'बीएसई ई-एग्रीकल्चर मार्केट्स लिमिटेड' को प्रारंभ किया है।
- यह प्लेटफॉर्म अनुरूप एकल बाजार के निर्माण हेतु एक राष्ट्रीय, संस्थागत, इलेक्ट्रॉनिक तथा पारदर्शी कमोडिटी स्पॉट ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म के रूप में कार्य करेगा।
 - यह प्लेटफॉर्म संपूर्ण मूल्य श्रृंखला (जिसमें उत्पादक बिचौलियों, सहायक सेवाएं और उपभोक्ता शामिल हैं) में कृषि उत्पादों के स्पॉट लेन-देन की सुविधा को बनाये रखने में मदद करेगा।
 - यह प्लेटफॉर्म अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से किसानों, व्यापारियों और हित धारकों को अनुकूलित समाधान प्रदान कर विभिन्न कृषि उत्पादों के जोखिम मुक्त एवं बाधा रहित खरीद तथा बिक्री की सुविधा प्रदान करेगा।
- बीईएएम के सहयोग से, एक राज्य के किसान दूसरे राज्य के बाजारों तक पहुँच स्थापित कर सकेंगे और अपनी उपज की नीलामी कर सकेंगे। इससे न केवल किसानों और किसान संगठनों को गुणवत्ता के आधार पर अपनी उपज के लिए सर्वोत्तम मूल्य खोजने में मदद मिलेगी बल्कि राज्य के बाजारों से खरीद करने वाले बिचौलियों, संसाधकों और निर्यातकों की क्षमता निर्माण में भी सहायता मिलेगी।

कृषि निर्यात के समक्ष चुनौतियाँ

- वर्ष 2021-22 में भारत का कृषि निर्यात बढ़कर 50 अरब डॉलर से अधिक पहुँच गया। चालू वित्त वर्ष में निर्यात की गति बने रहने की उम्मीद है। वाणिज्य सचिव अनुप वधावन के अनुसार, अनाज, गैर-बासमती चावल, गेहूँ, बाजरा, मक्का तथा मोटे अनाज के निर्यात में भारी बढ़ोत्तरी देखी गयी है।
- 'इकोनॉमिक कॉर्पोरेशन एंड डेवलपमेंट' और 'फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन' की 'ऑन द एग्रीकल्चर आउटलुक' रिपोर्ट में कृषिगत वस्तुओं की कीमत में गिरावट पर चिंता व्यक्त की गई है।
- भारत की कुछ वस्तुएँ जैसे कपास, चीनी और चावल का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निराशाजनक प्रदर्शन रहा है जबकि ये सभी वस्तुएँ कृषि निर्यात बास्केट के प्रमुख घटक हैं।
- इसके साथ ही घरेलू स्तर पर मुद्रास्फीति को रोकने के लिए सरकार कुछ वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध लगाती है जिससे किसानों की आय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फलतः अधिशेष उत्पादन के लिए किसान हतोत्साहित होते हैं।
- भारत में प्रसंस्कृत कृषि उत्पादों के लिए बुनियादी ढाँचे की कमी है, जिस कारण प्रसंस्कृत उत्पादों की विशाल संभावना के बावजूद इन उत्पादों का निर्यात नहीं हो पाता है।
- भारत में वेयरहाउसिंग इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी है। ऐसे में मानसूनी समस्याओं के कारण कृषि उत्पाद नष्ट हो जाते हैं जिससे मुद्रास्फीति की समस्या कभी-कभी अर्थव्यवस्था में चिन्ता उत्पन्न करती है। जैसे कि हाल ही में वर्ष 2019-20 तक खाद्यान्न वस्तुओं की मुद्रास्फीति में काफी उतार-चढ़ाव हुआ।

वैश्विक कृषि निर्यात में भारत की स्थिति

भारत दुनिया में कृषि उत्पादों के 15 प्रमुख निर्यातकों में से एक है। भारत चावल, मसाले, कच्चा कपास और चीनी जैसे कुछ कृषि वस्तुओं के एक महत्वपूर्ण निर्यातक के रूप में उभरा है। भारत ने बासमती चावल, ग्वार गम और अरंडी के तेल की तरह कुछ विशिष्ट कृषि उत्पादों में निर्यात प्रतिस्पर्द्धा विकसित की है।

कृषि निर्यात नीति की संभावनाएँ

- कृषि क्षेत्र में अधिक उत्पादन निर्यात की नई संभावनाएँ प्रस्तुत कर रहा है। इसके प्रमुख कारणों में सरकार द्वारा घोषित की गई नई कृषि निर्यात नीति है, जिसके तहत सरकार ने कृषि निर्यात बढ़ाने के लिए उदार नीति अपनाई है।
- दूसरा प्रमुख कारण अमेरिका और चीन के बीच छिड़े व्यापार युद्ध से भारत के लिए निर्यात संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। चूँकि भारत भी चीन को निर्यात कर रहा है और भारतीय वस्तुओं पर चीन ने कोई आयात शुल्क नहीं बढ़ाया है इसलिए भारत का निर्यात चीन में बढ़ेगा।
- कृषि निर्यात की मसौदा नीति में, राज्यों की कृषि निर्यात में ज्यादा भागीदारी, बुनियादी ढाँचे और लॉजिस्टिक्स में सुधार तथा नए कृषि उत्पादों के विकास के लिए शोध एवं विकास गतिविधियों के प्रोत्साहन पर जोर दिया गया है।

क्या बदलाव किए जाने की आवश्यकता है?

किसानों के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्ताओं द्वारा किसानों के समर्थन में मनोदशा बनानी चाहिए, जिससे वे कीमतों को अधिक दबाने की बजाए संतुलित बनाए रखें। सरकार को भी जरूरतमंद लोगों को बिना शर्त लक्षित करते हुए उन्हें आय हस्तांतरण करना चाहिए।

दूसरा यह भी है कि कृषि निर्यात से संबंधित नीति- निर्माताओं द्वारा पर्यावरण गीय अनुकूल उत्पादों को अधिक बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे पर्यावरणीय समस्याएँ कम उत्पन्न हों।

सरकार द्वारा अनुबंध कृषि को दीर्घकालीन अवधि के लिए प्रोत्साहित करते हुए भूमि पट्टा बाजार को अधिक उदार बनाया जाना चाहिए। इसके साथ ही साथ वैश्विक स्तर पर उचित मूल्य श्रृंखला विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। निर्यातकों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे खाद्यान्न, किसान उत्पादक संगठन (FPO) से खरीदें क्योंकि एफ.पी.ओ. मूल्यश्रृंखला को बनाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

कृषि निर्यात नीति 2018, के महत्वपूर्ण बिंदु

- कृषि निर्यात नीति, 2018 का उद्देश्य वर्ष 2022 तक कृषि निर्यात को 30 अरब डॉलर से बढ़ाकर 60 अरब डॉलर के स्तर तक पहुँचाना है।
- ध्यातव्य हो कि यह फैसला 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के सरकार के उद्देश्यों के तहत लिया गया है।
- कृषि निर्यात नीति से चाय, कॉफी और चावल जैसे कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ यह वैश्विक कृषि व्यापार में देश की हिस्सेदारी को बढ़ाएगा।
- इस नीति के तहत जैविक उत्पादों पर सभी प्रकार के निर्यात प्रतिबंधों को भी हटाने की कोशिश की जाएगी। यह कहा जा रहा है कि इस नीति के कार्यान्वयन के लिए अनुमानित वित्त 1,400 करोड़ रुपये से भी अधिक का होगा।
- बाजार पहुँच को आगे बढ़ाने, बाधाओं से निपटने और फाइटो-सैनिटरी मुद्दों से निपटने के लिए एक संस्थागत तंत्र प्रदान करना।

कृषि आय दोहरीकरण (Doubling Farm Income)

लाभकारी खेती कृषक समुदाय की समृद्धि का ही एक जरिया नहीं है बल्कि यह कृषि उत्पाद को बढ़ाने का भी सबसे अच्छा तरीका है। इसीलिए पिछले कुछ समय में कृषि आय बढ़ाना सरकार के नीतिगत सरोकारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। हाल ही में कृषि क्षेत्र को लेकर सरकार की रणनीति में एक बदलाव देखा गया है- कृषि उत्पादन बढ़ाने से कृषि आय बढ़ाने की ओर, वर्ष 2022 तक कृषकों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य के साथ भारत सरकार

ने एक 'सात बिंदुओं वाली रणनीति' की घोषणा की है। जो निम्नलिखित हैं-

- बड़े बजट के साथ सिंचाई पर ध्यान देना जिसका लक्ष्य होगा 'हर बूंद, ज्यादा फसल'।
- मिट्टी की सेहत के आधार पर अच्छी गुणवत्ता वाले बीज और पोषक तत्वों का प्रावधान करना।
- कटाई के बाद फसल के नुकसान को रोकने के लिए गोदामों और कोल्ड स्टोरेज की शृंखला को मजबूत करना।
- खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से उत्पाद की मूल्य वृद्धि करना।
- राष्ट्रीय कृषि बाजार बनाना, संबद्ध विकृतियों को दूर करना और ई-प्लेटफॉर्म उपलब्ध करवाना।
- वहन करने योग्य लागत में उचित प्रकार के कृषि बीमा के माध्यम से जोखिम को कम करना।
- कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन और मत्स्य पालन जैसी सहायक कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देना।

सर्वश्रेष्ठ कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन के साथ कृषि-विशेषज्ञों ने सरकार की पहल की प्रशंसा की है। अच्छी रणनीति, अच्छी तरह तैयार योजनाओं, पर्याप्त संसाधनों और अच्छे प्रशासन के साथ निश्चित समय में किसानों की आय दोगुना करने की चुनौती को पार कर पाना काफी हद तक संभव है।

भविष्य की ओर (Looking Ahead)

सितम्बर 2020 में 'कृषि उत्पाद व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्द्धन और सुविधा) अधिनियम, 2020', मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा कर किसानों के (सशक्तिकरण और संरक्षण) समझौता अधिनियम, 2020, आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020 तीन कानून पारित किये गये।

नोट- किसान नेताओं तथा विपक्षी दलों के विरोध-प्रदर्शन के बाद 19 नवंबर को प्रधानमंत्री मोदी ने देश की जनता को संबोधित करते हुए तीनों कृषि कानूनों को वापस लेने का ऐलान कर दिया।

वैसे तो कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों की सकल मूल्यवर्द्धन (GVA) में हिस्सेदारी घटती जा रही है फिर भी यह क्षेत्र (आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21) समेकित विकास (Inclusive Development) का इंजन है। इस क्षेत्र की मजबूती से न सिर्फ आर्थिक असमानता घटेगी बल्कि देश में खाद्य सुरक्षा को भी बल मिलेगा।

वर्तमान समय में भारतीय कृषि संरचनात्मक बदलावों के दौर से गुजर रही है, जिसमें नयी चुनौतियां एवं अवसरों का उद्भव जारी है। इस दिशा में की गयी सरकारी पहल बहुउद्देश्यीय एवं इस क्षेत्र को रूपांतरित करने की है।

- कृषि विपणन।
- तकनीकी समावेशन।
- छोटे एवं सीमांत किसानों एवं ऋणों, आगतों एवं विस्तार सेवाओं की आपूर्ति के लिए 'डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर' (DBT) को अपनाना।
- कृषि विविधीकरण पर जोर ताकि कृषि आय से जुड़े जोखिमों को कम किया जा सके (पशुपालन एवं मछलीपालन जैसे उप-क्षेत्रों को प्रोत्साहित करके)।

कृषि क्षेत्र को रूपांतरित करने के लिए आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21 द्वारा सरकार को निम्न क्षेत्रों से जुड़ी समुचित नीतिगत पहल करने की सलाह दी गयी।

- कृषि उत्पादों का मूल्य किसानों के लिए लाभकारी (Remunerative) बना रहे।
- कृषि व्यापार (Trade) को ऐसे समन्वित किया जाए ताकि वैश्वीकरण का लाभ किसानों को भी प्राप्त हो सके।
- किसानों की आजीविका एवं उनकी आय की सुरक्षा के लिए जलवायु स्मार्ट कृषि (CSA) को अपनाना।
- छोटे सीमांत किसानों एवं महिला किसानों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता।

आर्थिक सर्वेक्षण 2021 में कहा गया है कि कृषि कानूनों ने बाजार की आजादी

के नये युग की शुरुआत की है। इनका भारत में किसान कल्याण की स्थिति में सुधार की दिशा में दूरगामी लाभ होगा। आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया कि भारत में किसानों को अपनी उपज को बेचने में विभिन्न प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा है, अधिसूचित एपीएमसी मार्केट यार्ड के बाहर कृषि उपज बेचने के मामले में जो किसानों पर प्रतिबंध थे वो अब हटा दिये गये हैं।

कृषि सब्सिडी

(Agriculture Subsidy)

सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता को सब्सिडी कहा जाता है, दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सरकार द्वारा किसी व्यक्ति, व्यवसाय या संस्था को दिए जाने वाले लाभ को सब्सिडी कहते हैं। सरकार द्वारा सब्सिडी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूप में दी जाती है, जब सब्सिडी नकद भुगतान के तौर पर प्रदान की जाती है तो वह प्रत्यक्ष सब्सिडी मानी जाती है, वहीं गैर नकद लाभ या सहायता को अप्रत्यक्ष सब्सिडी माना जाता है, जैसे- कर में छूट, ऋण पर कम ब्याज देना आदि।

सब्सिडी के पीछे के कारण

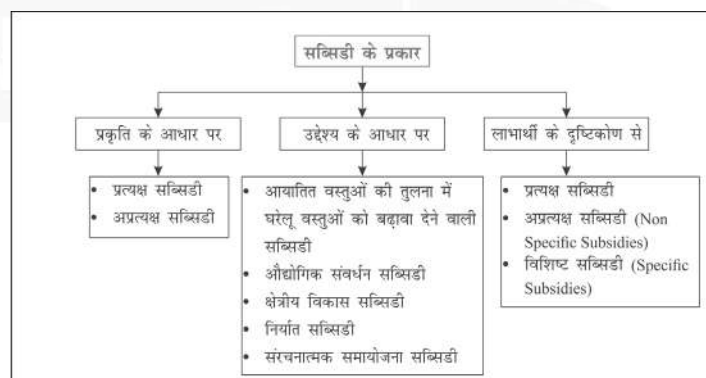
(Reason Behind Subsidies)

सब्सिडी के आर्थिक एवं सामाजिक तर्क संगतता (Justification) को निम्नलिखित तरीकों से समझ सकते हैं-

- वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य को कम रखने एवं मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने हेतु। उदाहरण भारत सहित कई देश ईंधन तेल पर सब्सिडी प्रदान करते हैं, ताकि वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य को एक सीमा के नीचे रखा जा सके।
- कमजोर एवं वंचित समुदाय द्वारा उत्पादित वस्तुओं को प्रतिस्पर्धी बनाने हेतु सब्सिडी।
- मेरिट वस्तुओं एवं सेवाओं के उपयोग में वृद्धि हेतु ऐसी वस्तुएं एवं सेवाएं जो संपूर्ण समाज के लाभ के लिए आवश्यक होने के कारण सरकार द्वारा निःशुल्क प्रदान की जाती है, जैसे-शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। ध्यातव्य हो कि मेरिट वस्तुओं एवं सेवाओं को निजी क्षेत्र भी प्रदान करते हैं। इस तरह की सब्सिडी से कमजोर वर्ग आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनते हैं। इन्हें सकारात्मक बाह्य सहायता (Externalities) के रूप में देखा जाता है।
- पूँजीगत परियोजनाओं की लागत कम करने हेतु पूँजीगत परियोजनाओं के कारण आर्थिक विकास की गति में वृद्धि होती है एवं रोजगार तथा लोगों की आय में वृद्धि होती है।
- निर्यात को बढ़ावा देने हेतु, ताकि भुगतान संतुलन की समस्या न हो।

सब्सिडी के प्रकार (Types of Subsidy)

सब्सिडी को अलग-अलग आधारों पर अलग-अलग तरीके से विभाजित किया जा सकता है।



प्रकृति के आधार पर सब्सिडी को प्रत्यक्ष सब्सिडी और अप्रत्यक्ष सब्सिडी में विभाजित करते हैं।

प्रत्यक्ष सब्सिडी (Direct Subsidy)

प्रत्यक्ष सब्सिडी को तहत लाभार्थी बाजार मूल्य पर वस्तु एवं सेवा खरीदते हैं और सहायता राशि उनके खाते में भुगतान कर दी जाती है। दूसरे शब्दों में प्रत्यक्ष सब्सिडी, नकद सहायता या अन्य प्रत्यक्ष लाभ के रूप में सीधे लाभार्थी को प्रदान की जाती है। भारत में इसका सबसे अच्छा उदाहरण एलपीजी पर प्रदान की जा रही सब्सिडी है।

- नकद सब्सिडी का एक और लाभ है कि यह वितरण प्रणाली पर से लोगों की निर्भरता खत्म कर देता है तथा उन्हें इस बात की स्वतंत्रता देता है कि वह जहाँ से चाहे 'सब्सिडी वस्तुएँ' खरीद सकते हैं।

अप्रत्यक्ष सब्सिडी (Indirect Subsidy)

नकद या प्रत्यक्ष लाभ के अतिरिक्त, वे सभी राज सहायिकी जिससे वस्तुएँ एवं सेवाएँ कम कीमत पर उपलब्ध हो जाती है, अप्रत्यक्ष सब्सिडी कही जाती है। उदाहरण के लिए उर्वरक कंपनियों को सरकार कई प्रकार से सहायता प्रदान करती है, जिससे किसानों को कम कीमत पर उर्वरक प्राप्त होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि किसानों को उर्वरक पर अप्रत्यक्ष सब्सिडी प्रदान की जाती है।

उपर्युक्त सब्सिडीज के साथ समस्या

- सब्सिडी की इसलिए आलोचना होती रही कि इससे बड़े किसानों को न कि मझोले या छोटे किसानों को, लाभ पहुँचा जिनके लिए यह व्यवस्था की गई थी। ऐसा इसलिए कि धनी किसान बड़ी मात्रा में सब्सिडी प्राप्त उर्वरक उठा लेते थे क्योंकि लघु एवं सीमांत किसानों के पास खेती की जमीन सिर्फ 39 प्रतिशत है।
- अप्रत्यक्ष सब्सिडी उत्पादन प्रक्रिया के सुधार को हतोत्साहित करती है क्योंकि उत्पादकों/विनिर्माताओं को कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए कोई उत्प्रेक्षण का प्रोत्साहन नहीं है।

उद्देश्य के आधार पर सब्सिडी

जब किसी सब्सिडी को किन्हीं खास उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है तो इसका अर्थ है कि इस प्रकार की सब्सिडी देने का निर्णय विशेष क्षेत्र को संरक्षित करने या फिर उसे आगे बढ़ाने के लिए दिया जा रहा है। उद्देश्यों के आधार पर सब्सिडी को निम्नलिखित आधारों पर बांट सकते हैं-

- **आयातित वस्तुओं की तुलना में घरेलू वस्तुओं को बढ़ावा देने वाली सब्सिडी**- जब किसी देश की सरकार घरेलू स्तर पर अपने उत्पादों को संरक्षित करने के लिए और बाजार की प्रतियोगिता में उसे स्थायी बनाए रखने के लिए वस्तुओं के अंतिम मूल्य पर सब्सिडी प्रदान करती है तो ऐसी सब्सिडी को घरेलू उद्योगों को बढ़ावा देने वाली सब्सिडी कहते हैं। इससे घरेलू उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ हो पाती है।
- **औद्योगिक संवर्धन सब्सिडी**- जब भी कोई सरकार अपने देश के उद्योगों को बढ़ावा देना चाहती है तो वह उन उद्योगों की किसी ईकाई को स्थापित करने में या फिर उद्योगों से उत्पादित वस्तुओं पर सब्सिडी प्रदान करती है। जैसा कि उदारीकरण के फलस्वरूप भारत में कई निजी औद्योगिक उपक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा नई ईकाई स्थापित करने के लिए कुछ स्तर पर सब्सिडी प्रदान की गई।
- **अनुसंधान एवं विकास सब्सिडी**- किसी भी देश की प्रगति के लिए अनुसंधान आवश्यक है क्योंकि इसके बिना कोई भी देश तकनीकी रूप से मजबूत नहीं हो सकता है। अतएव शोधों में नई उपलब्धि हासिल करने के लिए सरकार द्वारा सब्सिडी प्रदान की जाती है। इसमें सरकार नए लैबों की स्थापना करने, मौजूदा लैबों को उन्नत बनाने के लिए, किसी विशेष शोध

पर आए खर्च को सब्सिडी प्रदान कर सहायता करती है जैसा कि भारत में कैसर, एड्स जैसी बीमारियों पर हो रहे शोधों के लिए वैज्ञानिकों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

- **क्षेत्रीय विकास सब्सिडी**- किसी देश में व्याप्त क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने, उन्हें अन्य अलग क्षेत्रों के बराबर लाने के लिए जब घरेलू स्तर पर सरकार द्वारा या अंतर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा सब्सिडी प्रदान की जाती है तो यह क्षेत्रीय विकास सब्सिडी कहलाती है। भारत सरकार द्वारा इस प्रकार की सब्सिडी पूर्वोत्तर राज्यों एवं कुछ उत्तर क्षेत्रीय राज्यों को प्रदान किया जाता है।
- **संरचनात्मक समायोजन सब्सिडी**- संरचना, नीतियों एवं प्रक्रियाओं में परिवर्तन के कारण होने वाले जोखिमों को दूर करने के लिए दी जाने वाली राज सहायिकी को इसके अंतर्गत रखते हैं।

सब्सिडी और प्रतिकार उपायों पर समझौता

विश्व व्यापार संगठन (WTO), सब्सिडी और प्रतिकार उपायों पर समझौता (The Agreement on Subsidies and Counter Vailing Measures) के द्वारा सरकारी सब्सिडी के उपयोग और सब्सिडाइज व्यापार, जो वाणिज्य को दुष्प्रभावित करते हैं, के नियमन के लिए नियम बनाता है। इस समझौते के अनुसार सब्सिडी को सरकार के वित्तीय प्रोत्साहन के रूप में परिभाषित किया जाता है। सब्सिडी में शामिल है-

- प्रत्यक्ष फंड अंतरण (A Direct Transfer of Funds)
- फंड या देनदारियों का संभावित अंतरण (A Potential Transfer of Funds or Liabilities)
- Forgone Government Revenue इसका आशय विभिन्न वर्गों को दिए गए विभिन्न सरकारी प्रोत्साहनों जैसे Tax Credit के राजस्व प्रभाव से है।

लाभार्थी के दृष्टिकोण से

- **विशिष्ट सब्सिडी (Specific Subsidies)**- विशिष्ट सब्सिडी ऐसी सब्सिडी होती है जो विशिष्ट कंपनी, क्षेत्र या लोगों को प्रदान की जाती है।
- **गैर विशिष्ट सब्सिडी (Non-Specific)**- यह ऐसी सब्सिडी होती है, जिसका लाभ सबको मिलता है।

विभिन्न प्रकार की सब्सिडी

विभिन्न प्रकार की सब्सिडी

1. उत्पादन	2. खपत
3. निर्यात	4. आयात
5. परिवहन	6. तेल
7. कर्मचारी	

भारत में सब्सिडी प्राप्त करने वाले क्षेत्र

- **कृषि क्षेत्र में**- कृषि क्षेत्र में सब्सिडी स्थानीय खेती के विकास, कृषि में रोजगार के विकास, मूल्य नियंत्रण तथा किसानों की स्थिति सुधारने के लिए प्रदान की जाती है। देश में सब्सिडी सबसे पहले उर्वरक, सिंचाई और गाँव में बिजली शुरू करने के लिए दी गई थी। 1960 में आई हरित क्रांति को लाने में सब्सिडी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिस कारण उत्पादन में बढ़ोतरी हुई और 1967 के बाद से धान और गेहूँ प्रमुख फसलें बन गई।
- **विनिर्माण क्षेत्र में**- मशीनों, औजारों और श्रम का उपयोग करके सामान बनाने की क्रिया को विनिर्माण कहते हैं। विनिर्माण क्षेत्र में हस्तकला से लेकर उच्च तकनीकी तक बहुत सी मानव गतिविधियाँ शामिल हैं। सरकार

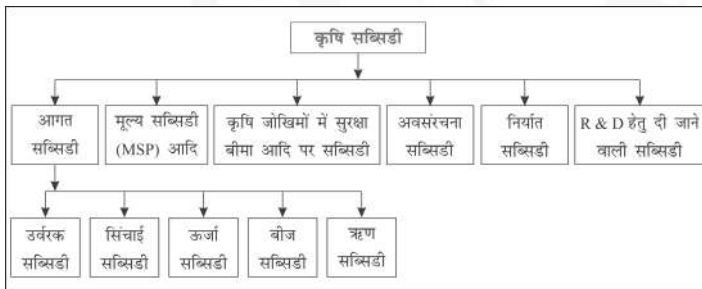
द्वारा विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मैनुफैक्चरिंग पर फोकस किया जा रहा है। अतएव मैनुफैक्चरिंग को प्रोत्साहन देने के लिए उद्योगों को 25% तक की पूंजीगत सब्सिडी प्रदान की जा रही है।

- **सेवा क्षेत्र में-** सेवा क्षेत्र में पर्यटन, स्वास्थ्य, विज्ञापन संबंधी सेवाएं, परिवहन, लॉजिस्टिक, आपूर्तिशृंखला, भंडारण, खुदरा बिक्री, होटल, रेस्तरां, दूरसंचार सेवाएं आदि शामिल हैं। सेवा क्षेत्र से जुड़े लघु एवं मध्यम उद्योगों को ऋण सुविधा प्रदान करके या सेवा में सरकार द्वारा वित्तीय सहायता देकर, सब्सिडी प्रदान की जाती है।

सब्सिडी निम्न प्रकार से दी जा सकती है-

- लोगों को कम कीमत पर वस्तुएं उपलब्ध कराकर।
- लोगों के बैंक खातों में धन के ट्रांसफर द्वारा।
- लोगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को ऊंची कीमत पर खरीदने से।
- ब्याज या ऋण सब्सिडी।
- इन काइंड सब्सिडी जिसमें फ्री मेडिकल सेवा, दिव्यांगों के लिए उपकरण उपलब्ध कराना आदि शामिल हैं।
- कर राहत के रूप में सब्सिडी।
- नियामकीय सब्सिडी लोक क्षेत्रक द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमत कम रखना ताकि उद्योगों एवं उपभोक्ताओं को लाभ हो सके। उदाहरण के लिए किसानों को बिजली लागत की तुलना में कम कीमत पर उपलब्ध करवाना।

कृषि क्षेत्र को सब्सिडी (Subsidies to Agriculture Sector)



आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2020-21 के अनुसार कोविड-19 महामारी के दौरान कृषि की विकास दर में 3.4% की वृद्धि होने से जीडीपी में कृषि की हिस्सेदारी 17.8% (वर्ष 2019-20) से बढ़कर 19.9% (वर्ष 2020-21) हो गयी है। कृषि एवं इस पर निर्भर जनसंख्या के विकास के लिए सरकार लंबे समय से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कृषि क्षेत्र को सब्सिडी प्रदान करती रही है। इसके प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं-

- **आगत सब्सिडी-** विभिन्न कृषि आगतों को बाजार मूल्य से कम कीमत पर किसानों को वितरण द्वारा सब्सिडी प्रदान की जा सकती है। बाजार मूल्य तथा वितरित मूल्य के अंतर के बराबर सब्सिडी होगी। इसके अंतर्गत कई तरह की सब्सिडी प्रदान की जाती है।
 - **उर्वरक सब्सिडी-** इसके तहत सामान्य बाजार मूल्य से कम मूल्य पर रासायनिक एवं गैर-रासायनिक उर्वरक किसानों को वितरित किया जाता है। आयातित उर्वरकों पर टैरिफ हटाकर भी किसानों को सहायता प्रदान की जाती है।
 - **सिंचाई सब्सिडी-** किसानों को प्रदत्त ऐसी सब्सिडी जिसे समुचित सिंचाई सुविधा हेतु दिया जाता है। सिंचाई सब्सिडी सिंचाई संरचना

के संचालन एवं रख-रखाव में लगने वाले लागत एवं किसानों द्वारा दिये जाने वाले शुल्क का अंतर है। सरकार, किसानों को निजी सिंचाई सुविधा विकसित करने के लिए भी सब्सिडी प्रदान करती है। इसे नहर, बांध आदि जिसे सरकार द्वारा निर्मित किया जाता है और जिसकी सेवाओं के उपयोग के बदले सरकार या तो शुल्क नहीं लेती या फिर बहुत कम लेती है, के द्वारा प्रदान किया जाता है। यह सब्सिडी निजी सिंचाई उपकरण जैसे पंप सेट के माध्यम से भी हो सकती है।

- **ऊर्जा सब्सिडी-** कृषकों को विद्युत, सरकार द्वारा कम कीमत पर प्रदान की जाती है। विद्युत का उपयोग मुख्यतः सिंचाई हेतु किया जाता है।
- **बीज सब्सिडी-** उच्च उत्पादकता वाले बीजों को सरकार द्वारा सब्सिडी के माध्यम से किसानों को कम मूल्य पर उपलब्ध कराई जाती है। उच्च उत्पादकता वाली बीजों के लिए व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता होती है। सरकार इन अनुसंधान व्यय को वहन करती है।
- **क्रेडिट सब्सिडी-** किसानों को क्रेडिट की उपलब्धता एक बड़ी समस्या है। वे बाजार से ऋण उठाने में सब्सिडी असमर्थ होते हैं क्योंकि ज्यादातर किसान सीमांत किसान हैं और वे बैंकिंग प्रक्रियाओं एवं 'कोलेटरल' आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं हैं। साथ ही जीविका निर्वहन कृषि होने के कारण, कृषि में विभिन्न जोखिमों के कारण ज्यादातर किसान ऊंची ऋण लागत वहन नहीं कर सकते। इस कारण सरकार किसानों के ऋण के लिए गारंटी प्रदान करती है एवं ब्याज सब्सिडी प्रदान करती है।
- **मूल्य सब्सिडी-** किसानों के उत्पादन के मूल्य सुरक्षा के लिए सरकार प्रमुख फसलों पर न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। न्यूनतम समर्थन मूल्य एक गारंटी होती है कि उत्पादन की कीमत गिरने पर सरकार निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर किसानों से उनके उत्पाद खरीद लेगी। इसके तहत MSP एवं बाजार मूल्य के बीच अंतर सब्सिडी मूल्य होता है।
- **संरचनात्मक सब्सिडी-** विभिन्न संरचना के निर्माण जैसे कोल्ड स्टोरेज, बाजार निर्माण आदि के द्वारा सरकार किसानों की सहायता करती है।
- **आपदाओं से जोखिम की सुरक्षा-** सरकार किसानों के उत्पादन को जोखिम से बचाने के लिए बीमा हेतु प्रोत्साहित करती है और प्रीमियम का बड़ा हिस्सा स्वयं वहन करती है।
- **निर्यात सब्सिडी-** कृषि उत्पादों के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान की गई सब्सिडी निर्यात सब्सिडी के रूप में संदर्भित की जाती है।

उर्वरक क्षेत्र में प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (Direct Benefit Transfer in Fertilizer Area)

भारत सरकार ने अक्टूबर, 2016 से प्रायोगिक आधार पर उर्वरक सब्सिडी के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डीबीटी) प्रणाली शुरू की है। प्रस्तावित उर्वरक डीबीटी प्रणाली के अंतर्गत, विभिन्न उर्वरक स्तरों पर 100 प्रतिशत सब्सिडी लाभार्थी का खुदरा विक्रेता द्वारा की गई वास्तविक बिक्री के आधार पर उर्वरक कंपनियों को जारी की जाएगी। किसानों/खरीदारों को सभी सब्सिडी प्राप्त उर्वरकों की बिक्री प्रत्येक खुदरा दुकानों पर स्थापित बिक्री स्थल (पीओएस) उपकरण के जरिए की जाएगी तथा लाभार्थियों का आधार कार्ड, केवाईसी, वोटर पहचान पत्र, इत्यादि के जरिए पहचान की जाएगी।

डीबीटी योजना के कार्यान्वयन में विक्रय लेनदेन करने से पहले प्रत्येक खुदरा दुकान पर पीओएस उपकरण के विकास, पीओएस उपकरण का उपयोग करने के लिए खुदरा विक्रेताओं को प्रशिक्षण खुदरा केंद्र पर वास्तविक भंडार का सत्यापन करने के पश्चात पीओएस उपकरण में स्टॉक आरंभिकरण करने की आवश्यकता होती है।

डीबीटी योजना के लाभ (Profit of Direct Benefit Transfer Scheme)

- प्रस्तावित डीबीटी ढाँचा लाभार्थियों को दिया जाने वाला सब्सिडी भुगतान तंत्र है जिसे कि राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किया जा रहा है। अर्थात् सभी किसानों को इसका लाभ मिलेगा।
- यह लाभार्थी का आधार आधारित डाटा बेस सृजित करता है तथा खरीददार के स्तर पर लेनदेन पारदर्शिता प्रदान करता है।
- सब्सिडी भुगतान को वास्तविक बिक्री से जोड़कर मूल्य शृंखला के साथ निधि अर्थात् विनिर्माता से लाभार्थी को अधिक पारदर्शी तथा तीव्र पता लगाने को सुगम बनाती है।
- उर्वरकों का विपणन कम होना अनुमानित है।

नीम लेपित यूरिया का मुद्दा क्यों जरूरी है?

यूरिया के जलीयकरण और नाइट्रीकरण द्वारा यूरिया की क्षति एक बड़ी समस्या है, इस समस्या से बचने का सबसे अच्छा उपाय है नीम लेपित यूरिया (Neem Coated Urea)। इससे नाइट्रोजन का लीचिंग तथा वाष्पीकरण द्वारा ह्रास कम हो जाता है। नाइट्रोजन अधिक समय तक मृदा में रहती है जिससे पौधे नाइट्रोजन को लंबे समय तक ग्रहण कर पाते हैं। इससे यूरिया की कम मात्रा से अधिक उत्पादन होने में सहायता मिलती है तथा लागत भी कम आती है।

भारत में कृषि सब्सिडी की प्रासंगिकता (Relevancy of Agricultural Subsidies in India)

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले कृषि प्रधान विकासशील राष्ट्रों के लिए कृषि सब्सिडी महत्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में निम्न बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है-

- भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में कृषि को विकास का इंजन (Engine of Growth) माना गया है क्योंकि भारत का आर्थिक विकास कृषि पर निर्णायक रूप से निर्भर करता है।
- भारत में हरित क्रांति से जुड़ी हुई तकनीकी को किसानों में लोकप्रिय बनाने के लिए यह जरूरी है कि उन तकनीकों पर सब्सिडी उपलब्ध कराई जाए। भारत में अधिकांश किसान सीमांत और लघु प्रकार के हैं, वे बाजार कीमतों पर आधुनिक कृषि आगतों को खरीदने में असमर्थ होते हैं।
- भारत में कृषि सब्सिडी को सामाजिक न्याय के कदम के रूप में भी देखा जा सकता है। इनके माध्यम से कम आय व कम संसाधन वाले किसानों को आर्थिक सहायता दी जा सकती है। वर्तमान में भारत विश्व व्यापार संगठन (WTO) के स्तर पर कृषि सब्सिडी को जारी रखने के लिए इसे एक तर्क के रूप में भी प्रस्तुत कर रहा है।
- भारत में ग्रामीण विकास और आजीविका सुरक्षा की दृष्टि से भी कृषि सब्सिडी महत्वपूर्ण हैं। भारत की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 64% रोजगार के लिए कृषि पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में कृषि सब्सिडी जरूरी हो जाती है।
- वर्ष 2020-21 में वैश्विक भूखमरी सूचकांक (GHI) में भारत 101वें स्थान पर पहुँच गया जबकि वर्ष 2020 में भारत 107 देशों की सूची में 94वें स्थान पर था। भारत, लोगों के पोषण में सुधार करने तथा खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कृषि सब्सिडी को जरूरी मानता है। भारत ने 2012 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (National Food Security Act) भी लागू किया। इसे व्यवहारिक रूप से लागू करने के लिए अन्य बातों के अलावा खाद्यान्न की सार्वजनिक शेयर होल्डिंग (Public Stockholding of Food Grains) के पर्याप्त स्तर को बनाए रखना जरूरी है।
- भारत में मुद्रास्फीति भी एक बड़ी समस्या है। अधिकांश मामलों में खाद्य

मुद्रास्फीति (Food Inflation) इसका मुख्य कारण होता है। FCI द्वारा भंडारित खाद्यान्न बाजार में होने वाले उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने में बहुत लाभकारी है।

- भारत में व्यापारिक उदारीकरण के लागू होने और विश्व व्यापार संगठन के प्रति हमारी प्रतिबद्धताओं के संदर्भ में कृषि पर सब्सिडी देना आवश्यक हो गया है, विशेष रूप से तब जबकि विकसित राष्ट्र पहले से ही सब्सिडी के उच्च स्तर पर पहुँचे हुए हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो सस्ते विदेशी आयातित माल से प्रतिस्पर्धा करना मुश्किल होगा।

कृषि सब्सिडी के विपक्ष में तर्क (Argument Against Agricultural Subsidies)

पिछले कुछ वर्षों में भारत की कृषि सब्सिडी विवादास्पद रही हैं। इस संदर्भ में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं-

- भारत में सार्वजनिक व्यय के ऊँचे होने का एक कारण कृषि सब्सिडी भी है, इससे राजकोषीय घाटा बढ़ रहा है। राजकोषीय घाटा उच्च होने से न केवल सरकार की भुगतान क्षमता पर प्रश्न चिह्न लगता है बल्कि ब्याज दर भी बढ़ती है, जिससे निजी निवेश पर नकारात्मक प्रभाव होता है। भारत में निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण की पारिस्थितिकी में यह विरोधाभासी है।
- नई फसलों पर दी जा रही सब्सिडी परंपरागत फसलों को हतोत्साहित करती है, जबकि परंपरागत कृषि प्रादेशिक रूप से पर्यावरण के अधिक अनुकूल है।
- सिंचाई सब्सिडी पानी के अधिक उपयोग को बढ़ावा दे रही हैं। कृषि सब्सिडी के कारण भारत का क्रापिंग पैटर्न प्रभावित हो रहा है। इनके कारण दालों और मोटे अनाजों का उत्पादन कम हो रहा है तथा गेहूँ व चावल के उत्पादन को अधिक बढ़ावा मिल रहा है।
- भारत में असंतुलित उर्वरक सब्सिडी के कारण उर्वरक इस्तेमाल में प्रयुक्त किया जाने वाला नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम अनुपात (NPK Ratio) बुरी तरह बिगड़ गया है जो कृषि उत्पादकता और मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है।
- कृषि सब्सिडी में WTO स्तर पर कई प्रकार के विवादस्पद मुद्दे उत्पन्न हो रहे हैं। उन मुद्दों में विकसित देशों को होने वाला व्यापारिक नुकसान और विकासशील देशों में किसानों को संरक्षण दिए जाने की आवश्यकता, खाद्यान्न सब्सिडी आदि शामिल हैं जो वैश्विक विवाद का कारण बनते हैं।
- यह कहा जाता है कि कृषि सब्सिडी का अधिकांश लाभ बड़े किसानों को ही मिलता है, इससे भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को चोट पहुँच रही है।
- भारत में उर्वरक सब्सिडी का एक बड़ा भाग उर्वरक उत्पादकों को दिया गया। कृषकों के पास उसका लगभग 60% भाग ही पहुँच पाया है।

कृषि सब्सिडी एक आवश्यक 'बुराई' क्यों है?

- सब्सिडियाँ राजकोषीय घाटे को बढ़ाने का काम करती हैं। उच्च राजकोषीय घाटा सरकार की भुगतान क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा वैश्विक रेटिंग को कम करता है।
- कृषि सब्सिडियों के कारण पर्यावरण को हानि पहुँचती है। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों पर दी जाने वाली सब्सिडी के कारण किसान इनका जरूरत से ज्यादा प्रयोग करने लगते हैं। जिससे मानव स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। वर्षा के दौरान ये पदार्थ बहकर नदी अथवा झीलों में चले जाते हैं एवं वहाँ के पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

- कृषि सब्सिडियों से भारत में फसल पैटर्न विकृत हो गया है। गेहूँ और चावल पर अधिक MSP दिये जाने से दालों और मोटे अनाज की उपेक्षा हुई है।
- किसानों को विद्युत पर सब्सिडी देने से न केवल विद्युत की खपत में वृद्धि हुई है बल्कि भू-जल के अतिदोहन से भूमिगत जलस्तर भी नीचे चला गया है।
- असंतुलित रूप से दी जा रही उर्वरक सब्सिडियों से भूमि का NPK संतुलन बिगड़ गया है जो भूमि की उर्वरा शक्ति को प्रभावित कर रहा है।
- इन सब्सिडियों से कृषि के अवसंरचना क्षेत्र में किये जाने वाले निवेश को हतोत्साहित किया है तो दूसरी तरफ परंपरागत कृषि आगतों, जैसे- खाद्य एवं वर्मी कंपोस्ट के प्रयोग को भी हतोत्साहित किया है।
- यद्यपि इन नकारात्मक पक्षों को देखते हुए भी भारत में कृषि सब्सिडियों को पूर्णतः समाप्त कर देना युक्तिसंगत नहीं होगा, बल्कि इन्हें अधिक तार्किक और विवेकपूर्ण (Rational) बनाना होगा।

कृषि सब्सिडी को लेकर भावी रणनीति (Future Strategy for Agricultural Subsidies)

भारत में गरीबी निवारण, खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण विकास, समावेशी विकास, कृषि उत्पादकता, अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा, मुद्रा स्थिति आदि से जुड़ी आवश्यकताओं के मद्देनजर कृषि आगत सब्सिडियों को समाप्त करना उचित नहीं होगा। भारत में कृषि सब्सिडियों को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता लेकिन उनका विवेकीकरण अवश्य किया जा सकता है। इस संदर्भ में निम्न बिंदु विचारणीय हैं-

- कृषि सब्सिडियों को एक समय सीमा के साथ जोड़ा जा सकता है अर्थात् इनमें सूर्यास्त विधायन (Sunset Clause) लाए जा सकते हैं।
- कृषि सब्सिडियों को लक्ष्योन्मुखी बनाए जाने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में खेत के आकार, विशेष फसलों के उत्पादन कृषि क्षेत्र विशेष आदि मानकों को आधार बनाया जा सकता है।
- सब्सिडी की राशनिंग की जानी चाहिए अर्थात् प्रति कृषक सब्सिडी की अधिकतम मात्रा निर्धारित की जा सकती है।
- सब्सिडियों का ढाँचा इस प्रकार होना चाहिए कि फसल उत्पादन में जरूरी सभी प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्वों की कोई कमी न रहे और नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम का अनुपात (NPK Ratio) भी आदर्श स्थिति में बना रहे।
- लोगों को सब्सिडियों के नकारात्मक प्रभाव के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए।
- सब्सिडियों के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का नियमित रूप से मूल्यांकन होना चाहिए।
- सब्सिडियाँ राजनीति से प्रेरित नहीं होनी चाहिए।
- सब्सिडी देने के सही बिन्दु का निर्धारण होना चाहिए अर्थात् इस बात का समाधान जरूरी है कि उसे कृषि आगत के उत्पादक को दिया जाए या सीधे किसान को।
- सब्सिडी के पड़ने वाले प्रभावों का नियमित मूल्यांकन होना चाहिए और उन्हें मापा जाना चाहिए।
- सब्सिडियों के साथ पूँजी निर्माण पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त रणनीति के द्वारा भारत में कृषि सब्सिडियों का उचित विवेकीकरण किया जा सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण (Food Processing)

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का तात्पर्य ऐसी गतिविधियों से है जिसमें प्राथमिक कृषि उत्पादों का तकनीकी द्वारा प्रसंस्करण कर उनका मूल्यवर्धन किया जाता है। उदाहरण के लिए डेयरी उत्पाद, सब्जियाँ, दूध तथा फलों का प्रसंस्करण, पैकेट बंद पेय पदार्थ तथा भोजन आदि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अंतर्गत आते हैं।



लक्ष्य (Aim)

खाद्य प्रसंस्करण का लक्ष्य है- आहार को अधिक सुपाच्य, पोषक बनाने के साथ उसकी 'शेल्फ-लाइफ' में बढ़ोत्तरी। मौसमी बदलावों के साथ उच्च स्तर पर अवशिष्ट पैदा हो सकते हैं। खाद्य पदार्थों के भण्डारण एवं प्रसंस्करण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण खाद्य पदार्थों की कमी हो सकती है। खाद्य प्रसंस्करण में वे सभी प्रक्रियाएँ आती हैं, जिससे कि खाद्य पदार्थ खेत से लेकर उपभोक्ता की प्लेट तक पहुँचता है। इसके अंतर्गत सफाई, श्रेणीकरण तथा पैकेजिंग (फलों-सब्जियों के मामले में) तथा अंतिम चरण से पहले कच्चे माल का रूपांतरण भी शामिल है। मूल्यवर्द्धन (Value addition) प्रक्रियाएँ, जो कि बेकरी उत्पादों, तुरंत खाद्यों (Instant foods) तथा हेल्थ ड्रिंक्स के लिए जरूरी है, भी इस परिभाषा के अंतर्गत आती हैं।

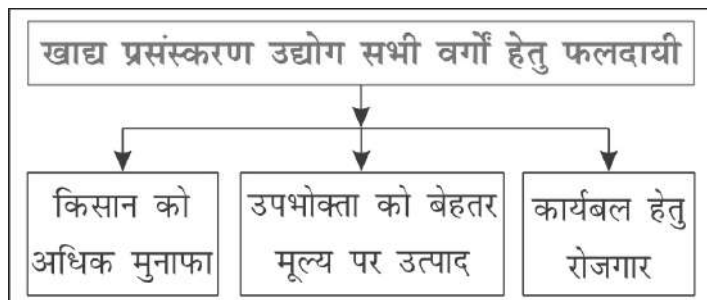
इस उद्योग में निम्न दो प्रकार की प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है-

- **विनिर्माण प्रक्रिया (Manufacturing Process)** - इसके अंतर्गत कृषि, मत्स्य पालन, पशु पालन आदि से जुड़े उत्पादों को श्रम, शक्ति, मशीन आदि का प्रयोग करके वाणिज्यिक मूल्य वाले खाद्य पदार्थों का विनिर्माण किया जाता है।
- **अन्य मूल्य संवर्द्धन प्रक्रियाएँ** - इस प्रक्रिया से खाद्य पदार्थों का जीवन काल बढ़ जाता है या खाद्य पदार्थ को उपभोग के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए खाद्य प्रसंस्करण में यह प्रक्रिया सम्मिलित होती है भले ही उनसे वस्तु का विनिर्माण नहीं हुआ हो। इसमें अनुसंधान एवं विकास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों का ही नतीजा है कि बाजार अनगिनत उत्पादों से भरे पड़े हैं। प्रत्येक कंपनी अपने उत्पादों को बाजारों में उतारने से पहले अनुसंधान और परीक्षण करती है और विभिन्न सुधारों द्वारा अपने उत्पादों का मूल्यवर्धन करती है। विश्व की यू.एन. संस्था के अनुसार भारत में 25-30% खाद्य उत्पाद कृषि भूमि पर ही नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि इनको सुरक्षित रखने तथा संरक्षण की उचित व्यवस्था ही नहीं है।

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का महत्व (Importance of Food Processing Industry in India)

खाद्य प्रसंस्करण वह अवसर प्रदान करता है, जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण समुदायों का विकास संभव हो सकता है। पिछले कुछ दशकों में इस क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ है। लगातार बदलती जीवन शैली, आहार-आदतें तथा

उपभोक्ताओं की बदलती जरूरतें, पूरी दुनिया में इस उद्योग के आयामों को बदल रहा है। खाद्य प्रसंस्करण समाज के सभी वर्गों के लिए फलदायी हैं:



- किसानों को बेहतर प्राप्ति, उच्च उत्पादन प्राप्त होता है और जोखिम घटता है।
- उपभोक्ताओं को विविधता प्राप्त होती है, बेहतर मूल्य पर नये उत्पाद मिलते हैं।
- अर्थव्यवस्था को नये व्यवसाय के उत्पन्न होने तथा कार्यबल को रोजगार मिलने का लाभ मिलता है।

व्यापक उत्पादन आधार के साथ भारत विश्व का अग्रणी खाद्य आपूर्तिकर्ता बन सकता है, दूसरी ओर तेजी से बढ़ते घरेलू बाजार की मांग भी पूरी कर सकता है। भारत के बाजार का आकार बढ़ती आय तथा बदलती जीवन शैली के साथ उत्पादकों, प्रसंस्करणकर्ताओं, संयंत्र निर्माताओं, खाद्य टेक्नोलॉजिस्ट तथा सेवादाताओं के लिए अविवशनीय अवसर पैदा कर रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह उद्योग काफी महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में निम्न बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है-

- भारत के कुल खाद्य बाजार में यह उद्योग 32% का योगदान करता है, इसका वर्तमान मूल्य USD 121 बिलियन अनुमानित किया गया है।
- उत्पादन, उपभोग और निर्यात की दृष्टि से यह भारत का पांचवां सबसे बड़ा उद्योग है।
- वर्तमान में यह लगभग 13 मिलियन लोगों को प्रत्यक्ष रूप से और 35 मिलियन लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार देता है।
- वर्ष 2021-22 तक प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, यह उद्योग भारत के निर्माण क्षेत्र का जीडीपी में लगभग 24.59% योगदान करता है तथा भारत के कुल खाद्यान्न निर्यात में लगभग 23% तक योगदान करता है।

उपर्युक्त के अलावा राष्ट्रीय विनिर्माण नीति, 2011 में रोजगार की दृष्टि से बताए गये सबसे महत्वपूर्ण पाँच उद्योगों में इस उद्योग को भी सम्मिलित किया गया है। इस उद्योग का महत्व निम्न बिंदुओं से भी समझा जा सकता है-

- यह उद्योग, कृषि और उद्योग के बीच में एक कड़ी का कार्य करता है और इस प्रकार यह समन्वित विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।
- यह उद्योग, भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उत्थान में निर्णायक भूमिका का निर्वहन कर सकता है।
- यह उद्योग, फसल विविधीकरण, कृषि के वाणिज्यीकरण तथा किसानों को उचित मूल्य दिलाने में मदद करता है। इसके अलावा यह कृषि क्षेत्र में मूल्य संवर्द्धन व रोजगार की संभावनाओं को बढ़ावा देता है। कुछ लोगों के अनुसार यह छुपी हुई बेरोजगारी दूर करने में भी मदद कर सकता है।
- यह उद्योग, खाद्य वस्तुओं की बर्बादी को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में फल व सब्जियों का लगभग 35% भाग बिना किसी उपयोग के बर्बाद हो जाता है।
- यह भारत में खाद्य सुरक्षा जैसे निर्णायक मुद्दों को हल करने तथा लोगों को अच्छा पोषक भोजन उपलब्ध करवाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र से संबंधित मुख्य समस्याएँ (Main Problems Related to Food Processing Sector)

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की मुख्य समस्याओं को 'Ministry of Food Processing Industries (MOFPI)' के सर्वे पर आधारित निम्न बिंदुओं के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है-

- **आधारभूत संरचनाओं की कमी**- यह इस उद्योग की सबसे बड़ी समस्या मानी गई है, इस संदर्भ में चिंता के मुख्य विषय निम्न हैं-
 - **लम्बी एवं विखण्डित आपूर्ति शृंखला**- इसके कारण एक तो आगंतों की बर्बादी होती है तथा दूसरी लागतों के उच्च हो जाने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसके अलावा आगंतों को प्राप्त करने में विलम्ब भी होता है। उचित गुणवत्तायुक्त आगत को खरीदना मुश्किल हो जाता है। इसके कारण कंपनियों को संविदा कृषि में निवेश करने की आवश्यकता पड़ती है।
 - **अपर्याप्त शीत भंडारण की सुविधा**- भारत में वर्तमान में शीत भंडारण की क्षमता लगभग 374.25 लाख मिलियन टन है। इसके 80% भाग का प्रयोग आलू के संरक्षण में किया जाता है। इसके अलावा, अधिकांश शीत भंडार एकल वस्तु आधारित हैं। इसके साथ, उपलब्ध शीत भंडारों का पूर्ण उपयोग भी नहीं हो पाता है।
 - **अपर्याप्त गोदाम सुविधा**- भारत में पर्याप्त गोदाम सुविधाओं का अभाव है और इस क्षेत्र में संरचनात्मक कमियाँ हैं। भारत में फसल वर्ष 2020-21 में लगभग 29.83 करोड़ टन अनाज का उत्पादन हुआ है जबकि सरकार के पास लगभग 95 मिलियन टन के लिए ही गोदाम सुविधा उपलब्ध हैं, इससे काफी अनाज खुले आसमान के नीचे रखना पड़ता है।

गोदाम सुविधाओं को उपलब्ध करवाने में असंगठित क्षेत्र का 80% योगदान है। संगठित क्षेत्र के गोदाम सुविधाओं का लगभग 70% भाग सरकार के द्वारा उपलब्ध करवाया गया है। स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में संगठित निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

यातायात व परिवहन से जुड़ी कमियाँ-

- भारत में सड़क आधारभूत संरचना पर्याप्त नहीं है। कुल सड़कों का केवल 2% भाग ही राष्ट्रीय राजमार्ग के रूप में उपलब्ध है। भारत में ट्रक/ट्रेलर एक दिन में औसतन रूप से 250 से 300 km की दूरी तय कर पाते हैं जबकि अंतर्राष्ट्रीय औसत 600 से 800 km प्रतिदिन का है। भारत के अधिकांश सड़कों पर 16.2 टन का वजन ही ले जाया जा सकता है, जबकि USA में यह सीमा 36 टन है।
- भारत में बंदरगाह से जुड़ी आधारभूत संरचना को बढ़ाने की भी आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों में भारत की बंदरगाह क्षमता बढ़ी है लेकिन इसका सड़कों से पर्याप्त जुड़ाव नहीं होने के कारण लागत में बढ़ोत्तरी एवं विलम्ब उत्पन्न होता है। मानवीय श्रम पर अधिक निर्भरता और निम्न तकनीकी का प्रयोग होने के कारण भारत में जहाजों को खाली करने व भरने का समय बढ़ जाता है। एक अध्ययन में यह समय 10 दिन पाया गया है जबकि हांगकांग में यह साढ़े तीन घंटे है। भारत में किसी एक आयात कंटेनर (Import Contener) बॉक्स की औसत लागत USD 500 से 520 आती है जबकि विदेशों में यह 300 से 350 ही है।
- **एक व्यापक राष्ट्रीय नीति की कमी**- भारत का खाद्य प्रसंस्करण उद्योग एक व्यापक राष्ट्रीय नीति के बजाए विभिन्न प्रकार के कानूनों से शासित होता है इस क्षेत्र के विकास को अवरुद्ध करने का यह दूसरा सबसे बड़ा कारण माना गया है।
- **खाद्य संरक्षा (Food Safety) संबंधी कानून**- भारत में खाद्य संरक्षा को

सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न नियंत्रणकारी कानून एक-दूसरे को पूरकता प्रदान करने के लिए जारी किए गए हैं, परंतु इसके कारण नियामक वातावरण में असंगति एवं भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई है। भारत में वर्ष 2006 में 'खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम' (Food Safety and Standards Act) पारित किया गया है, इसके माध्यम से खाद्य क्षेत्र में चले आ रहे आठ प्रकार के कानूनों को एक ही स्थान पर लाया गया तथा इस क्षेत्र का नियमन करने के लिए FSSAI (Food Safety and Standards Authority of India) की स्थापना की गई। MOFPI द्वारा किए गए एक अन्य व्यापक अध्ययन में यह पाया गया कि अधिकांश प्रयोगशालाएं मान्यता प्राप्त नहीं हैं तथा वे घरेलू बाजार एवं निर्यातों से जुड़ी परीक्षण आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती हैं।

- **केंद्र व राज्य सरकारों की नीतियों में असंगतियाँ**— इस क्षेत्र में केंद्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की नीतियाँ एवं योजनाओं के संचालन में आपसी समन्वय की कमी को देखा गया है इसके अलावा केंद्र व राज्य सरकारों की नीतियों में भी टकराहट देखने को मिलती है।
- **प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी**— किसान से प्रबंधक तक की मूल्य शृंखला में भारत में अच्छी प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी देखने को मिलती है, हर स्तर पर तकनीकी ज्ञान पर्याप्त नहीं है। प्रशिक्षित मानव शक्ति की कमी के कारण अत्याधुनिक तकनीकी का प्रयोग करना मुश्किल हो जाता है। उपर्युक्त के अलावा निम्न समस्याएं भी महत्वपूर्ण हैं—
- **कच्चे माल से जुड़ी सीमाएं**— फल, सब्जियों, गेहूँ और चावल के उत्पादन में भारत की स्थिति संतोषप्रद होने के बावजूद यह देखा गया है कि सही समय पर पर्याप्त मात्रा में सही गुणवत्ता युक्त उत्पाद को प्राप्त करना मुश्किल होता है, इसके पीछे कई कारण हैं जैसे कि कृषि करने की सही विधि का प्रयोग नहीं करना, बीजों का गलत रोपण, आधुनिक कृषि मशीनरी का अभाव, अस्वच्छ फसल कटाई की विधियाँ, अपर्याप्त कृषि विस्तार प्रयास आदि।
- **व्यावहारिक अनुसंधान की कमी**— भारत के अनुसंधान एवं विकास (R & D) संस्थान वैश्विक स्तर के नवीन उत्पादों, प्रक्रियाओं और मशीनों को उपलब्ध करवाने में असमर्थ रहे हैं। विश्व निर्यातों (खाद्य प्रसंस्करण) में भारत के बहुत कम योगदान (1.5%) का यह एक बड़ा कारण है। भारत में विभिन्न निर्यातोन्मुखी इकाईयों की स्थापना के लिए जरूरी मशीनों का आयात विदेशों से करना पड़ता है। बनाना पेस्ट, फल रस, छंटाई, सफाई, धुलाई, पैकेजिंग आदि से जुड़ी मशीनें बाहर से आयात की जाती हैं।
- **कारोपण संबंधी मुद्दे**— वर्तमान में विभिन्न खाद्य वस्तुओं के अधिकतम खुदरा मूल्य में 12 से 15% अप्रत्यक्ष कर जुड़ा रहता है, इससे कीमतें ऊँची हो जाती हैं।
- **पुरानी तकनीकी के प्लांटों का उपयोग**— खाद्य प्रसंस्करण के कई प्लांट पुराने हैं और वे पारंपरिक तकनीकियों का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा प्लांटों का आकार भी छोटा है, छोटे प्लांट नवीनतम तकनीकी जो सामान्यतया: महंगी होती है का प्रयोग करने में असक्षम होते हैं।

इसके अलावा न तो भारत में पश्चिमी देशों की भांति खाद्य पदार्थों की जांच हेतु आधुनिक तकनीक से सुसज्जित प्रयोगशालाएं मौजूद हैं और न ही यहां उपलब्ध जांच मानकों में एकरूपता है। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप में विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होती है जिसके कारण न केवल उपभोक्ता बल्कि किसान के मन में भी क्षोभ की स्थिति उत्पन्न होती है। साथ ही भारत में खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में आवश्यक अनुसंधान एवं विकास की पर्याप्त कमी नजर आती है, जिसके कारण इस उद्योग में न तो नवाचार ही हो पाता है और न ही जागरूकता का वातावरण तैयार हो पाता है।

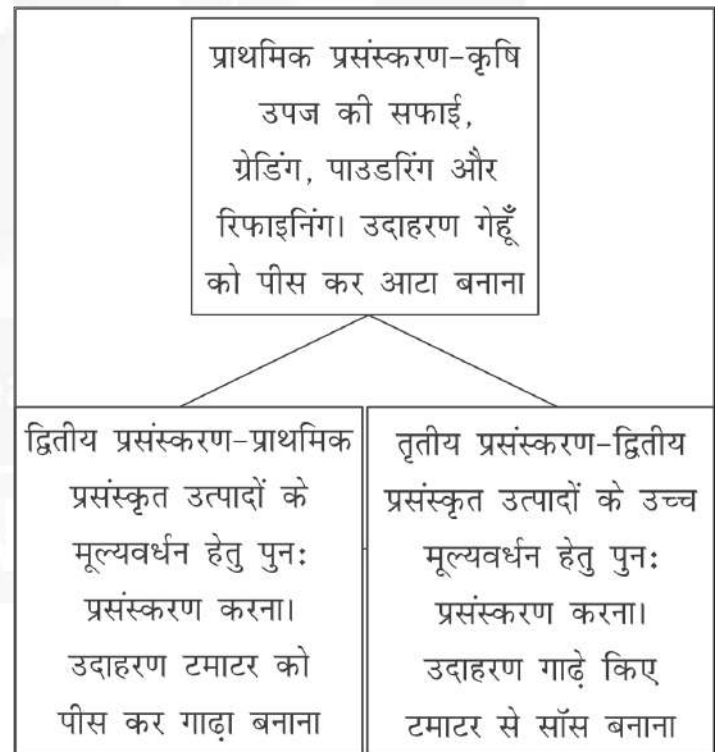
आपूर्ति शृंखला प्रबंधन (Supply Chain Management)

आपूर्तिशृंखला प्रबंधन के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो आगतों जैसे कि कच्चा माल, पूंजीगत उपकरण, अन्य साधन आदि को अंतिम उत्पादों में कुशलता से परिवर्तित करते हुए अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जाता है।

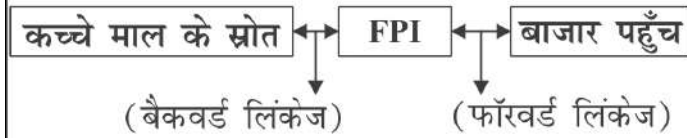
दूसरे शब्दों में Supply Chain Management (SCM) के अंतर्गत 'एक सिरे से दूसरे सिरे' तक मूल्यशृंखला को सम्मिलित किया जाता है जो अधिग्रहण, प्रसंस्करण, परिवहन, उपभोक्ता तक वितरण आदि को सम्मिलित करती है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए इसे 'Farm to Fork' कहा जा सकता है। भारत में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अकुशल SCM के कारण बड़ी मात्रा में खाद्य वस्तुओं की बर्बादी होती है। एक अध्ययन के अनुसार, SCM की अकुशलता के कारण लगभग 1 ट्रिलियन भारतीय रुपये के बराबर फल व सब्जियाँ नष्ट हो जाती हैं। यह भी कहा गया है कि खाद्यान्नों के कुल उत्पादन का 5-6% भाग प्रतिवर्ष बेकार हो जाता है यह स्थिति उस समय और भी भयावह हो जाती है, जब भारत में खाद्य सुरक्षा के कानूनी अधिकार के सार्वभौमिकरण की बात चल रही हो। एक अन्य अध्ययन में यह कहा गया है कि उपभोक्ता तक वस्तु के पहुँचने तक उसकी गुणवत्ता में 60% कमी आ जाती है। इसी प्रकार यह कहा गया है कि भारत के उपभोक्ताओं को वर्तमान SCM की स्थिति में सुधरी हुई SCM की तुलना में 35% अधिक कीमत देनी पड़ती है। स्पष्ट है कि भारत में SCM में सुधार एक महत्वपूर्ण मुद्दा है इस पर अपेक्षित ध्यान जरूरी है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में आपूर्ति शृंखला

फसल कटाई एवं संग्रह→छंटाई करना→साफ करना→ श्रेणीकरण (Grading)→गुणवत्ता नियंत्रण→डिब्बा बंद उपनाम (Packing Labelling)→भंडारण विपणन→खुदरा विक्रेता→उपभोक्ता



- **बैकवर्ड लिंकेज**- इसका आशय कच्चे माल की आपूर्ति के स्रोतों और FPIs (Food Processing Industries) के मध्य संपर्क से है। उदाहरण के लिए, एक कंचअप विनिर्माता को टमाटर जैसे कच्चे माल की आपूर्ति।
- **फॉरवर्ड लिंकेज**- इसका आशय भौतिक अवसंरचना जैसे भंडारण, सड़क और रेल नेटवर्क इत्यादि वितरण नेटवर्क के माध्यम से बाजारों और FPIs के मध्य संपर्क से है। कच्चे माल के स्रोत FPI बाजार पहुँच



सुदृढ़ लिंकेज स्थापित करने में निम्नलिखित चुनौतियाँ विद्यमान हैं-

- कच्चे माल उत्पादन की मौसम पर उच्च निर्भरता।
- अंतर्राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मानकों और घरेलू खाद्य कानूनों में विसंगतियाँ।
- प्रसंस्करण उद्योग का निम्न स्तर।
- किसानों और लघु प्रक्रमकों तक सूचना की अपर्याप्त पहुँच।
- मध्यस्थों की अत्यधिक संख्या।
- कानूनों की अधिकता के कारण विनिर्देशों में विरोधाभास, विवादित दृष्टिकोण, समन्वय में कमी और प्रशासनिक विलंब होता है।
- विखंडित भू-जोतों के कारण लघु और बिखरा हुआ बिक्री योग्य अधिशेष।
- अल्प विकसित खाद्य परीक्षण नेटवर्क।
- शीत-भंडारण, परिवहन सुविधाओं, विद्युत इत्यादि जैसी अवसंरचनाओं की निम्न स्तरीय सुविधाएँ।

भारत के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का आपूर्ति शृंखला प्रबंधन (Supply Chain Management of Food Processing in India)

यह ध्यान देने योग्य है कि भारत के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का आपूर्ति शृंखला प्रबंधन कुशल नहीं है। इस संदर्भ में निम्न बिंदु विचारणीय हैं-

- State APMC Act संविदा कृषि को अनुमति नहीं देता है। इसके कारण खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की इकाईयों को सही गुणवत्ता का कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उचित समय पर नहीं मिल पाता है। आपूर्तिशृंखला लंबी और विखंडित हो जाती है। इससे उत्पादन की लागतें बढ़ जाती हैं।
- State APMC Act प्रत्यक्ष विपणन को अनुमति नहीं देता है इसके कारण भी इस उद्योग की आपूर्तिशृंखला पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- भारत में शीत भंडार गृह, गोदाम आदि की कमी के कारण कृषि उत्पादन का एक बड़ा भाग बिना किसी उपयोग के बेकार चला जाता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में शीत भंडार गृह आदि की कमी के कारण फल सब्जी का लगभग 35% भाग बेकार चला जाता है। इसी प्रकार खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 5%-6% भाग बिना किसी उपयोग के बेकार हो जाता है। इस प्रकार की बर्बादी से आपूर्ति की कुल मात्रा प्रभावित हो जाती है।
- भारत में इस उद्योग से जुड़ी विभिन्न प्रकार की वस्तुएं घरेलू स्तर पर नहीं उपलब्ध हो पाती हैं। इसका बाहर से आयात करना पड़ता है। पेस्ट, फल रस, सफाई, कटाई, धुलाई आदि से जुड़ी हुई चीजें बाहर से आयात करनी पड़ती हैं।
- भारत में कृषि संबंधी प्रशिक्षण आदि की कमी के कारण किसानों द्वारा

अस्वस्थ कटाई की जाती है। जिसके कारण खाद्य प्रसंस्करण को कच्चे माल के प्रयोग में कठिनाई होती है।

- भारत में अनौपचारिक रूप से कार्य करने वाले व्यापारियों की संख्या अधिक है जिसके कारण इस क्षेत्र की कंपनियों को उपभोक्ताओं तक माल पहुंचाने में निचले स्तर की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।
- भारत में प्रसंस्करण का अत्याधुनिक ढांचा नहीं है जिसके कारण अन्य राष्ट्रों की तुलना में प्रसंस्करण का स्तर काफी नीचे है।

आगे की राह/उपाय

- **अनुसंधान और विकास पर फोकस**- इस उद्योग का वैश्विक स्तर के उत्पादों का निर्माण करने के लिए अनुसंधान और विकास पर ध्यान देना चाहिए।
- **कृषि प्रशिक्षण और क्षमता का विकास**- किसानों को कृषि की बेहतर विधियों का प्रशिक्षण देकर उनका क्षमता का विकास किया जाना चाहिए ताकि वे अन्य बातों के अलावा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन कर सकें।
- **कृषि मशीनरी का आधुनिकीकरण**- कृषि मशीनरी में आधुनिकता लायी जानी चाहिए तथा किसानों में आधुनिक कृषि मशीनों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- **संविदा कृषि और प्रत्यक्ष विपणन**- इसकी अनुमति दी जानी चाहिए ताकि इस उद्योग की इकाईयों में ऊपर की ओर आपूर्तिशृंखला (Upstream Supply Chain) में सुधार हो सके।
- **इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार**- भारत में शीत भंडार गृह और गोदाम से जुड़ी इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार किया जाना चाहिए तथा किसानों में भंडारण की वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। भारत में परिवहन प्रणाली के अंतर्गत प्रशीतित ट्रक एवं जहाज (Refrigerated Trucks & Ships) से जुड़े इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास किया जाना चाहिए।
- **निजी क्षेत्र व FDI को आकर्षित करना**- प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की खुदरा क्षेत्र में FDI के स्तर को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों को खुदरा क्षेत्र में 100% FDI की अनुमति दे दी गयी है। हालांकि यह अनुमति विवादास्पद बनी हुई है।

इस दिशा में सरकार ने पहला कदम उठाते हुए मल्टी ब्रांड रीटेलिंग में सीधे विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति दे दी है। कुछ विपक्षी दलों द्वारा विरोध के बावजूद यह सही कदम है।

इससे ज्यादातर ढांचागत मुद्दों का समाधान निकल सकेगा और विशेषकर अप्रत्यक्ष क्रियाकलापों में भी सुधार आयेगा। इससे आपूर्ति-शृंखला का एक समवेत विकास हो सकेगा, पारदर्शिता आयेगी, शीत भंडारणशृंखला और वेयर हाउस निर्माण में सहायता मिलेगी। सीधे विदेशी निवेश से टेक्नोलॉजी का प्रस्फुटन और प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा मिलेगा। इसके कारण निजी क्षेत्र की भागीदारी, पूरी शृंखला में बढ़ जायेगी।

हालांकि इस व्यवस्था को लागू करने में एक महत्वपूर्ण कदम होगा, राज्य-सरकारों द्वारा संचालित सहकारी समितियों संबंधी कानून में संशोधन। इस संशोधन से किसान अपनी उपज को उन पार्टियों को बेच सकेंगे जो खाद्य-प्रसंस्करण के इच्छुक हैं। इससे निजी-क्षेत्र ऐसी अप्रत्यक्ष व्यवस्था को मजबूती देगा, जिसमें वह किसानों से उनकी उपज सीधे खरीद सके। साथ ही आपूर्तिशृंखला का भी विकास होगा।

इन्हीं कारणों से केंद्र सरकार ने सीधे विदेशी निवेश को मंजूरी दी है, बशर्ते कि राज्य सरकारें सहमत हों।

- **मेगा फूड पार्क का विकास-** भारत में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में इंफ्रास्ट्रक्चर को मजबूती देने के लिए मेगा फूड पार्क की अवधारणा पर जोर दिया जाना चाहिए और इनकी संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।

प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की रिटेलिंग में 100% FDI dks vuqefr (Permission of 100% FDI in Retailing of the Food Processing Material)

- **प्रस्तावना-** वर्ष 2016 में भारत सरकार द्वारा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ की खुदरा बिक्री को अनुमति दे दी गयी। इस सहमति से खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की इकाईयों, उपभोक्ताओं, किसानों आदि को लाभ प्राप्त होगा, हालांकि भारत का व्यापारी वर्ग इस निर्णय से खुश नहीं है।
- **संभावित लाभ-** इस निर्णय से खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की 'Downstream' आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद मिलेगी। Tesco, Mark & Spencer जैसी कंपनियाँ प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की खुदरा बिक्री में निवेश कर सकती हैं। इससे खाद्य प्रसंस्करण की इकाईयों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में आसानी होगी।

इस निर्णय से थ्रवक प्दति विशेष रूप से ठंढा मदक प्दति में निवेश बढ़ेगा। यह ध्यान देने योग्य है कि खाद्य क्षेत्र में भारत की ठंढा मदक प्दति (जैसे कि Cold Storage, Warehouse, Processing, Packaging, Grading आदि) काफी कमजोर है। यदि ऐसा होता है तो इस उद्योग की न्वेजतमंड आवश्यकतायें भी पूरी हो सकती हैं। इस निर्णय से भारत के खाद्य क्षेत्र में कार्य कर रहे म.कॉमसँजंतज नचे जैसे कि ठपह.ठॅमजए छतवमिते आदि थ्क आकर्षित कर सकते हैं। इससे खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की क्वूदेजतमंड आवश्यकता अधिक आसानी से पूरी हो पाएगी।

किसान भी सीधे रिटेलर के माध्यम से अपना माल बेच सकते हैं हालांकि इसके लिए State APMC Act में आवश्यक संशोधन करना होगा। उपभोक्ता कम कीमतों पर अच्छे वातावरण में प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ खरीद सकेंगे जैसे कि फल और सब्जियाँ आदि।

खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अवसंरचना विकास (Infrastructure Development in the Food Processing Sector)

सरकार द्वारा उद्योगों की तीव्र संवृद्धि को सुविधाजनक बनाने हेतु भौतिक अवसंरचना के विकास और विस्तार के लिए उच्चतम प्राथमिकता निर्धारित की गई है। सरकार ने खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अवसंरचना विकास के लिए निम्नलिखित उपाय अपना रही है-



- सरकार द्वारा भारत के प्रसंस्कृत उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप गुणवत्ता बढ़ाने, स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का समाधान करने तथा निर्यात अवसरों का उपयोग करने के लिए अनुसंधान संस्थाओं के माध्यम से अनुसंधान एवं विकास द्वारा समर्थित गुणवत्ता नियंत्रण और जाँच प्रयोगशालाओं व केंद्रों के नेटवर्क की स्थापना की जा रही है।
- **मेक इन इंडिया-** 25 सितम्बर, 2014 को शुरू किए गए 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम का उद्देश्य भारत को एक आकर्षक निवेश गंतव्य, विनिर्माण और नवाचार के लिए एक वैश्विक केंद्र के रूप में बढ़ावा देना है। 'मेक इन इंडिया अभियान' के अंतर्गत 25 फोकस क्षेत्रों में से? खाद्य प्रसंस्करण की भी एक क्षेत्र के रूप में पहचान की गई है।
- **खाद्य प्रसंस्करण कोष-** मेगा फूड पार्क के अंतर्गत स्थापित होने वाली खाद्य प्रसंस्करण इकाईयों की सहायता के लिए वित्तीय वर्ष 2014-15 में नाबार्ड के अंतर्गत 2000 करोड़ रुपये के विशेष कोष अर्थात् खाद्य प्रसंस्करण कोष की स्थापना की गई थी। इस कोष द्वारा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को सस्ते ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।
- **राष्ट्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी, उद्यमशीलता एवं प्रबंधन संस्थान-** यह हरियाणा के सोनीपत जिले के कुंडली में स्थित है। यह खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में एक ज्ञान केन्द्र के रूप में कार्य करता है।
- **बूचड़खानों का आधुनिकीकरण-** बूचड़खाने के आधुनिकीकरण के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकियों के प्रयोग उप-उत्पाद के बेहतर प्रयोग, शीतलन सुविधा की व्यवस्था, रिटेल-कोल्ड चेन आदि की व्यवस्था करना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए बिल्ड ऑन ऑपरेटर/ बिल्ड-ऑन ट्रांसफर (BOT) सुविधा को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत विकसित किया जायेगा।
- **एग्रो प्रोसेसिंग क्लस्टर-** इस योजना का उद्देश्य आधुनिक अवसंरचना का विकास करना है, जिससे क्लस्टर के आधार पर प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना हो सके। परिणामस्वरूप कृषक समूहों/उत्पादक, उद्यमियों आदि के प्रसंस्करणकर्ताओं को बाजार से जोड़ा जा सके। इस स्कीम के तहत अवसंरचना के दो मूल घटक हैं, पहला क्षमता को बढ़ाने हेतु अवसंरचना जैसे- सड़क, जलापूर्ति, विद्युत आपूर्ति, जल निकासी, ईटीपी आदि, दूसरा कोर अवसंरचना, जैसे- माल गोदाम, शीतगार, आईक्यूएफ, टेट्रापैक छंटाई आदि। कृषि प्रसंस्करण क्लस्टर की स्थापना के लिए न्यूनतम 10 एकड़ भूमि खरीद या फिर कम से कम 50 वर्षों के लिए पट्टे पर लेने की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है।

कृषि प्रसंस्करण क्लस्टर की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, संयुक्त उपक्रमों, गैर-सरकारी संगठनों, स्व-सहायता समूहों, कृषक उत्पादक संगठनों आदि के द्वारा की जा सकती है। उपर्युक्त सभी संगठन क्लस्टर के लिए भूमि अधिग्रहण या खरीद के लिए वित्त की व्यवस्था, बुनियादी ढाँचे के लिए बाध्य संगठनों से लिपिक आदि को सुनिश्चित करने के लिए कार्य कर सकती है। इन खाद्य प्रसंस्करण क्लस्टरों की यूनिटों को बेचा जा सकता है या फिर पट्टे पर भी दिया जा सकता है।

भारत सरकार द्वारा खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में उठाये गये कुछ मुख्य नीतिगत कदम (Main Policy Steps Taken by The Government in Food Processing Sector)

भारत सरकार द्वारा हाल के कुछ वर्षों में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र को विकसित करने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं, इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्नलिखित हैं-

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की संभावनाओं और महत्व को ध्यान में रखते हुए भारत

सरकार ने वर्ष 1998 में एक अलग 'खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय' का गठन किया है और इसके कार्यक्षेत्र में निम्नलिखित आते हैं-

- फल और खाद्यों का प्रसंस्करण (जमाना और पानी सुखाना शामिल)
- अनाजों का प्रसंस्करण।
- मछलियों का प्रसंस्करण।
- कुछ कृषि उत्पादों जैसी- डेयरी उत्पादन, मुर्गीपालन, अंडे, माँस और ऊन पर आधारित उत्पाद का शीतकरण एवं प्रसंस्करण (Refrigeration and Processing)।
- डबलरोटी, तिलहन, भोज्य पदार्थ, नाश्ते में खाया जाने वाला पदार्थ, बिस्कुट, प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ, शिशु-आहार एवं निःस्त्रावित (Extruded) खाद्य पदार्थ अन्य तैयार भोज्य पदार्थ से जुड़े उद्योग।
- बीयर, बिना मादक प्रकार की बीयर भी शामिल।
- मादक पेय जो बगैर शीरे पर आधारित हो।
- गैस से भरे पेय जल एवं सॉफ्ट ड्रिंक्स।

मेगा फूड पार्क (Mega Food Park) योजना

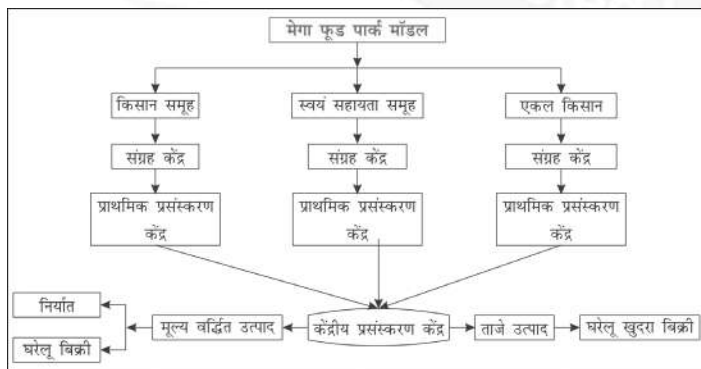
इसे 11वीं पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में ऐसे 30 मेगा फूड पार्कों को खोलने का प्रस्ताव किया गया है, वर्तमान में 22 मेगा फूड पार्क क्रियाशील है।

मेगा फूड पार्क स्कीम का उद्देश्य किसानों, प्रसंस्करणकर्ताओं तथा खुदरा विक्रेताओं को एक साथ लाते हुए कृषि उत्पादन को बाजार से जोड़ने के लिए एक तंत्र उपलब्ध कराना है ताकि मूल्यवर्धन बर्बादी को न्यूनतम, किसानों की आय में वृद्धि और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर सृजित करना सुनिश्चित किया जा सके। अब तक 22 मेगा फूड पार्क कार्यरत है जिसमें नामतः पतंजलि फूड एंड हर्बल पार्क, हरिद्वार, श्रीनी चितूर, नलबाड़ी, तुमकुर, रांची, खरगौन, रायगढ़, हिमालयन मेगा, अवन्ति, सतारा, ग्रीनटेक आदि है।

इनके संचालन में व्यावसायिकता लाने के लिए इनके स्वामित्व को SPV - Special Purpose Vehicle के अधीन रखा जाता है। यह च्टए भारतीय कंपनी अधिनियम-1956 के अंतर्गत एक कंपनी होती है।

इस योजना को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों को इनकी स्थापना की कुल लागत का 50% (अधिकतम 50 करोड़) वित्तीय योगदान के रूप में देती है।

भारत के खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में ईड की दृष्टि से मेगा फूड पार्क एक महत्वपूर्ण योजना है।



AEZ- Agricultural Export Zone

इसकी स्थापना की घोषणा 2001 में की गई। वर्तमान में भारत में इनकी संख्या 60 हैं। इनकी मुख्य बातें निम्न हैं-

- सामूहिक दृष्टिकोण (Cluster-Approach) पर आधारित।
- संभाव्य उत्पादों की पहचान करते हुए उत्पादन से बाजार तक की समस्त कड़ियों का एकीकरण किया जाता है। इस प्रकार यह 'END to END' पद्धति पर आधारित है।
- इन क्षेत्रों में फसल का पूर्व/पश्चात् उपचार, पौधों की सुरक्षा (Plant Protection), प्रसंस्करण (Processing), डिब्बाबंदी (Packaging), भंडारण (Storage), अनुसंधान और विकास (Research & Development) आदि की सुविधाएं एक ही स्थान पर उपलब्ध करवाई जाती है।

खाद्य प्रसंस्करण/परिरक्षण क्षमता सृजन/विस्तार स्कीम (यूनिट स्कीम)

यूनिटों का आधुनिकीकरण/विस्तार करना है जिसके फलस्वरूप बर्बादी में कमी आएगी। एकल यूनिटों द्वारा किए जाने वाले प्रसंस्करण कार्यकलापों में व्यापक फसलोत्तर प्रक्रियाएं शामिल हैं, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यवर्धन होता है और शीघ्र खराब होने वाली उपजों के परिरक्षण हेतु विशिष्टकृत सुविधाओं के साथ शेल्फ लाइफ में भी अभिवृद्धि होती है।

एकीकृत शीत शृंखला और मूल्य वृद्धि बुनियादी सुविधा

इस संबंध में 2017 में 16 परियोजनाएं शुरू की गई हैं। इनके संचालन के साथ मंत्रालय द्वारा 2.44 लाख मीट्रिक टन शीत भंडारण की अतिरिक्त क्षमता, व्यक्तिगत त्वरित फ्रीजिंग (Individual Quick Freezing- IQF) 72.70 मीट्रिक टन प्रति वर्ष, 55 लाख लीटर प्रतिदिन दूध, प्रसंस्करण/भंडारण और 472 रीफर वैनो (Reefer Vans) को 2014-17 के दौरान बनाये गये हैं। इसका उद्देश्य खेत से लेकर उपभोक्ता तक सतत एकीकृत शीत शृंखला एवं परिरक्षण अवसंरचना सुविधाएं, स्व-सहायता समूह, कृषक उत्पादन संगठन, गैर सरकारी संगठन, केंद्र राज्य सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम जो शीतशृंखला समाधानों में व्यापारिक रूचि रखते हैं, स्कीम के अंतर्गत एकीकृत शीतशृंखला एवं परिरक्षण अवसंरचना की स्थापना करने के पात्र है, साथ ही ये अनुदान राशि का भी लाभ उठा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोल्ड चैन में निवेश को बढ़ावा देने की दृष्टि से वित्त मंत्रालय द्वारा इंफ्रास्ट्रक्चर श्रेणी के तहत कोल्ड चैन को कवर किया गया है। बूचड़खानों की स्थापना आधुनिकीकरण की योजना के तहत पणजी (गोवा) में एक परियोजना को लागू किया गया है। 31 अगस्त, 2017 को 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फूड प्रोसेसिंग टेक्नोलॉजी' के सहयोग से पेरानबलुर (Peranbalur) में लॉन्च किए जाने वाले शैलॉट्स (Shallots) के लिए एक 'कॉमन फूड प्रोसेसिंग इनक्यूबेशन सेंटर' स्थापित किया गया। 10 खाद्य परीक्षण लैबों का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है।

खाद्य सुरक्षा मानक अधिनियम-2006

वर्ष 2005 से पूर्व खाद्य प्रसंस्करण से संबंधित 13 अलग-अलग नियम लागू थे।

चूँकि उसके पहले खाद्य योजकों, संदूषकों, खाद्य रंगों, परिरक्षकों तथा लेबलिंग के संदर्भ में भिन्न-भिन्न मानक निर्धारित किए गए थे। इन सभी अलग-अलग नियमों को एक अधिनियम के अंतर्गत लाने के लिए 'खाद्य सुरक्षा मानक अधिनियम, 2006' लाया गया है।

अधिनियम की विशेषताएँ

- इस अधिनियम के तहत, खाद्य पदार्थों को वैज्ञानिक मानकों के अनुरूप बनाना एवं लोगों के लिए अधिक सुरक्षित और स्वास्थकर बनाना था।
- इस अधिनियम के तहत, आनुवांशिक रूप से रूपांतरित खाद्य, कार्बनिक खाद्य, फलीय खाद्य, निजरवमूलक खाद्य आदि को विनियमों के अधीन ही आयात या विक्रय के अलावा विनिर्मित या वितरित कर सकेगा।

• इस अधिनियम में खाद्य सुरक्षा और खाद्य मानकों को निर्धारित करने हेतु सलाहकार समिति और पैनलों का भी गठन किया जाएगा। • अधिनियम का प्रवर्तन राज्य खाद्य आयुक्तों तथा स्थानीय स्तर के अधिकारियों के माध्यम से लागू किया जाएगा। • खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति या निगम को एक लाइसेंस या पंजीकरण पत्र प्राप्त करना आवश्यक होगा। • भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और 22 सदस्य शामिल हैं, जिनमें एक तिहाई महिलाएँ होंगी। • इस अधिनियम के तहत भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (Food Safety and Standards Authority of India- FSSAI) की स्थापना की गई है।

खाद्य सुरक्षा मानक अधिनियम संशोधन, 2016-17

• खाद्य पदार्थों की नियामक संस्था, भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (FSSAI) ने खाद्य सुरक्षा कानून में बदलाव हेतु एक मसौदा पेश किया। इस संशोधन अधिनियम के अंतर्गत निम्न सिफारिशों की गयी- • अधिनियम की धारा 59 में एक नए खंड को जोड़ने की सिफारिश की गई, इसके अंतर्गत सात साल के कारावास का प्रावधान किया गया है, जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है। • इसके अंतर्गत खाद्य सुरक्षा अधिकारियों के काम में बाधा डालने या उन्हें परेशान करने अथवा उन पर हमला करने वालों के लिए सजा को बढ़ाकर न्यूनतम छह महीने व अधिकतम दो साल करने का प्रस्ताव किया गया है। वर्तमान में न्यूनतम तीन महीने की सजा और एक लाख रुपये जुर्माने की भी व्यवस्था है। • इसके अतिरिक्त, निर्यात किए जाने वाले खाद्य पदार्थों को भी खाद्य सुरक्षा एवं मानक कानून के दायरे में लाने का प्रस्ताव किया गया है। वर्तमान में केवल वे खाद्य पदार्थ इस कानून के दायरे में शामिल होते हैं, जिनकी बिक्री घरेलू बाजार में होती है अथवा जिनका आयात किया जाता है। • इसके अलावा, खाने का सामान आयात करने वाली कंपनियों के संदर्भ में भी जिम्मेदारी तय की गई है जिससे कि किसी भी सामान में मिलावट न हो। साथ ही, इस संबंध में किसी प्रकार की दुविधा से बचने के लिए उपभोक्ताओं की परिभाषा में भी बदलाव किया जाएगा। • इसके अतिरिक्त इसमें पशुओं के खाद्य पदार्थों को भी कानून के दायरे में लाने संबंधी प्रस्ताव पेश किया गया है।
--

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (Food Safety & Standard Authority of India- FSSAI)

• केंद्र सरकार ने खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम-2006 के तहत 'भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण' का गठन किया जिसे 1 अगस्त, 2011 को केंद्र सरकार के खाद्य सुरक्षा और मानक विनियम (पैकेजिंग एवं लेबलिंग) सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के तहत किया जाता है। • इसका मुख्यालय दिल्ली में है, जो राज्यों के खाद्य सुरक्षा अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को लागू करने का काम करता है। • एफएसएसआई मानव उपभोग के लिए पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन, भंडारण, वितरण, बिक्री और आयात की सुरक्षित व्यवस्था को सुनिश्चित करने का काम करता है। • इसके अलावा, यह देश के सभी राज्यों, जिला एवं ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्य पदार्थों के उत्पादन और बिक्री के तय मानकों को बनाए रखने में सहयोग करता है। यह समय-समय पर खुदरा एवं थोक खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता की जांच भी करता है।

फूड रेगुलेटरी पोर्टल

एफ.एस.एस.आई.

(The Food Safety and Standards Authority of India) की पहलें

भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए सर्वोच्च विनियामक निकाय ने 'फूड रेगुलेटरी पोर्टल' नामक एक शक्तिशाली नए उपकरण की घोषणा की। खाद्य व्यवसायों के लिए घरेलू कारोबार और खाद्य आयात दोनों को पूरा करने के लिए एकल इंटरफेस के रूप में योजना बनाई गई, यह पोर्टल देश के खाद्य सुरक्षा कानूनों के प्रभावी और पारदर्शी कार्यान्वयन के लिए मददगार साबित होगा। व्यवसायों के संचालन के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने के लक्ष्य के साथ यह पोर्टल "एक राष्ट्र, एक खाद्य कानून" के सरकार के मिशन के साथ रणनीतिक रूप से काम करेगा।

खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय की सहायता के लिए, एफएसएसआई ने उत्पाद की स्वीकृति को सरल बनाया है-

- अंतर्राष्ट्रीय आचार मानकों के साथ मिलकर नए एडिटिव्स की एक बड़ी संख्या को स्वीकृति दी गई है।
- विनियमों में एक संशोधन के रूप में अधिसूचित किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप गैर-मानक खाद्य उत्पादों को, स्वामित्व वाले खाद्य पदार्थों (अच्छे खाद्य और न्यूट्रास्युटिकल को छोड़कर) को, जो नियमों में अनुमोदित सामग्री और एडिटिव्स का उपयोग करने के बाद अब उत्पाद अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी। इसने उद्योग को काफी राहत प्रदान की है।

बैकवर्ड एवं फॉरवर्ड लिंकेज निर्माण के लिए योजना

इस योजना का उद्देश्य आपूर्तिशृंखला की कमियों को दूर करके कच्चे माल की उपलब्धता को बाजार में पहुंचाने हेतु एकीकरण प्रदान करना है। इस योजना के तहत खेत से निकले उत्पादों को प्राथमिक प्रसंस्करण केंद्र, आधुनिक खुदरा विक्रेता, प्रशीतित परिवहन माध्यमों से शीतगृहों/भंडारण गृहों तक पहुंचाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

यह योजना फलों, सब्जियों, डेयरी उत्पादों, मांस, मुर्गीपालन, मछली, रेडी टू कुक फूड प्रोडक्ट्स आदि के लिए लागू होती है। यह योजना किसानों को बाजार से जोड़ने में सक्षम होगी तथा उनकी कृषि उपज के लिए पारिश्रमिक मूल्य को सुनिश्चित करने में सक्षम होगी।

अन्य महत्वपूर्ण प्रशासनिक निर्णय

- खाद्य एवं कृषि आधारित प्रसंस्करण इकाई और कोल्ड चेन के बुनियादी ढांचे को ऋण देने के लिए इन्हें प्राथमिक क्षेत्र के तौर पर कृषि गतिविधियों के तहत वर्गीकृत किया गया है।
- खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों और बुनियादी ढाँचे के लिए अतिरिक्त ऋण की उपलब्धता की गयी है।
- इस उद्योग को विभिन्न कर रियायतें प्रदान की जा रही है।
- इसके अतिरिक्त पारदर्शिता को बढ़ाने और मानवीय हस्तक्षेप को कम करने के लिए ऑन-लाइन सॉफ्टवेयर का निर्माण किया गया है, ताकि बुनियादी ढांचागत विकास परियोजनाओं के दावों को दर्ज किया जा सके।
- इसके साथ-साथ मंत्रालय में इंवेस्ट इंडिया को लेकर 'इंवेस्टमेंट ट्रैकिंग एवं फैसिलिटी डेस्क' की भी स्थापना की गयी है। इसके अंतर्गत नए संभावित निवेशकों की पहचान करने के साथ-साथ निवेश के लिए केंद्रित और संरचित तरीके से संपर्क करने की व्यवस्था की गयी है।
- नाबार्ड में 8000 करोड़ रुपये के 'डेयरी प्रसंस्करण और विकास निधि' की

स्थापना की गयी है। सहकारी क्षेत्र में विशेष रूप से पुरानी और अप्रचलित दूध प्रसंस्करण इकाईयों के आधुनिकीकरण के लिए इस फंड का उपयोग किया जाएगा। इसके परिणामस्वरूप दूध प्रसंस्करण क्षमता में वृद्धि होगी, जिससे किसानों के उत्पाद को अधिक मूल्य प्राप्त होगा तथा उनकी आय में वृद्धि होगी।

गुणवत्ता आश्वासन, कोडेक्स मानक, शोध एवं विकास तथा प्रोत्साहक गतिविधियाँ (Quality Assurance, Codex Standard, R&D and Promotional Activities)

विश्व बाजार में गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा प्रतिस्पर्धात्मक रूप में बढ़ती दिखाई देती है, जो कि प्रतिष्ठानों के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। खाद्य पदार्थों के लिए घरेलू मानक तय करने के अलावा कोडेक्स खाद्य पदार्थ की सुरक्षा एवं गुणवत्ता के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानक भी निर्धारित करता है, साथ ही बेहतर निर्माण प्रचलनों का भी स्तर निर्धारित करता है। इसी प्रकार उतना ही महत्व शोध एवं विकास क्षेत्र पर भी किया जाना जरूरी है ताकि उत्पादों, कुल लागत की प्रक्रियाओं तथा कार्यकुशल तकनीक में नवचार स्थापित हो। 'फूड सेफ्टी कोडेक्स एवं आर एंड डी योजना' इस दिशा में सफल रही है।

मानव संसाधन विकास (Human Resource Development)

इस क्षेत्रक में टिकाऊ वृद्धि के लिए मानव संसाधन विकास महत्वपूर्ण है। सघन प्रशिक्षण एवं उद्यमिता विकास को शीर्ष प्राथमिकता मिल रही है-

- खाद्य प्रसंस्करण में डिग्री/डिप्लोमा पाठ्यक्रम के लिए अधिरचना संबंधी सुविधाएँ सृजित की जा रही हैं।
- उद्यमिता विकास कार्यक्रम।
- खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण केंद्रों (FPTC) की स्थापना।
- मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय/राज्य स्तरीय संस्थानों के प्रशिक्षण।

राष्ट्रीय खाद्य प्रौद्योगिक, उद्यमिता एवं प्रबंधन संस्थान (National Institute of Food Technology, Entrepreneurship & Management, NIFTEM)



एक सीमांत खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के लिए न केवल विश्वस्तरीय खाद्य टेक्नोलॉजिस्ट की जरूरत है, जो अग्रिम क्षेत्रों में शोध एवं विकास को आगे बढ़ाये, नये उत्पाद विकसित करें, नयी प्रक्रियाएँ, तकनीक एवं मशीनरी का निर्माण करे बल्कि ऐसी व्यावसायिक नेतृत्व व प्रबंधकों की भी जरूरत है, जो विश्व खाद्य व्यापार में बड़े अवसरों का लाभ उठाने में सक्षम हों।

उभरते विश्व परिदृश्य में वैश्विक उत्कृष्टता का एक संस्थान स्थापित करना जरूरी है, जो कि बढ़ते खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र, हितधारकों, उद्यमियों, निर्यातकों, नीति-निर्माताओं, सरकार तथा शोध संस्थानों की जरूरतों की पूर्ति कर सके। 'National Institute of Food Technology Entrepreneurship and Management' (NIFTEM) की कल्पना खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय ने खाद्य विज्ञान एवं खाद्य प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक विश्वस्तरीय उत्कृष्टता केंद्र के रूप में की, जो इस क्षेत्र में सहयोग एवं नेटवर्क का विकास देश के अंदर तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ भी कर सके। संस्थान उत्तम गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक, शोधपरक प्रबंधन कार्यक्रम ऑफर करेगा, खाद्य स्तर पर सलाह देगा, खाद्य क्षेत्र से संबंधित ज्ञान एवं जानकारी का प्रसार करेगा, साथ ही व्यापार शुरू करने की सुविधाएँ भी प्रदान करेगा। यह संस्थान 2006 से कुंडली (सोनीपत), हरियाणा में कार्यरत है।

भारतीय उपज प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी संस्थान का सुदृढ़ीकरण (Strengthening of Indian Institute of Crop Processing Technology, IICPT)

पूर्व में धान प्रसंस्करण शोध केंद्र (Paddy Processing Research Centre) के नाम से जाना जाने वाला यह एक स्वाशासी संस्थान है, जो तंजावुर में स्थित है। खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय के अधीन यह संस्थान पिछले तीन दशकों से कार्यरत है। कुछ अन्य पदार्थों, जैसे-ज्वार, दालें, तेलबीज आदि का महत्व बढ़ता जा रहा है, यह देखकर 2001 में इन वस्तुओं को भी संस्थान की कार्य सूची में शामिल कर लिया गया। अब इस संस्थान को एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में विकसित किया जा रहा है।

राष्ट्रीय मांस एवं कुक्कुट प्रसंस्करण (National Meat and Poultry Processing Board, NMPPG)

भारत सरकार ने 2009 में इसकी स्थापना की। बोर्ड एक स्वाशासी निकाय है, भारत सरकार ने शुद्ध आरंभिक दो सालों के लिए इसका विलयन किया था और अब इसका प्रबंधन आयोग स्वयं करेगा। यह उद्योग-चालित संस्था इस क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं एवं मुद्दों के हल के लिए एक नेशनल हब के रूप में कार्य करेगी ताकि इस क्षेत्र का सम्यक विकास हो। बोर्ड एक 'एकल खिड़की' (Single Window) के रूप में उत्पादकों, निर्माताओं तथा मांस एवं मांस उत्पादों के निर्यातकों के लिए सुविधा प्रदायक के रूप में कार्य करता है।

भारतीय अंगूर प्रसंस्करण बोर्ड (Indian Grapes Processing Board)

भारत सरकार ने 2009 में पुणे में इस बोर्ड की स्थापना की स्वीकृति दी, जो कि अंगूर उत्पादक क्षेत्रों के समीप है। बोर्ड के कार्य एवं उद्देश्य निम्न हैं-

- शोध एवं विकास, विस्तार, गुणवत्ता आश्वासन एवं उन्नयन, भारतीय वाहन को घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रोत्साहन।
- भारतीय वाइन उद्योग का धारणीय विकास।
- भारतीय वाहन क्षेत्रक की वृद्धि के लिए दृष्टि एवं कार्य योजना का सूत्रण, जिसमें नई प्रौद्योगिकी में गुणवत्ता आश्वासन के लिए शोध एवं विकास भी शामिल हैं।

अपने 3 साल के अस्तित्व में बोर्ड, भारतीय वाइन का घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ावा देने पर एकाग्र रहा है। इसके लिए अनेक प्रकार से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक प्रदर्शनियों, मेलों, उपभोक्ता जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि में सक्रिय रूप से भाग लिया। इसमें राज्य सरकारों/ संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों का भी सहयोग लिया गया। बोर्ड एक 'ट्रेसेबिलिटी प्रोग्राम' 'लाइन नेट' की शुरुआत

करने जा रहा है ताकि वाइन सेक्टर में मानकता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित किए जा सकें।

निवेश बंधु पोर्टल (Nivesh Bandhu Portal)

‘विश्व खाद्य इंडिया’ के उद्घाटन के अवसर पर प्रधानमंत्री द्वारा ‘निवेश बंधु पोर्टल’ की शुरुआत की गयी (नवंबर, 2017)। इस अनूठे पोर्टल का उद्देश्य केंद्रीय और राज्य सरकारों की नीतियों और खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के लिए प्रदान किए जाने वाले प्रोत्साहनों के बारे में जानकारी एकत्रित करना है। यह किसानों, व्यापारियों और रसद ऑपरेटरों के लिए व्यापार नेटवर्किंग हेतु एक मंच भी उपलब्ध कराता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय के सात प्रकाशनों को इस पोर्टल के अंतर्गत खाद्य प्रसंस्करण के अभिलिखित क्षेत्र में निर्णय लेने के लिए शामिल किया गया है। इसके साथ ही फूड मैप ऑफ इंडिया को भी शामिल किया गया है।

खाद्य मानचित्र, निवेशकों को अपनी परियोजनाओं के विषय में पता लगाने के संबंध में निर्णय लेने हेतु सक्षम बनाने के लिए अधिशेष उत्पादन क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण की क्षमता का मानचित्रण दिखाता है।

प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना (पी.एम.के.एस.वाई.)

भारत सरकार ने 2016-2020 के लिए, केंद्रीय क्षेत्र की एक नई योजना का अनुमोदन किया है, जिसका नाम प्रधानमंत्री किसान संपदा (Scheme for Agro-Marine Processing and Development of Agro-Processing Clusters) योजना है। इस योजना का मुख्य लक्ष्य, कृषि-प्रसंस्करण का आधुनिकीकरण करके और कृषि-अपशिष्ट को कम करके कृषि आय को बढ़ाना है।

यह योजना, मंत्रालय की कई योजनाओं जैसे ‘मेगा फूड पार्क’, ‘इंटेग्रेटिड कोल्ड चेन एंड वैल्यू एडिशन इंफ्रास्ट्रक्चर’, ‘फूट सेफ्टी एंड क्वालिटी एश्योरेंस इंफ्रास्ट्रक्चर’ और नई योजनाओं जैसे ‘इंफ्रास्ट्रक्चर फॉर एग्रो-प्रोसेसिंग क्लस्टर’, ‘क्रिएशन ऑफ बैकवर्ड लिंकेंज’, ‘क्रिएशन/एक्सपेंशन ऑफ फूड प्रोसेसिंग एंड प्रीजरवेशन कपैसिटी’ को शामिल करते हुए बनाई गई है।

प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना एक व्यापक पैकेज है, जिसके परिणामस्वरूप खेत से लेकर खुदरा बिक्री केंद्रों तक दक्ष आपूर्ति शृंखला प्रबंधन के साथ आधुनिक अवसंरचना का सृजन होगा। इससे, देश में न केवल खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र की वृद्धि को तीव्र गति प्राप्त होगी बल्कि यह किसानों को बेहतर मूल्य दिलाने तथा किसानों की आय को दुगुना करने, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के भारी अवसरों का सृजन करने, कृषि उपज की बर्बादी में कमी लाने, प्रसंस्करण तथा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के निर्यात के स्तर को बढ़ाने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा।

राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण मिशन (National Mission on Food Processing- NMFP)

भारत को खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अपने व्यापक कृषि, दुग्ध, कुक्कुट, बागवानी एवं मत्स्य उत्पादों के विशाल उत्पादन आधार के चलते प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त है। जितनी गति इस क्षेत्र को भारत में मिलनी चाहिए, उतनी-गति सुनिश्चित करने के लिए, खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय अधिरचना विकास, तकनीक उन्नयन एवं आधुनिकीकरण, मानव संसाधन विकास तथा शोध एवं विकास के लिए अनेक योजनाएं एवं कार्यक्रम चला रहा है। 12वीं योजना के संदर्भ में, यह अनुभव किया जाता है कि कार्यान्वयन के विकेंद्रीकरण की जरूरत है और इसमें राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को संलग्न करके, पहुँच का विस्तार किया जाना

चाहिए। इससे पर्यवेक्षण, अनुश्रवण एवं रोजगार सृजन की स्थिति भी बेहतर होगी। इसी के अनुसार NMFP की शुरुआत 2012 में एक केंद्र प्रत्यायोजित योजना के रूप में की गई। मिशन केंद्रीय स्तर के अलावा राज्य स्तर एवं जिला स्तरीय मिशनों के लिए कार्य करेगा।

इसके मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं-

- राज्य सरकारों को इस क्षेत्र से जुड़ी आधारभूत संरचना एवं संस्थागत अंतरों को समाप्त करने के लिए सहायता देना।
- इस क्षेत्र में कुशलता विकास, प्रशिक्षण, साहसिकता आदि के लिए प्रयासों को प्रोत्साहित करना।
- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को जरूरी खाद्य सुरक्षा के मानदंडों को पूरा करने में मदद देना।
- सूक्ष्म लघु मध्यम उद्योग (MSMEs)** - को खाद्य प्रसंस्करण इकाईयाँ स्थापित करने से पूँजी/तकनीकी/ कुशलता आदि की मदद करना।

2021-22 के केन्द्रीय बजट में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग हेतु किये गए प्रावधान

- कृषि और सम्बद्ध उत्पादों के मूल्य संवर्द्धन को बढ़ावा देने और उसके निर्यात को बढ़ाने हेतु ‘ऑपरेशन ग्रीन स्कीम’ (जो कि इस समय केवल टमाटर, प्याज और आलू पर लागू है) के दायरे को बढ़ाकर इसमें जल्दी खराब होने वाले 22 और उत्पादों को शामिल किया जाएगा।

“ऑपरेशन ग्रीन्स” के प्रमुख उद्देश्य

- TOP उत्पादन संकुलों (क्लस्टर) और उनके किसान उत्पादन संगठनों (FPO) को सुदृढ़ करने तथा उन्हें बाजार से जोड़ने के लिए लक्षित हस्तक्षेपों द्वारा TOP उत्पादक किसानों के लिए मूल्य प्राप्ति में वृद्धि करना।
- उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के लिए मूल्य स्थिरीकरण करना।
- फसल कटाई के पश्चात होने वाली क्षति को कम करना।
- खाद्य प्रसंस्करण क्षमता में वृद्धि करना तथा TOP मूल्य-शृंखला में मूल्यवर्द्धन करना।
- बाजार सूचना तन्त्र की स्थापना करना और TOP फसलों की मांग एवं आपूर्ति के रियल टाइम आंकड़ों को एकत्र करना और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करना।
- एक अन्य कदम विशेषीकृत कृषि प्रसंस्करण वित्तीय संस्थाओं की स्थापना है, जो पूँजी गहन प्रोजेक्ट को समयबद्ध तरीके से ऋण की व्यवस्था कर सकेगा।
- एक अन्य महत्वपूर्ण पहल मॉडल कॉन्ट्रैक्ट एक्ट को जारी करना है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की वर्तमान स्थिति एवं संभावनाएँ (Present Condition & Possibilities of Food Processing Industries)

भारत बहुत बड़ी मात्रा में विदेशों से खाद्य प्रसंस्कृत उत्पाद आयात करता है। वर्तमान में देश में लगभग 370 अरब डॉलर मूल्य के खाद्य पदार्थों की खपत होती है। वर्ष 2025 तक यह आँकड़ा ट्रिलियन डॉलर के स्तर पर पहुँच जाने की संभावना है।

- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का भारत में विस्तार किया जाए तो इसमें रोजगार की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं। महिलाओं के लिए भी इस क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं, विशेषकर देश के ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी खाद्य प्रसंस्करण

इकाइयों की स्थापना करके महिलाओं के लिए सूक्ष्म उद्यमियों के रूप में उभरने की व्यापक संभावनाएँ हैं।

- यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें व्यापक स्तर पर कारोबारी निवेश की संभावनाएँ हैं। भारत की संपूर्ण खाद्य मूल्यशृंखला में व्यापक अवसर उपलब्ध हैं, जिनमें फसल कटाई के उपरांत सुविधाएँ, लॉजिस्टिक्स, कोल्ड स्टोरेज चेन शृंखला और विनिर्माण शामिल हैं।
 - खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, विभिन्न आवश्यक सूचनाओं के जरिए किसानों की मदद कर सकता है और खेती करने के बेहतर तरीके भी बता सकता है, ताकि उद्योगों को उच्च गुणवत्ता वाले कच्चे माल सुलभ हो और किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिल सके।
 - एक बड़ी जनसंख्या तथा बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि के कारण भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए बड़ा बाजार उपलब्ध है। नगरीकरण में वृद्धि के कारण भारत में 'रेडी टू ईट' वस्तुओं की मांग बढ़ रही है।
 - सस्ते श्रम बल की उपस्थिति के कारण भी भारत में खाद्य प्रसंस्करण अपेक्षाकृत कम कीमत पर किया जा सकता है। इससे वैश्विक व्यापार में भारत को लाभ प्राप्त हो सकता है।
 - चीन के बाद भारत खाद्य पदार्थों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। साथ ही, वैश्विक स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण की दृष्टि से महत्वपूर्ण केला, आम, दूध जैसी वस्तुओं के उत्पादन में भी प्रथम स्थान प्राप्त है। जो यह दर्शाता है कि कच्चे माल की उपलब्धता की दृष्टि से भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की पर्याप्त संभावना है।
 - भारत की विविधतापूर्ण जलवायु होने के बावजूद फलों व सब्जियों के उत्पादन में भारत विश्व में दूसरा स्थान रखता है। भारत में विभिन्न प्रकार के फलों व सब्जियों के उत्पादन की पर्याप्त मात्रा को सुनिश्चित करने के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का विकास आवश्यक है।
 - भारत में कृषि योग्य भूमि पर्याप्त मात्रा में है। कृषि योग्य भूमि के संदर्भ में भारत विश्व में दूसरा स्थान रखता है।
 - भारत खाद्यान्न उत्पादन में भी अच्छा प्रदर्शन कर रहा है जैसे- गेहूँ व चावल के उत्पादन में भारत विश्व में दूसरा स्थान रखता है, जबकि अनाज से बने उत्पादों के निर्यात में पहला स्थान रखता है।
 - भारत के मध्यम वर्ग की आय में बढ़ोत्तरी के साथ ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के उपयोग पर धनात्मक प्रभाव पड़ा है तथा उसकी संरचना में बदलाव आया है।
 - भारत में उपभोक्ताओं द्वारा खाद्य उपभोग पर सर्वाधिक खर्च किया जाता है अथवा यह कुल उपभोग का 50% होता है। भारत में विशाल जनसंख्या द्वारा खाद्य वस्तुओं पर खर्च को देखते हुए इस उद्योग के विकास की अच्छी संभावनाएँ दिखाई देती हैं।
 - भारत का खाद्य बाजार रिटेल बाजार के लगभग 2/3 भाग का निर्माण करता है, मैकेंजी नामक संस्था द्वारा किए गये एक अध्ययन के अनुसार, 2025 तक इस उद्योग का कारोबार साढ़े सात करोड़ वार्षिक तक चला जाएगा।
- वर्तमान समय में भारतीय कृषि अत्यधिक श्रम बल तथा छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या से जूझ रही है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसंस्करण से संबंधित लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास होगा और बेरोजगारी की समस्या घटेगी। इसके अलावा भंडार गृह के अभाव के कारण लगभग एक चौथाई अनाज तथा कृषिगत वस्तुएँ बर्बाद हो जाती हैं। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से भारत में कुशल सप्लाय चेन और अवसंरचना का विकास होगा और इससे न केवल अनाजों की बर्बादी रुकेगी बल्कि उनका उचित मूल्य भी प्राप्त होगा। इसके अलावा पूंजी तथा तकनीक का अभाव तथा फसल कटने के बाद मूल्य की अनिश्चिता भारत में कृषि और किसानों की बड़ी समस्याओं में शामिल हैं। ऐसे में खाद्य प्रसंस्करण

उद्योगों के विकास से बड़े-बड़े निवेशक इस क्षेत्र में शामिल होंगे और संविदा पर आधारित खेती के विकास से इन समस्याओं का समाधान हो जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में कृषि संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग अत्यंत प्रभावी है।

हाल के वर्षों में जैव प्रौद्योगिकी क्रांति हुई है और अब 'खाद्य-क्रांति' का समय आ चुका है। खाद्य-क्रांति, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के इर्द-गिर्द केंद्रित है और यही कारण है कि इस उद्योग को इसकी संभावनाओं के कारण 'सूर्योदय उद्योग' (Sushine Industry) भी कहा जाता है। किसानों की आमदनी को 2022 तक दोगुना करने में इस उद्योग की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए उत्पादन आधारित प्रोत्साहन योजना

उद्देश्य

- भारत के प्राकृतिक संसाधन अक्षयनिधि के अनुरूप वैश्विक खाद्य विनिर्माण चैंपियनों को सृजित करने का समर्थन करना और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में खाद्य उत्पादों के भारतीय ब्रांडों का सहयोग करना है।
- यह 10,900 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ केन्द्रीय क्षेत्रक योजना है। यह योजना वर्ष 2021-22 से वर्ष 2026-27 तक 6 वर्ष की अवधि के लिए लागू की जाएगी।

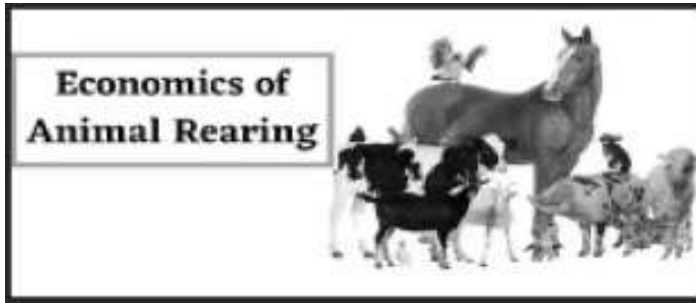
इस योजना के दो प्रमुख घटक हैं-

1. प्रथम घटक के तहत चार मुख्य खाद्य उत्पाद खंडों, यथा मोटा अनाज आधारित उत्पाद, प्रसंस्कृत फल और सब्जियाँ, समुद्री उत्पाद व मोजरेला चीज (Mozzarella Cheese) के विनिर्माण को आर्थिक प्रोत्साहन प्रदान करना है।
 2. द्वितीय घटक, विदेशों में ब्रांडिंग और विपणन हेतु समर्थन से संबंधित है।
- इन खण्डों में विभिन्न खाद्य पदार्थों, यथा- अण्डे, माँस आदि उत्पाद लघु एवं मध्यम उद्यमों के अभिनव/जैविक उत्पाद शामिल हैं।
 - यह योजना निम्नलिखित के लिए उपलब्ध है-
 - ♦ स्वामित्व वाली फर्म/साझेदारी फर्म/सीमित देयता भागीदारी या भारत में पंजीकृत कंपनी।
 - ♦ सहकारी समितियाँ।
 - ♦ एसएमई और इस योजना के अंतर्गत कवरेज के लिए अनुमोदन प्राप्त करने हेतु आवेदन करने वाले।

पशु पालन का अर्थशास्त्र (Economics of Animal Rearing)

हमारे देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस तथ्य की पुष्टि सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त खुदाई में मिलने वाले पुरातात्विक साक्ष्यों से भी स्पष्ट होता है। भारतीय मनीषियों ने पशुओं के संरक्षण के लिए पशु पूजा का नियम बनाया था, जो वर्तमान समय तक चला आ रहा है। पशु पालन के अर्थशास्त्र में उन सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है जो पशुओं के इस्तेमाल, उनके स्वास्थ्य तथा विकास से जुड़ी हुई होती हैं। विश्व की कुल पशु संख्या का 12.41% भारत में है। पशु संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है, जबकि पशु घनत्व की दृष्टि से द्वितीय स्थान है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में पशु पालन एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है। यह रोजगार, गरीबी निवारण, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। पशु पालन के अर्थशास्त्र

में उन सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है जो मानव जीवनयापन के लिए पशुओं के इस्तेमाल से जुड़ी हुई हैं।



पशु पालन का आर्थिक महत्त्व (Economic Importance of Animal Rearing)

प्राचीन समय से आज तक पशु पालन ने कृषि के घटक के रूप में कार्य किया है। लेकिन बढ़ती जनसंख्या के दबाव एवं पशु पालन में आधुनिक शोधों की मदद से आज इसने एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। वर्तमान में बढ़ती बेरोजगारी, खाद्य असुरक्षा, बड़े जोतों की घटती संख्या एवं आकार के कारण पशु पालन का महत्त्व बढ़ा है।

- भारत में पशु पालन का कृषि GDP में योगदान लगभग 28-30% तक है। आर्थिक समीक्षा 2020-21 की रिपोर्ट में कृषि, वानिकी व मत्स्यपालन का योगदान 3.6% तक है।
- विश्व में विभिन्न प्रकार के पशुओं में भारत का योगदान भैंस (113.33 मिलियन), भेड़ (63.07 मिलियन), ऊँट (0.33 मिलियन), बकरी (133.35 मिलियन), मुर्गी (783.27 मिलियन) है।

पशुपालन की देश के अर्थशास्त्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में कृषि क्षेत्र मुख्यतः फसल और पालतू पशुओं (जानवर, पक्षी, मछली) के मिश्रण वाली कृषि प्रणाली का प्रभुत्व है। पशुपालन (जिसमें गाय, ऊँट, भैंस, बकरी, सूअर, भेड़ आदि शामिल हैं) राष्ट्रीय आय और सामाजिक-आर्थिक विकास में सीधे योगदान देने के सिवा निम्न भूमिकाएँ निभाता है:

- परिवार की आय बढ़ाता है और ग्रामीण इलाकों में लाभप्रद रोजगार पैदा करता है।
- सूखा, भुखमरी और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय सबसे अच्छे बीमे के रूप में काम करता है।
- वर्तमान परिवेश में पशु पालन कृषि के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। पशु पालन से कृषि को विभिन्न प्रकार के आगतों की प्राप्ति होती है, जैसे- खाद, पशुओं द्वारा माल ढुलाई व जुताई में योगदान आदि। दूसरी तरफ, कृषि से पशुओं के लिए विभिन्न प्रकार के आगत उपलब्ध होते हैं जैसे कि चारा, छिलके आदि। इस प्रकार पशु पालन समन्वित/समेकित ग्रामीण विकास के आधार को तैयार करता है।
- अल्पविकसित व विकासशील राष्ट्रों में पशु पालन जीविकोपार्जन का मुख्य आधार माना जाता है। भारत में लगभग 5.6% ग्रामीण परिवार भूमिहीन हैं और इसके अलावा कुल कृषकों का 85% से भी अधिक भाग सीमांत व लघु प्रकार का है। ऐसी स्थिति में पशु पालन भारत के ग्रामीण प्रदेशों के लिए जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण आधार बन जाता है।
- पशु पालन सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह देखा गया है कि कृषि भूमि की तुलना में पशुओं का वितरण निर्धनों के पक्ष में होता है। वर्ष 2015-16 के अंतिम कृषि संगणना के अनुसार कुल क्रियाशील जोतों में सीमांत जोतों का आकार 146.45 मिलियन है, वर्तमान कृषि संगणना

(वर्ष 2015-16) इसी श्रृंखला की 10वीं संगणना है। वर्ष 2019 कृषि संगणना वर्ष 2015-16 (अंतिम) के प्रथम चरण पर देश में क्रियाशील जोतों की संख्या क्षेत्रफल पर 'अखिल भारतीय रिपोर्ट' जारी की गयी है।

- सीमांत जोत अर्थात् भूमि जो कि आकार में 1 हेक्टेयर से कम है। वर्ष 2015-16 के अंतिम आँकड़ों के अनुसार भारत के कुछ राज्य, जैसे कि उत्तर प्रदेश जिसके कुल क्रियाशील जोतों में सीमांत जोत का 23.82 मिलियन है एवं जनसंख्या के मामले में प्रथम स्थान पर है। इस तरह, क्षेत्र जहाँ पर जनसंख्या अधिक है उसकी अपेक्षा भूमि की उपलब्धता कम है साथ ही ग्रामीण जनसंख्या जो कि मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है वहाँ पशु-पालन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। क्षेत्रों में पशु पालन एक पूरक व्यवसाय के रूप में हो सकता है। क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का वितरण निर्धनों के पक्ष में नहीं होता है।
- पशु पालन से ग्रामीण क्षेत्रों में छिपी बेरोजगारी और अल्प रोजगार की समस्याओं से निपटने में मदद मिलती है। अल्प रोजगार में लोगों को योग्यता के अनुसार या पर्याप्त समय के लिए रोजगार नहीं मिल पाता है।
- पशु पालन महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ग्रामीण महिलाओं के लिए इसे एक अनुकूल आर्थिक गतिविधि माना गया है।
- पशु पालन से लोगों को नियमित आय नकदी के रूप में प्राप्त होती है।
- स्वास्थ्य की दृष्टि से भी पशु पालन निर्धनों के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पशु पालन के माध्यम से वे प्रोटीन और विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्वों को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।
- चिरस्थायी कृषि के सिद्धांत को बल देता है। इस क्षेत्र के महत्त्व को निम्न तथ्यों के साथ समझा जा सकता है:
 - पशुधन क्षेत्र को कुल मिलाकर 12वीं योजना के दौरान 4.5 फीसदी की वृद्धि दर हासिल हुई है, जो कृषि क्षेत्र का 3.5 फीसदी और खाद्य उत्पादन के एक फीसदी से ऊँची है।
 - भारत में कुल पशुधन की आबादी करीब 535.78 मिलियन है।
 - भारत में माँस उत्पादन 7.30 मिलियन टन है।

दुग्ध क्षेत्र- 2019-20 में लगभग 188 मिलियन मीट्रिक टन उत्पादन के साथ भारत विश्व स्तर पर दूध का सबसे बड़ा उत्पादक है।

पशु पालन की समस्या और उनके समाधान (Problems of Animal Rearing & its Solutions)

कृषि उत्पाद और दुग्ध उत्पादन में विश्व में परचम लहराने के बावजूद हम अपने अन्नदाता को उसकी उपज का सही मूल्य नहीं दिला पा रहे हैं। सर्वप्रथम हमें सटीक पशु गणना करवानी होगी ताकि हमें सही-सही पशु संख्या प्राप्त हो सके, जिससे हम पशु पालन और उसके विकास के लिए बेहतर योजना बना सकें ताकि किसानों को अतिरिक्त आय मिल सके।

हमारी व्यवस्था में नकली या मिलावटी दूध पर लगाम कसने की कोई उचित उपाय नहीं है और जब 12 रुपये में एक लीटर नकली दूध बनकर तैयार हो जाता है जो कि लंबे समय तक खराब न होने के कारण बिक भी जाता है तो लोग असली की तुलना में सिंथेटिक दूध को खरीदने को वरीयता देते हैं। ऐसी स्थिति में पशुपालन घाटे का सौदा बन जाता है। पशुपालन को लाभदायक बनाने हेतु निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं-

- **टीकाकरण के आधुनिक तरीके**- आज समय की मांग है कि हमें POLYVALENT VACCINE (तीन बीमारियों के लिए एक टीका) का प्रयोग करना होगा ताकि अधिक से अधिक पशुओं को कम से कम समय में कम श्रमबल के द्वारा अधिक से अधिक बीमारियों से सुरक्षित कर सकें।
- **आधुनिक सेवाएँ**- हमें दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक से

अधिक पशु चिकित्सकों तथा चिकित्सा सहायकों की नियुक्ति करनी होगी जैसे प्रत्येक 4 गाँव या 1000 की पशुओं की संख्या पर एक 'Old With AVFO and PEON' और प्रत्येक 40 गाँव या 10,000 पशुओं पर एक पशु चिकित्सालय With Mobile Ambulance की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी।

- **किसानों में जागरूकता बढ़ाना**— कृत्रिम गर्भाधान के फायदों का प्रचार प्रसार करना, इसके लिए हमें कैंपों की जगह रेडियो टेलीविजन और किसी बड़े मीडिया तंत्र को एक मिशन की तरह प्रयोग करना होगा, जिससे किसानों में जागरूकता बढ़ेगी।
- **दवाओं की उत्तम व्यवस्था**— हमें समुचित विकास के लिए विश्वस्तरीय मानकों की दवाओं को सरकारी वितरण प्रणाली में सम्मिलित करना होगा। इसके बदले हम मेडिसिन के लिए आर्वाइट बजट को सीधे पशुपालकों के खाते में हस्तांतरित कर सकते हैं जिसके तहत पशुपालक पशुओं की संख्या और उसकी आवश्यकता के अनुसार व पशु चिकित्सक की सलाह पर अच्छे से अच्छी दवाएँ खरीद सकेगा और सरकार को दवा वितरण का अतिरिक्त खर्च नहीं उठाना पड़ेगा।
- **नर पशुओं और वृद्ध गायों के लिए अलग व्यवस्था**— गायों द्वारा जन्म दिए गए नवजातों में 50% तक नर होते हैं। आज की मशीनीकरण वाली कृषि में बैलों का उपयोग लगभग खत्म हो गया है अतः हमें नर गौवंश और वृद्ध गायों की अलग से व्यवस्था करनी होगी ताकि उन्हें कल्लखाने जाने से बचाया जा सकें किंतु ये काम बिना सरकारी सहयोग के संभव नहीं हो सकता। उनके मल मूत्र का उपयोग भूमि की उर्वरता बढ़ाने में किया जा सकता है, जिससे अच्छी उपज होने से कृषकों की आय में वृद्धि हो सकेगी।
- **चारे की कमी**— आधुनिक कृषि में गेहूँ और धान के पौधों से सीधे ही दाना निकाल लिया जाता है और बचा हुआ भाग (पुवाल) खेत में ही फेंक देते हैं जो कि पशुओं का आधारभूत आहार है इसके बाद इस फैले हुए पुवाल को जमा करना बहुत खर्चीला होता है और किसान इसे जला कर नष्ट कर देता है। जिससे पर्यावरणीय क्षति के साथ-साथ जमीन और पशुओं को भी भारी नुकसान होता है।

पशुधन संबंधी सरकार द्वारा किए गए उपाय (Measures Taken by Government Related to Livestock)

भारत में श्वेत क्रान्ति या ऑपरेशन फ्लड (White Revolution in India or Operation Flood)

दुग्ध उत्पादन में अत्यधिक तीव्र वृद्धि की प्रक्रिया को 'श्वेत क्रान्ति' कहा जाता है। ऑपरेशन फ्लड या श्वेत क्रान्ति के जनक वर्गीज कुरियन हैं। यह कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा तथा व्यापक समन्वित डेयरी विकास कार्यक्रम है, इसकी शुरुआत 1970 में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (NDDB) ने की। 1990-91 में देश में कुल दूध का उत्पादन 53.9 मिलियन टन था जो बढ़कर वर्ष 2020-21 में 176.27 मिलियन टन हो गया। इसमें से 50% दूध भैंस तथा 46% दूध गाय से प्राप्त होता है।

विश्व में दूध उत्पादन में भारत का स्थान पहला है, जबकि दूसरा स्थान यू.एस.ए. का है। भारत को विश्व दुग्ध उत्पादन का 21.29% हिस्सा प्राप्त है। दूध के उत्पादन में जो क्रान्तिकारी वृद्धि आई उसके संबंध में दो कार्यक्रमों का उल्लेख आवश्यक है— पहला 1964-65 में देश में शुरू किया गया सघन पशु विकास कार्यक्रम जिसके अंतर्गत सबसे पहले श्वेत क्रान्ति लाने के लिए पशु पालकों को पशु पालन के सुधार के तरीकों का पैकेज, उन्नत नस्ल की गाय तथा भैंस प्रदान की गयीं तथा कृत्रिम गर्भाधान के तरीके विकसित किए गये। दूसरा ऑपरेशन

फ्लड, जिसे 1970 में आरम्भ किया गया। इस योजना से लगभग एक करोड़ किसान तथा उनके परिवार लाभान्वित हो रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप ही इस समय भारत में दूध की प्रति व्यक्ति दैनिक उपलब्धता जो 1990-91 में 176 ग्राम प्रतिदिन थी वर्ष 2020-21 में बढ़कर 427 ग्राम हो गयी।

दूध की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए गहन डेयरी विकास कार्यक्रम (Intensive Dairy Development Programme), गुणवत्तापूर्ण एवं स्वच्छ दूध उत्पादन हेतु मूलभूत ढाँचा सुदृढ़ करना, सहकारी संस्थाओं को सहायता और डेयरी उद्यमिता विकास योजना भारत सरकार की कुछ महत्वपूर्ण योजनाएँ हैं। डेयरी क्षेत्र में उत्पादकों को बाजार पहुँच प्रदान करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय डेयरी योजना I' नामक नयी योजना मार्च 2012 में शुरू की गयी है।

वीर्य केन्द्र (Semen Centre)

पशुधन में नस्लीय गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये नई तकनीक के विकास की कोशिश 1950 के दशक से की जा रही है। इसके लिए अच्छी नस्लों वाले सांडों की पर्याप्त संख्या बनाए रखने तथा बेहतर लाभ प्राप्त करने के लिए हिमीकृत वीर्य को वीर्य केन्द्रों पर संरक्षित रखा जाता है। भारत में पेशेवर ढंग से प्रतिबंधित वीर्य केन्द्र हैं जिनको भारत सरकार की केन्द्रीय निगरानी इकाई (सेंट्रल मॉनिटरिंग यूनिट) द्वारा 'ए' या 'बी' श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। वर्तमान में भारत में 44, A अथवा B श्रेणियों के वीर्य केंद्र हैं। 2021-22 के अंत तक इन A तथा B श्रेणी के वीर्य केन्द्रों द्वारा 14 करोड़ हिमीकृत वीर्य डोज के उत्पादन की योजना बनाई गयी है। 'राष्ट्रीय गोकुल मिशन योजना' के अंतर्गत पूर्णिया के मरंगा में 'फ़ोजन सीमेन सेंटर' का 12 मई, 2018 से निर्माण कार्य शुरू हो गया है। इसे बनाने में कुल लागत 64 करोड़ रुपये आयेगी।

पशुधन बीमा योजना (Livestock Insurance Scheme)

यह एक केंद्र प्रयोजित योजना है जो 10वीं पंचवर्षीय योजना के वर्ष 2005-06 तथा 2006-07 और 11वीं पंचवर्षीय योजना के वर्ष 2007-08 में प्रयोग के तौर पर देश के 100 चयनित जिलों में क्रियान्वित की गयी थी। यह योजना देश के 300 चयनित जिलों में नियमित रूप से चलायी जा रही है।

योजना की शुरुआत, किसानों तथा पशुपालकों को पशुओं की मृत्यु के कारण हुए नुकसान से सुरक्षा मुहैया करवाने हेतु तथा पशुधन बीमा के लाभों को लोगों को बताने और इसे पशुधन व उनके उत्पादों के गुणवत्तापूर्ण विकास के चरम लक्ष्य के साथ लोकप्रिय बनाने जैसे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की गयी थी। योजना के अंतर्गत देशी/संकर दुधारू मवेशियों और भैंसों का बीमा वर्तमान बाजार मूल्य पर किया जाता है। बीमा का प्रीमियम 50 प्रतिशत तक अनुदानित होता है। अनुदान की पूरी लागत केन्द्र सरकार द्वारा वहन की जाती है। अनुदान का लाभ अधिकतम दो पशु प्रति लाभार्थी को अधिकतम तीन साल की एक पॉलिसी के तहत मिलता है। वर्तमान में यह योजना गोवा को छोड़कर सभी राज्यों में संबंधित राज्य पशुधन विकास बोर्ड द्वारा क्रियान्वित की जा रही है।

राष्ट्रीय गोकुल मिशन (National Gokul Mission)

केन्द्र सरकार ने 28 जुलाई, 2014 को स्वदेशी गायों के संरक्षण और नस्लों के विकास को वैज्ञानिक तरीके से प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय गोकुल मिशन (राष्ट्रव्यापी योजना) की शुरुआत की। यह मिशन राष्ट्रीय पशु प्रजनन एवं डेयरी विकास कार्यक्रम (एनपीबीबीडीडी) के अंतर्गत केंद्रीय परियोजना है। इस मिशन का शुभारंभ केन्द्रीय कृषि मंत्री राधामोहन सिंह ने नई दिल्ली में किया। राष्ट्रीय गोकुल मिशन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- स्वदेशी नस्लों के आनुवांशिक संघटन में सुधार करने और उनकी संख्या में वृद्धि के लिए नस्ल सुधार कार्यक्रम।

- दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि।
- गिर, साहीवाल, राठी, देवनी, थारपारकर, लाल सिंधी जैसी उन्नत स्वदेशी नस्लों का उपयोग कर विशिष्ट नस्लों (Nondescript breeds) के आनुवांशिक संघटन को उन्नत बनाना।
- स्वदेशी नस्लों के स्थानीय प्रजनन क्षेत्रों में एकीकृत स्वदेशी मवेशी केंद्र या गोकुल ग्रामों की स्थापना।
- इस योजना को 100% अनुदान के आधार पर कार्यान्वित किया जा रहा है। इस मिशन के तहत स्वदेशी पशु केन्द्रों या गोकुल ग्राम की स्थापना स्वदेशी नस्लों के प्रजनन इलाकों में की जायेगी। गोकुल ग्राम की स्थापना पीपीपी मॉडल के तहत और देशी प्रजनन इलाकों में शहरी पशु आवास के लिए महानगरों के निकट की जायेगी। गोकुल ग्राम किसानों के लिए प्रशिक्षण केंद्र में आधुनिक सुविधाएँ प्रदान करेगा। मेट्रोपॉलिटन गोकुल ग्राम का केन्द्र शहरी पशुओं के आनुवांशिक उन्नयन पर होगा।

कुक्कुट विकास परियोजना

चंडीगढ़, भुवनेश्वर, मुम्बई और हस्सेपट्टा में चार क्षेत्रीय 'केन्द्रीय कुक्कुट विकास संगठन' स्थित हैं जो किसानों की तकनीकी दक्षता उन्नयन पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। केन्द्रीय कुक्कुट विकास योजना में राज्य कुक्कुट विकास और कुक्कुट संपदा का क्रियान्वयन किया जा रहा है, साथ ही व्यक्तियों की उद्यमिता दक्षता को प्रोत्साहित करने के लिए एक केन्द्रीय कुक्कुट क्षेत्र उपक्रम पूँजी निधि योजना का कार्यान्वयन पूँजी सब्सिडी पद्धति से 1 अप्रैल, 2011 से किया जा रहा है।

अंडे के उत्पादन में भारत शीर्ष तीन देशों में है। 2015-16 में अंडे की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता लगभग 66 प्रतिवर्ष था जो वर्ष 2020-21 में 75 प्रतिवर्ष पहुँच गयी है। वर्ष 2019-20 में अंडे का उत्पादन पूरे विश्व का भारत में 4.85 मिलियन टन हुआ।

अमूल का पहला रोबोटिक डेयरी प्लांट (First Robotic Dairy Plant of Amul)

भारत की सबसे बड़ी दुग्ध प्रसंस्करण (डेयरी) कम्पनी गुजरात को ऑपरेटिव मिल्क फेडरेशन लिमिटेड ने एक रोबोटिक दुग्ध प्रसंस्करण संयंत्र (डेयरी प्लांट) का आरम्भ 31 अक्टूबर, 2013 को मुम्बई से 50 किमी दूर विरार क्षेत्र में किया। प्रचालन हेतु पूरी तरह से रोबोट पर आधारित यह संयंत्र, देश का पहला रोबोटिक दुग्ध प्रसंस्करण संयंत्र है।

गुजरात को ऑपरेटिव मिल्क मार्केटिंग फेडरेशन लिमिटेड को आमतौर पर इसका सबसे चर्चित ब्रांड अमूल के नाम से जाना जाता है अमूल के विरार स्थित इस संयंत्र की संकलन क्षमता 50,000 लीटर प्रतिदिन है।

कम्पनी के अनुसार यह संयंत्र जल्द ही आइसक्रीम उत्पादन के सबसे बड़े संयंत्र के रूप में भी विकसित किया जाना है और लक्षित उत्पादन 2 लाख लीटर प्रतिदिन होना है। पहले रोबोटिक संयंत्र से मिल्क पाउच 'पिक एंड प्लेस' की प्रणाली का भी आरम्भ किया जाना है और उष्ण जल वाले जेनरेटर के माध्यम से ऊर्जा का संवर्धन किया जाना है।

राष्ट्रीय पशुधन मिशन (NLM-National Livestock Mission)

केन्द्रीय पशु पालन, डेयरी एवं मत्स्यिकी विभाग द्वारा वर्ष 2013-14 में 307 करोड़ की बजटीय सहायता से राष्ट्रीय पशुधन मिशन प्रारंभ किया गया है, इसके अंतर्गत इसके निम्नलिखित उपमिशन हैं-

- पशुधन विकास।
- पूर्वोत्तर राज्यों में सुअर एवं मुर्गी पालन विकास।

- चारा एवं आहार विकास।
- कौशल विकास।
- प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण एवं प्रसार।

यह मिशन स्थानीय कृषि जलवायु दशाओं के दृष्टिगत उत्पादकता बढ़ाने पर बल देगा।

राष्ट्रीय बोवाइन उत्पादकता मिशन (National Mission on Bovine Productivity)

यह योजना दिसंबर, 2014 में शुरू हुई। इस योजना का उद्देश्य दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना तथा डेयरी उद्योग को किसानों के लिए अधिक लाभकारी बनाना है।

मुख्य विशेषताएँ

- इसे दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करने और डेयरी उद्योग को किसानों के लिए अधिक लाभकारी बनाने के लिए वर्ष 2016 में प्रारंभ किया गया था।
- इस मिशन को निम्नलिखित 4 घटकों के माध्यम से लागू किया जा रहा है-
 - **पशु संजीवनी**- यह एक कल्याणकारी कार्यक्रम है। इसके तहत प्रत्येक दुधारू पशु को UID के माध्यम से एक विशिष्ट पहचान और एक स्वास्थ्य कार्ड (नकुल स्वास्थ्य पत्र) प्रदान किया जाता है। इसके द्वारा अन्य कारकों के साथ उसकी नस्ल, आयु और टीकाकरण के विवरण को रिकॉर्ड किया जाता है।
 - **उन्नत प्रजनन तकनीक**- उन्नत प्रजनन तकनीक के तहत 10। ग्रेड वाले वीर्य केंद्रों पर सेक्स सॉर्टेड सीमन प्रोडक्शन फैसिलिटी (Sex Sorted Semen Production Facility) का निर्माण किया जा रहा है। साथ ही, भारत में 'इन विट्रो फर्टिलाइजेशन (IVF)' की सुविधा वाली 50 भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी प्रयोगशालाएँ भी खोली जा रही हैं।
 - **ई-पशु हाट पोर्टल**- यह स्वदेशी नस्ल के प्रजनकों और किसानों में परस्पर संपर्क स्थापित करने के लिए एक 'ई-ट्रेडिंग मार्केट' पोर्टल है।
 - **राष्ट्रीय बोवाइन जीनोमिक सेंटर**- जीनोमिक चयन के माध्यम से स्वदेशी नस्लों की उत्पादकता तथा दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करने के लिए 'राष्ट्रीय बोवाइन जीनोमिक सेंटर' की स्थापना की गयी है।

राष्ट्रीय बोवाइन प्रजनन और डेयरी विकास कार्यक्रम (National Program for Bovine Breeding and Dairy Development: NPBBDD)

इस कार्यक्रम के वर्तमान चरण की शुरुआत 2014-15 से हुई।

उद्देश्य

- किसानों की गुणवत्तायुक्त कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं तक सुगमतापूर्ण पहुँच सुनिश्चित करना।
- दूध और दुग्ध उत्पादों की खरीद, प्रसंस्करण और विपणन के लिए अवसरचना का निर्माण करना और इसे सुदृढ़ बनाना।
- डेयरी किसानों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण अवसरचना तैयार करना।
- डेयरी सहकारी समितियों/उत्पादक कंपनियों को ग्रामीण स्तर पर सशक्त बनाना।

मुख्य विशेषताएँ

- इस कार्यक्रम की शुरुआत 2014 में नेशनल प्रोजेक्ट फॉर कैटल एंड बफेलो ब्रीडिंग (NPCBB), इंटेंसिव डेयरी डेवलपमेंट प्रोग्राम (IDDP),

स्ट्रेंथनिंग इंफ्रास्ट्रक्चर फॉर क्वालिटी एंड क्लीन मिल्क प्रोडक्शन (SIQ - CMP) और असिस्टेंस टू को-ऑपरेटिव (A-C) जैसी तत्कालीन योजनाओं का विलय कर की गई थी।

- इस योजना के 3 घटक हैं-
 - नेशनल प्रोग्राम फॉर बोवाइन ब्रीडिंग (NPBB)- यह प्रजनन आगतों को किसान तक पहुंचाने के लिए MAITRI (मल्टी पर्स AI टेक्नीशियन इन रूरल इंडिया) की स्थापना करेगा।
 - नेशनल प्रोग्राम फॉर डेयरी डेवलपमेंट (NPDD)।
 - राष्ट्रीय गोकुल मिशन (RGM)।

राष्ट्रीय डेयरी योजना-1 (National Dairy Plan-1)

यह योजना 2011-12 में शुरू की गयी पशुधन और डेयरी विभाग, विश्व बैंक की सहायता से यह 18 राज्यों में लागू है। इसके अंतर्गत कुल 2242 करोड़ रुपये के निवेश का लक्ष्य है।

उद्देश्य

- दुधारू पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि कर दुध उत्पादन में वृद्धि करना।
- संगठित दुध प्रसंस्करण क्षेत्र तक आसान पहुंच सुनिश्चित कर ग्रामीण दुध उत्पादकों को सहायता प्रदान करना।

मुख्य विशेषताएँ

- यह राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड द्वारा लागू एक केंद्रीय क्षेत्रक योजना है।
- NDP-1 18 प्रमुख दुध उत्पादक राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, ओडिसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तेलंगाना, उत्तराखंड, झारखंड केरल, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में केंद्रित है।
- इस योजना के विभिन्न घटक निम्न हैं-
 - उत्पादकता में वृद्धि करना।
 - प्राप्त दूध का भार मापने, गुणवत्ता का परीक्षण करने तथा दूध उत्पादकों को भुगतान करने हेतु गाँव आधारित दूध खरीद प्रणालियाँ।
 - परियोजना प्रबंधन और गहन अध्ययन।

डेयरी उद्यमिता विकास योजना

(Dairy Entrepreneurship Development Scheme: DEDS)

यह नाबार्ड द्वारा वित्तीय प्राप्त केंद्रीय योजना है। इसकी शुरुआत 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत हुई थी।

उद्देश्य

- शुद्ध दुध के उत्पादन के लिए आधुनिक डेयरी फार्मों की स्थापना को बढ़ावा देना।
- असंगठित क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन लाना ताकि दूध का प्रारंभिक प्रसंस्करण गांव के स्तर पर किया जा सके।
- व्यावसायिक पैमाने पर दुध संरक्षण के लिए गुणवत्ता और पारंपरिक प्रौद्योगिकी का उन्नयन करना।
- मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्र के लिए स्व-रोजगार पैदा करना तथा बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

मुख्य विशेषताएँ

- डेयरी बेंचर कैपिटल फंड (DVCF) योजना को संशोधित किया गया

और 2010 में इसका नाम परिवर्तित कर डेयरी उद्यमिता विकास योजना (DEDS) रखा गया है।

- डेयरी वेंचर कैपिटल फंड और पोल्ट्री वेंचर कैपिटल फंड।
- यह केंद्रीय क्षेत्रक योजना है। नोडल एजेंसी के रूप में इसका कार्यान्वयन नाबार्ड द्वारा किया जा रहा है।
- यह योजना संगठित और असंगठित, दोनों क्षेत्रों के लिए खुली है।

डेयरी प्रसंस्करण एवं अवसंरचना विकास कोष (Dairy Processing & Infrastructure Development Fund)

आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति ने वर्ष 2017-18 से वर्ष 2028-29 तक की अवधि के दौरान 10881 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ 'डेयरी प्रसंस्करण और अवसंरचना विकास कोष' (DIDF) को स्वीकृति प्रदान की है।

विवरण

- बजट 2017-18 में की गई घोषणा के अनुसार, इस परियोजना के अंतर्गत प्रभावी दुध खरीद प्रणाली की स्थापना पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। चिलिंग इंफ्रास्ट्रक्चर तथा इलेक्ट्रॉनिक मिल्क अडल्ट्रेशन टेस्टिंग इक्विपमेंट की स्थापना, प्रसंस्करण/आधुनिकीकरण/ प्रसंस्करण संबंधी अवसंरचना के विस्तार और दुध संघों/ दुध उत्पादक कंपनियों हेतु मूल्य वर्द्धित उत्पादों के लिए विनिर्माण सुविधाओं के सृजन के माध्यम से इसे संपन्न किया जाएगा।
- NABARD द्वारा इस कोष में 8,000 करोड़ का योगदान दिया जाएगा और शेष राशि राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (NDDB), राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC), अंतिम उधारकर्ताओं और कृषि मंत्रालय द्वारा प्रदान की जाएगी।
- DIDF के तहत, NABARD द्वारा NDDB एवं NCDC को ऋण प्रदान किया जाएगा, जो बाद में अंतिम उधारकर्ताओं जैसे कि दुध संघों, राज्य डेयरी संघों, दुध उत्पादक कंपनियों आदि के माध्यम से परियोजना को प्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वित करेंगे।
- NDDB: प्रारंभ में यह सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 के तहत एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत था, बाद में NDDB अधिनियम, 1987 के तहत भारतीय डेयरी निगम में विलय कर दिया गया था। इस नए कॉर्पोरेट निकाय को इस अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान के रूप में घोषित किया गया।
- NCDC: इसकी स्थापना वर्ष 1963 में संसद के एक अधिनियम द्वारा कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के तहत एक वैधानिक निगम के रूप में की गई थी।

डेयरी उत्पादों के निर्यात हेतु आरोग्यता प्रमाण-पत्र की अनिवार्यता (Health Certificate Must for Dairy Exports)

- वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय द्वारा दुध और दुध उत्पाद निर्यात (गुणवत्ता नियंत्रण, निरीक्षण तथा अनुवीक्षण) नियम, 2020 को अधिसूचित किया गया है।
- ✓ यह आदेश दुध उत्पाद निर्यात (गुणवत्ता नियंत्रण, निरीक्षण तथा अनुवीक्षण) नियम, 2000 को प्रतिस्थापित करता है।
- नए नियमों के अनुसार
 - ✓ दुध और दुध उत्पादों के निर्यातकों को पोत लदान के लिए एक सरकारी एजेंसी से निर्यात योग्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना होगा।
 - दुध और दुध उत्पादों के निर्यात से पूर्व गुणवत्ता नियंत्रण या
 - निरीक्षण या दोनों मानकों को पूरा करना होगा।

पशुधन संगणना (Livestock Census)

अखिल भारतीय पशुधन गणना पांच वर्षों के अंतराल पर पूरे देश में आयोजित की जाती है। यह प्रक्रिया ब्रिटिश भारत में 1919-20 में पशुधन से संबंधित सूचनाएं एकत्र करने हेतु सीमित क्षेत्रों में शुरू की गयी थी। गणना 1924-25 में उन्हीं बिन्दुओं पर की गयी। तदुपरांत प्रत्येक पशुधन गणना में अवधारणाओं और परिभाषाओं में बदलाव के साथ सीमाओं और आच्छादन का विस्तार होता चला गया। आजादी के बाद प्रथम पशुधन गणना वर्ष 1951 में आयोजित की गयी तथा उत्तरोत्तर हर पांचवें वर्ष यह गणना आयोजित की जाती है।

भारत में 20वीं पशुधन संगणना 2017 के अनुसार देश में कुछ पशुधन आबादी 535.76 मिलियन है जो 2012 की तुलना में 4.82% ज्यादा है। गायों और भैंसों में कुल दुधारू पशुओं की संख्या 125.75 मिलियन है जो 2012 की तुलना में 6% अधिक है।

पशुधन क्षेत्र को विकसित करने के लिए सुझाव (Suggestion for Developing LiveStock Area)

भारत में पशुधन क्षेत्र को विकसित करने के लिए निम्न सुझावों पर विचार किया जा सकता है-

- भारत में अच्छी नस्ल के पशुधन को बढ़ावा देने के लिए कृत्रिम गर्भाधान से जुड़ी आधारभूत संरचना को विकसित करने की आवश्यकता है। इसके अलावा कृत्रिम गर्भाधान से जुड़ी नवीनतम तकनीकों के लिए एक कुशल मानव शक्ति का विकास किया जाना चाहिए। पशुपालकों को भी कृत्रिम गर्भाधान के लिए शिक्षित एवं प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, क्योंकि भारत की अधिकांश पशु प्रजातियाँ अधिक उत्पादक नहीं मानी गई हैं।
- पशु पालन उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले चारे के उत्पादन को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वर्तमान में भारत के कुल कृषिगत क्षेत्रफल के 4.6% भाग पर ही चारा अथवा चारे से जुड़ी फसलों का उत्पादन होता है। भारत में पशुधन अपने पोषण के एक भाग के लिए फसल अपशिष्टों तथा कृषि उप-उत्पादों पर निर्भर करता है। नीति आयोग के अनुसार चारा उत्पादन के लिए कुल कृषिगत क्षेत्रफल का कम से कम 10% भाग आवंटित किया जाना चाहिए। भारत में पशुओं द्वारा मीथेन गैस के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए चारे के लिए अच्छे बीजों का इस्तेमाल भी जरूरी है।
- पशुधन चराई के संदर्भ में एक नीतिगत ढाँचा विकसित करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में गैर-सरकारी संगठन आदि की सहायता से कार्बन प्रदूषण हास को संरक्षित करने पर जोर देना चाहिए।
- सूखे और पहाड़ी क्षेत्रों में पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन वर्तमान में मैदानी क्षेत्रों में तुलनात्मक रूप से कृषि पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है इन क्षेत्रों में पशुधन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।
- वर्तमान में भारत में पशुधन क्षेत्र में 'विस्तार सेवाएँ' पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। विभिन्न राज्यों में यह सेवाएँ लगभग बेकार हो चुकी हैं इससे पशुपालकों को इस क्षेत्र से जुड़ी नवीनतम तकनीकी नहीं मिल पाती है। इस संदर्भ में (ATMA-Agricultural Technology Management Agency-2005) कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी के कार्य को विस्तृत किया जा सकता है।
- पशु पालन क्षेत्र में साख की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। वाणिज्यिक बैंक भी इस क्षेत्र में उधारी देने में कम रुचि दिखाते हैं, ऐसी स्थिति में साहूकारों पर निर्भरता बढ़ जाती है।
- विदेशी बाजार, मांग का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है और इसका दोहन अधिक सक्रियता से किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में पशु पालन संबंधी उत्पादों के प्रसंस्करण और निर्यातों से जुड़े विभिन्न प्रतिबंधों तथा लाइसेंसिंग को उदार किया जाना चाहिए।

- पशुधन उत्पाद की गुणवत्ता और सुरक्षा (Sefty) एक महत्वपूर्ण मुद्दा है इस संदर्भ में भारत सरकार द्वारा वर्ष 2006 में कानून लागू किया गया था जो पशुधन उत्पादों पर लागू होता है लेकिन इसके लिए परीक्षणों से जुड़ी एक अच्छी आधारभूत संरचना का निर्माण हो जो WTO के स्वच्छता संबंधी मानकों, स्वच्छता और फाइटोसेनिटरी उपाय (Sanitary & Phytosanitary Measures- SPS) की आवश्यकताओं को भी पूरा करे।
- पशुओं के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा को विशेष प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, विशेष रूप से मुँह और खुर की बीमारियों की रोकथाम के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए, इस संदर्भ में नैदानिक सुविधाओं को उच्च स्तरीय बनाने की आवश्यकता है।
- भारत में लगभग 4 हजार बूचड़खाने कार्यरत हैं, जिनकी कार्यप्रणाली असंतोषप्रद एवं प्रदूषणकारी है। इन बूचड़खानों के आधुनिकीकरण पर ध्यान दिया जाना चाहिए तथा इसके अलावा कंकालों के सही इस्तेमाल को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- उत्तर-पूर्व में सुअर पालन तथा सभी ग्रामीण क्षेत्रों में मुर्गी पालन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन क्षेत्र का अच्छा योगदान होने के बावजूद सार्वजनिक खर्च का बहुत कम भाग इस क्षेत्र में खर्च किया जाता है।
- आर्थिक उदारीकरण के बाद पशु पालन क्षेत्र के समक्ष नये अवसर खुले हैं जिससे न केवल लोगों की आय में बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि पशु उत्पाद आय परिवर्तनों के प्रति मांग भी अधिक लोचशील हुई है। इससे पशु पालन क्षेत्र को अच्छा लाभ होने की संभावनाएं उत्पन्न हुई हैं। लेकिन इसके बावजूद विभिन्न प्रकार की सहायक सेवाओं की कमी के चलते यह क्षेत्र इन संभावनाओं का दोहन नहीं कर पा रहा है इस संदर्भ में निजी क्षेत्र की भागीदारी को सार्वजनिक निजी साझेदारी के माध्यम से बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

द्वितीय श्वेत क्रांति (Second White Revolution)

वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या के दबाव और मांग/पूर्ति पक्ष को ध्यान में रखते हुए द्वितीय श्वेत क्रांति की आवश्यकता महसूस की गई है। बढ़ती जनसंख्या और आय वृद्धि के कारण डेयरी उत्पादों की मांग में प्रतिवर्ष 6% की वृद्धि होने की संभावना है जबकि आपूर्ति के स्तर पर यह वृद्धि 4% ही है।

इस कारण द्वितीय श्वेत क्रांति आगामी समय की जरूरत है। भारत के 80 प्रतिशत किसानों की अधिकतम सीमा चार मवेशियों तक के पालन करने की है, पशुपालन करने वाले किसानों के समक्ष अनेक समस्याएँ आती हैं। जैसे पशुपालक को डेयरी सहायता नहीं प्राप्त होती है। दूसरा उनकी स्थायी आय न होने के कारण पशुओं के चारे की उपलब्धता की कमी बनी रहती है। मौसम के अनुसार चारा लागत भी घटती-बढ़ती रहती है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्र में अन्य पूरक व्यवसाय न होने के कारण नकदी की समस्या बनी रहती है जिससे आवश्यकता पड़ने पर पशुओं की देखभाल अच्छी तरह से नहीं हो पाती है।

भविष्य की संभावना

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए सहकारी समितियाँ, कॉर्पोरेट एकीकृत फार्म स्थापित कर सकती हैं जिसमें मवेशियों के देखभाल, नस्ल सुधार, एकीकृत फीड उत्पादन आदि कार्य सम्पन्न किए जा सकते हैं। इस संबंध में कुछ मॉडल भी प्रस्तुत किए गए हैं, जो निम्न हैं-

- **हब और स्पोक मॉडल**- इस मॉडल के तहत कम से कम 500 गायों का एक फार्म (हब) हो जिसमें दुहने, फीड उत्पादन और दुग्ध प्रसंस्करण के लिए सभी एकीकृत सुविधाएँ विद्यमान हों। इसका बंटवारा उपफार्मों में हो, जिसमें 50-200 मवेशी के लिए स्थान और आधारभूत संरचना हो।

इसमें फार्म के स्वामी द्वारा तकनीकी सहायता प्रदान की जाए। यह मॉडल सामाजिक रूप से समावेशी होगा क्योंकि इसमें छोटे किसान भी हिस्सेदार हो सकते हैं तथा कई लोगों को रोजगार भी मिल सकता है।

- **प्रगतिशील डेयरी किसान-** इस मॉडल में कोई व्यक्ति कृषि अवसंरचना में निवेश की परिकल्पना करता है जिसमें अन्य किसानों को न्यून प्रभार पर गौशालाएं पट्टे पर दी जाती हैं जो गायों को रखने एवं गौशाला प्रबंधन के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह मॉडल छोटे-छोटे किसानों को लाभान्वित होने में सक्षम बनाता है।
- **समुदाय मॉडल-** इसके तहत सहकारी या निर्माता कंपनी मवेशियों को रखने, उनके पोषण की व्यवस्था करने तथा अवसंरचना के प्रबंधन की जिम्मेदारी लेगा। इसमें दूध दुहने की मशीन उपकरण, कूलर, दुग्ध भंडारण का स्वामित्व समुदाय के पास होगा, परंतु किसानों को अपना दूध किसी विशिष्ट इकाई को बेचने के लिए प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार पशुपालकों को कम लागत एवं निजी प्रबंधन के भार से राहत मिलेगी और वे तकनीकी सुविधाओं का लाभ उठाकर उत्पादन को बढ़ा सकेंगे।

भारत में मत्स्यपालन क्षेत्रक (Fisheries Area in India)

- भारत में अंतर्देशीय जल संसाधनों के अतिरिक्त लगभग 7516.6 किलोमीटर लंबी समुद्री सीमा और 2.37 मिलियन वर्ग किलोमीटर (पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के अनुसार) के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र (EEZ) को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट है कि यहाँ मत्स्यपालन की व्यापक संभावना विद्यमान है।
- भारत, विश्व में मछलियों और अलवणीय जल की मछलियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है।

ब्लू इकोनॉमी: एक परिचय

- विश्व बैंक के अनुसार, ब्लू इकोनॉमी से तात्पर्य महासागरीय पारिस्थितिक तंत्र को संरक्षित रखते हुए आर्थिक संवृद्धि, बेहतर आजीविका और काम-काज (जॉब) के लिए समुद्री संसाधनों का संधारणीय उपयोग करने से है।
- इसमें महासागरों के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े अनेक क्षेत्र में शामिल हैं, जैसे- मत्स्यपालन, खनिज, नौवहन व बंदरगाह अवसंरचना, समुद्री जैव-प्रौद्योगिकी, समुद्री नवीकरणीय ऊर्जा, समुद्री पर्यटन, समुद्री प्रशासन एवं शिक्षा आदि।
- **सस्टेनेबल ब्लू इकोनॉमी कांफ्रेंस-** नवंबर 2018 में ब्लू इकोनॉमी की संभावनाओं और इस क्षेत्र सहयोग को बढ़ाने के उद्देश्य से नैरोबी में इस कांफ्रेंस को आयोजित किया गया। यह कांफ्रेंस वैश्विक स्तर पर ब्लू इकोनॉमी के महत्व को दर्शाती है।
- यह संधारणीय ब्लू इकोनॉमी पर आयोजित पहला वैश्विक सम्मेलन है।
- इसे केन्या द्वारा आयोजित किया गया था और कनाडा व जापान ने इसमें सह-मेजबानी की थी।

इस सम्मेलन की थीम थी 'द ब्लू इकोनॉमी एण्ड द 2030 एजेण्डा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट'।

भारत एक ब्लू इकोनॉमी के रूप में

- भारत की एक ब्लू इकोनॉमी के रूप में सफलता हेतु EEZ क्षेत्रों का विस्तृत मानचित्रण आवश्यक है। हालाँकि इस दिशा में प्रयास 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान ही शुरू कर दिये गये थे।
- हालाँकि EEZ के गहरे क्षेत्रों (>500m) के मात्र 30% हिस्से का ही अभी तक मानचित्रण हो सका है। उसके पश्चात् उन सूचनाओं के विश्लेषण व

व्याख्याओं के आधार पर एक विस्तृत कार्यनीति की आवश्यकता है।

- वर्तमान में जारी सागरमाला परियोजना भारत को ब्लू इकोनॉमी क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण शक्ति बनाने को प्रतिबद्ध है।

सागरमाला परियोजना - सागरमाला पहल विकास के तीन आधारों पर केंद्रित है-

- उचित नीति और संस्थागत हस्तक्षेप के माध्यम से बंदरगाह आधारित विकास का समर्थन करना और इसे सक्षम बनाना।
- आधुनिकीकरण और नए बंदरगाहों की स्थापना समेत बंदरगाह अवसंरचना में वृद्धि।
- परिवहन हेतु नई लाइनें/लिंकेज विकसित करके आंतरिक क्षेत्रों तक और वहां से कुशल निकासी।

इसी प्रकार निम्न योजनाएँ भी ब्लू इकोनॉमी हेतु महत्वपूर्ण हैं-

नीली क्रांति: एकीकृत मत्स्य पालन विकास एवं प्रबंधन (Blue Revolution: Integrated Development and Management of Fisheries)

उद्देश्य

- अंतर्देशीय और समुद्री क्षेत्र में विद्यमान देश की कुल मत्स्य क्षमता का पूर्णतया दोहन करना तथा 2020 तक उत्पादन को तीन गुना करना।
- मछुआरों और मत्स्य किसानों की आय को दोगुना करने के लिए ई-कॉमर्स, अन्य प्रौद्योगिकियों और वैश्विक सर्वोत्तम नवाचारों के साथ-साथ उत्पादकता वृद्धि एवं बेहतर मार्केटिंग व पोस्टहार्वेस्ट इंफ्रास्ट्रक्चर पर विशेष ध्यान केंद्रित करना।
- सहकारी समितियों, उत्पादक कंपनियों और अन्य संस्थाओं में संस्थागत तंत्र के माध्यम से मछुआरों और मत्स्य किसानों को लाभ प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करना तथा साथ ही 2020 तक निर्यात आय को तीन गुना करना।
- देश की खाद्य और पोषण सुरक्षा में वृद्धि करना।

मुख्य विशेषताएँ

- यह 'नीली क्रांति' के लिए एक केंद्रीय क्षेत्रक योजना है। इसकी स्थापना वर्ष 2006 में की गयी थी।
- यह एक अम्ब्रेला योजना है जो सभी मौजूदा योजनाओं को विलय कर निर्मित की गयी है।
- देश में 2020-21 कुल मछली उत्पादन बढ़कर 145 लाख टन हो गया।
- इसका लक्ष्य मछुआरों और मत्स्य कृषकों की आय को दोगुना करने के लिए उनके लाभ में वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करने के साथ निर्यात आय में वृद्धि करना है।
- इस योजना के निम्नलिखित घटक हैं-
 - राष्ट्रीय मत्स्य विकास बोर्ड (NFDB) और इसके कार्य।
 - अंतर्देशीय मत्स्य पालन और जल कृषि विकास।
 - सागरीय मत्स्यन क्षेत्रों का विकास, अवसंरचना तथा पोस्ट हार्वेस्ट ऑपरेशन।
 - मत्स्य पालन क्षेत्र के डेटाबेस और उसकी भौगोलिक सूचना प्रणाली को सुदृढ़ बनाना।
 - मत्स्य पालन क्षेत्र के लिए संस्थागत व्यवस्था।
 - देख-रेख, नियंत्रण और निगरानी तथा अन्य आवश्यकता आधारित हस्तक्षेप।

- मछुआरों के कल्याण पर राष्ट्रीय योजना। नीली क्रांति के तहत 'मिशन फिंगरलिंग' को प्रारंभ किया गया है, जो मत्स्य पालन हेतु एकीकृत दृष्टिकोण को अपनाने की परिकल्पना करता है।
 - इस योजना का उद्देश्य मछली पालने का जहाज (हैचरी) एवं फिंगरलिंग (मछली का बच्चा) पालन हेतु तालाब की स्थापना को सुविधाजनक बनाना है ताकि देश में मछली के बच्चों, झींगे के लार्वा तथा केकड़े का निश्चित स्तर पर उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे

पशुपालन और अवसंरचना विकास निधि (Animal Husbandry Infrastructure Development Fund)

- आर्थिक मामलों संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति ने 15 हजार करोड़ रुपये के पशुपालन अवसंरचना विकास निधि को स्वीकृति प्रदान की है।

पशुपालन अवसंरचना विकास निधि के बारे में-

- **उद्देश्य-** दुग्ध और माँस प्रसंस्करण क्षमता तथा उत्पाद विविधीकरण को बढ़ाने के लिए बाजार तक अधिक पहुँच प्रदान करना। निर्यात और उद्यमशीलता को बढ़ावा देना आदि।
- AHIDF डेयरी, माँस प्रसंस्करण, पशु चारा संयंत्रों पशु धन से संबंधित उद्यमों में अवसंरचना निवेश को प्रोत्साहित करेगा। इसके अतिरिक्त, यह निजी क्षेत्र में मूल्यवर्धित बुनियादी ढांचे एवं पशुचारा संयंत्रों की स्थापना में निवेश की सुविधा प्रदान करेगा।
- **पात्र संस्थाएँ-** किसान उत्पादक संगठन, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम, गैर-लाभकारी कंपनियाँ, निजी कंपनियाँ और व्यक्तिगत उद्यमी हैं।
- **वित्तपोषण-** परियोजना की कुल लागत का 10% हिस्सा लाभार्थियों द्वारा उपलब्ध कराया जाएगा और शेष 90% हिस्सा अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ऋण के रूप में प्रदान किया जाएगा।
- **ब्याज अनुदान-** पात्र लाभार्थियों को भारत सरकार द्वारा 3% का ब्याज अनुदान पर प्रदान किया जाएगा तथा शुरू के 2 वर्षों तक ऋण चुकाने से छूट मिलेगी। हालाँकि, लाभार्थियों को इस अवधि के पश्चात् अगले 6 वर्षों में ऋण चुकाने होंगे।

डेयरी क्षेत्र के लिए कार्यशील पूंजीगत ऋण पर ब्याज में छूट की योजना (Interest subvention on Working Capital Loans for Dairy sector Scheme)

मत्स्य पालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय ने वर्ष 2020-21 के दौरान डेयरी गतिविधियों में संलग्न डेयरी सहकारी समितियों तथा किसान उत्पादक संगठनों के समर्थन हेतु एक नई योजना का शुभारंभ किया है।

मुख्य बिन्दु

- ऋण की किस्तों के शीघ्र और समय पर पुनर्भुगतान के मामले में प्रदान की जाने वाली 2% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त छूट के साथ-साथ, यह योजना 2% प्रति वर्ष की दर से ब्याज में भी छूट प्रदान करती है।
- यह 1 अप्रैल, 2020 से 31 मार्च, 2021 के मध्य संरक्षित वस्तुओं और अन्य दुग्ध के रूपांतरण के लिए सहकारी समितियों/किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) द्वारा अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों/क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs)/सहकारी बैंकों/वित्तीय संस्थानों से लिए गए कार्यशील पूंजीगत ऋण पर लागू है।

मत्स्यपालन और जलकृषि अवसंरचना विकास निधि (Fisheries and Aquaculture Infrastructure Development Fund: FIDF)

वित्त वर्ष 2018-19 में, सरकार ने देश में मत्स्यपालन बुनियादी ढांचे में सुधार के लिये 7,522.48 करोड़ रुपये के कोष के साथ 'मत्स्यपालन एवं जल कृषि अवसंरचना विकास कोष' बनाया था।

हाल ही में कृषि मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति ने 'मत्स्य पालन जल कृषि अवसंरचना विकास कोष' के कार्यान्वयन में धीमी प्रगति पर असंतोष जताया है। संसदीय समिति ने रिपोर्ट में यह पाया कि इस कोष की स्थापना के 3 साल बाद भी केवल 2,171.32 करोड़ रुपये मंजूर किये गये हैं।

मुख्य बिन्दु

- कृषि मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति ने मत्स्यपालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय की अनुदान माँगों पर संसद में 27वीं रिपोर्ट पेश की है।
- रिपोर्ट में कहा गया है कि, मंत्रालय, इस योजना के बारे में व्यापक प्रचार अभियान चलाये ताकि लाभार्थियों को पूरा लाभ मिल सके तथा पारदर्शिता को बढ़ाया जा सके।

FIDF के बारे में

- यह राज्य सरकारों/केंद्रशासित प्रदेशों और राज्य संस्थाओं, सहकारी समितियों, व्यक्तियों एवं उद्यमियों आदि को मत्स्य पालन विकास हेतु निवेश गतिविधियों के संचालन हेतु रियायती वित्त प्रदान करेगा।
- इसके अतिरिक्त यह मत्स्य उत्पादन को बढ़ावा देगा और मत्स्यन एवं संबद्ध गतिविधियों तथा उद्यमशीलता में वृद्धि करेगा। साथ ही यह ओपन केज फिशिंग जैसी नई तकनीकों को अपनाने को सुविधाजनक बनाएगा।
- FIDF के तहत ऋण का वितरण वर्ष 2018-19 से लेकर वर्ष 2022-23 तक के 5 वर्षों की अवधि के दौरान किया जाएगा और अदायगी अधिकतम 12 वर्षों की अवधि में होगी जिसमें मूलधन के भुगतान पर 2 वर्षों का ऋण स्थगन भी शामिल है।
- FIDF के तहत वित्त पोषित की जाने वाली अवसंरचना सुविधाओं में प्रमुख रूप से शामिल हैं-
 - मछली के बीज के फार्म की स्थापना। मछली के चारे के कारखाने/संयंत्रों की स्थापना।
 - जलाशयों में केज कल्चर को बढ़ावा देना।
 - गहरे समुद्र में मछली पकड़ने वाले जहाजों के चलन की शुरुआत।
 - मछलियों की बीमारी से जुड़ी नैदानिक और संगरोध सुविधाओं की स्थापना।
 - कोल्ड स्टोरेज, मछली परिवहन सुविधायें, मछली प्रसंस्करण इकाइयाँ, मछली बाजार आदि का निर्माण।
- FIDF मत्स्य उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में योगदान देगा जिससे किसानों की आय दोगुनी करने का विजन और मत्स्यपालन की क्षमता का पूरा दोहन से जुड़ी आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद करेगा।

फिश क्रायो बैंक (Fish Cryo Banks)

- पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन मंत्रालय ने फिश क्रायो बैंक स्थापित करने की घोषणा की है। यह विश्व में पहली बार होगा जब किसी 'फिश क्रायो बैंक' की स्थापना की जायेगी।
- यह मछुआरों को हर समय उनकी पसंदीदा मछलियों के 'शुक्राणुओं' की उपलब्धता सुनिश्चित करने की सुविधा प्रदान करेगा। इससे देश में मत्स्य

उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ावा मिलेगा जिससे मछुआरे भी समृद्ध होंगे।

- राष्ट्रीय मात्सियकी विकास बोर्ड द्वारा 'राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो' के सहयोग से 'फिश क्रायो बैंक' को स्थापित किया जाएगा।

विश्व व्यापार संगठन में मत्स्य सब्सिडी पर भारत का प्रस्ताव (India's Proposal on Fisheries Subsidy at WTO)

हाल ही में, भारत ने मत्स्यन सब्सिडी के मामले में विकासशील देशों के लिए विशेष और विभेदक उपचार (Special and Differential Treatment: S&DT) हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किया है।

विश्व व्यापार संगठन(WTO) के तत्वाधान में जारी वार्ता के बारे में

- WTO के सदस्य अवैध, गैर-सूचित और अनियमित मत्स्यन (Illegal, Unreported and Unregulated) के लिए सब्सिडी को समाप्त करने तथा अधिक्षमता एवं अति-दोहन को बढ़ावा देने वाली मत्स्यन सब्सिडी के कुछ स्वरूपों को प्रतिबंधित करने के लिए नियमों को अंतिम रूप प्रदान करने हेतु वार्ता हुई है।
- ज्ञातव्य है कि इन वार्ताओं की शुरुआत वर्ष 2001 में दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के दौरान हुई थी।
- हानिकारक सब्सिडियों का 14-20.5 बिलियन डॉलर वार्षिक होने का अनुमान लगाया गया है।

विकासशील देशों की मांग

- सम्मेलन में, विकासशील देशों ने मत्स्यन करने वाले छोटे समुदायों की सुरक्षा के लिए विशेष एवं विभेदित उपचार की मांग की है।
- S&DT प्रावधान विकासशील देशों को कई प्रकार की लोचशीलता प्रदान करते हैं, जैसे कि समझौतों और प्रतिबद्धताओं को लागू करने के लिए अधिक या अतिरिक्त समय, प्रतिबद्धताओं का निम्न स्तर और व्यापारिक अवसरों को बढ़ाने के उपाय।
- भारत की स्थिति- भारत के प्रस्ताव के अनुसार एक विकासशील देश छूट के लिए पात्र नहीं होगा, यदि-** उसकी प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (Gross National Income: GNI) लगातार तीन वर्षों तक 50,000 डॉलर से अधिक है।
- उसकी वैश्विक समुद्री मत्स्यन में 2 प्रतिशत से अधिक हिस्सेदारी है।
- उसके सकल घरेलू उत्पादन (GDP) में कृषि, वानिकी और मत्स्यन क्षेत्रों की हिस्सेदारी 10 प्रतिशत से कम है।
- भारत अपनी मत्स्यन सब्सिडी को बनाए रखना चाहता है, क्योंकि ईंधन, जाल और नौकाओं के लिए प्रदान की जाने वाली सब्सिडियों में कटौती करने से निर्धन मछुआरों की आजीविका प्रभावित हो सकती है।
- भारत सहित विकासशील देशों ने अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों के अनुसार, एक प्रभावी S&DT विश्व व्यापार संगठन के स्तर पर जारी मत्स्यन सब्सिडी का एक अभिन्न अंग है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों ने विकासशील देशों के लिए S&DT का विरोध किया है, क्योंकि इससे कुछ बड़े विकासशील देशों (विशेष रूप से चीन) का लाभ प्राप्त होगा।
- शुरू के 2 वर्षों तक ऋण चुकाने से छूट मिलेगी। हालांकि, लाभार्थियों को इस अवधि के पश्चात् अगले 6 वर्षों में ऋण चुकाने होंगे।
- क्रेडिट गारंटी फंड-** भारत सरकार द्वारा 750 करोड़ रुपये के एक क्रेडिट गारंटी फंड की स्थापना की जाएगी। इसका प्रबंधन नाबार्ड अर्थात् राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development: NABARD) करेगा। क्रेडिट गारंटी उन स्वीकृत

परियोजनाओं के लिए दी जाएगी, जो MSME के तहत परिभाषित होंगी।

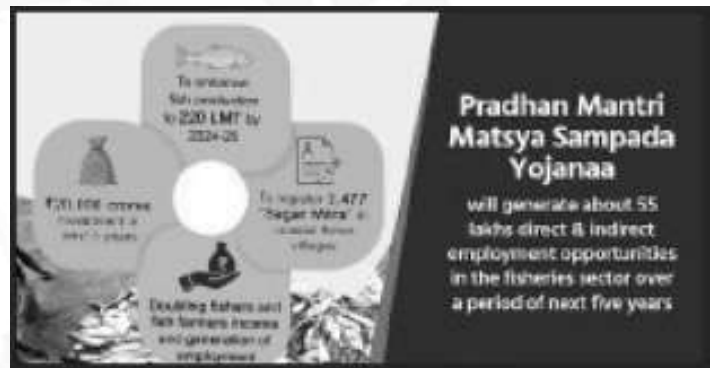
- इसकी उद्घोषणा आत्मनिर्भर भारत पैकेज के तहत की थी।

मत्स्य संपदा योजना (Matsya Sampada Yojana)

- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने डिजिटल माध्यम से 'प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना' (Pradhan Mantri Matsya Sampada Yojana-PMMSY) का शुभारंभ किया। इस योजना के साथ-साथ प्रधानमंत्री ने 'ई-गोपाला' एप भी लॉन्च किया, जो किसानों के प्रत्यक्ष उपयोग के लिये एक समग्र नस्ल सुधार, बाजार और सूचना पोर्टल है। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने बिहार में मछली पालन और पशुपालन क्षेत्रों में भी कई पहलों की शुरुआत की।

प्रमुख बिंदु

- PMMSY मत्स्य क्षेत्र पर केंद्रित एक सतत् विकास योजना है, जिसे आत्मनिर्भर भारत पैकेज के तहत वित्त वर्ष 2020-21 से वित्त वर्ष 2024-25 तक (5 वर्ष की अवधि के दौरान) सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में कार्यान्वित किया जाना है।



- इस योजना पर अनुमानतः 20,050 करोड़ रुपए का निवेश किया जाएगा।
- PMMSY के अंतर्गत 20,050 करोड़ रुपए का निवेश मत्स्य क्षेत्र में होने वाला सबसे अधिक निवेश है।
- इसमें से लगभग 12,340 करोड़ रुपए का निवेश समुद्री, अंतर्देशीय मत्स्य पालन और जलीय कृषि में लाभार्थी केंद्रित गतिविधियों पर तथा 7,710 करोड़ रुपए का निवेश फिशरीज इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिये प्रस्तावित है।
- वर्ष 2024-25 तक मत्स्य उत्पादन में अतिरिक्त 70 लाख टन की वृद्धि करना तथा मत्स्य निर्यात से होने वाली आय को 1,00,000 करोड़ रुपए तक बढ़ाना है।
- मछुआरों और मत्स्य किसानों की आय को दोगुनी करना तथा पैदावार के बाद होने वाले नुकसान को 20-25 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत करना है।
- मत्स्य पालन क्षेत्र और सहायक गतिविधियों में 55 लाख प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर पैदा करना है।
- मुख्य रूप से रोजगार सृजन गतिविधियों जैसे- समुद्री शैवाल और सजावटी मछली की खेती पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
- यह मछलियों की गुणवत्ता वाली प्रजातियों की नस्ल तैयार करने तथा उनकी विभिन्न प्रजातियाँ विकसित करने, महत्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे के विकास और विपणन नेटवर्क आदि पर विशेष ध्यान केंद्रित करेगा।
- नीली क्रांति योजना की उपलब्धियों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से कई नए हस्तक्षेपों की परिकल्पना की गई है जिसमें मछली पकड़ने के जहाजों का बीमा, मछली पकड़ने वाले जहाजों/नावों के उन्नयन हेतु सहायता, बायो-टॉयलेट्स, लवण/क्षारीय क्षेत्रों में जलीय कृषि, मत्स्य पालन और जलीय कृषि स्टार्ट-अप, इन्क्यूबेटर्स, एक्वाटिक प्रयोगशालाओं के नेटवर्क

और उनकी सुविधाओं का विस्तार, ई-ट्रेडिंग/विपणन, मत्स्य प्रबंधन योजना आदि शामिल हैं।

राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और शहद मिशन (National Beekeeping and Honey Mission: NBHM)

- हाल ही में, भारत सरकार ने वर्ष 2020-21 से वर्ष 2022-23 के लिए 'राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और शहद मिशन (NBHM)' नामक केंद्रीय क्षेत्रक की एक नई योजना को स्वीकृति प्रदान की है।
- NBHM वैज्ञानिक रीति के तहत मधुमक्खी पालन और गुणवत्ता युक्त शहद (मधु) तथा अन्य मधुमक्खी (छत्ते से निष्काषित) उत्पादों के उत्पादन के समग्र संवर्धन एवं विकास हेतु केंद्रीय क्षेत्रक की एक योजना है।
- इसे मधुमक्खी पालन के महत्व और मीठी क्रांति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रारंभ किया गया है।
 - इसके निम्नलिखित 3 घटक हैं-
 - परागण के माध्यम से विभिन्न फसलों के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार करना।
 - मधुमक्खी पालन/मधुमक्खी उत्पादों के संचयन के उपरांत प्रबंधन करना।
 - विभिन्न कृषि-जलवायु और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के लिए अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी निर्माण करना।
 - इसके अंतर्गत राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड द्वारा 30 लाख किसानों को मधुमक्खी पालन का प्रशिक्षण प्रदान किया गया है।

भारत में मधुमक्खी पालन

- कृषि एवं खाद्य संगठन (FAO) के अनुसार, मधु उत्पादन के मामले में भारत विश्व में 8वें स्थान पर है।
- मधुमक्खी पालन अत्यधिक अविकसित और असंगठित क्षेत्र में अधिकांशतः ग्रामीण एवं जनजातीय जनसंख्या के मध्य प्रचलित है।
- मधुमक्खी पालन को अपनाने से बेरोजगार महिलाओं और जनजातीय जनसंख्या की आजीविका में वृद्धि हो सकती है।

कृषि साख (Agricultural Credit)

- भारतीय सीमांत किसानों को संसाधनों की कमी से जूझते हुए देखने से यह स्पष्ट होता है कि खेती-बाड़ी के सफलता के लिए पर्याप्त साख की उपलब्धता अति आवश्यक है। वर्ष 2021-22 में साख प्रवाह लक्ष्य 16.50 लाख करोड़ लक्ष्य निर्धारित किया गया। 30 सितंबर 2021 तक इस लक्ष्य के मुकाबले 736589.05 करोड़ रुपये की राशि वितरित की गयी है।
- आत्मनिर्भर भारत अभियान के हिस्से के रूप में घोषित किये गए एग्रीकल्चर इंफ्रास्ट्रक्चर फंड कृषि क्षेत्र के लिए और अधिक साख बढ़ाने में मददगार सिद्ध होगी।
- कृषि विकास तथा कृषि साख (Agricultural Credit) में गहरा संबंध है। समय पर तथा उचित ब्याज पर ऋण देते हैं तथा साथ ही उनकी गरीबी का लाभ उठाकर उनका शोषण करते हैं, उन्हें बाध्य करते हैं कि वे अपनी फसल अत्यंत ही कम मूल्य पर उनको बेच दें।

कृषि साख के स्रोत

कृषि साख के स्रोतों को दो भागों में बाँटकर देखा जा सकता है-

- गैर संस्थागत स्रोत इनके अंतर्गत निम्नलिखित स्रोत आते हैं-
 - महाजन तथा साहूकार - संबंधी और रिश्तेदार
 - व्यापारी - जमींदार
 - आदिति

- संस्थागत स्रोत इनके अंतर्गत निम्नलिखित स्रोत हैं-
 - सहकारी समितियाँ तथा बैंक (Cooperative Societies and Banks)।
 - व्यावसायिक बैंक (Commercial Bank)।
 - क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRBs)।
 - सरकार (Government)।

कृषि साख से संबंधित संस्थाएँ

कृषि साख से संबंधित प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

नाबार्ड- (NABARD)

- भारत नाबार्ड (NABARD) की स्थापना 1982 की गयी। यह देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु वित्त उपलब्ध कराने वाली शीर्ष संस्था है। इसका मुख्यालय मुंबई में है। नाबार्ड ग्रामीण ऋण ढाँचे में एक शीर्षस्थ संस्था के रूप में अनेक वित्तीय संस्थाओं, जैसे- राज्य भूमि विकास बैंक, ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक गतिविधियों के विस्तृत क्षेत्रों को बढ़ावा देने के लिए ऋण देती है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक-** वर्ष 1975 में गठित ग्रामीण बैंकों के संबंध में नियुक्त कार्यदल की संस्तुति पर वर्ष 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (Regional Rural Banks) की स्थापना की गयी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कृषि के लिए साख उपलब्ध कराने वाली महत्वपूर्ण संस्था है।
- भूमि विकास बैंक-** किसानों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूमि विकास बैंक (Land Development Banks) की स्थापना की गयी है। यह बैंक किसानों को भूमि खरीदने, भूमि पर स्थायी सुधार करने अथवा पुराने ऋणों का भुगतान करने आदि के लिए 'दीर्घकालीन' ऋणों की व्यवस्था करता है।

भारतीय कृषि बीमा निगम लिमिटेड

कृषि बीमा के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक अलग संगठन का गठन 20 दिसंबर, 2002 से भारतीय कृषि बीमा निगम के नाम से किया गया है। इस प्रयोजन के लिए भारतीय सामान्य बीमा निगम, के नाम से किया गया। इस प्रयोजन के लिए भारतीय सामान्य बीमा निगम, सार्वजनिक क्षेत्र की चार सामान्य बीमा कंपनियों 1. नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2. न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 3. ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 4. यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड तथा नाबार्ड से पूंजी जुटाई गयी। भुगतान की गयी पूंजी के अंशदाताओं में जी आई सी की हिस्सेदारी 35% नाबार्ड कर 30% तथा शेष 4 कंपनियों में प्रत्येक की हिस्सेदारी 8.75% है। AICIL की प्राधिकृत पूंजी 1500 करोड़ रुपये और चुकता पूंजी 200 करोड़ रुपये है।

कृषि ऋण प्रवाह

- वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र को प्रदत्त कुल ऋणों का लगभग 65% ऋण संस्थागत स्रोतों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।
- सरकार द्वारा किसानों को वर्ष 2006-07 से ही रियायती दरों पर फसल ऋण उपलब्ध कराये जा रहे हैं। अपने अल्पकालिक ऋणों की समय पर अदायगी करने वाले को 3% की विशेष रियायत सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जा रही है, जिसके फलस्वरूप किसानों के लिए प्रभावी ब्याज दर 7% से घटकर 4% सलाना हो गयी है।
- केंद्र सरकार द्वारा तय नीति के तहत निजी व सार्वजनिक दोनों प्रकार के बैंकों को अपने कुल ऋणों का 40% प्राथमिकता क्षेत्र को उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसमें भी 18% भाग कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

भारत में उद्योग एवं औद्योगिक नीति (Industry and Industrial Policy in India)

परिचय

औद्योगीकरण से आशय राष्ट्रीय उत्पादन तथा निवेश के ढाँचे में उद्योगों की बहुलता से है जिससे सकल घरेलू उत्पाद तथा श्रमशक्ति के उपयोग में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा बढ़ जाता है। यह एक क्रमिक प्रक्रिया है जिसमें सामान्यतः सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का अंश कम होता जाता है तथा औद्योगिक क्षेत्र का योगदान बढ़ता जाता है।

औद्योगीकरण तथा औद्योगिक विकास को आर्थिक विकास का प्रेरक तथा सूचक माना जाता है। कृषि क्षेत्र तथा सेवा क्षेत्र का विकास, इसके शृंखला प्रभाव के कारण काफी हद तक औद्योगिक क्षेत्र के विकास पर निर्भर करता है। औद्योगिक क्षेत्र के विकास के परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर रोजगार एवं आय वृद्धि के द्वारा अर्थव्यवस्था में माँग का सृजन होता है तो वहीं दूसरी ओर देश के तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास का सुदृढ़ आधार विकसित होता है। औद्योगिक विकास किसी देश के आर्थिक विकास में निम्नांकित रूपों में सहायक होता है-

1. अर्थव्यवस्था में मूल्यवर्धन (Value Addition) तथा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में योगदान देना।
2. कृषि क्षेत्र के श्रमाधिक्य तथा उत्पाद आधिक्य (जिसमें कि उद्योगों में प्रयोग में आने वाला कच्चा माल शामिल है) को प्रयोग में लाकर कृषि तथा सेवा क्षेत्र के लिए आवश्यक आगत (Input) जैसे- उर्वरक, मशीन तथा संयंत्र आदि की व्यवस्था के द्वारा कृषि क्षेत्र के विकास में योगदान देना।
3. अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन में सहायक होना।
4. निर्यात संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं औद्योगिक विकास (Five Years Plans and Industrial Development)

पंचवर्षीय योजनाएं	औद्योगिक क्षेत्र में व्यय
पहली पंचवर्षीय योजना	औद्योगिक विकास में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की भूमिका को स्वीकार करते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था की शुरूआत की गयी। यह मूलतः कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र पर केंद्रित योजना थी और इसमें कुल व्यय का केवल 2.8% भाग ही उद्योग एवं खनिज क्षेत्र को प्रदान किया गया।
दूसरी पंचवर्षीय योजना	व्यापक औद्योगिकीकरण से संबंधित आधारभूत योजना थी। इस योजना से देश में तीव्र औद्योगिक विकास सुनिश्चित करने के लिए आधारभूत उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया गया। इस योजना के अंतर्गत कुल व्यय की 20.1% राशि उद्योग क्षेत्र को प्रदान की गयी। भारी उद्योगों पर विशेष बल दिया गया।
तीसरी पंचवर्षीय योजना	दूसरी योजना की निरंतरता में चल रही योजना थी। इसमें भी कुल व्यय का 20.1% भाग औद्योगिक क्षेत्र में खर्च किया गया।
चौथी पंचवर्षीय योजना	इसमें औद्योगिक क्षेत्र में किया गया व्यय कुल व्यय का 18.2% रहा।
पांचवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें कुल व्यय का लगभग 22.8% भाग उद्योग पर खर्च किया गया, जो सभी योजनाओं में सर्वाधिक था।

छठीं पंचवर्षीय योजना	इसके दौरान औद्योगिक नीति में कई बदलाव किये गए तथा उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की गयी। इस योजना में कुल व्यय का 13.8% औद्योगिक क्षेत्र में व्यय किया गया।
सातवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें कुल व्यय का लगभग 11.9% भाग औद्योगिक क्षेत्र में व्यय किया गया।
आठवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें कुल व्यय का लगभग 9.3% औद्योगिक क्षेत्र को प्रदान किया गया।
नौवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें कुल योजनागत व्यय का 5% औद्योगिक क्षेत्र को प्रदान किया गया।
दसवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें कुल व्यय का मात्र 3.9% भाग ही औद्योगिक क्षेत्र में व्यय किया गया।
ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें 10% औद्योगिक विकास का लक्ष्य निर्धारित करते हुए इस क्षेत्र में कुल व्यय का लगभग 4.5% भाग प्रदान किया गया।
बारहवीं पंचवर्षीय योजना	इसमें 9.6% औद्योगिक विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग क्षेत्र की वृद्धि दर % में

क्र.स.	योजना अवधि	उद्योग क्षेत्र	क्र.स.	योजना अवधि	उद्योग क्षेत्र
1.	पहली योजना	5.54	8.	सातवीं योजना	6.77
2.	दूसरी योजना	5.59	9.	दो वार्षिक योजनाएं	0.10
3.	तीसरी योजना	6.28	10.	आठवीं योजना	7.58
4.	तीन वार्षिक योजनाएं	1.42	11.	नौवीं योजना	4.29
5.	चौथी योजना	4.91	12.	दसवीं योजना	9.17
6.	पांचवीं योजना	6.55	13.	ग्यारहवीं योजना	7.4 (लक्ष्य 10.5)
7.	छठवीं योजना	5.32	14.	बारहवीं योजना	9.6 (लक्ष्य)

भारत में औद्योगिक नीतियाँ (Industrial Policies in India)

औद्योगिक नीति, 1948 (Industrial Policy, 1948)

पहला महत्वपूर्ण औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 में दिया गया।

- **राज्य के अनन्य एकाधिकार वाले उद्योग-** इसमें परमाणु ऊर्जा, रेलवे तथा हथियार एवं गोला बारूद निर्माण गतिविधियों में संलग्न उद्योग सम्मिलित थे।

- **सरकारी नियंत्रण वाले उद्योग-** इसमें राष्ट्रीय महत्व के उद्योग सम्मिलित थे। अतः इन्हें पंजीकृत किए जाने की आवश्यकता थी। इस श्रेणी में 18 उद्योग सम्मिलित किए गए उदाहरण के लिए उर्वरक, भारी रसायन, भारी मशीनरी इत्यादि।
- **मिश्रित क्षेत्र में उद्योग-** इसमें वे उद्योग सम्मिलित थे जिनमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र, दोनों को परिचालन की अनुमति दी गई थी। इसके अंतर्गत किसी भी मौजूदा निजी उपक्रम का अधिग्रहण करने के लिए सरकार को स्थिति की समीक्षा करने की अनुमति थी।
- **निजी क्षेत्र के अंतर्गत उद्योग-** उपरोक्त में से किसी भी श्रेणी के अंतर्गत न आने वाले उद्योग इस श्रेणी में आते हैं।

औद्योगिक (विकास एवं विनियमन) अधिनियम 1951 (IDRA- Industrial Development & Regulation Act, 1951)

IDRA, 1951 औद्योगिक विनियामकीय फ्रेमवर्क में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधान है। इसने सरकार को विभिन्न तरीकों से उद्योग का विनियमन करने की शक्ति प्रदान की। इसके मुख्य साधन, क्षमता (तथा इसके माध्यम से उत्पादन) का विनियमन और मूल्य नियंत्रित करने की शक्ति थी। इसके अंतर्गत ऐसे उद्योगों को अनुसूचित किया गया, जिनके लिए लाइसेंस की आवश्यकता थी। यहां तक कि इन उद्योगों के विस्तार के लिए भी सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता होती थी अर्थात् उत्पादन क्षमता अत्यधिक विनियमित थी। इसके साथ ही सरकार को अनुसूचित उद्योगों के उत्पादों का वितरण करने और मूल्यों को नियंत्रित करने की शक्ति दी है। IDRA अधिनियम द्वारा सरकार को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई परिणामस्वरूप देश के औद्योगिक विकास पर नौकरशाही द्वारा पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो गया।

IDRA, 1951 के मुख्य प्रावधान थे-

- केंद्र सरकार के स्वामित्वाधीन उपक्रमों के अतिरिक्त, अधिनियम के प्रभावी होने के समय कार्यरत सभी उपक्रमों के लिए निर्दिष्ट प्राधिकारी के कार्यालय में पंजीकरण कराना अनिवार्य था।
- केंद्र सरकार के अतिरिक्त किसी को भी कोई नवीन औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने की अनुमति नहीं थी, सिवाय इसके कि वह केवल केंद्र सरकार द्वारा इस निमित्त जारी किए गए लाइसेंस के अंतर्गत हो।
- इस प्रकार का लाइसेंस या अनुमति विभिन्न प्रकार की शर्तें निर्धारित करता था, यथा अवस्थिति तथा आकार एवं प्रयुक्त होने वाली तकनीकों के संबंध में न्यूनतम मानक, जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित किया जा सकता था।
- वर्तमान औद्योगिक उपक्रम के 'पर्याप्त विस्तार' की स्थिति में भी ऐसे लाइसेंस और मंजूरी की आवश्यकता होती थी।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 (Industrial Policy Resolution, 1956)

1948 के प्रस्ताव को अपनाने के पश्चात भारत में औद्योगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन दर्ज किए गए। इस दौरान आर्थिक नियोजन ने एक संगठित स्वरूप धारण कर लिया था तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी थी। इसके साथ ही संसद द्वारा सामाजिक और आर्थिक नीति के मूल उद्देश्य के रूप में समाजवादी स्वरूप को स्वीकार कर लिया गया। इन महत्वपूर्ण घटनाक्रमों के क्रम में औद्योगिक नीति के एक नवीन वक्तव्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इसके परिणामस्वरूप अप्रैल 1956 में, 1948 के प्रस्ताव के स्थान पर एक दूसरा औद्योगिक नीति प्रस्ताव अपनाया गया। 1956 के प्रस्ताव के महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित थे।

- उद्योगों का नया वर्गीकरण- IPR, 1956 ने उद्योगों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया-

- **अनुसूची A के उद्योग-** 'राज्य या सरकार के एकाधिकार वाले उद्योग' इसमें 17 उद्योग सम्मिलित थे। निजी क्षेत्र को इन उद्योगों में परिचालन की अनुमति केवल उसी स्थिति में प्रदान की गई, जब राष्ट्र हित में ऐसा करना आवश्यक हो।
- **अनुसूची B के उद्योग-** उद्योगों की इस श्रेणी में, राज्य को नई इकाइयाँ स्थापित करने की अनुमति दी गई, लेकिन निजी क्षेत्र को इकाइयाँ स्थापित करने या वर्तमान इकाइयों का विस्तार करने से मना नहीं किया गया। उदाहरण के लिए, रासायनिक उद्योग, उर्वरक, सिंथेटिक, रबर, एल्युमिनियम आदि।
- **अनुसूची C के उद्योग-** उपरोक्त श्रेणियों में सम्मिलित न होने वाले उद्योगों को अनुसूची C के उद्योग कहा गया। इस प्रकार IPR, 1956 के अंतर्गत सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्योगों के पारस्परिक अस्तित्व पर बल दिया गया।

- **लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन-** लघु उद्योग क्षेत्र को सशक्त बनाने के लिए, सस्ते ऋण, सब्सिडी, आरक्षण आदि के रूप में सहायक उपाय सुझाए गए थे।
- **क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाने पर बल-** पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना हेतु वित्तीय रियायतें दी गई। इन क्षेत्रों का विकास करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को अधिक भूमिका प्रदान की गई।
- IPR, 1956 का मूलधार यह था कि राज्य की औद्योगिक विकास के लिए प्राथमिक भूमिका दी जाए क्योंकि पूंजी दुर्लभ थी और उद्यमशीलता सशक्त नहीं थी। ऐसे में सार्वजनिक क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार किया गया ताकि इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था का विस्तार किया जा सके।

औद्योगिक नीति वक्तव्य, 1973 (Industrial Policy Statement, 1973)

1973 के औद्योगिक नीति वक्तव्य द्वारा बड़े व्यापारिक घरानों द्वारा प्रारंभ किए जाने वाले उद्योगों की सूची तैयार की गई ताकि लघु उद्योगों का प्रतिस्पर्धी प्रयास प्रभावित न हो। इसमें सभी उद्योगों में सक्षम लघु और मध्यम उद्यमियों के प्रवेश को प्रोत्साहित किया गया। इसके साथ ही बड़े उद्योगों को ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों को विकसित करने और आसपास लघु उद्योगों का विकास सक्षम बनाने के दृष्टिकोण के साथ परिचालन आरंभ करने की अनुमति प्रदान की गई।

औद्योगिक नीति वक्तव्य, 1977 (Industrial Policy Statement, 1977)

इस नीति के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित थे-

- **लघु उद्योग क्षेत्र का विकास-** इस नई औद्योगिक नीति ने मुख्य रूप से छोटे और कुटीर उद्योगों के प्रभावी प्रोत्साहन पर बल दिया। इसके साथ ही सरकार द्वारा लघु उद्योग क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापक प्रसार और सहायक उपायों को भी अपनाया गया। इसके अंतर्गत लघु उद्योग क्षेत्र को 3 श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था।
- कुटीर घरेलू उद्योग, जो स्व रोजगार प्रदान करते हैं।
 - छोटे क्षेत्र (Tiny Sector)।
 - लघु उद्योग (Small Scale Industries)।
 - वर्गीकरण का उद्देश्य प्रत्येक श्रेणी के लिए विशेष रूप से नीतिगत उपाय तैयार करना था। इस प्रकार नीति वक्तव्य में लघु पैमाने के क्षेत्र में अनन्य निर्माण के लिए आरक्षित वस्तुओं की सूची में अत्यधिक विस्तार किया गया।
- **बड़े व्यापारिक घरानों के प्रति प्रतिबंधित दृष्टिकोण-** वृहद् उद्यम

क्षेत्रक को आधारभूत, पूँजीगत वस्तुएँ और उच्च तकनीकी उद्योगों में अनुमति दी गई थी। नीति में इस बात पर बल दिया गया कि वित्तीय संस्थानों से प्राप्त धन छोटे क्षेत्रक के विकास के लिए बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा वृहद् उद्यमों को नई परियोजनाओं या वर्तमान व्यापार के विस्तार के वित्त पोषण हेतु आंतरिक वित्त स्रोतों का सृजन करना चाहिए।

- **सार्वजनिक क्षेत्रक की भूमिका का विस्तार**– इस औद्योगिक नीति के अनुसार, सार्वजनिक क्षेत्रक का योगदान न केवल सामरिक क्षेत्रों में होगा बल्कि उपभोक्ता के लिए आवश्यक आपूर्ति को बनाए रखने में स्थिरता प्रदान करने वाले कारक के रूप में भी होगा।

इसके अतिरिक्त, नीति वक्तव्य में पूँजी के प्रति प्रतिबंधात्मक नीति को दोहराया गया था, जिसके अंतर्गत स्वामित्व और प्रभावी नियंत्रण में भारतीय दावेदारी अधिक होनी चाहिए।

औद्योगिक नीति, 1980 (Industrial Policy, 1980)

वर्ष 1980 की औद्योगिक नीति में इस बात पर बल दिया गया कि सार्वजनिक क्षेत्रक, आर्थिक आधारभूत संरचना का आधार है, जिसके कारण इसकी अधिक विश्वसनीयता, बड़े निवेश की आवश्यकता और आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण परियोजनाओं की लंबी निर्माणपूर्व तैयारी अवधि (Longer Gestation Period) होना है। इस नीति की महत्वपूर्ण विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

- **सार्वजनिक क्षेत्रक का प्रभावी प्रबंधन**– इस नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की दक्षता के पुनः प्रवर्तन (Revival) पर बल दिया गया।
- **औद्योगिक लाइसेंसिंग का उदारीकरण**– इस नीति वक्तव्य में MRTP और FERA के अंतर्गत मौजूदा इकाइयों की क्षमता बढ़ाने के लिए स्वतः अनुमोदन के संदर्भ में लाइसेंसिंग में उदारवादी उपाय प्रदान किए गए। MRTP के अंतर्गत परिसंपत्ति सीमा का विस्तार कर दिया गया। इसके साथ ही बड़ी संख्या में उद्योगों को लाइसेंसिंग से छूट प्रदान की गई। इस नीति में स्थूल वर्गीकरण की अवधारणा प्रस्तुत की गई ताकि नए लाइसेंस के लिए आवेदन किए बिना उत्पाद मिश्रण को तय करने के लिए उद्योगों को लचीलापन प्रदान किया जा सके।
- **लघु स्तरीय उद्योगों को पुनर्परिभाषित करना**– इस क्षेत्रक के विकास को बढ़ावा देने के लिए लघु उद्योगों को परिभाषित करने के लिए तय निवेश की सीमा बढ़ा दी गई। छोटे क्षेत्रकों (Tiny Sectors) के मामले में निवेश की सीमा 10 लाख रुपये से बढ़ाकर 20 लाख तक तथा सहायक उद्योगों (Ancillaries) की इकाइयों के लिए निवेश सीमा 15 लाख रुपये से बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दी गई थी।

औद्योगिक नीति, 1980 ने घरेलू बाजार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने, तकनीकी उन्नयन और आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर ध्यान दिया। इसके साथ ही इस नीति के तहत तेजी से बढ़ते प्रतिस्पर्धी निर्यात-आधारित उद्योगों की तथा उच्च प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने की नींव रखी गयी।

1991 पूर्व औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएँ (Major Features of Industrial Policy Before 1991)

- **भारतीय उद्योगों को संरक्षण**– 1991 से पूर्व की नीति में उत्पादों के आयात पर आंशिक प्रतिबंध लगाकर तथा उच्च आयात शुल्क द्वारा स्थानीय उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया गया। आयात संरक्षण का उद्देश्य भारतीय उद्योगों को विभिन्न उत्पादों के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करना था। इन सभी उत्पादों के लिए एक तैयार बाजार भारत में पहले से ही विद्यमान था।
- **आयात प्रतिस्थापन नीति**– सरकार द्वारा अपनी आयात नीति का प्रयोग

स्थानीय उद्योगों के बेहतर विकास के लिए किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारंभ के कुछ वर्षों को छोड़कर, देश विदेशी मुद्रा की कमी का सामना कर रहा था, इसलिए दुर्लभ विदेशी मुद्रा को बचाने के लिए, आयात प्रतिस्थापन नीति आरंभ की गई थी। इस प्रकार सरकार ने आयात की जाने वाली वस्तुओं के स्वदेशी उत्पादन को प्रोत्साहित किया।

- **वित्तीय अवसंरचना**– उद्योगों के लिए आवश्यक वित्तीय आधारभूत संरचना प्रदान करने हेतु सरकार ने कई विकास बैंकों की स्थापना की। विकास बैंक का प्रमुख कार्य मध्यम तथा दीर्घकालिक निवेश प्रदान करना है। वे उद्यम विकास को बढ़ावा देने में भी एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इस उद्देश्य के साथ, सरकार ने 1948 में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IDBI), 1971 में इंडस्ट्रियल रिक्स्ट्रक्शन कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया, 1963 में यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया (UTI) तथा भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC) की स्थापना की।
- **भारतीय उद्योगों पर नियंत्रण**– भारतीय उद्योगों में औद्योगिक लाइसेंसिंग, MRTP अधिनियम, 1969 इत्यादि जैसे कानूनों के माध्यम से अत्यधिक विनियमित किया गया। इन कानूनों के माध्यम से देश में लगभग सभी प्रकार के उद्योगों के उत्पादन, विस्तार और मूल्य निर्धारण को प्रतिबंधित किया गया।
- **विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) के अंतर्गत विदेशी पूँजी का विनियमन**– विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) द्वारा किसी कंपनी में विदेशी निवेश को 40% तक सीमित कर दिया गया। इससे विदेशी सहयोग प्राप्त कंपनियों का नियंत्रण भी भारतीयों के हाथों में सुनिश्चित हो गया। इसके साथ ही विदेशी निवेशकों द्वारा किए गए तकनीकी सहयोग और विदेशी मुद्रा के प्रत्यावर्तन पर भी प्रतिबंध लगाए गए।
- **लघु उद्योगों को प्रोत्साहन**– सरकार ने लघु उद्योगों (SSI) के विकास के लिए विभिन्न सहायता उपाय अपनाकर उन्हें प्रोत्साहित किया। नीतिगत उपायों के अंतर्गत ऋण, विपणन, प्रौद्योगिकी, उद्यमिता विकास और राजकोषीय, वित्तीय और आधारभूत संरचना संबंधी सहायता जैसी लघु उद्योगों की आधारभूत आवश्यकताओं को संबोधित किया गया।
- **सार्वजनिक क्षेत्रक पर बल**– उद्योगों को आधारभूत संरचना और बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने हेतु सरकार ने अत्यधिक निवेश किया। यह निवेश राशि विद्युत उत्पादन, पूँजीगत वस्तुओं, भारी मशीनरी, बैंकिंग, दूरसंचार आदि जैसे प्रमुख क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यम स्थापित करके प्राप्त की गई।

1991 से पूर्व की औद्योगिक नीति का आकलन (Review of Industrial Policy Before 1991)

- वर्ष 1991 से पूर्व की औद्योगिक नीतियों ने देश में तीव्र औद्योगिक विकास के अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित की तथा आधारभूत संरचना और बुनियादी उद्योगों की स्थापना में सहायता प्रदान की। बड़ी संख्या में वस्तुओं पर आत्मनिर्भरता के साथ एक विविध औद्योगिक संरचना प्राप्त हुई थी। स्वतंत्रता के समय कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का था। 1991 में ऐसे उद्योगों का योगदान केवल 20% था। इसके विपरीत, पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन कुल औद्योगिक उत्पादन का 4% प्रतिशत से भी कम था। 1991 में यह बढ़कर 24% तक पहुँच गया था।
- इस दौरान नए उद्योगों के विविध वर्गों में औद्योगिक निवेश किया गया एवं आधुनिक प्रबंधन तकनीक अपनाई गई। सरकार की समर्थन प्रणाली के कारण उद्यमियों का एक नया वर्ग उभरकर सामने आया और देश के

अधिकांश हिस्सों में बड़ी संख्या में नए औद्योगिक केन्द्र विकसित किए गए। कुछ वर्षों में सरकार ने उद्योगों के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे का निर्माण किया और विद्युत, संचार, सड़कों आदि की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश किया। उद्यमिता विकास में सहयोग करने, उद्योगों के लिए वित्त उपलब्ध कराने और उद्योगों के लिए आवश्यक विविध कौशलों के विकास हेतु बड़ी संख्या में संस्थानों का प्रोन्नयन किया गया।

- हालांकि, औद्योगिक नीति के कार्यान्वयन में बहुत सारी कमियाँ रह गईं। इस संबंध में यह तर्क दिया गया कि औद्योगिक लाइसेंसिंग वाली व्यवस्था ने अक्षमता और उच्च लागत वाली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया जबकि वास्तव में योजना की प्राथमिकताओं और लक्ष्यों के अनुसार लाइसेंसिंग द्वारा क्षमता निर्माण सुनिश्चित होनी चाहिए थी। इसके साथ ही लाइसेंसिंग प्राधिकरणों में निहित अत्यधिक विवेकाधिकारों के कारण यह तंत्र भ्रष्टाचार और रेंट-सीकिंग (Rent Seeking) अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने वाला बनकर रह गया। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में नए उद्यमों का प्रवेश बाधित हुआ तथा प्रतिस्पर्धा प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई। अपने मूल तार्किक आधार के विपरीत, लाइसेंसिंग प्रणाली में बड़े उद्यमों को समर्थन मिला तथा पिछड़े क्षेत्रों के साथ भेदभाव हुआ। इसके साथ ही सरकार ने 1970, 1973 और 1980 की औद्योगिक नीतियों में कई उदारीकरण उपायों की घोषणा की। हालाँकि, 1991 में औद्योगिक नीति में उदारीकरण के प्रभावी प्रयास किए गए।

1980 के दशक में सुधारों का आरंभ

- इन सुधारों का मुख्य ध्यान औद्योगिक उत्पादकता में सुधार लाने पर था। सुधारों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं में औद्योगिक लाइसेंसिंग का चयनात्मक उन्मूलन, व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं का आंशिक उदारीकरण तथा पूँजीगत वस्तुओं के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) व्यवस्था में परिवर्तन सम्मिलित हैं। वस्त्र, चमड़े के उत्पादों और खेल के सामान जैसे श्रम गहन क्षेत्रों में भारत तुलनात्मक रूप से लाभ की स्थिति में था। इन क्षेत्रों में निर्यात क्षमता विकसित करने के रास्ते में एक बड़ी बाधा के बावजूद छोटे पैमाने (लघु उद्योग) के क्षेत्र को उत्पादन में प्राप्त संरक्षण जारी रहा। 1980 की औद्योगिक नीति से भी बाहर निकलने (एगजिट क्लॉज) में आने वाली बाधाओं को दूर कर औद्योगिक क्षेत्र के पुनर्गठन करने की दिशा में कम ध्यान दिया गया।
- 1980 के दशक के दौरान कुशलता में सुधार और निर्यात को बढ़ावा देने के लिए विचारपूर्वक व्यापार नीतियों का निर्माण किया गया था। तकनीकी उन्नयन के लिए क्षमता उपयोग और आधुनिक पूँजीगत वस्तुओं की सुविधा प्रदान करने के लिए आयातित मध्यवर्ती निवेशों तक आसान पहुँच ही इन सुधारों की प्रेरणा शक्ति थी। संरक्षणवादी व्यवस्था के परिणामस्वरूप उभरे निर्यात विरोधी पूर्वाग्रह को समाप्त करने के लिए निर्यात सब्सिडी प्रदान की गई थी।
- सीमित घरेलू विनियमन और व्यापार नीति सुधार ऐसी स्थिति लाने में सफल रहे इसके परिणामस्वरूप 1980 के दशक में भारतीय विनिर्माण क्षेत्रक में उत्पादकता 27% तक बढ़ी। 1980 के दशक में औद्योगिक विकास दर 7% से अधिक हो गई और विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात में करीब 11% की वृद्धि हुई।
- 1980 के दशक के दौरान भारत सरकार के बढ़ते राजकोषीय अपव्यय के कारण बिगड़ते समष्टि आर्थिक परिवेश में बेहतर विकास की निरंतरता और औद्योगिक क्षेत्रक की उत्पादकता प्रदर्शन को बनाए रखना चुनौती

से कम नहीं था। 1990 के खाड़ी युद्ध के आरंभ में राजनीतिक अस्थिरता के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान विश्वास में अत्यधिक कमी आ गई थी। 1991 का भुगतान संतुलन संकट का परिणाम था।

नई औद्योगिक नीति, 1991 (New Industrial Policy 1991)

भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे और इसकी प्रकृति को आकार पूर्व की औद्योगिक नीतियों से ही मिला था। समय की मांग थी कि नब्बे के दशक की शुरुआत में इसकी प्रकृति और ढाँचे को बदला जाए। भारत सरकार ने औद्योगिक नीति के मूल स्वरूप को बदलने का फैसला किया, जिससे खुद-ब-खुद अर्थव्यवस्था की प्रकृति और कार्यक्षेत्र बदलाव की ओर अग्रसर होंगे। इस तरह 1991 की नई औद्योगिक नीति आई।

इस नीति के साथ सरकार ने अर्थव्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया को शुरू किया, इसलिए इस नीति को एक नीति के बजाय प्रक्रिया ज्यादा माना गया।

जून, 1991 में भारत के समक्ष एक गंभीर भुगतान संतुलन का संकट था। 1990 तथा 1991 में अनेक परस्पर जुड़ी हुई घटनाएँ हुईं, जो भारत के आर्थिक हितों के विपरीत थीं।

- खाड़ी युद्ध (1990-91) के कारण तेल की बढ़ती कीमतें भारत के विदेशी मुद्रा भंडार को तेज गति से खाली कर रही थी।
- विदेश में खासकर खाड़ी क्षेत्र में काम कर रहे भारतीय श्रमिकों द्वारा भेजे गए धन में खाड़ी युद्ध के कारण आई गिरावट।
- मुद्रास्फीति दर लगभग 17 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी।
- केंद्र सरकार का सकल वित्तीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 8.4 प्रतिशत था।
- जून, 1991 तक भारत का विदेशी मुद्रा भंडार घट कर मात्र दो सप्ताह के आयात के लिए ही पर्याप्त रह गया था।

1991 में भारत सरकार द्वारा बाजार उदारीकरण के लिए उठाए गए कदम का मुख्य कारण गंभीर भुगतान संतुलन का संकट था तथा सरकार ने इस संदर्भ में एक क्रमित नीति अपनाई। चूँकि आर्थिक सुधार का मुख्य कारण भुगतान संतुलन का संकट था, इसलिए इसके प्रारंभिक चरण ने व्यक्ति आर्थिक स्थिरीकरण (Macroeconomic Stabilisation) पर बल दिया, वहीं औद्योगिक नीति, व्यापार तथा विनियम दर नीति, विदेशी निवेश नीति, वित्तीय तथा कर सुधार तथा सार्वजनिक क्षेत्र सुधार के उपायों को शीघ्र ही इसके बाद लागू किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा, भारत को 1990-91 के भुगतान संतुलन संकट से लड़ने के लिए वित्तीय सहायता दी गई, इसके बदले में सरकार को कुछ शर्तों को पूरा करना था। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की यह शर्त थी कि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक संरचनात्मक पुनः सामंजन (Structural re-adjustment) हो। इस समय तक भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं क्षेत्र को विभिन्न औद्योगिक नीतियाँ प्रवाहित करती थी, इसलिए आर्थिक संरचना में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक था कि इसे एक नई औद्योगिक नीति द्वारा परिभाषित किया जाए। 1991 में सरकार द्वारा घोषित की गई नई औद्योगिक नीति ने देश में एक वृहत् आर्थिक सुधार की प्रक्रिया की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक पुनः सामंजन था ताकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तों को पूरा किया जा सके।

नई औद्योगिक नीति (NIP- New Industrial Policy)

1991 के विशिष्ट उद्देश्य

पहली औद्योगिक नीतियों की तुलना में NIP के दो विशिष्ट उद्देश्य हैं-

- आत्मनिर्भरता की अवधारणा को पुनः परिभाषित करना- NIP

ने आत्मनिर्भरता की अवधारणा को पुनः परिभाषित किया। 1956 से 1991 तक भारत ने सदैव आर्थिक निर्भरता के लिए आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण (ISI) रणनीति पर बल दिया था। आर्थिक आत्मनिर्भरता का अर्थ है उत्पादन क्षमताओं का स्वदेशी विकास और उन सभी औद्योगिक वस्तुओं, का जिनकी देश में मांग है, आयात करने की बजाय देश में ही उनका उत्पादन करना। आर्थिक आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु ISI नीति को बढ़ावा देना आवश्यक हो गया। इसके द्वारा एक निर्धारित समयावधि में पूँजीगत वस्तु, मध्यवर्ती वस्तु और आधारभूत वस्तु उद्योग के बाजार का विशाल आधार निर्मित करने में सहायता मिली। NIP की आर्थिक निर्भरता को पुनः परिभाषित करने से आशय आवश्यक रूप से घरेलू उद्योग पर निर्भरता के बजाय निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जन के माध्यम से आयात के लिए भुगतान करने की क्षमता प्राप्त करने से है।

- **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता**– NIP द्वारा वैश्विक मानकों के अनुरूप प्रौद्योगिकी और विनिर्माण क्षेत्र में क्षमता विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। पूर्ववर्ती औद्योगिक नीतियों में से किसी में भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, घरेलू औद्योगिक विकास के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी और विनिर्माण क्षमताओं का उल्लेख नहीं था। ऐसे में पहली बार NIP ने घरेलू उद्योग द्वारा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा प्राप्त करने की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया।

इन उद्देश्यों तथा अन्य सभी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु NIP ने भारत के औद्योगिक नीति के परिवेश में परिवर्तन प्रारंभ किए, जिन्होंने एक दशक के समय में धीरे-धीरे गति पकड़ ली। इस नीति के मुख्य अंश निम्नलिखित हैं–

- **उद्योगों को अनारक्षित करना (De-reservation of Industries)**– 1956 की औद्योगिक नीति द्वारा केंद्र सरकार के लिए आरक्षित उद्योगों को घटाकर 8 कर दिया गया। आने वाले वर्षों में अनेक अन्य उद्योग निजी क्षेत्र के निवेश के लिए खोल दिए गए। वर्तमान में मात्र कुछ उद्योग ही रह गये हैं, जो संपूर्ण या आंशिक रूप से केंद्र सरकार के लिए आरक्षित हैं, जैसे– परमाणु ऊर्जा, रेलवे परिवहन, परमाणु ऊर्जा खनिज।
 - नाभिकीय अनुसंधान तथा संबद्ध गतिविधियाँ, जैसे– रेडियोधर्मी खनिजों का खनन, उपयोग, प्रबंधन, ईंधन निर्माण, निर्यात-आयात, अपशिष्ट प्रबंधन इत्यादि (विश्व के किसी भी नाभिकीय शक्ति संपन्न देश द्वारा इन गतिविधियों के लिए निजी क्षेत्र को अनुमति नहीं दी गई अतः भारत के संदर्भ में ये अटकलें निराधार साबित होंगी)।
 - रेल सेवा से संबद्ध अनेक कार्यों के लिए निजी क्षेत्र को अनुमति प्रदान की गई है, लेकिन अभी भी निजी कंपनियाँ इस क्षेत्र में एक पूर्ण विकसित रेल सेवा प्रबंधक के रूप में प्रवेश नहीं कर सकती हैं।
 - **उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग हटाना (De-Licensing of the Industries)**– उन उद्योगों की संख्या घटाकर मात्र 18 कर दी गई, जिसके लिए अनिवार्य लाइसेंस जरूरी था (1956 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के तहत अनुसूची B तथा C में दर्ज उद्योग)। इस क्षेत्र में आर्थिक सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाया गया तथा वर्तमान में मात्र 5 उद्योग ऐसे हैं जिनके लिए अनिवार्य लाइसेंस की जरूरत है। ये उद्योग निम्नलिखित हैं–
 - वायु आकाश तथा रक्षा से संबंधित इलेक्ट्रॉनिक।
 - बारूद, औद्योगिक विस्फोटक तथा प्रस्फोटक प्यूज।
 - खतरनाक रसायन।
 - तंबाकू, सिगरेट तथा अन्य संबंधित उत्पाद।
 - मादक पेय (एल्कोहलिक ड्रिंक)
- **M RTP सीमा का समापन (Abolition of the MRTP Limit)**– MRTP

सीमा (100 करोड़/रुपये की सीमा) का समापन ताकि उद्योगों का विलय, अधिग्रहण तथा अधीनीकरण संभव हो सके। वर्ष 2002 में एक प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम (Competition Act) पारित किया गया, जिसने MRTP अधिनियम को प्रतिस्थापित किया। MRTP आयोग की जगह प्रतिस्पर्द्धा आयोग ने कार्य करना शुरू किया (यद्यपि प्रतिस्पर्द्धा आयोग से संयोजन, वास्तविक कार्य तथा अधिकार क्षेत्र के संबंध में अभी भी कुछ अड़चनें हैं)।

- **विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Promotion to Foreign Investment)**– एक सीमित अथवा बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy) के रूप में काम करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था ने भारत में विदेशी पूँजी निवेश की इच्छा कभी नहीं जताई। नई औद्योगिक नीति इस संदर्भ में पथ से हटकर एक नया कदम है न केवल कठोर अधिनियम (FERA) को सरकार अनुकूल करने के लिए वचनबद्ध थी बल्कि विदेशी निवेश (FI) को दोनों रूपों–प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, में सरकार ने प्रोत्साहित किया। जिसे (Foreign Direct Investment – FDI) कहा गया है, जिसके तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपने उद्यम स्थापित किए हैं। इन उद्यमों के स्वामित्व में उनका हिस्सा 26 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक था।
 - प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की शुरुआत 1991 में की गई। विदेशी निवेश के अप्रत्यक्ष रूप को (अर्थात् इक्विटी पूँजी में भारतीय कंपनियों की संपत्ति) पोर्टफोलियो निवेश योजना (Portfolio Investment Scheme – PIS) कहा गया, जिसकी औपचारिक शुरुआत 1994 में हुई। इस योजना के तहत उन विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) को भारतीय प्रतिभूति शेयर बाजार में निवेश करने की अनुमति दी गई, जिनका अन्य जगहों पर प्रदर्शन अच्छा रहा था। विदेशी संस्थागत निवेशकों को अपने आपको SEBI में एक स्टॉक ब्रोकर (शेयर दलाल) के रूप में दर्ज कराना अनिवार्य था। इसका अर्थ यह है कि, भारत ने अब तक व्यक्तिगत विदेशी निवेशकों को प्रतिभूति बाजार में निवेश करने की अनुमति नहीं दी है, अभी तक मात्र संस्थागत निवेश को अनुमति दी गई है।
 - **FEMA द्वारा FERA का प्रतिस्थापन (FERA Replaced by FEMA)**– सरकार ने वर्ष 1991 में ही कठोर FERA अधिनियम को उदार FEMA द्वारा प्रतिस्थापित करने की वचनबद्धता जताई थी– इसे वर्ष 2000-01 में कार्यान्वित किया गया, FERA के समापन के लिए दो वर्षों की समय सीमा निर्धारित की गयी।
 - **उद्योगों की अवस्थिति (Location of Industries)**– इससे संबंधित प्रावधानों को इस नीति द्वारा सकल बना दिया गया, जो पहले एक अत्यधिक बोल्लिल तथा समय लेने वाली प्रक्रिया थी। अब उद्योगों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया गया– ‘प्रदूषण फैलाने वाले उद्योग’ तथा इसके विपरीत वे उद्योग जो प्रदूषण नहीं फैलाते हों। इन उद्योगों की अवस्थिति को निर्धारित करने के लिए दो अत्यधिक सरल प्रावधानों की घोषणा की गई।
 - उन उद्योगों की स्थापना कहीं भी की जा सकती है, जो प्रदूषण नहीं फैलाते हों।
 - प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को मिलियन नगरों (Million Cities) से कम-से-कम 25 कि.मी. की दूरी पर स्थापित किया जाना चाहिए।
- 1991 की नई औद्योगिक नीति को कई विशेषज्ञों, संसद में विपक्ष तथा गणमान्य व्यक्तियों व व्यापार एवं उद्योग-जगत् के लोगों ने सरकार के पीछे हटने का कदम माना (Rolling Back of the State)। नेहरू की अर्थव्यवस्था में सरकार को प्रदत्त अहम भूमिका को इस नीति से दरकिनार कर दिया गया। किसी एक धारणा जिसे नई नीति ने चुनौती दी, वह सरकार द्वारा कायम की गई “नियंत्रण व्यवस्था” (Control Regime) थी। ‘नियंत्रण व्यवस्था’ द्वारा संयुक्त रूप से राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों, बहुराष्ट्रीय व घरेलू कंपनियों तथा बड़े औद्योगिक

घराने के हितों की रक्षा की जाती थी। इसलिए सरकार को बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा दिया गया ज्ञापन- पत्र, जिसमें 'नियंत्रण व्यवस्था' को विघटित करने से रोकने का आग्रह किया गया जिसके तहत "स्वदेशी जागरण मंच" की शुरुआत असंगत नहीं थी, लेकिन सरकार ने राजनीतिक रूप से उचित गति के साथ आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को जारी रखा तथा एक ऐसा समय आया जब वही औद्योगिक घराने सरकार से (2002) आर्थिक सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आग्रह करने लगे। अब भारतीय उद्योग तथा व्यापारिक वर्ग 'खुली अर्थव्यवस्था' (उदारीकरण) तथा एक भिन्न प्रकार के मिश्रित अर्थव्यवस्था को समझने लगे थे, लेकिन आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को अभी और आगे बढ़ाना है ताकि इसका लाभ आम लोगों तक पहुँचे तथा सुधार प्रक्रिया के साथ विकास को एक जन-आंदोलन बनाया जा सके।

इसलिए विशेषज्ञों की यह राय कि यह मात्र मान लेने से कि आर्थिक सुधार से आम लोग लाभान्वित होंगे राजनीतिक रूप से इसे लागू करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि सरकार, प्रशासनिक तंत्र तथा अर्थशास्त्रियों सभी को इसे सकारात्मक रूप में लोक कल्याण से जोड़ना होगा- इसके लिए उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करना जरूरी होगा तथा इस विचार के पक्ष में राजनीतिक सहमति बनाना होगा कि निजीकरण तथा तदनुसार पुनर्सीक्षित श्रमिक कानून का उद्देश्य मूलतः नए रोजगार उत्पन्न करना है, बेहतर रोजगार के अवसर प्रदान करना, गरीबी उन्मूलन तथा बेहतर शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा लोगों तक पहुँचाना है। आने वाले समय में सरकार ने पहली पीढ़ी की सुधार प्रक्रिया से दूसरी पीढ़ी की सुधार प्रक्रिया को लागू किया, प्रत्येक बार नए लक्ष्य निर्धारित किए गए तथा सुधार प्रक्रिया को सामाजिक-राजनीतिक रूप से मान्य बनाने की कोशिश की गई।

भारत में 1990 के दशक में औद्योगिक वृद्धि का निष्पादन संतोषप्रद न रहने के मुख्य कारण

- आयात उदारीकरण के कारण पूँजीगत वस्तुओं (Capital Goods) के घरेलू उत्पादन पर भारी मात्रा में विपरीत प्रभाव पड़ा। चूँकि कुल औद्योगिक उत्पादन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए समग्र रूप में Industrial Growth पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा।
- 1990 के दशक में वित्त संबंधी समस्याएँ भी देखी गयी। बैंको के NPA बढ़े हुए थे तथा शेयर बाजार में कई प्रकार के घोटाले भी हो रहे थे।
- भारत द्वारा कई शर्तों के अधीन IMF से ऋण लिये गये, जिसके कारण निवेश पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

निम्न कारणों से भारत के निर्यात कम हो गये थे-

- खाड़ी संकट
- USSR का पतन
- दक्षिणी-पूर्वी एशियाई आर्थिक संकट (1997 में थाइलैंड में)।
- निम्न कारणों से भारत में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में कमी हुई।
- कृषि क्षेत्र की उपेक्षा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों की क्रय शक्ति पर विपरीत प्रभाव।
- वित्त बाजार के घोटालों के कारण शहरी लोगों की वित्तीय आय पर विपरीत प्रभाव।
- भारत में बढ़ती हुयी आय की विषमताएं।
- इस प्रकार उपर्युक्त कारणों के चलते 1990 के दशक में Industrial Growth संतोषप्रद नहीं रही।

2000 के दशक में औद्योगिक वृद्धि के अच्छे निष्पादन के मुख्य कारण

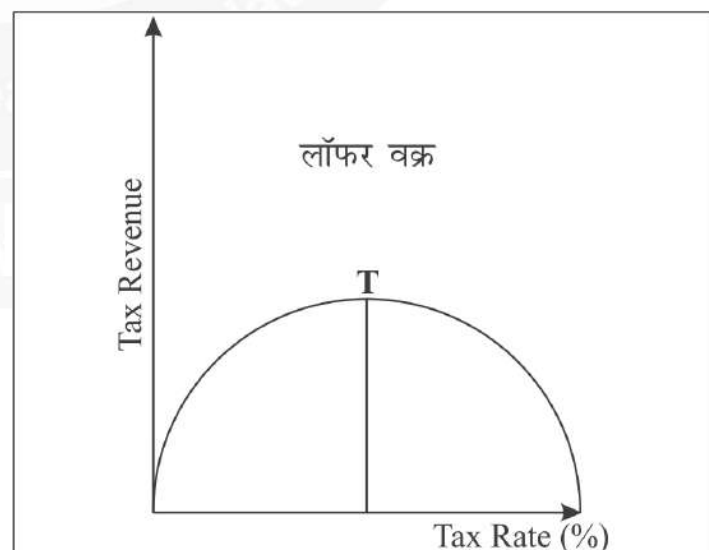
- 2000 के दशक में समग्र साधन उत्पादकता (Total Factor Productivity) की वृद्धि दर अच्छी देखने को मिलती है।
- 1990 के दशक में समग्र साधन उत्पादकता की औसत वार्षिक वृद्धि दर 0.25% रही, लेकिन 2000 के दशक में इसका औसत वार्षिक स्तर 1.41% रहा है।
- वर्ष 2000 के दशक में प्रशुल्क उदारीकरण का अच्छा स्तर देखने को मिलता है।
- वर्ष 2000 के दशक में आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटाये गये।
- वर्ष 2000 के दशक में लघु उद्योगों के लिए आरक्षित क्षेत्रों को बड़ी मात्रा में अनारक्षित किया गया जिसके कारण बड़े उद्योग उन क्षेत्रों में उत्पादन करने लगे। इससे औद्योगिक वृद्धि को बढ़ावा मिला।
- वर्ष 2000 के दशक में आयातों व निर्यातों दोनों की अच्छी वृद्धि दर देखने को मिलती है।
- 2000 के दशक में GDP की अच्छी वृद्धि दर देखने को मिलती है। जिसके कारण औद्योगिक वस्तुओं की मांग को बढ़ावा मिला।

इस प्रकार कई कारणों से भारत में 2000 के दशक में अच्छी औद्योगिक वृद्धि दर देखने को मिलती है।

विनिवेश (Disinvestment)

विनिवेश किसी कंपनी में स्वामित्व के बिक्री की प्रक्रिया है। तकनीकी रूप से विनिवेश शब्द का प्रयोग किसी भी कंपनी (अर्थात् निजी क्षेत्र की कंपनी) के लिए किया जा सकता है लेकिन व्यवहार में इसे सिर्फ सरकारी स्वामित्व वाली कंपनियों के लिए ही किया जाता है। भारत में विनिवेश की शुरुआत तीन अंतःसंबंधित नियामकों के साथ हुई-

1. सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के सुधार के साधन के तौर पर।
2. आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अंग के तौर पर (अर्थात् उद्योगों के अनारक्षण के अंग के रूप में)।
3. बजटीय आवश्यकताओं के लिए संसाधन की व्यवस्था करने के साधन के तौर पर।



विनिवेश नीति के उद्देश्य

1. केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (CPSE's) तथा वित्तीय संस्थानों की न्यूनतम उपस्थिति एवं निजी क्षेत्र के लिए निवेश का दायरा बढ़ाना।
2. विनिवेश के उपरान्त CPSE's एवं वित्तीय संस्थानों की आर्थिक वृद्धि, निजी पूंजी, नई तकनीकों एवं बेहतर प्रबंधन व्यवहारों के माध्यम से होगी।
3. विनिवेश से प्राप्त धनराशि को सामाजिक क्षेत्र एवं विकास संबंधी कार्यक्रमों में लगाया जायेगा।

विनिवेश की विशेषताएँ

1. इस नीति के अंतर्गत सभी CPSE's, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों एवं सरकारी बीमा कंपनियों को शामिल किया गया है।
2. सार्वजनिक क्षेत्रों को सामरिक/रणनीतिक एवं गैर रणनीतिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।
3. रणनीति क्षेत्र के अंतर्गत निम्न क्षेत्र रखे गए हैं—
 - नाभिकीय ऊर्जा, अंतरिक्ष एवं प्रतिरक्षा
 - परिवहन व संचार
 - बिजली, पेट्रोलियम, कोयला एवं अन्य खनिज
 - बैंकिंग, बीमा एवं वित्तीय सेवाएँ
4. रणनीतिक क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रमों की उपस्थिति कम रखी जायेगी। बचे हुए सार्वजनिक उपक्रमों को या तो निजीकृत, विलयित या अनुषंगी बना दिया जायेगा या फिर बंद कर दिया जायेगा।
5. गैर-रणनीतिक क्षेत्रों के सार्वजनिक उपक्रमों को या तो निजीकृत किया जायेगा या फिर उन्हें बंद कर दिया जायेगा।

लोक परिसंपत्तियों का व्यापक प्रबंधन

2016 के बाद विनिवेश प्रक्रिया सरकार की एक व्यापक नीति, 'लोक परिसंपत्तियों का व्यापक प्रबंधन' का अंग बन गयी है। वर्तमान विनिवेश नीति की घोषणा से पहले सरकार द्वारा विनिवेश विभाग का नाम बदलकर निवेश एवं लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग (DIPAM) रखा गया तथा इसके अधिदेश को विनिवेश की प्रक्रिया लागू करने से बदलकर 'सरकार के सार्वजनिक उपक्रमों में निवेश का व्यापक प्रबंधन' कर दिया गया। इसके अंतर्गत विभाग द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए निम्न चार पहलों को सुनिश्चित किया गया है—

1. इष्टतम लाभ की प्राप्ति तथा आर्थिक वृद्धि को बढ़ाना।
2. पूंजी एवं वित्तीय पुनर्संरचना द्वारा परिसंपत्तियों का लाभ उठाना।
3. पूंजी बाजार के माध्यम से निवेशकों के विश्वास में वृद्धि करना।
4. निर्णय प्रक्रिया को तार्किक बनाकर प्रबंधन को दक्ष बनाना।

औद्योगिक उपक्रम

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम

- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का स्वामित्व सरकार के पास होता है। इनका विस्तार स्वतंत्रता के बाद हुआ, जिनका माध्यम पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं। सरकार ने इन उद्यमों की स्थापना तीन निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की—
 - कल्याणकारी राज्य की स्थापना अर्थात् देश में व्याप्त व्यापक, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का समाधान करना।
 - समाज के सभी वर्गों के लिए सार्वजनिक एवं मेरिट की वस्तुओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु सार्वजनिक उद्यमों द्वारा इनका उत्पादन करना।
 - निजी क्षेत्र के ऊपर नियामक तंत्र के रूप में काम करते हुए आवश्यक

वस्तुओं की कीमत निर्धारण में नेतृत्व करने हेतु, जिससे निजी क्षेत्र इन वस्तुओं की अधिक कीमत निर्धारित नहीं कर सकें।

- 1951 में जब प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू की गयी तब तक सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 5 इकाईयाँ थीं, जिनमें 29 करोड़ रुपये विनियोजित थे, किंतु 1961 के बाद इनमें द्रुतगति से विस्तार हुआ।
- मार्च, 2019 तक विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के प्रशासनिक नियंत्रण में कुल 358 सीपीएसई (Central Public Sector Enterprises) विद्यमान थे, जिनमें वित्तीय निवेश (चुकता पूंजी + लंबी अवधि के ऋण) 1.43 लाख करोड़ रुपये थे।

महारत्न कंपनियाँ

- इस योजना की शुरुआत 2009 में हुई थी। इसका उद्देश्य बड़े आकार के नवरत्न कंपनियों के बोर्ड को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना है, जिससे उपक्रमों का संचालन घरेलू बाजार के साथ ही वैश्विक बाजार में भी हो सके।
- किसी भी नवरत्न कंपनी को महारत्न का दर्जा प्रदान करने के लिए निम्नलिखित मानदंड को आधार बनाया जाता है—
 - कंपनी शेयर बाजार में सूचीबद्ध हो
 - पिछले तीन वर्षों में कंपनी का औसत कारोबार 25000 करोड़ रुपये रहा हो।
 - इस दौरान कंपनी ने 5000 करोड़ रुपये का औसत शुद्ध लाभ अर्जित किया हो।
 - तीन वर्षों में कंपनी का निवल मूल्य (नेटवर्थ) औसतन 15,000 करोड़ रुपये रहा हो।
 - कंपनी के पास नवरत्न का दर्जा हो
 - कंपनी का विदेश में भी कारोबार हो
 - कंपनी को नेट वर्थ के 15 प्रतिशत तक निवेश की अनुमति

भारत की महारत्न कंपनियाँ

वर्तमान में भारत में 13 महारत्न कंपनियाँ हैं—

- भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड (SAIL)
- तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम (ONGC)
- राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम (NTPC)
- कोल इंडिया लिमिटेड (CIL)
- भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL)
- भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड (GAIL)
- भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (BPCL)
- हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (HPCL)
- इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (IOCL)
- पावर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (PGCI)
- पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड (PFCL)
- ग्रामीण विद्युतीकरण निगम लिमिटेड (REC)
- ऑयल इंडिया लिमिटेड (OIL)

नवरत्न कंपनियाँ

- वर्ष 1997 में भारत सरकार ने नवरत्न योजना शुरू की थी। इन कंपनियों में वे सभी कंपनियाँ शामिल थीं जिनमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशाल उद्यमों के रूप में उभरने की क्षमता थी। नवरत्न योजना शुरू करने के दौरान इसमें 9 कंपनियाँ शामिल थीं, लेकिन महारत्न दर्जा शुरू होने के पश्चात इसकी अनेक कंपनियों को महारत्न में शामिल कर दिया गया। ये 9 कंपनियाँ

थीं- बीएचईएल, बीपीसीएल, जीएआईएस, एचपीसीएल, आईओसी, एमटीएनएल, एनटीपीसी, ओएनजीसी, जीएआईएन। नवरत्न कंपनियाँ 1000 करोड़ रुपये तक के निवेश के लिए स्वतंत्र होती हैं।

- नवरत्न कंपनी का दर्जा हासिल करने के लिए निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करना जरूरी होता है, जैसे इन सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को कुल 100 में 60 अंक प्राप्त करने होते हैं। ये अंक छह मानकों द्वारा निर्धारित होते हैं-
 - कुल परिसंपत्ति की तुलना में विशुद्ध लाभ
 - कुल उत्पादन लागत व सेवा लागत की तुलना में कुल श्रमशक्ति लागत
 - पूँजी नियोज्य की तुलना में मूल्य हास से पूर्व लाभ ब्याज व कर
 - टर्नओवर की तुलना में मूल्यहास से पूर्व लाभ ब्याज व कर
 - प्रति शेयर अर्जन
 - अंतर्क्षेत्रक प्रदर्शन
- वर्तमान में नवरत्न कंपनियों की संख्या 12 हैं।

मिनीरत्न कंपनियाँ

- सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों (PSUs) के लिए महारत्न, नवरत्न के अलावा मिनीरत्न की श्रेणी को बनाया गया है। इसे 1997 में शुरू किया गया था। ये दो रूपों में होती हैं-
 - मिनीरत्न I
 - मिनीरत्न II
- मिनीरत्न I** - इसके लिए भारत सरकार ने कुछ मानक तैयार किये हैं-
 - सार्वजनिक क्षेत्र की ऐसी कंपनियाँ जो लगातार 3 वर्षों से या तो लाभ में रही हों या 30 रुपये करोड़ का कुल लाभ हुआ हो या प्रत्येक वर्ष इससे अधिक का लाभ प्राप्त हुआ हो।
 - मिनीरत्न कंपनियाँ 500 करोड़ रुपये तक की धनराशि को या अपनी निवल संपत्ति (Net Worth) जो भी कम हो, के बराबर बिना सरकार की अनुमति के खर्च कर सकती है। वर्तमान में इसमें 62 (फरवरी 2022) सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ शामिल हैं।
- मिनीरत्न II** - इसके लिए भी कुछ मानक बनाए गए हैं-
 - ऐसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ जो विगत 3 वर्षों से लगातार लाभ की स्थिति में हो और इन्हें अपनी कुल निवल पूँजी का 50 प्रतिशत या 300 करोड़ रुपये की बिना सरकारी स्वीकृति के निवेश की अनुमति प्राप्त होती है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र में 12 (फरवरी 2022) मिनीरत्न II कंपनियाँ हैं।

निजी क्षेत्र के उपक्रम

- स्वतंत्रोत्तर भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया तथा निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया। 1948 की औद्योगिक नीति में कहा गया कि समुचित रूप से निर्देशित एवं नियंत्रित निजी उद्यम को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।
- 1956 की औद्योगिक नीति में दूसरी कोटि के उद्योगों में निजी उद्यम को भी अनुमति दी गयी। तीसरी कोटि, जो अधिकतर उपभोग वस्तुओं से संबंधित थी, निजी उद्यमों के लिए छोड़ दिया गया।
- 1991 की औद्योगिक नीति के अंतर्गत नौ क्षेत्रों के उद्योगों को, जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे गए थे, निजी क्षेत्र के लिए खोल दिये गए।
- हालाँकि आरंभ में नियोजन के अंतर्गत मुख्य रूप से उपभोग वस्तु उद्योगों को ही निजी क्षेत्र में रखा गया, किंतु मध्यवर्ती वस्तुएँ तैयार करने वाले और मशीनें बनाने वाले कुछ उद्योगों को भी इस क्षेत्र में बने रहने दिया गया। बाद में बहुत सीमा तक लाइसेंस व्यवस्था समाप्त कर दी गयी।

- भारत में निजी क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसमें बड़े पैमाने के उद्योग, लघु उद्योग, व्यापार, होटल, रेस्तरां आदि शामिल हैं। देश की सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया अर्थात् कृषि पूर्ण रूप से निजी क्षेत्र के अंतर्गत है।

संयुक्त क्षेत्र के उपक्रम

- यह सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के मध्य एक साझेदारी है। ऐसे उद्यमों का स्वामित्व, प्रबंधन तथा नियंत्रण सरकार एवं निजी क्षेत्र दोनों के द्वारा किया जाता है। सरकार द्वारा 1972 में इसके लिए दिशा-निर्देश जारी किये गए।
- इसमें निजी क्षेत्र के लिए 25 प्रतिशत स्वामित्व का प्रावधान है। इसमें बैंक, पारस्परिक निधियों, निगम या व्यक्ति और कर्मचारियों को भी 5 प्रतिशत की सीमा तक हिस्से हस्तांतरित किये जा सकते हैं।
- सरकार द्वारा 51 प्रतिशत हिस्सा पूँजी निजी क्षेत्र को हस्तांतरित कर दी जाती है तथा सरकार 26 प्रतिशत हिस्सा अपने पास रखती है। किंतु, सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह मुख्य निगमीय निर्णयों को अल्पसंख्यक होते हुए भी नियंत्रित कर सकेगी।

सहकारी क्षेत्र के उपक्रम

- 3 नवंबर, 1967 को निगमित इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर को ऑपरेटिव (Indian Farmer's Fertiliser Co-operative Limited- IFFCO) तथा 17 अप्रैल, 1980 को निगमित कृषक भारती को ऑपरेटिव (कृषकों) उर्वरक विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में सहकारी क्षेत्र के दो बहुराज्यीय उपक्रम हैं।
- इफको की 5 इकाईयाँ हैं जिनमें गुजरात में 2 कलोल व कांडला, उत्तर प्रदेश में 2 फूलपुर व आंवला एवं 1 पाराद्वीप (उड़ीसा) में स्थित है।

आद्यौगिक क्षेत्र से संबंधित प्रमुख नीतियाँ

नेशनल इलेक्ट्रिक मोबिलिटी प्लान - 2020 (National Electric Mobility Plan - 2020 (NEMP))

- उद्देश्य**- सरकार एवं उद्योग क्षेत्र दोनों के सहयोग से विश्वसनीय सस्ते और सक्षम हाइब्रिड और इलेक्ट्रिक वाहनों (xEVs) को प्रोत्साहन देना जो उपभोक्ता को प्रदर्शन एवं कीमत दोनों दृष्टियों से संतुष्ट कर सकें।
- स्वदेशी विनिर्माण क्षमताओं आवश्यक आधारभूत संरचनाओं उपभोक्ता जागरूकता और तकनीक को प्रोत्साहन एवं विकास करना।
- वर्ष 2020 तक 60 से 70 लाख दोपहिया एवं चारपहिया हाइब्रिड वाहनों की बिक्री के साथ इस क्षेत्र में वैश्विक नेतृत्वकर्ता बनकर उभरना।
- वर्ष 2020 तक प्रतिवर्ष 60 लाख xEVs सड़क पर उतारने का लक्ष्य रखा गया है।

नागर विमानन नीति, 2016

- 15 जून, 2016 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में नई नागर विमानन नीति (Civil Aviation Policy) को मंजूरी प्रदान की गयी।
- इसके अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय संचालन हेतु 5/20 नियम में परिवर्तन किया गया है।
- इन नीति में 5 वर्ष के अनुभव की शर्त को हटा दिया गया है, परंतु कंपनी को कम से कम 20 विमान या अपनी क्षमता का 20 प्रतिशत घरेलू परिचालन में उपयोग करना होगा।
- इसके अंतर्गत भारत को वर्तमान में 9वें स्थान से वर्ष 2022 तक तीसरा नागर विमानन बाजार बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक नीति- 2012

- देश की आवश्यकताओं एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार हेतु वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्द्धा इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माण उद्योग का सृजन करना।

2020 तक के लिए लक्ष्य

- 100 बिलियन डॉलर निवेश।
- 4000 बिलियन डॉलर का कारोबार।
- 200 से अधिक इलेक्ट्रॉनिक क्लस्टरों की स्थापना।
- 80 बिलियन डॉलर का निर्यात लक्ष्य।
- 2500 पीएच.डी. धारी मानव संसाधन का सृजन।
- उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति से इलेक्ट्रॉनिक्स प्रणाली डिजाइन तथा विनिर्माण (Electronics System Design and Manufacturing- ESDM) क्षेत्र में लगभग 28 मिलियन रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे।

पेट्रो-रसायन क्षेत्र हेतु राष्ट्रीय नीति

सरकार द्वारा 12 अप्रैल, 2007 को पेट्रो-रसायन हेतु राष्ट्रीय नीति को स्वीकृति दी गयी। इसके प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

- इस क्षेत्र के निम्न व उच्च स्तरीय उद्योगों में निवेश बढ़ाना।
- प्लास्टिक एवं कृत्रिम रेशों की वर्तमान प्रति व्यक्ति खपत की घरेलू मांग में वृद्धि करना।
- पेट्रो-रसायन के उभरते क्षेत्रों में निवेश करना।
- जैव- निम्नीकरण, बहुलक एवं प्लास्टिक का विकास।
- पेट्रो-रसायन में शोध एवं विकास तथा मानव संसाधन विकास को उन्नत करना।

औषधि मूल्य निर्धारण नीति

राष्ट्रीय मूल्य निर्धारण नीति-2012 (एनपीपीपी-2012) वर्ष 2012 में अधिसूचित की गयी थी, जिसका उद्देश्य उचित मूल्यों पर दवाओं 'आवश्यक दवाओं' की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए एक नियामक ढांचा बनाना था, साथ ही दवा उद्योग की वृद्धि को सहयोग देने के लिए नई खोज व प्रतिस्पर्धा को भी पर्याप्त अवसर मुहैया कराना था ताकि रोजगार के उद्देश्य को पूरा किया जा सके और सभी को अर्थव्यवस्था का लाभ मिल सके। इसके बाद, एनपीपीपी-2012 को लागू करने के लिए 2013 में एक नया ड्रग्स (मूल्य नियंत्रण) ऑर्डर अधिसूचित किया गया ताकि आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची-2011 (एनएलईएम-2011) के अनुसार, विशिष्ट खुराकों व शक्तियों के मूल्य नियंत्रित किये जा सकें। इसे एनएलईएम-2015 में शामिल की गयी दवाओं को शामिल करने के लिए संशोधित किया गया। उपरोक्त सूची स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की ओर से प्राप्त की गयी थी, जिसने चिकित्सा संबंधी उत्पादों के इस्तेमाल के सम-सामयिक ज्ञान के संदर्भ में राष्ट्रीय आवश्यक दवा सूची (एनएलईएम-2011) के संशोधन की समीक्षा व सिफारिश के लिए एक एक्सपर्ट कोर कमेटी गठित की थी।

नई विनिर्माण नीति, 2011 (New Manufacturing Policy, 2011)

- भारत सरकार द्वारा 4 नवंबर, 2011 को नई विनिर्माण नीति (New Manufacturing Policy) की घोषणा की गयी।
- इस नीति का उद्देश्य एक दशक (सन् 2020 तक) के अंदर देश के GDP में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 25% करना तथा रोजगार के 10% अतिरिक्त अवसरों का सृजन करना है।
- सतत् विकास (Sustainable Development) को प्राप्त करना, इस

नीति का एक अभिन्न उद्देश्य है। अतः विनिर्माण हेतु बेहतर व धारणीय प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर बल दिया जाएगा।

- नई नीति में सात नए औद्योगिक शहरों की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है।
- यह नीति केंद्र व राज्य की भागीदारी पर आधारित है, जिसमें केंद्र सरकार औद्योगिक वृद्धि के लिए आवश्यक ढाँचा प्रदान करेगी और सार्वजनिक निजी भागीदारी पर विकसित संरचना को उचित वित्तीय सहायता देगी।

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग

(Micro, Small & Medium Enterprises - MSME)

- सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (MSEMs) का देश के विनिर्माण निर्गत (Manu- facturing Output), रोजगार एवं निर्यात में महत्वपूर्ण योगदान है। MSME क्षेत्र का योगदान विनिर्माण की GDP में 6.11%, सेवाओं की GDP में 24.63% तथा निर्माण उत्पादन में 33.4% है। देश के कुल GDP में MSMEs क्षेत्र का योगदान लगभग 29% है।
- MSME क्षेत्र देश की 11 करोड़ लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है और देश के कुल निर्यात में 45% योगदान देता है।
- MSMEs उद्योगों में से 94.94% उद्यम सूक्ष्म (Micro) आकार के, 4.89% उद्यम लघु (Small) आकार के तथा 0.17% मध्यम (Medium) आकार के हैं।
- 45% उद्यम ग्रामीण क्षेत्र में तथा 55% उद्यम शहरी क्षेत्र में हैं।
- 67.17% उद्योग विनिर्माण क्षेत्र में 16.78% सेवा क्षेत्र में तथा 16.13% रिपेयरिंग एवं अनुरक्षण क्षेत्र में हैं।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड (NSICL)

- 1955 में अपने अस्तित्व में आने से लेकर अब तक राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड सूक्ष्म एवं लघु उद्योग के लिए प्रोत्साहन, सहायता एवं पोषण के अपने मिशन के लिए कार्य कर रहा है। यह सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के हितों के प्रोत्साहन के लिए कार्य कर रहा है। निगम सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के बदलते परिदृश्य को पूरा करने के लिए समय-समय पर विभिन्न नई योजनाएँ प्रारंभ करता रहा है।
- इन सभी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के हितों को प्रोत्साहित करना है और उन्हें प्रतियोगी एवं लाभदायक स्थितियों में रखना है। NSICL की योजनाएँ देश में सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने में काफी उपयोगी पायी गयी है। योजनाओं से पूरी सूचनाएँ ग्यारहवीं योजना अवधि में निगम द्वारा सरकारी समर्थन से जारी रखने की है।
- इनके अतिरिक्त देश में तीन राष्ट्रीय स्तर के उद्यमशीलता विकास संस्थान हैं। यह हैं- भारतीय उद्यमशीलता संस्थान गुवाहाटी, राष्ट्रीय उद्यमशीलता एवं लघु विकास व्यापार संस्थान नोएडा तथा राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान, हैदराबाद।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग

(Khadi and Village Industrial Commission - KVIC)

- भारत सरकार ने 1956 में संसद में एक अधिनियम पास करके 1957 में खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) की स्थापना की गयी। यह विकेंद्रीकृत क्षेत्र की यह एक महत्वपूर्ण संस्था है जो ग्रामीण क्षेत्रों में कम प्रति व्यक्ति विनियोग के साथ गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार अवसरों का सृजन करती है। KVIC की स्थापना निम्नांकित उद्देश्यों के साथ की गयी-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने का सामाजिक दायित्व।
2. विक्रय योग्य वस्तुओं को उत्पादित करने का आर्थिक दायित्व।
3. ग्रामीण व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाने एवं एक सुदृढ़ ग्रामीण सामुदायिक भावना उत्पन्न करने का एक विस्तृत दायित्व।
- उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए KVIC, खादी एवं ग्राम उद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रमों को बनाता है एवं उनके क्रियान्वयन को प्रोत्साहित करने के लिए सहायता प्रदान करता है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए KVIC निम्नलिखित कार्य संपादित करता है-
 1. अर्ह संस्थाओं एवं उद्यमियों को वित्त सुविधाएँ देना।
 2. खादी एवं ग्राम उद्योगों में कार्यरत एवं रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना।
 3. खादी एवं ग्राम उद्योग क्षेत्र में शोध एवं विकास को प्रोत्साहित करना।
 4. खादी एवं ग्राम उद्योग वस्तुओं की बिक्री एवं विपणन के लिए आकर्षक योजनाएँ लागू करना।
 - KVIC के उपर्युक्त कार्य कृषि एवं ग्रामीण उद्योग मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन संपादित किये जाते हैं।
 - KVIC अधिनियम में 1987 के संशोधन के परिणामस्वरूप ग्रामीण उद्योगों को सात वृहद वर्गों में वर्गीकृत किया गया है-
 1. खनिज आधारित उद्योग
 2. वन आधारित उद्योग
 3. कृषि आधारित एवं खाद्य उद्योग
 4. पॉलीमर एवं रसायन आधारित उद्योग
 5. इंजीनियरिंग एवं गैर-परंपरागत ऊर्जा से संबंधित उद्योग
 6. खादी को छोड़कर टेक्सटाइल उद्योग
 7. सेवा क्रियाएँ
 - KVIC ने वर्ष 2001-2002 के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के उद्देश्य को पोषित करने वाले अनेक विकासपरक कार्यक्रमों को गति देने के लिए श्रृंखलाबद्ध नीतिगत निर्णय लिये हैं।

फेरा (FERA) एवं फेमा (FEMA)

फॉरेन एक्सचेंज रेग्युलेशन एक्ट (FERA) एक अपराधिक विधान था, जिसके उल्लंघन के परिणामस्वरूप कारावास तथा भारी अर्थ दंड की सजा दी जाती थी। इसके अनेक प्रतिबंधात्मक दंड विदेशी निवेशकों पर रोक लगाते थे। इसके तहत मुकद्दमा दर्ज होने पर आरोपी को यह साबित करना होता था कि वह दोषी नहीं है। इसे 1973 में संसद की मंजूरी मिली थी।

फॉरेन एक्सचेंज मैनेजमेंट एक्ट (FEMA) 1999, जून 2000 से प्रभावी हुआ तथा FERA का स्थान लिया। FEMA एक्ट के अंतर्गत नागरिक अपराध के तहत मुकद्दमा दर्ज किया जाता है तथा मुकद्दमा दर्ज कराने वाले व्यक्ति द्वारा आरोपी को दोषी साबित करना पड़ता है। इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजी तथा निवेश के बढ़ते अंतर्प्रवाह को सुगम बनाना है। यह विदेशी व्यापार तथा भुगतानों को सुगम बनाता है तथा विदेशी मुद्रा बाजार के व्यवस्थित विकास तथा अनुरक्षण का संवर्द्धन करता है।

- खादी के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा घोषित अचार खादी के पैकेज को लागू किया जाना स्वीकृत किया गया और साथ ही खादी के दस्तकारों के लाभार्थ, बीमा एजेंसियों के साथ जनश्री आरोग्य बीमा योजना लागू किया जाना अनुमोदित किया गया।
- ग्रामोद्योग की वस्तुओं को बेहतर विपणन तंत्र उपलब्ध कराने के लिए सर्वोदय ब्रांड को अपनाया गया और यह नाम नहाने के साबुन, शहद, अगरबत्ती एवं आचार आदि उत्पादों को विशेष रूप से दिया गया।

औद्योगिक पार्क योजना, 2008

विनिर्माण क्षेत्र के विकास को तीव्रता प्रदान करने के लिए औद्योगिक पार्क योजना 2008 घोषित की गयी, जिसने औद्योगिक पार्क स्कीम 2002 का स्थान लिया है। पुरानी स्कीम के तहत सूचीबद्ध इकाइयाँ इस स्कीम में घोषित लाभ उठाती रहेंगी। स्कीम 2008 औद्योगिक इकाइयों के विकास के लिए अवसंरचना विकास को प्रोत्साहित करती है। यह आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80-IA के अंतर्गत 10 वर्ष कर (Tax) अवकाश उन औद्योगिक इकाइयों को प्रदान करने की व्यवस्था करती है जो 1 अप्रैल, 2006 के बाद खुली है। औद्योगिक पार्क योजना 2008 में लाभ केवल डेवलपर को प्राप्त होगा। 2002 के स्कीम की तुलना में 2008 की औद्योगिक पार्क स्कीम अधिक सरल है। इस पार्क में कम से कम 30 इकाइयाँ स्थापित होंगी तथा कर सुविधा इन न्यूनतम संख्या के बाद ही प्राप्त होगी।

सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यमों के रूप में उद्योगों का वर्गीकरण (रु. में)

2006 का अधिनियम

उद्यम का प्रकार	विनिर्माण	सेवाएँ
	प्लांट व मशीनरी में निवेश	उपकरण में निवेश
सूक्ष्म	25 लाख रु.	10 लाख रु.
लघु	25 लाख-5 करोड़ रु.	10 लाख- 2 करोड़ रु.
मध्यम	5-10 करोड़ रु.	2 करोड़- 5 करोड़ रु.

एमएसएमई की परिभाषा - पुरानी तथा नई

	पुरानी परिभाषा		नई परिभाषा	
	विनिर्माण	सेवा	विनिर्माण	सेवा
सूक्ष्म	संयंत्र तथा मशीनरी में निवेश: 25 लाख रुपये से कम।	उपकरण में निवेश: 10 लाख रुपये से कम।	संयंत्र तथा मशीनरी या उपकरण और कारोबार में निवेश।	
लघु	संयंत्र तथा मशीनरी में निवेश: 25 लाख रुपये से अधिक लेकिन 5 करोड़ रुपये से कम।	उपकरण में निवेश: 10 लाख रुपये से अधिक लेकिन 2 करोड़ रुपये से कम।	संयंत्र तथा मशीनरी या उपकरण में निवेश: 1 करोड़ रुपये से अधिक नहीं है और कारोबार 5 करोड़ रुपये से अधिक नहीं है।	
मध्यम	संयंत्र तथा मशीनरी में निवेश: 5 करोड़ रुपये से अधिक लेकिन 10 करोड़ रुपये से कम।	उपकरण में निवेश: 2 करोड़ रुपये से अधिक लेकिन 5 करोड़ रुपये से कम।	संयंत्र तथा मशीनरी या उपकरण और कारोबार में निवेश: संयंत्र और मशीनरी या उपकरण में निवेश 10 करोड़ रुपये से अधिक नहीं है और कारोबार 50 करोड़ रुपये से अधिक नहीं है।	

विधेयक सभी MSMEs के लिए एक समान वर्गीकरण पेश करता है। विधेयक के तहत सभी MSMEs चाहे वे विनिर्माण या सेवा प्रदान करने वाले उद्यम हो, को उनकी वार्षिक कारोबार के आधार पर वर्गीकृत किया जाएगा।

यह ईज ऑफ डूइंग बिजनेस को प्रोत्साहित करेगा, वर्गीकरण के मानदंडों को संवृद्धि उन्मुख बनाएगा एवं उन्हें वस्तु एवं सेवा कर (GST) पर आधारित नई कर व्यवस्था के साथ जोड़ेगा।

इसके अतिरिक्त, केन्द्र सरकार अधिसूचना द्वारा व्यापार की मात्रा की सीमाओं को परिवर्तित कर सकती है। यह मात्रा सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास (MSMED) अधिनियम की धारा 7 में निर्दिष्ट सीमाओं के तीन गुने से अधिक नहीं होगी।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम के समक्ष व्याप्त समस्याएँ

सरकारी योजनाओं की बहुतायत के बाद भी सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम क्षेत्र निम्नलिखित प्रकार की समस्याओं का सामना करते हैं।

- **पूँजी की उपलब्धता का अभाव**– लगभग 40% लघु उद्यम ऋण के अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर रहते हैं।
- **उन्नत प्रौद्योगिकी** के अभाव के कारण ये उद्यम आयातित उत्पादों और सेवाओं की तुलना में कम उत्पादक एवं कम प्रतिस्पर्धी बने हुए हैं।
- **मूलभूत अवसंरचनात्मक सुविधाओं** जैसे जल, विद्युत आपूर्ति, सड़क/रेल और टेलीफोन कनेक्टिविटी इत्यादि की कमी।
- विद्युत, पर्यावरण तथा श्रम से संबंधित विविध वैधानिक मंजूरीयाँ प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
- अन्य चुनौतियों में कच्चे माल एवं कुशल श्रम इत्यादि की अनुपलब्धता सम्मिलित हैं।

MSME क्षेत्र से संबंधित महत्वपूर्ण योजनाएँ

MSME आउटरीच कार्यक्रम (MSME Outreach Programme)

सरकार ने 12-बिंदु कार्य योजना के साथ MSME आउटरीच कार्यक्रम प्रारंभ किया है, ताकि इस क्षेत्र के अंतर्गत वृहत्तर सहक्रियाओं को बढ़ावा दिया जा सके।

विशेषताएँ

- एक ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से 59 मिनट की समयावधि के भीतर 1 करोड़ रुपये तक का ऋण प्रदान किया जाएगा।
- सभी GST पंजीकृत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (MSMEs) के लिए 2% का ब्याज अनुदान। साथ ही शिपमेंट से पूर्व और बाद की अवधि के ऋण लेने वाले निर्यातकों के लिए ब्याज छूट 3% से 5% कर दी जायेगी।
- 500 करोड़ से अधिक टर्नओवर वाली सभी कंपनियों को TReDS प्लेटफॉर्म (RBI की एक पहल) पर पंजीकृत होना आवश्यक है ताकि उद्यमी अपनी आगामी प्राप्तियों के आधार पर बैंकों द्वारा ऋण प्राप्त करने में सक्षम हो सकें।
- सभी सार्वजनिक उपक्रमों को अनिवार्य रूप से MSMEs से अपनी कुल खरीद के 20% के बजाय 25% की खरीद करनी होगी।
- MSMEs हेतु अनिवार्य 25% खरीद में से 3% महिला उद्यमियों के लिए आरक्षित होगी।
- सभी CPSUs को अनिवार्य रूप से सरकार के ई-मार्केटप्लेस (GEM) पोर्टल द्वारा खरीद करनी होगी।
- 6000 करोड़ रुपये की लागत वाले 100 प्रौद्योगिकी केंद्रों की स्थापना की जाएगी।
- भारत सरकार द्वारा फार्मा क्लस्टर की स्थापना के लिए लागत के 70% का वहन किया जाएगा।
- 8 श्रम कानूनों और 10 केंद्रीय विनियमों के तहत रिटर्न को वर्ष में एक बार भरना होगा।
- एक निरीक्षक द्वारा प्रतिष्ठानों का निरीक्षण किया जाएगा, जिसका निर्धारण कंप्यूटरीकृत यादृच्छिक आवंटन के माध्यम से किया जाएगा।
- वायु और जल प्रदूषण कानूनों के अंतर्गत एकल अनुमति प्रदान की जाएगी। इन रिटर्न को स्व-प्रमाणन के माध्यम से स्वीकार किया जायेगा और केवल 10% MSME इकाइयों का ही निरीक्षण किया जाएगा।
- कंपनी अधिनियम के तहत मामूली उल्लंघनों के लिए, उद्यमियों को अब न्यायालय जाने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वे इन्हें सरल प्रक्रियाओं के माध्यम से स्वयं ठीक कर सकते हैं।

MSMEs की सहायता हेतु अन्य पहलें

- **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP)** एक प्रमुख

क्रेडिट-लिंक्ड सब्सिडी कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य पारंपरिक शिल्पकारों एवं बेरोजगार युवाओं की मदद करके गैर-कृषि क्षेत्र में सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना के माध्यम से स्वरोजगार के अवसरों का सृजन करना है।

- **सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के लिए क्रेडिट गारंटी योजना** के अंतर्गत प्रति इकाई हेतु 2 करोड़ रुपये तक की संपार्श्विक मुक्त ऋण सुविधा (सावधि ऋण और/या कार्यशील पूँजी) प्रदान की गई है।
- प्रौद्योगिकी उन्नयन को सुविधाजनक बनाने के लिए **ऋण आधारित पूँजीगत सब्सिडी योजना (CLCSS)**
- सूक्ष्म औद्योगिक इकाइयों से संबंधित विकास एवं पुनर्वित्त गतिविधियों के लिए **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना**।
- **ASPIRE (नवाचार, ग्रामीण उद्योग और उद्यमिता के संवर्धन के लिए योजना)** के अंतर्गत प्रौद्योगिकी केंद्रों के नेटवर्क और व्यापार संबंधी विचारों के इन्क्यूबेशन तथा व्यवसायीकरण के माध्यम से स्टार्ट-अप संवर्द्धन हेतु एक संरचना का निर्माण करना।
- **पारंपरिक इंडस्ट्रीज के उत्थान के लिए फंड की स्कीम (Scheme of Fund for Regeneration of Traditional Industries: SFURTI)** ताकि पारम्परिक उद्योगों एवं शिल्पकारों को क्लस्टर के अंतर्गत संगठित कर प्रतिस्पर्धी बनाया जा सके।
- **सूक्ष्म एवं लघु उद्यम क्लस्टर विकास कार्यक्रम (MSE-CDP)** के लिए योजना।
- खादी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए **बाजार संवर्द्धन विकास सहायता (MPDA)**।
- **MSME विलंबित भुगतान पोर्टल**– MSME समाधान व्यक्तिगत/CPSEs/केंद्रीय मंत्रालयों/राज्य सरकार आदि के साथ MSE के लंबित भुगतान के बारे में सार्वजनिक डोमेन के अंतर्गत जानकारी प्रदान करेगा।
- **MSME संपर्क**– MSMEs हेतु सार्वजनिक खरीद पोर्टल
- **संपर्क पोर्टल**– इसे MSME मंत्रालय द्वारा प्रारंभ किया गया है, यह नौकरी चाहने वालों को भर्ती करने वालों से जोड़ने का एक डिजिटल मंच है।
- **ZED (जीरो डिफेक्ट, जीरो इफेक्ट) प्रमाणन** के अंतर्गत MSMEs को वित्तीय सहायता प्रदान करना ताकि MSMEs द्वारा पर्यावरणीय रूप से संधारणीय उच्च-गुणवत्ता युक्त उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सके। इसका क्रियान्वयन भारतीय गुणवत्ता परिषद (QCI) द्वारा किया जाएगा।
- **सौर चरखा मिशन**– इस योजना के तहत, सोलर चरखा क्लस्टर (जहाँ खादी का उत्पादन सौर-ऊर्जा द्वारा संचालित चरखों के माध्यम से किया जाएगा) की स्थापना हेतु पूँजी सब्सिडी तथा ब्याज सब्सिडी प्रदान की जायेगी।

MSME क्षेत्र का महत्व

6.3 करोड़ से अधिक इकाइयों के माध्यम से 11.1 करोड़ लोगों (लगभग 40% कार्यबल) को रोजगार प्रदान किया जाता है।

MSMEs द्वारा देश की कुल GDP में 30% योगदान दिया जाता है।

MSMEs द्वारा भारत के विनिर्माण में 33.4% और निर्यात में 40% का योगदान दिया जाता है।

लगभग 66% MSME सामाजिक रूप से पिछड़े समूहों (SC/ST/OBC) के स्वामित्व में हैं। इसमें सर्वाधिक भागीदारी महिलाओं की है।

लगभग 31% MSMEs विनिर्माण क्षेत्र में तथा 69% व्यापार और अन्य सेवाओं में संलग्न हैं।

उत्तर प्रदेश (लगभग 14.2%) में MSME की सर्वाधिक संख्या मौजूद है, इससे पश्चात पश्चिम बंगाल (लगभग 14%) का स्थान आता है।

एमएसएमई के विकास और प्रोत्साहन के लिए सरकार ने कुछ पहलें की हैं, जो इस प्रकार हैं-

- **यूएएम (उद्योग आधार ज्ञापन)**- यूएएम योजना को सितंबर, 2015 में अधिसूचित किया गया। इसका उद्देश्य कारोबार को आसान बनाना है। इसके तहत उद्यमी को एक विशिष्ट उद्योग आधार संख्या (यूएन) पाने के लिए सिर्फ एक ऑनलाइन ज्ञापन भरना होता है। यूएन पाने की पुरानी जटिल और बोझिल प्रक्रिया में अब महत्वपूर्ण सुधार आया है।
- **उद्योग जगत के लिए रोजगार केंद्र**- नौकरी चाहने वालों और नौकरी देने वालों के बीच संपर्क बढ़ाने के लिए जून 2015 में (डिजिटल इंडिया की तरह) एम्प्लॉयमेंट एक्सचेंज फॉर इंडस्ट्रीज (उद्योग जगत के लिए रोजगार केंद्र) की स्थापना की गई।
- **एमएसएमई के पुनरुद्धार और पुनर्वास के लिए रूपरेखा**- इसके तहत बैंकों को व्यथित एमएसएमई कंपनियों के लिए एक समिति गठित करने की जरूरत है, ताकि उनके लिए एक सुधारात्मक कार्य नीति (सीएपी) तैयार की जा सके।
- **एसपीआईआई (ग्रामीण उद्योगों व नवाचार को बढ़ावा देना)**- मार्च 2015 में इस उद्देश्य के साथ इसे शुरू किया गया कि ग्रामीण और कृषि आधारित उद्योग में उद्यम व नवाचार को बढ़ावा दिया जा सके। साथ ही, इनमें उद्यमशीलता को गति देने के लिए तकनीकी केंद्रों की स्थापना हो।

भारत में औद्योगिक विकास की समस्याएँ (Problems of Industrial Development in India)

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति के कारण भारत में उद्योगों का बहुत कम विकास हुआ था। परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं में देश के औद्योगिक विकास को विशेष महत्व दिया गया है। इसके फलस्वरूप औद्योगिक विकास का आधार मजबूत हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण तथा कई नये उद्योगों की स्थापना की गई है। औद्योगिक विकास की दिशा में कई सफलताओं के बावजूद भारत में औद्योगिक विकास की दर कई देशों की तुलना में काफी कम रही है। इसका कारण भारत के उद्योगों की कई समस्याएँ हैं- जैसे कि बिजली की कमी, आर्थिक अधोसंरचना (Economic Infrastructure) जैसे- यातायात के साधनों का अपर्याप्त विकास, पूँजी, कुशल श्रमिकों, प्रशिक्षित उद्यमियों, आधुनिक तकनीकों आदि की कमी। देश में पाई जाने वाली औद्योगिक रूग्णता तथा औद्योगिक झगड़े भी औद्योगिक विकास की प्रमुख समस्याएँ हैं। औद्योगिक विकास की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

- **शक्ति के साधनों की समस्या (Problem of Power Resources)**- औद्योगिक विकास के लिए शक्ति के साधनों का उचित कीमतों पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना आवश्यक है। भारत में शक्ति के तीन प्रमुख साधन बिजली, कोयला तथा तेल हैं। भारत में ताप तथा जल विद्युत दोनों ही आवश्यकता से काफी कम मात्रा में उपलब्ध हैं। सरकार बिजली की पूर्ति के सम्बन्ध में उद्योगों की तुलना में कृषि को प्राथमिकता देती है। इसलिए उद्योगों को बिजली की आवश्यकता की तुलना से काफी कम पूर्ति होती है। उन्हें बिजली के अभाव में या तो अपना उत्पादन बन्द रखना पड़ता है या डीजल इंजनों का प्रयोग करना पड़ता है। इन दोनों स्थितियों में उत्पादन लागत बढ़ती है तथा लाभ कम हो जाता है। भारत में अधिकतर कोयला घटिया किस्म का मिलता है। कोयले की खानों के कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे झारखंड, पश्चिम बंगाल में ही केन्द्रित होने के कारण कोयले को देश के विभिन्न भागों में भेजने पर काफी धन खर्च करना पड़ता है। भारत में पेट्रोल, डीजल आदि की मांग, पूर्ति की तुलना में काफी अधिक है। इसलिए इनका काफी मात्रा में आयात करना पड़ता है।

पूँजी की समस्या (Problem of Capital)- उद्योगों के विकास के लिए पूँजी की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। किसी देश में पूँजी की मात्रा बचत तथा उसके निवेश पर निर्भर करती है। बचत की मात्रा आय पर निर्भर करती है। भारत में अधिकतर लोगों की आय बहुत कम है। उनके लिए बचत करके पूँजी का निवेश करना संभव नहीं होता। जो लोग बचत करने के योग्य होते हैं वे भी पूँजी को अधिक सुरक्षित जैसे सम्पत्ति, जेवर, सरकारी बाण्ड, व्यापार आदि में निवेश करना पसंद करते हैं और उद्योगों में धन लगाकर जोखिम नहीं उठाना चाहते। बड़े तथा मध्यम उद्योगों को बहुत अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। ये उद्योग अपनी पूँजी शेयर बाजार, वित्तीय संस्थाओं तथा बैंकों से प्राप्त करते हैं। भूतकाल में शेयर बाजार कई प्रकार के घोटालों का साक्षी रहा है ऐसे में लोग शेयर बाजार में कम धन निवेश करना पसंद करते हैं। वित्तीय संस्थाएँ जैसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) आदि बड़े तथा मध्यम उद्योगों को उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में तथा ब्याज की कम दरों पर धन उपलब्ध नहीं करा पातीं। व्यापारिक बैंकों से भी सभी उद्योगों को उचित मात्रा में आवश्यकता के समय पूँजी प्राप्त नहीं हो पाती। लघु तथा कुटीर उद्योगों को भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से पर्याप्त मात्रा में पूँजी प्राप्त नहीं हो पाती। अतएव नये उद्योगों की स्थापना तथा पुराने उद्योगों के विकास के लिए पूँजी प्राप्त करना एक कठिन समस्या है। पूँजी की कमी को पूरा करने के लिये सरकार विदेशी निवेश को प्रोत्साहित कर रही है। परन्तु विदेशी पूँजी की कई हानियाँ भी हैं। अतएव पूँजी की आवश्यकता से कम पूर्ति भारत में औद्योगिक विकास के मार्ग में एक महत्वपूर्ण समस्या है।

- **आर्थिक अवसंरचना की समस्या (Problem of Economic Infrastructure)**- आर्थिक अवसंरचना के कम विकसित होने के कारण उत्पादन लागत में वृद्धि होती है। उद्योगों का बड़े शहरों में केन्द्रीकरण हो जाता है तथा उनका विकेन्द्रीकरण संभव नहीं हो पाता। आर्थिक अवसंरचना की कमी का मुख्य कारण धन की कमी है। भारत में इन साधनों का विकास मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में ही किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र अपनी अकार्यकुशलता तथा धन की कमी के कारण इनका पर्याप्त विकास नहीं कर पाया है। इसलिए अब इनके विकास के लिए निजी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। परन्तु इस क्षेत्र से कम लाभ तथा लाभ में देरी होने के कारण निजी क्षेत्र इनके विकास में विशेष रूचि नहीं ले रहा है।
- **उपयुक्त मशीनरी तथा प्लांट्स की समस्या (Problem of Proper Machinery and Plants)**- उद्योगों के विकास के लिए उपयुक्त, नवीनतम तथा आधुनिक मशीनों की बहुत अधिक आवश्यकता है। भारत का मशीन उद्योग सभी प्रकार के उद्योगों की नवीनतम मशीनों की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं है। देश के मुख्य उपभोग उद्योग जैसे कपड़ा उद्योग, चीनी उद्योग आदि के अधिकतर कारखानों में आधुनिक मशीनरी उचित मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। भारी तथा आधारभूत उद्योगों जैसे इस्पात, रसायन, औजार, मशीनें, यातायात के साधनों आदि में भी आधुनिक मशीनों की आवश्यकता है। अधिकतर कुटीर तथा लघु उद्योग परम्परागत मशीनों का ही प्रयोग कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत में वृद्धि नहीं हो पाती है, उत्पादन घटिया क्वालिटी का होता है। हमारे उद्योग विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता नहीं कर पाते। आधुनिक मशीनों के लिए भारतीय उद्योगों को काफी सीमा तक विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। कम्प्यूटरीकरण के इस युग में काफी मशीनों का कम्प्यूटरीकरण आरम्भ हो गया है इन मशीनों की उत्पादन क्षमता तथा कार्यकुशलता बहुत अधिक होती है। भारत में इस प्रकार की मशीनों का भी बहुत कम उत्पादन होता है।

- **पुरानी मशीनों की समस्या (Problem of Old Machines)** – भारत के कई महत्वपूर्ण उद्योगों जैसे कपड़ा, चीनी, सीमेंट, इस्पात आदि की मशीनें काफी पुरानी हो गई हैं। पुरानी मशीनों के प्रयोग करने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा घटिया क्वालिटी का उत्पादन होता है। इसके फलस्वरूप हमारे उद्योग विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता नहीं कर सकते। इसका विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पूंजी की कमी के कारण पुरानी मशीनों के स्थान पर नई मशीनों का प्रयोग न कर पाना एक महत्वपूर्ण समस्या है।
- **नवप्रवर्तनों तथा अनुसंधान की समस्या (Problem of Innovations and Research)** – भारतीय उद्योगों में नवप्रवर्तनों तथा अनुसंधान की कमी पाई जाती है। इसके फलस्वरूप देश के उद्योग नई वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर पाते। प्रचलित उत्पादन की लागत कम नहीं हो पाती। उत्पादन की क्वालिटी में भी सुधार नहीं होता। इसका औद्योगिक उत्पादन की मांग पर बुरा प्रभाव पड़ता है। नवप्रवर्तनों तथा अनुसंधानों के लिए धन की बहुत आवश्यकता होती है।
- **कच्चे माल की समस्या (Problem of Raw Material)** – भारत में कई उद्योगों के लिए उचित कीमत पर अच्छी क्वालिटी का कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाता। भारत में कई उद्योगों के लिये कच्चा माल आयात करना पड़ता है। उदाहरण के लिए रासायनिक उद्योगों, कई इंजीनियरिंग उद्योगों, कार, कम्प्यूटर आदि उद्योगों को अपने कच्चे माल के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।
- **औद्योगिक रूग्णता की समस्या (Problem of Industrial Sickness)** – भारत में औद्योगिक रूग्णता अर्थात् बीमार इकाइयों की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। बड़े, मध्यम तथा लघु स्तर के उद्योग की कई इकाइयां बीमार घोषित की गई हैं। बीमार इकाइयां वे इकाइयां हैं जो अपने ऋण तथा ब्याज वापिस नहीं कर पाती। श्रमिकों को प्रोविडेंट फण्ड आदि का भुगतान करने में असमर्थ होती हैं।
- **क्षेत्रीय असमानता की समस्या (Problem of Regional Inequality)** – भारत में औद्योगिक विकास की एक मुख्य समस्या क्षेत्रीय असमानता है। देश के विभिन्न भागों के औद्योगिक विकास में बहुत अधिक असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। देश में कई राज्यों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि औद्योगिक दृष्टि से काफी विकसित हैं। देश के लगभग तीन चौथाई उद्योग इन राज्यों में स्थापित हैं। देश के कुल औद्योगिक निवेश तथा उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग इन्हीं राज्यों में स्थापित उद्योगों से प्राप्त होता है। इन राज्यों में भी गुजरात, महाराष्ट्र तथा आंध्र प्रदेश औद्योगिक दृष्टि से सबसे अधिक विकसित हैं। कई राज्यों जैसे बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश में केंद्रीय सरकार ने कई बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए काफी धन का निवेश किया है परन्तु इसके फलस्वरूप इन राज्यों के कुछ बड़े उद्योगों को छोड़कर अन्य उद्योगों के विकास को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल सका है।
- **औद्योगिक ढाँचे की समस्या (Problem of Industrial Structure)** – भारत के औद्योगिक उत्पादन का ढांचा भी दोषपूर्ण है। एक ओर धनी व्यक्तियों द्वारा खरीदी जाने वाली विलासिता तथा आराम की वस्तुओं का अधिक उत्पादन किया जा रहा है। इनका उत्पादन करने वाले उद्योगों जैसे टेलीविजन, कारें, एयरकण्डीशनर, वाशिंग मशीनों आदि में अधिक निवेश किया जा रहा है। दूसरी ओर आम जनता के उपयोग की वस्तुओं जैसे मोटा कपड़ा, चीनी, वनस्पति तेल आदि मजदूरी पदार्थों (Wage Goods) का उत्पादन करने वाले उद्योगों में अपेक्षाकृत कम निवेश किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर विलासिता तथा आराम की वस्तुओं की पूर्ति उनकी मांग की तुलना में अधिक होने के कारण उनके बाजार में मंदी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
- **उत्पादन क्षमता के प्रयोग की समस्या (Problem of Utilisation of Production Capacity)** – भारत में औद्योगिक विकास की एक मुख्य समस्या उत्पादन क्षमता का अपूर्ण उपयोग है। इसके फलस्वरूप एक ओर उत्पादन कम होता है तथा दूसरी ओर उत्पादन लागत बढ़ती है। कई उद्योगों जैसे बिजली का समान उत्पादन करने वाले उद्योगों की 40 प्रतिशत, सेनेटरी उद्योग की 67 प्रतिशत, कपड़ा तथा चीनी उद्योग की 80 प्रतिशत उत्पादन क्षमता का उपयोग किया जा रहा है। उत्पादन क्षमता के कम प्रयोग के कई कारण हैं जैसे औद्योगिक झगड़े, बिजली की कम पूर्ति, मांग की कमी, कच्चे माल की कमी आदि। उत्पादन क्षमता के कम होने के कारण उत्पादन कम होता है। वित्त प्रबन्ध तथा रोजगार क्षमता की हानि होती है। उद्यमियों के लाभ कम हो जाते हैं तथा उन उद्योगों में निवेश कम किया जाता है। इसका औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
- **औद्योगिक झगड़ों की समस्या (Problem of Industrial Disputes)** – भारत के औद्योगिक विकास की एक महत्वपूर्ण समस्या औद्योगिक झगड़ों से सम्बन्धित है। भारत में ट्रेड यूनियनों तथा मालिकों के परस्पर झगड़ों के कारण हड़तालें तथा तालाबन्दी होती रहती है। इसके फलस्वरूप उत्पादन कम होता है। उद्योगों में लाभ कम होते हैं। कई उद्योगों के बंद हो जाने के कारण बेरोजगारी बढ़ती है।
- **सार्वजनिक क्षेत्र की अकुशलता की समस्या (Problem of Inefficiency of Public Sector Industries)** – यह आशा की गई थी कि इन उद्योगों से कम लागत पर अधिक उत्पादन किया जा सकेगा, काफी श्रमिकों को रोजगार मिलेगा, इससे जो लाभ प्राप्त होगा उसका निवेश करके नये उद्योग स्थापित किये जा सकेंगे। परन्तु इनमें से अधिकतर उद्योग अकुशल सिद्ध हुये। उनमें लाभ के स्थान पर हानि हुई। इनमें निवेश किये गये धन का यदि वैकल्पिक प्रयोग किया जाता तो शायद औद्योगिक विकास अधिक तेजी से संभव हो सकता था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की अकुशलता के कई कारण हैं जैसे राजनीतिक हस्तक्षेप, अकुशल प्रबन्धन, श्रमिकों की अकुशलता, बिजली की कमी, अनार्थिक कीमत नीति आदि।
- **मानवीय पूंजी की समस्या (Problem of Human Capital)** – भारत में उद्योगों के विकास की एक प्रमुख समस्या मानव पूंजी की अकुशलता है। मानव पूंजी से अभिप्राय श्रमिकों तथा उद्यमियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, कुशलता, तकनीकी कुशलता, अनुशासन आदि से है। भारत में अधिकतर श्रमिक अशिक्षित तथा अस्वस्थ हैं। उनमें तकनीकी कौशल की कमी है। वे शहरों में गाँवों से आते हैं तथा वापस गाँवों को चले जाते हैं। इसलिये स्थायी श्रमिकों की कमी है। अस्थायी श्रमिकों में कुशलता कम होती है। भारत में प्रशिक्षित एवं जोखिम उठाने वाले उद्यमियों की भी कमी है। वे न तो अधिक जोखिम उठाना चाहते हैं और न ही श्रमिकों को उचित वेतन देते हैं। कम वेतन के कारण श्रमिकों की आय कम होती है तथा वे अपनी कुशलता में वृद्धि नहीं कर पाते। मानव पूंजी की अकुशलता भी उद्योगों के विकास की एक प्रमुख समस्या बन गई है।
- **एकाधिकारी शक्तियों में बहु वृद्धि (Much Increase in Monopoly Power)** – भारतीय उद्योगों की एक प्रमुख समस्या एकाधिकार तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की है। योजना अवधि में एकाधिकारी तत्त्वों की शक्ति में बहुत वृद्धि हुई है। इसके लिये सरकार की औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति तथा औद्योगिक वित्त प्रदान करने वाली **राष्ट्रीयकृत संस्थाओं** (Nationalised Institutes) की साख नीति का उत्तरदायित्व कम नहीं है। औद्योगिक विकास की दर तेज करने की आड़ में एकाधिकार आयोग (Monopolies Commission) ने, भारतीय वृहत् उद्योग घरानों (Big Industrial Houses) तथा विदेशी कम्पनियों को उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए भारी संख्या में अनुज्ञापन दिये हैं।

- **लघु उद्योगों का कम विकास (Less Development of Small Industries)**— भारत में औद्योगीकरण के फलस्वरूप लघु उद्योगों की तुलना में बड़े उद्योगों का अधिक तीव्र गति से विकास हुआ है। बड़े उद्योगों का रोजगार के रूप में योगदान 46 प्रतिशत, उत्पादक पूँजी के रूप में 69 प्रतिशत तथा मूल्य वृद्धि (Value Added) के रूप में 52 प्रतिशत था।

भारत में औद्योगिक नीतियों की घोषणाओं की शुरुआत 1948 में हुई और अब तक 6 औद्योगिक नीतियाँ घोषित की जा चुकी हैं (1948, 1956, 1973, 1977, 1980 और 1991)। इन सभी औद्योगिक नीतियों में 1991 की औद्योगिक नीति को एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में देखा गया क्योंकि इस औद्योगिकी नीति ने देश की औद्योगिकी विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम करने तथा निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ाने पर जोर दिया गया। इसी संदर्भ में इसे नयी औद्योगिक नीति कहा गया।

औद्योगिक क्षेत्र से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण सरकारी नीतियाँ

1. नई विनिर्माण नीति, 2011

- भारत सरकार द्वारा 4 नवंबर, 2011 को नई विनिर्माण नीति (New Manufacturing Policy) की घोषणा की गयी।
- इस नीति का उद्देश्य एक दशक के अंदर देश के GDP में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 25% करना तथा रोजगार के 10% अतिरिक्त अवसरों का सृजन करना है।
- सतत विकास (Sustainable Development) इस नीति का एक अभिन्न अंग है। अतः विनिर्माण हेतु बेहतर व धारणीय प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर बल दिया जायेगा।
- नई विनिर्माण नीति केंद्र व राज्य की भागीदारी पर आधारित है, जिसमें औद्योगिक वृद्धि के लिए केंद्र सरकार आवश्यक ढाँचा प्रदान करेगी और सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) पर विकसित ढाँचे को उचित वित्तीय सहायता देगी।
- देश की अर्थव्यवस्था में लघु और मध्यम उद्योगों के महत्व को मान्यता प्रदान करते हुए इस नीति में सामान्यतः विनिर्माण उद्योगों के लिए अन्य हस्तक्षेपों के अतिरिक्त लघु और मध्यम उद्यमों के लिए समर्पित हस्तक्षेप शामिल है।
- ये हस्तक्षेप मुख्य रूप से औद्योगिक उन्नयन, पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकी को अपनाने तथा इक्विटी निर्देशों से संबंधित हैं।
- वह भूमि जो बेकार है और कृषि योग्य नहीं है, राष्ट्रीय निवेश और निर्माण क्षेत्रों (NIMZs) को उपलब्ध करायी जाएगी।
- राष्ट्रीय निवेश और विनिर्माण क्षेत्र विश्वस्तरीय भौतिक और सामाजिक अवसंरचना सहित समेकित औद्योगिक टाउनशिप के रूप में परिकल्पित किये गए हैं।

राष्ट्रीय निवेश व निर्माण क्षेत्र (NIMZs)

प्रारंभ में निम्नलिखित को औद्योगिक शहरों के रूप में विकसित करने का काम शुरू किया गया है—

- अहमदाबाद धोलेरा निवेश क्षेत्र (गुजरात)।
- शेंद्रा विदकिन औद्योगिक पार्क सिटी (औरंगाबाद के पास महाराष्ट्र)।
- मानेसर बावल निवेश क्षेत्र (हरियाणा)।
- खुशखेड़ा-भिवाड़ी-नीमराना निवेश क्षेत्र (राजस्थान)।
- जोधपुर-पाली-मारवाड़ औद्योगिक क्षेत्र (राजस्थान)।
- पीथमपुर-धार-महू निवेश क्षेत्र (मध्य प्रदेश)।
- दादरी-नोएडा-गाजियाबाद निवेश क्षेत्र (उत्तर प्रदेश)।
- दीघा पोर्ट औद्योगिक क्षेत्र (महाराष्ट्र)।

पाँच अल्प औद्योगिक क्षेत्रों को सैद्धांतिक रूप से स्वीकृति दी गयी है। वे हैं नागपुर (महाराष्ट्र), तुमकुरु (कर्नाटक), चितूर (केरल), मेदक (तेलंगाना) एवं प्रकाशम (आंध्र प्रदेश)।

2. कंपनी एक्ट, 2013

संसद द्वारा पारित नये कंपनी अधिनियम को 29 अगस्त, 2013 को भारत के राष्ट्रपति ने मंजूरी दी। इस अधिनियम ने कंपनियों से संबंधित वर्ष 1956 के कानून का स्थान लिया है।

प्रमुख प्रावधान

- कंपनी के निदेशक बोर्ड में एक तिहाई स्वतंत्र निदेशकों को रखना।
- कम से कम एक महिला निदेशक की नियुक्ति अनिवार्य।
- पारदर्शी कॉर्पोरेट गवर्नेंस व भ्रष्टाचार के मामलों का निपटारा करने के लिए विशेष अदालतें गठित की जायेगी।
- प्रत्येक पाँच वर्ष में लेखा परीक्षक को बदलना होगा।

कंपनी अधिनियम 2013 में निम्नलिखित नई परिभाषाओं को दिया गया है—

1. **एक व्यक्ति कंपनी**— यह कंपनी व्यावसायियों को एक व्यवस्थित व्यवसाय शुरू करने का मौका देती है।
2. **लघु व्यक्ति कंपनी**— लघु व्यक्ति कंपनी ऐसी कंपनी को कहते हैं जिनकी प्रदत्त पूँजी 50 लाख रुपये से ज्यादा न हो तथा जिनका कुल कारोबार 2 करोड़ रुपये से कम हो।
3. **सुषुप्त कंपनी (Dormant Company)**— वह कंपनी, जो इस अधिनियम के अंतर्गत भविष्य की किसी परियोजना के लिए पंजीकृत है या कुछ परिसंपत्ति रखती है और कोई महत्वपूर्ण लेन-देन नहीं करती है।
- **राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदन प्राधिकरण**— इसके अंतर्गत राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदन प्राधिकरण (National Financial Reporting Authority- NFRA) के संगठन का प्रावधान है।
- **क्लास एक्शन सूट (Class Action Suit)**— इसके तहत निवेशकों का कोई समूह या मंच कंपनी के खिलाफ कोई मामला यदि दर्ज करता है, तो उसका फैसला उन सभी पर लागू होगा, जो समान रूप से पीड़ित है।
- राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदन प्राधिकरण को विशेष अधिकार दिये गए हैं। यह इकाई लेखा परीक्षा पेशे का विनियमन (Regulation) करती है।
- कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) को इस अधिनियम के अंतर्गत भारतीय कॉर्पोरेट क्षेत्र में प्रस्तावित किया गया है।
- कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व (CSR) के तहत कंपनियों को लगातार तीन वर्षों के अपने औसत लाभ का न्यूनतम 2% सामाजिक दायित्वों के लिए व्यय करना होगा।

3. बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Right-IPR)

- देश में बौद्धिक संपदाओं (IP) के विकास के लिए सरकार ने एक बहुमुखी नीति बनायी है, जिससे कार्य संस्कृति तथा रचनात्मक विकास हो सके।
- **राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना**— अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं को पूरा करना, प्रशासन का आधुनिकीकरण तथा जागरूकता को बढ़ाना आदि कदम इस दिशा में उठाए गए हैं।

महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ

- पेटेंट डिजाइन, ट्रेडमार्क तथा भौगोलिक संकेतकों से संबद्ध सभी कानूनों को संशोधित किया गया है।
- यह सभी व्यापार से संबद्ध बौद्धिक संपदा अधिकारों के अंतर्गत भारत की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं का पालन करते हैं।

- IPR जागरूकता कार्यक्रम के तहत आधुनिकीकरण योजना का एक महत्वपूर्ण पहलू है- जागरूकता फैलाना। इससे शेयरधारकों को पंजीकरण के बारे में शिक्षित करने में आसानी होगी। आम लोगों, विशेष रूप से व्यवसायी वर्ग को उत्पाद की पाइरेसी या इससे संबंधित जानकारी इसके माध्यम से मिल सकती है।

राष्ट्रीय आईपीआर नीति

मई 2016 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति को मंजूरी दी। इस नीति द्वारा भारत में बौद्धिक संपदा को संरक्षण और प्रोत्साहन दिया जाता है। इस नीति के तहत सात लक्ष्य निर्धारित किये गए हैं- आईपीआर जागरूकता, पहुँच एवं प्रोत्साहन, समाज के सभी वर्गों में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक लाभों के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करना, आईपीआर सृजन, आईपीआर सृजन को तेज करना, वैधानिक एवं विधायी ढाँचा, मजबूत एवं प्रभावी आईपीआर कानून, जो वृहत्तर जनहित और संपदा के स्वामियों के हितों में संतुलन साध सके, प्रशासन एवं प्रबंधन, सेवा केंद्रित आईपीआर प्रशासन को आधुनिक एवं मजबूत बनाना, आईपीआर का व्यावसायीकरण, वाणिज्यीकरण के जरिये आईपीआर का मूल्य प्राप्त करना, प्रवर्तन एवं निर्णय, आईपीआर उल्लंघन से निपटने के लिए प्रवर्तन एवं निर्णय प्रक्रिया को मजबूत करना, मानव पूँजी विकास आईपीआर के शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुसंधान एवं कौशल विकास के लिए मानव संसाधन, संस्थानों तथा क्षमताओं को मजबूत बनाना एवं विस्तार करना।

महत्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य

- ट्रेडमार्क, भौगोलिक संकेतक पंजीयक एवं पेटेंट नियंत्रक के निर्णयों के विरुद्ध याचिकाओं पर सुनवाई हेतु चेन्नई में बौद्धिक संपदा अपीलीय बोर्ड स्थापित किया गया है।
- देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों (MSME's) का योगदान 45% है, जबकि देश के कुल निर्यात में इनका योगदान 40% है।
- राष्ट्रीय निवेश एवं विनिर्माण क्षेत्र में पर्यावरण सुरक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए हरित भूमि समन्वित शहर के विकास पर बल दिया गया है।
- भारत में सर्वाधिक उद्यमों की संख्या तमिलनाडु में है, जबकि महाराष्ट्र का दूसरा स्थान है।

औद्योगिक क्षेत्र से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण अवधारणाएँ

औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness) - एक औद्योगिक रुग्ण इकाई वह है जो बहुत दिनों से हानि पर काम कर रही हो।

- औद्योगिक रुग्णता के संबंध में 1985 में टी. तिवारी समिति की सिफारिशों पर रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम (Sick Industrial Companies Act- SICA) पारित किया गया।
- जनवरी, 1987 में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड की स्थापना की गयी जो मई 1987 से प्रभावी हुआ। यह बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction- BIFR) मूलतः निजी कंपनियों की रुग्णता से संबंधित था, किंतु दिसंबर, 1991 में इसे सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को देखने का अधिकार दे दिया गया।
- औद्योगिक रुग्णता पर विचार करने हेतु अप्रैल 1993 में ओंकार गोस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी, जिसने अपनी रिपोर्ट में औद्योगिक रुग्णता को नये सिरे से परिभाषित करके SICA में आमूलचूल

परिवर्तन तथा BIFR की भूमिका में परिवर्तन की बात कही।

- वर्ष 1993 में रुग्णता अधिनियम (SICA) में संशोधन किया गया जो 1994 से लागू हुआ। कंपनियों के दिवालियापन, रुग्ण इकाइयों के पुनर्वास, ऋण की पुनर्दायगी आदि की समस्या पर विचार करने के लिए बालकृष्ण इराडी समिति ने BIFR को समाप्त करने तथा 'राष्ट्रीय कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल' (NCLT) की स्थापना का सुझाव दिया।
- कंपनी अधिनियम 2002 (दूसरा संशोधन) ने दो विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल (NCLT) तथा नेशनल कंपनी लॉ अपीलेट ट्रिब्यूनल (NCLAT)। NCLT की स्थापना के बाद 'अपीलेट अथॉरिटी फॉर इंडस्ट्रियल एण्ड फाइनेंशियल रिकान्स्ट्रक्शन' (AAIFR) और BIFR को समाप्त कर दिया गया।

कंपनी अधिनियम तथा रुग्ण औद्योगिक इकाइयाँ

- सिक इंडस्ट्रियल कंपनीज एक्ट 1985 के अनुसार रुग्ण इकाई के लिए यह आवश्यक है कि कंपनी 7 वर्ष से पंजीकृत हो, जिसकी संचित हानि वित्तीय वर्ष के अंत में उसके निवल मूल्य के बराबर या उससे अधिक हो तथा इन वित्तीय वर्षों में उसे नकदी हानि भी हुई हो।
- 1992 में इसमें संशोधन किया गया, पंजीकरण की अवधि को कम करके 5 वर्ष किया गया तथा नकद हानि की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया।
- लघु उद्योगों के संबंध में रुग्ण इकाई उसे माना गया, जिसने (i) विगत लेखा वर्ष में नकद हानि अर्जित की है तथा वर्तमान वर्ष में हानि होने की संभावना है (ii) पिछले 5 वर्षों के दौरान उनके निवल मूल्य में क्षरण हुआ है तथा जो 50 प्रतिशत के बराबर या उससे अधिक है।
- धारा-2(46AA) में औद्योगिक रुग्ण इकाइयों को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार रुग्ण इकाई वह है-
 1. जिसकी किसी वित्तीय वर्ष में संचित हानि पिछले चार वित्तीय वर्षों के औसत निवल संपत्ति मूल्य के 50 प्रतिशत के बराबर या अधिक हो।
 2. जो निरंतर तीन तिमाहियों में अपनी देनदारों के ऋण को चुकाने में विफल रही हो।
- रुग्ण कंपनियों के संबंध में कंपनी अधिनियम 2013 के अनुसार इसका निर्धारण कि कोई कंपनी रुग्ण है या नहीं, इस बात पर निर्भर करेगा कि संचित हानियाँ निवल मूल्य से अधिक हैं या नहीं बल्कि इससे निर्धारित होगा कि कंपनी अपनी ऋण की अदायगी में सक्षम है या नहीं। एक कंपनी रुग्ण कही जायेगी यदि उसका बकाया ऋणदाताओं के 50 प्रतिशत या इससे अधिक (सुरक्षित लेन-देन, बैंक या वित्तीय संस्थाएँ) माँग करें। कंपनी रुग्ण होगी यदि ऋण की अदायगी की नोटिस के 30 दिन के भीतर भुगतान करने में असफल रहे।
- राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण (NCLT) को यह अधिकार है कि वह रुग्ण कंपनियों में जाँच के बारे में कारगर व्यवस्था करे तथा निवारण हेतु आवश्यक कार्यवाही करें। यदि रुग्ण कंपनियों का उद्धार संभव नहीं हो तो उनके विलय, पुनर्गठन, परिसीमापन हेतु यथास्थिति आदेश पारित करें।
- रुग्ण कंपनियों के पुनर्वास हेतु कंपनी एक्ट में संशोधन के द्वारा पुनर्वास निधि की स्थापना की गयी है, जिसका निर्माण कंपनियों की वार्षिक बिक्री या सकल प्राप्ति पर 0.5 से 1 प्रतिशत के उपकर के द्वारा होगा।

औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness)

भारत में औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं में एक प्रमुख समस्या औद्योगिक रुग्णता है। रुग्ण इकाइयों के निरंतर वित्तीय प्रवाह से बैंकिंग संसाधनों के दुरुपयोग के साथ-साथ सरकार के व्यय में भी वृद्धि होती है।

उल्लेखनीय है कि पूर्ववर्ती व्यवस्था के अनुसार, रूग्ण कम्पनी वह होगी जिसकी किसी वित्तीय वर्ष के अन्त में संचित हानियाँ उसके सम्पूर्ण निवल मूल्य से अधिक हो या बराबर हो, इसमें यह आवश्यक है कि ऐसी कम्पनी कम से कम 5 वर्ष पूर्व समामेलित हो।

कंपनी अधिनियम, 2002 की धारा 3 (45A) के अनुसार, रूग्ण इकाइयाँ हैं-

- जिसकी किसी वित्तीय वर्ष में संचित हानियाँ पिछले चार वित्तीय वर्षों के औसत निवल संपत्ति मूल्य के 50% के बराबर या अधिक हो अथवा जो निरंतर तीन तिमाहियों में अपने देनदारों के ऋण को चुकाने में विफल रही हो, अर्थात् एक औद्योगिक रूग्ण इकाई वह है, जो बहुत दिनों से घाटे में चल रही हो। औद्योगिक रूग्णता भारत में औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं में से एक है।

भारत की लगभग 2 लाख से अधिक औद्योगिक इकाइयाँ रूग्ण अवस्था में हैं, तथा इनमें 33% इकाइयाँ लघु उद्यम क्षेत्र में हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष इनमें 29,000 इकाइयाँ शामिल होती जा रही हैं, जो कि चिंता का विषय है।

औद्योगिक रूग्णता के कारण (Causes of Industrial Sickness)

- आधारभूत संरचना की अपर्याप्तता।
- मांग तथा कार्यशील पूँजी का अभाव एवं कच्चे माल की अनुपलब्धता।
- श्रमिकों के साथ औद्योगिक विवाद।
- ऊर्जा की अनुपलब्धता।
- विपणन की समस्या।
- कुशल प्रबंधन का अभाव और इसके कारण कार्यकुशलता और प्रतिस्पर्द्धा में कमी।

औद्योगिक रूग्णता के परिणाम

- देश की उत्पादक पूँजी के एक बड़े अंश का अनुत्पादक पूँजी में परिवर्तित हो जाना, जिसके कारण उस निवेश का लाभ निवेशकों के साथ-साथ ही अर्थव्यवस्था को नहीं मिल पाता।
- श्रमिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव और श्रमिकों का अनिश्चित भविष्य।
- बैंकों और वित्तीय संस्थाओं पर प्रतिकूल प्रभाव और गैर निष्पादित परिसंपत्ति (Non Performing Asset) की समस्या।
- सरकारी राजस्व पर प्रतिकूल प्रभाव।
- बंद इकाइयों के श्रमिकों की छंटनी का अन्य उद्योगों के श्रम संघ विरोध करते हैं तथा व्यापक स्तर पर औद्योगिक हड़तालें होती हैं।

औद्योगिक रूग्णता के संदर्भ में 1985 में नारायण दत्त तिवारी समिति की सिफारिशों पर रूग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम पारित किया गया है। जनवरी 1987 में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction-BIFR) की स्थापना की गई, जो मई 1987 से प्रभावी हुआ।

BIFR मूलतः निजी क्षेत्र की रूग्ण इकाइयों को देखने के लिए बनाया गया था, परंतु वर्ष 1991 में इसे सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को देखने के लिए कह दिया गया।

गोस्वामी समिति

अप्रैल 1993 में औद्योगिक रूग्णता पर भारतीय सांख्यिकी संस्थान के डॉ. ओंकार गोस्वामी की अध्यक्षता में समिति गठित की गई। उन्होंने अपनी रिपोर्ट 13 जुलाई 1993 को वित्त मंत्रालय को प्रस्तुत की। गोस्वामी समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि BIFR की भूमिका में परिवर्तन होना चाहिए। साथ ही यह भी कहा कि पुनर्वास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना वास्तव में अकुशल

और गैर-जिम्मेदार उद्यमियों को पुरस्कृत करने के समान है। इससे श्रमिकों को अल्पकाल में भले ही लाभ होता हो, परन्तु दीर्घकाल में उन्हें हानि ही होती है।

बी. बालकृष्ण इराडी समिति

कंपनियों के दिवालियापन पर सुझाव देते हुए बी. बालकृष्ण समिति ने अपनी रिपोर्ट 31 अगस्त 2000 को तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को सौंप दी थी। समिति ने कम्पनियों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में सरकारी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन के सुझाव दिये। इनमें राष्ट्रीय कंपनी लॉ न्यायाधिकरण (National company law tribunal) के गठन का प्रस्ताव शामिल है।

औद्योगिक रूग्णता से बचने के उपाय

- भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या पर विचार हेतु वर्ष 1981 में तिवारी समिति गठित की गयी। तिवारी समिति की सिफारिश पर वर्ष 1985 में रूग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम (Sick Industrial Companies Act-SICA) पारित किया गया।
- साथ ही औद्योगिक रूग्णता की समस्या पर विचार के लिए 1 मई, 1987 में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction-BIFR) की स्थापना की गयी।
- औद्योगिक रूग्णता पर विचार के लिए अप्रैल, 1993 में ओंकार गोस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी थी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में औद्योगिक रूग्णता की परिभाषा को बदलने के साथ-साथ SICA और BIFR में भी परिवर्तन के सुझाव दिये।
- पुनः वर्ष 2000 में बी बालकृष्ण इराडी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। समिति ने एक नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल (National Company Law Tribunal-NCLT) के गठन तथा इसे कंपनी लॉ बोर्ड के अधिकार सौंपे जाने की अनुशंसा की।
- समिति के सुझाव के अनुरूप वर्ष 2002 में नया कंपनी विधेयक लाया गया। इसके प्रभावी होने के साथ ही SICA, BIFR तथा AAIFR का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा तथा इनका कार्य NCLT को सौंपा जाएगा।

वस्त्र मंत्रालय की प्रमुख योजनाएँ

एकीकृत वस्त्र पार्क योजना (Scheme for Integrated Textile Park: SITP)

उद्देश्य

उद्यमियों के समूह को अंतर्राष्ट्रीय परिवेश और सामाजिक मानकों के अनुरूप वस्त्र इकाइयों की स्थापना हेतु एक कलस्टर में अत्याधुनिक अवसंरचना सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना। इस प्रकार इस क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहन देना तथा रोजगार के नवीन अवसर सृजित करना।

विशेषताएँ

- यह योजना उच्च विकास क्षमता युक्त औद्योगिक समूहों और स्थानों को लक्षित करती है, जहाँ विश्व स्तरीय अवसंरचना सुविधाओं के विकास हेतु नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है।
- इस योजना के तहत एक ITP में अधिमानतः 25 एकीकृत इकाइयाँ होनी चाहिए। इन इकाइयों में निम्नलिखित घटक शामिल होने चाहिए- भूमि (SPV के नाम पर पंजीकृत), सामान्य अवसंरचना (मैदान, सड़क, जल

निकासी, विद्युत आदि)। सामान्य सुविधाओं के लिए भवन (क्रेच, कैटीन, प्रयोगशालाएँ आदि) और उत्पादन उद्देश्यों के लिए कारखाने।

- परियोजना की कुल लागत का वित्त पोषण वस्त्र मंत्रालय, राज्य सरकार, राज्य औद्योगिक विकास निगम, उद्योग, परियोजना प्रबंधन परामर्शदाता की इक्विटी/ अनुदान तथा बैंकों/वित्तीय संस्थानों द्वारा प्रदत्त ऋण द्वारा संयुक्त रूप से किया जाएगा।
- भारत सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदान या इक्विटी परियोजना लागत के 40% (पूर्वोत्तर राज्यों और जम्मू कश्मीर में प्रथम दो परियोजनाओं के लिए 90%) तक सीमित होगा, जिसकी अधिकतम सीमा 40 करोड़ रुपये होगी।
- यदि भारत सरकार/राज्य औद्योगिक विकास निगम इक्विटी धारण करते हैं, तो इनकी संयुक्त इक्विटी हिस्सेदारी 49% से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- SPV को भारत सरकार की सहायता नियम और शर्तों की पूर्ति के आधार पर 30:40:30 के अनुपात में तीन किस्तों में प्रदान की जाएगी।
- प्रत्येक परियोजना सामान्य रूप से सरकारी अनुदान की पहली किस्त के जारी होने की तिथि से 3 वर्ष में पूरी की जाएगी। (विलंब होने पर परियोजना को रद्द किया जा सकता है और जुर्माना आरोपित किया जा सकता है)
- ITP को संशोधित प्रौद्योगिकि उन्नयन निधि योजना (ATUFS), समर्थ (SAMARTH) इत्यादि से लाभ भी प्राप्त हो सकता है।

रेशम उद्योग के विकास के लिए एकीकृत योजना (Integrated Scheme for Development of Silk Industry)

उद्देश्य

- अनुसंधान एवं विकास संबंधी हस्तक्षेप के माध्यम से रेशम की उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार करना।
- बेहतर संकर किस्म (Crossbreed) के रेशम और आयात प्रतिस्थापन के लिए बाइवोल्टाइन रेशम को बढ़ावा देना ताकि भारत में बाइवोल्टाइन रेशम उत्पादन इस स्तर तक बढ़ाया जाए कि कच्चे रेशम का आयात 2022 तक शून्य हो जाए तथा भारत रेशम उत्पादन में आत्मनिर्भर बने।
- 2020 तक लाभकारी रोजगारों की संख्या 85 लाख से बढ़ाकर 1 करोड़ करना।

विशेषताएँ

- यह केंद्रीय सिल्क बोर्ड के माध्यम से वस्त्र मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित एक केंद्रीय क्षेत्र की योजना है।
- इस योजना में चार घटक हैं-
 - अनुसंधान एवं विकास (R & D), प्रशिक्षण, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और IT पहलें।
 - बीज संगठन और किसान विस्तार केंद्र।
 - बीज, धागे और रेशम उत्पादों के लिए बाजार विकास और समन्वय।
 - गुणवत्ता प्रमाणन प्रणाली (QCS)।
- इसकी कार्यान्वयन रणनीतिक लाभ को अधिकतम करने के लिए राज्य स्तर पर अन्य मंत्रालयों की योजनाओं जैसे- कृषि मंत्रालय की RKVY और PMKSY, ग्रामीण विकास की मनरेगा के साथ अभिसरण पर आधारित है।
- भारत के IITs, CSIR, IISc जैसे प्रतिष्ठित संस्थान और जापान, चीन, बुल्गारिया आदि देशों के रेशम उत्पादन (सेरीकल्चर) से संबंधी अंतर्राष्ट्रीय शोध संस्थान, अनुसंधान एवं विकास और

तकनीकी प्रगति में सहयोग करेंगे।

- भारतीय रेशम का ब्रांड प्रमोशन, घरेलू और निर्यात बाजार में सिल्क मार्क द्वारा गुणवत्ता प्रमाणन के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाएगा।

पावरटेक्स इंडिया स्कीम (Power Tex India Scheme)

उद्देश्य

- आर्थिक दृष्टि से कमजोर तथा लो एंड (Low end) वाली पावरलूम इकाइयों को उनके आधुनिकीकरण और अवसंरचना विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- उत्पादित कपड़े की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार करना और उन्हें घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाना।
- क्लस्टर आधारित विकास को बढ़ावा देना।
- पावरलूम उत्पाद हेतु बाजार को प्रोत्साहन देने के लिए क्रेता-विक्रेता सम्मेलन और रिवर्स क्रेता-विक्रेता सम्मेलन।
- धागे की बिक्री पर मध्यस्थ/स्थानीय आपूर्तिकर्ता ब्रोकरेज चार्ज से बचना।
- नवीकरणीय ऊर्जा (सौर) पर बल देना।

प्रमुख विशेषताएँ

- यह पावरलूम (विद्युत करघा) क्षेत्र के विकास हेतु एक व्यापक योजना है। इस योजना का उद्देश्य देश में सामान्य अवसंरचना में वृद्धि करना तथा पावरलूम को आधुनिकीकरण करना है।
- इसमें नौ प्रमुख घटक शामिल हैं, इनसीटू अपग्रेडेशन ऑफ प्लेन पावरलूम, ग्रुप वर्क्सशेड स्कीम (GWS), यार्न बैंक स्कीम, PM क्रेडिट स्कीम, सोलर एनर्जी स्कीम, जन सुविधा केंद्र (CFC), टैक्स वेंचर कैपिटल फंड, पावरलूम योजनाओं के लिए सरलीकरण, आईटी जागरूकता, बाजार विकास और प्रचार तथा पावरलूम सर्विस सेंटर (PSCs) का आधुनिकीकरण एवं उन्नयन और सहायक अनुदान।
- दो प्रमुख योजनाएँ निम्नलिखित हैं-
 - पावरलूम बुनकरों के लिए प्रधानमंत्री क्रेडिट योजना (PMCS)।
 - पावरलूम के लिए सौर ऊर्जा योजना।
- पावरलूम के लिए PMCS: वित्तीय सहायता (मार्जिन मनी सब्सिडी और ब्याज प्रतिपूर्ति सहित), प्रधानमंत्री मुद्रा योजना और स्टैंड-अप इंडिया के तहत विकेंद्रीकृत पावरलूम इकाइयों के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/ महिला उद्यमियों को प्रदत्त क्रेडिट सुविधा की तरह दी जाएगी।
- प्राकृतिक मृत्यु, आकस्मिक मृत्यु और दुर्घटना के कारण आंशिक/स्थायी विकलांगता के मामले में पावरलूम कर्मचारियों (18-59 वर्ष की आयु के) के लिए सार्वभौमिक बीमा का प्रावधान भी शामिल किया गया है।

संशोधित प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना (Amended Technology Upgradation Fund Scheme: ATUFS)

उद्देश्य

- देश में 'ईज ऑफ़ डूइंग बिजनेस' को प्रोत्साहित करना तथा सामान्य रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना और विनिमय में मेक इन इंडिया और जीरो इफेक्ट एंड जीरो डिफेक्ट के माध्यम से निर्यात में वृद्धि करना।
- वस्त्र उद्योग में आयात प्रतिस्थापन के साथ निवेश, उत्पादकता, गुणवत्ता, रोजगार और निर्यात वृद्धि को सुगम बनाना तथा अप्रत्यक्ष रूप से वस्त्र मशीनरी विनिर्माण में निवेश में वृद्धि करना।

मुख्य विशेषताएँ

- यह केंद्रीय क्षेत्र की एक क्रेडिट लिंकड योजना है।
- इस योजना में पात्र बेंचमार्क मशीनरी के लिए परिधान और प्रौद्योगिकीय वस्त्र खंड हेतु 30 करोड़ रुपये की अधिकतम राशि के साथ 15% की दर तथा बुनाई, प्रसंस्करण, पटसन, रेशम और हथकरघा खंड हेतु 20 करोड़ रुपये की अधिकतम राशि के साथ 10% की दर पर एकमुश्त पूँजी सब्सिडी का प्रावधान है।
- इस योजना के तहत इकाइयों/संस्थाओं को नोडल वित्तीय संस्थानों के माध्यम से सब्सिडी दी जाती है, न कि राज्य सरकार के माध्यम से।
- इसमें पूँजी निवेश सब्सिडी (CIS) शामिल है, जबकि TUFs की पूर्व योजनाओं में ब्याज प्रतिपूर्ति और पूँजी सब्सिडी दोनों से संबंधित प्रावधान थे।
- ATUFs को परिधान निर्माण जैसे केंद्रित क्षेत्रों की ओर लक्षित किया जाता है तथा कताई (Spinning) जैसे आधुनिकीकरण के वांछित स्तर को प्राप्त कर चुके क्षेत्रों को लक्षित नहीं किया गया है।

कपड़ा क्षेत्र में क्षमता निर्माण योजना (Scheme for Capacity Building in Textile Sector-SAMARTH)

उद्देश्य

- कताई और बुनाई को छोड़कर संगठित कपड़ा क्षेत्र और इससे संबद्ध क्षेत्रों के प्रोत्साहन हेतु मांग आधारित, रोजगार उन्मुख NSQF (राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क) के अनुरूप कौशल कार्यक्रम की व्यवस्था करना।
- हैंडलूम, हस्तशिल्प, रेशम उत्पादन (सेरीकल्चर) और जूट के पारंपरिक क्षेत्रों में कौशल विकास और कौशल उन्नयन को बढ़ावा देना।
- वेतन या स्व रोजगार के माध्यम से संपूर्ण देश में समाज के सभी वर्गों को सतत आजीविका प्रदान करना।

लाभार्थी

- 10 लाख व्यक्ति (संगठित क्षेत्र में 9 लाख और पारंपरिक क्षेत्र में 1 लाख)।
- कौशल विकास और रोजगार के माध्यम से देश भर में समाज के सभी वर्ग महिला, ग्रामीण, सुदूर, वामपंथ चरमपंथी प्रभावित क्षेत्र, पूर्वोत्तर, जम्मू-कश्मीर।

मुख्य विशेषताएँ

- यह एक कौशल विकास योजना है। यह योजना कताई और बुनाई को छोड़कर संगठित क्षेत्र में कपड़ा क्षेत्र की संपूर्ण मूल्यशृंखला को कवर करती है। इसे 2017-18 से 2019-20 तक लागू किया गया है।
- इसके तहत कौशल अंतराल और कौशल आवश्यकताओं का आंकलन किया जाएगा और तदनुसार आवश्यक कौशल प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा।
- कार्यक्रम के अंतर्गत क्षेत्र विशिष्ट हार्ड स्किल के अतिरिक्त, 30 घंटे का सॉफ्ट स्किल (Soft Skills) भी प्रदान करेगा।
- प्रशिक्षुओं का मूल्यांकन और प्रमाणन एक अधिकृत मूल्यांकन एजेंसी द्वारा किया जाएगा।
- 70% सफल प्रशिक्षुओं के नियोजन (प्लेसमेंट) की गारंटी प्रदान की जाएगी (संगठित क्षेत्र के लिए, सभी 70% को वेतन परक रोजगार में रखा जाएगा, जबकि पारंपरिक क्षेत्र के लिए कम से कम 50% को वेतन परक रोजगार दिया जाएगा)।
- योजना के तहत पोस्ट प्लेसमेंट ट्रेकिंग अनिवार्य है।

अन्य योजनाएँ (Other Schemes)

उद्देश्य

- **सभी लघु उद्योगों की सहायता के लिए प्रभावी कपड़ा प्रौद्योगिकियों का टिकाऊ एवं त्वरित अंगीकरण**- यह योजना लघु एवं मध्यम पावरलूम इकाइयों को बिना किसी अग्रिम कीमत के ऊर्जा कुशल पावरलूम, मोटर और रीपेयर किट (Rapier Kits) प्रदान करने के लिए वस्त्र मंत्रालय एवं विद्युत मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से प्रारंभ की गयी।
- **दीनदयाल हस्तकला संकुल**- यह वाराणसी में प्रथम अत्याधुनिक व्यापार केंद्र और शिल्प संग्रहालय है। यह बुनकरों और कारीगरों को विश्व स्तरीय विपणन सुविधाएँ प्रदान करेगा और वाराणसी की पर्यटन क्षमता में भी वृद्धि करेगा।
- **पुश्तैनी हुनर विकास योजना**- यह पारंपरिक कालीन बुनने वाले परिवारों के बुनकरों को तकनीकी और कौशल प्रशिक्षण देने के लिए भदोही के कालीन प्रौद्योगिकी संस्थान में शुरू की गयी।

ई-कॉमर्स उद्योग (E-Commerce Industry)

सरकार ने ई-कॉमर्स मापदंडों में परिवर्तन किया है। ये परिवर्तन पुराने मापदंडों को ही सुस्पष्ट करते हैं। ये कोई नए प्रतिबंध नहीं हैं।

नए नियमों द्वारा किए गए परिवर्तन

- 1 जनवरी, 2019 से, मार्केटप्लेस प्लेटफॉर्म चलाने वाली ई-कॉमर्स कंपनियाँ, जैसे- अमेज़न और फ्लिपकार्ट उन कंपनियों के माध्यम से और उन कंपनियों के उत्पाद नहीं बेच सकती हैं, जिनमें वे इक्विटी स्टैक (शेयरधारिता) रखते हैं।
- यह मार्केटप्लेस इकाई या उनकी समूह कंपनियों द्वारा किसी एकल विक्रेता से बेचे जा सकने वाले स्टॉक पर 25% की सीमा आरोपित करता है।
- किसी भी विक्रेता को उसके उत्पादों को किसी विशेष मार्केटप्लेस प्लेटफॉर्म पर ही बेचने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है। साथ ही ई-कॉमर्स पर सभी विक्रेताओं को 'निष्पक्ष और गैर-भेदभावपूर्ण' तरीके से सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए। सेवाओं में अन्य के साथ-साथ पूर्ति, लॉजिस्टिक्स, भंडारण, विज्ञापन, नकदी की वापसी, भुगतान और वित्तपोषण सम्मिलित हैं।
- ई-कॉमर्स मार्केटप्लेस इकाई को प्रति वर्ष 30 सितंबर तक भारतीय रिजर्व बैंक के पास पिछले वित्तीय वर्ष के लिए सांविधिक लेखा परीक्षक की रिपोर्ट के साथ एक प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना होगा जो दिशा-निर्देशों के अनुपालन की पुष्टि करता हो।
- ई-कॉमर्स इकाइयों को निष्पक्षता और गैर-भेदभाव बनाए रखना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय मूल्य को प्रभावित न करें।

मार्केटप्लेस मॉडल

- ई-कॉमर्स कंपनी उत्पादों के भंडारण के बिना खरीददारों और विक्रेताओं के बीच सुविधा प्रदाता के रूप में कार्य करने के लिए डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क पर IT प्लेटफॉर्म प्रदान करती है।
- यह विभिन्न खुदरा विक्रेताओं/ब्रांडों को संयुक्त करता है और उन्हें बिक्री चैनल (शिपमेंट, कॉल सेंटर, वितरण और भुगतान सेवाएँ) प्रदान करता है लेकिन स्टॉक (वस्तु-सूची) के स्वामित्व का उपयोग नहीं कर सकता है।

- यह श्रेष्ठतर ग्राहक सेवा अनुभव को संभव बनाता है, क्योंकि अब कई छोटे ब्रांडों को अधिक आउटरीच प्राप्त हो पाती है।
- ई-कॉमर्स के मार्केटप्लेस मॉडल में 100% FDI की अनुमति है।

इन्वेंटरी मॉडल

- उत्पाद ऑनलाइन शॉपिंग कंपनी के स्वामित्वाधीन होते हैं। उत्पाद की खरीद से आरंभ करके, भंडारण और उत्पाद प्रेषण के साथ समाप्त होने वाली पूरी प्रक्रिया का शुरु से लेकर अंत तक पूरा प्रबंधन कंपनी द्वारा किया जाना है।
- यह त्वरित वितरण, बेहतर गुणवत्ता नियंत्रण, बेहतर ग्राहक अनुभव और विश्वास की अनुमति देता है। लेकिन यह नकदी के प्रवाह को प्रतिबंधित करता है और इसका मापन करना मुश्किल है।
- ई-कॉमर्स रिटेल (B2C) सहित मल्टी-ब्रांड रिटेल में FDI प्रतिबंधित है।

सॉफ्टवेयर उत्पाद पर राष्ट्रीय नीति (National Policy for Software Products)

केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 'सॉफ्टवेयर उत्पादों पर राष्ट्रीय नीति' को स्वीकृति प्रदान की गयी है। इसका उद्देश्य भारत को एक सॉफ्टवेयर उत्पाद राष्ट्र में स्थापित करना तथा वर्ष 2025 तक 3.5 मिलियन नौकरियों का सृजन करना है।

पृष्ठभूमि

पहली सॉफ्टवेयर नीति वर्ष 1986 में जारी की गयी थी। इसके परिणामस्वरूप वर्ष 1991 में सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी पार्क (STP) योजना की शुरुआत हुई।

रणनीति

- 'इंडियन सॉफ्टवेयर प्रोडक्ट रजिस्ट्री' का सृजन कर सॉफ्टवेयर उत्पादों के व्यावसायिक परिवेश को बढ़ावा देना।
- इनक्यूबेशन के माध्यम से उद्यमशीलता और नवाचार को बढ़ावा देना, क्षेत्र विशिष्ट भारतीय सॉफ्टवेयर उत्पाद क्लस्टर (समूहों) का निर्माण करना उत्कृष्टता केंद्रों का विकास करना और समर्पित सॉफ्टवेयर उत्पाद विकास निधि (SPDF) का सृजन करना।
- भावी कौशल विकास कार्यक्रम के माध्यम से कौशल और मानव संसाधन विकास करना।
- गवर्नमेंट ई-मार्केटप्लेस (GeM) के साथ इंडियन सॉफ्टवेयर प्रोडक्ट रजिस्ट्री को एकीकृत करके घरेलू बाजार तक पहुँच में सुधार करना, हैकथॉन के माध्यम से भारतीय उत्पाद स्टार्ट-अप/MSMEs को प्रोत्साहित करना तथा सरकारी खरीद में भारतीय सॉफ्टवेयर उत्पाद का अधिमान्य समावेश करना।

सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी पार्क ऑफ इंडिया

- यह भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY) के तहत एक स्वायत्त सोसाइटी है।
- इसका उद्देश्य IT सक्षम सेवाओं सहित सॉफ्टवेयर सेवाओं के विकास और निर्यात को बढ़ावा देना है।
- यह सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी पार्क, BPO संवर्द्धन योजना आदि की क्रियान्वयन एजेंसी है।

सॉफ्टवेयर उत्पाद विकास निधि (SPDF)

- फंड ऑफ फंड्स के रूप में 1,000 करोड़ रुपये की निधि का सृजन किया

जाएगा। SPDF द्वारा जोखिम पूंजी प्रदान करने हेतु वेंचर फंड के तौर पर कार्य किया जाएगा ताकि बाजार के लिए तैयार सॉफ्टवेयर उत्पादों को प्रोत्साहित किया जा सके।

- SEBI के दिशा-निर्देशों के अनुसार, SPDF को एक वित्तीय संस्थान/एसेट मैनेजमेंट कंपनी द्वारा वित्तीय रूप से प्रबंधित किया जाएगा।

चौथी औद्योगिक क्रांति (Fourth Industrial Revolution)

विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum: WEF) द्वारा महाराष्ट्र (भारत) में चौथी औद्योगिक क्रांति हेतु एक केंद्र की शुरुआत की गयी है। इस केंद्र द्वारा पहली तीन परियोजनाओं के रूप में ड्रोन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और ब्लॉकचेन का चयन किया गया है।

अन्य संबंधित तथ्य

- मुंबई में स्थित यह केंद्र सैनफ्रांसिस्को, टोक्यो और बीजिंग के पश्चात् विश्व का चौथा ऐसा केंद्र है।
- इस केंद्र को नीति आयोग के माध्यम से भारत सरकार की साझेदारी में विकसित किया गया है।

चौथी औद्योगिक क्रांति

- चौथी औद्योगिक क्रांति पद का सृजन 2016 में क्लाउस श्वाब द्वारा किया गया था। यह डिजिटल, जैविक और भौतिक प्रणालियों के अनुकूलतम प्रक्रियाओं का विकास करके किया जा सकता है।
- इसमें बिग डेटा, AI, ऑगमेंटेड रियलिटी, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, रोबोटिक्स और एडिटिव मैन्युफैक्चरिंग (जैसे- चालक रहित कारें, स्मार्ट रोबोटिक्स, कठोर सामग्री, 3D प्रिंटिंग आदि) जैसे उपकरणों का उपयोग कर प्रथम तीन औद्योगिक क्रांतियों (वाष्प शक्ति और यांत्रिक उत्पादन, असेंबली लाइन्स और विद्युतीकरण तथा इलेक्ट्रॉनिक्स और कंप्यूटिंग) के अगले चरण के रूप में स्थान प्रदान किया गया है।

'थर्ड वेव' नामक पुस्तक में एल्विन टोफलर बताते हैं कि विकास की इस क्रांति की दर पिछली विकास दरों की तुलना में सौ गुना से भी अधिक होगी। चूँकि, यह क्रांति मूलतः सूचना क्रांति और इंटरनेट के विस्तार पर टिकी है इसलिए स्वाभाविक है कि यह औद्योगिक विकास के साथ-साथ विचार प्रक्रिया और विमर्शों के बदलाव की भी क्रांति होगी। भारत औपनिवेशिक संरचना में बंधे होने के कारण पहले की औद्योगिक क्रांतियों का लाभ नहीं ले पाया था लेकिन इसे बदलते विश्व में अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करने के लिए वर्तमान विकास की लहर का अधिकतम लाभ लेने का प्रयास करना ही होगा। निःसंदेह हमारी बुनियाद में कुछ कमजोरियां शेष हैं लेकिन उन्हें चिह्नित कर दूर करने का उपाय करना और समग्र विकास के लिये नई जमीन तैयार करना हमारा उद्देश्य होगा। इन्हीं कारकों को देखते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक 'नए भारत' के निर्माण के लिए आह्वान किया है। यह 'नया भारत' तकनीक का महत्तम लाभ लेगा और सरकार तथा जनसहयोग के आधार पर निर्मित भारत होगा। इसके लिए वृहत स्तर पर जोर लगाने की आवश्यकता होगी।

भारत में इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग (Electronics Industry in India)

इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY) ने 'इलेक्ट्रॉनिक्स पर राष्ट्रीय नीति' 2018 (NPE 2018) का मसौदा तैयार किया है, जिसका उद्देश्य वर्ष 2025 तक 400 बिलियन डॉलर के इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण उद्योग और 1 करोड़ रोजगारों का सृजन करना है।

इंवर्टेड इयूटी स्ट्रक्चर (IDS)

- इससे तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से है, जहाँ विनिर्मित वस्तुओं पर आयात शुल्क कच्चे माल, जिसका उपयोग विनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है पर आयात शुल्क की तुलना में कम होता है।
 - IDS का मुद्दा घरेलू इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माताओं के लिए विदेशी विनिर्माताओं के साथ प्रतिस्पर्धा करना कठिन बनाता है, विदेशी विनिर्माता कच्चे माल और अन्य घटकों सहित दोनों को कम कीमतों पर प्राप्त कर सकते हैं।
 - **भारत में इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम डिजाइन एंड मैनुफैक्चरिंग (ESDM) क्षेत्र के लिए की गई पहलें**
 - **इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माण क्लस्टर (Electronics Manufacturing Clusters: EMC):** अपर्याप्त अवसंरचना के कारण होने वाली क्षितियों को कम करने के लिए, EMC स्थापित किए गए हैं, जो संस्थाओं को एक क्लस्टर के अंतर्गत अच्छी गुणवत्ता वाली अवसंरचना और लॉजिस्टिक्स प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करता है। सरकार क्रमशः ग्रीनफील्ड और ब्राउनफील्ड क्लस्टर में अवसंरचना के विकास की लागत का 50% और 75% प्रदान करती है।
 - **संशोधित विशेष प्रोत्साहन पैकेज योजना (Modified Special Incentive Package Scheme: M-SIPS):** घरेलू विनिर्माण में नुकसान की भरपाई के लिए, M-SIPS विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) से बाहर स्थित इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग के लिए 25% और SEZ क्षेत्रों के लिए 20% की पूंजीगत सब्सिडी प्रदान करती है।
 - **अधिमान्य बाजार पहुँच (Preferential Market Access: PMA):** यह सरकारी परियोजनाओं के लिए खरीद (न्यूनतम 30%) के दौरान स्थानीय रूप से निर्मित उत्पादों को वरीयता दिए जाने को गारंटी प्रदान करने वाली योजना है।
 - **इलेक्ट्रॉनिक्स विकास कोष (Electronics Development Fund: EDF):** PMP फंड ऑफ फंड्स (वेंचर फंड्स में निवेश, जो उद्यमों में निवेश करता है) है, इसे स्टार्टअप्स और नवाचारों को बढ़ावा देने और 'नेट जीरो इम्पैक्ट्स' के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लॉन्च किया गया।
 - **चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रम (Phased Manufacturing Programme: PMP):** PMP का उद्देश्य मोबाइल हैंडसेट और कंपोनेंट मैनुफैक्चरिंग के क्षेत्र में घरेलू मूल्य संवर्द्धन को उत्तरोत्तर बढ़ाना है।
 - **भारत से वस्तु निर्यात योजना (Merchandise Export From India Scheme: MEIS):** स्थानीय रूप से निर्मित उत्पादों जैसे रेफ्रिजरेटिंग इक्विपमेंट कंप्रेसर्स, पूर्णतः ऑटोमेटिक वाशिंग मशीन और कलर टेलीविजन सेट पर अधिकतम 2% से 5% तक का प्रोत्साहन।
- राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक्स नीति, 2019-** यह नीति राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक नीति 2012 की जगह लेगी। इस नीति का उद्देश्य इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम डिजाइन व विनिर्माण के लिए भारत को एक वैश्विक केंद्र के रूप में विकसित करना।
- इलेक्ट्रॉनिक्स के उप-क्षेत्रों में विनिर्माण को बढ़ावा देकर वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी ESDM (Electronic System Design and manufacturing) क्षेत्र के लिए अनुकूल परिवेश का निर्माण करना, ये क्षेत्र हैं-
 - रक्षा क्षेत्र आदि के लिए आवश्यक रणनीतिक इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग।
 - कंपोनेंट डिजाइन
 - सेमीकंडक्टर फैब्रिकेशन उदाहरण- फैबलेस डिजाइन
 - औद्योगिक इलेक्ट्रॉनिक्स उदाहरण - स्मार्ट एनर्जी मीटर
 - स्मार्ट कार्ड, माइक्रो-एटीएम।
 - साथ ही इलेक्ट्रॉनिक के नेतृत्वकर्ता क्षेत्रों यथा 5G, AI, मशीन लर्निंग,

वर्चुअल रियलिटी, ड्रोन, फोटोनिक्स, नैनो तकनीक आदि में अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देना, इस नीति के मुख्य उद्देश्यों में से है।

प्रोत्साहन योजनाएँ

- **ऋण अनुदान योजना (इंटरैस्ट सबवेंशन स्कीम)-** प्लांट एंड मशीनरी हेतु 1000 करोड़ तक के ऋण के लिए 4% की ब्याज सब्सिडी प्रदान करेगी।
- क्रेडिट डिफॉल्ट गारंटी फंड, बैंकों को प्लांट और मशीनरी पर 75% तक डिफॉल्ट गारंटी प्रदान करेगा।
- चिप एवं चिप कंपोनेंट के लिए IPs के विकास एवं अधिग्रहण को बढ़ावा देने हेतु एक सॉवरन पेटेंट फंड गठित करना प्रस्तावित है।
- 5G, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), बिग डेटा, मशीन लर्निंग (ML) इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) आदि जैसे उभरते प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में स्टार्ट अप को समर्थन प्रदान करना।

औद्योगिक विकास की गति बढ़ाने के लिए सुझाव (Suggestions to Accelerate Pace of Industrial Growth)

औद्योगिकीकरण की बाधाओं को दूर करने तथा औद्योगिक विकास की दर को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:-

- **सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता में वृद्धि (Increased of Public Sector Efficiency)-** सार्वजनिक क्षेत्र की कुशलता का विकास किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में आधारभूत पूंजीगत उद्योगों जैसे- लोहा और इस्पात, भारी मशीनरी आदि उद्योगों का अधिक कुशलता से विकास किया जाना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र के उचित दिशा में विस्तार के फलस्वरूप देश के औद्योगिकीकरण को एक मजबूत ढाँचा प्राप्त होगा।
- **निजी क्षेत्र का विकास (Development of Private Sector)-** सरकार को निजी क्षेत्र को पर्याप्त सुविधायें देनी चाहिए। इसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र के उद्योगपति नये-नये उद्योगों की स्थापना कर सकेंगे। ये पुराने उद्योगों का विकास करने में समर्थ होंगे। निजी क्षेत्र को अनुसंधान तथा आधुनिकीकरण के लिये विशेष सहायता दी जानी चाहिए।
- **विदेशी पूंजी को प्रोत्साहन (Encouragement to Foreign Capital)-** देश में पूंजी तथा आधुनिक तकनीक की बहुत कमी है। अतएव विदेशी पूंजी के निवेश को अनुकूल शर्तों पर देश में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप औद्योगिक विकास सम्भव होगा। विदेशी सहयोग से स्थापित किये गये उद्योगों में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप देश में नये उद्योग स्थापित किये जा सकेंगे।
- **पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन (Encouragement to Capital Formation)-** औद्योगिकीकरण के लिए अधिक पूंजी आमन्त्रित करने के लिए पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ सुविधायें दी जा सकती हैं जैसे- करों में छूट। करों में अधिक छूट देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। लोगों को नये उद्योगों के शेयर खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- **आधारभूत संरचना का विकास (Development of Infrastructure)-** भारत में औद्योगिक विकास की दर को बढ़ाने के लिए आधारभूत संरचना जैसे, यातायात तथा संचार के साधनों का विकास किया जाना चाहिए। उद्योगों को काफी मात्रा में शक्ति उपलब्ध कराने के लिए वर्तमान शक्ति साधनों का विस्तार किया जाना चाहिए। सरकार तथा निजी क्षेत्र को इन साधनों के विकास पर अधिक निवेश करना चाहिए। इसके लिए विदेशी पूंजी को भी आमन्त्रित किया जा सकता है। शक्ति साधनों का अधिक विकास होने से उद्योगों को निरन्तर चलाया जा सकता है।

- **आधुनिक मशीनों का आयात (Import of Modern Machines)** – विदेशों से आधुनिक मशीनों, कलपुर्जों तथा आवश्यक कच्चे माल के आयात की अनुमति दी जानी चाहिए। इसके लिये आवश्यक विदेशी मुद्रा की स्वीकृति भी दी जानी चाहिए। बैंकों व औद्योगिक वित्त संस्थानों को इन मशीनों को खरीदने के लिए कम ब्याज पर लम्बे समय के लिये ऋण देने चाहिए।
- **प्राकृतिक संसाधनों का उचित विकास (Proper Development of Natural Resources)** – देश के प्राकृतिक संसाधनों का उचित विकास औद्योगीकरण की प्रवृत्ति के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। भारत में प्राकृतिक संसाधन काफी मात्रा में उपलब्ध हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हो पाया है। प्राकृतिक संसाधनों के विकास के फलस्वरूप नये उद्योगों की स्थापना सम्भव हो सकेगी।
- **कृषि-आधारित उद्योगों का विकास (Development of Agro-Industries)** – अधिकतर उद्योगों जैसे- चीनी, सूती कपड़ा, जूट आदि को कच्चा माल कृषि से ही मिलता है। इसलिए कृषि का अधिक विकास किया जाना चाहिए। कृषि के विकास के फलस्वरूप कृषि के लिए आवश्यक उद्योगों जैसे- रसायन, कीटनाशक दवाईयाँ आदि के उद्योगों का विकास होगा।
- **निर्यात उद्योगों का विकास (Development of Export Industries)** – देश में उन उद्योगों के विकास के विशेष प्रबन्ध किये जाने चाहिए जिनके उत्पादन से निर्यात की काफी सम्भावनायें हैं। इसके फलस्वरूप एक तो देश का औद्योगीकरण हो सकेगा तथा दूसरे विदेशी विनिमय प्राप्त किया जा सकेगा।
- **औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace)** – देश के औद्योगिक विकास के लिये औद्योगिक शान्ति की बहुत आवश्यकता है। मालिकों तथा मजदूरों के सम्बन्ध ठीक होने चाहिए मजदूरों को उनकी मेहनत का पूरा वेतन मिलना चाहिए। औद्योगिक शांति के फलस्वरूप हड़तालों तथा तालाबन्दी के कारण होने वाली हानि से बचा जा सकेगा तथा उद्यमियों को नये उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।
- **प्रबंधकीय तथा तकनीकी शिक्षा का प्रसार (Expansion of Managerial and Technical Education)** – भारत में उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक है कि देश में प्रबंधकीय तथा तकनीकी शिक्षा का प्रसार किया जाये। योग्य प्रबंधकों तथा इंजीनियरों का औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

उद्योगों से संबंधित संस्थाएँ (Institutions Related to Industries)

भारतीय खान ब्यूरो (Indian Bureau of Mines)

राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण और अपीलीय न्यायाधिकरण

एनसीएलटी और एनसीएलएटी दोनों ही को कंपनी अधिनियम 2013 के तहत बनाया गया है जिसने कंपनी अधिनियम 1956 का स्थान लिया है, अधिनियम 12 सितंबर, 2013 से प्रभावी है।

1 जून, 2016 को केंद्रीय निगम मामलों के मंत्रालय (एमसीए) ने राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण (एनसीएलटी) और राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण (एनसीएलएटी) के संविधान को तत्काल प्रभाव से अधिसूचित कर दिया।

सुप्रीम कोर्ट के जज (सेवानिवृत्त) जस्टिस एसजे मुखोपाध्याय को एनसीएलटी का अध्यक्ष बनाया गया है जबकि जस्टिस एमएम कुमार, जज (सेवानिवृत्त)

को एनसीएलटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। आरंभ में एनसीएलटी की ग्यारह शाखाएँ होंगी, दिल्ली में दो और अहमदाबाद, प्रयागराज, बेंगलुरु, चंडीगढ़, चेन्नई, गुवाहाटी, हैदराबाद, कोलकाता और मुंबई प्रत्येक में एक-एक, एनसीएलटी के संविधान बनने के साथ ही कंपनी अधिनियम 1956 के तहत गठित कंपनी विधि बोर्ड (सीएलबी) को भंग कर दिया गया।

राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण (एनसीएलटी)

एनसीएलटी, कंपनी अधिनियम, 2013 या किसी अन्य कानून के माध्यम से उसे दी गई शक्तियों और कार्यों को करेगा एवं उनका निर्वहन करेगा, इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जो उच्च न्यायालय का जज हो या पाँच वर्षों तक इस पद पर रह चुका हो, न्यायिक सदस्य के तौर पर कोई व्यक्ति नियुक्त किए जाने के योग्य तब होगा जब वह-

- उच्च न्यायालय का जज हो, या रह चुका हो।
- कम-से-कम पाँच वर्षों से जिला जज हो या रह चुका हो।
- एक अदालत में बीते दस वर्षों से वकील हो।

एन.सी.एल.टी के कार्य

कंपनी अधिनियम 2013 ने एन.सी.एल.टी को सशक्त बनाया गया है कि अगर किसी ने कंपनी का पंजीकरण गैर-कानूनी तरीके से प्राप्त किया है तो यह, उस कंपनी के पंजीकरण को रद्द कर सकती है।

- किसी कंपनी के शेयर या सिक्क्योरिटी के हस्तांतरण संबंधी विवाद के शिकायत की भी सुनवाई करती है।
- 2013 के कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत यदि 100 व्यक्ति कंपनी के संबंध में कोई प्रार्थना करते हैं तो एन.सी.एल.टी. कंपनी की जाँच करवा सकती है। यह जाँच भारत या भारत के बाहर कहीं भी की जा सकती है।
- किसी विशेष अवस्था में ही जाँच के दौरान कंपनी की संपत्ति को सीलबंद किया जा सकता है।
- एन.सी.एल.टी को कंपनी अधिनियम की धारा 459 के तहत यह अधिकार है कि यदि कोई कंपनी सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र में परिवर्तित हो रही है तो वह उस पर विशेष शर्तें या प्रतिबंध या कुछ विषय ही उसे अनुदान में दिए जाते हैं।

राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण (एनसीएलएटी)

एनसीएलएटी का गठन न्यायाधिकरण (एनसीएलटी) के आदेशों के खिलाफ की जाने वाली अपील की सुनवाई के लिए किया गया है।

- इसका अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जो सुप्रीम कोर्ट का जज हो या पूर्व जज रह चुका हो या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हो।
- एनसीएलएटी का न्यायिक सदस्य वह व्यक्ति होगा जो उच्च न्यायालय का जज हो या रह चुका हो या न्यायाधिकरण (एनसीएलटी) का पांच वर्षों से न्यायिक सदस्य हो।
- एक तकनीकी सदस्य वह व्यक्ति होगा, जिसने क्षमता और ईमानदारी सिद्ध की हो और जिसे कानून, औद्योगिक वित्त, औद्योगिक प्रबंधन या प्रशासन, औद्योगिक पुनर्निर्माण, निवेश, एकाउंटेंसी, मजदूर मामले या प्रबंधन से संबंधित ऐसे अन्य विषयों, मामलों, पुनरुद्धार, पुनर्वास और कंपनियों के समापन के प्रबंधन में विशेष ज्ञान और पच्चीस वर्षों से कम का अनुभव न हो।

एनसीएलटी के अध्यक्ष और एनसीएलएटी के अध्यक्ष एवं न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श के बाद ही की जाएगी।

एकाधिकार जाँच आयोग (Monopolies Inquiry Commission)

अप्रैल 1964 में, भारत सरकार ने 'निजी क्षेत्र में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण के अस्तित्व और प्रभाव की जाँच करने के लिए' एकाधिकार जाँच आयोग (Monopolies Inquiry Commission) की नियुक्ति की। इस आयोग द्वारा उद्योग के क्षेत्र में आर्थिक शक्ति संकेन्द्रण की जाँच की गई। इस आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर, एकाधिकार तथा प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP अधिनियम), 1969 अधिनियमित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य ऐसी सभी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना और विस्तार को नियंत्रित करना था, जिनके पास एक विशेष सीमा से अधिक परिसंपत्ति थी।

राष्ट्रीय श्रम आयोग

प्रथम राष्ट्रीय श्रम आयोग की स्थापना 24 दिसंबर, 1966 को डॉ. गजेन्द्रगढ़कर की अध्यक्षता में की गई थी। इसका उद्देश्य 1947 से श्रम और श्रम विधानों की जीवन स्थितियों का अध्ययन और समीक्षा करना था। 1992 में आयोजित भारतीय श्रम सम्मेलन इस सिफारिश पर दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग को 33 वर्षों के लंबे अंतराल के आधार पर अस्तित्व में लाया गया था। इसमें दस सदस्य शामिल थे।

अपनी सिफारिश के लिए रूपरेखा विकसित करते हुए, आयोग ने तेजी से तकनीकी परिवर्तन, अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण, व्यापार और उद्योग का उदारीकरण, भविष्य के श्रम बाजार की जरूरतों और मांगों के अनुरूप मौजूदा कानूनों को लाने की आवश्यकता वाले उभरते आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखा। विभिन्न कानूनों के विस्तृत अध्ययन और समीक्षा, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए छाता कानून, वैश्वीकरण और इसके प्रभाव, सामाजिक सुरक्षा, महिलाओं और बाल श्रम, कौशल विकास प्रशिक्षण और श्रमिकों की शिक्षा के लिए अध्ययन समूहों का गठन किया गया।

आयोग ने श्रम प्रबंधन संबंध, मजदूरी, व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य, छोटे उद्यम, काम के घंटे, छुट्टी और कार्य स्थल, बाल श्रम और असंगठित क्षेत्र की अन्य कामकाजी स्थिति आदि पर नए श्रम कानूनों की सिफारिश की।

आयोग ने सुझाव दिया कि किसी भी उद्योग में श्रमिकों के लिए मजदूरी दरों को तय करने के लिए किसी भी मजदूरी बोर्ड की आवश्यकता नहीं है। इसने कहा कि प्रत्येक राज्य या केंद्रशासित प्रदेश के पास मजदूरी की न्यूनतम दरें तय करने का अधिकार होना चाहिए जो राष्ट्रीय स्तर से कम नहीं हो। इसने बाल श्रम (रोकथाम और शिक्षा) अधिनियम को अधिनियमित करके बाल श्रम को शिक्षा से जोड़ने की भी सिफारिश की। आयोग ने सिफारिश की कि असंगठित क्षेत्र में एक नीतिगत ढाँचा होना चाहिए जो पीढ़ी और नौकरियों की सुरक्षा, नौकरियों तक पहुँच, गरीबों के शोषण से सुरक्षा और संगठन की कमी, मनमाने या सनकी बर्खास्तगी के खिलाफ सुरक्षा और न्यूनतम मजदूरी तक पहुँच सुनिश्चित करता है। यह भी सुझाव दिया कि कल्याण की एक प्रणाली में काम, भविष्य निधि, चिकित्सा देखभाल, पेंशन लाभ, मातृत्व लाभ, बाल देखभाल आश्रय और बुढ़ापे में सहायता के दौरान लगी चोटों के मुआवजे तक पहुँच शामिल होनी चाहिए।

उद्योग तथा आंतरिक व्यापार संवर्द्धन विभाग [DPIIT Department for Promotion of Industry and Internal Trade (DPIIT)]

औद्योगिक नीति तथा संवर्द्धन विभाग (DIPP) का नाम परिवर्तित करके उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्द्धन विभाग (DPIIT) कर दिया गया है। इस विभाग को

स्टार्ट-अप से जुड़े मुद्दों से निपटने एवं अन्य अधिदेशों के साथ-साथ व्यवसायों के लिए व्यापार करने की सुगमता बढ़ाने संबंधी अधिदेश प्राप्त है।

संबंधित तथ्य

- DIPP (वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के अंतर्गत) की स्थापना वर्ष 1955 में की गयी थी तथा वर्ष 2009 में औद्योगिक विकास विभाग के साथ विलय करके इसे पुनर्गठित किया गया।
- इसके द्वारा पूर्व में विदेशी व्यापार पर ध्यान केंद्रित किया जाता था, जबकि आंतरिक व्यापार (खुदरा व्यापार, व्यापारियों और उनके कर्मचारियों के कल्याण सहित) से संबंधित मामले उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र के तहत आते थे।
- इस कदम के साथ इस विभाग के माध्यम से एक ही मंत्रालय, यथा वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय आंतरिक तथा बाह्य व्यापार दोनों का प्रबंधन करेगा।
- इस निकाय के अन्य कार्यों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं-
 - औद्योगिक नीति और रणनीतियों का निर्माण करना।
 - औद्योगिक विकास की निगरानी करना।
 - FDI संबंधी नीति का निर्माण तथा उसकी निगरानी।
 - विविध IPR's से संबंधित नीतियों का निर्माण।
 - UN औद्योगिक विकास संगठन के साथ समन्वय।
 - निम्नलिखित कानूनों का कार्यान्वयन यथा विस्फोटक अधिनियम 1984, नमक उपकर अधिनियम, 1953, पेटेंट अधिनियम 1970, वायलर अधिनियम 1923 इत्यादि।

औद्योगिक विकास के नवीन प्रेरक कार्यक्रम (New Motivational Programme for Industrial Development)

मेक इन इंडिया (Make in India)

बहुराष्ट्रीय व घरेलू कंपनियों को भारत में ही अपने उत्पाद बनाने को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने सितंबर, 2014 में 'मेक इन इंडिया' का शुभारंभ किया। यह पहल न सिर्फ विनिर्माण, बल्कि प्रासंगिक आधारभूत संरचना और सेवा क्षेत्रों में भी उद्यमशीलता को बढ़ावा देने के लिए की गई। इस पहल के मुख्य गुण नीचे दिए गए हैं।

- दृष्टिकोण-** भारत में पूँजीगत व प्रौद्योगिकी निवेश, दोनों को आकर्षित करना, ताकि देश चीन और अमेरिका से भी आगे निकलकर दुनिया की सबसे अधिक एफडीआई वाला देश बन जाए।
- उद्देश्य-** अर्थव्यवस्था के 25 क्षेत्रों में रोजगार सृजन और कौशल विकास पर जोर। इसमें ऑटोमोबाइल, उड्डयन, जैव-प्रौद्योगिकी, रक्षा विनिर्माण, विद्युत मशीनरी, खाद्य प्रसंस्करण, तेल व गैस, दवाई, आदि क्षेत्र शामिल हैं।
- इस पहल के अन्य लक्ष्य -** उच्च गुणवत्ता वाले मानकों और स्थिरता के आयामों को लागू करना। इसमें अपनाई गई नीतियाँ हैं- कारोबार को आसान बनाना, पुराने पड़ चुके कानूनों से इनको दूर रखना, 100 स्मार्ट सिटी बनाना, पीएसयू कंपनियों का विनिवेश करना, युवाओं के लिए कौशल और रोजगार की व्यवस्था करना, आदि। इन पहलों के सामने बड़ी चुनौतियाँ हैं- एक स्वस्थ कारोबारी माहौल को बनाना, गैर-अनुकूल कारकों को दूर करना, भारतीय एमएसएमई कंपनियों पर अधिक ध्यान देना, विश्व स्तरीय शोध व विकास की कमी को दूर करना और चीन के मेड इन चाइना अभियान से इनकी तुलना करना।

यह पहल चार स्तंभों पर आधारित है- नई प्रक्रियाएं, नए बुनियादी ढांचे, नए क्षेत्र और नई सोच। इस संदर्भ में भारत सरकार ने ये महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

- सूचना के प्रसार के लिए और निवेशकों से वार्तालाप के लिए एक संवादमूलक पोर्टल का बनाया जाना, जिसका उद्देश्य देश में निवेश अवसरों और परिदृश्य के बारे में जागरूक करना है, ताकि विदेशी बाजार में भारत को पसंदीदा निवेश गंतव्य के रूप में बढ़ावा दिया जा सके और वैश्विक एफडीआई में भारत की हिस्सेदारी बढ़ सके।
- राष्ट्रीय निवेश को प्रोत्साहित और सरलीकृत करने की एजेंसी के रूप में इन्वेस्ट इंडिया की स्थापना।
- देश में निवेश को बढ़ावा देने के उद्देश्य के साथ मेक इन इंडिया पहल के तहत एक पूर्णकालिक इन्वेस्टमेंट फैसिलिटेशन सेल (निवेश प्रोत्साहन केंद्र) की स्थापना की गई, जिसका मुख्य काम है- सभी निवेश प्रश्नों को जानने-समझने में मदद करना, साथ ही संभावित निवेशकों की तरफ से विभिन्न एजेंसियों से संपर्क करना।
- राष्ट्रीय विनिर्माण नीति, 2011 में जैसा परिकल्पित है, उसके हिसाब से मेक इन इंडिया सकल घरेलू उत्पाद में 25 प्रतिशत का योगदान और 2022 तक 10 करोड़ नौकरियाँ दे सकता है।
- भारत में कामगारों/बेरोजगारों के हुनर को बढ़ावा देने के लिए कई सारे कदम उठाए गए हैं, ताकि वे उचित रोजगार पा सकें।
- रचनात्मक संभावना के दोहन और उद्यमशीलता को बढ़ावा देने के क्रम में स्टार्ट-अप इंडिया और स्टैंड अप इंडिया अभियान की घोषणा की गई।
- भारत में नवाचार और स्टार्ट-अप्स को बढ़ावा देने के लिए एक नवाचार प्रोत्साहन मंच शुरू किया गया, जिसका नाम एआईएम (अटल इनोवेशन मिशन) है। इसके अलावा, एक तकनीकी-वित्तीय, सुगमता कार्यक्रम लागू किया गया है, जिसका नाम एसईटीयू (सेल्फ एम्प्लॉयड एंड टैलेंट यूटिलाइजेशन) है।
- लघु व मध्यम उद्यम क्षेत्रों की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने और स्टार्ट अप्स एवं उद्यमशीलता को बढ़ावा देने के लिए मेक इन इंडिया के जरिये कई कदम उठाए गए हैं-
 - एमएसएमई क्षेत्र के उद्यम को वित्त पोषण के लिए सिडबी (SIDBI) के तहत 'इंडिया एम्पाइरेशन फंड' की भी स्थापना की गई।
 - उदारशर्तों पर भारतीय एमएसएमई कंपनियों को शर्त आधारित अल्पावधि ऋण व आभासी इक्विटी देने के लिए सिडबी (एसआईडीबीआई) मेक इन इंडिया लोन फॉर स्मॉल इन्टरप्राइजेज (स्माइल) का शुभारंभ किया गया।
 - सूक्ष्म इकाइयों को ऋण देने के लिए वाणिज्यिक बैंक/एनबीएफसी/को-ऑपरेटिव बैंकों के विकास व पुनर्वित्तीयन के लिए माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट रीफाइनेंस एजेंसी (मुद्रा) बैंक की स्थापना की गई। मुद्रा कई अन्य सेवाएँ उपलब्ध कराती है, जैसे- वित्तीय साक्षरता और सूचना एवं कुशलता की खाई को भरने का काम। यह उसका 'क्रेडिट प्लस दृष्टिकोण' है।
- नियामक बोझ घटाने और अनुपालन लागत कम रखने के लिए स्व-प्रमाणन पर आधारित एक अनुपालन तंत्र बनाना।
- पूरे स्टार्ट-अप पारिस्थितिकी के लिए एक संपर्क-सूत्र बने, ज्ञान का आदान-प्रदान हो और पूँजी की प्राप्ति हो, इसके लिए स्टार्ट-अप इंडिया हब की स्थापना करना।
- मोबाइल ऐप और पोर्टल का लगातार इस्तेमाल होना, ताकि श्रेयधारकों और नियामक संस्थानों व सरकार से बातचीत के लिए स्टार्ट-अप को एक मंच मिले।
- सार्वजनिक खरीद के सरल कायदे-कानून बनाना।
- कम लागत पर पेटेंट परीक्षा की तेजी से निगहबानी और कानूनी सहायता प्रदान करना, ताकि आईपीआर (बौद्धिक संपदा अधिकार) के प्रति जागरूकता फैले।
- निकासी के तेज और आसान नियम।
- 10,000 करोड़ रुपये की पूँजी के साथ फंड ऑफ फंड्स के जरिये वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- उद्यमशीलता को प्रेरित करने के लिए क्रेडिट गारंटी फंड।
- पूँजीगत लाभ कर में छूट।
- तीन वर्षों के लिए आयकर छूट।
- एसईटीयू (सेल्फ-एम्प्लॉयमेंट एंड टैलेंट यूटिलाइजेशन) के साथ एआईएम (अटल इनोवेशन मिशन) कार्यक्रम का आरंभ, ताकि विश्व स्तरीय इनोवेशन हब, स्टार्ट-अप कारोबारों और दूसरी स्व-रोजगार गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक मंच मिले, खास तौर पर तकनीक संचालित क्षेत्रों में।
- शोध व विकास प्रयासों व उनके पोषण को बढ़ावा देने के जरिये सफल इनोवेशन की प्राप्ति हो, इसके लिए राष्ट्रीय संस्थानों में इनोवेशन सेंटर बनाना।
- 7 नए शोध पार्कों (आईआईटी मद्रास के शोध पार्क की तर्ज पर) स्थापना करना।
- जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्टार्ट-अप को बढ़ावा देना।
- विद्यार्थियों के लिए इनोवेशन केंद्रित कार्यक्रमों को शुरू करना, ताकि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवाचार की संस्कृति को बढ़ावा मिले।

ई-बिज पोर्टल के माध्यम से एकीकृत करना

'ई-बिज पोर्टल' कंपनियों की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग को प्लेटफार्म प्रदान करेगी। जिससे विभागीय रूकावटों, जैसे 'अनावश्यक कागजी कार्यवाही' से बचा जा सकेगा। यह लाइसेंस, परमिट व विनियमों से संबंधित सूचनाएँ एक प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध कराएगा। इसके परिणामस्वरूप व्यापार करना सुगम होगा।

इस पोर्टल के माध्यम से कोई भी स्थायी एकाउंट नंबर (PAN), कर कटौती और संग्रहण खाता संख्या (Tax deduction Account Number- TAN) कर्मचारी निधि (Employees Provident Fund Organization) कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employee's State Insurance Corporation) के लिए आवेदन कर सकता है।

यह एक सिंगल विंडो सेवा की तरह काम करते हुए आसान, 'गवर्नमेंट टू बिजनेस' (G2B) सेवा प्रदान करने की प्रणाली है।

गवर्नमेंट टू बिजनेस पोर्टल (G2B)

भारत सरकार ने औद्योगिक नीति तथा संवर्धन विभाग में एक 'गवर्नमेंट टू बिजनेस पोर्टल' (G2B) की स्थापना के लिए कदम उठाए हैं। जो निवेशकों को

स्टार्ट-अप इंडिया (Start-Up India)

जनवरी-2016 में स्टार्ट अप इंडिया स्टैंड-अप इंडिया के नारे के साथ भारत सरकार ने स्टार्ट अप इंडिया योजना की शुरुआत की। इसका उद्देश्य है- नवाचार को बढ़ावा देने के लिए एक मजबूत पारिस्थितिकी विकसित करना, संवहनीय आर्थिक विकास करना और बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर सृजित करना। तकनीकी क्षेत्र के अलावा स्टार्ट-अप अभियान ने दूसरे क्षेत्रों में भी धावा बोला है, जिनमें कृषि, विनिर्माण, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा शामिल हैं। इसके अलावा, इसने अपनी पहुँच स्तर- 1 से स्तर-2 के शहरों तक पहुँचाई, जिनमें अर्द्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्र भी शामिल हैं। कंपनियों के लिए प्रस्तावित कार्य-नीति नीचे दी गई है-

सेवाएँ प्रदान करने के लिए वन स्टॉप शॉप का कार्य करेगा जिससे देश में व्यापार अनुकूल परिवेश बनाया जाएगा, जिसके लिए निवेशकों, उद्योगों और व्यापार में कुशल, सुविधाजनक, पारदर्शी और समन्वित इलेक्ट्रॉनिक सेवाएँ प्रदान की जाएगी। इस पोर्टल का उद्देश्य व्यापार को उसके पंजीकरण से लेकर उसके पूरे जीवन चक्र तक एक ही इलेक्ट्रॉनिक खिड़की से अनुमोदन, मंजूरी और अनुमति, रिपोर्टिंग, भुगतान दाखिल करने और अनुपालन जैसी सुविधाएँ प्रदान करना है। जी2बी का लक्ष्य सरकार द्वारा केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय तीनों स्तरों पर संपूर्ण सेवा पोर्टफोलियो उपलब्ध कराना है। इससे देश में व्यापारिक परिवेश पर एक स्पष्ट और सकारात्मक असर पड़ेगा। प्रस्तावित ई-बिज 4 चरण वाले विकासक्रम अंतर्राष्ट्रीय मॉडल पर आधारित है। ये चार चरण हैं- सूचना, परस्पर संपर्क, सौदे और इलेक्ट्रॉनिक सेवाओं के प्रावधान में पोर्टल कार्यक्रम का समन्वय। आरंभ में छह केन्द्रीय मंत्रालय और चार राज्यों आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और हरियाणा को आरंभिक प्रायोगिक परियोजना नई गतिविधियों तथा भौगोलिक क्षेत्रों को कवर करने में सक्षम होगी। औद्योगिक नीति तथा संवर्द्धन विभाग ने ई-बिज प्रायोगिक परियोजना की जिम्मेदारी राष्ट्रीय स्मार्ट प्रशासन संस्थान को सौंप दी है।

औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण गलियारों का विकास

दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारा (Delhi-Mumbai Industrial Corridor)

दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारा परियोजना (डीएमआईसीपी) को पश्चिमी समर्पित मालवहन गलियारे (डब्ल्यूडीएफसी) के दोनों ओर वैश्विक विनिर्माण एवं निवेश गंतव्य के रूप में विकसित किया जा रहा है और 2011 के बाद से इसमें महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। डीएमआईसी औद्योगिक नगरों को विश्व के अन्य हिस्सों में स्थापित किए गए औद्योगिक नगरों के मानदंडों के अनुरूप बनाया जा रहा है। इस परियोजना के विकास, समन्वय और क्रियान्वयन के लिए एक विशेष उद्देश्य संवाहक (एसपीवी) के साथ एक संस्थागत ढाँचा दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारा विकास निगम लिमिटेड (डीएमआईसीडीसी) का गठन किया गया।

चेन्नई-बेंगलुरु औद्योगिक गलियारा (C-BIC)

चेन्नई-बेंगलुरु औद्योगिक गलियारा (सीबीआईसी) का उद्देश्य सर्वांगीण दृष्टिकोण रखते हुए बुनियादी ढांचागत समस्याओं को दूर करना है। साथ ही सीबीआईसी से जुड़े दोनों राज्यों की विशेषताओं का पूरा लाभ उठाना है।

बेंगलुरु-मुंबई आर्थिक गलियारा (B-MEC)

बेंगलुरु-मुंबई आर्थिक गलियारा (बीएमईसी) का उद्देश्य एक सुनियोजित और संसाधन संपन्न औद्योगिक केंद्र विकसित करना है जहाँ विश्व स्तर की संपर्क सुविधाएँ हो और जिनसे नए प्रयोग, विनिर्माण, रोजगार सृजन को प्रोत्साहन मिलने के साथ ही दोनों ही राज्यों को संसाधन की सुरक्षा मिल सके।

अमृतसर-कोलकाता आर्थिक गलियारा (A-CEC)

उत्तरी और पूर्वी भारत के घनी आबादी वाले राज्यों में औद्योगिक विकास को बल देने के लिए सरकार अमृतसर-कोलकाता आर्थिक गलियारा कॉरीडोर (ए.के.आई.सी) बनाने का काम शुरू करना चाहती है। इसे ईस्टर्न डेडीकेटेड फ्रेट कॉरीडोर (ईडीएफसी) के आस-पास एक मेरुदंड के तौर पर तैयार किया जाएगा।

विशाखापत्तनम-चेन्नई औद्योगिक गलियारा (V-CIC)

विशाखापत्तनम-चेन्नई औद्योगिक गलियारा (वीसीआईसी) भारत के पहले समुद्र तटीय गलियारा पूर्वी समुद्र तटीय आर्थिक गलियारा (ईसीईसी) का एक मुख्य हिस्सा है। वीसीआईसी स्वर्णिम चतुर्भुज के सीध में बनाया जा रहा है जो भारत की 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zone)

(SEZ) विशेष रूप से आरक्षित भौगोलिक क्षेत्र होते हैं, जिन्हें निजी क्षेत्र या सार्वजनिक क्षेत्र के विकासकर्ता द्वारा या सार्वजनिक-निजी भागीदारी मॉडल पर विकसित किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में कार्य करने वाली इकाइयाँ देश में संचालित इकाइयों से भिन्न नियमों के अंतर्गत कार्य करती है। एस.ई.जेड. में कार्यरत इकाइयाँ विदेशी मुद्रा अर्जक होंगी। ये इकाइयाँ न्यूनतम निर्यात निष्पादन आवश्यकता को पूरा करने में सहायक होंगी।

भारत की विदेश नीति को उदारीकृत और प्रोत्साहित करने के लिए अप्रैल, 2000 में आर्थिक क्षेत्र नीति की घोषणा की गई है। इस नीति को पहले से अधिक प्रभावी बनाने के लिए विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र अधिनियम 2005 पारित किया गया। यह अधिनियम 2006 से प्रभावी हुआ।

एस.ई.जेड. के उद्देश्य

- एस.ई.जेड. का उद्देश्य निर्यात उन्मुख विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करना है।
- ईज ऑफ़ डूइंग बिजनेस के माध्यम से औद्योगिक कौशल और संसाधनों का विकास करना है।
- इनसे पारस्परिक रूप से कम विकसित क्षेत्र का भी विकास होगा।
- इसके अलावा सामाजिक-आर्थिक विकास में असमानता को कम किया जा सकेगा।
- औद्योगीकरण और शहरीकरण में वृद्धि भी हो सकेगी।

एस.ई.जेड. क्यों बनाया गया-

एस.ई.जेड. सहायक उत्पादन इकाइयों की सहायता के लिए सुविधाएँ मुहैया करवाता है, जिससे उत्पादन की गुणवत्ता अंतर्राष्ट्रीय स्तर के समकक्ष हो सकती है। ये पूरे देश में अवसरचर्चात्मक और अन्य सुविधाएँ सुनिश्चित करते हैं। इसके अलावा वैश्विक स्तर की अवसरचर्चा की स्थापना के परिणामस्वरूप व्यवसाय की लागत में कमी आयेगी और उद्योग वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्द्धात्मक बनेगा। एस.ई.जेड. अवसरचर्चा में विद्युत का प्रतिस्पर्द्धी दरों पर उपलब्ध होना, अनुमोदित दरों पर पूंजी की उपलब्धता, जहाजरानी सम्बन्धी विलम्ब की समस्या को रोकने के लिये सड़क परिवहन लिंक और लोकाचार श्रम कानून आदि शामिल है। एस.ई.जेड. कर मुक्त परिसर होते हैं, अतः ये व्यापार संचालन, करों और टैरिफ से सम्बद्ध गतिविधियों के तहत विदेशी क्षेत्र माने जाते हैं।

एस.ई.जेड. संबंधी आपत्तियाँ-

- कुछ अर्थशास्त्रियों की एस.ई.जेड. संबंधी निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं-
- एस.ई.जेड. एकतरफा और असंतुलित प्रोत्साहनों द्वारा निवेश आकर्षित करते हैं।
- एस.ई.जेड. राज्यों में विनिर्माण और निर्यात की मजबूत परम्परा के साथ उभरेंगे, इससे प्रादेशिक असमानता बढ़ेगी।
- नेशनल एसोसिएशन ऑफ़ साफ्टवेयर एंड सर्विस कंपनीज का तर्क है कि, यह योजना बड़ी कंपनियों की मदद करेगी न कि छोटी कंपनियों को।

- सर्वप्रथम अवधारणा सरकार को राजस्व हानि की है, जिसका अनुमान काफी रियायतें देने के कारण, लगभग 1 लाख करोड़ रुपये लगाया गया है।
- भूमि अधिग्रहण, रीयल-स्टेट का विकास करने वालों में शोषण की प्रवृत्ति में पारदर्शिता की कमी, पुनर्वास और पुनर्निर्माण की समस्या (उनके लिए निजी भूमि अधिग्रहित की गयी है) है।
- कृषि योग्य और उपजाऊ भूमि, SEZ के लिए अधिग्रहित की जायेगी जिससे कृषि उत्पादों पर असर पड़ेगा और खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी।
- निजी क्षेत्र में डेवलपर्स, SEZ को रीयल-एस्टेट परियोजना के तौर पर देखेंगे, न कि एक ढांचागत परियोजना के रूप में। इसे नकारने के लिए सरकार ने कठोर क्षेत्रीय प्रतिमान, निर्धारित किये हैं और परियोजना के पूरे होने की समयावधि तय कर दी है।

सार्वजनिक अधिप्राप्ति अर्थात् सरकारी खरीद में स्थानीय आपूर्ति को बढ़ावा देने के लिए किए गए अन्य उपाय-

“सूक्ष्म एवं लघु उद्यम (MSEs) आदेश, 2018 के संदर्भ में सार्वजनिक अधिप्राप्ति नीति:

- इसे सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (Micro, Small and Medium Enterprises Development Act, 2006) के अंतर्गत अधिसूचित किया गया था।
- इसके अंतर्गत, प्रत्येक केंद्रीय/मंत्रालय/विभाग/सार्वजनिक उपक्रम को यह आदेश दिया गया था कि वे MSEs से अपनी वार्षिक अधिप्राप्ति के 25 प्रतिशत हिस्से की खरीदारी करेंगे।
- 25 प्रतिशत के इस लक्ष्य में से SC/ST एवं महिला उद्यमियों के स्वामित्व वाले MSMEs से क्रमशः 4 प्रतिशत व 3 प्रतिशत की खरीद का उप-लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है।

गवर्नमेंट ई-मार्केटप्लेस (GeM):

- वर्ष 2016 में GeM का शुभारंभ किया गया था, इस पोर्टल के माध्यम से केंद्र व राज्य सरकार के विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों, स्वायत्त संस्थानों एवं स्थानीय निकायों द्वारा अपने सामान्य उपयोग की वस्तुओं व सेवाओं की खरीद की जाती है।
- यह पोर्टल वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के तहत संचालित होता है। इसके अतिरिक्त, इसे केंद्रीय सार्वजनिक खरीद पोर्टल के साथ एकीकृत किया गया है, जो अप्रत्यक्ष रूप से एकीकृत खरीद प्रणाली (Unified Procurement System: UPS) की ओर अग्रसर है।
- इसका उद्देश्य खरीद प्रक्रिया में पारदर्शिता लाना, ईज ऑफ़ डूइंग बिजनेस को बढ़ावा देना तथा अधिप्राप्ति की प्रक्रिया को सरल बनाना है।
- GeM के माध्यम से सरकारी खरीद को वित्त मंत्रालय द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है।

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र (MSME Sector)

भारत में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों को संयंत्र और मशीनों/उपकरणों में निवेश तथा कुल वार्षिक कारोबार के एक समग्र मानदंड के अनुसार वर्गीकृत किया गया है।

आत्मनिर्भर भारत पैकेज के तहत MSMEs क्षेत्र की वित्तीय सहायता के लिए सरकारी पहलें

आपातकालीन क्रेडिट लाइन गारंटी योजना (Emergency Credit Line Guarantee Scheme: ECLGS): इस योजना के अंतर्गत, राष्ट्रीय क्रेडिट गारंटी ट्रस्टी कंपनी लिमिटेड (National Credit Guarantee Trustee Company Limited: NCGTC) द्वारा पात्र MSMEs तथा इच्छुक मुद्रा (MUDRA)

उधारकर्ताओं को 3 लाख करोड़ रुपये तक के सपारिश्वक मुक्त स्वचालित ऋण पर गारंटीकृत आपातकालीन क्रेडिट लाइन (Guaranteed Emergency Credit Line : GECL) सुविधा के रूप में 100 प्रतिशत गारंटी कवरेज प्रदान किया जाएगा।

- GECL एक ऐसा ऋण है, जिसके लिए राष्ट्रीय क्रेडिट गारंटी ट्रस्टी कंपनी द्वारा सदस्य ऋणदाता संस्थाओं (Member Lending Institutions: MLIs) को 100 प्रतिशत गारंटी प्रदान की जाएगी।
- विस्तार वाले संभावित MSMEs की सहायता के लिए MSME क्षेत्रक में 50,000 करोड़ रुपये की इक्विटी के निवेश के लिए फण्ड ऑफ़ फंड्स बनाया गया है।
- उप ऋण हेतु क्रेडिट गारंटी योजना (Credit Guarantee Scheme for Subordinate Debt: CGSSD) इसके तहत प्रमोटरों को 20,000 करोड़ रुपये का गारंटी कवर प्रदान किया जाएगा, जो अपने संकटग्रस्त MSME में आगे इक्विटी के रूप में निवेश करने के लिए बैंकों से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम उद्यम (MSMEs) को अब “उद्यम” (Udyam) के नाम से जाना जाएगा (MSME will be known as Udyam)

- हाल ही में, सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय ने (MSMEs) के वर्गीकरण और पंजीकरण के लिए दिशा-निर्देशों के रूप में एक समेकित अधिसूचना (consolidated notification) जारी की है।
- इसके अतिरिक्त, उद्यम का पंजीकरण अब स्व-घोषणा के आधार पर ऑनलाइन कराया जा सकता है। इसके लिए किसी दस्तावेज, कागजात, प्रमाण पत्र या साक्ष्य (Proof) को अपलोड करने की आवश्यकता नहीं होगी।
- इसे सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के लिए क्रेडिट गारंटी फण्ड ट्रस्ट (Credit Guarantee Fund Trust for Micro and Small Enterprises : CGTMSE) द्वारा संचालित किया जा रहा है। CGTMSE, बैंक द्वारा प्रदत्त 90% अधीनस्थ ऋण की गारंटी प्रदान करेगा, शेष 10% को उधारकर्ता द्वारा सौंपे गए जमानत या सपारिश्वक के माध्यम से कवर किया जाएगा।
- सरकारी खरीद प्रक्रिया में भाग लेने के लिए MSMEs को सक्षम करने हेतु 200 करोड़ रुपये तक की सरकारी निविदाओं के लिए वैश्विक निविदाओं पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communications Technology: ICT) आधारित ‘चैपियंस (CHAMPIONS) पोर्टल’ इसे सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा प्रारंभ किया गया है। यह पोर्टल MSMEs को प्रारंभिक सहायता प्रदान करेगा, नए व्यावसायिक अवसरों को प्राप्त करने तथा अंततः राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय चैपियन बनने की दिशा में मार्ग-दर्शन प्रदान करेगा।
- इसे पूरी तरह से केन्द्रित लोक शिकायत निवारण तथा निगरानी प्रणाली (Centralized Public Grievance Redress and Monitoring System: CPGRAMS) व सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) मंत्रालय के अपने अन्य वेब-आधारित तंत्रों के साथ एकीकृत किया गया है।
- ANIC-ARISE चैलेंज (लघु और मध्यम उद्यमों हेतु एप्लाइड रिसर्च और इनोवेशन में अटल न्यू इंडिया चैलेंज) नामक पहल का शुभारंभ किया गया
- यह अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने तथा भारतीय स्टार्ट-अप एवं सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में वृद्धि करने हेतु अटल नवाचार मिशन द्वारा प्रारंभ की गई एक पहल है।
- इसके अंतर्गत प्रस्तावित प्रौद्योगिकी समाधान और उत्पाद के त्वरित विकास

के लिए 50 लाख रुपये तक की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

- इसे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) तथा चार मंत्रालयों, यथा-रक्षा मंत्रालय; खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा आवासन और शहरी कार्य मंत्रालय व संबंधित उद्योगों द्वारा संचालित किया जाएगा।

उद्योग क्षेत्र के लिए सरकार द्वारा शुरू की गयी कुछ पहलें

इन्वेस्ट इंडिया

- निवेश संवर्द्धन प्रयासों को सुदृढ़ करने और विदेशी निवेशकों, विशेष रूप से लघु और मध्यम उद्यमियों तथा परिवार स्वामित्व वाले विदेशी उद्यमों को संगठित रूप से तत्कालिक सेवाएँ प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने 'इन्वेस्ट इंडिया योजना' प्रारंभ किया है।
- यह वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के डीआईपीपी तथा भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल परिसंघ (फिक्की) और राज्य सरकारों का संयुक्त उद्यम है।
- भारत के लिए संबद्ध क्षेत्रों और प्रौद्योगिकियों के बारे में विशेष अध्ययन करने के लिए प्रथम संदर्भ बिंदु के रूप में काम करता है। यह निवेशकों को त्वरित सेवा प्रदान करता है।
- निवेशकों का मार्गदर्शन, उनकी सहायता करने के लिए 'इन्वेस्ट इंडिया योजना' में एक निवेशक सुविधा केंद्र स्थापित किया गया है।
- वर्ष 2020 में व्यापार एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTAD) ने इन्वेस्ट इंडिया को संयुक्त राष्ट्र निवेश संवर्द्धन पुरस्कार से सम्मानित किया।

मेक इन इंडिया

- मेक इन इंडिया पहल की शुरुआत 25 सितंबर, 2014 को केंद्र सरकार द्वारा किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य है- निवेश को बढ़ावा देना, कौशल विकास का संवर्द्धन, नवोन्मेष को प्रोत्साहित करना, बौद्धिक संपदा का संरक्षण तथा भारत को एक वैश्विक विनिर्माण केंद्र के रूप में स्थापित करना साथ ही 2022 तक 100 मिलियन रोजगार सृजन का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।



- 25 क्षेत्रों से संबंधित जानकारी वेब पोर्टल पर एफडीआई नीति, राष्ट्रीय विनिर्माण नीति, औद्योगिक संपदा अधिकार, दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारा तथा अन्य राष्ट्रीय औद्योगिक गलियारों के विवरण के साथ दी गयी है।

ई-बिज परियोजना

- इस परियोजना के तहत 'सरकार से व्यवसाय की ओर' (गवर्नमेंट टू बिजनेस 'जी 2 बी') पोर्टल स्थापित किया गया है जो निवेशकों को सेवाएँ प्रदान करने के लिए कार्य करेगा तथा व्यवसाय और उद्योग क्षेत्र की सभी आवश्यकताओं को व्यवसाय के संपूर्ण जीवन चक्र के दौरान आरंभ से अंत

तक पूरा करेगा।

कौशल विकास

- कौशल और उद्यमशील कार्यकलापों को बढ़ावा देने के लिए कौशल विकास और उद्यमिता का नया मंत्रालय स्थापित करने के पश्चात विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों/ विभागों में कौशल प्रशिक्षण से संबंधित सामान्य मापदंड तय करने का कार्य किया जा रहा है।

श्रम क्षेत्र में सुधार

- एक श्रम सुविधा पोर्टल शुरू किया गया जिससे यूनियों का ऑनलाइन पंजीकरण, यूनियों द्वारा स्वतः प्रमाणन, सरलीकृत एकल ऑनलाइन रिटर्न जमा करना, जोखिम आधारित मापदंडों के अनुसार कंप्यूटरीकृत प्रणाली के माध्यम से पारदर्शी श्रम निरीक्षण योजना की शुरुआत करना तथा 72 घंटों के भीतर निरीक्षण रिपोर्टों को अपलोड किया जाना संभव हो सके तथा शिकायतों का यथासंभव समाधान हो सके।

स्टैंड-अप इंडिया (Stand-up India)

- 2016 में आरंभ किया गया स्टैंड-अप इंडिया पोर्टल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों के लिए उद्यम संवर्धन में सहायता करने के लिए तीन स्तंभों पर आधारित डिजिटल मंच प्रदान करता है।
- यह पोर्टल केंद्रीय और राज्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति निगमों और औद्योगिक संघों से महत्वपूर्ण कड़ी भी प्रदान करता है।
- यह ऋण पूर्व चरण और परिचालन दोनों में उधारकर्ताओं को ठोस सहायता प्रदान करता है।
- इस योजना के अंतर्गत ऋण एक योजना के माध्यम से उचित रूप से सुरक्षित और क्रेडिट गारंटी द्वारा समर्थित है जिसके लिए वित्तीय सेवा विभाग (Department of Financial Service) मध्यस्थ है।
- SIDBI ग्रीनफील्ड उद्यमों के लिए 7 वर्ष तक प्रतिदेय और 10 लाख रुपये से 100 लाख तक बैंक ऋण की सुविधा प्रदान करता है।
- बैंक खातों और तकनीकी शिक्षा तक पहुँच के साथ, स्टैंड-अप इंडिया का उद्देश्य समाज में वित्तीय और सामाजिक समावेश सुगम बनाना है।

स्टार्ट-अप इंडिया (Start-Up India)

यह 2016 से भारत सरकार की एक प्रमुख पहल है, जिसका उद्देश्य

- देश में नवाचारी और स्टार्ट-अप का पोषण करने के लिए मजबूत परितंत्र का निर्माण करना है।
- संधारणीय संवृद्धि प्राप्त करना है।
- व्यापक पैमाने पर रोजगार के अवसर पैदा करना है।
- नवाचार और डिजाइन के माध्यम से आगे बढ़ने के लिए स्टार्ट-अप को सशक्त बनाना है।

इसमें स्टार्ट-अप के लिए फंड [Funds for Startups (FFS)], संग्रह की स्थापना की परिकल्पना की गयी थी, जिसके लिए SIDBI द्वारा 10,000 करोड़ रुपये का प्रबंध किया जाना था।

अभी तक उठाये गये महत्वपूर्ण कदम (Important Measures Taken So Far)

- स्टार्ट-अप हब- विभिन्न स्टार्ट-अपों के प्रश्नों की पूछताछ को संबोधित करना और उनकी सहायता करना।
- मोबाइल ऐप और पोर्टल- कार्य क्षमताएँ प्रदान करना जैसे कि वास्तविक

- समय स्टार्ट-अप मान्यता प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन करना, SEBI पंजीकृत फंड, विभिन्न विभागों द्वारा जारी की गयी अधिसूचनाएँ आदि।
- स्टार्ट-अपों द्वारा पेटेंट, ट्रेडमार्क और डिजाइनों की द्रुतगामी फाइलिंग की सुविधा प्रदान करने के लिए स्टार्ट-अप IPR सुरक्षा [Scheme for Startup IPR Protection (SIPP)] के लिए योजना।
 - स्टार्ट-अपों की सार्वजनिक खरीद में मानदंडों में ढील दी गयी।
 - नवाचार केंद्रों का निर्माण करना और अनुसंधान पार्कों की स्थापना करना।

चुनौतियाँ (Challenges)

- निरुद्ध वित्तपोषण वातावरण।
- ऐसी नवाचारी परियोजनाओं में सम्मिलित जोखिम का उच्च स्तर।
- लंबी और समयसाध्य सरकारी प्रक्रियाएँ।

आर्थिक सर्वेक्षण 2021-22 के अनुसार, नये मान्यता प्राप्त स्टार्टअप की संख्या 2021-22 में बढ़कर 14,000 से अधिक हो गयी है, जो 2016-17 में केवल 733 थी। भारत तीसरे सबसे बड़े स्टार्ट-अप इकोसिस्टम में बदल गया है।

डिजिटल इंडिया

- इस स्कीम की शुरुआत प्रधानमंत्री मोदी द्वारा 1 जुलाई, 2015 को एक अत्यंत महत्वकांक्षी योजना के रूप में की गयी। इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को डिजिटल दृष्टि से सशक्त समाज तथा ज्ञान अर्थव्यवस्था (Knowledge Economy) में रूपांतरित करना है।



- इसके तहत सभी ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र को डिजिटल अवसररचना उपलब्ध कराकर, इंटरनेट से जोड़ना है, जिससे सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ जीवन के प्रत्येक भाग में सभी जगह फैलाया जा सके। इसके तहत निम्न कार्यक्रम पूरे किये जाएंगे-
 - पब्लिक इंटरनेट पहुँच कार्यक्रम
 - हाईवेज पर ब्रॉडबैंड विकसित करना
 - ई-शासन
 - फोन तथा मोबाइल तक सभी की पहुँच
 - रोजगार के लिए आई.टी. क्षेत्र विकसित करना
 - ग्रामीण क्षेत्र को, विशेष रूप से कृषि को इंटरनेट से जोड़ना
- इसके अंतर्गत सभी बैंकों से लोन प्राप्त होगा, लोन के लिए कोई जमानत नहीं होगी, कोई प्रोसेसिंग फीस नहीं होगी तथा कम ब्याज दर के साथ भुगतान की उचित अवधि होगी।
- इस कार्यक्रम के तहत रूपे डेबिट कार्ड निर्गत होगा जो सामान्य डेबिट कार्डों की तरह प्रयुक्त किया जा सकेगा।

उत्पादन संलग्न प्रोत्साहन योजना (Production Linked Incentive Scheme- PLI)

घरेलू विनिर्माण उद्योग को मजबूती प्रदान करने एवं देश के आयात व्यय को कम करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा मार्च 2020 में एक उत्पाद संलग्न प्रोत्साहन (PLI) योजना की शुरुआत की गयी। इसके अंतर्गत विनिर्माण क्षेत्र की चुनिंदा कंपनियों को अगले 5 वर्षों तक उनकी वृद्धिकारी (Incremental) बिक्रियों पर प्रोत्साहन दिया जायेगा।

इसके अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों की सूची निम्न प्रकार है-

नवंबर, 2023 में 14 अन्य क्षेत्रों की घोषणा इस योजना के अंतर्गत की गयी-

1. मोबाइल विनिर्माण और निर्दिष्ट इलेक्ट्रॉनिक घटक
2. महत्वपूर्ण प्रारंभिक सामग्री औषधि मध्यस्थ और सक्रिय फार्मास्युटिकल सामग्री
3. चिकित्सा उपकरणों का विनिर्माण
4. ऑटोमोबाइल और ऑटो घटक
5. फार्मास्यूटिकल्स औषधियाँ
6. स्पेशलिटी स्टील
7. दूरसंचार एवं नेटवर्किंग उत्पाद
8. इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी उत्पाद
9. व्हाइट गुड्स (एसी और एलईडी)
10. खाद्य उत्पाद
11. कपड़ा उत्पाद: एमएमएफ खंड और तकनीकी कपड़ा
12. उच्च दक्षता वाले सौर पीवी मॉड्यूल
13. उन्नत केमिस्ट्री सेल (एसीसी) बैटरी
14. ड्रोन और ड्रोन घटक

इस योजना के माध्यम से सरकार ने जहाँ एक ओर इन उद्योगों में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य रखा है वहीं दूसरी तरफ इस प्रोत्साहन योजना को विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रावधानों के अनुकूल भी रखा है।

प्रोत्साहन का स्वरूप

इस योजना में प्रोत्साहनों को 'बोनस' के रूप में कंपनियों के सकल कारोबार (एक तय स्तर से ऊपर) एवं उनके निवेश व्ययों (संयंत्र, उपकरण, खोज एवं विकास तथा तकनीकी हस्तांतरण) पर दिया जाता है। तथापि भूमि की खरीद एवं भवनों के निर्माण पर किये गए कंपनियों के व्ययों पर यह प्रोत्साहन नहीं दिया जायेगा।

भारत क्राफ्ट पोर्टल (Bharat Craft Portal)

- यह देश में MSMEs द्वारा निर्मित उत्पादों के विपणन के लिए विगत वर्ष सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया एक ई-कॉमर्स पोर्टल है।
- हालाँकि व्यवसाय योजना की कमी, प्रौद्योगिकी भागीदार की अनुपलब्धता और धन के अभाव के कारण इसे अभी प्रारंभ नहीं किया जा सका है।

तकनीकी वस्त्र (Technical Textile)

वस्त्र मंत्रालय ने तकनीकी वस्त्रों (Technical Textiles) के लिए निर्यात संवर्धन परिषद (Export Promotion Council: EPC) के गठन हेतु प्रस्ताव आमंत्रित किए हैं।

अन्य संबंधित तथ्य

- इसका उद्देश्य तकनीकी वस्त्रों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना है।
- वर्तमान में, तकनीकी वस्त्रों के अधिकांश निर्यातक अन्य उत्पादों के लिए (EPCs) द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन करते हैं।
- तकनीकी वस्त्रों के लिए समर्पित EPCs इस वर्ष आरंभ किए गए राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (National Technical Textiles Mission: NTTM) के घटकों में से एक है।
- NTTM की शुरुआत देश को तकनीकी वस्त्रों में विश्व में अग्रणी बनाने के लिए की गई है।
- इसका लक्ष्य वर्ष 2024 तक तकनीकी वस्त्रों के घरेलू बाजार के आकार को 40-50 बिलियन डॉलर तक बढ़ाने के लिए 15-20 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर प्राप्त करना है।
- तकनीकी वस्त्र ऐसी वस्त्र सामग्री एवं उत्पाद हैं, जिन्हें मुख्य रूप से सौंदर्य और सजावटी विशेषताओं के बजाए तकनीकी प्रदर्शन तथा कार्यात्मक गुणों के लिए विनिर्मित किया जाता है।
- इन वस्त्रों को एकल रूप से या इनके कार्यात्मक गुणों को बढ़ाने के लिए किसी अन्य उत्पाद के घटक/भाग के रूप में उपयोग किया जाता है।
- उन्हें 12 प्रमुख खंडों में विभाजित किया गया है
- भारत के कुल वस्त्र और परिधान बाजार में तकनीकी वस्त्रों की भागीदारी लगभग 13 प्रतिशत है तथा भारत के सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 0.7 प्रतिशत है।

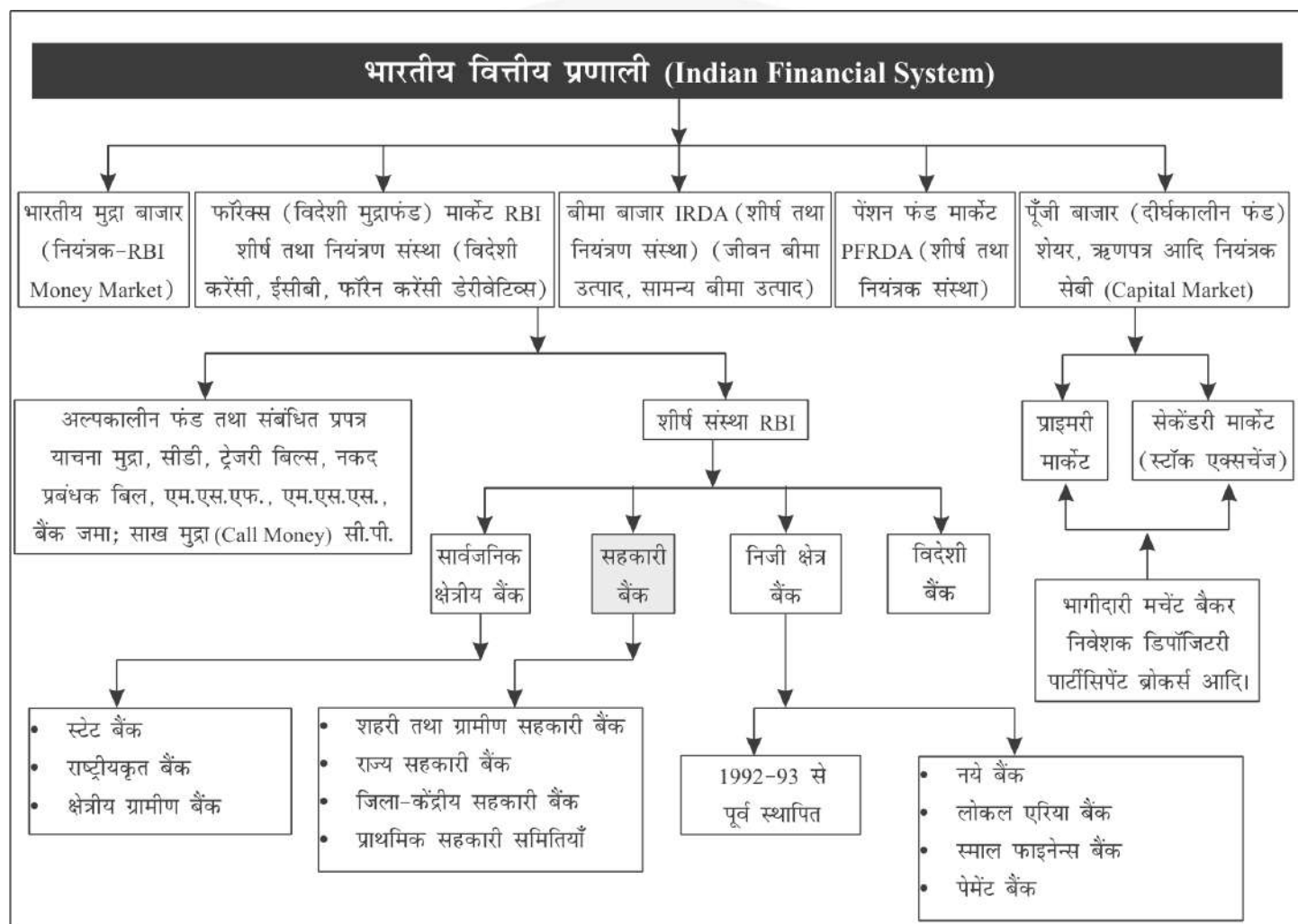


औद्योगिक वित्त (Industrial Finance)

भारतीय वित्तीय प्रणाली (Indian Financial System)

भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्त बाजार को समझने के लिए वित्तीय प्रणाली को समझना आवश्यक है। वित्तीय प्रणाली से आशय संस्थाओं (Institutions), विलेखों (Instruments) तथा बाजारों के सेट से है जो अर्थव्यवस्था में बचत को बढ़ाने तथा उनके कुशलतम तथा इष्टतम प्रयोग की ओर गतिशीलन में

भूमिका अदा करते हैं। वित्तीय बाजार का प्राथमिक कार्य फण्ड आधिक्य क्षेत्रों (ऋण दाता) से फण्ड कमी वाले क्षेत्रों की ओर गतिशीलन सुनिश्चित करना है। सामान्यतः घरेलू क्षेत्र बचत आधिक्य का क्षेत्र होता है, वित्त बाजार घरेलू क्षेत्र से बचत को निकालकर निगमों तथा सार्वजनिक क्षेत्र की ओर ले जाता है।



वित्तीय बाजार किसी भी अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ आधार होता है। इसलिए वित्तीय बाजार वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जब किसी अर्थव्यवस्था में अल्प व अतिरिक्त मुद्रा वाले व्यक्तियों या समूहों के बीच जहाँ लेन-देन हो, तो उसे 'वित्तीय बाजार' कहते हैं। इस लेन-देन का आधार ब्याज या लाभांश होता है। अर्थव्यवस्था में इस बाजार के संगठित (संस्थागत) और गैर-संगठित (अनियमित/ गैर-संस्थागत) दोनों प्रारूप हो सकते हैं। भारतीय वित्तीय बाजार के प्रमुख तीन अंग हैं-

1. मुद्रा बाजार।
2. पूँजी बाजार तथा प्रतिभूति बाजार
 - ♦ प्राथमिक पूँजी बाजार

♦ द्वितीयक पूँजी बाजार

3. ऋण बाजार।

वित्तीय बाजार का प्रमुख अंग- मुद्रा बाजार (Money Market), साख बाजार तथा पूँजी बाजार (Capital Market) है। मुद्रा बाजार एक ऐसा केंद्र है जहाँ अल्पकालीन स्वभाव की मौद्रिक सम्पत्तियों या प्रतिभूतियों (सामान्यतया 1 वर्ष से कम अवधि की) में व्यवहार होता है, जबकि पूँजी बाजार मध्यम तथा दीर्घकालीन फण्ड का बाजार है जहाँ लम्बी अवधि के लिए वित्तीय व्यवहार किया जाता है इसके साथ ही मध्यम तथा दीर्घकालीन अवधि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उधार लिए जाते हैं।

वित्तीय प्रणाली की शीर्षस्थ संस्थाएँ

RBI	इण्डियन बैंकिंग प्रणाली का नियंत्रक, बैंकों को लाइसेंस देने वाली संस्था, बैंकिंग प्रणाली को तरलता की आपूर्ति करने वाली तथा तरलता समायोजक संस्था।
NABARD	आर.आर.बी. तथा सहकारी बैंकों की नियंत्रक संस्था कृषि, ग्रामीण विकास तथा एम.एस.एम.ई. सेक्टर की उधारी का पुनर्वित्तीयन।
EXIM बैंक	निर्यात व्यापार का प्रवर्तन, निर्यात साख का पुनर्वित्तीयन।
NHB नेशनल हाउसिंग बोर्ड	हाउसिंग क्षेत्र का नियंत्रक। हाउसिंग लोन का पुनर्वित्तीयन।
SIDBI	MSE ऋणों का पुनर्वित्तीयन, MSE सेक्टर की प्रत्यक्ष उधारी।

मुद्रा बाजार (Money Market)

मुद्रा बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह सामान्यतया एक वर्ष से कम अवधि के फण्ड तथा ऐसी वित्तीय सम्पत्तियों, जो मुद्रा की नजदीकी स्थानापन्न हैं, के क्रय तथा विक्रय के लिए बाजार है। मुद्रा बाजार वह माध्यम है, जिसके द्वारा रिज़र्व बैंक अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा नियंत्रित करता है।

मुद्रा बाजार को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

संगठित मुद्रा बाजार (Organised Money Market) तथा असंगठित मुद्रा बाजार (Unorganised Money Market)। संगठित बाजार को संगठित बाजार इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके सभी भाग या अंग रिज़र्व बैंक द्वारा क्रमबद्ध ढंग से संचालित तथा नियमित होते हैं।

संगठित मुद्रा बाजार में भारतीय रिज़र्व बैंक को शीर्ष स्थिति प्राप्त है। वह मुद्रा बाजार में तरलता को नियंत्रित कर सकता है तथा ऋण की लागत और इसकी उपलब्धता को भी प्रभावित कर सकता है। इसलिए मुद्रा बाजार में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संगठित मुद्रा बाजार वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों द्वारा अधिक प्रभावित होता है।

रिज़र्व बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक संगठित मुद्रा बाजार के प्रमुख अंग हैं, पर जीवन बीमा निगम, जनरल इन्श्योरेंस कॉर्पोरेशन, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, सिक्वोरिटीज ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया तथा डिस्काउन्ट एण्ड फाइनेन्स हाउस ऑफ इण्डिया भी संगठित मुद्रा बाजार में व्यवहार करते हैं, पर प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते, बल्कि बैंकों के माध्यम से भाग लेते हैं।

संगठित क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद भी भारतीय मुद्रा बाजार में एक असंगठित क्षेत्र है देशी बैंकर्स (जिन्हें पंजाब में महाजन, उत्तर प्रदेश में साहूकार, मारवाड़ में सेठ तथा मद्रास में चेट्टी कहते हैं)। बैंकिंग आयोग (1972) ने इन्हें चार वर्गों में रखा-गुजराती, शर्मा, शिकारपुरी या मुल्तानी शर्मा, असम के मारवाड़ी कयास तथा दक्षिण के चेट्टीयर्स। इस प्रकार शर्मा देशी बैंकर का एक रूप है पर गुजराती शर्माओं की संख्या बहुत अधिक है। असंगठित क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित प्रपत्र हुण्डी है जो एक तरह से देशी विनिमय विपत्र है। बैंकिंग क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण साहूकारों पर आश्रितता बहुत अधिक पायी जाती है। इस आश्रितता को कम करने की दिशा में नाबार्ड द्वारा चलायी गयी “सेल्फ हेल्प ग्रुप” (स्वयं सहायता समूह) उल्लेखनीय है।

कॉलमनी मार्केट

कॉलमनी (याचना या मांग पर मुद्रा) की मांग मुख्यतया व्यापारिक बैंकों द्वारा होती है जो दूसरे बैंकों से अत्यंत ही अल्प समय के लिए उधार लेते हैं जिससे सी.आर.आर. संबंधी अपने पास रखी जाने वाली नकद शेष संबंधी अनिवार्यता के दायित्व को पूरा कर सकें।

कॉलमनी मार्केट अत्यंत ही अल्प अवधि वाले फण्ड का बाजार होता है, जिसमें बिना किसी प्रतिभूति के फण्ड का उधार लेना तथा देना होता है। यहां उधार लेने तथा देने की क्रिया अत्यंत अल्प अवधि के लिए होती है।

इसकी अवधि एक दिन से 14 दिन की होती है। जब उधारी एक दिन की होती है तो इसे कॉलमनी कहते हैं, पर जब इससे अधिक दिन के लिए हो तो इसे कॉलनोटिस कहते हैं।

इस बाजार में उधार लेने वाले अथवा देने वाले की मांग पर ऋणों का भुगतान देय होता है। इस बाजार में ब्याज दर में बहुत ही उग्र परिवर्तन देखे जाते हैं। बैंकों द्वारा नकदी की बहुत अधिक मांग ब्याज दर को बहुत ऊपर कर देती है। कॉल रेट तथा अन्य मौद्रिक प्रपत्रों, जैसे-सी.डी. तथा सी.पी. पर ब्याज दरों में विलोम संबंध होता है।

कॉल रेट में वृद्धि अन्य दरों में कमी लाती है। कॉल दर अन्य मौद्रिक दरों की तुलना में अधिक जोखिम वाली होती है। चूँकि ‘कॉल ऋण’ अत्यंत ही अल्प अवधि के होते हैं इसलिए इनकी तरलता नकदी के ही समान होती है।

कॉलमनी मार्केट में सभी भाग नहीं ले सकते हैं, उसमें भाग लेने वालों में भी कुछ को ही उधार लेने तथा देने दोनों की सुविधा होती है। कुछ को केवल उधार देने की ही सुविधा रहती है।

सामान्यतया कॉल रेट को रातभर की दर (Overnight Rate) के रूप में जाना जाता है, जिस पर एक बैंक दूसरे बैंक को उधार देता है। इसे यू.एस.ए. में फेडरल रेट कहते हैं।

उल्लेखनीय है कि बैंक दर को फेडरल डिस्काउंट रेट कहते हैं। ऐसी आधिक्य फण्ड वाली संस्थाएँ जो इस मार्केट में फण्ड जमा करती हैं, उन्हें 15 दिन से अधिक दिन तक फण्ड रखने पर ही ब्याज प्राप्त होता है।

संगठित मुद्रा बाजार के उपकरण

- **ट्रेजरी बिल्स (Treasury Bill)** - भारत में ट्रेजरी बिल्स पहली बार 1917 में निर्गत की गयी। ट्रेजरी बिल्स अल्प अवधि की प्रतिभूतियां होती हैं, जिसके माध्यम से सरकार उधार लेती है। ये सर्वाधिक तरल प्रतिभूतियां होती हैं। इनका निर्गमन सरकार के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है। ट्रेजरी बिल्स तीन प्रकार के हो सकते हैं -
 - **ऑन टैप बिल्स** जिन्हें रिज़र्व बैंक से जब चाहे तब खरीदा जा सकता है, जिसे 1 अप्रैल, 1997 से बन्द कर दिया गया।
 - **नीलामी ट्रेजरी बिल्स** सबसे अधिक सक्रिय मुद्रा बाजारीय विलेख है, जिसे अप्रैल, 1992 में शुरू किया गया।
 - **एडहॉक ट्रेजरी बिल्स** की भारत में वर्ष 1955 में शुरुआत हुई, ये रिज़र्व बैंक के नाम से ही निर्गमित होते हैं तथा सरकार की अत्यंत ही अस्थायी फण्ड संबंधी आवश्यकता की पूर्ति के लिए निर्गमित किए जाते हैं। इनका प्रत्यक्ष तथा तत्काल मौद्रिकरण हो जाता है क्योंकि इनके निर्गमित होने के साथ ही रिज़र्व बैंक की संपत्ति बढ़ जाती है और अनुषंगी रूप में मुद्रा दायित्व में वृद्धि होती है। इसीलिए एडहॉक ट्रेजरी बिल्स को हीनार्थ प्रबंध के एक अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। ये जनता या अन्य बैंकों के लिए नहीं होते हैं। इन ट्रेजरी बिलों को छोड़कर बाकी ट्रेजरी बिल्स नीलामी से बेचे जाते हैं। सरकार इनके अंकित मूल्य के बराबर ही परिपक्वता पर भुगतान करती है, यदि 100 रुपये के ट्रेजरी बिल (180 दिन) नीलामी में कोई बैंक 90 रुपये में क्रय करता है तो 180 दिन के बाद परिपक्वता पर बैंक को 100 रुपये का भुगतान करना होगा।
 - वर्तमान में ट्रेजरी बिल की तीन परिपक्वता अवस्था 91 दिन, 182 दिन, 364 दिन में जारी किये जाते हैं।

- 1997 में सरकार ने 14 दिन का तत्काल ट्रेजरी बिल जारी किया था।
- **तरलता की दृष्टि से प्रतिभूतियों तथा ऋणों की स्थिति इस प्रकार है-** (i) नकद (ii) ऐडहॉक ट्रेजरी बिल्स (iii) ट्रेजरी बिल्स (iv) कॉल ऋण।
- **व्यापारिक बिल बाजार (Commercial Bill)** - ट्रेजरी बिल मार्केट की ही तरह व्यापारिक बिलों, जो अधिकांशतया 3 महीने की अवधि के होते हैं, जिसके लिए भी एक अलग बिल मार्केट होता है जिसे हम व्यापारिक बिल बाजार भी कहते हैं। व्यापारिक बिलों को हम 'विनिमय विपत्र' (Bill of Exchange) कहते हैं। विनिमय विपत्र एक पराक्राम्य विपत्र (Negotiable Instrument) है जिसमें बिल को स्वीकार करने वाला, जिसे हम आहारी (Drawee) कहते हैं, बिल को लिखने वाले (आहर्ता) के निर्देश पर एक निश्चित राशि एक निश्चित अवधि के बाद बिना शर्त भुगतान करना स्वीकार करता है। आहर्ता इस बिल को दूसरे के नाम बेच सकता है। बिल के भुगतान पाने वाले को हम आदाता (Payee) कहते हैं। आदाता जब चाहे बैंक से बिल को बट्टा करा सकता है। मुद्रा बाजार में बिल्स द्वारा बहुत अधिक व्यवहार होते रहते हैं।
- विनिमय विपत्र अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे मांग विपत्र तथा समय विपत्र, अंतर्देशीय विपत्र तथा विदेशी विपत्र, अनुग्रह विपत्र (Bill of Accommodation) आदि। हुन्डी एक प्रकार का देशी बिल है। हुन्डी दो प्रकार के हो सकते हैं- दर्शनी हुन्डी तथा मुद्दती हुन्डी। दर्शनी हुन्डी 'मांग विनिमय विपत्र' के समान होती है, जिनका भुगतान उसी समय करना पड़ता है जब ये भुगतान के लिए उपस्थित की जाती हैं। मुद्दती हुन्डी समय विपत्र की तरह होती है जिसका भुगतान एक समयावधि के बाद होता है।
- **अनुग्रह विपत्र (Bill of Accommodation- BOA)** - जब बिना किसी प्रतिफल के एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे पर तथा दूसरे व्यक्ति द्वारा पहले पर एक ही राशि का बिल लिखा जाए तथा दोनों ही बिल की कटौती करा के बैंक से रुपया प्राप्त कर लें। इस प्रकार दोनों ही बिना किसी वास्तविक व्यवहार के लाभान्वित हों तो इस प्रकार के बिल को अनुग्रह विपत्र कहते हैं।
- **वाणिज्यिक प्रपत्र (Commercial Paper- CP)** - सीपी. मूलतः यू.एस. ए. तथा यूरोप के वित्तीय बाजार का प्रपत्र था। वाघुल समिति की संस्तुति पर 27 मार्च, 1989 को भारत में जमा प्रमाणपत्र के साथ सी.पी. के निर्गमन की अनुमति प्रदान की गयी। इसे उसी फर्म द्वारा जारी किया जा सकता है जो स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हो तथा कार्यकारी पूंजी 5 करोड़ से कम न हो। इसे जारी करने वाली कंपनियों को RBI द्वारा मान्यता प्राप्त किसी साख श्रेणी एजेंसी से साख-प्रमाण-पत्र लेना अनिवार्य है।
- **जमा प्रमाणपत्र (Certificate of Deposit)** - इस मुद्रा बाजार उपकरण का प्रयोग भारत के बैंकों द्वारा अपनी तात्कालिक धन की कमी की पूर्ति हेतु किया जाता है। बैंक इसे अपने ग्राहकों को अधिसूचित अवधि के लिये जारी करते हैं। यह बातचीत योग्य एवं बाजार में व्यापार योग्य होता है। इसकी परिपक्वता अवधि अखिल भारतीय वित्त संस्थानों की स्थिति में 1 वर्ष से 3 वर्ष तथा बैंकों की स्थिति में 364 दिनों की होती है।
- **अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र (Inter Bank Participation Certificate, IBPC)** - मुद्रा बाजार की तरलता की समस्या को समाप्त करने के लिए यह एक नया प्रपत्र है। IBPC दो प्रकार के हो सकते हैं- जोखिम भागिता के साथ तथा जोखिम भागिता रहित। जोखिम भागितायुक्त IBPC 91 से 180 दिन के लिए उन अग्रिमों के लिए निर्गत किए जाते हैं, जिनके अग्रिमों की सुरक्षा के संबंध में कोई संदेह हो। जोखिम भागिताहीन IBPC अधिक से अधिक 90 दिन के लिए निर्गत होते हैं। इसके द्वारा बैंक, दूसरे बैंकों तथा केन्द्रीय बैंक या स्वीकृत वित्तीय संस्थाओं से फण्ड की उगाही कर सकता है।
- **मुद्रा बाजार म्युचुअल फण्ड** - इसे सरकार द्वारा वर्ष 1992 में वैयक्तिक लघु-अवधि निवेश के उद्देश्य से प्रचलित किया गया था। यह शेयर एवं प्रतिभूति बाजार में विशेषीकृत ज्ञान न रखने के बावजूद भी आम आदमी को इस क्षेत्र में निवेश करके लाभ कमाने का अवसर प्राप्त होता है। यह एक ऐसा फण्ड है जिसका निर्माण तब होता है जब बड़ी संख्या में निवेशक अपना धन इसमें लगाते हैं तथा इनका प्रबंधन विभिन्न संपत्ति श्रेणियों जैसे शेयर, बॉण्ड्स, मुद्रा बाजार साधनों, स्वर्ण व प्रॉपर्टी में निवेश करने का अनुभव रखने वाले योग्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। ये सर्वप्रथम मुद्रा बाजार में, फिर पूंजी व्यापार में आये, इसीलिये इनके दोहरे विनियामक RBI व SEBI है। प्रारंभ में इसमें केवल कुछ सार्वजनिक बैंक व UTI को प्रवेश की अनुमति दी गई थी। वर्तमान में निजी क्षेत्र की वित्तीय कंपनियों व संस्थानों को भी प्रवेश करने की अनुमति है।

म्युचुअल फण्ड द्वारा तीन प्रकार की योजनायें जारी की जाती हैं-

- **खुली योजनायें** - निवेशक जब चाहे म्युचुअल फण्ड की यूनिटों की खरीद फरोख्त कर सकता है।
- **बंद योजनायें** - इसमें म्युचुअल फण्ड की यूनिटों को एक बार जारी किया जाता है। ये यूनिटें स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हो जाती हैं जहाँ इनका दैनिक आधार पर व्यापार होता है।
- **एक्सचेंज ट्रेडेड फंड** - ये खुली व बंद योजनाओं का मिश्रण हैं।

विभिन्न प्रकार की बैंकिंग

- **मर्चेंट बैंकिंग (Merchant Banking)** - मर्चेंट बैंकर्स उद्यमियों तथा निवेशकों के बीच काम करने वाले वित्तीय मध्यस्थ हैं। ये नये निर्गमनों का अभिगोपन (Underwriting) तथा प्रबंधन करते हैं, ये संसाधनों को इकट्ठा करने तथा अन्य वित्तीय मामलों के संबंध में निगमों को राय देते हैं, पर ये विदेशी मर्चेंट बैंकर्स की तरह बैंकिंग क्रियायें जैसे जमा प्राप्त करना, उधार देना तथा विदेशी विनिमय संबंधी सेवायें देना आदि नहीं करते। वर्ष 1991 में नरसिंहम समिति ने मर्चेंट बैंकर्स के कार्य करने के संबंध में पर्याप्त सम्भाव्य शक्ति को देखा।
- **म्युचुअल बैंकिंग (Mutual Banking)** - आजकल म्युचुअल फण्ड वितरण, रिटेल बैंकिंग तथा सुरक्षा व्यापारिक बैंकों की सामान्य क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया है। बैंक तथा म्युचुअल फण्ड एक ही परिवार से संबंधित हैं। आजकल म्युचुअल बैंकिंग की नयी धारणा सामने आ रही है, जिसमें बैंक ग्राहकों के लिए नये उत्पाद तथा नयी सेवाओं को प्रवर्तित कर रहा है, जिसमें ग्राहक बैंकों के माध्यम से म्युचुअल फण्ड की सेवाओं का लाभ प्राप्त कर रहे हैं, जिसके द्वारा ग्राहक किसी स्कीम के तहत म्युचुअल फण्ड की निर्धारित सीमा के भीतर बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है। ग्राहकों के लिए बैंकों तथा म्युचुअल फण्ड की सुविधा को अधिकतम करना ही म्युचुअल बैंकिंग की आधारभूत मान्यता है।
- **रिटेल बैंकिंग (Retail Banking) या पर्सनल बैंकिंग** - आज से कुछ समय पूर्व बैंक केवल उत्पादक क्रियाओं की पूर्ति के लिए ही ऋण देते थे, उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इनके द्वारा ऋण नहीं दिया जाता था पर उनके लाभ की सीमा में कमी, बढ़ती लागत, औद्योगिक मन्दी, निगमों को दिये गए ऋणों के साथ NPA में वृद्धि आदि के कारण आजकल बैंक अपने संसाधनों को फुटकर उधारी में लगा रहे हैं। बैंक अपने साधनों को फुटकर उधारी, व्यक्तिगत ऋणों (Personal Loans) जैसे शैक्षणिक ऋण, गृह ऋण (Home loan), ऑटो ऋण, ह्वाइट गुड्स लोन, क्रेडिट कार्ड ऋण, ट्रेवल ऋण आदि की ओर ले जा रहे हैं। इस प्रकार की बैंकिंग

क्रियाओं को हम रिटेल बैंकिंग या पर्सनल बैंकिंग (Personal Banking) कहते हैं।

- **एनीव्हेयर बैंकिंग (Anywhere Banking)** – एनीव्हेयर बैंकिंग से आशय किसी भी स्थान से बैंकिंग सुविधा प्राप्त करने से है। यह सेवा ग्राहक की सुविधा के लिए टेक्नोलॉजी पर आधारित सेवा है। इसके अंतर्गत ग्राहक, जिसका खाता बैंक की किसी शाखा में है, देश के भीतर बैंक की निर्दिष्ट किसी भी शाखा के साथ बैंकिंग व्यवहार कर सकता है।

पूँजी बाजार (Capital Market)

पूँजी बाजार एक व्यापक धारणा है, जिसमें प्राइमरी मार्केट, सेकेंडरी मार्केट, दीर्घकाल के लिए ऋण देने वाली संस्थाएँ, दीर्घकालीन डिबेन्चर्स तथा बॉन्ड मार्केट, बैंक, निवेशक तथा अन्य सभी जो औद्योगिक क्षेत्र के लिए दीर्घकालीन फंड प्रदान करते हैं, सम्मिलित होते हैं।

पूँजी बाजार वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह दीर्घकालीन फण्ड का बाजार है, जिसमें दोनों ही इक्विटी (या अंशपत्रों) तथा ऋण (Debt) के माध्यम से पूँजी की उगाही सम्मिलित हैं। यह देश के भीतर तथा बाहर दीर्घकालीन फण्ड प्राप्त करने का बाजार है।

पूँजी बाजार के प्रकार (Types of Capital Market)

प्राथमिक पूँजी बाजार (Primary Capital Market)

प्राथमिक बाजार नये निर्गमनों (New Issues) का बाजार है। यह पूँजी बाजार का वह अंग है, जिसमें सभी प्रतिभूतियाँ पहली बार बाजार में बिकने के लिये आती हैं। प्राथमिक बाजार वह बाजार है जहाँ पूँजी की तलाश में एक कंपनी पहली बार पब्लिक के संपर्क में आती है। कंपनी द्वारा निर्गत वित्तीय प्रपत्र जैसे शेयर्स, डिबेन्चर पब्लिक द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्गत करने वाली कंपनी से क्रय किए जाते हैं। इस प्रकार प्राथमिक बाजार में मुख्यतया दो भागीदार हैं – वित्तीय प्रपत्र निर्गत करने वाली कंपनी तथा उन्हें क्रय करने वाली पब्लिक।

प्राथमिक पूँजी बाजार में प्रतिभूति के क्रेता को प्राइमरी वित्तीय प्रपत्र धारक कहते हैं। इस प्रकार इसमें फंड का गतिशीलन सर्वथा नयी प्रतिभूतियों के निर्गमन के द्वारा होता है। प्राथमिक बाजार में दोनों ही घरेलू तथा विदेशी फंड की उगाही हो सकती है तथा इसमें निर्गमित प्रतिभूतियाँ समता अंश (Equity) तथा ऋण प्रपत्र हो सकते हैं।

घरेलू स्तर पर पूँजी की उगाही कंपनियों द्वारा निर्गमित समता अंश, इसमें आई. पी.ओ., एफ.पी.ओ., राइट इश्यू तथा बोनस इश्यू के द्वारा की जाती है। कंपनियाँ, सरकार तथा वित्तीय मध्यस्थों द्वारा निर्गमित ऋण प्रपत्र (Instruments) के माध्यम से पूँजी को प्राप्त करती है।

इसी प्रकार विदेशी स्तर पर देखें तो ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीट (GDR) तथा अमेरिकन डिपॉजिटरी रिसीट (ADR) के माध्यम से निर्गमित समता अंश तथा विदेशी वाणिज्यिक उधारी (ECB) के द्वारा उधारी देकर पूँजी की उगाही की जाती है। कंपनियाँ प्राथमिक बाजार में फंड की प्राप्ति अन्य विदेशी उधारी के माध्यम से भी करती हैं, जैसे – समता अंश तथा ऋणों के रूप में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI), पोर्टफोलियो निवेश के रूप में विदेशी संस्थागत निवेश (FII), गैर प्रवासी भारतीय जमा (NRI Deposit) जो अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन हो सकते हैं, इंडियन डिपॉजिटरी रिसीट के द्वारा विदेशी कंपनियों द्वारा भारतीय पूँजी बाजार से पूँजी की उगाही की जाती है। इसके अलावा यह भी स्पष्ट है कि प्राथमिक बाजार में निवेशक जो निवेश करेगा, वह फंड कंपनी के पास जायेगा इसके अलावा शेयरों (अंश पत्रों) के निर्गमन के द्वारा भी पूँजी प्राप्त की जाती है। शेयरों के दो रूप होते हैं।

- **समता या इक्विटी अंश** – ये वे अंशपत्र हैं जो कंपनी के स्वामित्वधारी होते हैं तथा जिनके कंपनी के प्रबंधन में हिस्सेदारी होती है तथा जिन्हें वोटिंग का अधिकार प्राप्त होता है।
- **वरीयता प्राप्त अंशपत्र (Preference Shares)** – जिन्हें वोटिंग राइट नहीं प्राप्त होता पर इन्हें लाभांश (Dividend) प्राप्त करने में वरीयता प्राप्त होती है, चाहे कंपनी को लाभ हो या नहीं।

प्राथमिक बाजार से पूँजी उगाही के उपकरण

किसी कंपनी द्वारा अंशपत्रों के निर्गमन के पाँच तरीके हो सकते हैं।

- **प्रथम जन प्रस्ताव या सार्वजनिक प्रस्ताव (Initial Public Offer- IPO)** – इनीशियल पब्लिक ऑफर एक तरीका है, जिसके द्वारा कोई कंपनी अपने अंशपत्र या ऋणपत्र पब्लिक में विक्रय के लिए रखती है। जब किसी कंपनी द्वारा शेयर पहली बार पब्लिक में बिकने के लिए प्राथमिक बाजार में लाये जाते हैं, तो इसे इनीशियल पब्लिक ऑफर कहते हैं। कंपनी इसके लिए 'विवरण पुस्तिका' जारी करती है, जिसे प्रोस्पेक्ट्स कहते हैं। प्रोस्पेक्ट्स वह प्रपत्र है जिसमें कंपनी के संबंध में सभी विवरण लिखित रूप में दिया रहता है।
- **लोक सार्वजनिक प्रस्ताव (Follow Public Offer- FPO)** – जब कोई भी नयी कंपनी अपनी अधिकृत पूँजी की उगाही शेयरों के निर्गमन के द्वारा प्राथमिक बाजार से करती है, उसे IPO कहते हैं पर जब कोई पुरानी कंपनी जो शेयर बाजार में सूचीबद्ध (Listed) है, पूँजी प्राप्त करने के लिए शेयर का निर्गमन करती है तो उसे एफपीओ (FPO) कहते हैं।
- इस प्रक्रिया में शेयर का एक ऐसा मूल्य प्राप्त होगा जिस पर सभी शेयर पूर्णतया प्रार्थित (Fully Subscribed) हो जाते हैं और यही शेयर प्राइज 'कट ऑफ प्राइज' (Cut of Price) हो जाता है और अंतिम रूप में सभी विनियोजकों को कट ऑफ प्राइज पर शेयर निर्गमित होता है।
- कभी-कभी ऐसा होता है कि कंपनी के शेयर अधिप्रार्थित (Over Subscribed) हों, जितना कंपनी निर्गमन की घोषणा करती है, उससे अधिक के लिए 'न्यूनतम कट ऑफ प्राइज बिड' पर प्रस्ताव प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कंपनी चाहे तथा इस प्रकार की स्पष्ट घोषणा पहले की हो तो 'अधिप्रार्थित' शेयरों का आवंटन अधिप्रार्थित अनुपात में कर सकती है। इस प्रकार के अधिप्रार्थित अंशों के आवंटन को हम 'ग्रीनशू ऑप्शन' कहते हैं। डच ऑक्सन बिडिंग प्रक्रिया भी बिडिंग प्रक्रिया की ही तरह होती है इसमें भी सभी बोली लगाने वालों को न्यूनतम कट ऑफ प्राइज पर ही शेयर आवंटित होते हैं, अन्तर केवल इतना है कि जहाँ बिडिंग प्रोसेस में बिड के अनुपात में शेयर आवंटित होते हैं वहीं डच ऑप्शन में प्रत्येक बोली लगाने वाले को इस न्यूनतम मूल्य पर उतने ही शेयर आवंटित होते हैं जितने उसने अपनी बोली में मांगे हों। कंपनियाँ (IPO) के पूर्व भी कुछ बहुत बड़ी विनियोजक संस्थाओं जैसे – बैंक, एल.आई.सी., आई.डी.बी. आई. आदि को सीधे शेयर निर्गमित कर सकती हैं, इस क्रिया को हम (PIPO) या प्राइवेट प्लेसमेंट कहते हैं।
- **राइट इश्यू** – जब कोई पहले से चल रही कंपनी या सूचीबद्ध कंपनी नयी इक्विटी के पिटल निर्गत करती है तो इनको खरीदने का पहला अधिकार शेयर धारिता के अनुपात में परिवर्तनीय ऋण पत्र धारियों का या अंशधारियों का होता है। कंपनी के वर्तमान अंशधारियों को प्रथम अधिकार के रूप में नये शेयर का निर्गत करना 'राइट इश्यू' कहलाता है।
- **बोनस इश्यू** – किसी कंपनी की अंशपूँजी (Share Capital) तथा संचित निधि (वर्षों का संचित लाभ) का योग 'इक्विटी या नेटवर्थ' कहलाता है। जब किसी कंपनी का अवितरित लाभ बहुत अधिक हो जाए, जो अंशपूँजी

का कई गुना हो तो कंपनी यह निर्णय ले सकती है कि रिज़र्व के कुछ भाग को अंशपूँजी के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए, इसे हम संचित निधि का पूँजीकरण कहते हैं। इस प्रकार कंपनी का नेटवर्थ (संचित निधि + पूँजी) ज्यों का त्यों बना रहता है। वर्तमान शेयर होल्डर को उनकी शेयर धारिता के अनुपात में मान लीजिए 2:1 है अर्थात् 2 शेयरों के धारक को एक नया बोनस शेयर आवंटित होगा। चूँकि कंपनी का नेटवर्थ अपरिवर्तित रहता है पर शेयर की संख्या बढ़ जाती है, इसलिए बोनस इशू के कारण कंपनी के प्रतिशेयर मूल्य में गिरावट होगी।

- **निजी आवंटन (Private Placement)**– इस के अंतर्गत कंपनी के अंशपत्र, पब्लिक ऑफर के पूर्व ही कुछ चुने हुए निवेशकों सामान्यतया वित्तीय संस्थाओं, बैंक, कंपनी के डायरेक्टर, बीमा कंपनी, चाटर्ड एकाउंटेंट फर्म आदि को पहले ही निजी तौर पर निर्गमित कर दिये जाते हैं।

रेड हेरिंग प्रोस्पेक्टस

रेड हेरिंग प्रोस्पेक्टस एक डॉक्यूमेंट है जिसे निर्गत करने वाली कंपनी स्टॉक या बॉण्ड निर्गत के पब्लिक ऑफरिंग के पूर्व प्रीलिमनरी प्रोस्पेक्टस के रूप में कंपनी रजिस्ट्रार को देती है। इसमें निर्गत होने वाले शेयरों की संख्या या निर्गमन के मूल्य आदि के संबंध में कोई विवरण नहीं होता। शेयर के मूल्य के संबंध में केवल ऊपरी तथा निचली सीमा रहती है।

दोहरी सूचीकरण

दोहरी सूचीकरण एक सुविधा है जिसके अंतर्गत दो विभिन्न देशों में सूचीबद्ध कंपनियों को अपने देश में अपने अस्तित्व बनाये रखने में मदद मिलती है। इन कंपनियों के अंशधारी अलग-अलग होंगे जबकि उनके क्रियाशीलन, नकद प्रवाह तथा दोनों कंपनियों के अंशधारियों को समान भुगतान को एक साथ समन्वित किया जाता है।

इंडियन डिपॉजिटरी रिसीप्ट

5 दिसंबर, 2006 को सेबी के चेयरमैन एम. दामोदरन ने यह घोषित किया कि भारतीय पूँजी बाजार से वैश्विक कंपनियों द्वारा पूँजी की उगाही तथा भारत में खुदरा व्यापार में विनियोजकों को नये अवसर प्रदान करने के लिए सेबी ने इंडियन डिपॉजिटरी रिसीप्ट्स शुरू किया है। IDR का निर्गमन अमेरिकन डिपॉजिटरी रिसीप्ट (ADR) तथा ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीप्ट (GDR) की ही तरह होगा। IDR विदेशी कंपनियों द्वारा भारतीय पूँजी बाजार से संसाधन के गतिशीलन का तरीका है, जबकि ADR तथा GDR भारतीय कंपनियों विदेशी पूँजी बाजार से पूँजी की उगाही का तरीका है।

अंतर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार से पूँजी की उगाही

भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशी समता निवेश (Foreign Equity Investment) को भारतीय बाजार में विदेशी संस्थागत निवेश तथा विदेशी बाजारों में प्राथमिक निर्गमन के द्वारा जो समता अंशों का सीधे विक्रय (Straight Sale of Equity) परिवर्तनीय बांड या बांड के निर्गमन के रूप में हो सकता है, उसे प्राप्त किया जा सकता है। समता अंशों की सीधे बिक्री अमेरिकन डिपॉजिटरी रिसीप्ट (ADR), ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीप्ट (GDR) तथा इंटरनेशनल डिपॉजिटरी रिसीप्ट (IDR) के द्वारा की जा सकती है।

रिलायंस पहली भारतीय कंपनी थी, जिसने मई, 1992 में पहली बार GDR के द्वारा यूरो इशू मार्केट से पूँजी उगाही की। इंफोसिस टेक्नोलॉजी (Infosys Technology) पहली भारतीय कंपनी थी जिसने मार्च, 1999 में ADR के द्वारा अमेरिकन बाजार में पूँजी की उगाही की, जिसके बाद सत्यम् इन्फोटेक ने ADR निर्गमित किया।

ब्लू बॉण्ड

सेशेल्स गणतंत्र ने विश्व का पहला संप्रभु ब्लू बॉण्ड जारी किया है, जो एक अग्रणी वित्तीय साधन है, जिसे सतत् सामुद्रिक एवं मत्स्य पालन परियोजनाओं का समर्थन करने के लिए डिजाइन किया गया है।

- यह बॉण्ड समुद्री संरक्षित क्षेत्रों का विस्तार, प्राथमिकता वाले मत्स्य पालन में सुशासन और सेशेल्स की नीली अर्थव्यवस्था के विकास में सहयोग करेगा।
- इस बॉण्ड के माध्यम से सेशेल्स ने अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों से 15 मिलियन डॉलर एकत्र कर लिए हैं।
- **प्रमुख बिन्दु**
- इस बॉण्ड के माध्यम से सरकारी और निजी दोनों स्रोतों में निवेश प्राप्त होगा।
- सेशेल्स द्वारा जारी किये गए ब्लू बॉण्ड को विश्व बैंक द्वारा 5 मिलियन डॉलर की गारंटी प्राप्त है।
- उपर्युक्त के अतिरिक्त इसे वैश्विक पर्यावरण सुविधा (Global Environment Facility- GEF) की तरफ से 5 मिलियन डॉलर का रियायती ऋण भी उपलब्ध कराया गया है।
- इस बॉण्ड के माध्यम से प्राप्त आय में से कम से कम 12 मिलियन डॉलर स्थानीय मछुआरा समुदायों को कम ब्याज वाले ऋण के रूप में आवंटित किए जाएंगे, जबकि शेष राशि का उपयोग सतत् मत्स्य परियोजनाओं पर शोध हेतु वित्तपोषण के लिए किया जाएगा। इस निधि का प्रबंधन सेशेल्स विकास बैंक (Development Bank of Seychelles- DBS) करेगा।
- एक मॉडल के रूप में ब्लू बॉण्ड संरचना का उपयोग इंडोनेशिया व ऐसे ही अन्य द्वीपीय राष्ट्रों द्वारा भी किया जा सकता है।
- ब्लू ग्रांट्स निधि के जरिए अनुदान भी दिया जाएगा।

द्वितीयक पूँजी बाजार (Secondary Capital Market)

द्वितीयक बाजार वह बाजार है जिसमें पुरानी पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों में व्यापार होता है। यह वह बाजार है, जिसमें वित्तीय प्रपत्र के प्राथमिक धारक तथा उसके क्रेता के बीच व्यवहार होता है, इसमें प्रपत्र जैसे शेयर, ऋणपत्र जारी करने वाली कंपनी भागीदार नहीं होती। उल्लेखनीय है कि स्टॉक एक्सचेंज एक प्रकार का संगठित बाजार है जहां केन्द्र सरकार, सार्वजनिक संस्थाओं, संयुक्त स्टॉक कंपनियों द्वारा निर्गमित, पहले से बिकी हुई प्रतिभूतियों में व्यापार होता है।

प्राथमिक बाजार में निर्गमित प्रतिभूतियां सर्वथा नयी होती हैं और ये अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण करती हैं। द्वितीय बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय पूँजी निर्माण का सृजन नहीं करता, बल्कि स्टॉक मार्केट में विक्रय के लिये आये हुए अंशपत्रों तथा ऋण प्रपत्रों को तरलता तथा विनिमय क्षमता प्रदान करता है।

द्वितीयक बाजार या स्टॉक एक्सचेंज मार्केट में उन्हीं प्रतिभूतियों-समता अंश तथा ऋण पत्र दोनों में ट्रेडिंग होती है जो स्टॉक मार्केट में सूचीबद्ध होती हैं। सूचीकरण से आशय किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रतिभूति को ट्रेडिंग के लिए स्वीकार किये जाने से है।

ऋण बाजार (Debt Market)

भारतीय ऋण बाजार सरकारी बॉण्डों (Government Bonds) और कॉर्पोरेट बॉण्डों (Corporate Bonds) से मिलकर बनी है। केंद्रीय सरकार द्वारा जारी बॉण्ड, ऋण बाजार का मुख्य और सर्वाधिक तरल (Liquid) हिस्सा है। सरकारी बॉण्डों की कीमतों में उतार-चढ़ाव सामान्यतया इक्विटी की अपेक्षा बहुत कम होते हैं और वे इक्विटी की अपेक्षा अधिक तरल भी होते हैं। जहां तक कॉर्पोरेट बॉण्ड बाजार का प्रश्न है, पिछले कुछ वर्षों में उसमें काफी प्रसार हुआ है क्योंकि नियंत्रणात्मक प्रतिबंधों में ढील दिये जाने के कारण, उन्हें जारी करना आसान हो गया है। जिन परियोजनाओं में निवेश अधिक होता है परंतु प्रतिफल काफी समय बाद मिलते हैं उनके लिए बांडों के माध्यम से ऋण लेना अधिक श्रेयस्कर होता है।

ऋण बाजार की समस्याएँ (Problems of Debt Market)

- 1992 में ऋण बाजार का व्यापार, एक्सचेंज के कार्यक्षेत्र में नहीं होता था।

इस बाजार में व्यापार दो पक्षों के बीच परस्पर जान पहचान के माध्यम से होता था। इसलिए वैयक्तिक व राजनैतिक कारक व्यापार की 'कीमत' का निर्धारण करते थे। व्यापारिक लेन-देन के प्रत्येक पक्ष पर दूसरी पार्टी की 'साख जोखिम' (Credit Risk) का असर पड़ता था। डीलर बाजार में व्यापार समझौते टूटे-टूटे व बिखरे-बिखरे होते थे तथा समय-सीमा की कोई प्राथमिकता नहीं होती थी अर्थात् किस समय पर व्यापार सबसे बेहतर कीमतों पर हो सकता था, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता था।

- साख जोखिम के चलते, बाजार अत्यंत सीमित था और उन्हीं लोगों के बीच होता था जो परस्पर एक-दूसरे को जानते थे तथा जिनकी जोखिम सहन करने की एक सी क्षमता होती थी।
- क्योंकि ऋण बाजार में व्यापार परस्पर जान पहचान वाले लोगों में ही होता था इसलिए यह बहुत आसान होता था कि उनमें से कुछ आपस में मिल कर कोई संघ या कार्टेल (Cartel) बना लें और छल-कपट द्वारा अपने लाभ के लिए बाजार स्थितियों का उपयोग करें।
- ऋण बाजार डीलरों पर निर्भर करता था जो अपनी मध्यस्थता कीमत (Intermediation Price) को लेन-देन की वास्तविक कीमत (Transaction Price) से अलग करके नहीं बताते थे। इसलिए निवेशक के लिए यह संभव नहीं हो पाता था कि वह एक ऐसा डीलर ढूँढ़ सके जिसकी मध्यस्थता कीमत न्यूनतम हो। 'सर्वोत्तम कीमत' प्राप्त कर पाने की भी कोई गारंटी नहीं थी क्योंकि समय-सीमा की कोई प्राथमिकता नहीं होती थी।
- ऋण बाजार में व्यापार टेलीफोन द्वारा मुंबई में ही होता था। इसलिए ऋण बाजार वस्तुतः मुंबई तक ही सीमित था।
- क्योंकि व्यापार परस्पर स्तर पर होता था इसलिए व्यापार की कीमतों के बारे में कोई व्यापक जानकारी नहीं मिल पाती थी।
- व्यापार संबंधी अंतिम निपटारे में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। कई बार निपटारे में अत्यधिक समय की बर्बादी होती थी और बैंकों को व्यापार समझौतों के अंतिम मिलान में परेशानियों का सामना करना पड़ता था। 'अंतिम मिलान' में कठिनाईयों तथा बैंकिंग व्यवस्था की अकुशलताओं के कारण घोटालों की अत्यधिक संभावना होती थी और कई बार बैंकों के अधिकारी भी घोटालों में शामिल होते थे।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड-सेबी (Securities and Exchange Board of India - SEBI)

प्रारंभ में सेबी एक गैर-वैधानिक निकाय था, जिसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा 12 अप्रैल, 1988 को की गई। भारतीय संसद द्वारा पारित सेबी अधिनियम, 1992 के अंतर्गत 1992 में इसे वैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया।

सेबी के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- प्रतिभूति बाजार में निवेशकों का संरक्षण सुनिश्चित करना तथा प्रतिभूति बाजार को उचित उपायों के माध्यम से विनियमित एवं विकसित करना।
- स्टॉक एक्सचेंजों तथा किसी भी अन्य प्रतिभूति बाजार के व्यवसाय का नियमन करना।
- स्टॉक ब्रोकर्स, सब-ब्रोकर्स, शेयर ट्रांसफर एजेंट्स, ट्रस्टीज, मर्चेन्ट बैंकर्स, अण्डर राइटर्स, पोर्टफोलियो मैनेजर आदि के कार्यों का नियमन करना एवं उन्हें पंजीकृत करना।
- म्यूचुअल फंड की सामूहिक निवेश योजनाओं को पंजीकृत करना तथा उनका नियमन करना इसके साथ ही निगमित संगठनों को प्रोत्साहित करना।
- प्रतिभूति बाजार से जुड़े लोगों को प्रशिक्षित करना तथा निवेशकों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना।

- प्रतिभूतियों के बाजारों से संबंधित अनुचित व्यापार व्यवहारों को समाप्त करना।
- प्रतिभूतियों की इनसाइडर ट्रेडिंग पर रोक लगाना।
- प्रतिभूतियों के बाजार में कार्यरत विभिन्न संगठनों के कार्यकलापों का निरीक्षण करना एवं सुव्यवस्था सुनिश्चित करना।

सेबी द्वारा अपने निर्धारित दायित्वों का काफी सीमा तक समुचित प्रकार से निर्वहन किया जा रहा है। शेयर बाजार में गड़बड़ियों के दोषियों को अधिक कठोर सजा देने के लिए सेबी को व्यापक अधिकार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सेबी (संशोधन) अधिनियम, 2002 संसद से पास कराकर, इसे 29 अक्टूबर, 2002 से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत सेबी द्वारा इनसाइडर ट्रेडिंग के लिए 25 करोड़ रुपए तक का जुर्माना किया जा सकता है। इस अधिनियम में लघु निवेशकों के साथ धोखाधड़ी के मामलों में एक लाख रुपए प्रतिदिन की दर से एक करोड़ रुपए का जुर्माना आरोपित करने का प्रावधान किया गया है। संशोधित प्रावधानों के अनुसार अब किसी भी शेयर बाजार को मान्यता प्रदान करने का अधिकार सेबी को हस्तांतरित कर दिया गया है।

डिजिटल मुद्रा (Digital Currency)

हाल ही में, चीन ने अपने केंद्रीय बैंक द्वारा समर्थित अपनी डिजिटल मुद्रा जारी की है। इस मुद्रा का नाम (e-युआन) है, जिसे परीक्षण के तौर पर कुछ चयनित शहरों में आरंभ किया गया है। यह काफी हद तक 'बिटकॉइन' तथा फेसबुक की मुद्रा 'लिब्रा' के समान है।

डिजिटल मुद्रा क्या है?

व्यापक अर्थ में डिजिटल मुद्रा, मुद्रा का ही एक रूप है, जो केवल डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक रूप में उपलब्ध होती है, परंतु भौतिक रूप में नहीं। इसे डिजिटल धन, इलेक्ट्रॉनिक धन, इलेक्ट्रॉनिक मुद्रा या साइबर नकदी भी कहा जाता है।

भारत में डिजिटल मुद्रा की व्यापक मांग को देखते हुए निम्नलिखित कदम उठाए गए हैं:

- भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) ने क्रिप्टोकॉरेंसी को लेकर अपनी चिंता व्यक्त की है। साथ ही, स्वयं की डिजिटल मुद्रा जारी करने के लिए कार्य कर रहा है।
 - इस संदर्भ में, (RBI) ने वर्ष 2018 में एक आदेश जारी कर, बैंकों के क्रिप्टोकॉरेंसी आधारित लेन-देन पर रोक लगा दी थी।
 - इस प्रतिबंध को वर्ष 2020 में उच्चतम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया। न्यायालय ने सरकार को इस मामले में कोई रुख अपनाने और एक कानून का मसौदा तैयार करने को कहा।
- इस संदर्भ में, भारत सरकार क्रिप्टोकॉरेंसी की माइनिंग, ट्रेडिंग और उसे धारण करने पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक कानून बनाने पर विचार कर रही है।
 - इसके अतिरिक्त, विनियामक व्यवस्था को आरंभ कठारे बनाते हुए, कॉर्पोरेट कार्य मंत्रालय (Ministry of Corporate Affairs: MCA) ने कंपनी अधिनियम के नियमों में संशोधन किए हैं और कंपनियों के लिए क्रिप्टोकॉरेंसी में अपने निवेश का प्रकटन अनिवार्य कर दिया है।
 - यह उपाय उस सरकारी एजेंडे के अनुरूप है, जिसमें बिटकॉइन जैसी निजी वर्चुअल मुद्रा पर रोक लगाने तथा साथ ही आधिकारिक डिजिटल मुद्रा के लिए एक फ्रेमवर्क बनाने की मांग की गई है।

बिटक्वाइंस डिजिटल करेंसी

बिटक्वाइंस (Bitcoins) एक द्रुत परिवर्तनशील एवं अव्यवस्थित डिजिटल करेंसी है। इसका आविष्कार सातेशी नाकोमोटो द्वारा किया गया था। नाकोमोटो के पास बिटक्वाइंस का पेटेंट है, जिसके द्वारा बिटक्वाइंस के प्रचलन की मात्रा को प्रभावी तरीके से नियंत्रित किया जाता है। ये आम रुपये-पैसे जैसे भौतिक रूप में नहीं होती हैं, बल्कि एक कंप्यूटराइज्ड कोड के रूप में होती हैं।

वो भी ऐसा कोड जिसे ऑनलाइन वॉलेट या कंप्यूटर में सुरक्षित रखा जा सकता है, इस कारण इसे 'इलेक्ट्रॉनिक वॉलेट' (Electronic Wallet) भी कहते हैं। इसके जरिए पूरी दुनिया में आपसी लेन-देन संभव है। बिटकोइन के पते वाला कोई भी व्यक्ति, बिटकोइंस के पते वाले किसी अन्य व्यक्ति को बिटकोइंस भेज सकता है या उससे प्राप्त कर सकता है। इसका ऑनलाइन अदायगी, दोनों तरफ में से किसी भी तरफ की पहचान जाने बिना, की जा सकती है।

इस पर किसी भी सरकार या बैंक का नियंत्रण नहीं है। दुनिया की ज्यादातर महत्वपूर्ण करेंसियों को इससे एक्सचेंज किया जा सकता है। बिटक्वाइंस को क्रिप्टोकॉइंस (Cryptocurrency) के नाम से भी जाना जाता है। बिटक्वाइंस की सबसे छोटी इकाई का नाम पतोशी (Patoshi) है। यह अनाम, विकेंद्रीकृत डिजिटल मुद्रा है। ज्ञातव्य है कि विश्व का पहला बिटक्वाइंस A.T.M. अक्टूबर, 2013 में बैंकूबर (कनाडा) में शुरू किया गया था। लूटपण्ण ने बिटक्वाइंस सहित विभिन्न 'सत्याभासी मुद्राओं' (Virtual Currencies) के धारकों, व्यापारियों और प्रयोक्ताओं को इन मुद्राओं के सम्भावित जोखिमों के बारे में सावधान किया है।

स्टॉक मार्केट (Stock Market)

परिचय (Introduction)

वित्तीय बाजार का वह अंग जहां से शेयर, प्रतिभूति, बॉण्ड, डिबेंचर, म्यूचुअल फंड इत्यादि द्वारा दीर्घावधिक (Long-Term) पूँजी की व्यवस्था (उगाही) की जाती है, उसे प्रतिभूति बाजार कहते हैं अर्थात् प्रतिभूति बाजार पूँजी बाजार का एक अंग है।

भारतीय प्रतिभूति बाजार के कई संघटक हैं यथा- 'सेबी' (जो इसका नियामक है), विभिन्न स्टॉक एक्सचेंज, अनेक शेयर सूचकांक, ब्रोकर, एफ.आई.आई. (FIIs), जॉबर्स (Jobbers) इत्यादि। प्रतिभूति बाजार में विभिन्न प्रकार के लेन-देन संपन्न होते हैं, जैसे- 'बदला', 'प्रतिवर्ती बदला', 'फ्यूचर ट्रेडिंग', 'इनसाइडर ट्रेडिंग', 'निजी प्लेसमेंट' इत्यादि जिनमें कुछ अवैधानिक भी हो सकते हैं। स्टॉक मार्केट को समझने से पूर्व कंपनी की पूँजी को समझना आवश्यक है क्योंकि कंपनी की पूँजी, शेयरों के रूप में होती है जिनका क्रय-विक्रय स्टॉक मार्केट में होता है।

कंपनी की पूँजी प्राप्त करने की प्रक्रिया

कोई भी कंपनी जब वित्त बाजार में सम्मिलित होती है तो कंपनी अपने संबंध में संपूर्ण सूचना के साथ एक मेमोरेण्डम ऑफ एसोसिएशन कंपनी रजिस्ट्रार को देती है। मेमोरेण्डम ऑफ एसोसिएशन में अन्य विवरणों के साथ यह भी लिखा रहता है कि कंपनी की पूँजी क्या होगी और जब तक इसमें परिवर्तन नहीं हो कंपनी पूँजी में परिवर्तन नहीं ला सकती।

- मेमोरेण्डम में उल्लिखित इस अधिकतम पूँजी को अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) कहा जाता है। अधिकृत पूँजी का वह भाग जो किसी कंपनी द्वारा शेयर जारी करके प्राप्त किया जाता है उसे देय पूँजी या (Paid-up Capital) कहते हैं।
- कंपनी की अधिकृत पूँजी बराबर मूल्य के अंशों (Shares) में विभक्त रहती है। कोई भी कंपनी संपूर्ण या आंशिक रूप में अधिकृत पूँजी की उगाही के लिए अंशपत्रों को जनता में निर्गमित करती है।
- जितनी पूँजी के अंश जनता द्वारा प्रार्थित होने के लिए शेयर बाजार में आते हैं उसे निर्गमित पूँजी (Issue Capital) कहते हैं।

- प्रतिभूतियों के जनता में निर्गमन के पूर्व कंपनी द्वारा प्रोस्पेक्ट्स, (जो कंपनी के संबंध में सभी आधारभूत सूचनाएं देता है जिससे विनियोजक यह निर्णय ले सकें कि उसे कंपनी के शेयर या डिबेंचर खरीदने चाहिए या नहीं) आवश्यक रूप से सेबी के पास भेजा जाना चाहिए।
- निर्गमित पूँजी में से जितनी पूँजी जनता द्वारा मांगी जाती है उसे प्रार्थित पूँजी (Subscribed Capital) कहते हैं।

स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange)

एक संस्थानीकृत वित्तीय संगठन जहाँ प्रतिभूति बाजार के संघटकों (शेयर, बॉण्ड, डिबेंचर इत्यादि) की खरीद-बिक्री की जाती है, उसे स्टॉक एक्सचेंज कहते हैं। इसके प्रमुख कार्य (Functions) निम्नलिखित हैं-

- प्रतिभूतियों/स्टॉक की खरीद-बिक्री की सुविधा उपलब्ध कराता है। द्वितीयक प्रतिभूति बाजार का यह सबसे महत्वपूर्ण संस्थान है।
- स्टॉक (शेयर आदि) के मूल्य का निर्धारण करके निवेशकों को अति महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराता है।
- संस्थानीकृत नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुपालन द्वारा यह प्रतिभूति बाजार के विभिन्न घटकों की कटिबद्धता को गति प्रदान करता है।
- सूचीबद्ध (Listed) कंपनियों को उनके वर्तमान स्टॉक धारकों की सूचना प्रदान करता है (जिससे कंपनियों को कई सुविधाएँ मिलती हैं तथा लाभांश का वितरण करने में सहायता मिलती है)।
- अपने 'सूचकांकों' (Indices) द्वारा प्रतिभूति बाजार की वर्तमान स्थिति, रुझान आदि सूचनाएँ उपलब्ध कराता है। विश्व के सबसे पहले स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना बेल्जियम (उस समय नीदरलैंड का हिस्सा) के एंटेवर्प नगर में सन् 1531 में हुई, लंदन स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना सन् 1801 तथा फिलाडेल्फिया स्टॉक एक्सचेंज (आधुनिक युग का पहला) की स्थापना सन् 1790 में की गयी। भारत के प्रथम स्टॉक एक्सचेंज, बंबई स्टॉक एक्सचेंज (BSE) जिसे 'द नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसिएशन' (The Native Share and Stock Broker's Association) के नाम से जाना जाता था, की स्थापना सन् 1875 में की गयी थी। विश्व के 5 सबसे बड़े (बाजार पूँजीकरण के आधार पर) स्टॉक एक्सचेंज हैं- न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज (NYSE), नैसडैक (NASDAQ), टोक्यो स्टॉक एक्सचेंज (TSE), शंघाई स्टॉक एक्सचेंज (SSE), हांगकांग स्टॉक एक्सचेंज (Hong Kong Stock Exchange)। स्टॉक एक्सचेंज के कारोबार कई मध्यस्थों के माध्यम से संपन्न होते हैं, यथा - दलाल (Broker), जॉबबर (Jobber) तथा 'मार्केट मेकर' (Market Maker)।

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज

- बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज, 'DOSM' मान्यता प्राप्त करने वाला भारत का पहला विदेशी मुद्रा बाजार बन गया है। इस प्रमाणपत्र के मिलने से यह लाभ होगा कि अब अमेरिका के स्टॉक एक्सचेंजों में भी भारतीय कंपनियों के शेयर बेचे खरीदे जा सकेंगे और इसके लिए कोई अलग से पंजीकरण कराने की आवश्यकता नहीं होगी।
- बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज के अतिरिक्त लंदन स्टॉक एक्सचेंज, टोक्यो स्टॉक एक्सचेंज, टोरंटो एक्सचेंज, डीओएसएम मान्यता प्राप्त करने वाले प्रमुख एक्सचेंजों में शामिल है।

स्टॉक मार्केट सूचकांक (Stock Market Index)

स्टॉक एक्सचेंज और वायदा बाजार संघ सूची (प्रविष्टि 48) में आता है। स्टॉक मार्केट सूचकांक कुछ चुने हुए प्रतिनिधि अंशों के मूल्यों पर आधारित एक भारांकित (Weighted) सूचकांक है। सेंसेक्स तथा निफ्टी की गणना बाजार पूँजीकरण भारांकित (Market Capitalisation Weighted) विधि के द्वारा होती है। प्रत्येक सूचकांक किसी आधार वर्ष से संबंधित होता है। सूचकांक की कोई

इकाई नहीं होती है। यह केवल एक संख्या होती है।

सेंसेक्स 30 कंपनियों के अंशों पर आधारित BSE SENSITIVE INDEX है। इसका प्रयोग अर्थव्यवस्था में अंशों के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों के सूचक के रूप में किया जाता है। यह बाजार के व्यवहार, अर्थव्यवस्था में लोगों के विश्वास (Confidence) तथा अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ मूल आधार (Strong Fundamentals) को व्यक्त करने वाला पैमाना है। यह स्टॉक कीमतों में दिन प्रतिदिन होने वाले परिवर्तनों तथा बाजार की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है। अन्य सूचकांकों की ही तरह इस सूचकांक की भी विश्वसनीयता तथा बाजार व्यवहार का प्रतिनिधित्व करने की शक्ति इस बात पर निर्भर करेगी कि किन कंपनियों के अंशपत्रों को सूचकांक में सम्मिलित किया गया है तथा इसका आधार वर्ष क्या है?

स्टॉक मार्केट इंडेक्स की गणना के तरीके

(Methods for Calculation of Stock Market Index)

- **मूल्य भारांकित इंडेक्स (Price Weighted Index)** – इस विधि के अंतर्गत सूचकांक में सम्मिलित प्रत्येक अंशपत्र के बाजार मूल्य को जोड़ लिया जाता है तथा इसे आधार वर्ष के इन्हीं स्टॉकों के मूल्य के बराबर कर लिया जाता है। इस विधि में इंडेक्स में सम्मिलित स्टॉक या अंशपत्रों के विभिन्न आधारों को ध्यान में रखकर अलग-अलग भार (Weight) प्रदान किया जाता है।
- **पूर्ण बाजार पूँजीकरण विधि (Full Market Capitalization Method)** – इस विधि के अंतर्गत सूचकांक में सम्मिलित अंशपत्र को किसी कंपनी के उपलब्ध अंशपत्रों (Outstanding Shares) की संख्या से उसे सेंसेक्स में उस दिन के बन्द होने वाले मूल्य (क्लोजिंग मूल्य) से गुणा करके उस कंपनी के शेयर का बाजार पूँजीकरण ज्ञात किया जाता है।
- **स्वतंत्र वितरण बाजार पूँजीकरण विधि (Free Float Market Capitalization Method)** – स्वतंत्र वितरण (Free Float) किसी कंपनी के शेयर का वह प्रतिशत है जो बाजार में स्वतंत्र रूप से बिना किसी प्रतिबंध के क्रय के लिए उपलब्ध है। इसमें वे ही शेयर आयेंगे जो जनता को निर्गमित किए गये हैं, स्ट्रेटिजिक निवेश के तहत किसी अन्य को जैसे कर्मचारी, प्रबंधकों, नियंत्रक अंशधारियों या उनके परिवार के सदस्यों आदि को निर्गमित नहीं किए गये हैं। इस विधि के अंतर्गत किसी कंपनी के अंशपत्र का भार स्वतंत्र वितरण बाजार पूँजीकरण (Free Float Market Capitalization) पर निर्भर करता है। स्वतंत्र वितरण बाजार पूँजीकरण से आशय निवेश योग्य बाजार पूँजीकरण (Investible Market Capitalization) से है।

स्टॉक एक्सचेंज सूचकांक में होने वाले परिवर्तन का आशय

‘स्टॉक मार्केट सूचकांक’ कुछ प्रतिनिधि कंपनियों के शेयर के आधार पर स्टॉक मार्केट में होने वाली दिन प्रतिदिन की गतिविधियों या परिवर्तनों की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

सामान्यतया सेंसेक्स या स्टॉक मार्केट सूचकांक का उछाल यह प्रदर्शित करता है कि अर्थव्यवस्था की समष्टिभावी नींव (Macro Foundation of the Economy) जो अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन, रोजगार, मूल्य स्तर, निर्यात तथा भुगतान संतुलन, औद्योगिक क्लाइमेट आदि को प्रभावित करेगा।

सेंसेक्स का लगातार बढ़ना, छोटे विनियोजकों में इक्विटी अंशों में विनियोग करने के प्रति विश्वास पैदा करता है। सेंसेक्स का अप्रत्याशित स्तर पर उछाल लेकर पहुँचना विनियोजकों की मनोवैज्ञानिक को दो प्रकार से प्रभावित कर सकता है। मन्दडिये (Bears) ये सोच सकते हैं कि इस स्तर के बाद अब सेंसेक्स आवश्यक रूप से गिरेगा इसलिए वे अपनी धारिता की बिकवाली ज्यादा करते

हैं जबकि तेजडिये (Bulls) आशावादी दृष्टिकोण के कारण अधिक खरीदारी या विनियोग करेंगे। तेजडिये जितनी अधिक खरीद करेंगे सेंसेक्स का उछाल उतना ही अधिक बढ़ेगा।

एक अच्छा तथा विश्वसनीय इंडेक्स वह होगा जिसमें ऐसे अंश सम्मिलित हैं जिनका उच्च बाजार पूँजीकरण (High Market Capitalization) है तथा जिनमें तरलता (Liquidity) अर्थात् अल्प हानि पर बेचने की क्षमता अधिक है। बाजार पूँजीकरण सूचकांक में सम्मिलित सभी अंशों के बाजार मूल्य का योग है। अंश के बाजार मूल्य की गणना अंशों के मूल्य को आउट स्टैंडिंग समता अंशों की संख्या से गुणा करके की जाती है।

उच्च पूँजीकरण तथा उच्च तरलता के अतिरिक्त कुछ अन्य कसौटियाँ हैं जिनको ध्यान में रखकर अंशपत्रों को ‘अंशपत्र मूल्य सूचकांक’ में सम्मिलित किया जाता है वे हैं—अंशपत्र में हुए व्यवहारों (Transactions) की संख्या, कुल अंशपत्रों की संख्या के प्रतिशत के रूप में प्रतिदिन विनिमय किए गये अंशों के औसत मूल्य, कंपनी द्वारा उद्योग के प्रतिनिधित्व का स्तर, उद्योग में कंपनी की स्थिति, लगातार लाभांश देने का रिकॉर्ड, कंपनी के प्रवर्तकों की साख (Good will) तथा स्टैंडिंग आदि।

सूचकांक के गणना की प्रक्रिया

सूचकांक में सम्मिलित कंपनियों के शेयरों के अलग-अलग सूचकांक की गणना के लिए निम्नलिखित तीन तथ्यों की आवश्यकता होती है—

- बाजार पूँजीकरण (Market Capitalization) जिसे कंपनी के बाजार में बकाया शेयरों की संख्या को उनके बन्द होने वाले मूल्य से गुणा करके प्राप्त करते हैं।
- सभी कंपनियों का कुल बाजार पूँजीकरण ज्ञात करना।
- गत दिन के सूचकांक तथा पूँजीकरण के आधार पर अगले दिन के लिए सूचकांक ज्ञात करना, जिसके लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग करते हैं—

$$\text{चालू दिन का सूचकांक} = \frac{\text{पूर्ववर्ती दिन का सूचकांक} \times \text{चालू दिन का बाजार पूँजीकरण}}{\text{गत दिन का कुल बाजार पूँजीकरण}}$$

- उल्लेखनीय है कि प्रत्येक सूचकांक का एक आधार वर्ष होता है और इस आधार वर्ष के दिन का सूचकांक ही अगले दिन का सूचकांक निर्धारित करता है और वही सूचकांक माना जाता है। इस प्रकार आगे के सभी सूचकांक इसी से शुरू होते हैं। वैसे सेंसेक्स का आधार वर्ष 1 अप्रैल, 1979 है, परंतु सेंसेक्स वास्तव में 1 जनवरी, 1986 को अस्तित्व में आया, उसे इस वर्ष 100 के आधारीक मानक पर आरंभ किया गया। जब सेंसेक्स को 518.53 आकलित किया गया तो अगले दिन के सूचकांक का आधार बनाया गया। आधार वर्ष का प्रयोग सूचकांक के आधारीक मापक के रूप में होता है।

सेंसेक्स में होने वाले उछाल को प्रभावित करने वाले कारक

- अर्थव्यवस्था में मूल आधार की सुदृढ़ता जो अर्थव्यवस्था के समष्टिभावी चरों उत्पादन, आय, रोजगार, निर्यात, मूल्यस्तर आदि को प्रभावित करते हैं तथा यह संकेत देते हैं कि आने वाली अवधि में अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से विकसित होगी।
- पिछले 2-3 वर्षों में आर्थिक संवृद्धि दर तथा आने वाले वर्षों में बढ़ती संवृद्धि दर की संभावना।
- औद्योगिक वातावरण (Industrial Climate) की अनुकूलता तथा औद्योगिक संवृद्धि दर के बढ़ने की संभावना।
- कृषि संवृद्धि दर की वृद्धि की संभावना तथा अच्छे मानसून की स्थिति तथा संभावना।

- निर्यात की स्थिति, संभावना तथा आयात प्रोत्साहन नीति जो औद्योगिक आगत के रूप में औद्योगिक विकास को प्रभावित करे।
- मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, वाणिज्य नीति, औद्योगिक नीति, कृषि नीति, श्रम सुधार आदि से आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके।
- बाजार व्यवस्था की ओर सरकारी कदम तथा अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रवाह की संभावना।
- बजट के आने से पूर्व उसमें छिपी आर्थिक विकास की संभावना तथा आने वाले वर्ष में अर्थव्यवस्था से संबंधित सभी चरों पर बजट के अनुकूल प्रभाव की संभावना।
- राजनैतिक स्थिरता, राजनैतिक वातावरण (Political Climate) तथा सरकार चलाने वाली पार्टी के आर्थिक सुधारों, बाजार व्यवस्था, निजी क्षेत्र की भूमिका आदि के संबंध में दृष्टिकोण, बजट तथा मौद्रिक नीति के कारण जनित बाजार प्रत्याशा भी संसेक्स को प्रभावित करती है।
- स्टॉक मार्केट में बाजार व्यवहार के संबंध में मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)।
- किसी बाहरी देश द्वारा अपनायी गयी नीतियां जैसे चीन द्वारा युवान मुद्रा का अवमूल्यन या फेडरल रिजर्व द्वारा ब्याज दर में वृद्धि की आशंका के कारण भी स्टॉक एक्सचेंज में बहुत अधिक तेजी आ सकती है।

क्रेडिट रेटिंग (Credit Rating)

क्रेडिट रेटिंग ऋणी या उधार लेने वाले की साख क्षमता या उधार लौटाने की क्षमता का निर्धारण है। क्रेडिट रेटिंग का मुख्य उद्देश्य उधार देने वाले को उधार लेने वाले की प्रत्याशित भुगतान क्षमता का मूल्यांकन प्रस्तुत करना है, जिससे वह उधार देने के पहले यह जान सके कि जिसको वह उधार दे रहा है, उससे उनके मूलधन तथा ब्याज की अदायगी की संभावना की स्थिति क्या है?

भारत की प्रमुख क्रेडिट रेटिंग एजेंसियाँ

- **CRISIL**—क्रेडिट रेटिंग इनफॉर्मेशन सर्विसेज ऑफ इंडिया लिमिटेड।
- **ICRA**—इनवेस्टमेंट इनफॉर्मेशन एंड क्रेडिट रेटिंग एजेंसी ऑफ इंडिया लिमिटेड।
- **CARE**—क्रेडिट एनालिसिस एंड रिसर्च लिमिटेड।
- **FRIPL**—फिच रेटिंग इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, इसे डफ एंड फेल्लस क्रेडिट रेटिंग कंपनी यू.एस.ए. तथा डी.सी.आर. को मिलाकर स्थापित किया गया।

विश्व की प्रमुख क्रेडिट रेटिंग एजेंसियाँ—विश्व की प्रमुख तीन क्रेडिट रेटिंग एजेंसीज हैं—स्टैंडर्ड एंड पूअर्स, मूडीज तथा फिच (FITCH)।

फिच रेटिंग द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था की रेटिंग

ग्लोबल रेटिंग एजेंसी फिच (Fitch) ने दावा किया है कि 2021-22 के वित्तीय वर्ष में भारत की अर्थव्यवस्था सबसे तेजी से आगे बढ़ेगी।

ग्लोबल रेटिंग एजेंसी फिच का बड़ा दावा

कोरोना वैक्सीन बनेगी भारत की अर्थव्यवस्था का आधार ग्लोबल रेटिंग एजेंसी फिच (Fitch) ने भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में नया अनुमान लगाया है। थपजबी के मुताबिक 1 अप्रैल से शुरू होने वाले वित्तीय वर्ष में भारत की अर्थव्यवस्था 12 फीसदी से भी ज्यादा तेजी से आगे बढ़ेगी। Fitch ने भारत की आर्थिक विकास दर के पुराने अनुमान को अपडेट कर नई रिपोर्ट जारी की है जिसमें दावा किया गया है कि 2021-22 के वित्तीय वर्ष में भारत की अर्थव्यवस्था के विकास की दर 12.8 फीसदी रह सकती है।

Fitch ने पहले क्या कहा था

आपको बता दें कि Fitch ने पहले 2021-22 में भारत की अर्थव्यवस्था की विकास दर 11 फीसदी रहने का अनुमान जताया था लेकिन अब जिस तरह के संकेत मिल रहे हैं उसके मुताबिक Fitch ने अपनी रिपोर्ट में सुधार किया है और पहले के मुकाबले करीब 1.8 फीसदी की दर से बढ़ोतरी का नया अनुमान लगाया है। फिच से पहले अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और मूडीज (Moody's) ने भी वित्तीय वर्ष 2021-22 में भारत का इकोनॉमिक ग्रोथ रेट 11.5 फीसदी और 12 फीसदी रहने का अनुमान लगाया है। हालांकि फिच की जो नई रिपोर्ट सामने आई है उसमें भारत की इकोनॉमिक ग्रोथ 12.8 फीसदी की दर का अनुमान लगाया है।

जिन्स वायदा बाजार (Commodity Futures)

- दो पार्टियों के बीच किसी वस्तु के भावी मूल्य पर जिसे तत्काल ही तय कर दिया जाये उसे बेचने तथा खरीदने का समझौता 'वायदा समझौता' कहलाता है। वस्तु की सुपुर्दगी तथा संबंधित भुगतान निर्धारित समय पर किया जाता है। एक एक्सचेंज में जहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा डेरीवेटिव्स उत्पाद बेचे तथा खरीदे जाते हैं उसे जिन्स बाजार के नाम से जाना जाता है ये समझौते स्पॉट मूल्य, फॉरवर्ड, फ्यूचर्स आदि हो सकते हैं।

फॉरवर्ड मार्केट कमीशन (Forward Market Commission)

- FMC बाजार के आधार में विस्तार करने तथा सुदृढ़ करने के लिए किसी एक या भाग लेने वाले समूह से होने वाली चूक (Default) के जोखिम को कम करता है, यह सुनिश्चित करता है कि वायदा मूल्य मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य के करीब है तथा उपभोक्ताओं एवं गैर सदस्यों के हित को संरक्षित तथा प्रवर्तित करता है।

स्टॉक मार्केट की क्रियाविधि से संबंधित शब्दावली

- **सर्किट ब्रेकर (Circuit Breaker)**—सेबी द्वारा आदेशित सर्किट ब्रेकर स्टॉक एक्सचेंज की एक व्यवस्था है जो संसेक्स में होने वाले असामान्य उछाल या गिरावट तथा स्टॉक (Manipulation) को नियंत्रित करती है।
- **त्वरित अनुपात (Quick Ratio)**—वह अनुपात जो प्रति इकाई देयता पर निवल मूल्य (Net Worth) व्यक्त करता है उसे त्वरित अनुपात कहा जाता है इसे निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

$$\text{त्वरित अनुपात} = \frac{\text{चालू संपत्तिस} - \text{चालू दायित्व}}{\text{चालू दायित्व}} \text{ या } \frac{\text{निवल मूल्य}}{\text{चालू दायित्व}}$$

- **इमर्जिंग मार्केट इंडेक्स (MSCI)**—यह सूचकांक मॉर्गन स्टेनली कैपिटल इन्टरनेशनल द्वारा वैश्विक उदयमान देशों में इक्विटी बाजार परिणाम मापने के लिए तैयार किया जाता है।
- **नो फ्रिल एकाउन्ट्स (No Frill Accounts)**—नो फ्रिल एकाउन्ट्स बैंक में खाता खोलने से संबंधित व्यवस्था है जिसके अंतर्गत 18 वर्ष से अधिक का कोई भी व्यक्ति बिना किसी प्रत्याभूति कोलैटरल (Collateral) के या बिना किसी शुरूआती शेष या नगण्य शेष या खाते के दौरान बिना कायम रखने वाली न्यूनतम जमा शेष या नगण्य शेष के किसी बैंक में खाता खोल सकता है, पैसा जमा कर सकता है तथा निकाल सकता है।
- **प्रतिभूतीकरण (Securitisation) तथा Credit Default Swap (CDS)**—प्रतिभूतीकरण तथा CDS दोनों 'ऋण जनित जोखिम' (Credit Risk) या उधार लेने वालों द्वारा भुगतान न करने से उत्पन्न जोखिम को कम करने या दूसरों पर हस्तान्तरण करने के तरीके हैं।

- **ब्रोकर**- ब्रोकर स्टॉक एक्सचेंज का एक पंजीकृत सदस्य होता है, जो अपने क्लाइंट या ग्राहक की तरफ से शेयर या प्रतिभूति खरीद या बेच सकता है। वह कुल सौदा पर अपनी दलाली या कमीशन लेता है। ऐसे ब्रोकर का कमीशन ब्रोकर भी कहा जाता है।
- **जॉब्स या आढ़ती**- एक जॉब्स ब्रोकर का भी ब्रोकर होता है। दूसरे शब्दों में, जॉब्स दूसरे ब्रोकरों की ऋण-पत्र संबंधी जरूरतों को पूरा करने में विशेषज्ञ होता है। भारत में इसे तारावानी वाला (बीएसई में) भी कहते हैं। एक जॉब्स स्टॉक एक्सचेंज वाले तल के निश्चित ट्रेडिंग पोस्ट पर नियुक्त होता है और कम मूल्य-अंतरों पर खरीद-बेच का काम करते हैं। उसका निवेश कर रहे लोगों से कोई संपर्क नहीं होता।
- **मार्केट मेकर**- यह प्रतिभूतियों के खरीदने-बेचने के लिए तैयार बाजार में बिचौलिए का काम करता है। वह एक साथ में दो तरह की दरों को उछालता है। उसका काम जॉब्स की तरह का ही होता है। बस फर्क इतना है कि वह दो तरह की दरों, यानी एक ही समय में बेचने और खरीदने की दरों को रखता है।
- **निजी स्थापन**- प्राथमिक बाजार में शेयर की बिक्री द्वारा पूंजी उगाही का यह सबसे द्रुत और कम खर्चीला तरीका है, जिसमें कंपनियाँ किन्हीं चुनिंदा समूहों (साधारणतया वित्तीय संस्थानों) या व्यक्तिगतों से विचार-विमर्श करके उन्हें शेयर बेचती हैं।
- **स्वेट शेयर**- कंपनियों द्वारा अपने कार्मिकों को बिना किसी शुल्क के शेयर उपलब्ध कराना। व्यवहार में यह उच्चस्तरीय कार्मिकों को ही दिया जाता है।
- **बदला**- जब किसी स्टॉक कारोबार के विलंबन (Postponement) की मांग स्टॉक के खरीदार द्वारा की जाती है तो उसे 'बदला' कहते हैं। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में इसे 'कैन्टैन्गो' (Cantango) कहा जाता है।
- **औंधा बदला**- जब किसी स्टॉक कारोबार के विलंबन (Postponement) की मांग स्टॉक विक्रेता के द्वारा की जाए तो वह 'औंधा बदला' की स्थिति है। इसे 'प्रतिवर्ती बदला' (Reverse Badla) तथा 'पश्चःगमन' (Backwardation) भी कहा जाता है।
- **स्प्रेड**- शेयर के क्रय और विक्रय मूल्य के बीच के अन्तर को स्प्रेड कहा जाता है। शेयर की तरलता जितनी अधिक होती है उसका स्प्रेड उतना ही कम होता है। इसे जॉब्स के टर्न या मार्जिन या हेयर कट के रूप में भी जाना जाता है।
- **ग्रीनशू ऑफ़शन**- एक प्रावधान, जिसके तहत एक कम्पनी पहली बार शेयर जारी करती है तो उसे कुछ अतिरिक्त शेयर (आमतौर पर 15 प्रतिशत) जनता को बेचने की अनुमति दी जाती है जिसे ओवर एलॉटमेंट प्रावधान भी कहा जाता है। इसका नाम प्रथम कंपनी (यू.एस.ए. की ग्रीन शू कंपनी), जिसे इस प्रकार के विकल्प की अनुमति दी गई थी, के नाम पर पड़ा है।
- **पैनी स्टॉक**- ऐसे शेयर जिनकी कीमत स्टॉक एक्सचेंज में अपेक्षाकृत लम्बे समय तक काफी कम रहता है। सट्टेबाज काफी बड़े लाभ के लिए इसकी जमाखोरी आरम्भ कर सकते हैं, जैसा कि भारत में वर्ष 2006 के मध्य में देखा गया था। और चूँकि ऐसे स्टॉकों की जमाखोरी होती है, अंततः उनके बाजार मूल्य में वृद्धि होती है। सट्टेबाज इन शेयरों का उच्च कीमत पर विक्रय कर मुनाफा अर्जित करते हैं और जो इन शेयरों का क्रय करते हैं उन्हें अन्ततः भारी नुकसान हो सकता है क्योंकि इन स्टॉकों के मूल्य में वृद्धि अनैच्छिक या प्रत्येक जानबूझ कर की गई हेराफेरी के कारण होती है।
- **सममूल्य एवं अधिमूल्य पर शेयर**- भारत में एक सामान्य शेयर को आमतौर पर 10 रुपये के सममूल्य (फेस वैल्यू) का माना जाता है, वहीं पहले जारी हुए कुछ शेयर अब भी 100 रुपये सममूल्य के हैं। दरअसल, पार वैल्यू यानी सममूल्य वह मूल्य होता है, जिस पर कोई शेयर बतौर इक्विटी कैपिटल (शेयर पूँजी) बैलेंस शीट में मूल रूप से दर्ज होता है। सेबी ने कुछ दिशा-निर्देश जारी किए हैं, जिसके मुताबिक सभी नई कंपनियों को अपने शेयर सममूल्य, यानी 10 रुपये पर उपलब्ध कराने होते हैं। हालाँकि, बाजार में मौजूद कोई कंपनी एक नई कंपनी बनाती है, जिसके पास पांच साल के लगातार लाभ की क्षमता हो, तो वह अपने शेयर प्रीमियम, यानी अधिमूल्य पर जारी कर सकता है।
- **डेरिवेटिव्स**- डेरिवेटिव्स एक उत्पाद है जिनका मूल्य एक या उससे ज्यादा मूल चरों, जिसे आधार कहा जाता है (निहित परिसंपत्ति, इंडेक्स या संदर्भ दर), से संविदागत तरीके से प्राप्त किया जाता है। निहित संपत्ति इक्विटी विदेशी मुद्रा, वस्तु या कोई अन्य परिसंपत्ति हो सकती है।
- **पार्टिसिपेटरी नोट्स (पीएनएस)**- भारतीय संदर्भ में पार्टिसिपेटरी नोट्स मुख्यतः एक डेरिवेटिव है, जो सेबी में पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) द्वारा भारतीय प्रतिभूतियों भारतीय प्रतिभूति इक्विटी, ऋण डेरिवेटिव या सूचकांक भी हो सकता है के आधार पर विदेशी डेरिवेटिव साधन, इक्विटी संबद्ध नोट, पार्टिसिपेटिंग रिटर्न नोट इत्यादि के रूप में भी जाना जाता है। पीएन में निवेश करने वाला निवेशक भारतीय प्रतिभूति का स्वामी नहीं होता है, इसका धारक वह विदेशी निवेशक होता है जो पीएन जारी करता है। इस प्रकार पीएन में निवेश करने वाले निवेशक प्रतिभूति में निवेश करने का आर्थिक लाभ इसका धारक हुए बिना ही प्राप्त करते हैं। वे अन्तर्निहित प्रतिभूति की कीमतों में उतार-चढ़ाव से लाभान्वित होते हैं, चूँकि पीएन का मूल्य अन्तर्निहित भारतीय प्रतिभूति से संबद्ध होता है। पीएन धारक को पीएन में संदर्भित प्रतिभूति/शेयरों के संबंध में किसी प्रकार के मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं होता है।
- **फिशर प्रभाव**- फिशर प्रभाव यह प्रतिपादित करता है कि दो देशों के बीच मौद्रिक ब्याज अन्तर (Nominal Interest Differential) को उन दोनों देशों के स्फीतिक अन्तर (Inflation Differential) के बराबर होना चाहिए।
- **इनसाइडर**- वे लोग जो किसी कंपनी या संगठन के डायरेक्टर हों या उच्च स्तर के अधिकारी हों या ऐसे लोग जिनके पास कंपनी के 10% से अधिक शेयर हों उन्हें इनसाइडर कहा जाता है।
- **इनसाइडर ट्रेडिंग**- इनसाइडर कंपनी की गोपनीय स्थिति से परिचित होते हैं, उनके पास कंपनी के संगठन की गोपनीय सूचनायें होती हैं, इसका लाभ उठाकर की जाने वाली ट्रेडिंग इनसाइडर ट्रेडिंग कहलाती है, जो कि वैधानिक नहीं है।
- **स्नो बॉलिंग प्रभाव**- जब शेयर के मूल्य में थोड़ी वृद्धि से शेयर क्रय के कारण या किसी कारण कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि मूल्य बढ़ता ही जाए और इतना अधिक बढ़ जाए कि क्रय-विक्रय पर स्टॉप ऑर्डर होने लगे तो इसे स्नो बॉलिंग कहा जाता है। करारोपण के संबंध में स्नो बॉलिंग प्रभाव कैस्केडिंग (Cascading) से संबंधित होती है।
- **शॉर्ट सेलिंग**- जब किसी व्यक्ति या दलाल द्वारा उससे अधिक स्टॉक के विक्रय का सौदा किया जाता है, जितना उसके पास है या जितना कहीं से लेकर पूर्ति कर सकता है, तो उसे शॉर्ट सेलिंग कहा जाता है।
- **बुल तथा बीयर**- बाजार में भाग लेने वाले ऐसे लोग जो यह उम्मीद करते हैं कि भविष्य में बाजार मूल्य ऊपर उठेगा तथा इस प्रकार पूंजी लाभ की संभावना बढ़ेगी, जैसे- ब्रोकर, उन्हें बुल (Bull) या तेजड़िया कहा जाता है। इसी प्रकार ऐसे लोग जो किसी कंपनी के शेयर, उसके निकट भविष्य में भाव गिरने की आशंका में बेचते हैं, बीयर या मंदड़िया कहा जाता है।
- **UIN (Unique Identification Number)** विशिष्ट पहचान संख्या- 1 जनवरी, 2005 को सेबी द्वारा समस्त निगमित निवेशकों के लिए प्रतिभूति बाजार में सभी क्रय-विक्रय की गतिविधियों के लिए UIN अनिवार्य कर दिया गया है।

- **MAPIN Database (market Participants & Investors Database)**– सेबी द्वारा एक मैपिन डाटाबेस का विकास किया जा रहा है, ताकि पूँजी बाजार में व्यक्तिगत एवं एक विशिष्ट पहचान संख्या (UIN) प्रदान की जा सके। इस प्रणाली के अंतर्गत पहचान का प्रमुख आधार उंगलियों की छाप है जो कि परंपरागत पहचान उपायों जैसे- नाम, पता, फोटो आदि के अतिरिक्त है।
- **म्युचुअल फंड आइडेंटिफिकेशन नंबर (MIN)** – सेबी ने शेयर खरीदने और बेचने हेतु शेयरों के लिए एक खाता बनाया है जिसे डिमैट खाता कहा जाता है, जैसे- बैंक की पासबुक में लिखे आँकड़ों पर विश्वास करते हैं कि रकम सुरक्षित है और इसे जब चाहें निकाल सकते हैं और जमा कर सकते हैं। उसी तरह सेबी में डिमैट एकाउंट खाता शेयर को सुरक्षित रखने के लिए होता है इसी प्रकार म्युचुअल फंड को भी 'मिन' में सुरक्षित रखा जा सकता है और जब चाहे तब इसे निकाल सकते हैं अर्थात् बेच सकते हैं तथा जमा कर सकते हैं।
- **BOLT तथा DOTS**– क्रय-विक्रय के लिए प्रचलित 'खुली बोली प्रणाली' का स्थान अब स्क्रीन बेस्ड (BOLT- BSE Online Trading) प्रणाली ने ले लिया है। इसके तहत अब शेयर दलाल अपने चेम्बर्स में बैठे-बैठे ही कम्प्यूटरों की स्क्रीन पर मूल्य के उतार-चढ़ाव को देखकर सौदे सम्पन्न कर सकते हैं। II-BSE की 'BOLT' के बाद दिल्ली शेयर बाजार में भी कम्प्यूटरकृत ऑन लाइन ट्रेडिंग प्रणाली (DOTS Delhi Online Trading System) को 29 जनवरी, 1996 से प्रारंभ किया गया।
- **एन.ए.वी. (NAV- Net Asset Value)**– किसी भी फंड के NAV से आशय उसकी सम्पत्तियों के बाजार मूल्य का उसके मूल्यांकन की तिथि पर, दायित्वों के ऊपर आधिक्य से है। दूसरे शब्दों में यह वह रकम है जिसे उस दिन कंपनी या फंड के समर्पित (बंद) होने पर कंपनी के अंशधारी सामूहिक रूप से भुगतान के रूप में प्राप्त करेंगे। NAV की एक इकाई को अंशों के यूनिट की संख्या से भाग देकर ज्ञात करते हैं।
- **जंक बॉण्ड (Junk Bond)**– जंक बॉण्ड वे बॉण्ड हैं जिनकी रेटिंग नीची हो, लेकिन जिन पर प्राप्त प्रतिफल की दर ऊँची हो। इससे संबंधित बाजार को उच्च प्रतिफल ऋण बाजार भी कहते हैं।
- **केर्ब ट्रेडिंग (Kerb Trading)** – स्टॉक एक्सचेंज मार्केट की बिल्डिंग के बाहर स्टॉक एक्सचेंज के ही समय में या उसके बाद प्रतिभूतियों में अवैध ट्रेडिंग को केर्ब ट्रेडिंग कहते हैं।
- **स्टैग (Stag)** – ऐसे लोग जो प्राइमरी मार्केट में विनियोग करना पसंद करते हैं, सेकेंडरी मार्केट में स्टैग कहलाते हैं।
- **ब्लूचिप शेयर**– पूँजी बाजार तथा उद्योग जगत में अत्याधिक ख्याति (Goodwill) वाली बड़ी कंपनियों के इक्विटी शेयर को 'ब्लूचिप' कहते हैं। ये कंपनियाँ ऐसी हैं जिसका बाजार पूँजीकरण बहुत अधिक होता है ये स्थिर (Stable) होती हैं और इनके शेयर की तरलता अधिक होती है। ये शेयर बहुत अधिक मांग में रहते हैं। इन्हें ग्रोथ शेयर भी कह सकते हैं।
- **बोनस शेयर स्किप शेयर**– संचित निधि के पूँजीकरण के परिणामस्वरूप वर्तमान अंशधारियों को ही आनुपातिक रूप में नये शेयर आवंटित कर दिये जाते हैं, सामान्यतया बिना कीमत के ऐसे शेयरों को बोनस शेयर कहते हैं।
- **राइट इश्यू शेयर (Right Issue Share)**– जब शेयर या प्रतिभूति निर्गमन के आवंटन में वर्तमान शेयर धारकों को प्राथमिकता दी जाए तो इस प्रकार के निर्गमित शेयर को राइट इश्यू शेयर कहते हैं।
- **बाजार पूँजीकरण (Market Capitalisation ; k Mcap)**– यह किसी कंपनी के किसी समय बिंदु पर अंशों के मूल्य तथा उस समय बिन्दु पर बाजार में बने हुए (Outstanding) शेयरों की संख्या के गुणनफल के बराबर होगा, जब किसी स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध अंशों को उसके बाजार में प्रचलित मूल्य से गुणा करके पूँजीकरण ज्ञात किया जाता है तो स्टॉक एक्सचेंज को बाजार पूँजीकरण कहा जाता है।
- **लार्ज कैप कंपनियाँ**– वे कंपनियाँ, जिनका बाजार पूँजीकरण 10,000 करोड़ रुपये या इससे अधिक हो।
- **मिड (मिडिल) कैप कंपनियाँ**– वे कंपनियाँ हैं, जिनका बाजार पूँजीकरण 10,000 करोड़ रुपये से कम पर 2500 करोड़ रुपये से अधिक हो।
- **स्मॉल कैप कंपनियाँ**– वे कंपनियाँ, जिनका बाजार पूँजीकरण 2500 करोड़ रुपये से कम हो।
- **डीमैट (डीमैटिरीपलाइजेशन) एकाउंट**– शेयर बाजार में कारोबार करने के लिए डीमैट खाता खुलवाना पड़ता है। इसके लिए एंटेड्स प्रूफ और परमानेंट अकाउंट नंबर (पैन) आवश्यक होता है। इन शर्तों के पूरा होने पर ही डीमैट खाता खोला जाता है। यह खाता मान्यता प्राप्त ब्रोकरेज फर्म या बैंक से खुलवाया जा सकता है। इस खाते के खुलने पर सदस्यों को एक कोड नंबर दिया जाता है और उसी नंबर के आधार पर शेयरों की खरीद तथा बिक्री होती है।
- **प्रतिभूतियों या शेयर का डीमैटाइजेशन (डीमैटीकरण)**– किसी डिपॉजिटरी के साथ इलेक्ट्रॉनिक विधि से शेयर या प्रतिभूति का रखना डीमैटाइजेशन (डीमैटीकरण) कहलाता है। इसके अंतर्गत शेयर धारक शेयर को भौतिक रूप से अपने पास नहीं रखता, बल्कि किसी डिपॉजिटरी को सौंप देता है जो उसे अपने पास इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से रखती है। इस प्रकार के शेयर को डीमैट शेयर कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप, शेयरों की चोरी, कपटपूर्ण व्यवहार या जालसाजी के द्वारा हस्तान्तरण, हस्तान्तरण में विलंब, सर्टीफिकेट के संबंध में रिकॉर्ड रखने की कागजी कार्यवाही से निवेशक बच जाते हैं।
- **प्रतिभूतियों का सूचीकरण या सिक्वोरिटीज की लिस्टिंग का आशय**– स्टॉक एक्सचेंज में ट्रेडिंग के लिए आवश्यक है कि शेयर को एक स्टॉक एक्सचेंज में रिकॉर्ड कराया जाए। शेयर की रिकॉर्डिंग ही सूचीकरण या लिस्टिंग कहलाती है। कोई भी कंपनी एक से अधिक स्टॉक एक्सचेंज में लिस्टिंग करा सकती है।
- **शेयर के पुनर्क्रय प्रक्रिया का आशय (Meaning of Buyback of Shares)**– किसी कंपनी द्वारा अपने ही अंशों का अंशधारियों से बाजार में क्रय किया जाना शेयर का पुनर्क्रय या बाइबैक कहलाता है। शेयरों के पुनर्क्रय के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे –
 - कंपनी के पास जब नकद आधिक्य होता है और उसके पास निवेश का कोई वांछित विकल्प नहीं होता है, तो वह अपने ही शेयर के पुनर्क्रय का निर्णय लेती है। इसके परिणामस्वरूप कंपनी के बचे हुए शेयर का निवल मूल्य (Net worth) बढ़ जाती है तथा उसके प्रति शेयर अर्जन (Earning) की मात्रा भी बढ़ जाती है। बाजार में कंपनी के अंशों का मूल्य बढ़ जाता है, यदि कंपनी चाहे तो इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए अपने नये अंश प्रीमियम पर निर्गमित कर सकती है।
 - उस स्थिति में भी कोई कंपनी पुनर्क्रय का निर्णय ले सकती है जब पूँजी बाजार में उसके शेयर की कीमत गिर रही हो तथा अंशधारियों का विश्वास गिर रहा हो। इसे उठाने के लिए कंपनी पुनर्क्रय का निर्णय ले सकती है जैसा हाल में रिलायंस इंडस्ट्रीज ने किया।
 - कभी-कभी कंपनी शेयर बाजार में अपनी सूचीबद्धता समाप्त करने के लिए शेयरों का पुनर्क्रय कर सकती है।
- **ट्रेडिंग एंड सेटलमेंट साइकिल या T₁, T₂ की धारणा**– प्रतिभूतियों के क्रय संबंधी व्यवहार के शुरु तथा अंतिम भुगतान तथा इस प्रकार अंतिम सेटलमेंट के बीच लगने वाले समय को हम ट्रेडिंग एंड सेटलमेंट साइकिल कहते हैं।

- **मार्जिन ट्रेडिंग**- मार्जिन ट्रेडिंग भारत में एक नयी धारणा है। 18 सितंबर, 2001 को रिजर्व बैंक ने शेयर में मार्जिन ट्रेडिंग की वित्तीय व्यवस्था करने की अनुमति दे दी। मार्जिन ट्रेडिंग के अंतर्गत कोई भी निवेशक अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक विनियोग कर पाता है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति शेयर के क्रय मूल्य का केवल 40 प्रतिशत मार्जिन के रूप में लगाता है, शेष रकम की वित्तीय व्यवस्था, बैंक अथवा स्टॉक ब्रोकर के द्वारा होती है। शेयर का स्वामित्व तो विनियोजक के पास होता है पर बैंक द्वारा दिए गये ऋण के पीछे शेयर प्रत्याभूति कोलैटरल (Collateral) के रूप में बने रहते हैं। मार्जिन ट्रेडिंग का प्रमुख उद्देश्य बाजार में तरलता की वृद्धि करना है।
- **सिक्वोरिटाइजेशन**- इसके अंतर्गत 'अंतरल सम्पत्तियों' को एक तरह से व्यापार योग्य सिक्वोरिटीज में बदला जाता है, जिन्हें पास थ्रू सर्टिफिकेट (Pass through certificates-PTC) कहते हैं, इसके अंतर्गत जिन संपत्तियों का सिक्वोरिटाइजेशन किया जाता है उनकी साख विश्वसनीयता (Credit Worthiness) के आधार पर पहचान की जाती है, उनकी रेटिंग की जाती है और उनकी आड़ (Backing) में प्रतिभूति निर्गत की जाती है।

हेज फण्ड (Hedge Fund)

- Hedge Fund वह वित्तीय संस्थान होते हैं। जो उच्च शुद्ध सम्पत्ति वाले व्यक्तियों एवं संस्थागत निवेशकों को अपनी इकाईयों का विक्रय करके कोष एकत्रित करते हैं।
- इनकी इकाईयों को कम से कम एक निर्धारित मात्रा में खरीदा जाता है।
- इनकी इकाईयों को कम-से-कम एक वर्ष से पहले नहीं बेचा जा सकता है।
- इनके कोष को वित्तीय विशेषज्ञ द्वारा अधिक जोखिम वाली प्रतिभूतियों में दीर्घकालिक दृष्टिकोण से लगाया जाता है।

जोखिम पूँजी कम्पनी/कोष (Venture Capital Company)

- ये वित्तीय संस्थान फर्मों को नई तकनीक के वाणिज्यिक प्रयोग के लिए वित्त प्रदान करते हैं।
- ये संस्थान अधिकांश धन वित्तीय सहायता के रूप में प्रदान करते हैं।
- ये कम्पनियाँ (वित्तीय संस्थान) केवल चयनित क्षेत्रों में वित्त प्रदान करते हैं। जैसे- Infosys, VCC, RVCL, IDBIVCF आदि।

हैजिंग (Hedging)

- यदि कोई फर्म किसी वस्तु का भंडारण करना चाहती है तथा उसे भविष्य में कीमतें कम होने की आशंका है, तो वह उस स्टॉक को वर्तमान कीमत पर किसी आने वाली तिथि पर बेचने का सौदा कर लेती है।
- यदि वस्तुतः नियत तिथि तक कीमत गिर जाती है तो जहाँ भंडार में सुरक्षित स्टॉक पर फर्म को हानि होगी, वहीं अग्रिम बाजार के सौदे में उतना ही लाभ हो जाएगा। हैजिंग या इस सुरक्षात्मक कदम का उद्देश्य लाभ कमाना न होकर अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करना है।

स्टॉक मार्केट से जुड़े समसामयिक मुद्दे (Current Issues Related to Stock Market)

लखनऊ नगर निगम बॉण्ड्स: बी.ए.ई. में सूचीबद्ध

- लखनऊ नगर निगम द्वारा जारी किए गए 200 करोड़ रुपये मूल्य वाले नगर निगम बॉण्ड्स को 'बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज' (B.S.E.) में 2 दिसंबर, 2020 को सूचीबद्ध किया गया।
- यह बॉण्ड लखनऊ नगर निगम द्वारा 13 नवंबर, 2020 को जारी किया गया

था। नगर निगम बॉण्ड्स जारी करने वाला लखनऊ, देश का 9वाँ शहर (अन्य 8 शहर: बंगलुरु, अहमदाबाद, लुधियाना, नासिक, इंदौर, नागपुर, मदुरई तथा विशाखापत्तनम) है।

- 2 दिसंबर, 2020 को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने मुंबई में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE) के बेल समारोह (Bell Ceremony) में हिस्सा लिया और इसी दिन लखनऊ नगर निगम द्वारा जारी बॉण्ड्स को सूचीबद्ध भी किया गया।
- अमृत (AMRUT) योजना प्रारंभ होने के बाद उत्तर भारत तथा उत्तर प्रदेश से जारी होने वाला यह पहला नगर निगम बॉण्ड है, जिसे भारत सरकार के आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय द्वारा अमृत मिशन (अटल नवीकरण और शहरी परिवर्तन मिशन) के तहत प्रोत्साहित किया गया है।
- कुल जारी किए गए 100 करोड़ रुपये के इश्यू (100 करोड़ रुपये का ग्रीन शू ऑप्शन भी शामिल) हेतु कुल 450 करोड़ रुपये की निविदाएं (Bids) प्राप्त हुईं, जो इश्यू के आकार का 4.5 गुना है।
- लखनऊ नगर निगम बॉण्ड की परिपक्वता अवधि 10 वर्ष है।
- इसमें निवेश करने पर निवेशकों को 8.5 प्रतिशत की दर से वार्षिक ब्याज प्राप्त होगा।
- लखनऊ नगर निगम के बॉण्ड इश्यू को इंडिया रेटिंग्स ने 'एए' (AA) और ब्रिकवर्क रेटिंग्स ने 'AA(CE)' रेटिंग दी है।

सोशल स्टॉक एक्सचेंज (Social Stock Exchange: SSE)

हाल ही में, भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (सेबी/ SEBI) द्वारा सोशल स्टॉक एक्सचेंज (SSE) पर तकनीकी समूह (Technical Group: TG) की रिपोर्ट को सार्वजनिक किया गया।

तकनीकी समूह की प्रमुख सिफारिशें

- निगमित प्रतिष्ठानों, राजनीतिक और धार्मिक संगठनों को SSE तंत्र का उपयोग करके निधि जुटाने के लिए पात्र न माना जाए।
- लाभकारी सामाजिक उद्यमों (For Profit Enterprise: FPEs) (FPEs का आशय लाभ कमाने के उद्देश्य से बने उद्यम से है) गैर-लाभकारी संगठनों (Not for Profit Organisations: NPOs) दोनों को SSE प्लेटफॉर्म का उपयोग करने की अनुमति दी जानी चाहिए, बशर्ते वे सामाजिक कल्याण और प्रभाव को प्रदर्शित करने में सक्षम हों।
- संगठन के प्रकार के आधार पर, NPOs और FPEs के लिए विभिन्न प्रकार के वित्तपोषण साधनों की SSE द्वारा अनुमति दी जानी चाहिए।
 - ✓ NPOs के लिए निधि जुटाने हेतु उपलब्ध साधनों में इक्विटी, जीरो कूपन प्रिंसिपल बॉण्ड (ZCZP), डेवलपमेंट इंपैक्ट बॉण्ड (DIBs), सोशल इंपैक्ट फंड जिसे वर्तमान में सोशल वेंचर फंड (SVP) के रूप में जाना जाता है, इसमें 100% दान लेने और दान देने का प्रावधान शामिल है और म्यूचुअल फंड के माध्यमों से निवेशकों द्वारा दान शामिल हैं।
 - ✓ इक्विटी, ऋण, डेवलपमेंट इंपैक्ट बॉण्ड और सोशल वेंचर फंड के माध्यम से FPEs धन जुटा सकेंगे।
- SSE के लिए क्षमता निर्माण कोष (Capacity building fund) में 100 करोड़ रुपये की धनराशि होनी चाहिए।
- सतत विकास लक्ष्यों के तहत नीति आयोग द्वारा निर्धारित की गई व्यापक गतिविधियों पर आधारित एक सूची तैयार की गई, जिनमें SSE संलग्न हो सकते हैं।
 - ✓ इनमें भूख, निर्धनता, कुपोषण और असमानता का उन्मूलन; महिलाओं तथा लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, क्यूूर, इन्टर्सेक्स, एसेक्सुअल+(LGBTQIA+) समुदायों के सशक्तिकरण द्वारा लैंगिक समानता को बढ़ावा देना; ग्रामीण खेलों को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण; और मलिन बस्तियों का विकास, किफायती आवास आदि शामिल हैं।

सोशल स्टॉक एक्सचेंज (SSE) के बारे में

- SSE वस्तुतः एक विनियमित निधियन प्लेटफॉर्म के रूप में कार्य करता है, जो लाभकारी सामाजिक उद्यमों (For-profit Social Enterprises: FPEs) और गैर-लाभकारी संगठनों (Not-for-Profit Organisations: NPOs) को सामाजिक प्रयोजन हेतु निधि जुटाने में सक्षम बनाता है।
 - वर्तमान में, जिन माध्यमों से सामाजिक क्षेत्रक (FPEs और NPO) वित्त-पोषण प्राप्त करते हैं, उनमें निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate Social Responsibility: CSR), सामाजिक/पर्यावरणीय प्रभाव सृजित करने वाले निवेश (Impact Investing), परोपकारी/सरकारी अनुदान आदि शामिल हैं।
- यह सामाजिक संगठनों (FPEs व NPOs) और इम्पैक्ट इन्वेस्टर्स, विशेष रूप से संस्थागत निवेशकों को एकजुट करता है, जहाँ इम्पैक्ट इन्वेस्टर्स या संस्थागत निवेशक सूचीबद्ध संगठनों से बॉण्ड के रूप में हिस्सेदारी (Stake) खरीद सकते हैं।



- यह संगठनों के सामाजिक और पर्यावरण मिशन को संरक्षित करने के लिए एक तंत्र प्रदान करता है, जिससे निवेशकों को निवेश के माध्यम से संगठनों के सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का शमन करने का अवसर मिलता है।

साथ ही, इस निवेश में वित्तीय प्रतिफल प्रदान करने की क्षमता भी होती है। कुछ सर्वाधिक प्रतिष्ठित SSEs हैं: यूनाइटेड किंगडम (सोशल स्टॉक एक्सचेंज), कनाडा (सोशल वेंचर कनेक्शन), साउथ अफ्रीका (साउथ अफ्रीकन सोशल इनवेस्टमेंट एक्सचेंज), सिंगापुर (इम्पैक्ट इन्वेस्टमेंट एक्सचेंज) आदि।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा राज्य विकास ऋण के लिए प्रथम बार खुले बाजार परिचालन का आयोजन {RBI Conducted the First-ever Open Market Operation (OMO) in State Development Loans (SDL)}

- भारत में, केंद्र सरकार द्वारा, ट्रेजरी बिल और बॉण्ड या दिनांकित प्रतिभूतियाँ दोनों ही जारी किए जाते हैं, जबकि राज्य सरकारें केवल बॉण्ड या दिनांकित प्रतिभूतियाँ जारी करती हैं, जिन्हें राज्य विकास ऋण (SDL) कहा जाता है।
 - SDLs राज्य सरकारों द्वारा जारी किए गए बॉण्ड हैं, जिन पर ब्याज दरें सामान्यतया केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों G-secs से अधिक प्रदान की जाती हैं।
 - राज्य विकास ऋण, G-sec के समान सुरक्षित होते हैं, क्योंकि राज्यों को उप-संप्रभु (sub-sovereign) माना जाता है।
 - SDLs को सर्वाधिक चलनिधि अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) हेतु उपयोग किया जा सकता है तथा मार्केट रेपो के माध्यम से उधार लेने और साथ ही साथ चलनिधि समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility) के तहत RBI के अधीन पात्र संस्थाओं से उधार प्राप्त करने के लिए भी संपादिक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
- RBI द्वारा OMOs का संचालन बाजार में रुपये की तरलता की स्थिति को समायोजित करने के उद्देश्य से बाजार से/को सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद/बिक्री के माध्यम से किया जाता है।

मुद्रा, मुद्रास्फीति, बैंकिंग, रिजर्व बैंक तथा मौद्रिक नीति (Currency, Inflation, Banking, Reserve Bank and Monetary Policy)

मुद्रा (Money)

मुद्रा बाजार में होने वाले लेन-देन को समझने के लिए मुद्रा को समझना आवश्यक है। कोई भी वस्तु जो सभी प्रकार के आर्थिक व्यवहारों (जिसमें ऋण भी सम्मिलित है) को पूरा करने में भुगतान के माध्यम के रूप में सामान्यतया स्वीकार की जाती है, उसे हम मुद्रा कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मुद्रा केवल वह नहीं है जिसका निर्गमन केन्द्र सरकार तथा रिजर्व बैंक करता है, जिसे आप सिक्कों या कागज के नोट के रूप में देखते हैं और जिसे आप सामान्यतया मुद्रा मानते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि वे सभी वस्तुएँ या प्रपत्र मुद्रा हैं जो मुद्रा का कार्य करती हैं। इसी प्रकार उक्त उदाहरण के आधार पर मुद्रा के दो रूप हैं-

- वह मुद्रा जिसका निर्गमन सरकार या रिजर्व बैंक ने किया है। इसे हम वैधानिक मुद्रा कह सकते हैं।
- वह मुद्रा जिसका निर्गमन बैंक ने किया जैसे चेक (ऐसा भी हो सकता है कि आपके खाते में पैसा नहीं हो तो भी बैंक द्वारा प्रदत्त सुविधा के अंतर्गत आप चेक देने के हकदार हैं, जिसे हम साख मुद्रा (Credit Money) कहते हैं। इस प्रकार इसके अन्तर्गत चलन मुद्रा, समायोजित बैंक जमा या वे सभी सम्पत्तियाँ जो नजदीकी रूप में विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त हो सकें, वे सभी आती हैं।

मुद्रा की एक विशेषता होती है जिसे हम तरलता (Liquidity) कहते हैं। कोई भी वस्तु बिना किसी हानि के (बिना अपने मूल्य में कमी के) यदि नकद रूप या मुद्रा में परिवर्तित की जा सके तो इसे हम पूर्ण तरल वस्तु कहेंगे। चूँकि मुद्रा तो नकद रूप में ही है, इसलिए इसे हम सबसे अधिक तरल सम्पत्ति कहेंगे। यदि आप वस्तुओं के उपलब्ध ढाँचे (Spectrum) पर विचार करें तो आप पायेंगे कि वस्तुओं में तरलता के अंश में (Degree of Liquidity) में अन्तर होता है। कुछ सम्पत्तियों में बहुत कम तरलता होती है अर्थात् जिन्हें बेचकर नकद मुद्रा में परिवर्तित करने पर बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती है। पर कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो पर्याप्त मात्रा में तरल हैं जिन्हें रुपये में परिवर्तित करने पर मूल्य की हानि अत्यन्त ही कम होती है जैसे सरकार द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियाँ, ऐसी सम्पत्तियाँ पूर्णतया तो तरल मुद्रा नहीं हैं पर ये वस्तुएँ अत्यन्त ही तरल हैं जिन्हें मुद्रा में परिवर्तित करने पर हानि अत्यन्त ही कम हो सकती है। इन वस्तुओं को हम समीपस्थ या नजदीकी मुद्रा (Near Money) कहते हैं। समीपस्थ मुद्रा विनिमय माध्यम का कार्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं करती है, क्योंकि पहले यह मुद्रा में परिवर्तित होती है (यह परिवर्तन प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों हो सकता है) फिर विनिमय माध्यम या भुगतान के साधन के रूप में प्रयुक्त होती है।

मुद्रा के प्रकार (Types of Money)

मुद्रा को विभिन्न दृष्टिकोणों से विभाजित किया गया है। मुद्रा को चलन के आधार पर तीन प्रकार से विभाजित किया गया है-

- **पत्र मुद्रा या करेन्सी नोट (Currency Notes)**- ये केवल कागज के टुकड़े हैं जिनका अपना कुछ भी आंतरिक मूल्य नहीं है। पत्र मुद्रा के संबंध में दायित्व सामान्यतः रिजर्व बैंक का होता है पर इसके भुगतान का अन्तिम (वास्तविक) दायित्व केन्द्र सरकार का होता है।
- **जमा मुद्रा (Deposit Money) या बैंक मुद्रा या साख मुद्रा**- बैंकों द्वारा खोले गये मांग जमा (Demand Deposit) मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि इन जमाओं को प्रत्यक्ष रूप से हस्तांतरित न करके चेकों के द्वारा

हस्तांतरित किया जा सकता है। मांग जमा खातों पर चेक निर्गत किए जा सकते हैं। जब चेक के द्वारा, विनिमय के माध्यम या भुगतान के साधन के रूप में मांग जमा को आहर्ता (Drawer) से भुगतान प्राप्तकर्ता (Payee) को हस्तान्तरण हो जाता है, तब यह मांग जमा मुद्रा का कार्य करती है।

- **आधारिक मुद्रा (Fiduciary Money)**- ऐसी मुद्रा जो इसे निर्गत करने वाले अधिकारी या संस्था के द्वारा दिये गए विश्वास पर चलती है, उसे हम विश्वास पर आधारित मुद्रा (Fiduciary Money) कहते हैं। उदाहरण- चेक, ड्रॉफ्ट, विभिन्न प्रकार के बिल।

मुद्रा को कानूनी आधार पर दो रूपों में बाँटा गया है-

- **वैधानिक मुद्रा (Legal Tender) या अनुज्ञापित मुद्रा (Fiat Money)**- सिक्के तथा करेन्सी नोट अनुज्ञापित मुद्रा कहलाती हैं। ये मुद्राएँ सरकार की अनुज्ञा या ऑर्डर पर चलती हैं, इसलिए इन्हें वैधानिक मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है। ये मुद्राएँ ऐसी हैं जिनको स्वीकार करना कानूनी बाध्यता है। वैधानिक मुद्रा सीमित ग्राह्य या असीमित ग्राह्य हो सकती हैं। छोटे सिक्के सामान्यतया सीमित मुद्रा होते हैं जिनको एक सीमा तक ही भुगतान के माध्यम के रूप में स्वीकार करना वैधानिक अनिवार्यता होती है। उस सीमा के बाद इन्हें अस्वीकार किया जा सकता है। भारत में छोटे सिक्के तथा 1 रुपये के नोट या 1 रुपये का सिक्का सीमित ग्राह्य वैधानिक मुद्रा हैं।
- **गैर-वैधानिक मुद्रा (Non Legal Tender)**- फिड्युशियरी मुद्रा ऐसी मुद्राएँ हैं जिनके स्वीकार करने के संबंध में कोई कानूनी बाध्यता नहीं होती, यह मुद्रा विशुद्ध रूप से विश्वास पर चलती है जैसे- ड्रॉफ्ट, चेक, बिल आदि।

भारत में मुद्रा की पूर्ति की धारणा

मुद्रा की पूर्ति के संबंध में यह बात शुरू में ही स्पष्ट होनी चाहिए कि मुद्रा, उसको निर्गमन करने वाली संस्था-सरकार, केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक आदि (अधिक व्यापक रूप में गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं) का मौद्रिक दायित्व होता है जैसे रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित मुद्रा पर रिजर्व बैंक का मौद्रिक दायित्व होता है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में सृजित सम्पूर्ण मौद्रिक दायित्व ही मुद्रा की पूर्ति प्रदर्शित करती हैं।

रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति की व्याख्या

रिजर्व बैंक ने पहली बार मुद्रा की पूर्ति (Money Supply) की अवधारणा पर विचार करने के लिए 1961 में प्रथम कार्यकारी समूह का गठन किया, जिसने अपनी रिपोर्ट 1964 में दी।

वर्ष 1967-68 तक RBI मुद्रा की पूर्ति का केवल एक ही माप - M प्रकाशित करता था जो $M = C + DD + OD$ के रूप में व्यक्त था। जहाँ C करेन्सी, मांग जमा (DD Demand Deposit) तथा अन्य जमा (OD-Other Deposit) को प्रदर्शित करता है जो बाद में M_1 के रूप में व्यक्त हुआ। वर्ष 1964 की रिपोर्ट शुद्ध बैंकिंग सिद्धान्त पर आधारित थी। वर्ष 1967-68 के बाद RBI ने व्यापक मुद्रा की धारणा (M_2) स्वीकार की।

रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा की व्यापकता को समझने के लिए दूसरा कार्यकारी समूह वर्ष 1977 में गठित किया गया जिसने तरलता के अंश (Degree of Liquidity) के आधार पर निर्मांकित चार माप प्रस्तुत किए तथा जिसे उसी रूप में RBI ने स्वीकार किया और इसे उसी रूप में अब भी प्रदर्शित करता है RBI के अनुसार

मुद्रा के अंतर्गत निम्न को शामिल किया जाता है-

M_1 = लोगों के पास करेन्सी, जिसमें RBI चलन में पत्र मुद्रा, रुपये तथा छोटे सिक्के तथा बैंकों के पास नकदी (Cash in Hand) सम्मिलित करता है। + सभी व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों के पास जनता की निवल मांग जमायें (Demand Deposits)। + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमायें।
 $M_2 = M_1 +$ पोस्ट ऑफिस से सेविंग बैंक या बचत बैंक जमायें।

डाकघर की बचत जमा वस्तुतः वाणिज्यिक बैंक बचत की तुलना में कम तरल होती है। क्योंकि इन समराशियों का बहुत कम हिस्सा चेक के द्वारा आहरण योग्य होता है, किसी भी सप्ताह में इनके आहरण की संख्या पर प्रतिबंध होता है तथा प्रत्येक आहरण की राशि की अधिकतम सीमा तय होती है।

$M_3 = M_1 +$ बैंकों तथा सहकारी बैंकों की समय जमायें (Time Deposits)

इसे व्यापक या विस्तृत मुद्रा के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इसमें धन की व्यापक परिभाषा शामिल है M_1 व M_3 में मुख्य अंतर सावधि जमा शामिल करने का है। M_4 में सावधि जमा को शामिल नहीं किया जाता क्योंकि यह वास्तविक अर्थों में तरल नहीं है।

$M_4 = M_3 +$ पोस्ट ऑफिस की कुल जमायें जिसमें राष्ट्रीय बचत पत्र, किसान विकास पत्र, इन्दिरा विकास पत्र, पी.पी.एफ. आदि सम्मिलित हैं।

- M_1 की धारणा इनमें सबसे तरल धारणा है तथा M_4 सबसे कम तरल धारणा है।
- M_3 को हम व्यापक मुद्रा कहते हैं पर इसमें पोस्ट ऑफिस की कोई भी जमा सम्मिलित नहीं होती है। मौद्रिक नीति के क्रियाशीलन के लिए सबसे व्यापक तथा व्यावहारिक आधार यही धारणा देती है। यह सब से महत्वपूर्ण धारणा है। सामान्यतया मुद्रा की पूर्ति के रूप में M_3 को ही लिया जाता है। मौद्रिकवादी अर्थशास्त्री M_3 को ही मुद्रा की पूर्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। हम जितना ही M_1 से M_4 या उससे अधिक की ओर जायेंगे, तरलता में कमी आती जायेगी तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे हम M_4 से M_1 की ओर आयेंगे तरलता में वृद्धि होती जायेगी। M_1 सबसे अधिक तरल तथा M_4 सबसे कम तरल मुद्रा को अभिव्यक्त करता है।

उच्च शक्ति प्राप्त मुद्रा- देश के मौद्रिक प्राधिकरण RBI की कुल देयता को मौद्रिक आधार या उच्च शक्ति मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा का आशय उस मुद्रा से है, जो लोगों द्वारा करेन्सी (c) बैंकों के सुरक्षित कोष R तथा RBI की अन्य जमाओं के रूप में होती है। यह मुद्रा RBI एवं भारत सरकार द्वारा जारी की जाती है।

मुद्रा जमा अनुपात- यह लोगों द्वारा बैंकों में जमा की गई राशि की तुलना में उनके द्वारा करेन्सी में धारित राशि का अनुपात है।

$$\text{मुद्रा जमा अनुपात} = \frac{\text{संचरण में मुद्रा}}{\text{मांग जमा}}$$

यह विशुद्ध रूप से व्यवहार संबंधी मापदंड है जो अन्य बातों के साथ-साथ व्यय के मौसमी पैटर्न पर निर्भर करता है। उदाहरण- त्योहारों के दौरान मुद्रा जमा अनुपात बढ़ जाता है, क्योंकि ऐसी अवधि के दौरान अतिरिक्त व्यय की पूर्ति हेतु जमाओं को नकद शेष राशि में परिवर्तित कर देते हैं।

वाई. वी. रेड्डी कमेटी (तीसरा कार्यकारी समूह) तथा मुद्रा की पूर्ति की अवधारणा (Y.V. Reddy & Concept of Money Supply)

चक्रवर्ती कमेटी ने मौद्रिक प्रणाली के क्रियाशीलन के संबंध में अपनी रिपोर्ट वर्ष 1985 में दी। उल्लेखनीय है कि चक्रवर्ती कमेटी मुद्रा की पूर्ति की अवधारण

॥ से संबंधित नहीं थी। यह कमेटी भारतीय मौद्रिक प्रणाली की पुनर्संरचना (Restructuring of Monetary System in India) से संबंधित थी।

उसके बाद विशेष रूप से 1992 के बाद वित्तीय क्षेत्र में अनेक परिवर्तन आये। इन परिवर्तनों के संदर्भ में तथा मौद्रिक समुच्चयों पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या के लिए दिसंबर, 1997 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित समिति ने वाई.वी. रेड्डी की अध्यक्षता में मुद्रा की पूर्ति, विश्लेषण तथा संकलन की विधि, आदि पर विचार किया। वर्ष 1997 के इस कार्यकारी समूह ने अपनी रिपोर्ट जून, 1998 में दी। कार्यकारी समूह की प्रमुख संतुतियाँ इस प्रकार रहीं, जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंक ने मान लिया-

- **चार प्रकार के मौद्रिक समुच्चयों (Monetary Aggregates) का संकलन-** M_0 (मौद्रिक आधार या रिजर्व मुद्रा), M_1 (संकीर्ण मुद्रा), M_2 तथा M_3 (विस्तृत मुद्रा), जिनका संकलन प्रगतिशील तरलता मानक के अनुरूप तैयार बैंकिंग क्षेत्र में तुलन पत्र (Balance Sheet) के आधार पर किया जायेगा।
- **तीन तरलता समुच्चयों (Liquidity Aggregates) - L_1 , L_2 तथा L_3 का संकलन-** इसके अंतर्गत उन सभी वित्तीय लेन-देन व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है जो बैंक जमा की तरह लगते हैं पर जिन्हें मौद्रिक सम्पत्तियों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता क्योंकि वित्तीय संस्थाएँ जो इन व्यवहारों से संबंधित हैं वो गैर मौद्रिक वित्तीय मध्यस्थ हैं जो बैंकों की तरह साख का सृजन नहीं करती हैं। इन गैर मौद्रिक वित्तीय मध्यस्थों जिनमें डाकघर भी सम्मिलित हैं, की सम्पत्तियाँ दीर्घकालीन (कम तरल) होती हैं जबकि बैंकों की सम्पत्तियाँ अल्पकालीन होती हैं।
- रिजर्व बैंक द्वारा M_0 का संकलन साप्ताहिक आधार पर किया जाता है, जबकि M_2 तथा M_3 का संकलन पाक्षिक आधार पर किया जाता है। तरलता समुच्चयों - L_1 तथा L_2 से संबंधित आँकड़े मासिक आधार पर तथा L_3 से संबंधित आँकड़े त्रैमासिक आधार पर प्रकाशित किये जाते हैं।
- नये मौद्रिक समुच्चयों में दो आधारभूत परिवर्तन किए गये हैं। प्रथम, डाकघर जमाओं को मुद्रा की पूर्ति के अंतर्गत नहीं सम्मिलित किया जाता जैसे पहले M_2 तथा M_4 के प्रबंधन में किया जाता था क्योंकि पोस्ट ऑफिस बैंकिंग क्षेत्र का भाग नहीं होता, पर इन्हें सभी तरलता समुच्चयों की गणना में सम्मिलित किया जाता है। दूसरा, कार्यकारी दल ने मौद्रिक समुच्चयों की गणना में निकासी कसौटी को सम्मिलित करने का सुझाव दिया।

मौद्रिक समुच्चय क्या हैं? (What is Monetary Aggregates)

मौद्रिक समुच्चय एक व्यापक धारणा है, जो कि मुद्रा की पूर्ति का आकलन करती है, मुद्रा की पूर्ति में सभी प्रकार की मुद्राएँ शामिल की जाती हैं। जो इस प्रकार है- M_0 (प्रारक्षित मुद्रा) = चलन में करेन्सी + RBI के पास बैंकों का जमा + RBI के पास अन्य जमा

(मौद्रिक समुच्चयों में इसके पूर्व प्रारक्षित मुद्रा को सम्मिलित नहीं किया गया) M_1 = जनता के पास करेन्सी + बैंकों के पास मांग जमा राशियाँ + RBI के पास जमा (कार्यकारी दल ने प्रारक्षित मुद्रा तथा M_1 की परिभाषा में कोई परिवर्तन नहीं किया पर इसके दो नये समग्र समुच्चयों की संस्तुति की) - M_2 (जो बैंकिंग क्षेत्र के केवल गैर व्याज मुक्त मौद्रिक दायित्वों को सम्मिलित करता है) तथा M_3 (व्यापक मुद्रा, जो M_2 के अलावा दीर्घकालीन सावधि जमा भी सम्मिलित करता है।)

M_1 + बैंकों के पास मांग जमा राशियाँ में काल दायित्वों का भाग + बैंकों द्वारा जारी किये गए जमा प्रमाणपत्र (Certificates of Deposit) + काल जमा राशियाँ (विदेशी मुद्रा अनिवासी खाता (FCNR-B) जमा राशियाँ को छोड़कर) जिनकी अवधि एक वर्ष तक की है।

M_2 + काल जमाराशियाँ (FCNR-B जमाराशियाँ को छोड़कर) जिनकी अवधि एक वर्ष से अधिक है + गैर-बैंकों वित्तीय संस्थाओं से बैंकों द्वारा लिए गए अभियाचना ऋण (Call Borrowings)।

तरलता समुच्चय (Liquidity Aggregate)

$L_1 = M_3$ (नया) + सम्पूर्ण पोस्ट ऑफिस बचत बैंक जमा (नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट छोड़कर)।

$L_2 = L_1$ + दीर्घकालीन ऋण देने वाली संस्थाओं तथा पुनर्वित्तीयन-संस्थाओं के साथ सावधि जमा + पुनर्वित्तीय संस्थाओं द्वारा दीर्घकालीन उधारी + वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्गत जमा प्रमाण-पत्र।

$L_3 = L_2$ + गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों द्वारा जनता से प्राप्त की गई जमाराशियाँ।
उल्लेखनीय है कि रेड्डी कमेटी की तरलता समग्रों (Liquidity Aggregates) की धारणा को रिज़र्व बैंक ने स्वीकार कर लिया। आर.बी.आई. बुलेटिन 2000 से ही L_1 , L_2 तथा L_3 संबंधी आँकड़े प्रकाशित कर रही है। उल्लेखनीय है कि L_1 तथा L_2 संबंधी आँकड़े मासिक आधार पर तैयार किये जाते हैं। रेड्डी कमेटी के अनुसार M_0 साप्ताहिक और M_1 , M_2 तथा M_3 मासिक आधार पर तैयार किया जायेगा। रिज़र्व बैंक मुद्रा समुच्चयों के संबंध में वर्ष 1977 से चली आ रही M_1 , M_2 तथा M_3 की धारणा अब भी स्वीकार करता है और यही आर्थिक समीक्षा में भी प्रकाशित होता है जिसे वह पाक्षिक (15 दिन) आधार पर तैयार करता है। रेड्डी कमेटी M_0 प्रारक्षित मुद्रा को व्यक्त करता है पर M_1 , M_2 , M_3 की धारणा इस कमेटी से संबंधित नहीं है।

प्रारक्षित मुद्रा

प्रारक्षित मुद्रा उन वित्तीय सम्पत्तियों को प्रदर्शित करती है जिन्हें रिज़र्व बैंक अपने क्रियाशीलन के दौरान प्राप्त करता है तथा जो व्यापारिक बैंकों को साख मुद्रा के सृजन के आधार के रूप में शक्ति प्रदान करती है और बैंकों द्वारा रिज़र्व के रूप में प्रयोग में लायी जाती हैं। इसीलिए इस मुद्रा को आधार मुद्रा भी कहते हैं।

प्रारक्षित मुद्रा (M_0) को उच्चशक्ति प्राप्त (High Powered Money) मुद्रा भी कहा जाता है। बैंकिंग क्षेत्र की साख सृजन शक्ति इसी मुद्रा पर निर्भर करती है। इसे 'H' के रूप में भी इंगित करते हैं। इस मुद्रा को रिज़र्व बैंक के निवल मौद्रिक दायित्व (ANet Monetary Liability) के रूप में प्रकट करते हैं। रिज़र्व बैंक खुले बाजार में चाहे जनता से या बैंक से प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करे, दोनों स्थिति में उच्च मुद्रा में वृद्धि होगी।

प्रारक्षित मुद्रा को इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं- चलन में मुद्रा जो कि बैंक के पास नकद रूप में रखी है (C), RBI के पास बैंकों का जमा (R), RBI की अन्य मुद्रा (R_1)। $M_0 = C + R + R_1$

M_0 को प्रभावित करने वाले कारक

- RBI द्वारा केन्द्र तथा राज्य सरकारों को दिया गया निवल ऋण, इसमें केन्द्र के संबंध में-
 - ऋण तथा अग्रिम।
 - RBI द्वारा धारित ट्रेजरी बिल्स।
 - सरकार की देय तिथि प्रतिभूतियों की धारिता।
 - RBI के पास केन्द्र सरकार का जमा।
- RBI द्वारा बैंकों तथा व्यापारिक क्षेत्रों को दिया गया ऋण।
- RBI की निवल विदेशी विनिमय सम्पत्ति।
- जनता के प्रति सरकार का करेन्सी दायित्व।
- RBI की निवल गैर-मौद्रिक दायित्व।

इन सभी में होने वाला परिवर्तन प्रारक्षित मुद्रा M_0 को प्रभावित करेगा इसके

अतिरिक्त M_0 को निम्न प्रक्रियाएँ परिवर्तित करेगी।

- सरकारी बजट व्यवहार M_0 को प्रभावित कर सकता है। यदि बजटरी घाटा शून्य हो या ऐडहॉक ट्रेजरी बिल्स शून्य हों या बजटरी व्यवहार के कारण उत्पन्न घाटे की आपूर्ति सरकार RBI से उधारी लेकर नहीं करती तो बजटरी व्यवहार M_0 को प्रभावित नहीं करेगा, पर यदि अवमूल्यन के कारण देश के निर्यात में वृद्धि या आयात में कमी हो तो निवल रूप से देश में विनिमय कोष में वृद्धि होगी फलस्वरूप M_3 में वृद्धि हो सकती है।
- अवमूल्यन के कारण RBI की विदेशी विनिमय सम्पत्ति का मूल्य कम हो जायेगा, इसलिए M_0 में कमी होगी।
- व्यापारिक बैंकों द्वारा विदेशी विनिमय सम्पत्तियों की धारिता में वृद्धि M_0 में वृद्धि नहीं लायेगी।

M_3 को प्रभावित करने वाले कारक

मुद्रा की पूर्ति (M_3) को प्रभावित करने वाले कारकों के संबंध में रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने निम्नांकित विश्लेषण प्रस्तुत किया है, इन्हें रिज़र्व बैंक के परिवर्तन के स्रोत भी कहा जाता है।

सरकार को निवल बैंक साख ऋण

- RBI द्वारा सरकार को निवल साख
 - सरकार का दायित्व
 - RBI के पास सरकार का जमा

सरकार को अन्य बैंकों का ऋण

- व्यापारिक क्षेत्र को बैंकों का साख
 - व्यापारिक क्षेत्र को RBI का ऋण
 - व्यापारिक क्षेत्र को अन्य बैंकों का ऋण
- बैंकिंग क्षेत्र की निवल विदेशी संपत्ति
 - RBI के पास निवल विदेशी विनिमय संपत्ति
 - अन्य बैंकों के पास निवल विदेशी संपत्ति
- जनता के प्रति सरकार का करेन्सी दायित्व
- बैंकिंग क्षेत्र का निवल गैर मौद्रिक दायित्व
 - RBI का निवल गैर मौद्रिक दायित्व
 - बैंकों का निवल गैर मौद्रिक दायित्व

उक्त 1 से 3 तक उल्लेखित तरलता कारक मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करते हैं। इसे इस संदर्भ में भी देखा जा सकता है कि M_3 मुद्रा विदेशी विनिमय संपत्ति की धारिता में किस प्रकार वृद्धि लाते हैं।

सरकार को निवल बैंक ऋण

- बैंकिंग क्षेत्र द्वारा सरकार को दिये गए निवल साख के दो रूप होते हैं - रिज़र्व बैंक द्वारा दी गयी साख तथा अन्य बैंकों द्वारा दी गयी साख।
- जब सरकार रिज़र्व बैंक से अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उधार लेती है तो वह अपनी प्रतिभूतियाँ बैंक को देती है। ये प्रतिभूतियाँ बैंक की सम्पत्तियों में वृद्धि लाती है। परिणामस्वरूप बैंक के मौद्रिक दायित्व या मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार जब सरकार व्यापारिक बैंकों से अपनी प्रतिभूतियों के आधार पर उधार लेती है, इन प्रतिभूतियों के मूल्य के बराबर बैंक एक मांग जमा सरकार के नाम खोल देती है तथा साख मुद्रा का सृजन करती है।

वाणिज्यिक क्षेत्र को बैंक द्वारा ऋण

वाणिज्यिक क्षेत्र को दिए जाने वाले साख के दो रूप हो सकते हैं- आर.बी.आई.

द्वारा वाणिज्यिक क्षेत्र को दिये गए ऋण, इसका प्रभाव वैसा ही होगा जैसा रिज़र्व बैंक द्वारा सरकार को दिये गए ऋण का होता है। दूसरे व्यापारिक बैंक द्वारा दिये गए ऋण का भी प्रभाव ऊपर दिये गए विश्लेषण के अनुरूप होगा, ऐसा करने में व्यापारिक बैंक साख मुद्रा का सृजन करेंगे।

विदेशी विनिमय संपत्ति

विदेशी विनिमय संपत्ति से तात्पर्य किसी देश के केंद्रीय बैंक के पास विनिमय द्वारा अर्जित संपत्ति से है। इसे यदि भारत देश के संदर्भ में समझे तो, यदि कोई देश दूसरे देश को निर्यात करता है तो उसके पास दूसरे देश की मुद्रा आएगी। यदि वह देश वस्तुओं का आयात करता है तो भुगतान अन्य देश की मुद्रा में करना होगा, जिससे उसके देश की मुद्रा का बहिर्प्रवाह होगा, जिस कारण डॉलर की पूर्ति में कमी होगी।

भारतीय व्यापारी आयात/निर्यात की स्थिति में मुद्रा की प्राप्ति रिज़र्व बैंक से करता है तो निर्यात में वह डॉलर के बदले रुपये की प्राप्ति करता है एवं आयात में रुपये के बदले में डॉलर प्राप्त करता है। अब यदि संपूर्ण क्रिया में रिज़र्व बैंक हस्तक्षेप न करें और व्यापारी रुपये/डॉलर का क्रय-विक्रय कर व्यापार में भुगतान करें, तो इन स्थितियों में रिज़र्व बैंक के पास न तो विनिमय संपत्ति में वृद्धि होगी और न ही मुद्रा की पूर्ति बढ़ेगी। इस कारण रिज़र्व बैंक एक प्रभावपूर्ण हस्तक्षेपक के रूप में बाजार में बना रहता है। इन स्थितियों में मुद्रा के संबंध में स्थितियों को नियंत्रित करने के लिए RBI बाजार से डॉलर खरीदना आरंभ करता है, जिससे M_3 मुद्रा में वृद्धि होती है।

मौद्रिक दायित्व

रिज़र्व बैंक के गवर्नर द्वारा नोटों पर I Promise to pay लिखा होता है। इसका अर्थ यह है कि जो नोट रिज़र्व बैंक छापता है उसके साथ ही उसके मूल्य के बराबर उसका जनता के प्रति भुगतान का दायित्व बढ़ जाता है, इसे ही मौद्रिक दायित्व के रूप में समझा जाता है अर्थात् यदि सरकार द्वारा मुद्रा का निर्गमन किया जाता है तो उसका मौद्रिक दायित्व बढ़ जाता है।

भारत में पत्र मुद्रा तथा करेंसी (Paper Money & Currency in India)

भारत में 1861 ई. के पूर्व जब पेपर करेंसी अधिनियम पारित नहीं हुआ था। तब निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे 'द जनरल बैंक ऑफ इण्डिया', 'द बैंक ऑफ बंगाल', 'द बैंक ऑफ हिन्दुस्तान', 'ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स' आदि ने विभिन्न देवनागरी लिपियों में कागजी मुद्रा निर्गत की, पर सरकार के एकाधिकार के अंतर्गत पत्र मुद्रा का निर्गमन 1861 के बाद हुआ। वर्ष 1935 में पत्र मुद्रा के निर्गमन का दायित्व आर.बी.आई. को दे दिया गया। वर्ष 1938 में जार्ज पंचम के चित्र वाले नोटों के स्थान पर जार्ज षष्ठम के चित्र वाले नोट जारी किये गए। 1947 के पश्चात् सारनाथ के सिंहों (अशोक चिह्न) वाली मुद्रा प्रचलन में आयी तथा 1996 में महात्मा गाँधी सीरीज प्रचलन में आयी जो अब तक विद्यमान है।

भारत के प्रमुख नोट छापने के केंद्र इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस, नासिक (महाराष्ट्र)

नासिक रोड स्थित भारत प्रतिमुद्रणालय (India Security Press) में डाक सम्बन्धी लेखन सामग्री, डाक एवं डाक-भिन्न टिकटों, अदालती एवं गैर-अदालती स्टाम्पों, बैंकों (RBI तथा SBI) के चेकों, बॉण्डों, राष्ट्रीय बचत पत्रों आदि के अलावा राज्य सरकारों, सरकारी क्षेत्रों के उपक्रमों, वित्तीय निगमों आदि की प्रतिभूति पत्रों की छपाई की जाती है।

करेन्सी नोट प्रेस, नासिक (महाराष्ट्र)

नासिक रोड स्थित करेंसी नोट प्रेस 10, 50, 100, 500 तथा 2000 रुपये के बैंक नोट छापती है और उनकी पूर्ति करती है।

बैंक नोट प्रेस, देवास (मध्य प्रदेश)

देवास स्थित बैंक नोट प्रेस 20 रुपए, 50 रुपए, 100 रुपए और 500 रुपए के उच्च मूल्य वर्ग के नोट छापती है। बैंक नोट प्रेस की स्याही का कारखाना प्रतिभूति पत्रों की स्याही का निर्माण भी करता है।

साल्बोनी (पश्चिम बंगाल) तथा मैसूर (कर्नाटक) के भारतीय रिज़र्व बैंक नोट मुद्रण लिमिटेड

दो नए एवं अत्याधुनिक करेंसी नोट प्रेस मैसूर (कर्नाटक) तथा साल्बोनी (पश्चिम बंगाल) में स्थापित किए गए हैं। यहाँ RBI के नियंत्रण में करेंसी नोट छापे जाते हैं। इन नए मुद्रणालयों में वर्ष 1998-99 तक 10,000 मिलियन करेंसी नोटों को अतिरिक्त वार्षिक मुद्रण का अनुमान था। देवास तथा नासिक रोड स्थित करेंसी नोट प्रेसों में प्रतिवर्ष 6,000 मिलियन करेंसी नोटों का मुद्रण होता है।

सिक्योरिटी पेपर मिल, नेफा नगर होशंगाबाद (मध्य प्रदेश)

बैंक और करेंसी नोट कागज तथा नॉन-ज्यूडिशियल स्टाम्प पेपर की छपाई में प्रयोग होने वाले कागज का उत्पादन करने के लिए सिक्योरिटी पेपर मिल, होशंगाबाद में वर्ष 1967-68 में चालू की गई थी।

टकसाल (Mints)

सिक्कों का उत्पादन करने तथा सोने और चाँदी की परख करने एवं तमगों का उत्पादन करने के लिए भारत सरकार की चार टकसालें मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद तथा नोएडा में स्थित हैं। मुम्बई, हैदराबाद और कोलकाता की टकसालें काफी समय पहले क्रमशः 1830, 1903 और 1950 में स्थापित की गई थीं। मुम्बई तथा कोलकाता की टकसालों में सिक्कों के अलावा विभिन्न प्रकार के पदकों (मेडल) का भी उत्पादन किया जाता है।

सिक्योरिटी प्रिंटिंग एंड माइनिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड (SPMCIL)

सरकार द्वारा पूर्णतः धारित एक निगम है जो सरकार के प्रिंट, करेंसी प्रेस, सिक्योरिटी प्रेस, सिक्योरिटी पेपर मिल आदि पर प्रशासनिक नियंत्रण रखता है। SPMCIL के ऊपर डायरेक्टर ऑफ करेंसी का प्रशासनिक नियंत्रण होता है। दूसरा पत्र मुद्रा प्रिंटिंग प्रेस भारतीय रिज़र्व बैंक नोट मुद्रण प्राइवेट लिमिटेड है, जो कि रिज़र्व बैंक की सभिसिडियरी है।

एक रुपये का नोट वित्त मंत्रालय द्वारा निर्गमित किया जाता है जिस पर वित्त सचिव के हस्ताक्षर होते हैं, जबकि एक रुपये से अधिक के नोटों का निर्गमन रिज़र्व बैंक द्वारा होता है तथा इन नोटों पर हस्ताक्षर रिज़र्व बैंक के गवर्नर के होते हैं।

भारत अपने रुपये की अलग पहचान रखने वाला विश्व का पांचवां देश बन गया है, शेष चार मुद्राएं हैं- अमेरिकी डॉलर, ब्रिटिश पाउंड स्टर्लिंग, जापानी येन और यूरोपीय यूरो।

मुद्रास्फीति (Inflation)

मुद्रास्फीति गणितीय आकलन पर आधारित एक अर्थशास्त्रीय अवधारणा है, जिससे बाजार में मुद्रा का प्रसार व वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि या कमी की गणना की जाती है।

मूल्य स्तर किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं के औसत मूल्यों को व्यक्त करता है। मुद्रा के मूल्य को किसी एक वर्ष को आधार मानकर चालू वर्ष के मूल्यों के संबंध में सूचकांक प्राप्त किया जाता है और इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधार वर्ष की तुलना में मूल्य स्तर बढ़ रहा है या घट रहा है। यह मूल्य स्तर में वृद्धि की दर ही स्फीति की दर प्रदर्शित करती है।

सामान्यतः मूल्य सूचकांक को हम दो रूप में मापते हैं- थोक मूल्य निर्देशांक तथा उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक।

किसी भी वस्तु का मूल्य (प्रशासित कीमतों को छोड़कर जिनका मूल्य बाह्यरूप में सरकार अथवा किसी संस्था द्वारा निर्धारित होता है) सामान्यतया मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। अतः मूल्य स्तर मांग, पूर्ति तथा लागत को प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करेगा।

मुद्रा की क्रयशक्ति मूल्य स्तर की व्युत्क्रम (Reciprocal) होती है और मूल्य स्तर का बढ़ना मुद्रा की क्रयशक्ति का गिरना प्रदर्शित करेगा क्योंकि इस स्थिति में पहले की अपेक्षा मुद्रा से कम क्रय किया जा सकेगा। इसी प्रकार मूल्य स्तर की

कमी मुद्रा की क्रयशक्ति में वृद्धि प्रदर्शित करेगी।

जब हम मुद्रा की पूर्ति की बात करते हैं तो केवल मुद्रा की संख्या ही नहीं लेते बल्कि उसकी चलन गति (Velocity) भी लेते हैं। चलन गति से आशय है कि कोई मुद्रा कितनी बार वस्तुओं के क्रय-विक्रय में प्रयोग आ रही है। इस प्रकार मुद्रा की एक इकाई कितनी मुद्रा की इकाई का कार्य करती है।

मुद्रास्फीति उस स्थिति को कहते हैं जब पूर्ति में वृद्धि न हो पाने के कारण या पूर्ति के स्थिर रहने के कारण, मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में मांग आधिक्य के कारण मूल्य स्तर में लगातार तेज, संचयी तथा स्थायी वृद्धि हो रही है। इस प्रकार मूल्य स्तर में वृद्धि मुद्रास्फीति की आवश्यक दशा है।

मुद्रास्फीति के प्रकार (Types of Inflation)

मुद्रास्फीति के अनेक रूप हो सकते हैं। मुद्रास्फीति को विभिन्न आधारों जैसे- दर, कारक आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

- **रेंगती या नम्र स्फीति (Creeping or Moderate Inflation)** - जब स्फीति की वार्षिक दर एक अंक में हो (1% से 5% तक) तो इसे नम्र या रेंगती स्फीति कहा जाता है। इस प्रकार की स्थिति लंबी अवधि तक बनी रहती है।
- **ट्रोटिंग या तीव्र मुद्रास्फीति (Trotting Inflation)** - मुद्रास्फीति की ऐसी स्थिति जिसमें वृद्धि दर 5% से 10% के मध्य होती है।
- **कूदती या गैलोपिंग स्फीति (Gallop Inflation)** - यह अत्यधिक उच्च स्फीति होती है, जिसे शुरूआती दौर में गैलोपिंग तथा अंतिम दौर पर हाइपर माना जाता है। सेमुएलसन के अनुसार, 'यदि स्फीति की वार्षिक दर दो या तीन अंकीय हो जैसे 20, 100, 200 प्रतिशत तो गैलोपिंग स्फीति कहलाती है'। गैलोपिंग स्फीति में स्फीति की वार्षिक दर बहुत ऊँची होती है जैसा कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी की स्फीति को माना जाता है।
- **अति स्फीति या हाइपर स्फीति (Hyper Inflation)** - जब स्फीति की दर तीन अंकों से भी बहुत अधिक हो जाए तो वह अति स्फीति कहलाती है। अति स्फीति की चर्चा सबसे पहले केनन ने की थी। अति स्फीति की स्थिति में पत्र मुद्रा बिल्कुल बेकार हो जाती है, मुद्रा से लोगों का विश्वास खत्म हो जाता है।
- **खुली मुद्रास्फीति (Open Inflation)** - जब स्फीति पर किसी प्रकार का नियंत्रण न हो और मूल्यस्तर स्वतः बिना रोक टोक के ऊपर आ जाए तो इस प्रकार की मुद्रास्फीति खुली स्फीति कहलाती है।
- **मांग प्रेरित मुद्रास्फीति (Demand Pull Inflation)** - जब समग्र पूर्ति की अपेक्षा समग्र मांग को प्रभावित करने वाले कारक अधिक प्रभावी हो इस प्रकार मांग पूर्ति से अधिक हो जाए तो इसे मांग प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।
- **लागत जन्य मुद्रास्फीति (Cost Push Inflation)** - लागत में वृद्धि के कारण यदि मूल्य में वृद्धि आए या वस्तुओं की पूर्ति में अत्यधिक कमी के कारण मूल्यस्तर में वृद्धि आए तो इस प्रकार की स्फीति लागत जन्य मुद्रास्फीति कहलाती है। यह दृष्टिकोण मानता है कि 'मूल्य स्तर में वृद्धि, समग्र मांग में वृद्धि या अधिकता के कारण नहीं होगी बल्कि उत्पादन लागत के किसी अंग में या संघटक जैसे मजदूरी, लागत, लाभ सीमा (Profit Margin), कच्चा माल या सामग्री (Raw Material) की लागत में वृद्धि के कारण होगी।'
- **संरचनात्मक स्फीति (Structural Inflation)** - संरचनात्मक स्फीति का प्रतिपादन गुनार मिडाल ने किया। मिडाल का यह मानना है कि कम विकसित देशों में अर्थव्यवस्था की संरचना में होने वाले असंतुलन - खाद्य में कमी, संसाधन असंतुलन, विदेशी विनिमय अवरोध, अवस्थापनात्मक अवरोध तथा सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिबंध इत्यादि मुद्रास्फीति के कारण होते हैं तथा ऐसी स्फीति संरचनात्मक मुद्रास्फीति कहलाती है।

- **स्थायी मुद्रास्फीति (Core Inflation)** - इस धारणा का प्रतिपादन वर्ष 1981 में इस्कस्टेन (Eckstein) ने किया। हाल के वर्षों में अधिकांश देशों के मौद्रिक प्रबंधन में 'स्थायी मुद्रास्फीति' की संकल्पना को महत्व प्राप्त हुआ है। इसका संबंध बास्केट में शामिल कमोडिटीज की कीमत में होने वाले बदलाव से है। कोर स्फीति, कीमत स्तर में इस सिद्धांत के अनुसार मुद्रास्फीति दीर्घकालिक प्रवृत्ति की परिचायक है।
- **मुद्रा अपस्फीति (Deflation)** - यह मुद्रास्फीति की पूर्णतया विपरीत स्थिति है। 'मुद्रा अपस्फीति' मूल्य स्तर के गिरने की वह अवस्था है जो कि उस समय उत्पन्न होती है जब वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन मौद्रिक आय की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ता है। अपस्फीतिक तभी होती है, जब वार्षिक मुद्रास्फीति दर शून्य प्रतिशत की दर से भी नीचे गिर जाती है।
- **अवस्फीति (Disinflation)** - इसका अर्थ मुद्रास्फीति की दर में धीमी किन्तु सतत कमी होना है। इसमें मुद्रास्फीति में गिरावट तो आती है, परन्तु यह सकारात्मक बनी रहती है।
- **रिसेशन या अवमंदन (Recession)** - इस स्थिति में निरंतर तिमाहियों में GDP की नकारात्मक वृद्धि दर अंकित की जाती है। इसके प्रमुख संकेतक हैं- निवेश में कमी होना, अर्थव्यवस्था के उत्पादन में गिरावट होना, उत्पादन की तुलना में मांग में कमी आना आदि।
- **मंदी (Depression)** - यह रिसेशन का चरम रूप होता है। ऐसी स्थिति तब आती है जब अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति बहुत अधिक समय तक व्याप्त हो। यदि GDP में 10% से अधिक की गिरावट दर्ज की जाती है तो ऐसी स्थिति को मंदी मान लिया जाता है। इसके प्रमुख संकेतक हैं- वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग एवं उपभोग में अत्यधिक कमी होना, व्यापारिक विश्वास का पतन होना, निवेश में तीव्र गिरावट होना आदि। मंदी का एक प्रमुख उदाहरण 1930 की महामंदी है।
- **मुद्रास्फीति स्पाइरल (Inflation Spiral)** - किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की ऐसी स्थिति जहाँ मजदूरी की दर वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि करती है तथा वस्तुओं के मूल्य मजदूरी की दर में वृद्धि करते हैं। इसे मजदूरी-मूल्य सर्पिल के रूप में भी जाना जाता है।
- **रिफ्लेशन (Reflation)** - उच्च स्तरीय आर्थिक विकास हेतु बेरोजगारी को कम करने तथा मांग को बढ़ाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा इस उपकरण का प्रयोग किया जाता है। इसके तहत सरकार द्वारा उच्च सार्वजनिक व्यय व कर कटौती की जाती है।
- **स्टैगफ्लेशन (Stagflation)** - ऐसी स्थिति जिसमें स्फीति तथा मंदी (Recession) दोनों की स्थिति साथ-साथ बनी रहे उसे स्टैगफ्लेशन कहते हैं। GDP वृद्धि दर की अपेक्षा मुद्रास्फीति की दर अधिक होती है।
- **स्क्यूफ्लेशन (Skewflation)** - यह एक वस्तु या वस्तुओं के एक छोटे समूह तक सतत तथा संचयी रूप से केंद्रित होती है तो इसे स्क्यूफ्लेशन कहते हैं। यह संकल्पना पहली बार आर्थिक समीक्षा 2009-10 में प्रयुक्त हुई पर अब इसका प्रयोग अन्य देशों की स्फीति में भी होने लगा है। इस प्रकार की विषमता भारत में 2010 के शुरू में स्पष्ट रूप से देखी गयी जिसमें कि खाद्य मुद्रास्फीति कई महीनों तक 20 प्रतिशत के पास बनी रही और WPI स्फीति 10 प्रतिशत के आस-पास बनी रही।

मुद्रास्फीति के उत्पन्न होने के कारण (Reasons for Generation of Inflation)

मुद्रास्फीति के सैद्धान्तिक पक्ष की उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि मुद्रास्फीति को लाने वाले कारणों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है- **मांग आधिक्य के फलस्वरूप मूल्य स्तर में वृद्धि लाने वाले कारक-**

- घाटे की वित्तीय व्यवस्था जिसके फलस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि, लोगों की मौद्रिक आय में वृद्धि के फलस्वरूप माँग में वृद्धि हो।
- जब सरकारी व्यय में तेजी से वृद्धि हो जो कि गुणक प्रभाव के कारण मौद्रिक आय में वृद्धि लाएँ और माँग में वृद्धि हो।
- सरकार द्वारा प्रत्यक्ष कर की दर में कमी के फलस्वरूप लोगों की व्यय योग्य आय में वृद्धि।
- परोक्ष कर की दर में वृद्धि जो वस्तुओं के मूल्य में प्रत्यक्ष वृद्धि लाएँ।
- बैंकों द्वारा अधिक मात्रा में साख मुद्रा का निर्माण या लोगों को ऋण देना।
- विदेशी पूँजी के अधिक अन्तर्प्रवाह या किसी कारण से विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि के परिणामस्वरूप M_3 में वृद्धि।
- ऐसी परियोजनाओं पर अधिक व्यय जिनकी फलन अवधि लम्बी होने के कारण व्यय माँग में तो वृद्धि आये, परन्तु पूर्ति में वृद्धि न हो।
- जनसंख्या में तीव्र वृद्धि या शरणार्थियों के कारण जनसंख्या के आकार में वृद्धि के फलस्वरूप माँग में वृद्धि।
- ब्याज दर में कमी जिसके परिणामस्वरूप विनियोग व्यय तथा उपभोग व्यय (विशेष रूप से उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं पर) में वृद्धि।
- आर्थिक समीक्षा 2007-08 वस्तुओं के वैश्विक मूल्य तथा संबंधित देश की वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि के 4 कारणों की बात करता है-
 - विकासशील देशों में आय में तीव्र वृद्धि का मुख्य कारण खाद्यान्नों तथा खाद्य तेल की माँग में वृद्धि, बायोफ्यूल निर्माण में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं की माँग तथा मूल्य में वृद्धि हैं।
 - उत्पादन तथा स्टॉक में कमी के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कीमतों का बढ़ना।
 - उर्वरकों तथा फ्यूल के मूल्यों में वृद्धि के कारण कृषि लागत में वृद्धि।
 - मेटल के मूल्य में वृद्धि विशेष रूप से विकासशील देशों की माँग में वृद्धि के कारण।

मुद्रास्फीति की माप (Inflation Measurement)

किसी भी अर्थव्यवस्था में दो अवधियों में स्फीति दर को मापने के सामान्यतया दो तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं-

- मूल्य सूचकांक (Price Index- PI) में प्रतिशत परिवर्तन।
- GNP या GDP अवस्फीतिकारक (Deflator) में परिवर्तन।

मूल्य सूचकांक के प्रकार (Types of Price Index)

भारत में मूल्य सूचकांक (PI) के मुख्यतया तीन रूप माने जाते हैं। थोक मूल्य सूचकांक (WPI), उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) तथा उत्पादक मूल्य सूचकांक (Producers's Price Index- PPI)।

थोक मूल्य सूचकांक (Wholesale Price Index- WPI)

थोक मूल्य सूचकांक थोक वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तनों को प्रदर्शित करने वाला सूचकांक है। इसके आधार पर गणना की जाने वाली मुद्रास्फीति को हेडलाइन मुद्रास्फीति कहा जाता है। फिलीपींस जैसे कुछ देश स्फीति माप के लिए WPI को प्रयोग में लाते हैं। भारत में थोक मूल्य सूचकांक का संकलन उद्योग मंत्रालय के आर्थिक सलाहकार कार्यालय द्वारा मासिक स्तर पर होता है जो पहले साप्ताहिक स्तर पर होता था। WPI श्रृंखला में वस्तुओं की व्यापक मात्रा होती है और इसमें वस्तुओं को दिए गए भार का निर्धारण राष्ट्रीय लेखांकन के आधार पर किया जाता है।

- पहला थोक मूल्य सूचकांक 10 जनवरी, 1942 से शुरू होने वाले सप्ताह से शुरू हुआ जबकि आधार वर्ष 1939 = 100 लिया गया। समय के साथ WPI सूचकांक के आधार वर्ष में संशोधन किया जाता रहा।
- 14 अगस्त 2010 को नया थोक मूल्य सूचकांक जारी किया गया, इसमें निम्न महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे-
- अब WPI का आधार वर्ष 1993-94 के स्थान पर 2004-05 कर दिया गया था।
- थोक मूल्य अब मासिक आधार पर प्रदर्शित किया जाने लगा जो अब तक साप्ताहिक होता था।

2011-12 आधार वर्ष आधारित थोक मूल्य सूचकांक को मई 2017 में जारी किया गया। इसकी अनुशांसा सौमित्र चौधरी की अध्यक्षता में गठित कार्यदल के द्वारा की गयी थी इसके प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं-

- 2011-12 आधार वर्ष पर आधारित थोक मूल्य निर्देशांक की नयी श्रृंखला सूचकांक के तीन प्रमुख समूहों (प्राथमिक वस्तुएँ, ईंधन एवं ऊर्जा तथा विनिर्मित उत्पाद) को यथावत रखा गया। मर्दों की संख्या 697 कर दी गयी।
- मूल्य कोटेशन की संख्या में वृद्धि किए जाने से यह सूचकांक पहले से अधिक प्रतिनिधित्वकारी हो गया है। वस्तुओं के मूल्यों की गणना में अप्रत्यक्ष करों को शामिल नहीं किया गया, इस प्रकार यह सूचकांक

ऐसे कारक जो अर्थव्यवस्था में पूर्ति की मात्रा में कमी लाते हैं और इनके फलस्वरूप मूल्य स्तर में वृद्धि हो-

- आगत की कमी, बाढ़, सूखा होना, उत्पादकता में कमी आदि के कारण कृषि क्षेत्र से खाद्यान्नों की पूर्ति में कमी आये।
- राजनैतिक वातावरण की प्रतिकूलता, कच्चा माल, ऊर्जा की अनुपलब्धता, श्रमिकों की हड़ताल, पूँजी की अनुपलब्धता, व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण में कमी या सभी प्रकार के अवरोध जो औद्योगिक उत्पादन में कमी लाएँ।
- वस्तुओं की पूर्ति को कृत्रिम रूप से जान-बूझकर अवरोधित करना या वस्तुओं के स्टॉक के आधार पर बैंक से ऋण लेना तथा इस प्रकार बाजार में जान-बूझकर पूर्ति में कमी लाकर कृत्रिम कमी द्वारा।
- आयात, विशेष रूप से ऐसी वस्तुओं के आयात को प्रतिबन्धित करना या कमी लाना जिनकी कमी के कारण मूल्य बढ़ रहा है अथवा घरेलू पूर्ति पर ध्यान दिये बिना इन वस्तुओं का निर्यात करना।

ऐसे कारक जो वस्तुओं की लागत तथा मूल्य में वृद्धि लाते हैं-

- परोक्ष करारोपण, कर की ऊँची दर जो सामान्य रूप से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि लाती है, इसका प्रभाव अधिक गम्भीर होगा यदि माध्यमिक वस्तुएँ अत्यधिक करारोपित होती हैं।
- रेलवे सेवा, स्टील, सीमेंट, कोयला, पेट्रोल, डीजल आदि के मूल्य में वृद्धि जो लागत में वृद्धि लाये।
- ब्याज दर में वृद्धि, सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा क्राउडिंग आउट के फलस्वरूप ऋण की लागत में वृद्धि।
- तेल संकट तथा पेट्रोल के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य में तेजी से वृद्धि जो लागत को प्रभावित करके मूल्य स्तर में वृद्धि लाएँ।
- उर्वरक की लागत में वृद्धि कृषि वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि लाती है।

वैश्विक कारक-

- यदि किसी देश की अर्थव्यवस्था अधिक खुली अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ती है तो विश्व के अन्य देशों में होने वाली आर्थिक क्रियाओं तथा आर्थिक विकास सम्बन्धी व्यवहार का प्रभाव उस देश की अर्थव्यवस्था पर भी उतना ही पड़ता है।

अंतर्राष्ट्रीय तौर पर अवधारणात्मक रूप से उत्पादक मूल्य सूचकांक के समान हो गया।

- मर्दों के योगों (Aggregates) की गणना के लिए गुणात्मक माध्य का उपयोग किया जाने लगा।
- खाद्य पदार्थों और खाद्य उत्पादों को सम्मिलित करके पहली बार एक नए थोक खाद्य मूल्य सूचकांक (Whole Sale Food Price Index) की शुरुआत की गयी।
- उल्लेखनीय है कि भारत में मुद्रास्फीति की माप के लिए WPI का प्रयोग किया जाता है परंतु निम्नांकित कारणों से यह मुद्रास्फीति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत नहीं करता-
- WPI में वस्तुएँ शामिल की जाती हैं तथा खाद्यान्नों का भार अत्यंत कम दिया जाता है।
- WPI में भारत में खाद्यान्नों का भार लगभग 22% है, जबकि यह अधिकांश जनसंख्या के उपभोग का 60% से अधिक हिस्सा होता है।
- खाद्यान्न स्फीति WPI पर आधारित स्फीति माप द्वारा प्रदर्शित नहीं होता है।
- WPI में थोक मूल्य को शामिल किया जाता है फुटकर मूल्य नहीं, जबकि अधिकांश जनता का सम्बन्ध फुटकर मूल्य से होता है।
- WPI की गणना करते समय बहुत सी सेवाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता, जबकि GDP में सेवाओं का योग लगभग 58 प्रतिशत है।
- WPI पर आधारित स्फीति माप सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं करती जैसा कि पिछले कुछ वर्षों में डॉक्टर की फीस में तीन गुना वृद्धि हुई है और ऐसी ही वृद्धि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में भी देखी गई है लेकिन इसे स्फीति की गणना में सम्मिलित नहीं किया जाता।
- भारत सरकार कुछ वस्तुओं जैसे LPG, बिजली, चीनी आदि के मूल्य को नियंत्रित करने के लिए सब्सिडी देकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उपयोग करती है, इसके परिणामस्वरूप भी अर्थव्यवस्था में स्फीति का सही चित्र सामने नहीं आता है।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Index- CPI)

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, उपभोक्ताओं या परिवारों के एक सजातीय समूह के उपभोग में आने वाली वस्तुओं के आधार जीवन निर्वाह की लागत को प्रदर्शित करता है। इसीलिए इसे जीवन निर्वाह का लागत निर्देशांक (Cost of Living Index) भी कहते हैं। सी.पी.आई. में सम्मिलित की जाने वाली वस्तुओं को उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण के आधार पर ज्ञात किया जाता है तथा प्रत्येक वस्तु को दिए जाने वाले भार उनके ऊपर होने वाले व्यय के अनुपात के आधार पर निर्धारित किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि स्फीति संबंधी मासिक आँकड़े या निर्देशांक मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन के लिए स्थिति स्पष्ट करेंगे जबकि स्फीति संबंधी साप्ताहिक आँकड़े अल्पकालिक मांग पूर्ति संबंधी मुद्दों के प्रबंधन में मदद करेंगे।

विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-

- **उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-औद्योगिक श्रमिक (CPIIW)** - अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), द्वितीय श्रम आयोग और सांख्यिकीय आयोग की सिफारिशों के अनुपालन में श्रम ब्यूरो ने CPI-IW के आधार वर्ष 1982 को जनवरी 2006 में परिवर्तित करके 2001 कर दिया है तथा इसमें सम्मिलित वस्तुओं के भारांश को भी परिवर्तित करने का सुझाव दिया है। इस सूचकांक को एक महीने के अंतराल से जारी किया जाता है तथा इसकी बास्केट में 120-160 वस्तुएँ शामिल हैं। यह सूचकांक सरकारी कर्मचारियों (बैंक तथा दूतावास के कर्मचारियों को छोड़कर) के वेतन और मंहगाई भत्ते को

समायोजित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। वेतन आयोग की वेतन को संशोधित करने वाली सिफारिशें इसी आधार पर होती हैं। CPI-IW को अधिक व्यावहारिक माना जाता है और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के मंहगाई भत्ते की गणना के लिए इसे ही प्रयोग किया जाता है।

- **उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-कृषि श्रमिक (CPI-AL)** - इसका प्रयोग मूलतः विभिन्न राज्यों में कृषि मजदूरों हेतु न्यूनतम पारिश्रमिक में संशोधन के लिए किया जाता है। इसका आधार वर्ष 1986-87 है।
- **उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-ग्रामीण श्रमिक (CPI-RL)** - यह सूचकांक ग्रामीण श्रमिकों के उपभोग में आने वाली वस्तुओं के मूल्यों पर आधारित है। इसका आधार वर्ष 1986-87 है।
- **शहरी गैर मैनुअल कर्मचारियों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-UNME)** - (आधार वर्ष 1984-85 = 100) इसका सीमित उपयोग होता है। यह मूलतः एयरलाइंस, संचार बैंकिंग, बीमा और अन्य वित्तीय सेवाओं जैसे- भारत में कार्य कर रही कुछ विदेशी कंपनियों के कर्मचारियों के मंहगाई भत्ते के निर्धारण के लिए प्रयोग में लाया जाता था। इसे अप्रैल, 2008 से बंद कर दिया गया।

CPI में नवीनतम संशोधन

- 2011 में केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) द्वारा 2010 के आधार मूल्य के आधार पर CPI को संशोधित किया गया तथा इसे CPI (शहरी), CPI (ग्रामीण) तथा CPI (शहरी + ग्रामीण) में विभाजित किया गया। जनवरी 2015 में CSO ने इस सूचकांक का आधार वर्ष 2012 निर्धारित किया तथा CPI ग्रामीण में 448 मर्दों को तथा CPI शहरी में 460 मर्दों को शामिल किया गया।
- पुरानी शृंखला में परिवर्तन करते हुए एक नया छठवाँ समूह 'पान, तम्बाकू व मादक पदार्थ' शामिल किया गया। यह समूह पहले खाद्य, पेय एवं तम्बाकू समूह के तहत उप-समूह के रूप में वर्गीकृत था।
- इसी प्रकार अण्डा जो कि पहले 'अण्डा, माँस, मछली' के उप-समूह का हिस्सा था, इसे एक पृथक उप समूह के रूप में स्थापित किया गया।

लागत स्फीति सूचकांक

लागत स्फीति सूचकांक स्फीति का एक मापक है जिसका प्रयोग, संपत्तियों के विक्रय पर उत्पन्न पूँजी लाभ की गणना के लिए करारोपण के अंतर्गत किया जाता है। शहरी गैर शारीरिक श्रमिकों के संबंध में ठीक पिछले वर्षों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में औसत वृद्धि के 75% के आधार पर इस निर्देशांक की गणना की जाती है तथा इसकी घोषणा CBI द्वारा की जाती है।

कोर मुद्रास्फीति सूचकांक

इसके तहत ऊर्जा एवं खाद्य पदार्थों (परिवर्तनशील वस्तुएँ) को छोड़कर अर्थव्यवस्था की सभी वस्तुएँ एवं सेवाओं की गणना की जाती है। यह अर्थव्यवस्था में व्याप्त समग्र मांग में परिवर्तन को दर्शाती है।

उत्पादक मूल्य सूचकांक (Producer's Price Index)

यह उत्पादक के नजरिये से मूल्य में बदलाव को मापता है। इसमें सिर्फ मूल दामों का प्रयोग होता है। जबकि कर, ट्रेड मार्जिन एवं परिवहन लागत को इससे अलग रखा जाता है। इस सूचकांक को मंहगाई के आकलन हेतु बेहतर माना जाता है। क्योंकि इसमें प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर दामों के अंतर का चीजों के अंतिम उत्पाद के रूप में सामने आने से पहले पता लगाया जा सकता है। इसके बेहतर इस्तेमाल के कारण कई अर्थव्यवस्थाओं ने इसे अपना लिया है। देश में इसे

प्रारंभ करने के सिलसिले में सरकार द्वारा गठित कार्यदल (बी.एन. गोलदार की अध्यक्षता में) ने अगस्त 2017 में अपने सुझाव सरकार को सौंप दिये हैं।

सेवा मूल्य सूचकांक

भारत में सेवा क्षेत्र के मूल्यों में हुये परिवर्तनों को मापने हेतु अब तक किसी सूचकांक का विकास नहीं किया गया है। प्रो. अभिजीत सेन की अध्यक्षता में स्थापित कार्यदल एवं श्री रंगराजन की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग ने इस सूचकांक को विकसित करने की अनुशंसा की है। आर्थिक सलाहकार, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय विश्व बैंक की सहायता से देश में क्षेत्र-विशिष्ट सेवा मूल्य सूचकांक को विकसित करने का प्रयास कर रहा है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या GDP अवस्फीतिकारक (Deflator)

जब बाजार में प्रचलित मूल्य पर GDP ज्ञात किया जाता है तो इस चालू मूल्य पर व्यक्त मौद्रिक GDP को सामान्य GDP (Normal GDP) कहा जाता है और जब इसे किसी आधार वर्ष के स्थिर मूल्य के आधार पर व्यक्त करते हैं, जिसमें GDP पर पड़ने वाला स्फीति प्रभाव समाप्त हो जाता है, तो इसे वास्तविक GDP (Real GDP) या स्थिर मूल्य पर व्यक्त GDP कहा जाता है। मौद्रिक GDP को बदलते मूल्यों के आधार पर व्यक्त करते हैं, जबकि वास्तविक GDP को व्यक्त करने के लिए मूल्य में परिवर्तन को ही समाप्त कर दिया जाता है। मौद्रिक GDP में वृद्धि तथा वास्तविक GDP की वृद्धि का अन्तर ही GDP की कीमत (Price of GDP) में वृद्धि है और इसे ही GDP अवस्फीतिकारक (GDP Deflator) कहा जाता है। इसे ही अर्थव्यवस्था के मूल्यस्तर में परिवर्तन की माप के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर की वृद्धि या स्फीति की दर मापने का तरीका है।

$$\text{GDP अवस्फीतिकारण} = \frac{\text{चुने गए या चालू वर्ष का मूल्य सूचकांक}}{\text{आधार वर्ष का मूल्य सूचकांक}} \times 100$$

एक अन्य प्रकार के GDP अवस्फीतिकारक को जिसे ग्रहित GDP अवस्फीतिकारक (Implicit Deflator) भी कहा जाता है और जिसे सामान्यतया मुद्रा स्फीति को मापने के महत्वपूर्ण यंत्र के रूप में प्रयोग किया जाता है, इसे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं—

$$\text{GDP अवस्फीतिकारक} = \frac{\text{चालू वर्ष की मौद्रिक आय}}{\text{चालू वर्ष की मौद्रिक आय का वास्तविक मूल्य}} \times 100$$

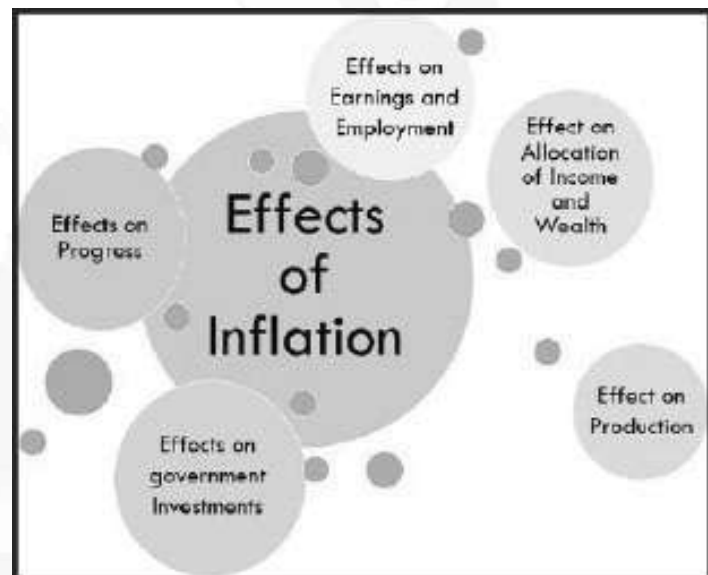
GDP या GNP अवस्फीतिकारक, स्फीति की माप का अत्यन्त ही व्यापक तथा महत्वपूर्ण मापक है। इसमें किसी अर्थव्यवस्था में किसी वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं तथा सेवाओं के सभी मूल्यों में परिवर्तन को शामिल किया जाता है, जबकि मूल्य निर्देशांक विधि में कुछ चयनित वस्तुओं के मूल्यों को ही शामिल किया जाता है। उल्लेखनीय है कि मौद्रिक राष्ट्रीय आय को अवस्फीतिकारक मापने के लिए हमें निर्देशांक की आवश्यकता होती है और यह मूल्य (Price) निर्देशांक तथा मात्रा (Quantity) निर्देशांक के आधार पर तैयार किया जा सकता है। मूल्य आधारित अवस्फीतिकारक को अधिक वरीयता दी जाती है, क्योंकि मात्रा निर्देशांक की अपेक्षा मूल्य सूचकांक अधिक स्थिर स्वभाव के होते हैं। चूँकि GDP अवस्फीतिकारक के अंतर्गत सभी वस्तुओं तथा सेवाओं तथा उनकी कीमतों को शामिल किया जाता है (GDP के आकलन के समय), इसलिए मुद्रास्फीति के मापक के रूप में इसे मूल्य निर्देशांकों की अन्य विधियों से अधिक व्यापक तथा विश्वसनीय विधि माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि यदि मुद्रास्फीति को वार्षिक आधार पर मापना है, तो GDP बाजार मूल्य अपस्फीतिकारक अधिक महत्वपूर्ण होता है। GDP अवस्फीतिकारक की गणना भारित निर्देशांक के आधार पर की जाती है। WPI की अपेक्षा CPHW तथा

CPI-IW की अपेक्षा GDP अवस्फीतिकारक अधिक व्यापक तथा व्यावहारिक हैं। अवस्फीतिकारक मापन की एक दूसरी विधि— निजी उपभोग व्यय के लिए अवस्फीतिक ज्ञात करना है। यह अवस्फीतिकारक उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (CPI-IW) पर ज्ञात किया जाता है। इस विधि से आकलित स्फीति दर को मौद्रिक उद्देश्य से अधिक प्रयोग में लाते हैं।

मुद्रास्फीति के प्रभाव (Effects of Inflation)

मुद्रास्फीति का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

- मुद्रास्फीति के फलस्वरूप देश की मुद्रा तथा संपत्तियों के मूल्य में क्षरण (Erosion) होगा।
- यह आय तथा संपत्ति का वितरण उन व्यक्तियों तथा समूहों के पक्ष में पुनर्वितरित करेगी जो अपनी आय तथा संपत्ति को मुद्रास्फीति से बचा सकते हैं तथा कम आय वाले व्यक्तियों को यह अधिक प्रभावित करती है।
- बढ़ते मूल्य स्तर की स्थिति में ऋणी या उधार लेने वाले अधिक फायदे में होते हैं क्योंकि समयान्तर में उनके द्वारा किए जाने वाले पुर्नभुगतान का वास्तविक मूल्य (वस्तु के रूप में मूल्य) कम हो जाता है और ऋणदाता या उधार देने वाले को हानि उठानी पड़ती है क्योंकि वास्तविक रूप में उसे कम मूल्य का भुगतान प्राप्त होता है।



- स्फीति के कारण वास्तविक आय में कमी होती है फलस्वरूप उपभोग को पूरा करने के बाद आय का बहुत कम भाग बचता है, जिससे बचत में कमी होती है। इतना ही नहीं मुद्रा के मूल्य में तेजी से गिरावट भावी बचत को हतोत्साहित करती है।
- अल्पकाल में निवेश प्रोत्साहित हो सकता है क्योंकि उत्पादक या व्यापारी वर्ग की लाभ सीमा में वृद्धि होगी पर दीर्घकाल में लागत में वृद्धि होने तथा भावी अनिश्चितता के कारण अर्थव्यवस्था में निवेश हतोत्साहित होगा।
- उच्च स्फीति उद्यमी को निवेश के लिए प्रोत्साहित कर सकती है जिसके फलस्वरूप आर्थिक वृद्धि प्रोत्साहित हो सकती है। उच्च स्फीति से निपटने के लिए केंद्रीय बैंक मंहगी मौद्रिक नीति (ऊँची ब्याज दर) अपनाएगा, जिससे निवेश में कमी आएगी।
- अल्पकाल में रोजगार बढ़ सकता है पर दीर्घकाल में यह तटस्थ (Neutral) या ऋणात्मक हो सकता है।

मुद्रास्फीति से करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय पर प्रभाव

- स्फीति स्वयं एक कर है जिसे स्फीति कर कहा जाता है जो कि एक प्रतिगामी कर है क्योंकि इसका सर्वाधिक भार उस पर पड़ता है, जिसके पास कम क्रयशक्ति है।
- स्फीति के कारण वस्तु का बाजार मूल्य बढ़ने से उपभोक्ता पर परोक्ष करारोपण (जो मूल्यानुसार होता है) का बोझ बढ़ जाता है। स्फीति के कारण आयकर दाता की मौद्रिक आय बढ़ जाती है।
- मुद्रास्फीति की स्थिति में समग्र मांग या व्यय का आधिक्य होता है पर मूल्य की वृद्धि के कारण चल रही परियोजनाओं की लागत बढ़ जाती है, जिससे परियोजनाओं पर होने वाले व्यय में वृद्धि हो जाती है, जिससे स्फीति में वृद्धि होती है।

मुद्रास्फीति से निर्यात, आयात तथा भुगतान संतुलन पर प्रभाव

- मुद्रास्फीति की उच्च दर भुगतान संतुलन के लिए बहुत ही खराब सिद्ध होती है।
- रिजर्व बैंक के अनुसार भारत तथा उसके व्यापार भागीदार देशों के बीच उच्च स्फीतिक अंतर के कारण भारतीय निर्यात की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में कमी आती है। घरेलू वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि के कारण निर्यात में कमी आती है तथा आयात में वृद्धि होती है। बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा स्फीति के माध्यम से चालू खाता घाटा तक विस्तृत हो जाता है तथा बाह्य अस्थिरता को बढ़ाता है।
- उच्च स्फीति के कारण विदेशी विनिमय दर में कमी आती है। उच्च स्फीति के कारण भारतीय वस्तुओं के मूल्य में अपने व्यापार, भागीदार देशों की तुलना में तेजी से वृद्धि होगी।
- उच्च स्फीति दर के कारण मुद्रा के मूल्य में गिरावट होगी, जिससे विदेशी विनिमय दर बढ़ेगी, निर्यात की प्रतिस्पर्धा में कमी होगी, अंतिम रूप में निवल निर्यात में कमी होगी तथा व्यापार शेष बढ़ेगा।
- स्फीति के नियंत्रण के लिए केंद्रीय बैंक को हस्तक्षेप की नीति अपनानी होगी, उसे ब्याज दर में वृद्धि की 'संकोचक' मौद्रिक नीति अपनानी होगी, क्योंकि केंद्रीय बैंक हमेशा आर्थिक वृद्धि के ऊपर मूल्य स्थिरता को तरजीह देता है।
- केंद्रीय बैंक की स्फीति नियंत्रक नीति जो मूलतः उच्च ब्याज दर नीति पर आधारित होती है, जो अर्थव्यवस्था में अवस्फीति (Deflection) को जन्म देगी।

मुद्रास्फीति पर सरकार की नीति (Government Policy on Inflation)

स्फीतिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की विवेचना हम निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा कर सकते हैं-

- मौद्रिक नीति उपाय (Monetary Policy Measures)** - देश का केंद्रीय बैंक मौद्रिक नीति के विनियमन की सहायता से मांग प्रेरित मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। मांग प्रेरित मुद्रास्फीति को कम करने हेतु कठोर मौद्रिक नीति का सहारा लिया जाता है इस नीति में ब्याज दरों को विनियमित कर अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा को कम किया जाता है। जैसे बैंक दर, रेपो दर में वृद्धि करना। इससे बैंकों की ब्याज दरों में वृद्धि हो जाती है एवं जनता के मध्य मुद्रा में कमी हो जाती है। मौद्रिक नीति के विनियमन के अतिरिक्त केंद्रीय बैंक गुणात्मक विधियों के प्रयोग से एवं खुले बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय के माध्यम से मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

मौद्रिक नीति समिति

मौद्रिक नीति के प्रबंधन हेतु तत्काल (जुलै 1934 में संशोधन कर तत्काल गवर्नर की अध्यक्षता में एक मौद्रिक नीति समिति का गठन किया गया है। सरकार ने इस समिति के साथ मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण हेतु एक समझौता पत्र हस्तांतरित किया है। समिति मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन की सहायता से 2% की परास के साथ 4% की मुद्रास्फीति बनाये रखने हेतु प्रयास करेगी। यहाँ लक्षित मुद्रास्फीति बिल्कुल को माना गया है।

- राजकोषीय नीति उपाय (Fiscal Policy Measures)** - मुद्रास्फीति को रोकने के लिए राजकोषीय नीति को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अपनाया जा सकता है। इसके तहत सरकार विभिन्न योजनाओं व परियोजनाओं में होने वाले व्यय में कमी कर सकती है तथा करों में वृद्धि कर सकती है। इससे समग्र मांग में कमी आ जाती है जो फलतः मुद्रास्फीति को कम करने में सहायक होती है। इस उपाय के तहत पश्चिमी देशों की अर्थव्यवस्था में पाई जाने वाली लोच के कारण लोक व्यय, कराधान और लोक ऋण में फेर-बदल के द्वारा वांछित परिणाम हासिल किए जाते हैं। जबकि अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता कम है। भारत में सामान्य कीमत-स्तर में स्थिरता लाने के लिए समय-समय पर राजकोषीय उपायों को प्रयोग में लाया जाता है।
- जमाखोरों, तस्करो और कालाबाजारी करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही (Action Against Hoarders, Smugglers & Black-Marketers)** - अनिवार्य वस्तुओं की जमाखोरी, नियन्त्रित वस्तुओं की कालाबाजारी और तस्करी से प्रायः वस्तुओं की कीमतों में काफी वृद्धि होती है। जिसे सरकार द्वारा समय-समय पर जमाखोरी, तस्करी और कालाबाजार को रोकने के उद्देश्य से विभिन्न उपाय करती है। अस्थायी रूप से इन प्रयत्नों को सफलता मिली है और सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि को रोका जा सका है। जमाखोरी की सामाजिक कुरीति को रोकने के लिए उन सभी वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाई जानी चाहिए जिसका अभाव है।
- खाद्यान्नों का सार्वजनिक वितरण (Public Distribution of Foodgrains)** - भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए खाद्य-वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता लाना सामान्य कीमत-स्तर में स्थिरता के लिए बहुत आवश्यक है। देश में खाद्यान्नों की आपूर्ति में भारी अनिश्चितता रहती है, इसलिए उनकी कीमतें खुले बाजार में निरन्तर बढ़ती रहती हैं। अल्पकाल में खाद्यान्नों की आपूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता, इसलिए सरकार ने खाद्यान्नों के सार्वजनिक वितरण की व्यवस्था की है। इस प्रणाली के अन्तर्गत उचित मूल्य की दुकानें खोली गई हैं जो कि खाद्यान्नों और अन्य जरूरी वस्तुओं को सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराती हैं। भारत में पिछले वर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को ठीक रखने के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन, उनकी वसूली, संग्रहण, यातायात और वितरण के बीच अच्छा समन्वय होना आवश्यक है।
- लक्षित मुद्रास्फीति दर (Inflation Targeting)** - कुछ अर्थशास्त्री यह तर्क देते हैं कि मुद्रास्फीति को रोकने की नीति विकासशील देशों के संदर्भ में उचित नहीं है। बेहतर नीति एक 'लक्षित' मुद्रास्फीति दर प्राप्त करना है। यह दर वह होगी जो कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सर्वोत्तम (Optimum) हो। भारत के लिए यह दर 2% से 6% के मध्य उचित मानी गयी है। यह उत्पादकों को इतनी प्रेरणा प्रदान करती है कि वे लगातार उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहें।

बैंकिंग : परिचय (Banking: Introduction)

- विश्व के सबसे पहले केन्द्रीय बैंक (Sveriges Riksbank) की स्थापना

1668 में स्वीडन में हुई, उसके बाद बैंक ऑफ इंग्लैंड (1694), बैंक डि फ्रांस (1800), फेडरल बैंक ऑफ इटली (1893) तथा फेडरल रिज़र्व सिस्टम यू.एस. ए. (1931) की स्थापना हुई। परंपरागत रूप से भारत में बैंकिंग का कार्य प्रायः महाजनों एवं साहूकारों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। 18वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) ने बम्बई तथा कलकत्ता में कुछ एजेंसी गृहों (Agency Houses) की स्थापना की थी। ये एजेंसी आधुनिक बैंकों की भाँति कार्य किया करते थे। इन एजेंसियों का वित्त पोषण ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा किया जाता था।

- यूरोपीय बैंकिंग पद्धति पर आधारित भारत का प्रथम बैंक विदेशी पूँजी के सहयोग से एलेक्जेंडर एण्ड कम्पनी द्वारा बैंक ऑफ हिन्दुस्तान के नाम से 1770 में कोलकाता में स्थापित किया गया था। किन्तु यह बैंक शीघ्र ही असफल हो गया। इस प्रकार 1806 से पूर्व भारत में बैंकों का कार्य कुछ एजेंसियों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। सन् 1813 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के वाणिज्यिक अधिकार समाप्त हो गए थे। इसके परिणामस्वरूप एजेंसियों गृहों का भी पतन होना प्रारम्भ हो गया था। देश में निजी अंशधारियों द्वारा तीन प्रेसीडेन्सी बैंकों की सन् 1806 में बैंक ऑफ बंगाल, सन् 1840 में बैंक ऑफ बॉम्बे तथा सन् 1843 में बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना की गई। भारत में केन्द्रीय बैंक की स्थापना का प्रथम प्रयास 1914 में चैम्बरलिन कमीशन द्वारा किया गया, जिसमें एक सदस्य लॉर्ड कीन्स थे, चैम्बरलिन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि तीन प्रेसीडेन्सी बैंकों को मिलाकर एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाए। इसकी संस्तुति पर 1921 में इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गयी पर यह मुख्यतया एक व्यापारिक बैंक था जो केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्य जैसे सरकारी बैंकर तथा बैंकों के बैंक का कार्य करता था। हिल्टन यंग आयोग पहला आयोग था जिसने केन्द्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया नाम की संस्तुति की।
- इंडियन सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी, 1931 ने फिर इसकी संस्तुति की तथा RBI बिल 1934 में पारित हुआ। रिज़र्व बैंक ने रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट, 1934 के तहत 1 अप्रैल 1935 से कार्य करना शुरू कर दिया। यह एक निजी क्षेत्रीय बैंक था। 1947 में देश के विभाजन के बाद जून 1948 तक इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में भी कार्य किया। जुलाई 1948 से इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में कार्य करना बंद कर दिया।

भारतीय बैंकिंग विकास से संबंधित अन्य तथ्य (Other Fact Related to Indian Banking Development)

- भारत सरकार द्वारा सन् 1860 में एक संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम पारित किया गया। इसके अन्तर्गत, बैंकों का सीमित देयता (Limited Liability) के आधार पर गठन किया जा सकता था। परिणामतः देश में अनेक संयुक्त बैंक स्थापित हो गये। उनमें प्रमुख बैंक थे: इलाहाबाद बैंक (1865), एलाइंस बैंक ऑफ शिमला (1881), अवध कमर्शियल बैंक (1881), पंजाब नेशनल बैंक (1894), पीपुल्स बैंक ऑफ इंडिया (1901)।
- सीमित देयता के आधार पर 1881 ई. में स्थापित अवध कमर्शियल बैंक भारतीयों द्वारा संचालित पहला बैंक था।
- देश का पहला पूर्ण रूप से भारतीय बैंक पंजाब नेशनल बैंक था।
- सन् 1930 में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति का गठन किया गया।
- बैंकों को और अधिक समाजोपयोगी बनाने के उद्देश्य से, देश के ऐसे 14 बड़े व्यावसायिक बैंकों का 19 जुलाई, 1969 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, जिनकी जमाएँ 50 करोड़ रुपए से अधिक थी। ये बैंक थे- सेंट्रल बैंक

ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, केनरा बैंक, यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, देना बैंक, सिंडिकेट बैंक, इलाहाबाद बैंक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, इंडियन बैंक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र तथा इंडियन ओवरसीज बैंक।

- एक दशक पश्चात् 15 अप्रैल, 1980 को पुनः 6 उन निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जिनकी जमाएँ 200 करोड़ रुपए से अधिक थी। ये बैंक थे- आंध्र बैंक, द कॉर्पोरेशन बैंक, द न्यू बैंक ऑफ इंडिया, ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स, द पंजाब एंड सिंध बैंक तथा विजया बैंक।
- 4 सितम्बर, 1993 को सरकार ने न्यू बैंक ऑफ इंडिया का पंजाब नेशनल बैंक में विलय कर दिया। इससे राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या 20 से घटकर 19 रह गई। हाल ही में बैंक ऑफ बड़ौदा में विजया बैंक व देना बैंक का विलय कर दिया गया है। इस प्रकार वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की संख्या घटकर 12 हो गई है।
- सार्वजनिक बैंक वे बैंक हैं जिसमें सरकार की धारिता 51% से अधिक है। वर्तमान समय में भारत में सार्वजनिक बैंकों की कुल संख्या 12 है, निम्नलिखित हैं-
 1. भारतीय स्टेट बैंक
 2. पंजाब नेशनल बैंक (ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स तथा यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया के विलय के बाद)
 3. इंडियन बैंक (इलाहाबाद बैंक से विलय के बाद)
 4. केनरा बैंक (सिंडिकेट बैंक से विलय के बाद)
 5. यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (आंध्र बैंक तथा कॉर्पोरेशन बैंक के विलय के बाद)
 6. इंडियन ओवरसीज बैंक
 7. यूको बैंक
 8. पंजाब तथा सिंध बैंक
 9. सेण्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
 10. बैंक ऑफ बड़ौदा
 11. बैंक ऑफ महाराष्ट्र
 12. बैंक ऑफ इंडिया
- उपरोक्त सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों में सरकार की धारिता 51% से अधिक है।
- बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद के तीन दशक बैंकिंग विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस अवधि में न केवल बैंकिंग व्यवस्था का व्यापक विस्तार हुआ बल्कि बैंकिंग सुविधाओं की पहुँच अपेक्षाकृत कम विकसित क्षेत्रों और कृषि तथा लघु उद्योग जैसे क्षेत्रों तक हो गई।
- विगत वर्षों में अपेक्षाकृत कम विकसित क्षेत्रों में बैंकिंग विकास की गति तेज रही है।
- इससे क्षेत्रीय असमानताएँ कम हुई हैं और बैंकिंग व्यवसाय का केन्द्रीयकरण पहले से कम हुआ है।

बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट आने के कारण

- सभी वाणिज्यिक बैंक मुख्यतः साख सृजन करके बड़ी परियोजनाओं में निवेश करके, नागरिकों की आवश्यकता हेतु जैसे आवास, कार, व्यवसाय हेतु ऋण उपलब्ध कराकर लाभ अर्जित करते हैं। वक्त के साथ बैंकों ने बीमा व्यवसाय, म्यूचुअल फंड जैसे व्यवसायों में कदम रखकर भी अपनी लाभप्रदता को और विस्तारित किया है। वर्तमान बैंकों की लाभप्रदता सिर्फ साख क्षमता पर निर्भर नहीं करती है। अपितु यह कई नये क्षेत्रों में विस्तारित हो चुकी है। राष्ट्रीयकरण के बाद से बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट आयी है-जिसके निम्नलिखित कारण हैं-

निर्देशित निवेश (Directed Investment)

- बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 और भारतीय रिज़र्व बैंक 1935 द्वारा सरकार ने वित्तीय संस्थाओं में निवेश हेतु जो नियम बनाये हैं उन्हें निर्देशित निवेश कहा जाता है।
- बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं को इन नियमों के पालन में सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं में निवेश करना आवश्यक हो गया।
- सरकारी प्रतिभूतियों पर प्रतिफल बाजार में उधार पर मिलने वाली ब्याज की दर से कम होता है। इतना ही नहीं, रिज़र्व बैंक नकद कोष अनुपात के अंतर्गत बैंकों द्वारा उनके पास रखी जाने वाली नकद निधि पर अपेक्षाकृत कम ब्याज देता है।
- इस तरह यह स्पष्ट है कि इन निर्देशित बैंक निवेशों की वजह से बैंकों को लाभ अर्जित करने के सामर्थ्य पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

निर्देशित साख कार्यक्रम (Directed Credit Programmes)

- 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक मुख्य उद्देश्य कृषि, छोटी औद्योगिक इकाइयों, सरकारी खाद्य वसूली और दूसरे प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को आसान शर्तों पर बैंक साख उपलब्ध कराना था।
- निर्देशित बैंक साख की इस व्यवस्था से यह आशा की गई थी कि इससे आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिलेगा।

प्राथमिकता क्षेत्र में साख का विस्तार

(Extension of Primary Sector Lending)

- राष्ट्रीयकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सौंपा गया एक प्रमुख कार्य अर्थव्यवस्था के अब तक उपेक्षित वर्ग के लोगों को ऋण उपलब्ध कराना था।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बैंकों ने कृषि, लघु उद्योगों, सड़क और जल परिवहन, फुटकर व्यापार और छोटे-मोटे व्यापार में लगे उन लोगों को ऋण देने की योजना बनाई है, जिनकी परम्परागत रूप से बैंक ऋण में बहुत कम भागीदारी होती थी।
- कमजोर वर्ग को बैंकों के द्वारा विनिर्दिष्ट आवश्यकताओं के लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के लिए प्राथमिकता क्षेत्र में उपभोक्ता ऋण (सीमित रूप में) शामिल कर लिया गया है।
- इसी प्रकार किसी स्थान को ध्यान में न रखते हुए 20 लाख रुपये तक के प्रति इकाई गृह ऋण को भी प्राथमिकता क्षेत्र की अग्रिम राशियों हेतु वर्गीकृत किया गया है। इस सम्बन्ध में 6 दिसम्बर, 2008 को RBI द्वारा अधिसूचना जारी की गई।
- आवास ऋणों की पूर्ति हेतु राष्ट्रीय आवास बैंक (NHB) के लिए 4,000 करोड़ रुपये की पुनर्वित्त सुविधा (Refinance Facility) भी रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2008 के दौरान घोषित की है। कोविड-19 महामारी के बाद, NHB ने मई-अगस्त 2020 के दौरान विशेष पुनर्वित्त सुविधा (SRF) और एक अतिरिक्त विशेष पुनर्वित्त सुविधा (ASRF) के तहत 14,000 करोड़ रुपये की पुनर्वित्त सहायता प्रदान की। यह अल्पकालिक तरलता समर्थन विशेष का हिस्सा था। NHB, जो केंद्र की महत्वाकांक्षी प्रधानमंत्री आवास योजना को संभाल रहा है, सरकार के लिए एक प्रचार भूमिका भी निभाता है। 2020 में, NHB ने PMAY-CLSS के तहत 3,31,924 परिवारों को लाभान्वित करते हुए 7,572 करोड़ रुपये की सब्सिडी प्रदान की। इसने 9,55,288 परिवारों को लाभान्वित करते हुए 21,633 करोड़ रुपये का संचयी सवितरण प्रदान किया है। इसके साथ ही लघु उद्योग विकास बैंक 'सिडबी' (SIDBI) कोविड-19 महामारी के बाद वास्तविक अर्थव्यवस्था

में ऋण के निरंतर प्रवाह का समर्थन करने के लिए अप्रैल-अगस्त 2020 के दौरान सभी अखिल भारत वित्तीय संस्थानों (एआईएफआई)-राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड); भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी); राष्ट्रीय आवास बैंक (एनएचबी); और एक्जिम बैंक को कुल 75,000 करोड़ की विशेष पुनर्वित्त सुविधा प्रदान की गई। इससे इन क्षेत्रों में ऋण प्रवाह बढ़ाने में मदद मिली है।

- उल्लेखनीय है कि RBI के निर्देशानुसार बैंकों को अपनी उधारियों का कम-से-कम 40% प्राथमिकता क्षेत्र को उपलब्ध कराना होता है तथा इसमें से 18% भाग बैंकों को कृषि को उपलब्ध कराना होता है।
- जो बैंक इस लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाते हैं उनके विरुद्ध RBI उचित कार्यवाही भी कर सकता है।
- विदेशी बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को 32% ऋण उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

रियायती ब्याज दरों की साख

(Credit on Concessional Interest Rates)

- बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय से प्राथमिकता क्षेत्रों को बैंक साख रियायती ब्याज दरों पर मिलती रही है जिसके फलस्वरूप बैंकों की लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

खर्चों में वृद्धि (Increases in Expenditures)

- राष्ट्रीयकरण के बाद से ऐसा लगता है कि बैंकों ने अपने खर्चों को उचित सीमाओं में रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया है।
- सामाजिक जिम्मेदारी की आड़ में ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्र में ऐसी ढेर सारी शाखाएँ खोली गई हैं जिन्हें कभी कोई लाभ नहीं हुआ।
- ये शाखाएँ केवल जमाराशि केन्द्रों के रूप में कार्य करती हैं और इनके पास ऋण व्यवसाय न होने की वजह से आय की ज्यादा गुंजाइश नहीं है।
- इसके अलावा जहाँ कृषि और लघु उद्योगों को रियायती ब्याज दरों पर ऋण दिए जाते हैं, वहाँ इन ऋणों की व्यवस्था की इकाई लागत ज्यादा होती है।
- राष्ट्रीयकरण के बाद बैंक कर्मचारियों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई और बैंक शाखाओं में बैंक कर्मचारियों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो गई।
- इनकी कार्यकुशलता का स्तर नीचा था और इनमें अनुशासन तथा कार्य-संस्कृति (Work Culture) का अभाव था।

विभिन्न प्रकार की बैंक (Different Types of Bank)

व्यापारिक बैंक (Commercial Banks)

- व्यापारिक बैंक एक वित्तीय संस्था है जो मुद्रा तथा साख में व्यापार करती है, यह न केवल मुद्रा को लोगों से जमा के रूप में स्वीकार करती है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उद्यमियों तथा साहसियों को उधार भी देती है तथा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण साख सृजक के रूप में कार्य करती है। व्यापारिक बैंक सामान्यतया चार प्रकार के जमा स्वीकार करते हैं-
 - **सावधि जमाखाता**- उसमें एक निश्चित लंबे समय के लिए जमा स्वीकार किया जाता है, जितनी ही इसकी अवधि लंबी होगी, ब्याज दर उतनी ही ऊँची होगी और तरलता उतनी ही कम होगी।
 - **चालू खाता**- उसमें जमाकर्ता अपनी जमाराशि में से जब चाहे तब धन निकाल सकता है। इस खाते से निकासी पर कोई रोक नहीं होती। इससे स्पष्ट होता है कि चालू खाते में रखा धन लगभग मुद्रा ही है। इस

खाते के सम्बन्ध में बैंक ब्याज नहीं देता बल्कि सेवा शुल्क लेता है।

- **बचत बैंक जमा-** इसमें ब्याज दर की दर कम होती है, तथा निकासी के लिए चेक का प्रयोग किया जा सकता है।
- इन जमाओं के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक आवर्ती जमा, गृह बचत जमा आदि जमा स्वीकार करते हैं।
- बैंकों द्वारा प्राप्त सभी प्रकार की जमा बैंकों की देयता (Liability) होगी।
- बैंक जो जमा स्वीकार करते हैं उसे कहीं न कहीं विनियोग करते हैं जिसमें वे जमा पर देय ब्याज के अतिरिक्त लाभ अर्जित कर सकें।
- अपने धन को विनियोजित करते समय बैंक 'तरलता (Liquidity), लाभदेयता (Profitability) तथा सुरक्षा (Security) के सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।
- वह केवल लाभदेयता को ही ध्यान में नहीं रखता है, बल्कि वह यह भी देखता है कि जहाँ निवेश कर रहा है वहाँ क्या उसका धन सुरक्षित है? तथा साथ ही वह जब चाहे अति अल्प हानि पर उसे पुनः वापस प्राप्त कर सके। व्यापारिक बैंक सामान्यतया अल्पकालीन ऋण देते हैं। प्रायः ये निम्नांकित प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं-

याचना मुद्रा या कॉल मुद्रा (Money at Call)

ये ऋण 1-2 दिन से 15 दिन के लिए दिये जाते हैं। तरलता की दृष्टि से यह सबसे अच्छा निवेश है।

नकद साख (Cash Credit)

- इसके अन्तर्गत निश्चित प्रतिभूति के बदले ऋण दिया जाता है।
- बैंक देय ऋण का खाता खोल देता है तथा ऋणी आवश्यकतानुसार चेक से निकासी करता है।
- ब्याज सम्पूर्ण स्वीकृत राशि पर नहीं लगता है, बल्कि उस मात्रा पर लगता है जितनी निकाली जाती है।

बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft)

- इसके अन्तर्गत बैंक अपने विश्वसनीय ग्राहकों को उनके खाते में जमा की गई राशि से अधिक राशि की निकासी का अधिकार दे देता है।
- यह एक प्रकार की माँग जमा है जिसके द्वारा साख सृजन होगा।

प्रधान ऋण दर (Primary Lending Rate)

किसी बैंक की प्रधान ऋण दर वह ब्याज दर है जिस दर पर बैंक अपने सबसे विश्वसनीय ग्राहक को, जिसके संबंध में जोखिम शून्य हो, ऋण देने के लिए तैयार रहता है। यह वह दर होती है जिस पर बैंक यह उम्मीद करता है कि उसकी सभी लागतें तथा व्यय पूरा करने के बाद पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो जायेगा। यह दर एक प्रकार से आधार के रूप में कार्य करती है, जिसको ध्यान में रखकर अन्य उद्यमियों के संबंध में बैंक अपनी ब्याज दर निर्धारित करता है। भारत में P.L.R की अवधारणा वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार कार्यक्रम लागू होने के बाद लागू की गयी है।

2010 में इसे आधार दर से प्रतिस्थापित किया गया था इसकी गणना एक सूत्र के आधार पर की जाती थी ताकि RBI द्वारा ब्याज दरों के समायोजन का लाभ ग्राहक तक पहुँचाना सुनिश्चित हो सके। 2016 में इसे पुनः सीमान्त लागत पर आधारित उधारी दर (MCLR) से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस दर का आशय फण्ड की एक अतिरिक्त इकाई की व्यवस्था में बैंक की लगने वाली लागत से है। डॉ. जनक राज की अध्यक्षता में MCLR पर गठित समिति की अनुशंसाओं पर RBI ने बैंकों द्वारा प्रदत्त किये जाने वाले खुदरा ऋणों एवं सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के ऋणों की परिवर्तनीय ब्याज दर को बाह्य बेंचमार्क जैसे-रेपो दर, ट्रेजरी बिलों से जोड़ने का निर्देश दिया है। यह निर्देश 1 अप्रैल 2019 से लागू हो गया।

लोकल एरिया बैंक

केन्द्रीय बजट 1996-97 में भारत में व्यापारिक बैंकिंग के विकास की दिशा में लोकल एरिया बैंक को विकसित करने की घोषणा एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कदम रहा। ये छोटे निजी क्षेत्र के बैंक हैं, कम संरचना व्यय करते हुए सक्षम और प्रतिस्पर्धी वित्तीय सेवाएं किसी सीमित क्षेत्र को उपलब्ध कराते हैं। ये मुख्यतः ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में संचालित हो रहे हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks)

- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना विशेषकर दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों के उन लोगों को बैंकिंग सुविधाएँ, जहाँ पर ये सुविधाएँ नहीं हैं और समाज के कमजोर वर्गों को रियायती दर पर संस्थागत ऋण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गयी।
- सर्वप्रथम आर.जी. सरैया की अध्यक्षता में गठित बैंकिंग आयोग ने 'ग्रामीण बैंक' की संकल्पना प्रस्तुत की।
- ग्रामीण बैंकिंग पर गठित कार्यदल की संस्तुति पर सरकार ने 2 अक्टूबर, 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की घोषणा की।
- आरम्भ में पाँच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद और गोरखपुर, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में जयपुर तथा पश्चिम बंगाल के मालदा में स्थापित किए गए।
- देश के अन्य भागों में भी इन बैंकों का विस्तार किया गया है और वर्तमान में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सिक्किम व गोवा के अतिरिक्त सभी राज्यों में कार्यरत हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के सम्बन्ध में गठित किए गए कार्यकारी दल (केलकर समिति) की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए अप्रैल, 1987 के बाद कोई नया बैंक नहीं खोला गया।
- सितम्बर, 2005 तक 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्यरत थे।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का स्वामित्व भारत सरकार, सम्बन्धित राज्य सरकार तथा इनके प्रवर्तक (Sponsored) बैंकों के पास है। इनकी निर्गत पूँजी का बँटवारा इन तीनों के मध्य 50%, 15% तथा 35% के अनुपात में है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को एक करने तथा उन्हें और सशक्त बनाने के विचार के साथ भारत सरकार ने सितम्बर, 2005 में चरणबद्ध तरीके से इन बैंकों को मिलाने की प्रक्रिया शुरू की।
- 31 मार्च, 2021 तक देश के 26 राज्यों और तीन केंद्र शासित प्रदेशों के 696 जिलों में 43 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपनी सेवाएँ दे रहे थे। ये आरआरबी 12 कॉमर्शियल बैंकों की तरफ से प्रायोजित हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक देशभर में 21,856 ब्रांच नेटवर्क के जरिये बैंकिंग सर्विस लोगों को दे रहे हैं।

सहकारी बैंक (Co-operative Bank)

- भारत में सहकारी बैंक भी बैंकिंग के आधारभूत कार्य सम्पन्न करते हैं, किन्तु वे वाणिज्यिक बैंकों से भिन्न प्रकार के होते हैं।
- वाणिज्यिक बैंकों का गठन संसद द्वारा पारित अधिनियम द्वारा किया गया है, जबकि सहकारी बैंकों की स्थापना अलग-अलग राज्यों द्वारा बनाई गई सहकारी समितियों के अधिनियमों द्वारा की गई है।
- भारत में सहकारी बैंकों का गठन त्रिस्तरीय (Three Tier Setup) है। राज्य सहकारी बैंक सम्बन्धित राज्य में शीर्ष संस्था होती है।
- इसके बाद केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक जिला स्तर पर कार्य करते हैं।
- तृतीय स्तर प्राथमिक ऋण समितियों का होता है, जो कि ग्राम स्तर पर कार्य करती हैं।

वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक में अन्तर

- वाणिज्यिक बैंकों का गठन एकात्मक आधार (Unitary Basis) पर किया

गया है तथा प्रत्येक वाणिज्यिक बैंक को भारतीय रिज़र्व बैंक से पुनर्वित्त की सुविधाएँ लेने का अधिकार प्राप्त होता है, जबकि सहकारी ढाँचे के अंतर्गत केवल राज्य सहकारी बैंकों को ही भारतीय रिज़र्व बैंक के पास पहुँचने के अधिकार प्राप्त हैं।

- किसी भी वाणिज्यिक बैंक को अपना कामकाज करने के लिए किसी राज्य विशेष अथवा जिला विशेष की सीमाओं में बंधना नहीं पड़ता अर्थात् वह अपनी शाखाओं की स्थापना अनेक राज्यों और देश के विभिन्न भागों में कर सकता है। यहां तक कि कुछ वाणिज्यिक बैंकों की शाखाएँ विदेशों में भी स्थापित की गई हैं, जबकि सहकारी बैंक केवल निर्धारित क्षेत्र में ही अपना कार्य सीमित रखते हैं। उदाहरण के लिए राज्य सहकारी बैंक, जो कि शीर्ष सहकारी बैंक हैं, का कार्यक्षेत्र एक राज्य विशेष ही होता है।
- इसी प्रकार जिला सहकारी बैंक किसी एक जिले विशेष में ही कार्य कर सकता है तथा सहकारी समिति (प्राथमिक ऋण सहकारी समिति) किसी एक स्थानीय क्षेत्र में ही अपना कार्य कर सकती है।
- वाणिज्यिक बैंकों पर बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की सभी धाराएँ लागू होती हैं, जबकि सहकारी बैंकों पर इस अधिनियम की कुछ धाराएँ ही लागू होती हैं।
- सहकारी बैंकों पर रिज़र्व बैंक का नियन्त्रण केवल आंशिक होता है।
- सहकारी बैंक सहकारिता के सिद्धान्तों पर चलते हैं, जबकि वाणिज्यिक बैंक विशुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तों से परिचालित होते हैं। यही कारण है कि भारतीय रिज़र्व बैंक से सहकारी बैंकों को रियायती दर पर वित्तीय सहायता प्राप्त हो जाती है।
- उल्लेखनीय है कि प्राथमिक सहकारी बैंकों (PCBs) को अपने कुल अग्रिमों का 60% प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों को तथा कम-से-कम 25% कमजोर वर्गों (Weaker Sections) को आवंटित करना होता है।

केन्द्रीय सहकारी बैंक (Central Co-Operative Bank)

- इन्हें जिला सहकारी बैंक भी कहा जाता है।
- इनका कार्य क्षेत्र एक जिले तक ही सीमित रहता है।
- केन्द्रीय सहकारी बैंकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—
 - ♦ सहकारी बैंकिंग संघ।
 - ♦ मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक।
- सहकारी बैंकिंग संघों की सदस्यता सिर्फ सहकारी समितियों को ही प्राप्त होती है, जबकि मिश्रित सहकारी बैंकों के सदस्य सहकारी समितियाँ तथा व्यक्ति दोनों ही हो सकते हैं।
- भारत के सभी राज्यों में प्रायः मिश्रित सदस्यता वाले केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं।
- यह बैंक सहकारी साख समितियों को आवश्यकतानुसार ऋण प्रदान करते हैं, जिससे कि ये समितियाँ कृषकों को तथा अन्य सदस्यों को समुचित आर्थिक सहायता उपलब्ध करा सकें।
- केन्द्रीय सहकारी बैंक अपनी चालू पूँजी में राज्य सहकारी बैंक (State Co-operative Bank) से ऋण लेकर वृद्धि करते हैं तथा सहकारी समितियों को ऋण देते हैं।
- इनके ऋण की अवधि एक वर्ष से तीन वर्ष तक की हो सकती है।
- अधिकांश केन्द्रीय बैंक, राज्य सहकारी बैंक तथा प्राथमिक ऋण समितियों के मध्य अन्तर्वर्ती का कार्य करते हैं।

राज्य सहकारी बैंक (State Co-Operative Bank)

- इस बैंक को राज्य का शीर्ष सहकारी बैंक (Apex Co-Operative Bank) भी कहते हैं।

- यह बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंक को ऋण देता है और उनके कार्यों का नियंत्रण करता है।
- यह भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण प्राप्त करता है।
- इस प्रकार यह बैंक रिज़र्व बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के मध्य एक महत्वपूर्ण वित्तीय कड़ी का कार्य सम्पन्न करता है।
- रिज़र्व बैंक से इसे प्रायः बैंक दर से एक या 2 प्रतिशत कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध हो जाते हैं।
- इसी प्रकार यह बैंक भी 2 प्रतिशत के सीमांतर पर केन्द्रीय सहकारी बैंकों को ऋण उपलब्ध कराता है।

कर्रिसपोण्डेंट बैंकिंग (Correspondent Banking)

अनुरूप बैंकिंग का उद्गम इकाई बैंकिंग के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया। इस प्रणाली में इकाई बैंकिंग प्रणाली के छोटे-छोटे बैंक अपने पास की जमाओं को पास में स्थित किसी बड़े नगर के बैंक में जमा करवा देते हैं। बड़े बैंक छोटे बैंकों को धन हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करते हैं तथा आवश्यक होने पर वित्तीय सहायता तथा सलाह भी देते हैं। इस प्रकार अनुरूप बैंक देश के विभिन्न इकाई बैंकों को जोड़ने का कार्य करते हैं।

अग्रणी बैंक (Lead Bank)

गाइडिल समिति की संस्तुति पर यह योजना तैयार की गई। इस योजना के अंतर्गत बैंकों को विशेष जिलों में बैंकिंग विकास की सम्भावनाओं के सर्वेक्षण की जिम्मेदारी दी गई। बैंकों को सर्वेक्षण करते समय साख संबंधी सुविधाओं के विस्तार पर ध्यान देना होगा। अग्रणी बैंकों को जिन जिलों की जिम्मेदारी दी गई है उनके विकास का दायित्व भी उन पर डाला गया। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न जिलों की जिम्मेदारी स्टेट बैंक और उसके सहायक बैंकों, 14 राष्ट्रीयकृत बैंकों और 3 निजी स्वामित्व वाले भारतीय बैंकों को सौंपी गई। मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, दिल्ली, चंडीगढ़ और गोवा को छोड़कर यह योजना सम्पूर्ण भारत में लागू की गई।

मर्चेन्ट बैंकिंग (Merchant Banking)

मर्चेन्ट बैंकिंग मुख्यतः औद्योगिक एवं व्यापारिक क्षेत्र को साख उपलब्ध कराने हेतु कार्य करती है।

- यह वाणिज्यिक बैंकिंग के अंतर्गत औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थानों को विशिष्ट प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध कराता है।
- इसमें परियोजना सम्बन्धी परामर्श (Project Related Consultation), व्यवहार्यता रिपोर्ट (Feasibility Report) तैयार करना, प्रस्तावों पर सरकार की सहमति प्राप्त करना, नये निर्गमों (New Issues) के प्रबन्धक के रूप में कार्य करना, कार्यशील पूँजी (Working Capital) की व्यवस्था करना आदि कार्य सम्मिलित है।

इस्लामिक विकास बैंक (Islamic Development Bank)

- वर्ष 1974 में सबसे पहले मिस्र में इस्लामिक विकास बैंक की स्थापना की गई जो कि एक प्रकार से क्षेत्रीय विकास बैंक था, जिसका मुख्य उद्देश्य इस्लामिक देशों तथा समुदायों में एक ऐसे बैंक की स्थापना करना है जो कि कुरान के सिद्धान्तों पर आधारित हो, जो सूदखोरी को अस्वीकार करता हो, तथा जो ब्याज पर ऋण देना से मना करता हो।
- यह जो भी ऋण देता है वह नगण्य कमीशन पर देता है।
- शरीयत के अनुसार लाभ कमाने के लिए उत्पीड़न स्वीकार्य नहीं है,

इसलिए इसमें देर से भुगतान पर दण्ड की व्यवस्था भी नहीं है।

- भारत में पहला इस्लामिक बैंक कोच्चि में स्थापित किया गया है जिसमें राज्य की 11% हिस्सेदारी है।

यूनिवर्सल बैंकिंग (Universal Banking)

- यूनिवर्सल बैंकिंग व्यापारिक बैंकिंग, निवेश बैंकिंग, विकास बैंकिंग, बीमा तथा अन्य वित्तीय क्रियाओं का एक मिला-जुला रूप है। यह एक ऐसी संस्था है जिसमें एक ही छत के नीचे सभी वित्तीय उत्पाद उपलब्ध रहते हैं। यह एक ऐसा बैंक है जो व्यापारिक बैंकों के सभी कार्यों के साथ मर्चेन्ट बैंक, म्युचुअल फंड, क्रेडिट कार्ड, हाउसिंग फाइनेंस, कार लोन्स, बीमा, रिटेल लोन आदि की व्यवस्था करता है। रिजर्व बैंक द्वारा दिसंबर, 1997 में एस.एच. खान की अध्यक्षता में गठित कार्यदल ने वर्ष 1998 में दी गयी अपनी रिपोर्ट में, इस उद्देश्य के लिए सर्वव्यापी बैंकिंग और एक कारगर नियामक ढाँचे के विकास के लिए निरंतर प्रयास किए जाने की सिफारिश की।
- अगस्त, 2016 में इसके नियमों को और उदार बना दिया गया।
- कोई भी निवासी व्यक्ति प्रोफेशनल जिसके पास 10 वर्ष का बैंकिंग तथा फाइनेंस में अनुभव हो वह यूनिवर्सल बैंक के प्रवर्तन के लिए अर्ह होगा, पहले निजी क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयाँ तथा समूह एवं NBF ही इसके लिए अर्ह थीं।
- बड़े औद्योगिक घराने इसके लिए अर्ह नहीं होंगे, पर वे किसी यूनिवर्सल बैंक में 10 प्रतिशत तक पूँजी लगा सकेंगे।
- इनकी न्यूनतम चुकता पूँजी समता अंश में 500 करोड़ रुपया होगी तथा इनका निवल मूल्य (Net Worth) प्रत्येक समय पर न्यूनतम 500 करोड़ रुपया होगी।
- दिशा निर्देश के तहत एक बैंक खोलने के लिए जिसके प्रवर्तक व्यक्ति हों तो उसका नॉन ऑपरेटिव फाइनेंशियल होल्डिंग कंपनी (NOFHC) होना अनिवार्य नहीं है। यदि कोई बैंक NOFHC द्वारा खोला जाए तो संपूर्ण चुकता अंश पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत प्रवर्तक समूह द्वारा धारित होना चाहिए।
- 10 वर्ष के स्टैंडिंग वाले निवासियों द्वारा नियंत्रित चल रही NBFC इनके प्रवर्तन के लिए अर्ह होगी।
- इनमें विदेशी निवेश की सीमा 74 प्रतिशत होगी।

लघु बैंक (Small Bank)

जुलाई 2014 में आरबीआई ने वित्तीय समावेशन को बढ़ाने के लिये इनके स्थापना की मंजूरी दी थी। इन बैंकों का उद्देश्य सीमित परिचालन क्षेत्र में जमा, ऋण (मुख्यतः छोटे किसानों, MSME एवं अन्य असंगठित इकाईयों को) की सुविधा प्रदान करना है। लघु बैंक की स्थापना हेतु निम्नलिखित प्रावधान हैं-

- प्रायोजक को बैंकिंग, वित्त सोसायटी एवं कम्पनी का 10 वर्षों का अनुभव होना चाहिये।
- बैंक के गठन हेतु न्यूनतम पूँजी की अनिवार्यता 100 करोड़ रुपये होगी।
- प्रायोजक का योगदान प्रथम 5 वर्षों में कम-से-कम 40 प्रतिशत होगा।
- शुरुआती तीन वर्षों में शाखा विस्तार हेतु पूर्वानुमति लेना आवश्यक है।
- परिचालन सामान्यतः नजदीकी जिलों तक सीमित होगा परन्तु आवश्यकता होने पर एक या उससे अधिक राज्यों में समीपता के आधार पर विस्तारित किया जा सकेगा।
- ये प्राथमिक रूप से मूलभूत बैंकिंग गतिविधियाँ जैसे जमा लाभ, ऋण प्रदान करने का कार्य करेंगे तथा गैर-बैंकिंग गतिविधियों में शामिल नहीं होंगे।
- इन बैंकों को RBI के विनियम (CRR, SLR) मानने होंगे।
- पहले तीन वर्षों हेतु 25 प्रतिशत शाखायें बैंक रहित ग्रामीण क्षेत्रों में होगी।

भुगतान बैंक (Payments Bank)

इन बैंकों की स्थापना का उद्देश्य श्रमिकों, कम आय वाले परिवारों, छोटे व्यापारियों, अन्य असंगठित क्षेत्र उद्यमियों और अन्य प्रयोक्ताओं को लघु बचत खाते, भुगतान/प्रेषण सेवाएँ प्रदान कर सुरक्षित प्रौद्योगिकी चालित परिवेश में जमा व भुगतान/प्रेषण सेवाओं में लेने-देने हेतु समर्थ बनाना है। भुगतान बैंकों की स्थापना हेतु प्रावधान निम्न है-

- बैंक, गैर बैंक NBFC, कॉर्पोरेट, मोबाइल टेलीफोन कंपनियाँ, सुपर मार्केट चेन, रीयल एस्टेट, सहकारिता कंपनियाँ तथा सरकारी क्षेत्र की कंपनियाँ भुगतान बैंक को प्रमोट कर सकते हैं।
- ये बैंक केवल मांग जमाएँ (चालू खाता व बचत खाता) को स्वीकार कर सकते हैं। (अधिकतम सीमा 1 लाख रुपये)।
- इन बैंकों के गठन हेतु न्यूनतम पूँजी की अनिवार्यता 100 करोड़ रुपये है।
- ये बैंक भुगतान एवं प्रेषण सेवायें, प्रीपेड भुगतान उपाय, इंटरनेट बैंकिंग प्रदान कर सकते हैं।
- ये बैंक NBFC व्यापार हेतु सहायक कंपनियाँ स्थापित नहीं कर सकते हैं।
- ये बैंक स्वयं को अन्य बैंकों से पृथक दर्शाने हेतु अपने नाम में भुगतान शब्द का प्रयोग करेंगे।

मुद्रा बैंक (Mudra Bank)

छोटे कारोबारियों और उद्यमियों को सस्ता कर्ज, रोजगार बढ़ाने के मौके विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के उद्यमियों को सस्ते दर पर संस्थागत ऋण की सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से एक नए 'मुद्रा बैंक' अर्थात् 'माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट रिफाइनंस एजेंसी' (Micro Units Development and Refinance Agency- MUDRA) की स्थापना भारत सरकार ने की है, जिसकी 8 अप्रैल, 2015 को औपचारिक शुरुआत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा की गयी यह सिडबी (SIDBI) की तरह एक पुनर्वृत्त एजेंसी है।

मुद्रा बैंक: एक नजर में

- शुरुआत में मुद्रा बैंक सिडबी की सहायक कंपनी के तौर पर काम करेगा। लेकिन आगे चलकर कानून के जरिए इसे मुद्रा बैंक के तौर पर स्थापित किया जाएगा।
- मुद्रा बैंक बुनियादी तौर पर छोटी इकाईयों को वित्त उपलब्ध कराने की नीति बनाएगी और छोटी इकाईयों को कर्ज देने के लिए फंड उपलब्ध कराएगी। मुद्रा बैंक इसके लिए दो प्रकार के सहयोगियों के साथ गठबंधन करेगा। एक, जिन्हें मुद्रा बैंक रिफाइनंस करेगा और दूसरे, जो जरूरतमंद उद्यमियों को कर्ज देंगे।
- प्राइमरी सहकारी संस्थाएँ, स्वयं-सहायता समूह भी कर्ज वितरण के सहयोगी हो सकते हैं। लेकिन इसके लिए योजना बनाने का काम मुद्रा बैंक का होगा।
- मुद्रा बैंक के लिए 20,000 करोड़ की संचित निधि तथा 3000 करोड़ की ऋण गारंटी निधि का सृजन किया गया है।
- उधार देने में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उद्यमियों एवं महिला उद्यमियों को वरीयता दी जायेगी।
- रिफाइनंस के लिए क्षेत्रीय स्तर पर सहयोगी ढूँढे जाएंगे। निचले स्तर तक कर्ज वितरित करने के लिए माइक्रो संस्थाएँ इसका हिस्सा बनेंगी। रिजर्व बैंक द्वारा प्रस्तावित लघु बैंक, एनबीएफसी, लघुवित्तीय संस्थाएँ (जिनकी संख्या 52 हैं) भी इसका हिस्सा हो सकती हैं।
- इसके तहत तीन श्रेणियों में ऋण प्रदान किया जाता है।
- **शिशु**- 50,000 रुपये तक।

- **किशोर**- 50,000 रुपये से 5,00,000 रुपये तक।
- **तरुण**- 5,00,000 रुपये से 10,00,000 रुपये तक।

अपतटीय बैंक जमा

जिस देश में जमा रखा जाता है उस देश की मुद्रा को किसी अन्य देश की मुद्रा में जमा रखने के व्यवहार को अपतटीय बैंक जमा कहते हैं तथा इस प्रकार की अपतटीय जमा में व्यवहार करने वाली बैंकिंग क्रिया को अपतटीय बैंकिंग (Offshore Banking) कहते हैं।

अन्य वित्तीय संस्थाएँ (Other Financial Institutions)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार द्वारा निजी क्षेत्र को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए वित्तीय संस्थान बनाये गये थे। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है-

- **अखिल भारतीय वित्त संस्थान**- IFCI, IDBI, ICICI, SIDBI
- **विशिष्ट वित्तीय संस्थान**- Exim Bank, Tourism Finance Corporation of India, Infrastructure Finance Company.
- **निवेश संस्थान**- LIC, GIC, UTI.
- **रीफाइनन्स संस्थान**- NHB, NABARD
- **राज्य स्तरीय संस्थान**- State Finance Corporation (SFC), State Industrial Development Corporation (SIDC)

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (IFCI- Industrial Finance Corporation of India Ltd)

- भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना के केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति के सुझाव पर एक विशेष अधिनियम द्वारा वर्ष 1948 में हुई थी।
- इसका उद्देश्य भारत में औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए दीर्घकालिक तथा मध्यकालिक साख की व्यवस्था करना है।
- इसकी स्थापना केवल भारत में ही रजिस्टर्ड निजी क्षेत्र की कम्पनियों तथा सरकारी इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए की गई थी।
- अब यह सार्वजनिक और संयुक्त क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रमों को भी वित्तीय सहायता देता है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड के कार्य

- भारतीय औद्योगिक वित्त निगम औद्योगिक प्रतिष्ठानों को निम्नलिखित रूपों में वित्तीय सहायता प्रदान करता है-
 - अधिक से अधिक 25 वर्षों के लिए ऋण देकर अथवा इसी अवधि के भीतर देय ऋणपत्रों को खरीदकर।
 - औद्योगिक प्रतिष्ठानों को विदेशी मुद्रा में ऋण देकर।
 - उनके साधारण एवं पूर्वाधिकार अंशों का अभिदान (Subscribe) कर।
 - उनके द्वारा निर्गमित साधारण व पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋण पत्रों का अभिगोपन (Underwrite) कर।
 - औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा अनुसूचित बैंकों अथवा राज्य सहकारी बैंकों से लिए जाने वाले ऋणों को गारंटी प्रदान कर।
 - केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा अन्य देशों में स्थित वित्तीय संस्थाओं से विदेशी मुद्राओं में प्राप्त किए गए ऋणों को गारंटी देकर।
 - विदेशों से आयात की गई अथवा भारतीय उत्पादकों से ही खरीदी जाने वाली मशीनों के स्थगित भुगतान की गारंटी देकर।
 - केन्द्र सरकार तथा विश्व बैंक द्वारा औद्योगिक इकाइयों को दिए जाने वाले ऋणों की गारंटी देकर, परन्तु इसके लिए इसे केन्द्रित सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक है।
- भारतीय औद्योगिक वित्त निगम द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता केवल

उत्पादन क्षमता में स्थायी सुधार के लिए ही होती है।

- यह निगम औद्योगिक प्रतिष्ठानों को कारखाने के लिए जमीन खरीदने, इमारत बनाने, नई मशीनें खरीदने अथवा इनमें सुधार आदि के लिए ऋण देता है।
- कच्चे माल के क्रय अथवा मजदूरी के भुगतान के लिए ऋण नहीं दिए जाते।
- वित्तीय सहायता प्रदान करने के बाद भी भारतीय औद्योगिक वित्त निगम सम्बन्धित प्रतिष्ठानों से ऋणों के उचित प्रयोग शर्तों के विधिवत पालन, लागत में कमी, उत्पत्ति में गुणात्मक सुधार आदि विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए सामयिक रिपोर्ट मांगता है और समय-समय पर निरीक्षण करने के लिए अपने अधिकारी को भेजता है।
- भारतीय औद्योगिक वित्त निगम को 25 वर्ष की अवधि के लिए ऋण देने का अधिकार है।
- यह 12 से 15 वर्षों के लिए भी ऋण देता है।
- ऋणों का भुगतान दो-तीन वर्ष बाद वार्षिक अथवा अर्द्ध-वार्षिक किश्तों में प्रारम्भ हो जाता है।
- निगम पूँजी बाजार की दशाओं को ध्यान में रखकर ब्याज की दरें निर्धारित करता है।
- समय पर ब्याज और मूलधन का भुगतान करने वाली इकाइयों को आधे प्रतिशत की छूट दी जाती है।

भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (ICICI- Industrial Credit and Investment Corporation of India)

- भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम की स्थापना 5 जनवरी, 1955 को भारतीय कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी के रूप में हुई थी।
- इसकी स्थापना का विचार वर्ष 1953 में विश्व बैंक, भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकारों के प्रतिनिधियों के बीच बातचीत से उत्पन्न हुआ।
- निगम द्वारा वर्ष 1994 में ICICI बैंक खोला गया।
- तत्पश्चात् भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम का मार्च, 2002 में ICICI बैंक में विलय हो गया।
- इसका अलग अस्तित्व अब समाप्त हो गया है और यह औद्योगिक वित्त की संस्था नहीं रह गया है।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI- Industrial Development Bank of India)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना 1 जुलाई, 1964 को हुई थी। चार दशक तक इस बैंक ने औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में 'शीर्ष संस्था' की भूमिका निभाई। अक्टूबर, 2004 में इसे वाणिज्यिक बैंक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। हाल ही में (LIC- Life Insurance Corporation of India) द्वारा इसका अधिग्रहण कर लिया गया है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का उद्देश्य

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना के पीछे दो उद्देश्य थे-

- उद्योगों की स्थापना तथा विकास की परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- विभिन्न आधारभूत उद्योगों जैसे लौह मिश्रित धातुओं, इस्पात, उर्वरक, पेट्रो-रसायन इत्यादि के विकास को प्रोत्साहित करना।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्य

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्य निम्नलिखित हैं-

- इस बैंक को सभी प्रकार की औद्योगिक इकाइयों को दीर्घकालिक ऋण देने की स्वतंत्रता दी गई है।
- इसे औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा जारी किए जाने वाले ऋण-पत्रों को भी खरीदने का अधिकार दिया गया है।
- उद्योगों के प्रवर्तन को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक है कि वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा औद्योगिक इकाइयों के अंशों में प्रत्यक्ष अभिदान किए जाएँ इसलिए इस संबंध में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को अधिकार दिया गया है।
- भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना से पहले पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से औद्योगिक पुनर्वित्त निगम की स्थापना की गई थी। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना के बाद यह काम इस बैंक द्वारा किया जाने लगा।
- यह बैंक अनुसूचित तथा सहकारी बैंकों द्वारा औद्योगिक उपक्रमों को 3 से 10 वर्षों के लिए दिए जाने वाले ऋणों तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किये जाने वाले 3 से 25 वर्षों तक के ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधाएँ प्रदान करता है।
- यह व्यापारिक बैंकों तथा दूसरी वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्यात के लिए दिये जाने वाले मध्यकालिक ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधा भी प्रदान करता है।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

Small Industries Development Bank of India (SIDBI)

- लघु उद्योग क्षेत्र को बड़े पैमाने पर वित्तीय व गैर-वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार ने वर्ष 1988-89 के बजट में भारतीय लघु विकास बैंक (SIDBI) की स्थापना की घोषणा की। इस संबंध में अक्टूबर, 1989 में संसद में SIDBI विधेयक पास हुआ और इस बैंक ने 2 अप्रैल, 1990 से काम करना शुरू कर दिया।
- लघु इकाइयों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के अतिरिक्त SIDBI का उद्देश्य विद्यमान इकाइयों के तकनीकी विकास व आधुनिकीकरण के लिए कदम उठाना, घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय बाजार में लघु इकाइयों के उत्पादन के लिए मांग प्रोत्साहित करना, तथा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में रोजगार अवसरों में वृद्धि करना है ताकि श्रमिकों को काम के लिए बड़े शहरों में भटकना न पड़े। SIDBI द्वारा वित्तीय सहायता (Financial Assistance by SIDBI)
- लघु उद्योग विकास बैंक विद्यमान साख वितरण माध्यमों जैसे राज्य वित्त निगम, राज्य औद्योगिक विकास निगम, व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
- बैंक की मुख्य गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं-
 - ऋणों की पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करना।
 - बिलों का बट्टा (Discounting) तथा पुनः छूट: (Rediscounting) करना।
 - सस्ती दरों पर ऋण देना।
 - पट्टेदारी व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
 - राज्य लघु उद्योग विकास निगमों को वित्तीय सहायता देना।

भारतीय निर्यात बैंक Export Import Bank of India (Exim Bank)

- भारतीय निर्यात-आयात बैंक की स्थापना 1 जनवरी, 1982 को की गई थी।
- इसकी स्थापना से पूर्व IDBI का अंतर्राष्ट्रीय वित्त विभाग निर्यात तथा आयात की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

- एक्जिम बैंक का उद्देश्य निर्यातकों एवं आयातकों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है।
- इसके अतिरिक्त इसे उन सभी वित्तीय संस्थाओं के काम का समन्वय करने का कार्य भी सौंपा गया, जो वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात एवं आयात के लिए वित्त जुटाते हैं।
- यह बैंक न केवल भारत, अपितु तृतीय विश्व के देशों के लिए भी वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात एवं आयात के लिए वित्त का प्रबन्ध करता है।
- हाल ही में बैंक की अधिकृत पूँजी को 10000 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 20000 करोड़ रुपये करने की मंजूरी दे दी गयी है। भारत के एक्जिम बैंक के विदेशों में कार्यालय वाशिंगटन, सिंगापुर, आबिदजान (आइबरी कोस्ट) तथा बुडापेस्ट (हंगरी) में स्थापित किए गए हैं। इसका प्रधान कार्यालय मुम्बई (महाराष्ट्र) में है।

राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD)

- यह देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु वित्त उपलब्ध कराने वाली संस्था है।
- राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना 12 जुलाई, 1982 को की गई थी।
- नाबार्ड की चुकता पूँजी (Paid up Capital) 100 करोड़ रुपये में भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक का बराबर (50:50) का योगदान था।
- वर्ष 1996-97 में इसे बढ़ाकर 1000 करोड़ रुपये कर दिया गया, जिसमें RBI का योगदान 800 करोड़ रुपए तथा केन्द्र सरकार का 200 करोड़ रुपए था।
- 31 मार्च, 2010 को नाबार्ड की 2000 करोड़ रुपए की चुकता पूँजी थी जिसमें 72.5% हिस्सेदारी RBI की है।
- RBI ने NABARD की इक्विटी में अपनी लगभग सारी हिस्सेदारी सरकार को अक्टूबर 2010 में बेच दी थी।
- नाबार्ड ग्रामीण ऋण ढाँचे में एक शीर्षस्थ संस्था के रूप में अनेक वित्तीय संस्थाओं (राज्य भूमि विकास बैंक, राज्य सहकारी बैंक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक) को पुनर्वित्त सुविधाएँ प्रदान करता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक गतिविधियों के विस्तृत क्षेत्रों को बढ़ावा देने के लिए ऋण देती हैं।
- अपनी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नाबार्ड भारत सरकार, विश्व बैंक तथा अन्य एजेंसियों से राशियाँ प्राप्त करता है।
- यह केन्द्र सरकार की गारण्टी प्राप्त बॉण्ड तथा ऋणपत्र जारी करके भी संसाधन जुटा सकता है।
- इसके अतिरिक्त यह राष्ट्रीय ग्रामीण साख (स्थिरीकरण) निधि के संसाधनों का भी प्रयोग करता है।
- 1 अप्रैल, 1995 से नाबार्ड के तहत एक नई ग्रामीण आधारिक संरचनात्मक विकास निधि (Rural Infrastructural Development Fund) की स्थापना की गई।
- इस कोष के लिए उन बैंकों से अंशदान स्वीकार किया गया था जो प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) को लक्ष्य के अनुरूप साख उपलब्ध नहीं करा सके थे।
- RIDF बजट के दौरान वार्षिक रूप से घोषित की जाने वाली धनराशि के साथ वर्षानुवर्ष जारी रहा है।

राष्ट्रीय आवास बैंक National Housing Bank (NHB)

- राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक की सहायक संस्था के रूप में जुलाई 1988 में की गई थी।
- यह बैंक देश में आवास सम्बन्धी वित्त व्यवस्था के लिए शीर्षस्थ बैंक है।

राज्य वित्त निगम State Financial Corporation (SFCs)

- छोटी और मध्यम आकार की इकाइयों के लिए दीर्घकालिक वित्तीय व्यवस्था करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 28 सितम्बर, 1951 को राज्य वित्त निगम अधिनियम पारित किया।
- अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अपने-अपने राज्यों में वित्त निगमों की स्थापना का अधिकार प्रदान किया गया।
- ये उन औद्योगिक केन्द्रों को ऋण देते हैं जो भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कार्यक्षेत्र में नहीं आते साथ ही ये मिश्रित पूँजीवाली कम्पनियों के अतिरिक्त निजी कम्पनियों, साझेदारियों और एकाकी स्वामित्व वाली कम्पनियों को भी ऋण दे सकते हैं।
- वर्तमान में देश के 19 राज्यों में राज्य वित्त निगम स्थापित हो चुके हैं।

राज्य वित्त निगम के कार्य-

राज्य वित्त निगमों की स्थापना मध्यम तथा लघु आकार वाले उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए की गई है।

इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता तीन प्रकार की हो सकती है-

- ऋण देना**- राज्य वित्त निगम पूँजी कम्पनियों, सहकारी समितियों, साझेदारी फर्मों और एकाकी लागत वाली औद्योगिक इकाइयों को 20 वर्ष तक के लिए ऋण दे सकता है।
- कम्पनियों के अंश तथा ऋणपत्रों का अभिगोपन**- रिजर्व बैंक द्वारा प्रोत्साहन दिए जाने पर कई राज्य वित्त निगम अंशों तथा ऋणपत्रों का अभिगोपन करने लगे हैं।
- ऋणपत्रों के लिए गारंटी करना**- औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अन्य संस्थाओं से 20 वर्ष की अवधि तक के लिए प्राप्त होने वाले ऋणों की गारंटी भी राज्य वित्त निगम कर सकते हैं।

राज्य वित्त निगम के कार्य का संचालन

- SFC, द्वारा स्वीकृत एवं वितरित ऋण सहायता में लगातार वृद्धि हो रही है। परन्तु कुछ राज्य निगमों को छोड़कर अन्य सभी के द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता बहुत सीमित है।
- इनसे सर्वाधिक ऋण वस्त्र और इंजीनियरिंग उद्योगों को प्राप्त हुए हैं।
- राज्य वित्त निगम दीर्घकाल तक उन नई औद्योगिक इकाइयों को ऋण देने में असमर्थ रहे हैं जिनमें जोखिम का अंश कम है।
- इनकी प्रतिभूति सम्बन्धी शर्तें कठोर होने के कारण इनसे छोटी इकाइयों को ऋण मिल पाना सम्भव नहीं होता था।

अतः दिसम्बर 1972 में राज्य वित्त निगम अधिनियम में एक संशोधन द्वारा लघु एवं मध्यम आकार के औद्योगिक क्षेत्र की कमजोर इकाइयों को सरल शर्तों पर ऋण देने अथवा उनकी जोखिम पूँजी में भागीदारी के लिए राज्य वित्त निगमों में एक विशिष्ट श्रेणी की अंश पूँजी के निर्माण की व्यवस्था की गई।

- इस पूँजी का अभिदान सम्बन्धित राज्य सरकार और रिजर्व बैंक द्वारा किया गया है।

राज्य वित्त निगमों की कार्यप्रणाली में कठिनाइयाँ एवं दोष

राज्य वित्त निगमों की प्रगति की जाँच करने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त कार्यकारी दल के अनुसार राज्य वित्त निगमों का प्रधान उद्देश्य लघु तथा मध्यम आकार के उद्योगों को प्रोत्साहन देना था जिसे पूरा करने में वे सफल नहीं हो सके हैं।

राज्य वित्त निगमों की असफलता के कारण निम्नलिखित हैं-

- अनेक ऋण चाहने वाले औद्योगिक केन्द्र अपने विलेख विधिवत् नहीं रखते

और इसलिए राज्य वित्त निगमों के लिए इनकी वास्तविक आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर पाना कठिन है।

- लघु औद्योगिक इकाइयों की स्थिरता और छोटे उद्योगों के भविष्य के विषय में अनुमान लगा पाना कठिन होता है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी का अभाव होता है।
- ऋण की प्रतिभूतियों के रूप में ऋणी संस्थाओं की सम्पत्तियों के स्वामित्व की जाँच तथा उनका मूल्यांकन कठिन होता है।
- राज्य वित्त निगमों के साधन थोड़े हैं और वे लघु मध्यम आकार की औद्योगिक इकाइयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अपर्याप्त हैं।
- राज्य वित्त निगमों द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दरें अधिक हैं। अपेक्षाकृत नई इकाइयों के विकास में इससे बाधा पड़ती है।

गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें Non Banking Financial Companies (NBFCs)

RBI एक्ट 1997 के अनुसार NBFC एक संस्था या कंपनी है जिसका प्रमुख व्यवसाय किसी रूप तथा तरीके से उधार देना है। इस आधार पर वे सभी निवेश कंपनियाँ जो कंपनी अधिनियम के अंतर्गत में पंजीकृत हों, वे सभी NBFC में सम्मिलित हो जायेंगी।

NBFC की विशेषतायें

NBFC कंपनियों में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

- ये कंपनियाँ ऋण तथा अग्रिम राशि के व्यवसाय व सरकारी प्राधिकरणों द्वारा जारी शेयर/स्टॉक/बांड्स/ऋण पत्र/प्रतिभूति के अधिग्रहण में सामने रहती है।
- इनमें 100% विदेशी निवेश की अनुमति है।
- ये डिमांड-डिपोजिट (बचत खाता व चालू खाता) स्वीकार नहीं कर सकती।
- ये भुगतान व सुलह प्रणाली का अंग नहीं होती।
- ये स्वयं पर आहरित चेक जारी नहीं कर सकती।
- इनके जमाकर्ताओं को ऋण गारंटी निगम की जमा बीमा सुविधा प्राप्त नहीं होती।
- इन्हें CRR, SLR आदि रखना आवश्यक नहीं होता है पर पूँजी जोखिम भारित परिसंपत्ति अनुपात (CAR/CRAR) बनाये रखना आवश्यक होता है।
- ये प्राथमिक रूप से कृषि, औद्योगिक गतिविधि, क्रय-विक्रय, अचल संपत्ति के निर्माण में संलग्न नहीं हो सकती है।
- RBI को RBI Act 1934 के तहत NBFC को पंजीकृत करने, नीति निर्माण करने, निर्देश जारी करने, उन पर निगरानी रखने, निरीक्षण करने व विनियमन करने का अधिकार दिया गया है।
- RBI प्रावधानों के उल्लंघन पर इन पर दण्ड लगा सकता है।

रिजर्व बैंक निम्नांकित क्रियाओं में लगी कंपनियों को NBFC की श्रेणी में रखता है-

- इक्विपमेंट लीजिंग कंपनी।
- हायर परचेज फाइनेंस कंपनी।
- हाउसिंग फाइनेंस कंपनी।
- इनवेस्टमेंट कंपनी जो प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का व्यापार कर रही है।
- लोन-कंपनी।
- रेसीडुअरी नॉन बैंकिंग कंपनी।

माइक्रोफाइनेंस (Microfinance)

माइक्रोफाइनेंस को लघु स्तरीय वित्तीय सेवाओं के लिए उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत ऋण तथा बचत दोनों ही प्रकार की सेवाएँ आती हैं, जो शहरी एवं ग्रामीण, दोनों ही क्षेत्रों के गरीबों के उत्थान के लिए हैं। यह आर्थिक सेवाओं में जोखिम कम करने, बचत एवं आत्म सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है।

माइक्रोफाइनेंस में कई प्रकार की वित्तीय सुविधाएँ शामिल हैं। इन सभी सेवाओं में एक सामान्य बात यह है कि इनमें पूँजी कम से कम लगाई जाती है। अधिकतर माइक्रोफाइनेंस कार्यक्रमों में ऋण, बचत, जीवन बीमा तथा फसल बीमा शामिल होती है। इस तरह की सेवाएँ समाज के उन लोगों के लिए वरदान साबित हो रही हैं, जो पारंपरिक वित्तीय प्रणालियों का लाभ उठा पाने में असमर्थ हैं।

माइक्रोफाइनेंस (लघुवित्त) के ग्राहक

लघुवित्त के ग्राहक अधिकतर वे लोग हैं जिनकी आय कम है और जो औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुँच नहीं बना पाते। आमतौर पर लघुवित्त के ग्राहकों का खुद का रोजगार होता है या वे घरेलू उद्योगों में काम करते हैं, जैसे खाद्य प्रसंस्करण और खुदरा व्यापार। शहरी इलाकों में लघुवित्त गतिविधियाँ अधिक विस्तृत हैं वहाँ दुकानदार, सेवाएँ उपलब्ध करवाने वाले, शिल्पकार, रेहड़ी पर समान बेचने वाले लघुवित्त के ग्राहक होते हैं। लघुवित्त के ग्राहक गरीब और ऐसे लोग हैं जिनके पास आय का कोई स्थायी साधन नहीं है।

पारंपरिक औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुँच कई कारणों से सीधे रूप से आय से संबंधित है। आप जितने गरीब हों, उस तक पहुँच होने की संभावना उतनी कम होगी। दूसरी ओर इस बात की संभावना है कि आप जितने गरीब हैं, अनौपचारिक वित्तीय व्यवस्था उतनी ही अधिक महंगी और एकरूप हो जाती है। इसके अलावा, ऐसा भी हो सकता है कि अनौपचारिक व्यवस्थाएँ कुछ विशेष वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयुक्त न हो। मुख्यधारा से बाहर के और बाजार से वंचित व्यक्ति ही लघुवित्त के ग्राहक हैं।

माइक्रोफाइनेंस (लघुवित्त) गरीबों की मदद कैसे करता है?

लघुवित्त का अनुभव बताता है कि यह गरीबों को आर्थिक स्थिति सुधारने, अपने उद्योग को सुधारने और बाहरी समस्याओं से बचने में मदद करता है। यह गरीबों, खास तौर से महिलाओं की सहायता कर स्वरोजगार के लिए भी महत्वपूर्ण उपकरण साबित हो सकता है। वित्तीय सेवाओं तक पहुँच आसान बनाकर लघुवित्त गरीबी के कई आयामों से लड़ने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, उद्योग से आने वाली आय से सिर्फ उद्योग को ही फायदा नहीं होता, बल्कि परिवार की आय में भी बढ़ोत्तरी होती है और परिवार की आय बढ़ने से खाद्य सुरक्षा, बच्चों की पढ़ाई आदि में भी सुधार होता है। इसके अलावा सामाजिक रूप से अकेली महिलाएँ जब औपचारिक संस्थानों के साथ कार्य करती हैं तो उनका भी आत्मविश्वास बढ़ता है और सशक्तिकरण होता है।

आमतौर पर लघुवित्त और लघु ऋण को एक ही समझ लिया जाता है। लघुवित्त ऐसे ऋण, बचत, बीमा, ट्रांसफर सेवाओं और अन्य फाइनेंशियल उत्पादों के लिए प्रयोग किया जाता है जो कम आय वाले लोगों के लिए होता है। वहीं लघु ऋण ऐसे छोटे ऋणों को कहा जाता है जो बैंक या अन्य संस्थानों द्वारा दिए जाते हैं। लघु ऋण कोई चीज गिरवी रखे बगैर किसी व्यक्ति या समूह को दिया जा सकता है।

भारत में माइक्रोफाइनेंस

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) भारत में माइक्रोफाइनेंस को प्रोत्साहित करने में अग्रणी है। इसके स्वयं-सहायता समूह मॉडल ने वाणिज्यिक बैंकों को गरीबों के लिए ऋण निर्माण के लिए प्रेरित किया है। इसके स्वैच्छिक एजेंसियों, बैंक, सामाजिक रूप से उत्साही व्यक्तियों, अन्य औपचारिक एवं

अनौपचारिक संस्थाओं तथा सरकारी तंत्र को स्वयं-सहायता समूह और माइक्रोफाइनेंस संस्थानों को बढ़ावा देने का प्रोत्साहन मिला है।

सरकार की सक्रिय नीतियों एवं विशेष योजनाओं की वजह से वाणिज्यिक बैंक भी स्वयं-सहायता समूहों और माइक्रोफाइनेंस संस्थानों को ऋण उपलब्ध करवा रहे हैं। यह समूह और संस्थान इस राशि में से अपने सदस्यों को ऋण उपलब्ध करवाते हैं, जो सीधे बैंक से प्राप्त करना कठिन होता है। इस प्रकार जरूरतमंद गरीबों को ऋण के रूप में एक वित्तपोषण स्रोत मिल जाता है, जो ऋण लेने वाले को अपनी जानकारी के आधार पर राशि उपलब्ध करवाता है। जबकि बैंक इस प्रकार के किसी भी ऋण को देने से बचते हैं, क्योंकि इसमें जमानत की कमी होती है तथा ऋण लेने वाले के बारे में उन्हें पूरी जानकारी नहीं मिल पाती है।

भारत में माइक्रोफाइनेंस के प्रमुख मॉडल

- **स्वयं सहायता समूह से जुड़ा मॉडल-** इस मॉडल के तहत वाणिज्यिक बैंक (सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बैंक), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंक शामिल हैं, जो स्वयं-सहायता समूहों को सीधे वित्त उपलब्ध करवाते हैं। माइक्रोफाइनेंस कार्यक्रम के अंतर्गत समाज के जमीनी स्तर पर जरूरतमंद लोगों को स्वयं-सहायता समूह बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि, वे मिलकर अपने तथा संगठन के हित के लिए फैसला ले सकें। यह समूह स्वयं-प्रबंधित होता है तथा उपलब्ध राशि को आवश्यकतानुसार आपस में ऋण के रूप में देते हैं। ऋण देने का फैसला समूह कोष आंतरिक समन्वय से करता है। समूह कोष बैंकों द्वारा पारित नकदी ऋण को उसी सीमा में बाँट सकता है।
- **माइक्रोफाइनेंस संस्थान बैंक से जुड़ा मॉडल-** इस मॉडल में माइक्रोफाइनेंस संस्थानों (एम.एफ.आई) को बैंकिंग एजेंसियाँ ऋण राशि उपलब्ध करवाती हैं, जिसे ये स्वयं-सहायता समूहों तथा अन्य लघु ऋण लेने वालों को दे सकते हैं बशर्ते, वो माइक्रोफाइनेंस क्षेत्र के अंतर्गत आते हों।

माइक्रोफाइनेंस संस्थान के कार्य व प्रभाव

माइक्रोफाइनेंस संस्थान लोचशीलता, संवेदनशीलता तथा प्रतिक्रियाशीलता का मिला जुला स्वरूप है जो अनौपचारिक ऋण प्रणाली एवं प्रशासकीय क्षमताओं के स्रोत को व्यवस्थित रूप से उपयोग करता है। यह सामाजिक समूहों पर बहुत ज्यादा निर्भर है और औपचारिक क्षमताओं का उपयोग वित्तीय सशक्तता एवं सामाजिक उन्नति के लिए करता है। माइक्रोफाइनेंस संस्थाएँ स्वयं को पारंपरिक वित्तीय संगठनों से अलग रखती हैं और इसके लिए वो सामाजिक स्तर पर कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के साथ भागीदारी से काम करती हैं। यह भागीदारी समूह समाज के निचले तबके में निवेश करता है ग्रामीण समुदायों को सक्रिय करने के लिए धन जुटाता है। एम.एफ.आई. सुविधायुक्त वाणिज्यिक बैंक, कागजी कार्यवाही, लेन-देन लागत, सूचना विषमताओं, जोखिम और ऋण प्रक्रिया को आसान बना चुके हैं तथा जरूरतमंदों को इसके लिए प्रेरित कर रहे हैं। एम.एफ.आई. का प्रमुख कार्य बैंकों के लिए गारंटर की भूमिका निभाना तथा जरूरतमंद गरीबों को ऋण उपलब्ध भी करवाना है।

वित्तीय समावेशन सूचकांक

- 17 अगस्त, 2021 को भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय समावेशन को मापने के लिए अपनी तरह के पहले समग्र 'वित्तीय समावेशन सूचकांक' (Financial Inclusion Index) की शुरुआत की गई।
- इस सूचकांक के अनुसार मार्च 2021 को समाप्त हुए वित्तीय वर्ष के लिए वार्षिक वित्तीय सूचकांक 53.9 है, जबकि मार्च, 2017 की अवधि के लिए यह 43.4 था।

- इस सूचकांक को आर.बी.आई. द्वारा सरकार और संबंधित क्षेत्र के विनियामक संस्थानों के सहयोग से तैयार किया गया है।
- इसमें बैंकिंग, निवेश, बीमा, डाक के साथ-साथ पेंशन क्षेत्र से संबंधित सूचनाओं को शामिल करते हुए अधिक व्यापक स्वरूप प्रदान किया गया है।
- यह सूचकांक वित्तीय समावेशन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित सूचकों को 0 से 100 के बीच अंक प्रदान करता है, जहाँ 0 पूर्ण वित्तीय अपवर्जन (Exclusion) को तथा 100 पूर्ण वित्तीय समावेशन (Inclusion) को प्रदर्शित करता है।

इसके लिए तीन व्यापक मानदंड निर्धारित किए गए हैं, जिन्हें अलग-अलग भारांक दिए गए हैं—

पहुँच (Access) 35 प्रतिशत

उपयोग (Usage) 45 प्रतिशत

गुणवत्ता (Quality) 20 प्रतिशत

- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अब सूक्ष्म-वित्त क्षेत्रक में कार्य कर रही सभी विनियमित संस्थानों (Regulated Entities: REs) के लिए विनियमों के एक समान समुच्चय का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है।

सूक्ष्म वित्त संस्थानों (MFIs) का विनियमन

मानदंड	NBFC-MFIs के लिए मौजूदा विनियामक ढांचा	विनियामक ढांचे में प्रस्तावित परिवर्तन
सूक्ष्म-वित्त ऋणी या उधारकर्ता (Borrower) की परिभाषा	एक सूक्ष्म-वित्त ऋणी या उधारकर्ता की पहचान वार्षिक घरेलू आय से की जाती है जो ग्रामीण क्षेत्र के लिए 1,25,000 रुपये और शहरी एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों के लिए 2,00,000 रुपये से अधिक न हो।	समान परिभाषा के उद्देश्य से सभी विनियमित संस्थाओं (REs) पर समान मानदंड लागू किए जाएंगे।
घरेलू ऋणग्रस्तता की सीमा	उधारकर्ता की कुल ऋणग्रस्तता 1,25,000 रुपये (शिक्षा और चिकित्सा व्यय के लिए ऋण को छोड़कर) से अधिक न हो	ऋण-आय अनुपात के संदर्भ में ऋण राशि को घरेलू आय से संबंधित किया जाएगा। तदनुसार, सभी ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना होगा कि एक परिवार द्वारा देय समान मासिक किस्त (Equated Monthly Installment: EMI) उसकी आय के 50 प्रतिशत से अधिक न हो।
ऋणों की प्रकृति	संपाश्विक (या जमानत) मुक्त ऋण, जहाँ समय से पहले ऋण के भुगतान पर कोई अर्थ दंड नहीं हो।	संपाश्विक मुक्त प्रकृति वाले सूक्ष्म वित्त ऋणों को सभी विनियमित संस्थाओं (REs) तक विस्तारित किया जाएगा।
पुनर्भुगतान की अवधि	NBFC-MFIs के सूक्ष्म-वित्त उधारकर्ताओं को उनकी पसंद के अनुसार साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक किस्तों में ऋण चुकाने की अनुमति प्रदान की गई है।	सूक्ष्म-वित्त उधारकर्ताओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार पुनर्भुगतान अवधि में लचीलापन प्रदान करने के लिए सभी विनियमित संस्थाओं (REs) के पास बोर्ड द्वारा अनुमोदित नीति होनी चाहिए।

ऋणों की संख्या, ऋण राशि और अवधि पर सीमा	ऋण राशि की सीमा 1,25,000 रुपये (पहले चक्र में 75,000 रुपये तथा शिक्षा और चिकित्सा व्यय को पूर्ण करने हेतु लिए गए ऋण को ऋण सीमा से बाहर रखा गया है); 30,000 रुपये से अधिक के ऋण के लिए न्यूनतम 24 महीने की अवधि। एक ही उधारकर्ता को दो से अधिक NBFC-MFIs ऋण प्रदान नहीं किए जाएंगे। ऋण के न्यूनतम 50 प्रतिशत को आय सृजन गतिविधियों के लिए प्रदान किया जाना है।	सभी सीमाओं का समाप्त कर दिया जाएगा।
सूक्ष्म ऋणों का मूल्य निर्धारण	एक NBFC-MFI द्वारा प्रभारित किया जाने वाला अधिकतम ब्याज निम्नलिखित से कम होगा— 100 करोड़ रुपये या उससे अधिक के ऋण पोर्टफोलियो वाले MFIs के लिए निधियों की लागत के अलावा 10% मार्जिन कैप तथा अन्य के लिए 12% मार्जिन कैप; परिसंपत्ति आकार के दृष्टिकोण से सबसे बड़े पांच वाणिज्यिक बैंकों की औसत दर का 2.75 गुणा।	NBFC-MFIs की ब्याज दर के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। प्रत्येक NBFC-MFI के बोर्ड को प्रासंगिक कारकों जैसे कि निधि की लागत, मार्जिन और जोखिम प्रीमियम को ध्यान में रखते हुए ब्याज दर मॉडल को अपनाना तथा ऋण और अग्रिम के लिए प्रभारित की जाने वाली ब्याज दर को निर्धारित करना चाहिए। NBFC-MFIs, किसी भी अन्य NBFC की तरह, उचित व्यवहार संहिता द्वारा निर्देशित होंगे और ब्याज दरों के प्रकटीकरण एवं पारदर्शिता सुनिश्चित करेंगे।
गैर-लाभकारी कंपनियों को छूट	उन सभी 'गैर-लाभकारी' सूक्ष्म-वित्त कंपनियों [कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 (कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 8) के तहत पंजीकृत] को पंजीकरण मानदंडों से छूट प्रदान की गई है, जो— व्यवसायिक उद्यम के लिए अधिकतम 50,000 रुपये तथा आवास इकाई की लागत को पूर्ण करने के लिए किसी भी निर्थन व्यक्ति को अधिकतम 1,25,000 रुपये ऋण प्रदान करती हैं और सार्वजनिक जमा स्वीकार नहीं करती हैं।	उन 'गैर-लाभकारी' सूक्ष्म-वित्त कंपनियों को छूट प्रदान की गई है, जो— ग्रामीण और शहरी/अर्ध शहरी क्षेत्रों के लिए क्रमशः 1,25,000 रुपये तथा 2,00,000 रुपये की वार्षिक घरेलू आय वाले परिवारों को संपाश्विक-मुक्त ऋण प्रदान करेगी; यह निर्धारित करेंगी की ऋण की EMIs घरेलू आय के 50 प्रतिशत से अधिक न हो तथा जिनकी परिसंपत्ति का आकार 100 करोड़ रुपये से कम हो

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (Reserve Bank of India)

1 जनवरी, 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि बर्मा के विभाजन के बाद 1942 तक इसने बर्मा के करंसी अथॉरिटी तथा मार्च 1947 तक बर्मा सरकार के बैंकर के रूप में भी कार्य किया।

1 जनवरी, 1949 से यह राज्य स्वामित्व में देश का केन्द्रीय बैंक है। इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में है। शुरू में इसमें केवल तीन ही विभाग थे— बैंकिंग, नोट

निर्गमन तथा कृषि ऋण जो इस समय 29 हैं तथा इसके 27 क्षेत्रीय कार्यालय तथा 04 उप कार्यालय हैं जिनमें अधिकांश राज्यों की राजधानियों में स्थित हैं। यह केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों के लिये बैंकर का कार्य करता है।

RBI भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक रूपों में भूमिका निभाता है-

- देश के केंद्रीय बैंक के रूप में।
- मौद्रिक तथा बैंकिंग संरचना की सर्वोच्च संस्था, इसके अभिरक्षक के रूप में।
- देश के औद्योगिक तथा कृषि विकास में महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में।
- स्फीति दर को स्थिर करने में।
- अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति निर्माता के रूप में।
- रुपये के विनिमय दर को स्थिर करने में।
- विदेशी करेंसी के संरक्षण में।
- अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन में भारत सरकार के एजेंट की तरह।
- विकास संबंधी कार्यों के संवर्द्धन के लिए संस्थाएं स्थापित करके। जैसे- IDBI, SIDBI, NABARD और NHB।

रिज़र्व बैंक के कार्य (Function of Reserve Bank)

पत्र मुद्रा का निर्गमन

आप 2 रुपये से लेकर 2000 रुपये तक के नोट देखते हैं और उन पर गवर्नर, रिज़र्व बैंक के हस्ताक्षर से आप समझ लेते हैं कि इनका निर्गमन रिज़र्व बैंक करता है। लेकिन आप ये जानना चाहते होंगे कि आखिर रिज़र्व बैंक पत्र मुद्रा का निर्गमन किस प्रकार करता है? रिज़र्व बैंक को पत्र मुद्रा निर्गमन का बैंक कहते हैं। इस कार्य को सुचारू रूप से संपादित करने के लिए RBI के पास एक अलग निर्गमन विभाग है, नोट निर्गमन का कार्य बैंकिंग से बिल्कुल स्वतंत्र तथा अलग होता है, इसीलिए नोट निर्गमन विभाग और बैंकिंग विभाग अलग-अलग हैं। बैंक का निर्गमन विभाग जो नोट निर्गमित करता है वह उसकी देयता होती है और जब तक उसके मूल्य के बराबर सम्पत्ति नोट निर्गमन विभाग में न हो, नोट का निर्गमन नहीं हो सकता। कहने का आशय यह है कि प्रत्येक निर्गमित नोट के पीछे 100 प्रतिशत मूल्य की प्रतिभूति का होना आवश्यक है।

- वर्ष 1956 तक निर्गमन आनुपातिक कोष प्रणाली (Proportionate Reserve System) प्रचलित थी, जिसके अनुसार पत्र मुद्रा के कुल मूल्य का कम-से-कम 40% भाग सोने या विदेशी प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य था तथा शेष 60% सरकारी प्रतिभूति (रुपये) में रखना पड़ता था।
- वर्ष 1956 में न्यूनतम विदेशी कोष प्रणाली (Minimum Foreign Reserve System) अपनायी गयी जिसके अंतर्गत 515 करोड़ रुपये के विदेशी कोष (जिसमें 115 करोड़ रुपये स्वर्ण तथा 400 करोड़ रुपये विदेशी प्रतिभूति) या कोष के रूप में तथा छपी जाने वाली पत्र मुद्रा के शेष मूल्यों को रुपये की प्रतिभूति (Rupee Security) में रखना आवश्यक था।
- 31 अक्टूबर, 1957 के बाद रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के संशोधन के अनुसार इसे घटाकर केवल 200 करोड़ रुपया कर दिया गया जिसमें से कम-से-कम 115 करोड़ रुपया सोने के सिक्के या धातु के रूप में तथा 85 करोड़ रुपये विदेशी करेंसी या विदेशी प्रतिभूति के रूप में रखना अनिवार्य होगा।
- रिज़र्व बैंक जो भी पत्र मुद्रा का निर्गमन करता है वह सरकार के ही लिए करता है। इसलिए पत्र मुद्रा के निर्गमन से सृजित देयता अन्तिम रूप से सरकार की ही होती है भले ही भुगतान का वायदा (RBI) करे।

सरकार के बैंक के रूप में कार्य

रिज़र्व बैंक केन्द्र सरकार को अल्पकालीन ऋण प्रदान करती है जिससे सरकार

अपने सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक प्राप्ति के बीच अस्थायी घाटे को पूरा कर सके। केन्द्र सरकार वैसे ट्रेजरी बिल्स के माध्यम से बिना किसी सीमा के रिज़र्व बैंक से उधार लेने के लिए अधिकृत थी पर अब राज्य सरकारों की ही तरह अधिक से अधिक 3 माह के लिए वेज एंड मींस एडवांसेज प्राप्त कर सकती है। रिज़र्व बैंक केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बैंकर का कार्य करता है तथा वह उनके हित में सभी व्यवहार करता है।

बैंकों के बैंक रूप में कार्य

रिज़र्व बैंक केन्द्रीय बैंक के रूप में अर्थव्यवस्था में साख का नियंत्रण करता है, जो वस्तुतः केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। बैंकों के अन्तिम ऋणदाता के रूप में कार्य का प्रतिपादन सबसे पहले 1802 ई. में थ्रान्टन ने किया पर इस वाक्यांश का प्रथम प्रयोग बेरिंग ने 1797 ई. में किया। बहुत से लोग इसके प्रथम प्रतिपादन का श्रेय वाल्टर को भी देते हैं।

- बैंकों को उस समय ऋण देना या तरलता की आपूर्ति करना जिस समय उन्हें बाह्य स्रोतों से ऋण आसानी से न मिल सके, अन्तिम ऋणदाता का कार्य कहलाता है। यह काम रिज़र्व बैंक दो प्रकार से करता है- एक तो वह विभिन्न क्रियाओं के द्वारा उनकी 'तरलता' को बनाये रखने की कोशिश करता है क्योंकि तरलता ही सफल बैंकिंग प्रणाली का आधारभूत तथ्य है।
- CRR, SLR, LAF तथा MSF के अंतर्गत आवश्यकता पड़ने पर उधारी की व्यवस्था के द्वारा रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों की तरलता की स्थिति बनाये रखने की कोशिश करता है जिससे बैंकों पर वित्तीय संकट न आए। इतना ही नहीं रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों द्वारा धारित बिलों तथा प्रतिभूतियों के पुनः छूट की भी सुविधा देता है, एक प्रकार से अन्तिम ऋणदाता के रूप में वह उनकी प्रतिभूतियों की आड़ में उन्हें ऋण प्रदान करता है।
- बैंकों की शोध क्षमता बनाये रखना रिज़र्व बैंक (केन्द्रीय बैंक) का प्राथमिक दायित्व है क्योंकि बैंकिंग प्रणाली की सफलता विश्वास पर आधारित होती है इसमें थोड़ी भी असावधानी संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली को संचयी रूप से ध्वस्त कर सकती है और इसकी सफलता बैंकों की तरलता पर निर्भर करती है। बैंकों की शोध क्षमता बनाये रखने के लिए रिज़र्व बैंक निम्नलिखित उपायों का प्रयोग करता है-
 - ♦ नकद कोष अनुपात।
 - ♦ वैधानिक तरलता अनुपात।
 - ♦ बैंकों द्वारा पूंजी पर्याप्तता अनुपात बनाये रखने पर बल।
 - ♦ नकद जमा अनुपात (जो बैंक स्वयं अपने अनुभव के आधार पर अपने पास नकद रूप, बैंक से होने वाले दिन-प्रतिदिन की भुगतान आवश्यकता की पूर्ति के लिए रखता है)।

रिज़र्व बैंक द्वारा तरलता समायोजन तथा साख नियंत्रण (Liquidity Adjustment and Credit Control by Reserve Bank)

किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं के सुचारू रूप से चलते रहने के लिए तरलता की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता एक अनिवार्य दशा है। अर्थव्यवस्था में उचित मात्रा में तरलता की उपलब्धता सुनिश्चित करना, तरलता प्रबंधन के रूप में जाना जाता है, जो एक विस्तृत धारणा है और साख नियंत्रण जो मुख्यतया व्यापारिक बैंकों की साख सृजन की शक्ति को नियंत्रित करने से संबंधित है, तरलता प्रबंधन का एक भाग है। रिज़र्व बैंक अपनी तरलता प्रबंधन नीति का क्रियान्वयन तरलता समायोजना सुविधा (LAF) जिसे 1999 में शुरू किया गया, के माध्यम से करता है। रेपो तथा रिवर्स रेपो इसके दो अभिन्न भाग हैं। सीमान्त स्थायी सुविधा (Marginal Standing Facility - MSF), सी.बी.एल.ओ, नकद प्रबंधन बिल भी तरलता समायोजन के तरीके हैं।

साख का आशय

साख को, भुगतान प्राप्त करने के दावे के रूप में परिभाषित किया जाता है। जब एक बैंक लोगों को ऋण देता है तो वह एक ऋण दाता बन जाता है और वह व्यक्ति जो बैंक से ऋण लेता है, ऋणी कहलाता है। जब बैंक ऋण देता है तो वह भविष्य में उस व्यक्ति से ऋण वसूल करने का प्रबंध भी कर लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि बैंक भविष्य में ऋणी से मुद्रा के लिये दावा कर सकता है। इसी के अनुसार, बैंक अपनी जमाओं में विस्तार करने में समर्थ होता है। इसे बैंक द्वारा साख का सृजन कहते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि साख का सृजन ऋण देने और ऋण लेने के कार्य द्वारा होता है।

साख सृजन की प्रक्रिया

अब प्रश्न यह उठता है कि बैंक साख का सृजन कैसे करता है? अन्य शब्दों में, बैंक दूसरों को ऋण देने के लिए मुद्रा का प्रबंध कहाँ से करता है और यह ऋण या साख का सृजन कितनी मात्रा में कर सकता है?

बैंक जनता से जमा के रूप में मुद्रा स्वीकार करता है। सामान्य रूप से ये जमा जनता को मांग पर वापस करनी पड़ती हैं। इसलिए, यदि सभी व्यक्ति, जिन्होंने बैंक में मुद्रा जमा की है अपनी सारी मुद्रा निकाल लेते हैं तो बैंक के पास कोई मुद्रा नहीं बचेगी। किंतु सामान्य रूप से ऐसा नहीं होता।

सामान्य अनुभव से यह देखा गया है कि एक बार कोई व्यक्ति बैंक में मुद्रा जमा करता है तो उसे तुरंत नहीं निकालता। अधिकतर लोग जब उन्हें आवश्यकता होती है अपनी जमा में से थोड़ी मात्रा निकालते हैं और शेष राशि बैंक के पास छोड़ देते हैं। इसे संभव बनाने के लिए, बैंक अपनी जमा राशि का एक अंश नकद रखता है जिससे वह मांग पर लोगों को मुद्रा देता रहता है। जमा राशि का यह अंश प्रतिशत के रूप में होता है। कुल जमा राशि का कितना प्रतिशत नकद रूप में रखा जाना है, इसका निर्णय देश के बैंकिंग प्राधिकरण द्वारा लिया जाता है। नकदी की मात्रा, उन लोगों को देने के लिए सुरक्षित रखी जाती है जो बैंक में मुद्रा निकालने के लिए आते हैं। कुल जमा राशि का जो अंश नकद के रूप में रखा जाता है, उसे हम नकद आरक्षण अनुपात कहते हैं। बैंक नकद आरक्षण अनुपात के आधार पर बैंक में नकद रखी जाने वाली राशि की गणना करता है, वह इस राशि को कुल जमा राशि में से घटा देता है और शेष राशि का प्रयोग ऋण वालों को ऋण देने के लिए करता है। बैंक के इस कार्य से, साख सृजन का कार्य आरंभ हो जाता है।

बैंक की साख सृजन क्षमता

किसी बैंक की साख सृजन क्षमता नकद आरक्षण अनुपात पर निर्भर करती है। यदि नकद आरक्षण अनुपात अधिक है तो बैंक को जनता को भुगतान करने के लिए अधिक नकद राशि रखनी पड़ती है और उसी के अनुसार ऋण देने के लिए कम राशि उपलब्ध होगी और इसलिए साख का सृजन कम होगा। इसी प्रकार साख का सृजन अधिक होगा यदि नकद आरक्षण अनुपात कम है। माना कि बैंक की कुल साख 500 रुपये है जबकि नकद आरक्षण अनुपात 20 प्रतिशत और जमा में आरंभिक वृद्धि 100 रुपये है। अब नकद आरक्षण अनुपात घट कर 10 प्रतिशत होने पर कुल साख होगी।

$$100 \times \frac{1}{10\%} - 100 \times \frac{1/10}{100} - 100 \times 100 - 100 \text{ रु.}$$

रिज़र्व बैंक द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले साख नियंत्रण तथा तरलता समायोजन के तरीके (Instruments of Credit Control and Liquidity Adjustments Use by RBI)

परिमाणात्मक उपाय (Quantitative Measures)

साख नियंत्रण के परिमाणात्मक उपाय

- बैंक दर (Bank Rate)।
- खुले बाजार की क्रिया (Open Market Operations)।
- परिवर्तनीय नकद आरक्षित अनुपात (Variable Cash Reserve Ratio)।
 - नकद आरक्षित अनुपात (CRR- Cash Reserve Ratio)।
 - वृद्धिमान नकद आरक्षित अनुपात [ICRR-Incremental CRR (Cash Reserve Ratio)]।
 - सांविधिक तरलता अनुपात (SLR- Statutory Liquidity Ratio)।

तरलता अवशोषण के परिमाणात्मक उपाय

- तरलता समायोजन सुविधा (LAF- Liquidity Adjustment Facility)।
 - रेपो रेट।
 - रिवर्स रेपो रेट।

तरलता अधिशोषण के अन्य तरीके-

- सीमान्त स्थायी सुविधा (MSF- Marginal Standing Facility)।
- स्टैंडिंग डिपॉजिट फैसिलिटी (SDF- Standing Deposit Facility)।
- बाजार स्थिरीकरण स्कीम (MSS- Market Stabilization Scheme)।
- नकद प्रबंधन बिल (CMB- Cash Management Bill)।
- सी.बी.एल.ओ. (CBLO- Collateralized Borrowing and Lending Obligation)।

साख नियंत्रण के परिमाणात्मक उपाय

रिज़र्व बैंक द्वारा या किसी भी केन्द्रीय बैंक द्वारा सामान्यतया प्रयुक्त परिमाणात्मक साख नियंत्रण के उपाय वे उपाय हैं जो साख की मात्रा को प्रभावित करते हैं। इसके अंतर्गत निम्नांकित उपाय आते हैं।

- **बैंक दर (Bank Rate)** - रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट के अनुसार बैंक दर वह दर है जिस पर रिज़र्व बैंक बिल ऑफ एक्सचेंज या अन्य व्यापारिक प्रपत्रों को जिन्हें एक्ट के अंतर्गत क्रय योग्य ठहराया गया है, क्रय करने या पुनः छूट (Rediscount) करने के लिए तैयार रहता है। पुनः छूट का मतलब क्या है? जब किसी व्यापारी को धन की जरूरत होती है तो अपने बिल ऑफ एक्सचेंज या प्रतिभूतियों को व्यापारिक बैंकों को बट्टे पर बेचता है, जैसे 100 रुपये की प्रतिभूति 80 रुपये पर बेचना अर्थात् प्रतिभूति का 20% पर कटौती या बट्टा कराना। जिस अवधि में बैंक इस प्रतिभूति को अपने पास रखेगा उस अवधि के लिए बट्टा या 20 रुपया ब्याज होगा। अब यदि बैंक को धन की आवश्यकता हो तो बैंक इस बट्टे पर प्राप्त बिल को रिज़र्व बैंक को बट्टा पर बेच सकता है। जिस दर पर रिज़र्व बैंक बिलों की पुनर्कटौती करता है उसे बैंक दर कहते हैं। यह एक प्रकार से वह दर होगी जिस पर आर.बी.आई. बैंकों को, आवश्यकता पड़ने पर, फंड मुहैया कराता है। व्यावहारिक रूप में यह वह दर होती है जिस पर रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों को उधार देता है। यह दर व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले उधार पर ब्याज दर की न्यूनतम सीमा निर्धारित करती है। इस दर के द्वारा रिज़र्व बैंक साख की उपलब्धता तथा साख की लागत को प्रभावित कर सकता है।
- **खुले बाजार की क्रिया (Open Market Operation)** - खुले बाजार की क्रिया आर.बी.आई. द्वारा जनता या बैंक से सरकारी प्रतिभूतियों का अपने लिए खरीदना या बेचना है। खुले बाजार की क्रिया के दो भाग होते हैं -
 - **सार्वजनिक ऋण प्रबंध के अंतर्गत सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय**

तथा विक्रय- सरकार के बैंक तथा सार्वजनिक ऋण के प्रबंधक के रूप में सार्वजनिक ऋण की प्रार्थित अवधि के अंत में तथा उसके बाद न बिके हुए संपूर्ण ऋण स्टॉक को आर.बी.आई. द्वारा खरीद लिया जाता है तथा उसे बाजार में बेचता है, पर आर.बी.आई. द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों का यह क्रय बाजार से वास्तविक क्रय नहीं होता है, यह केवल एक आंतरिक व्यवस्था होती है जो सरकार तथा आर.बी.आई. के बीच होती है। आर.बी.आई. द्वारा यह क्रिया सरकार के एजेंट के रूप में की जाती है। यह खुले बाजार की क्रिया का दीर्घकालीन पहलू है।

- **साख नियंत्रण के औजार के रूप में-** खुले बाजार की क्रिया का एक अन्य उद्देश्य चलन में तरलता (मुद्रा) का डालना या निकालना होता है। आर.बी.आई. द्वारा जब प्रतिभूतियों का क्रय होगा तो चलन में मुद्रा बढ़ जायेगी तथा जब आर.बी.आई. द्वारा प्रतिभूतियाँ बेची जाएंगी तो चलन में मुद्रा की कमी होगी। साख नियंत्रण के रूप में खुले बाजार की क्रिया तरलता के समायोजन से संबंधित है इसका सैद्धान्तिक आधार यह है कि आर.बी.आई. द्वारा प्रत्येक खुले बाजार में क्रय के कारण क्रय के मूल्य के बराबर (Higher Demand) में वृद्धि होती है तथा विक्रय के कारण H में कमी होती है पर इसके बाद मुद्रा गुणक के क्रियाशीलन की क्रिया शुरू होती है फलस्वरूप M_3 में कई गुना वृद्धि होती है। यह प्रभाव दोनों ही स्थितियों में होगा, चाहे आर.बी.आई. बैंकों से खरीदे या बेचे या जनता से खरीदे या बेचे, अन्तर केवल इतना होगा कि पहली स्थिति में बैंक का रिजर्व इससे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होगा जबकि दूसरी स्थिति में परोक्ष रूप से प्रभावित होगा। साख नियंत्रण के अस्त्र के रूप में खुले बाजार की यह क्रिया एक अल्पकालीन अस्त्र है।

साख नियंत्रण के अस्त्र के रूप में खुले बाजार की क्रिया की सफलता तीन दशाओं के पूरा होने पर निर्भर करती है-

- पूर्ण संगठित तथा विकसित सरकारी प्रतिभूति बाजार।
- केन्द्रीय बैंक की प्रतिभूतियों के क्रय तथा विक्रय की पर्याप्त क्षमता।
- मौद्रिक नीति के अन्य कारकों पर अधिक भार का होना।

इस प्रकार प्रतिभूतियाँ क्रय विक्रय की क्रियाओं के द्वारा अर्थव्यवस्था में तरलता का समायोजन प्रत्यक्ष रूप से तथा बैंकों की तरलता का समायोजन परोक्ष रूप से होता है। मुद्रा प्रसार की स्थिति में प्रतिभूतियों के विक्रय के द्वारा रिजर्व बैंक अधिक से अधिक मुद्रा चलन से निकाल सकता है तथा मन्दी या अवसाद की स्थिति में प्रतिभूतियों के क्रय की नीति अपना सकता है जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रवाहित हो सके।

स्विच ऑपरेशन

खुले बाजार की क्रिया की व्याख्या के दौरान स्विच ऑपरेशन (Switch Operation) का स्पष्टीकरण आवश्यक है। खुले बाजार की क्रिया का प्रयोग साख नियंत्रण या मौद्रिक नीति के अस्त्र के रूप में ही नहीं किया जाता बल्कि इसका प्रयोग सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय के माध्यम या राजकोषीय यंत्र के रूप में भी किया जाता है। रिजर्व बैंक द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय करने (सामान्यतया अल्प अवधि की) तथा दूसरी प्रतिभूतियों का उसके स्थान पर विक्रय करने की (लंबी अवधि की प्रतिभूतियों का) क्रिया को, जिससे प्रतिभूतियों की परिपक्वता अवधि (Maturity Period) (आँतम भुगतान अवधि) लंबी हो सके, 'स्विच ऑपरेशन' कहते हैं।

परिवर्तनीय नकद आरक्षित अनुपात (Variable Cash Reserve Ratio)

बैंकों के पास रखे जाने वाले तरल कोष में परिवर्तन द्वारा रिजर्व बैंक साख नियंत्रण कर सकता है क्योंकि बैंकों द्वारा साख सृजन की चर्चा करते हुए हम कह चुके हैं कि यह अनुपात जितना ही अधिक होगा, बैंकों की साख सृजन की शक्ति उतनी ही कम होगी। इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपाय आते हैं-

- **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)** - रिजर्व बैंक अनुसूचित

बैंकों को उनकी संपूर्ण जमा देयता (मांग जमा तथा समय जमा का) का 3 से 15 प्रतिशत तक नकद रिजर्व बैंक के पास रखने के लिए बाध्य कर सकता है। CRR की दर जितनी ही ऊँची होगी बैंकों के पास प्राप्त जमा का उतना ही कम नकद शेष उधार देने तथा साख सृजन के लिए होगा और व्यापारिक बैंकों की साख सृजन की क्षमता उतनी ही कम होगी। जुलाई, 1989 में CRR की दर 15 प्रतिशत थी। वर्ष 1991 से CRR में निरन्तर कमी लायी गयी है। आर.बी.आई. अधिनियम 2006 (संशोधित) की व्यवस्था के अनुसार CRR की ऊपरी सीमा तथा निचली सीमा समाप्त कर दी गयी है।

- **वृद्धिमान नकद कोष अनुपात (Incremental Cash Reserve Ratio)** - कभी-कभी आकस्मिक परिस्थितियों में जब किसी कारण से बैंकों की जमाओं (या मुद्रा प्राप्ति) में बहुत अधिक वृद्धि हो जाये जिससे अर्थव्यवस्था में तरलता की समस्या उत्पन्न हो जाये तो केन्द्रीय बैंक इस तरलता के अधिशेषण के लिए CRR के अलावा अस्थायी रूप से वृद्धिशील नकद कोष अनुपात (ICRR) का प्रयोग करता है, ऐसी ही व्यवस्था रिजर्व बैंक ने विमुद्रीकरण (2016) के बाद, बैंकों में अत्यधिक मात्रा में एकत्रित तरलता को निरस्त करने के लिए किया था।
- **वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio, SLR)** - (धारा 24 बैंकिंग नियमन एक्ट) व्यापारिक बैंकों को अपने पास अपनी जमा का कम-से-कम 25% (अधिकतम 40%) CRR के अंतर्गत रखे गये नकद के अतिरिक्त नकद, सोना, विदेशी मुद्रा या स्वीकृत प्रतिभूतियों में रखना अनिवार्य है। CRR की ही तरह SLR की व्यवस्था भी सभी वित्तीय इकाईयों के संबंध में लागू होती है। 23 जनवरी, 2007 को जारी एक अध्यादेश के द्वारा SLR की निचली सीमा (25%) को समाप्त कर दिया गया, अर्थात् इसे आवश्यकतानुसार RBI द्वारा नीचे लाया जा सकता है।

तरलता समायोजन, अवशोषण के परिमाणान्तरक उपाय

फण्ड की कमी से उत्पन्न आकस्मिक परिस्थितियों में फण्ड की उपलब्धता मुद्रा बाजार के सुचारू रूप में क्रियाशीलन की आवश्यक दशा है। वैसे बैंक अपनी प्रतिभूतियों का बट्टा करके रिजर्व बैंक से बैंक दर के रूप में या कालमनी मार्केट से अल्पकालीन ऋण के रूप में प्राप्त कर सकता है, पर रिजर्व बैंक ने हाल के वर्षों में विशेष रूप से वर्ष 2000 से कुछ विशिष्ट मेकेनिज्म (प्रणाली) विकसित किया है जिसके आधार पर व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक से उधार प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए इन तरीकों को हम तरलता समायोजन के अंतर्गत रखते हैं वैसे ये साख सृजन के नियंत्रण में भी सहायक हो सकते हैं। व्यापारिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थायें निम्न प्रकार से रिजर्व बैंक से अल्पकाल के लिए उधार प्राप्त कर सकती हैं-

- **तरलता समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility - LAF)** - LAF एक मौद्रिक नीति का अस्त्र है जो बैंकों को पुनर्क्रय समझौते के द्वारा उधार लेने-देने की सुविधा देता है। यह व्यापारिक बैंकों को उनकी दिन प्रतिदिन की तरलता में असामंजस्य के समायोजन में मदद करता है। LAF रेपो तथा रिवर्स रेपो के माध्यम से कार्य करता है।
- **पुनर्क्रय विकल्प या रेपो एवं रिवर्स रेपो (Re Purchase Option REPO and Reverse Repo)** - जब कोई व्यक्ति या संस्थान इस समझौते या विकल्प के साथ कोई प्रतिभूति किसी को बेचता है कि वह उसे एक निश्चित अवधि के बाद क्रय कर लेगा तो इसे हम सामान्यतया रेपो या पुनर्क्रय विकल्प कहते हैं तथा जब कोई क्रेता इस समझौते के अंतर्गत कोई प्रतिभूति क्रय करता है कि एक निश्चित अवधि के बाद उसे विक्रेता को बेच देगा तो इसे रिवर्स रेपो (Reverse Repo) कहते हैं। स्पष्ट है इस व्यवहार में एक ही व्यवहार एक व्यक्ति की दृष्टि से रेपो होगा, पर दूसरे के लिए वही व्यवहार रिवर्स रेपो होगा।

ये दोनों क्रियायें मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा अर्थव्यवस्था में तरलता प्रबंधन या तरलता समायोजन के लिए की जाती हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रेपो तरलता डालने तथा रिवर्स रेपो का प्रयोग तरलता अधिशोषण या निकालने के लिए किया जाता है। रेपो की शुरुआत सबसे पहले 1917 में यू.एस.ए. के वित्तीय बाजार से हुई और आज रेपो भारतीय मौद्रिक नीति का एक अभिन्न अंग बन गया है। रेपो वास्तव में एक ऐसी क्रिया है जिसमें तात्कालिक विक्रय (स्पॉट सेल) के साथ वायदा समझौता (Forward Contract) जुड़ा है। स्पॉट सेल के अंतर्गत मुद्रा का हस्तान्तरण रिजर्व बैंक से व्यापारिक बैंकों को प्रतिभूतियों के बदले होता है जबकि उसी के साथ जुड़े 'वायदा समझौते' के अंतर्गत कुछ निश्चित समय के बाद प्रतिभूतियों का हस्तान्तरण रिजर्व बैंक से व्यापारिक बैंकों की ओर होता है जबकि व्यापारिक बैंक से लिए हुए ऋण का भुगतान RBI को कर दिया जाता है। प्रतिभूतियों के विक्रय मूल्य (या स्पॉट प्राइज) तथा पुनर्क्रय मूल्य (या फॉरवर्ड प्राइज) का अंतर (पुनर्क्रय मूल्य विक्रय मूल्य से अधिक होता है) ही उस अवधि का ब्याज होता है जिसे हम रेपो रेट कहते हैं। इसी प्रकार हम रिवर्स रेपो रेट को स्पष्ट कर सकते हैं।

- **सीमान्त स्थायी सुविधा (Marginal Standing Facility Rate-MSF)**- रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा 9 मई, 2011 को घोषित सीमान्त स्थायी सुविधा एक नयी धारणा है। MSF की तरह यूरोपियन सेंट्रल बैंक स्थायी सुविधा प्रदान करता है, जिसे मार्जिनल स्टैंडिंग फेसिलिटी कहते हैं तथा फेडरल रिजर्व द्वारा दी गयी सुविधा को डिस्काउंट विंडो सिस्टम कहते हैं। इसके तहत व्यापारिक बैंक अपनी निवल मांग तथा सार्वधि देयताओं के 1 प्रतिशत तक रातभर के लिए ऋण प्राप्त कर सकता है। इस पर देय ब्याज दर सामान्यतया चालू रेपो रेट से 1 प्रतिशत अधिक होती है।

रिजर्व बैंक ने MSF की शुरुआत सम्पत्तियों तथा दायित्वों के बीच होने वाले अल्पकालीन असामंजस्य को प्रभावी रूप से नियंत्रण, वित्तीय प्रणाली में मौद्रिक ट्रांसमिशन को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा अन्तर्बैंक बाजार में, एक रात्रिय (Over Night) उधारी दर/ब्याज दर में पायी जाने वाली उग्रता में कमी लाने के लिए की है। उल्लेखनीय है कि MSF के अंतर्गत बैंकों द्वारा प्रतिभूतियाँ गारन्टी के रूप में रखी जाती हैं। गिरवी रखी जाने वाली प्रतिभूतियाँ प्रचलित एस.एल.आर. सीमा के भीतर हो सकती हैं जबकि LAF या रेपो के अंतर्गत लिए जाने वाले ऋण के संबंध में गिरवी रखी जानी वाली प्रतिभूतियाँ LAF सीमा के अतिरिक्त होंगी, इसीलिए महंगा होने के बावजूद भी MSF के अंतर्गत उधारी, रेपो या LAF की अपेक्षा अधिक प्रभावी है।

आर.बी.आई. द्वारा 3 मई, 2011 को निर्गत निर्देश के अनुसार रेपो रेट एक मात्र स्वतंत्र परिवर्ती पॉलिसी रेट है जो अन्य पॉलिसी रेट-MSF बैंक दर, पैनल रेट तथा रिवर्स रेपो दर को प्रभावित करेगा। ब्याज दर की ऊपरी सीमा MSF दर, जो बैंक दर के बराबर होगी, द्वारा निर्धारित होगी, जबकि रिवर्स रेपो रेट इसकी निचली सीमा होगी तथा रेपो इन दोनों के बीच स्थित होगी जो दोनों को निर्धारित करेगी।

LAF के अंतर्गत उधार लेने वाला कोई भी हो सकता है। सभी व्यापारिक बैंक, सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सरकार, गैर-वित्तीय संस्थाएँ आदि LAF के अंतर्गत रिजर्व बैंक से उधार पा सकती हैं जबकि MSF के अंतर्गत केवल अनुसूचित व्यापारिक बैंक ही रिजर्व बैंक से उधार प्राप्त कर सकते हैं।

- **स्टैंडिंग डिपॉजिट फेसिलिटी (SDF)** - रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक नये मौद्रिक अस्त्र के रूप में SDF शुरू करने जा रहा है जिसका उद्देश्य बैंकों में पड़े हुए तरलता आधिक्य को कम करना है साथ ही व्यापारिक बैंकों

को कोलैटरल दिए बिना इसे प्रभावित करना है। इस प्रकार SDF मार्केट स्टैबिलाइजेशन स्कीम को प्रतिस्थापित करेगा। इसकी घोषणा 2018-19 के बजट में की गई थी।

- **CBLO (कोलैटरलाइज्ड बोरोइंग एण्ड लीडिंग ऑब्लिगेशन)**- आर.बी.आई. द्वारा अनुमोदित एक बाजार अस्त्र है जिसे अधिक से अधिक 1 वर्ष की अवधि के लिए निर्गत किया जाता है।

गुणात्मक (चयनात्मक) साख नियंत्रण के तरीके (Qualitative or Selective Measures of Credit Control)

चयनात्मक साख नियंत्रण के तरीके वे हैं जो साख की मात्रा या परिमाण को नहीं बल्कि उसके प्रवाह को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित करते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य व्यापारिक बैंकों द्वारा अवांछित आर्थिक क्रियाओं के लिए साख देने पर रोक लगाना या उन्हें हतोत्साहित करना है। रिजर्व बैंक ने प्रमुख रूप निम्नलिखित चयनात्मक विधियों का प्रयोग किया है।

- मार्जिन या न्यूनतम सीमा निर्धारण।
- साख मापदण्डों का निर्धारण।
- नैतिक दबाव (Moral Suasion)
- विभेदक ब्याज दर (Differential Interest Rate)
- प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct Action)
- साख राशनिंग (Credit Rationing)
- साख स्वीकृति योजना (Credit Authorisation Scheme)
- क्रेडिट मॉनिटरिंग अरेंजमेंट (CMA)
- धारा 21, बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949

मार्जिन या चयनात्मक साख

कुछ विशिष्ट प्रतिभूतियों की आड़ में ऋण देने के संबंध में न्यूनतम सीमा या मार्जिन निर्धारित करना। इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब ऐसी वस्तुओं के आड़ में ऋण दिया जा रहा हो जो स्फीति की दृष्टि से अधिक संवेदनशील हैं। चयनात्मक साख नियंत्रण के अंतर्गत प्रायः आने वाली वस्तुएँ हैं- खाद्यान्न, तिलहन, तेल, वनस्पति घी, कपास, खांडसारी, गुड़, चीनी, सूती कपड़ा और सूती धागा आदि।

उच्चतम सीमा या साख मापदण्ड का निर्धारण

RBI फसलों की प्रत्याशा, आपूर्ति, स्थिति तथा कीमतों की प्रवृत्तियों के आधार पर अग्रिमों की अलग-अलग उच्चतम सीमा का निर्धारण करता है।

विभेदक ब्याज की दर

विशेष प्रकार के अग्रिमों के लिए विभेदक ब्याज दरें प्राप्त की जाती हैं। RBI चयनात्मक साख नियंत्रण से संबंधित वस्तुओं के लिये ऊंची ब्याज दर निर्धारित करता है।

नैतिक दबाव

बैंक नैतिक आग्रह की नीति भी अपना रहा है। इसके अनुसार वह समझा-बुझाकर अनुरोध और सुझाव द्वारा व्यापारिक बैंकों को समय के अनुसार उसके द्वारा घोषित मौद्रिक नीति का अनुसरण करने के लिये कहता है।

प्रत्यक्ष कार्यवाही

बैंकिंग कंपनी एक्ट, 1949 RBI को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह सामान्य तौर से बैंकों का या किसी एक विशेष बैंक को किसी विशेष लेन-देन या लेन-देनों की श्रेणियों में प्रवेश करने के संबंध में चेतावनी दे या रोके।

साख की राशनिंग

अंतिम ऋणदाता के रूप में RBI जब अन्य बैंकों की मांग को पूर्ण रूप से पूरा नहीं कर पाता तो वह राशनिंग कर देता है अर्थात् यह निश्चित कर देता है कि प्रत्येक बैंक को कितनी साख दी जाएगी।

अर्थव्यवस्था में तरलता समायोजन तथा साख नियंत्रण के जो तरीके अपनाये जाते हैं उनमें चयनात्मक तरीकों की तुलना में परिमाणात्मक तरीके अधिक प्रभावी होते हैं परंतु परिमाणात्मक तरीकों में भी बैंक दर, रेपो रेट, रिवर्स रेपो रेट तथा खुले बाजार की क्रिया में अनिवार्यतया निहित नहीं रहती हैं, इनकी वृद्धि आवश्यक रूप से बैंकों द्वारा साख-सृजन शक्ति में कमी नहीं लायेगी, इनके कारण इसमें कमी तभी होगी जबकि व्यापारिक बैंक RBI से उधार लें जबकि CDR, SLR तथा CRR में वृद्धि अनिवार्य रूप से तरलता को प्रभावित करेगी। इनमें भी CRR अधिक प्रभावी होगा क्योंकि इसके कारण साख सृजन तुरन्त प्रभावित होगा। RBI गुणात्मक साख नियंत्रण तथा परिमाणात्मक साख नियंत्रण के माध्यम से मौद्रिक नीति का निर्माण करती है।

मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

परिचय (Introduction)

किसी भी देश की केंद्रीय सरकार अथवा केंद्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में प्रचलित ब्याज दर तथा मुद्रा (करेंसी तथा साख) पर नियंत्रण रखने वाली नीति को मौद्रिक नीति कहा जाता है। मौद्रिक नीति में परिवर्तन के द्वारा मुद्रा की मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन किया जाता है। मौद्रिक नीति के अंतर्गत मुद्रा की सकल मात्रा को नियंत्रित करके कीमत स्तर को नियंत्रित किया जाता है। केंद्रीय बैंक, बैंक दर, नकद आरक्षित अनुपात, खुले बाजार की क्रियाएं तथा साख नियंत्रण की विधियों द्वारा मुद्रा या साख की मात्रा को नियंत्रित करता है। मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था में 'व्यय निवेश प्रवाह' (Expenditure Investment Flow) के समायोजन के माध्यम से कार्य करती है। समष्टि अर्थशास्त्र के उपकरण (मुद्रास्फीति, ब्याज दर, क्रेडिट) के द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति को परिवर्तित किया जाता है। मुद्रा की पूर्ति और ब्याज के नियंत्रण द्वारा केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति और करेंसी की स्थिरता को बनाए रखता है। केंद्रीय बैंक द्वारा मौद्रिक नीति के माध्यम से मुद्रा की पूर्ति को प्रबंधित कर लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है, जैसे- मुद्रास्फीति को सीमित करने, विनिमय दर को उचित बनाए रखने, रोजगार उत्पन्न करने और आर्थिक वृद्धि के लिए मौद्रिक नीति प्रभावी सिद्ध होती है। मौद्रिक नीति की ब्याज दर में परिवर्तन, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खुले बाजार की क्रियाओं, आरक्षित मुद्रा की आवश्यकता, विदेशी विनिमय बाजार तथा व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives of Monetary Policy)

किसी भी देश के लिये एक व्यवस्थित एवं स्थिर मौद्रिक नीति का होना अति आवश्यक है। स्थिर मौद्रिक नीति निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करती है।

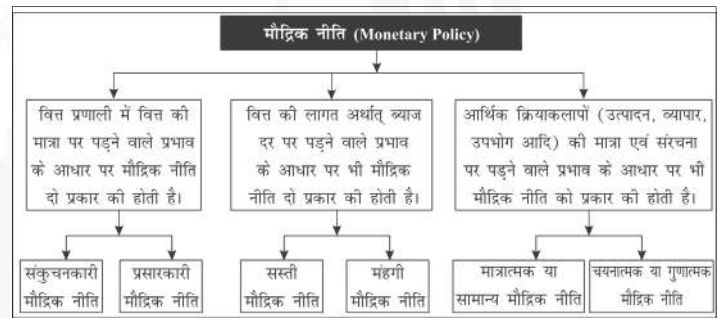
- **कीमतों में स्थिरता**- कीमतों के अत्यधिक उतार-चढ़ाव के कारण मुद्रा प्रसार तथा मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो जाती है, जो कि एक सीमा के बाद अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालती है। इसका सर्वाधिक बुरा प्रभाव निश्चित आय वर्ग पर पड़ता है। अतः मौद्रिक नीति बनाकर वस्तुओं की कीमत को नियंत्रित किया जा सकता है।
- **रोजगार में वृद्धि**- मौद्रिक नीति के द्वारा मांग और पूर्ति को इस प्रकार बनाए रखा जाता है, जिससे रोजगार उत्पन्न हो। मौद्रिक नीति का प्रभाव रोजगार सृजन पर पड़ता है।
- **आर्थिक विकास**- आर्थिक विकास में आने वाले गतिरोध को दूर करने

के लिए भी मौद्रिक नीति की सहायता ली जाती है। इससे कीमतों के उतार-चढ़ाव को रोककर, बचतों को बढ़ाकर तथा विनियोग में वृद्धि करके आर्थिक विकास को बढ़ाया जाता है।

- **विनिमय दर स्थायित्व**- जब विनिमय में सर्वत्र स्वर्ण का उपयोग चलन में था, तब विनिमय दर में स्थायित्व था। परंतु इसके पतन के बाद विनिमय दर स्थायित्व में समस्या पैदा हो गई। हालांकि विनिमय दर को पूर्णतया स्थिर नहीं रखा जा सकता, परंतु उसकी अस्थिरता भी अनेक प्रकार की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं पैदा कर देती है। इसी कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुद्रा के प्रतिमान को बनाए रखने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन की स्थापना की गई तथा राष्ट्रीय स्तर पर स्थिरता प्राप्त करने हेतु मौद्रिक नीति के उपकरणों का विकास किया गया।
- **बचत और विनियोग में साम्य**- मौद्रिक नीति का यह भी उद्देश्य है कि बचत और विनियोग में साम्य रखा जाए। यदि बचतें बढ़ती हैं और विनियोग को नहीं बढ़ाया जाए तो अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण नहीं होगा। अतएव बचतों का विनियोग कर अर्थव्यवस्था को पूंजीगत एवं मौद्रिक आधार पर मजबूत करने के लिए इनमें साम्य रखा जाता है।

मौद्रिक नीति प्राधिकारी (Monetary Policy Authorities)

वित्त बाजार का विनियमन रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। रिजर्व बैंक, मौद्रिक विभाग द्वारा, मुद्रा बाजार में चलनिधि परिचालनों की देख-रेख करता है। वित्त बाजार के विनियमन के लिए रिजर्व बैंक मौद्रिक नीति को बनाता है, और उसे विभिन्न माध्यमों से लागू करता है।



मौद्रिक नीति के प्रकार (Types of Monetary Policy)

वित्त की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर मौद्रिक नीति

- **संकुचनकारी मौद्रिक नीति (Contractionary Monetary Policy)** - यदि मौद्रिक नीति वित्त प्रणाली में वित्त की मात्रा को घटाने के उद्देश्य से बनाई गयी हो तो उसे संकुचनकारी मौद्रिक नीति कहते हैं।
 - **प्रसारकारी मौद्रिक नीति (Expansionary Monetary Policy)** - यदि मौद्रिक नीति प्रचलित वित्त प्रणाली में वित्त की मात्रा को बढ़ाने के उद्देश्य से बनायी गई हो तो इसे प्रसारकारी मौद्रिक नीति कहते हैं।
- यदि नकद आरक्षित अनुपात (CRR) तथा सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) में कमी की जाए तो यह प्रसारकारी मौद्रिक नीति होगी और यदि उक्त दोनों अनुपातों में वृद्धि की जाए तो यह संकुचनकारी मौद्रिक नीति होगी। पुनः यदि रेपो ऋण की मात्रा भारतीय रिजर्व बैंक बढ़ा (Increase) देता है तो यह प्रसारकारी मौद्रिक नीति (Expansionary Monetary Policy) होगी और यदि भारतीय रिजर्व बैंक रेपो ऋण की मात्रा घटा (Decrease) देता है तो यह संकुचनकारी मौद्रिक नीति (Contractionary Monetary Policy) होगी।

- **सस्ती मौद्रिक नीति (Cheap Monetary Policy)** – यदि मौद्रिक नीति के तहत ब्याज की दर को कम कर दिया जाए तो इसे सस्ती मौद्रिक नीति कहा जाएगा। रेपो दर, रिवर्स रेपो दर, बैंक दर आदि को कम करना सस्ती मौद्रिक नीति के अंतर्गत आता है।
- **महंगी मौद्रिक नीति (Dear Monetary Policy)** – यदि मौद्रिक नीति के तहत ब्याज की दर को बढ़ा दिया जाए तो इसे महंगी मौद्रिक नीति के तहत माना जाएगा।
- **ढीली मौद्रिक नीति (Loose Monetary Policy)** – यदि मौद्रिक नीति प्रसारकारी और सस्ती एक साथ हो तो उसे ढीली मौद्रिक नीति कहा जाता है।
- **अत्यधिक ढीली मौद्रिक नीति (Extra Loose Monetary Policy)** – यदि इन सभी दरों को तेजी से भारी मात्रा में घटा दिया जाए तो इसे अत्यधिक ढीली मौद्रिक नीति कहा जाएगा। अत्यधिक ढीली मौद्रिक नीति अपनाए जाने को मौद्रिक प्रोत्साहन (Monetary Stimulation) भी कहा जाता है। अमेरिका में निवेश बढ़ाने के लिए ऐसा ही किया गया था, ताकि देश को वर्ष 2008 में आई मंदी (Recession) से बाहर निकाला जा सके।
- **कठोर मौद्रिक नीति (Tight Monetary Policy)** – यदि मौद्रिक नीति एक साथ संकुचनकारी एवं महंगी हो तो उसे सख्त अथवा कठोर मौद्रिक नीति कहा जाता है।
- **सामान्य मौद्रिक नीति (General Monetary Policy)** – ऐसी मौद्रिक नीति जो अर्थव्यवस्था के सभी घटकों पर समरूप प्रभाव डालने के उद्देश्य से बनाई जाए, सामान्य स्वभाव वाली मौद्रिक नीति कहलाती है। एक सामान्य मौद्रिक नीति, संकुचनकारी या प्रसारकारी दोनों प्रकार की हो सकती है। जैसे वर्ष 2008 के दौरान रिजर्व बैंक ने स्फीतिक दबाव को नियंत्रित करने के लिए महंगी या संकुचनकारी मौद्रिक नीति अपनाई, जिनके लिए रेपो दर, बैंक दर, सीमांत स्थायी दर आदि में वृद्धि की गयी।

मौद्रिक नीति का निर्धारण (Determined to Monetary Policy)

- मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था में 'व्यय निवेश प्रवाह' (Expenditure Investment Flow) के समायोजन के माध्यम से कार्य करती है। साख नियंत्रण के उपकरण मौद्रिक नीति के प्रमुख उपकरण हैं। भारतीय रिजर्व बैंक वर्ष में दो बार, व्यस्त मौसम (Busy Season) की छमाही तथा कम व्यस्त मौसम (Stack Season) की छमाही के लिए अपनी मौद्रिक नीति घोषित करता है। मौद्रिक नीति निर्धारण की प्रमुख समस्या मौद्रिक नीति संबंधी दरों या ब्याज दर निर्धारण है, जो कि किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक वृद्धि दर की दिशा तथा स्फीतिक दबाव की दिशा के नियमन से संबंधित है।
- अर्थव्यवस्था में मूल्य स्थिरता कायम रखना तथा उत्पादक क्षेत्रों के लिए पर्याप्त ऋण तथा तरलता प्रवाह सुनिश्चित करना, जिससे उनका क्रियाशील अवरोधित न हो, भारत में मौद्रिक नीति के दो आधारभूत उद्देश्य रहे हैं।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी से बढ़ते हुए विदेशी विनिमय कोष तथा पूंजी के अंतर-प्रवाह से उत्पन्न बढ़ती हुई तरलता, मौद्रिक नीति के सामने सबसे गंभीर चुनौती है। पूंजीगत प्रवाहों को नियंत्रित करना गंभीर समस्या है, क्योंकि पूंजीगत प्रवाह तथा विदेशी विनिमय निधि में वृद्धि अर्थव्यवस्था के पूंजी स्टॉक में वृद्धि करेगी तथा इसके परिणामस्वरूप देश की आयात क्षमता में वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होगी। जिसको नियमित करना मौद्रिक नीति के सामने गंभीर चुनौती होगी। अतः मौद्रिक नीति का निर्धारण इन सब कारकों को ध्यान में रखते हुए करना आवश्यक होता है।

मात्रात्मक उपकरण (Quantitative Tools)

- **नकद आरक्षित अनुपात (CRR)** – अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को अपनी जमा का एक निश्चित प्रतिशत नकद रूप में भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना पड़ता है। इस निश्चित अनुपात को नकद आरक्षित अनुपात कहा जाता है। इसका निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक करता है। जब भारतीय रिजर्व बैंक साख प्रसार करना चाहता है तो नकद आरक्षित अनुपात में कमी कर देता है। रिजर्व बैंक अपनी केंद्रीय और कंप्यूटरकृत प्रणाली से उसके पास रखे बैंकों को शेष की कुशल निगरानी कर सकता है। इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक नकद आरक्षित अनुपात में वृद्धि या कमी करके मुद्रा प्रसार या आपूर्ति को नियंत्रित करता है। जब मुद्रास्फीति बढ़ने लगती है तो भारतीय रिजर्व बैंक नकद आरक्षित अनुपात में वृद्धि कर देता है। नकद आरक्षित अनुपात के अंतर्गत सामान्यतः जमा धन पर भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को ब्याज देता है। वर्ष 2005-06 में भारतीय रिजर्व बैंक ने इसके अंतर्गत जमा धन पर ब्याज देना बंद कर दिया था परंतु जनवरी, 2007 में पुनः इस पर ब्याज देना शुरू कर दिया। नकद आरक्षित अनुपात की न्यूनतम सीमा 3% तथा अधिकतम सीमा 15% निर्धारित की गयी है। जनवरी, 2007 में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 में संशोधन करके भारतीय रिजर्व बैंक को नकद आरक्षित अनुपात की न्यूनतम सीमा समाप्त करने का अधिकार दे दिया गया।
- **वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio- SLR)** – निवल मांग और मियादी देयताओं का वह अंश जो बैंकों को सुरक्षित और तरल आस्तियों में अपने पास रखना होता है (जैसे- सरकारी प्रतिभूतियां, नकदी और स्वर्ण)। सभी वाणिज्यिक बैंकों को अपनी समग्र सम्पत्ति का एक निश्चित भाग भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकद या स्वर्ण या विदेशी मुद्रा की स्वीकृत प्रतिभूतियों में रखना पड़ता है, इसे प्रतिशत वैधानिक तरलता अनुपात कहा जाता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा वैधानिक तरलता अनुपात में वृद्धि किये जाने पर वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कम साख सृजन किया जाता है और इसकी विपरीत स्थिति में अधिक साख सृजन किया जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वैधानिक तरलता अनुपात की न्यूनतम सीमा 25% तथा अधिकतम सीमा 40% निर्धारित की गयी है। जनवरी, 2007 में भारतीय रिजर्व बैंक को इसकी न्यूनतम सीमा समाप्त करने का अधिकार दे दिया गया।
- **रेपो दर एवं रिवर्स रेपो दर (Repo Rate and Reverse Repo Rate)** – चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF) वर्तमान में रिजर्व बैंक पुनर्खरीद एवं विपरीत पुनर्खरीद नीलामी द्वारा चलनिधि समायोजन सुविधा के अंतर्गत चलनिधि का प्रबंधन करता है, इसमें रेपो दर, रिवर्स रेपो दर शामिल होते हैं। रेपो दर वह दर है जिस दर पर भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण इस शर्त के साथ देता है कि भविष्य में उनके द्वारा प्रतिभूतियों को वापस क्रय कर लिया जायेगा। रिवर्स रेपो दर वह दर है जिस पर भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों से कुछ प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण लेता है। वस्तुतः रेपो दर के माध्यम से भारतीय रिजर्व बैंक तरलता को बढ़ाता है, जबकि रिवर्स रेपो दर के माध्यम से भारतीय रिजर्व बैंक तरलता का अवशोषण करता है। रेपो तथा रिवर्स रेपो दर के अंतर्गत प्रतिभूतियों को क्रय तथा विक्रय करने का समझौता माना जाता है।
- **बैंक दर (Bank Rate)** – बैंक दर वह ब्याज दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक प्रथम श्रेणी अथवा अनुमोदित हुंडियों की जमानत के आधार पर वाणिज्यिक बैंकों को ऋण प्रदान करता है अथवा प्रथम श्रेणी के बिलों की

पुनर्कटौती करता है। बैंक दर की नीति इस बात पर निर्भर करती है कि देश में वाणिज्यिक बैंक किस सीमा तक ऋण प्राप्त करने के लिये केंद्रीय बैंक पर आश्रित हैं। बैंक दर में परिवर्तन करके केंद्रीय बैंक मुद्रा प्रसार अथवा मुद्रा आपूर्ति सुनिश्चित करता है। यदि केंद्रीय बैंक मुद्रा की आपूर्ति बढ़ाना चाहता है तो बैंक दर में कमी करके ब्याज दर को निम्न करता है। इसके विपरीत स्थिति में वह बैंक दर में वृद्धि करके ब्याज दर को बढ़ाकर मुद्रा आपूर्ति को कम करता है। सामान्यतः जब मुद्रास्फीति बढ़ने लगती है तो केंद्रीय बैंक, दर में वृद्धि कर देता है। बैंक दर में वृद्धि या कमी का सीधा प्रभाव निवेश पर पड़ता है। बैंक दर में वृद्धि होने पर ब्याज दर बढ़ने के कारण निवेश पहले की तुलना में कम होता है।

- **खुले बाजार की क्रियायें (Open Market Operation)** - भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा जब मुद्रा बाजार में सरकारी हंडियों अथवा प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय द्वारा वाणिज्यिक बैंकों की साख सृजन क्षमता को प्रभावित किया जाता है तो यह प्रक्रिया खुले बाजार की क्रिया कहलाती है। भारतीय रिजर्व बैंक जब मुद्रा बाजार से तरलता का अवशोषण करना चाहता है या तरलता को कम करना चाहता है तो इस प्रक्रिया के अंतर्गत सरकारी हंडियां या प्रतिभूतियां विक्रय करने लगता है। ऐसी स्थिति में मुद्रा भारतीय रिजर्व बैंक के पास चली जाती है और वाणिज्यिक बैंकों के पास नकद मुद्रा का अभाव हो जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक जब प्रतिभूतियों या हंडियों का क्रय करने लगता है तो तरलता भारतीय रिजर्व बैंक से वाणिज्यिक बैंकों के पास जाने लगती है। अन्य शब्दों में, वाणिज्यिक बैंकों के पास नकद मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। इस स्थिति में साख प्रसार होता है।

गुणात्मक उपकरण (Qualitative Tools)

- **गुणात्मक साख नियंत्रण**- भारतीय रिजर्व बैंक गुणात्मक साख नियंत्रण के माध्यम से मौद्रिक नीति को लागू करती है। यह उपाय तब महत्वपूर्ण साबित होता है जब देश के भीतर कुछ क्षेत्रों को कम ऋण देना हित में होता है। गुणात्मक साख नियंत्रण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-
 - अर्थव्यवस्था के किसी एक या कुछ क्षेत्रों को प्रभावित करना।
 - देश में साख की उत्पादक एवं अनुत्पादक आवश्यकताओं में अंतर करना।
 - निर्यात को प्रोत्साहित एवं आयात को हतोत्साहित करना।
 - लाभकारी क्षेत्र (उत्पादक) को अधिक ऋण तथा अलाभकारी वस्तुओं (उपभोक्ता वस्तु) को कम ऋण देना।
- **चयनित साख नियंत्रण**- जब देश का केंद्रीय बैंक संपूर्ण अर्थव्यवस्था को संचालित करने के लिए एक समान साख नियंत्रण नीति तथा अन्य क्षेत्रों में कम उदार या कठोर साख नीति अपनाता है तो, इसे चयनात्मक साख नियंत्रण नीति कहते हैं। इस नीति के तहत अपनाई जाने वाली विधियां निम्नलिखित हैं-
 - **कटौती दर**- इसके तहत विनिमय विपत्रों के लिए विभिन्न कटौती दरें निर्धारित करता है। इससे अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को सुगम एवं सस्ता साख उपलब्ध हो सकता है और कुछ क्षेत्रों को मंहगा साख उपलब्ध होगा।
 - **पूर्वानुमति द्वारा ऋण देना**- कभी-कभी देश का केंद्रीय बैंक, अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में साख विस्तार को सीमित करने के उद्देश्य से व्यापारिक बैंकों पर यह नियंत्रण लगा देता है कि एक निश्चित राशि से अधिक ऋण देने पर उसकी अनुमति लेना अनिवार्य होगा।
 - **ऋणों पर प्रतिबंध**- इसके तहत केंद्रीय बैंक साख की सुविधा पर रोक लगाना चाहता है, तो वह कुछ विशेष ऋणों पर प्रतिबंध लगा देता

है, जैसे- देश में खाद्यान्न की कीमतों में वृद्धि को रोकने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों को यह आदेश दिया जा सकता है कि वे अनाज संग्रह हेतु व्यापारियों को ऋण न दें।

- **उपभोक्ता साख नियमन**- इस प्रकार के साख नियमन उन वस्तुओं के लिए किए जाते हैं जो कि मूल्यवान हैं। अर्थव्यवस्था के तेजी के दौरान उपभोक्ता साख का संकुचन किया जाता है, जबकि मंदी के दिनों में इसका विस्तार किया जाता है।
- **आयात पूर्व जमा**- इस विधि का उपयोग आयात को हतोत्साहित करने के लिए किया जाता है। इस उपाय के अंतर्गत आयातकर्ता को आयात मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत केंद्रीय बैंक के पास जमा करना पड़ता है।
- **ऋणों की सीमांत आवश्यकता**- इसके द्वारा कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए दी जाने वाली साख की राशि को नियंत्रित किया जाता है। बैंक प्रायः उपयुक्त जमानत (Security) के आधार पर ही ऋण प्रदान करता है। बैंक जमानत के रूप में रखे गए माल की वर्तमान कीमत से कुछ कम राशि का ऋण देते हैं, जितनी कम राशि का ऋण दिया जाता है, उसे सीमांत आवश्यकता कहते हैं।
- **साख का समभाजन**- अंतिम ऋणदाता के रूप में देश का केंद्रीय बैंक अन्य बैंकों की साख का समभाजन भी कर सकता है। इसके लिए वे कुछ विधियों का प्रयोग करता है, जो निम्नलिखित हैं-
 - बैंकों की कटौती सुविधा को समाप्त करना।
 - इसके अलावा बैंकों के अभ्यंश (Quota) निश्चित करना।
 - बैंकों द्वारा विभिन्न व्यवसायों को दिए जाने वाले ऋणों की सीमा को निश्चित करना।
- **प्रचार करना**- वर्तमान समय में केंद्रीय बैंक, बैंक की साख को नियंत्रित करने के लिए विज्ञापन या प्रचार का सहारा ले रहा है। यह नियमित रूप से देश में मुद्रा बाजार की स्थिति, बैंकिंग व साख संबंधी समस्याओं, उद्योग, व्यापार एवं व्यवसाय, विदेशी व्यापार आदि के संबंध में अपनी मासिक या वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं में आवश्यक आंकड़ें एवं विवरण प्रकाशित करता रहता है।
- **नैतिक प्रभाव**- देश की मौद्रिक नीति का नियमन केंद्रीय बैंक नैतिक दबाव के माध्यम से भी करता है। इसके लिए वह अन्य बैंकों को सलाह देकर अपनी बैंकिंग नीतियों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

मौद्रिक नीति तथा बैंकिंग के संबंध में परिवर्तन (Changes Related to Monetary Policy & Banking)

भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति तथा बैंकिंग के संबंध में हाल ही में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, वे इस प्रकार हैं-

- वर्ष 1991 के बाद से अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से, मौद्रिक नीति के प्रारूप तथा संरचना में कई परिवर्तन आये हैं। बढ़ते हुए पूंजी के अंतर्प्रवाह, विदेशी विनिमय कोष में अत्यधिक वृद्धि तथा विदेशी विनिमय दर के उदारीकरण के कारण तरलता प्रबंधन के सामने नयी चुनौतियाँ आईं, जिनके संबंध में बैंक दर, खुले बाजार की क्रिया तथा सांविधिक कोष अनुपात के परम्परागत तरीकों के प्रयोग के अतिरिक्त कुछ नये मौद्रिक उपकरण विकसित किए गये तथा प्रयोग में लाये गये, ये हैं-
- 1 जनवरी, 1990 में कॉमर्शियल पेपर (CP), को शुरू किया गया, इसी प्रकार वर्ष 1992 में रेपो तथा रिवर्स रेपो का प्रयोग, वर्ष 1999 में ILAF तथा

जून, 2000 से तरलता समायोजन सुविधा (LAF-Liquidity Adjustment Facilities) का प्रयोग, विनिमय दर में समायोजन तथा तरलता प्रबंधन आदि परिवर्तन किये गए।

- 1 अप्रैल, 2004 से बाजार स्थिरीकरण स्कीम- (MSS) को प्रारंभ किया गया, इनके अलावा बाजार रेपो का प्रयोग, जनवरी, 2003 से संपार्श्विक उधार और ऋण दायित्व (CBLO) का प्रयोग, 26 मार्च, 2004 को रीयल टाइम सेटलमेंट की शुरुआत, 9 मई, 2011 से सीमान्त स्थायी सुविधा (MSF) को लागू करना। वर्ष 2011 में अल्पकाल में तरलता को प्रभावित करने के लिए नकद प्रबंधन बिल (CMB) लागू करना। 15 दिसंबर, 2012 से बैंक दर को सीमांत स्थायी सुविधा (MSF) के साथ जोड़ना इत्यादि ने मौद्रिक नीति को प्रभावी बनाया है।
- बाजार स्थिरीकरण स्कीम (MSS- Market Stabilization Scheme)- खुले बाजार की क्रिया की सफलता सरकारी प्रतिभूतियों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। ऐसी स्थिति में जब मुद्रा बाजार या विदेशी विनिमय बाजार में भारतीय रिजर्व बैंक बहुत अधिक मात्रा में हस्तक्षेप की नीति अपनाए, जिससे तरलता समायोजित हो सके।
- 1 अप्रैल, 2004 से मार्केट स्टेबलाइजेशन स्कीम चालू की गयी। इसके अंतर्गत सरकार ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के अलावा बाजार स्थिरीकरण स्कीम (MSS) बांड निर्गत किया। ये प्रतिभूतियाँ वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) तथा रेपो के लिए अर्ह मानी गयी। इन्हें बैंकों की अतिरिक्त तरलता को निरस्त करने के लिए निर्गत किया गया।
- MSS खाते पर प्रदर्शित ब्याज बजट में प्रदर्शित होगा और प्रतिभूति की प्राप्ति का प्रयोग रिजर्व बैंक द्वारा इन प्रतिभूतियों के क्रय या पुनर्भुगतान पर किया जायेगा।
- MSS के अंतर्गत निर्गत प्रतिभूति सरकार के दायित्व में वृद्धि नहीं लायेगी, इसलिए इन प्रतिभूतियों के निर्गमन के कारण राजकोषीय घाटे में कोई वृद्धि नहीं होगी।

नकद प्रबंधन बिल (CMB- Cash Management Bill)

10 अगस्त, 2009 को भारत सरकार ने रिजर्व बैंक से राय लेकर एक अल्पकालीन प्रपत्र जारी किया, जिसे नकद प्रबंधन बिल (CMB) कहते हैं, जिससे सरकार के वित्त में अस्थायी असंतुलन (Mismatch) को पूरा किया जा सके। नकद प्रबंधन बिल एक नॉन स्टैंडर्ड कटौती किया गया प्रपत्र है, जिसे 91 दिन से कम परिपक्वता अवधि के लिए निर्गत किया जाता है, यह ट्रेजरी बिल्स की तरह होता है। नकद प्रबंधन बिल का प्रयोग रिजर्व बैंक द्वारा बाजार स्थिरीकरण स्कीम (MSS) के अंतर्गत गैर मौद्रिकरण अन्य तरलता आधिक्य के अधिशेषण के लिए वर्ष 2016-17 से बहुत गहनता से किया गया।

इसके संबंध में निम्नांकित बातें उल्लेखनीय हैं-

- इसके अवधि (Tenure), राशि तथा निर्गमन की तारीख का निर्धारण सरकार की नकद की अस्थायी आवश्यकता पर निर्भर करेगा। यह 91 दिनों से कम का होगा।
- बिल को डिस्काउंट पर अंकित मूल्य पर नीलामी के द्वारा निर्गत किया जायेगा जैसा कि ट्रेजरी बिल्स के संबंध में होता है।
- यह वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) प्रतिभूति के रूप में अर्ह होगी।

वित्तीय क्षेत्र कानून सुधार कमीशन (Financial Sector Legislative Reform Commission)

बी.एन. श्री कृष्ण की अध्यक्षता में फाइनेंशियल सेक्टर लेजिसलेटिव रिफार्म

कमीशन (FSLRC), का गठन 2011 में किया गया, जिसे वित्तीय क्षेत्र से संबंधित कानून को फिर से तैयार करना था, जिससे वह अर्थव्यवस्था की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल हो सके, कमीशन ने अपनी रिपोर्ट 2013 में सरकार को सौंप दी। ड्राफ्ट फाइनेंशियल कोड (DFC), ड्राफ्ट ला का एक भाग है जिसे कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के साथ दिया है। सरकार ने ड्राफ्ट भारतीय वित्तीय समिति (IFC) को सुझावार्थ जनता के लिए खोला तथा उन सुझावों के संदर्भ में एक संशोधित ड्राफ्ट सामने रखा। ड्राफ्ट में किया गया संशोधन मुख्यतया वित्तीय एजेंसीज की नियामक जवाबदेही को मजबूत करने, वित्तीय सेवा टीम (FST) की नियामकों की समीक्षा करने तथा पूंजी नियंत्रण के संबंध में कानून बनाने, मौद्रिक नीति के प्रारूप तैयार करने तथा मौद्रिक नीति कमेटी की संरचना से संबंधित है। फाइनेंशियल कोड के संशोधित प्रारूप में मौद्रिक नीति कमेटी की संरचना सामने थी, जिसमें रिजर्व बैंक के गवर्नर के अतिरिक्त दो सदस्य रिजर्व बैंक से, एक विशेषज्ञ सदस्य तथा दो सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होंगे, समान वोटिंग की स्थिति में गवर्नर का कास्टिंग वोट होगा पर उसके पास वीटो नहीं होगा। कमेटी की अवधारणा कोई नयी अवधारणा नहीं है। वर्ष 2002 में वाई.वी. रेड्डी कमेटी ने सबसे पहले इसकी बात शुरू की थी, उसके बाद वर्ष 2006 में तारापोर कमेटी, वर्ष 2007 में परसी मिस्त्री कमेटी, वर्ष 2009 में रघुराम राजन कमेटी तथा उसके बाद वर्ष 2013 में वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग के (FSLRC- Financial Sector Legislative Reforms Commission) बीएन श्रीकृष्ण तथा उर्जित पटेल कमेटी ने इसकी संस्तुति की थी।

मौद्रिक नीति कमेटी की व्यवस्था मौद्रिक नीति संबंधी प्रमुख दरों के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कदम है, जैसा स्वयं रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन ने कहा 'एक व्यक्ति के निर्णय की तुलना में कमेटी का निर्णय अधिक उत्तम होना चाहिए' पर राजनैतिक हस्तक्षेप जिस प्रकार से मौद्रिक नीति निर्धारण में प्रभावी हो रहा है, वह ठीक नहीं होगा। देश की अर्थव्यवस्था की दृष्टि से रिजर्व बैंक की स्वायत्तता बना रहना आवश्यक है और फिर जब हम स्फीति टारगेटिंग तथा स्फीति को उचित सीमा के भीतर रखने के संबंध में आर.बी.आई. की जबाबदेही की व्यवस्था कर रहे हैं तब तो मौद्रिक दरों के निर्धारण में रिजर्व बैंक की स्वायत्तता को समाप्त करना परस्पर विरोधी होगा।

उर्जित पटेल समिति (Urjit Patel Committee)

मौद्रिक नीति ढांचा संशोधित करने और उसे मजबूत बनाने के लिये गठित की गई विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट जनवरी 2014 को भारतीय रिजर्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर को सौंपी। समिति का गठन भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डॉ. रघुराम राजन ने सितम्बर, 2013 में किया था।

समिति द्वारा की गई सिफारिशें निम्नलिखित हैं-

- मौद्रिक नीति संबंधी निर्णय मौद्रिक नीति समिति (MPS) के हाथों में सौंपा जाना चाहिए, जिसके अध्यक्ष भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर हों।
- मौद्रिक नीति निर्धारण के लिये भारतीय रिजर्व बैंक को एक नया उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) अपनाना चाहिए।
- सरकार को भी यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि GDP के अनुपात के रूप में राजकोषीय घाटा कम करके वर्ष 2016-17 तक 3 प्रतिशत पर लाया जाना चाहिए, जो राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन नियमावली, 2013 से संगत होना चाहिए।
- बाजार स्थिरीकरण योजना (MSS) और नकदी प्रबंधन बिल (CMB) को समाप्त कर देना चाहिए।
- समस्त नियत आय वाले वित्तीय उत्पादों को कराधान और कर कटौती स्रोत (TDS- Tax Deducted at Source) के प्रयोजनों से बैंक जमा राशियों के

समान समझा जाना चाहिए।

- खुले बाजार के कार्यकलापों को राजकोषीय परिचालनों से अलग करने और इसके स्थान पर पूर्णतः चलनिधि प्रबंधन से जोड़े जाने का सुझाव दिया गया।
- खुले बाजार (OM- Open Market) का इस्तेमाल सरकारी प्रतिभूतियों पर होने वाले आय के प्रबंधन के लिये नहीं किया जाना चाहिए।

मौद्रिक नीति समिति (Monetary Policy Committee)

वर्ष 2015 में सरकार एवं रिजर्व बैंक के बीच मौद्रिक नीति ढांचा अनुबंध हुआ, जिसमें लचीले मुद्रास्फीति लक्ष्य की व्यवस्था की गयी तथा मौद्रिक नीति संबंधी निर्णय को मौद्रिक नीति समिति को देने की बात की गयी। इस अनुबंध में मूल्य स्थिरता बनाये रखने के लिए मौद्रिक नीति समिति का प्रावधान किया गया।

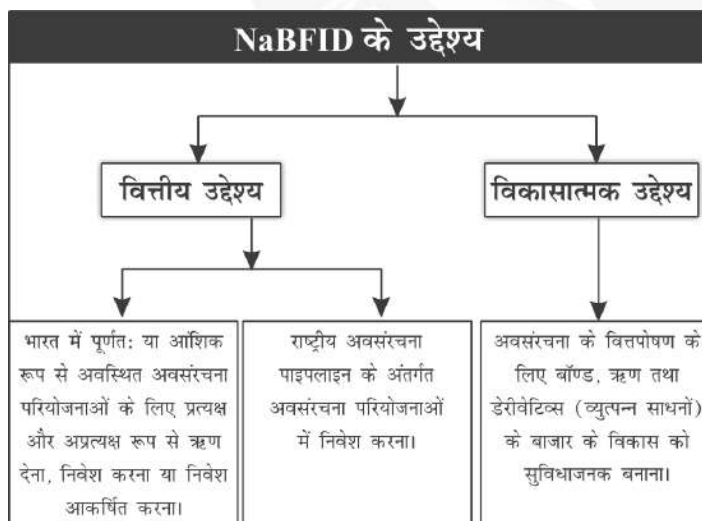
छः सदस्यीय मौद्रिक समिति, जिसे मुख्यतया मौद्रिक नीति संबंधी निर्णयों को अधिक पारदर्शी तथा महत्वपूर्ण बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी, जिसके अंतर्गत 3 सदस्य रिजर्व बैंक से होंगे, जिसमें गवर्नर सम्मिलित होगा तथा वही समिति का पदेन चेयरमैन होगा। रिजर्व बैंक से एक डिप्टी गवर्नर तथा एक ऑफिसर इसके सदस्य होंगे।

पूँजी पर्याप्तता अनुपात एवं बेसल मानदंड (Capital Adequacy Ratio & Basel Criteria)

पूँजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio)

इसे जोखिम भारित संपत्ति अनुपात (Capital to Risk Weighted Asset Ratio) के नाम से भी जाना जाता है। इस अनुपात का प्रयोग जमाकर्ताओं के हित को संरक्षित करने तथा बैंकिंग प्रणाली में स्थिरता और कुशलता को बनाए रखने के लिए किया जाता है। इसके तहत बैंकों को अपनी पूँजी के खास हिस्से को सुरक्षित रखना होता है ताकि इसका इस्तेमाल संभावित घाटे या ऋण डूबने के दौरान किया जा सके। यह ऋणदान की अनिश्चितता एवं संभावित जोखिम से बचाव का मजबूत हथियार है।

इसे निम्नलिखित सूत्र से निकाला जा सकता है-



बेसल मानदंड (BASEL NORMS)

इन मानदंडों को बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट्स (BIS) द्वारा वैश्विक मानकों के सेट के रूप में निर्धारित किया जाता है, जो वाणिज्यिक बैंकों, विदेशी

बैंकों या यहाँ तक कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए परिसंपत्तियों से लेकर न्यूनतम पूँजी आवश्यकताओं को निर्धारित करते हैं।

बेसल **स्विट्जरलैंड** का एक शहर है, जो BIS का **मुख्यालय** भी है। 1930 में स्थापित BIS विश्व का सबसे पुराना अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठन है।

कुल मिलाकर, BIS का स्वामित्व विश्व भर के देशों का प्रतिनिधित्व करने वाले 62 केंद्रीय बैंकों के पास है और यह विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 95 प्रतिशत समाविष्ट करता है।

अब तक, **BIS** द्वारा **तीन बेसल मानदंड** जारी किये गये हैं-

बेसल मानदंड		
बेसल-I मानदंड (Basel-I Norms)	बेसल-II मानदंड (Basel-II Norms)	बेसल-III मानदंड (Basel-III Norms)

बेसल-I मानदंड (Based-I Norms)

- 1988 में बेसल कमेटी ऑन बैंकिंग सुपरविजन (BCSB) ने बेसल कैपिटल अकाउंट नामक पूँजी मापन प्रणाली (capital measurement system) का आरम्भ किया, जिसे बेसल-I के नाम से भी जाना जाता है।
- इसमें बैंकों के लिए जोखिम भारित परिसंपत्तियों [Risk Weighted Assets (RWA)] के 8 प्रतिशत पर न्यूनतम पूँजी की आवश्यकता निर्धारित की गयी थी।
- भारत ने वर्ष 1999 में बेसल-I मानदंडों को अपनाया। बेसल-I के अंतर्गत भारतीय रिजर्व बैंक ने प्रत्येक SCB द्वारा पूँजी का जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियों से अनुपात [Capital to Risk Assets Ratio (CRAR)] पूँजी पर्याप्तता अनुपात [Capital Adequacy Ratio (CAR)] को 9 प्रतिशत बनाये रखने के लिए दिशा-निर्देश जारी किये।

बेसल-II मानदंड (Basel-II Norms)

- BCBS ने 2004 में द्वितीय बेसल मानदंडों को प्रकाशित किया।
- द्वितीय बेसल को प्रथम बेसल का परिष्कृत और सुधारा हुआ संस्करण माना जाता था।
- इसने तीन स्तंभवाला दृष्टिकोण अपनाया :
 1. **जोखिम परिसंपत्तियों के 8 प्रतिशत की न्यूनतम पूँजी आवश्यकता (Minimum capital requirement):** तीन प्रकार के जोखिमों के संबंधित- परिचालन जोखिम, बाजार जोखिम और पूँजी जोखिम।
 2. **पर्यवेक्षी समीक्षा (Supervisory review):** बैंक की आंतरिक प्रक्रियाओं और प्रणालियों पर ध्यान केंद्रित करता है।
 3. **बाजार अनुशासन (Market discipline):** इसके अंतर्गत, बैंकों को सभी तीन प्रकार के जोखिमों की निगरानी और प्रबंधन में बेहतर जोखिम प्रबंधन तकनीकों को विकसित करने और उपयोग करने की आवश्यकता थी।
- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा क्रमिक दृष्टिकोण अपनाकर भारत में द्वितीय बेसल मानदंडों का कार्यान्वयन किया गया।
- भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार, सभी SCB द्वितीय बेसल मानदंडों का पालन करने के लिए बाध्य थे।

बेसल-III मानदंड (Based-III Norms)

- इसे चरणबद्ध तरीके से 1 जनवरी 2013 से चालू हो गया।
- बैंकों को प्रथम श्रेणी पूँजी अनुपात को बढ़ाना और 4.5 प्रतिशत बनाये रखना होता है।

- बैंकों को 2.5 प्रतिशत पूँजी संरक्षण बफ़र को बनाये रखना होता है।
- साथ ही, बैंकिंग क्षेत्र में अतिरिक्त ऋण वृद्धि को रोकने के लिए प्रतिचक्र्रीय बफ़र को 0-2.5 प्रतिशत की सीमा में बनाये रखा जायेगा।
- कुल CRAR को 9.5 प्रतिशत बनाये रखने का प्रस्ताव है।
- भारतीय रिज़र्व बैंक के अनुसार, सभी वाणिज्यिक बैंकों (अनुसूचित और गैर-अनुसूचित दोनों) द्वारा तृतीय बेसल मानदंडों का अनुपालन किया जाना चाहिए।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने वाणिज्यिक बैंकों द्वारा तृतीय बेसल दिशा-निर्देशों को चरणबद्ध तरीके से लागू करने का निर्देश दिया। इस अंतिम सीमा को भारतीय रिज़र्व बैंक ने हाल ही में 1 अप्रैल 2022 तक कर दिया।
- बेसल-III फ्रेमवर्क ने तरलता कवरेज अनुपात [Liquidity Coverage Ratio (LCR)] के रूप में तरलता मानकों को भी प्रस्तुत किया।
- प्रतिचक्र्रीय पूँजी बफ़र योजना [Countercyclical Capital Buffer (CCCB)] का फ्रेमवर्क भी प्रस्तुत किया था। (पूँजी संरक्षा बफ़र के विस्तार के रूप में) CCCB एक अनिवार्य पूँजी है, जिसे बैंकों द्वारा प्रचुरता के समय, जब ऋण तेज़ी से बढ़ रहे होते हैं, तभी अलग नियत करने और अर्थव्यवस्था में संकट के दौरान इसका उपयोग करने की आवश्यकता होती है। यह बैंक को संकटकालीन आर्थिक स्थितियों का प्रतिकार करने में सहायता करता है और अधिक ऋण लिये जाने की अवधियों के दौरान भी बैंकिंग क्षेत्र को अंधाधुंध अत्यधिक उधार देने से प्रतिबंधित करता है।

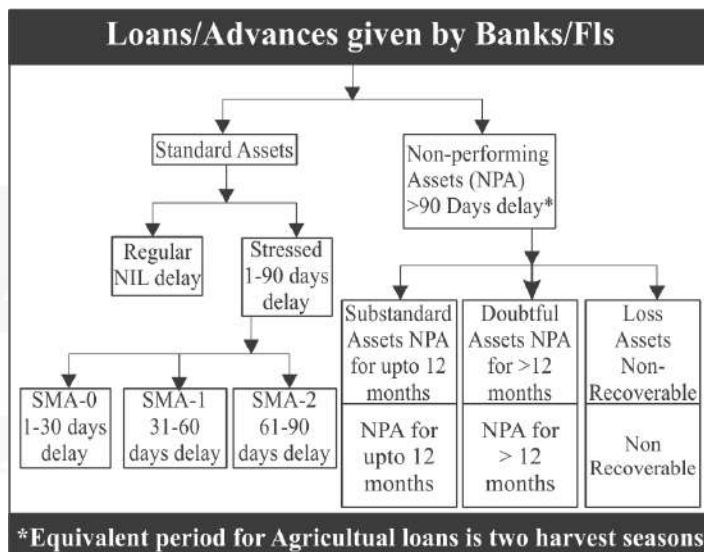
परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी (Asset Reconstruction Company: ARC)

- केंद्रीय बजट 2021-22 में वर्तमान दबावग्रस्त ऋणों/ फंसे हुए कर्ज (Bad Loans) को समेकित करने और उन्हें अधिग्रहित करने के लिए एक नए ARC/ बैड बैंक (Bad Bank) को प्रस्तावित किया गया है। इस प्रस्ताव के बारे में
- बजट में प्रस्तावित ARC/बैड बैंक की स्थापना, बैंकों (दोनों सरकारी और निजी क्षेत्र के बैंकों) द्वारा की जाएगी और सरकार की ओर से इसमें किसी तरह का कोई इक्विटी योगदान नहीं किया जाएगा।
 - हालांकि, सरकार संप्रभु गारंटी प्रदान कर सकती है, जिसकी जरूरत नियामक आवश्यकताओं को पूरा करने में पड़ सकती है।
 - इसमें एक परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी (Asset Management Company: AMC) को शामिल किया जाएगा, जो समस्याग्रस्त परिसंपत्ति के प्रबंधन एवं विक्रय को सुनिश्चित करेगी।
 - AMCs व्यक्तियों और कंपनियों के लिए वित्त का प्रबंधन करती हैं। ये अपने ग्राहकों की ओर से आवश्यकतानुसार निवेश निर्णयन दायित्वों का निर्वहन करती हैं, ताकि उनके वित्त और पोर्टफोलियो में वृद्धि हो सके।
 - इनके द्वारा 2-2.5 लाख करोड़ की तनावग्रस्त परिसंपत्तियों के समाधान पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा, जो लगभग 70 बड़े खातों से संबंधित हैं।
 - ARCs को तनावग्रस्त परिसंपत्तियों का हस्तांतरण मुख्य रूप से नेट बुक वैल्यू के आधार पर किया जाएगा।
 - ARCs को विक्रय की जाने वाली समस्याग्रस्त ऋण के बदले में बैंक को 15% नकद और 85% प्रतिभूति प्रदान की जाएगी।
 - यह ढाँचा बैंक के तुलन-पत्र पर तनावग्रस्त परिसंपत्तियों के बोझ को कम करेगा तथा बाजार-आधारित माध्यमों की मदद से इन समस्याग्रस्त ऋणों के सामाधान पर जोर दिया जाएगा।

परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी (ARC) के बारे में:

- (ARC) या बैड बैंक एक विशेष प्रकार की वित्तीय संस्था है, जो परस्पर

सहमत मूल्य पर बैंक के कर्जदारों (ऋण दायित्व के संदर्भ में) को खरीदती है तथा इनसे जुड़े दबावग्रस्त ऋणों या संबंधित प्रतिभूतियों को व्यावसायिक प्रबंधन, बिक्री अथवा पुनर्संरचना के माध्यम से रिकवरी अथवा वसूली करती है।



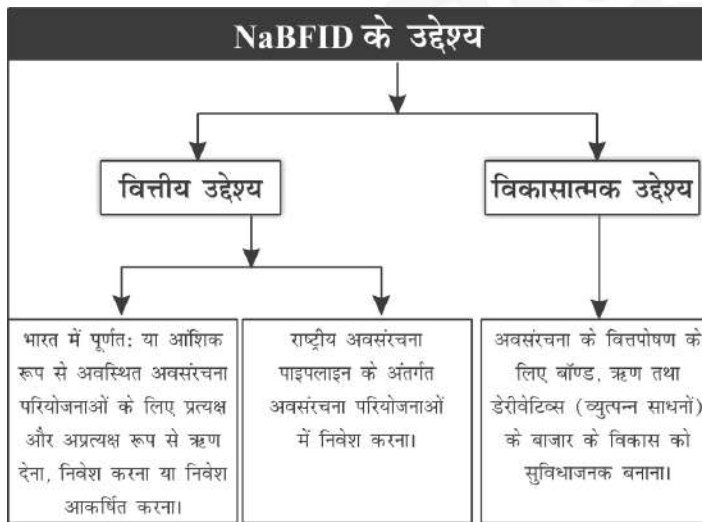
- बैड बैंक अपने कार्य संचालन (यदि वह वाणिज्यिक बैंक से ऋण प्राप्त करने के लिए किए गए भुगतान से अधिक कीमत पर ऋण बेचने में सफल हो जाता है) के माध्यम से लाभ अर्जित करता है।
- नरसिम्ह समिति-I (वर्ष 1991) द्वारा वर्ष 1991 में पहली बार एक केंद्रीय परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कोष की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया गया था, ताकि गैर-निष्पादनकारी या अशोध्य ऋणों का निस्तारण करते हुए बैंकों को अपने बैलेंस शीट में सुधार करने की सुविधा प्रदान की जा सके।
- ARCIL पहली ARC थी जिसे वर्ष 2002 में चार बैंकों- भारतीय स्टेट बैंक (SBI), ICICI बैंक, पंजाब नेशनल बैंक (PNB) और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के सहयोग से स्थापित किया गया था।
- ARC को कंपनी एक्ट के अंतर्गत कंपनी के रूप में शामिल/चिह्नित किया गया है।
- इन्हें वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन या प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम (सरफेसी अधिनियम), 2002 के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) के अधिन पंजीकृत किया गया है।
- (RBI) द्वारा (ARCs) को 100 करोड़ रुपये की न्यूनतम "निवल स्वाधिकृत निधि" (Net Owned Fund: NOF) रखने तथा अपने जोखिम भारित पूँजी का 15% पूँजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio: CAR) रखने का आदेश दिया गया है।
- दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (Insolvency and Bankruptcy Code: IBC), 2016 ऋण के इक्विटी में परिवर्तन के माध्यम से इक्विटी अर्जन की अनुमति देता है। हालाँकि, इन्हें तनावग्रस्त कंपनियों में सीधे इक्विटी के लिए बोली लगाने की अनुमति नहीं दी गई है।
- सरफेसी अधिनियम पारित होने के बाद से अनेक ARCs को गठित किया जा चुका है। यद्यपि, नए ARCs की स्थापना इस तथ्य से प्रेरित थी कि वर्तमान ARCs, NPA की समस्या का समाधान करने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि—
 - मौजूदा ARCs अल्प रूप से पूंजीकृत होते हैं
 - धीमी समाधान प्रक्रिया।

राष्ट्रीय अवसंरचना वित्तपोषण और विकास बैंक {National Bank For Financing Infrastructure and Development (NaBFID)}

हाल ही में, संसद ने राष्ट्रीय अवसंरचना वित्तपोषण और विकास बैंक (NaBFID) विधेयक, 2021 पारित किया।

राष्ट्रीय अवसंरचना वित्तपोषण और विकास बैंक (NaBFID) विधेयक, 2021 के बारे में

- यह विधेयक राष्ट्रीय अवसंरचना वित्तपोषण और विकास बैंक (NaBFID) को एक विकास वित्त संस्थान (Development Financial Institution: DFI) के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है, ताकि वित्तपोषण की समस्या से ग्रस्त दीर्घावधि वाली अवसंरचना परियोजना को वित्त प्राप्त हो सके।



- (NaBFID) की शेयरधारिता: NaBFID को एक कॉर्पोरेट निकाय के रूप में स्थापित किया जाएगा, जिसकी अधिकृत पूंजी 1 लाख करोड़ रुपये होगी। इसके शेयर केंद्र सरकार, बहुपक्षीय संस्थानों, संप्रभु संपत्ति निधियों (Sovereign Wealth Funds), पेंशन निधियों, बीमा कंपनियों, वित्तीय संस्थानों आदि द्वारा धारित की जाएगी।
 - आरंभ में केंद्र सरकार इस संस्था के 100 प्रतिशत शेयरों को धारित करेगी। बाद में जब यह संस्था स्थिरता और अपने कार्यक्षमता में विस्तार प्राप्त कर लेगी तो इसके शेयर में केंद्र सरकार की हिस्सेदारी को कम कर 26 प्रतिशत तक लाया जा सकता है।
- वित्त या निधि के स्रोत:** NaBFID भारतीय रुपये और विदेशी मुद्रा दोनों में ऋण प्राप्त कर या बॉण्ड्स और डिबेंचर सहित विभिन्न वित्तीय साधनों/लिखतों को जारी कर अथवा उनका विक्रय कर धन जुटा सकता है।
 - NaBFID केंद्र सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, म्यूचुअल फंड्स और विश्व बैंक एवं एशियाई विकास बैंक जैसे बहुपक्षीय संस्थानों से धन उधार ले सकता है।
- प्रबंधन:** NaBFID एक निदेशक मंडल (Board of Director) द्वारा शासित होगा तथा इसके अध्यक्ष को भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा।
 - केंद्र सरकार द्वारा गठित एक निकाय प्रबंध निदेशक (Managing Director) और उप प्रबंध निदेशक के पद के लिए उम्मीदवारों की सिफारिश करेगा।
 - निदेशक मंडल, एक आंतरिक समिति की सिफारिश के आधार पर

स्वतंत्र निदेशकों (Independent Directors) की नियुक्ति करेगा।

- सहकारी सहायता: केंद्र सरकार (NaBFID) को पहले वित्त वर्ष के अंत तक 5,000 करोड़ रुपये का अनुदान प्रदान करेगी।
 - सरकार बहुपक्षीय संस्थानों, संप्रभु धनकोष और अन्य विदेशी निधियों से उधार लेने पर 0.1 प्रतिशत तक की रियायती दर पर प्रत्याभूति (गारंटी) भी प्रदान करेगी।
 - विदेशी निधियों में होने वाले उतार-चढ़ाव से सुरक्षा प्रदान करने के लिए, सरकार द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से प्रतिपूर्ति की जा सकती है।
 - NaBFID के अनुरोध पर, सरकार इसके NaBFID द्वारा जारी किए गए बॉण्ड्स, डिबेंचर और ऋण की गारंटी भी दे सकती है।
- जांच और अभियोजन:** न्यायालयों की भी NaBFID के कर्मचारियों से संबंधित मामलों में अपराधों पर संज्ञान लेने के लिए पूर्व स्वीकृति लेने की आवश्यकता होगी। निम्नलिखित से पूर्व स्वीकृति लिए बिना NaBFID के कर्मचारियों के खिलाफ कोई जांच शुरू नहीं की जा सकती है:
 - अध्यक्ष या अन्य निदेशकों के मामले में केंद्र सरकार; तथा
 - अन्य कर्मचारियों के मामले में प्रबंध निदेशक।
- लाइसेंस:** भारतीय रिजर्व बैंक सरकार से परामर्श करके निजी क्षेत्र के विकास वित्त संस्थान (DFIs) स्थापित करने के लिए लाइसेंस जारी करने एवं शर्तों का निर्धारण करने का कार्य करती है। भारतीय रिजर्व बैंक इन DFIs के लिए विनियमन भी निर्धारित करता है।

भारत में विकास वित्त संस्थानों (Development Financial Institutions: DFIs) का विकास
स्वतंत्रता के पश्चात् केंद्र सरकार ने उद्योगों के दीर्घ अवधि का वित्तपोषण प्रदान करने के लिए औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम, 1948 के तहत भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India: IFC) की गयी स्थापना की।
साथ ही, राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 के तहत राज्य वित्तीय निगमों (State Financial Corporations: SFCs) का गठन किया गया था।
बाद में वर्ष 1955 में, विश्व बैंक के समर्थन और वित्त पोषण से निजी क्षेत्र में पहला विकास वित्त संस्थान-इंडस्ट्रियल क्रेडिट एंड इन्वेस्टमेंट कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (ICICI) स्थापित हुआ।
आगे चलकर उद्योग पुनर्वित्त निगम (1958), कृषि पुनर्वित्त निगम (1963), ग्रामीण विद्युतीकरण निगम लिमिटेड और हुडको (HUDCO) की स्थापना की गई।

विकास वित्त संस्थानों (DFIs) के बारे में

- DFIs को एक विकास बैंक या विकास वित्त कंपनी के रूप में जाना जाता है। ये ऐसे संस्थान होते हैं, जो उद्योग, कृषि, आवास और अवसंरचना जैसे विभिन्न क्षेत्रों में दीर्घकालिक विकास हेतु दीर्घ अवधि वाले वित्त/ऋण प्रदान करते हैं।
- DFIs विशेष रूप से विकासशील देशों में ऋण प्रदान करने और अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।
- DFIs पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से सरकार के स्वामित्व में हो सकते हैं। तथा कुछ में निजी स्वामित्व या शेयरधारिता अधिक होती है, जिसका निर्धारण वित्तपोषित होने वाली गतिविधियों की प्रकृति और उनके संबंधित जोखिम-रिटर्न प्रोफाइल द्वारा होता है।
- DFI शब्द का भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 या कंपनी अधिनियम, 1956 में या DFI की स्थापना करने वाले विभिन्न कानूनों में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है, जबकि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम और कंपनी अधिनियम के तहत कुछ वित्तीय संस्थान व्यापक अर्थों में DFIs की भूमिका निभाते हैं।



विकास वित्त संस्थान (DFIs) बैंकों से किस प्रकार भिन्न हैं?

मानदंड	वाणिज्यिक बैंक	विकास वित्त संस्थान
परिभाषा	ये ऐसे बैंक होते हैं जो व्यक्तियों और उद्योगों को बैंकिंग सेवाएं प्रदान करते हैं।	इनका विकास एजेंडा अत्यधिक व्यापक होता है तथा ये बहु-उद्देशीय वित्तीय संस्थानों के रूप में कार्य करने वाले बैंक होते हैं।
स्थापना	कंपनी अधिनियम के तहत बैंकिंग कंपनी के रूप में इसकी स्थापना की जाती है।	विशेष अधिनियम के अंतर्गत स्थापित किए जाते हैं, जैसे कि औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम।
निधियां	निधियां जमाकर्ताओं द्वारा जमा किए गए धन और निवेश के माध्यम से जुटाई जाती हैं।	निधियां उधार ली जाती हैं तथा अनुदानों द्वारा, प्रतिभूतियों की बिक्री से अधिग्रहित की जाती हैं।
प्रदत्त ऋण	लघु और मध्यम अवधि के ऋण	मध्यम और दीर्घ अवधि के ऋण।
उद्देश्य	उच्च ब्याज दर पर पैसे उधार देकर लाभ कमाना।	उच्च ब्याज दर पर पैसे उधार देकर लाभ अर्जित करना।
ग्राहक	ग्राहक व्यक्ति और व्यवसायिक संस्थाएं	सरकार और कॉरपोरेट कंपनियां।

भारतीय बीमा उद्योग (Indian Insurance Industry)

बीमा उद्योग के दो क्षेत्र हैं- जीवन बीमा तथा सामान्य बीमा।

जीवन बीमा (Life Insurance)

- भारत में जीवन बीमा ब्रिटेन की देन है।
- भारत में सर्वप्रथम 1818 में एक ब्रिटिश फर्म ने कलकत्ता में ओरियण्टल लाइफ इन्श्योरेन्स कम्पनी की स्थापना की थी।
- जीवन बीमा व्यवसाय को विनियमित करने के उद्देश्य से पहली बार 1912 में एक भारतीय बीमा कम्पनी एक्ट पारित किया गया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् 1956 में केन्द्र सरकार ने 245 भारतीय तथा विदेशी बीमा कम्पनियों को अपने अधिकार में लिया तथा 1956 में इनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

- संसद के एक अधिनियम के तहत 1956 में 5 करोड़ रुपए की भारत सरकार की पूँजी के साथ भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India) की स्थापना की गई।
- जीवन बीमा के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य बीमा के व्यापक प्रसार के साथ-साथ जनता की बचत को देश के हित में जुटाना था।
- राष्ट्रीयकरण से पहले देश में 245 निजी बीमा कम्पनियाँ थीं, जो अधिकांशतः शहरी क्षेत्रों में काम करती थीं।
- विदेशों में इनके कार्यालय इंग्लैण्ड (England), मॉरिशस (Mauritius) तथा फिजी (Fiji) में स्थित थे।

सामान्य बीमा (General Insurance)

- भारत में सामान्य बीमा का अविर्भाव भी ब्रिटेन से हुआ व प्रारंभ में यह व्यवसाय ब्रिटिश तथा अन्य विदेशी बीमा कम्पनियों की एजेन्सियों के माध्यम से किया जाता था।
- देश में पहली सामान्य बीमा कम्पनी 'ट्राइलन इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड' कोलकाता में 1850 में स्थापित की गई थी।
- इस कम्पनी में अधिकांश शेयर अंग्रेजों के थे। भारतीयों द्वारा इस प्रकार की पहली कम्पनी इण्डियन मर्केन्टाइल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड, मुम्बई में 1907 में स्थापित की गई।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में लगभग 40% बीमा व्यवसाय ब्रिटिश तथा अन्य विदेशी बीमा कम्पनियों द्वारा सम्पन्न किया जाता था, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह अंश तेजी से कम होता गया।
- राष्ट्रीयकरण से पूर्व एक कदम के रूप में देश में कार्यरत समस्त सामान्य बीमा कम्पनियों का प्रबन्ध 1971 में सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।
- 1 जनवरी, 1973 को सरकार ने सामान्य बीमा व्यवसाय (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1972 के तहत सामान्य बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया।
- सन् 1973 के पूर्व साधारण बीमा प्रायः बड़े शहरों तक ही सीमित था तथा मुख्य रूप से संगठित व्यापार एवं उद्योग की आवश्यकताओं की ही पूर्ति करता था।
- राष्ट्रीयकरण से पहले देश में काम कर रही 107 भारतीय एवं विदेशी बीमा कम्पनियों को चार प्रमुख कम्पनियों में संगठित कर दिया गया।
- इनके नाम हैं-
 - ♦ नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड।
 - ♦ न्यू इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड।
 - ♦ ओरिएण्टल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड।
 - ♦ यूनाइटेड इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड।
- इन कम्पनियों के मुख्यालय क्रमशः कोलकाता, मुम्बई, नई दिल्ली तथा चेन्नई में स्थापित किए गए।
- साधारण बीमा निगम की यह चार सहायक कम्पनियाँ एक-दूसरे से स्पर्धा रखते हुए देश में अपना कारोबार करती रही हैं।
- GIC को 3 नवंबर, 2000 से इसकी सहायक कंपनियों से विधिवत अलग कर दिया गया।
- GIC को भारतीय बीमाकर्ता-अधिसूचित किया गया है।
- इसने सीधा बीमा व्यवसाय एवं फसल बीमा बन्द कर दिया है।
- वर्तमान में GIC और अन्य चारों कम्पनियों की अंशपूँजी सरकार के पास है।
- ये सभी पाँच संस्थाएँ कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत हैं।
- चार कम्पनियों ने एक एसोसिएशन बना लिया है जिसे 'जनरल इन्श्योरेन्स (पब्लिक सेक्टर) एसोसिएशन ऑफ इण्डिया' कहते हैं।

इंटर क्रेडिटर एग्रीमेंट (Inter Creditor Agreement)

- यह एक सहभागी प्रक्रिया है, जो बैंकों के बीच प्रभावी तथा बेहतर संचार को सुनिश्चित करती है जिससे बैंकों के बीच निर्णय लेने में होने वाली देरी कम हो सके।
- बैंकों ने इंटर क्रेडिटर एग्रीमेंट की संरचना के लिए दिवाला एवं दिवालियापन संहिता- 2016 (IBC- Insolvency & Bankruptcy Code -2016) में प्रस्तुत मतदान श्रेयों का उपयोग किया है।
- इंटर क्रेडिटर एग्रीमेंट की संस्तुति मेहता समिति की सिफारिशों में की गई थी। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के अग्रणी बैंक, तनावग्रस्त परिसंपत्तियों का त्वरित समाधान सुनिश्चित करने के लिए इस एग्रीमेंट के लिए सहमत हुए हैं।
- इसके अनुसार, यदि 66 प्रतिशत उधारदाता तनावग्रस्त संपत्ति के संबंध में किसी भी विशेष निर्णय से सहमत हैं तो यह निर्णय अन्य बैंकों पर भी लागू होगा। संभवतः इस समझौते का प्रयोग IBC की रूपरेखा के अंतर्गत न आने वाले खातों पर किया जाएगा।
- समझौते के माध्यम से वित्तीय संस्थान द्वारा 180 दिनों में एक समाधान योजना लागू करने के लिए अग्रणी बैंक को अधिकृत किया जाएगा।

भगोड़ा आर्थिक अपराधी अधिनियम, 2018 (The Fugitive Economic Offenders Act, 2018)

- 25 जुलाई, 2018 को संसद द्वारा 'भगोड़ा आर्थिक अपराधी विधेयक, 2018' पारित किया है।
- इस विधेयक का उद्देश्य आर्थिक अपराध कर विदेश भागने वाले व्यक्ति की बेनामी संपत्ति सहित भारत और विदेशों में अन्य संपत्तियों को जब्त करना है।
- संबंधित न्यायालयों पर अत्यधिक कार्यभार न हो इसलिए 100 करोड़ रुपये से अधिक राशि के आर्थिक अपराधों को ही विधेयक की परिसीमा में लाया गया है।
- ऐसे मामले में जहां किसी व्यक्ति के भगोड़ा घोषित होने के पूर्व किसी भी समय कार्यवाही की प्रक्रिया के समानांतर भगोड़ा आर्थिक अपराधी भारत लौट आता है और सक्षम न्यायालय के समक्ष पेश होता है तो उस स्थिति में प्रस्तावित अधिनियम के अंतर्गत कानूनी कार्यवाही रोक दी जाएगी।
- इस विधेयक में सभी आवश्यक संवैधानिक रक्षा उपाय तथा उच्च न्यायालय में अपील करने जैसे प्रावधान किए गए हैं।
- इसके अलावा, कानूनी प्रावधानों के अनुपालन में संपत्ति के प्रबंधन व निपटान के लिए प्रशासक की नियुक्ति का भी प्रावधान किया गया है।
- ध्यातव्य है, सरकार द्वारा बजट 2017-2018 में यह घोषणा की गई थी कि सरकार द्वारा विधायी संशोधन लाए जाने अथवा जब तक ऐसे अपराधी समुचित विधि न्यायालय मंच के समक्ष समर्पण नहीं करते, ऐसे अपराधियों की संपत्ति को जब्त करने के लिए नया कानून लाया जाएगा।
- यह भी उल्लेखनीय है कि भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों में गैर-दोषसिद्धि आधारित संपत्ति के जब्ती की प्रविष्टि अपराध के प्रति यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन (भारत द्वारा 2011 में मान्य) से अनुसमर्थित है। विधेयक में इसी सिद्धांत को अंगीकार किया गया है।
- अभी तक इस समस्या की गंभीरता से निपटने के लिए कानून के वर्तमान सिविल और आपराधिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं। अतएव ऐसी कार्यवाहियों की रोकथाम सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी, तीव्रतम और संवैधानिक दृष्टि से मान्य प्रावधान किया जाना आवश्यक समझा गया है।

अकाउंट एग्रीगेटर नेटवर्क

- सितंबर, 2021 में देश में वित्तीय डेटा-साझा प्रणाली (Financial Data-Sharing System) 'अकाउंट एग्रीगेटर नेटवर्क' (Account Aggregator Network: AA Network) का अनावरण किया गया, जो निवेश और ऋण के क्षेत्र में क्रांति ला सकता है।
- इस नेटवर्क के माध्यम से लाखों उपभोक्ताओं को अपने वित्तीय रिकॉर्ड पर आसान पहुँच और नियंत्रण मिल सकता है।
- साथ ही ऋण प्रदाता तथा फिनटेक कंपनियों के लिए ग्राहकों की संभावित संख्या में अत्यधिक विस्तार भी हो सकता है।
- यह भारत में ओपन बैंकिंग की व्यवस्था शुरू करने की दिशा में पहला कदम है, जो लाखों ग्राहकों को सुरक्षित और कुशल तरीके से अपने वित्तीय डेटा तक डिजिटल रूप में पहुंचने और इसे अन्य संस्थानों के साथ साझा करने में सक्षम बनाता है।
- यह प्रणाली ऋण और धन प्रबंधन को बहुत तेज और किफायती बना सकती है।
- व्यक्ति की सहमति के बिना डेटा को साझा नहीं किया जा सकता है।
- अकाउंट एग्रीगेटर किसी ग्राहक के डेटा को पढ़ नहीं सकता। साथ ही वह डेटा का पुनर्विक्रय भी नहीं कर सकता है।
- अकाउंट एग्रीगेटर नए ग्राहकों को यह सुविधा देता है कि वे चयन के आधार पर डेटा को साझा करें। ग्राहक साझा किए गए डेटा को वापस भी ले सकता है।
- अकाउंट एग्रीगेटर ग्राहकों के प्रति जिम्मेदार होते हैं, जिन्हें आरबीआई द्वारा विनियमित किया जाता है। जो डिजिटल रूप से हस्ताक्षरित एवं कूटभाषा का इस्तेमाल करते हुए डेटा साझा करते हैं।

लोकपाल एकीकरण योजना (Integrated Ombudsman Scheme)

- हाल ही में, भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) ने बैंक ग्राहकों के शिकायत निवारण तंत्र को बेहतर बनाने के लिए "वन नेशन वन ओम्बुड्समैन" नामक एक एकीकृत बैंक लोकपाल योजना (या लोकपाल एकीकरण योजना) की घोषणा की है।
- वर्तमान में बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (NBFCs) और गैर-बैंक प्रीपेड भुगतान लिखित जारीकर्ताओं (Prepaid Payment Issuers: PPIs) के लिए तीन पृथक-पृथक ओम्बुड्समैन का गठन किया गया है।
- यह देश भर में स्थित RBI के 22 ओम्बुड्समैन कार्यालयों द्वारा संचालित होते हैं।
- हालांकि अब, (RBI) ने तीन ओम्बुड्समैन योजनाओं को एकीकृत करने का निर्णय लिया है तथा "वन नेशन वन ओम्बुड्समैन" दृष्टिकोण को अपनाते हुए शिकायत निवारण की एक केंद्रित प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है।
- इस कदम से बैंक लोकपाल या आम्बुड्समैन तंत्र के सरल, प्रभावी और अधिक प्रतिक्रियाशील क्रियान्वयन को बल मिलेगा।

बैंक लोकपाल या बैंक ओम्बुड्समैन (BO) के बारे में

- बैंक ओम्बुड्समैन (BO) एक अर्ध न्यायिक प्राधिकरण है, जो बैंक और उसके ग्राहकों के बीच विवाद के समाधान के लिए एक वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र के रूप में कार्य करता है।
- RBI द्वारा वर्ष 1995 में बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 35A के अंतर्गत उक्त योजना को शुरू किया गया था।
- वर्ष 2006 में RBI द्वारा BO योजना को संशोधित किया गया था जिसके अंतर्गत रिजर्व बैंक के सेवारत कर्मचारियों को BO और BO कार्यालय के कर्मचारियों के रूप में नियुक्त किया गया था।

- यह पूर्ण रूप से RBI द्वारा वित्त पोषित है और ऋण प्रदान करने जैसे कारोबारी निर्णयों को छोड़कर वस्तुतः सभी बैंकिंग लेनदेन से जुड़ी शिकायतों को समाहित करता है।
- यह वाणिज्यिक बैंकों, अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीणों बैंकों के विरुद्ध ग्राहकों की शिकायतों पर सुनवाई करता है।
- बैंकों द्वारा शिकायत अस्वीकार करने या बैंक द्वारा संबंधित शिकायत के प्राप्त होने के एक माह की अवधि के भीतर बैंक से कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलने पर कोई भी व्यक्ति/संस्था BO के समक्ष शिकायत दर्ज करा सकता है।

डिजिटल लेनदेन के लिए लोकपाल योजना (Ombudsman Scheme for Digital Transactions: OSDT)

RBI ने OSDT योजना को भुगतान और निपटान प्रणाली अधिनियम, 2007 (Payment and Settlement Systems Act, 2007) के अंतर्गत वर्ष 2019 में आरंभ किया था।

यह RBI द्वारा विनियमित गैर-बैंकिंग संस्थाओं (जैसे- मोबाइल वॉलेट या अदायगी के लिए UPI का प्रयोग करने वाली तकनीकी सक्षम भुगतान कंपनियों) के माध्यम से होने वाले डिजिटल लेनदेन में सेवाओं की कमी से संबंधित शिकायतों के लिए एक लागत-रहित और त्वरित शिकायत निवारण तंत्र उपलब्ध कराता है।

डिजिटल लेनदेन के लिए लोकपाल RBI द्वारा नियुक्त एक वरिष्ठ अधिकारी होता है (एक बार में 3 वर्ष से अधिक अवधि के लिए उसकी नियुक्ति नहीं हो सकती है)।

भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (National Payments Corporation of India: NPCI) के बारे में

भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI), खुदरा भुगतान और निपटान प्रणाली के संचालन के लिए एक छत्र संगठन है।

यह भारतीय रिजर्व बैंक और भारतीय बैंक संघ (India Bank's Association: IBA) की पहल है, जिसे संदाय और निपटान प्रणाली अधिनियम, 2007 के प्रावधानों के तहत स्थापित किया गया है।

इसके 10 मुख्य प्रवर्तक बैंक हैं- भारतीय स्टेट बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, केनरा बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ इंडिया, आई.सी.आई.सी.आई बैंक, एच.डी. एफ.सी. बैंक, सिटी बैंक और एच.एस.बी.सी. बैंक।

इसे कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत भौतिक तथा साथ ही इलेक्ट्रॉनिक भुगतान और निपटान प्रणालियों के लिए भारत में संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली के लिए अवसरचना उपलब्ध कराने हेतु एक "गैर-लाभकारी" कंपनी के रूप में निगमित किया गया है।

भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम ने अपने स्वचालित बिल भुगतान व्यवसाय को एक नई सहायक कंपनी को हस्तांतरित कर दिया है।

रुपे कार्ड

एकीकृत भुगतान इंटरफेस

भारत बिल भुगतान

आधार सक्षम भुगतान

फास्टैग या राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक टोल संग्रह

राष्ट्रीय स्वचालित समाशोधन गृह

तत्काल भुगतान प्रणाली

*99#: यू.एस.एस.डी. आधारित भुगतान प्रणाली

राष्ट्रीय वित्तीय स्विच

चेक ट्रंक्शन सिस्टम

भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के निर्देशानुसार, भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (National Payments Corporation of India: NPCI) ने अपने सभी भारत बिल भुगतान प्रणाली (Bharat Bill Payment System: BBPS) लेनदेन अधिदेश को एनपीसीआई भारत बिल पे लिमिटेड (NBBL) नामक एक नई स्थापित सहायक कंपनी को स्थानांतरित कर दिए हैं।

BBPS एक अंतः प्रचालनीय बिल भुगतान मंच है, जिसका उपयोग बैंकों, फिनटेक कंपनियों और बिलर्स व्यापारियों द्वारा बिल संग्रह को स्वचालित करने एवं समाधान के अनुरोध के लिए किया जाता है।

NBBL 1 अप्रैल से प्रभावी हो गई है और यह NPCI की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी है।

NPCI भारत में खुदरा भुगतान और निपटान प्रणाली के संचालन के लिए एक छत्र संगठन है। इसे संदाय और निपटान प्रणाली अधिनियम, 2007 (Payment and Settlement Systems Act, 2007) के तहत गठित किया गया है।

बीमा (संशोधन) अधिनियम, 2021 {The Insurance (Amendment) Act, 2021}

हाल ही में, संसद ने बीमा संशोधन अधिनियम, 2021 पारित किया है।

अधिनियम के मुख्य प्रावधान

- यह अधिनियम बीमा अधिनियम, 1938 में संशोधन करता है और इसे 1 अप्रैल, 2021 से लागू किया जाएगा।
- **विदेशी निवेश:** इसमें घरेलू बीमा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की 49% की वर्तमान सीमा को बढ़ाकर 74% कर दिया गया है। साथ ही, स्वामित्व और नियंत्रण के संबंध में प्रतिबंधों को भी समाप्त कर दिया गया है।
- हालांकि, ऐसा विदेशी निवेश केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित अतिरिक्त शर्तों के अधीन हो सकता है।
- **आस्तियों का विनिधान:** यह अधिनियम बीमाकर्ताओं को आस्तियों में उस न्यूनतम सीमा तक निवेश करना अनिवार्य करता है, जो उनकी बीमा संबंधी देयताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त होगी। यदि बीमाकर्ता भारत के बाहर निगमित या अधिवासित है, तो ऐसी आस्तियां भारत में न्यास के रूप में अधिकृत रखी जाएंगी और उन न्यासियों में विनिहित होंगी, जो भारत में निवासित हों।
 - यह प्रावधान भारत में निगमित ऐसे बीमाकर्ता पर लागू नहीं होगा, जिसकी
 - 33% शेयर पूंजी भारत के बाहर अधिवासित निवेशकों के स्वामित्व में है, या
 - शासी निकाय के 33% सदस्य भारत के बाहर अधिवासित हैं।

• भारतीय बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (IRDAI) ने सभी बीमा कंपनियों को डिजिटल लेनदेन के माध्यम से अपनी डिजिटल बीमा पॉलिसी को जारी करने का परामर्श दिया है।

• डिजिटल लेनदेन वस्तुतः इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY) की एक प्रमुख पहल है। इसे डिजिटल इंडिया कॉरपोरेशन (MeitY के अंतर्गत एक गैर-लाभकारी कंपनी) द्वारा संचालित किया जा रहा है।

• डिजिटल लेनदेन का उद्देश्य नागरिकों को डिजिटल डॉक्यूमेंट वॉलेट के माध्यम से उनके प्रामाणिक डिजिटल दस्तावेजों तक पहुँच प्रदान कर उन्हें 'डिजिटल रूप से सशक्त' करना है।

• डिजिटल लेनदेन के माध्यम से नागरिक अपने डिजिटल दस्तावेजों को कभी भी, कहीं भी, विधिक रूप से सत्यापित दस्तावेजों की भाँति उपयोग कर सकते हैं।

भारतीय बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (IRDAI) ने बीमा कंपनियों को इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट्स (InvITs) तथा रियल एस्टेट इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट्स (REITs) द्वारा जारी ऋण प्रतिभूतियों (Debt Securities) में निवेश करने की अनुमति प्रदान की है।

• इस कदम से रियल एस्टेट क्षेत्र को अधिक दीर्घकालिक वित्तपोषण प्रदान करते हुए, फर्मों द्वारा धारित निवेश सूची की कुल प्राप्ति में सुधार की अपेक्षा की गई है।

- **IRDAI द्वारा जारी अधिसूचना के मुख्य बिंदु**
- बीमा कंपनियां किसी भी रेटिंग के InvITs या REITs के बॉन्ड में निवेश कर सकती हैं।
- बीमाकर्ता किसी एकल InvIT या REIT में बकाया ऋण लिखतों का 10% से अधिक निवेश नहीं कर सकते हैं।
- बीमाकर्ताओं के निवेश का 75 प्रतिशत AAA- रेटिंग वाली परिसंपत्तियों में होना चाहिए, जबकि 25% AA या A- रेटिंग वाले लिखतों में किया जा सकता है।

बैंक लाइसेंस देने की रूपरेखा में परिवर्तन (Changes in Bank Licensing Framework)

हाल ही में, भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के आंतरिक कार्य समूह (Internal Working Group: IWG) ने बैंकिंग उद्योग के लिए लाइसेंस देने के नियमों को संशोधित करने की अनुशंसा की है।

RBI के आंतरिक कार्य समूह (IWG) द्वारा अनुशंसित परिवर्तन क्या हैं?

- बड़े कॉर्पोरेट और कारोबारी घरानों को बैंकों का प्रवर्तक (Promoter) बनने की अनुमति दी जा सकती है।
- अच्छी तरह से चल रही बड़ी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (Non-Banking Finance Companies: NBFCs), जिनके परिसंपत्ति का आकार 50,000 करोड़ रुपये या उससे अधिक है, जिनमें कॉर्पोरेट घराने के स्वामित्व वाले कारोबार भी सम्मिलित हैं, को बैंकों में रूपान्तरण के लिए विचार किया जा सकता है।

आंतरिक कार्य समूह (IWG) की अन्य अनुशंसाएं:

- **लघु वित्त बैंक (SFBs) एवं भुगतान बैंक (Payment Bank):** IWG ने यह भी सुझाव दिया कि तीन वर्षों तक संचालन करने के बाद भुगतान बैंकों को SFBs में रूपांतरित किया जा सकता है। इससे, पेटीएम (Paytm), जियो एवं एयरटेल भुगतान बैंकों का संभवतः लाभ मिल सकता है।
- **किसी नई या वर्तमान इकाई में बैंकों द्वारा निवेश की सीमा 20% तक की जाए।**

बैंकिंग विनियम (संशोधन) अधिनियम, 2020 {Banking Regulation (Amendment) Act, 2020}

हाल ही में, संसद ने बैंकिंग विनियम (संशोधन) विधेयक, 2020 पारित किया है। इसका उद्देश्य सहकारी बैंकों के जमाकर्ताओं की रक्षा करना और सहकारी समितियों की बैंकिंग गतिविधियों को विनियमित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) को सशक्त बनाना है।

इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं

- यह बैंकिंग विनियमन (संशोधन) अध्यादेश, 2020 को प्रतिस्थापित करेगा।
- **सहकारी बैंकों द्वारा शेयरों और प्रतिभूतियों का निर्गमन:** सहकारी बैंक अपने सदस्यों या अपने परिचालन क्षेत्र के भीतर रहने वाले किसी अन्य व्यक्ति को अंकित मूल्य पर या प्रीमियम पर इक्विटी शेयर, अधिनियम शेयर या विशेष शेयर जारी कर सकते हैं। यह निर्गमन भारतीय रिजर्व बैंक RBI के पूर्व अनुमोदन और भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट किसी भी अन्य शर्तों के अधीन होगा।
- **इस अधिनियम के उपबंधों से कुछ सहकारी बैंकों को छूट प्रदान करने की शक्ति:** RBI एक अधिसूचना के माध्यम से किसी सहकारी

बैंक या सहकारी बैंकों के समूह को इस अधिनियम के कुछ प्रावधानों से छूट प्रदान कर सकता है।

- **निदेशक मंडल का हटाया जाना (Supersession of Board of Directors):** भारतीय रिजर्व बैंक कुछ शर्तों के अंतर्गत पांच वर्ष तक के लिए बहु-राज्यीय सहकारी बैंक के निदेशक मंडल का स्थान ले सकता है।
 - किसी राज्य के रजिस्ट्रार ऑफ को-ऑपरेटिव सोसायटीज (RCS) के पास पंजीकृत सहकारी बैंक की स्थिति में, RBI संबंधित राज्य सरकार से परामर्श करने के बाद, और एक निश्चित अवधि के भीतर निदेशक मंडल को हटाया जा सकेगा। इस अवधि का निर्धारण RBI द्वारा किया जाएगा।
- **यह विधेयक बैंकों को ऋण स्थगन (Moratorium) की स्थिति में डाले बिना** RBI को बैंकिंग समस्या को हल करने की अनुमति प्रदान करता है।
 - यदि केंद्रीय बैंक किसी बैंक पर ऋण स्थगन का आरोपण करता है, तो उस अवधि के दौरान संबंधित बैंक कोई ऋण नहीं दे सकता है या किसी भी ऋण लिखत (credit instrument) में निवेश नहीं कर सकता है।
- **अपवर्जन (Exclusions):** यह अधिनियम कुछ सहकारी समितियों पर लागू नहीं होता है। ये हैं:
 - प्राथमिक कृषि साख समितियाँ (Primary Agricultural Credit Societies: PACS),
 - सहकारी भूमि बंधक बैंक (Cooperative Land Mortgage Banks) और इस अधिनियम में निर्दिष्ट सहकारी समितियों को छोड़कर अन्य सहकारी समितियाँ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता का निलंबन {Suspension of Insolvency and Bankruptcy Code (IBC)}

हाल ही में, संसद ने उद्योग जगत को राहत पहुँचाने के लिए दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (द्वितीय संशोधन) विधेयक 2020 पारित किया है, क्योंकि कोरोना महामारी और लॉकडाउन से आर्थिक गतिविधियाँ बहुत अधिक प्रभावित हुई हैं।

IBC और सरफेसी (SARFAESI) अधिनियम के मध्य अंतर

- सरफेसी (SARFAESI) अधिनियम, 2002 केवल सुरक्षित (Secured) वित्तीय लेनदारों को सम्मिलित करता है, जबकि IBC सुरक्षित और असुरक्षित (Unsecured) दोनों प्रकार के लेनदारों के अधिकारों और हितों की रक्षा करता है।
- IBC की धारा 14(1)(c) यह प्रावधान करती है कि संहिता में परिभाषित दिवालिया समाधान प्रक्रिया के दौरान, इस संहिता को सरफेसी अधिनियम पर वरीयता प्राप्त होगी।
- IBC में कंपनियों और सीमित देयता साझेदारियों (Limited Liability Partnerships: LLP) तथा व्यक्तियों और असीमित साझेदारी फर्मों के लिए पृथक-पृथक न्यायनिर्णयन अधिकरणों का प्रावधान है।
- जबकि सरफेसी (SARFAESI) अधिनियम संबंधित मामलों के लिए ऋण वसूली अधिकरण (DRT) को न्यायनिर्णयन प्राधिकरण के रूप में नियत करता है।

IBC की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ-

- **इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:** सभी व्यक्ति, कंपनियाँ, सीमित दायित्व भागीदारी (Limited Liability Partnership: LLP) और साझेदारी फर्म।
- **न्यायनिर्णयन प्राधिकारी (Adjudicating Authority):** कंपनियों और LLP के लिए नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल (NCLT); तथा व्यक्तियों और साझेदारी फर्मों के लिए ऋण वसूली अधिकरण (Debt Recovery Tribunal: DRT)।

- फर्म के किसी भी हितधारक, यथा-फर्म/देनदार/लेनदार/ कर्मचारी द्वारा ऋणशोधन अक्षमता समाधान प्रक्रिया आरंभ की जा सकती है।
- जब न्यायनिर्णयन प्राधिकारी इसे स्वीकार करता है, तो एक ऋणशोधन अक्षमता पेशेवर (Insolvency resolution Professional: IP) की नियुक्ति की जाती है।
 - भारतीय दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड (Insolvency and Bankruptcy Board of India: IBBI) द्वारा दिवाला पेशेवर एजेंसियों (IPA) के शासी बोर्ड के सदस्यों के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है।
 - IBBI एक सर्वाधिक निकाय है, जिसे दिवाला पेशेवरों, दिवाला पेशेवर एजेंसियों, सूचना प्रतिष्ठानों इत्यादि के संबंध में विनियामक निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
- फर्म के प्रबंधन और बोर्ड की शक्तियों को लेनदारों की समिति (Committee of Creditors: CoC) को हस्तांतरित कर दिया जाता है। CoC में कॉर्पोरेट ऋणी के सभी वित्तीय लेनदार सम्मिलित होते हैं।
- IP को यह निर्णय लेना होता है कि कंपनी को पुनर्जीवित करना (ऋणशोधन अक्षमता समाधान) है या उसका परिसमापन (Liquidate) करना है। यदि IP द्वारा कंपनी को पुनर्जीवित करने का निर्णय लिया जाता है, तो उन्हें फर्म खरीदने के लिए इच्छुक किसी व्यक्ति को तलाशना होता है।
- जिस पक्ष के पास सर्वश्रेष्ठ समाधान योजना होती है, और जो लेनदारों के बहुमत को स्वीकार्य होता है (यहाँ महत्वपूर्ण निर्णय के लिए 66% और नियमित निर्णय के लिए 51 प्रतिशत मत की आवश्यकता होती है) उसे IP द्वारा फर्म का प्रबंधन सौंप दिया जाता है।
- इस संहिता के अंतर्गत ऋणशोधन अक्षमता समाधान प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए 180 दिनों का समय निर्धारित है। मामला जटिल होने पर यह अवधि 90 दिनों तक बढ़ाई जा सकती है। यदि समय सीमा के भीतर किसी निर्णय पर नहीं पहुंचा जाता है, तो फर्म का परिसमापन कर दिया जाता है।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के तहत वाटरफॉल मैकेनिज्म {Waterfall mechanism under Insolvency and Bankruptcy Code (IBC)}

- IBC के अंतर्गत यह तंत्र (अर्थात् वाटरफॉल मैकेनिज्म) असुरक्षित वित्तीय ऋणदाताओं (Unsecured Financial Creditors) की तुलना में सुरक्षित वित्तीय ऋणदाताओं (secured financial creditors) को अधिक प्राथमिकता प्रदान करता है।
- इसमें यह उल्लेख किया गया है कि यदि किसी कंपनी का परिसमापन (Liquidation) किया जा रहा है, तो ऐसी स्थिति में सुरक्षित वित्तीय ऋणदाताओं द्वारा किए गए सभी दावों (claims) का सबसे पहले भुगतान किया जाएगा। ऐसा अन्य सभी असुरक्षित ऋणदाताओं को किए जाने वाले भुगतान (जिन्हें कंपनी की परिसंपत्तियों को बेचकर चुकाया जाता है) के पूर्व किया जाएगा।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के तहत प्री-पैक {Pre-packs under Insolvency and Bankruptcy Code (IBC)}

- प्री-पैक वस्तुतः ऋण के समाधान के लिए किया जाने वाला एक समझौता है। इसके तहत किसी संकटग्रस्त कंपनी के ऋण के निपटान अथवा समाधान के लिए सार्वजनिक बोली प्रक्रिया (Public Bidding Process) का अनुपालन नहीं किया जाता है। इसके स्थान पर ऋण निपटान के लिए उस कंपनी के सुरक्षित ऋणदाताओं (Secured Creditors) और निवेशकों के मध्य एक प्री-पैक (पूर्व-निर्धारित) समझौता किया जाता है।

- प्री-पैक व्यवस्था में, वर्तमान प्रबंधन कंपनी पर तब तक नियंत्रण बनाए रखता है जब तक कि अंतिम समझौता नहीं हो जाता।
- IBC के तहत कंपनी पर वर्तमान प्रबंधन का नियंत्रण नहीं रह जाता है और कंपनी का नियंत्रण एक इन्सॉल्वेंसी प्रोफेशनल को सौंप दिया जाता है। ज्ञातव्य है कि इसके चलते कंपनी के व्यवसाय में व्यवधान उत्पन्न होता है।

Overview of Regulators of Non-Banking Companies

Companies
(Registered under Section 3 of the Companies Act 1956)

NBFCs Regulated by Other Regulators		
NBFCs registered with RBI* Regulation, Supervision, Surveillance & Enforcement Under RBI	Type of Financial Institutions	Authority for Regulation, Supervision, Surveillance & Enforcement
	Housing Finance Institutions	National Housing Bank
	Merchant Banking Company, Venture Capital Fund Companies, Stock Broking, Collective Investment Schemes (CIS)	SEBI
	Nidhi Companies, Mutual Benefit Companies	MCA
	Chit Fund Companies	State Government
	Insurance Companies	IRDA
Non Banking Non Financial Companies Regulation, Supervision and Surveillance under the Companies Act 1956 Regulator : Ministry of Corporate Affairs (MCA) Enforcement Agency : State Governments		

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 'वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट' 2021 जारी {Reserve Bank of India (RBI) Releases the Financial Stability Report (FSR), 2021}

यह भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा जारी की जाने वाली एक अर्द्धवार्षिक रिपोर्ट है। FSR, वित्तीय क्षेत्र के विकास तथा विनियमन से संबंधित समसामयिक मुद्दों के संदर्भ में वित्तीय स्थिरता के समक्ष जोखिम और वित्तीय प्रणाली के लचीलेपन को दर्शाती है।

प्रदर्शन मापदंड

- **जोखिम-भारित आस्तियों से पूंजीगत अनुपात (Capital to Risk- Weighted Assets Ratio: CRAR)** इसे पूंजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio: CAR) के रूप में भी जाना जाता है। यह बैंकों की जोखिम भारित आस्ति और वर्तमान देनदारियों के संबंध में उसकी पूंजी का अनुपात है। बेसल प्रमाणदंडों ने 8% CRAR निर्धारित किया है।
- **सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (Gross Non-Performing Asset: GNPA) अनुपात:** एक गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (NPA) एक ऋण या अग्रिम है, जिसके लिए मूल्य या ब्याज भुगतान 90 दिनों की अवधि के लिए बकाया (अतिदेय) होता है।
- **प्रावधान कवरेज अनुपात (Provision Coverage Ratio: PCR):** बैंकों को अपने लाभ के एक हिस्से को अशोध्य ऋणों के विरुद्ध प्रावधान के रूप में निर्धारित करना आवश्यक होता है। इसे PCR कहा जाता है। एक उच्च PCR अनुपात (आदर्श रूप में 70% से ऊपर) का आशय है कि अधिकांश परिसंपत्ति में गुणवत्ता के मुद्दों का ध्यान रखा गया है और बैंक सुभेद्य नहीं हैं।

निष्कर्ष

- अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (SCBs) का CRAR मार्च 2020 के 14.7% से बढ़कर सितंबर 2020 में 15.8% हो गया।
- अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (SCBs) का GNPA अनुपात 8.4% से घटकर 7.5% हो गया। बेसलाइन परिदृश्य के तहत सभी SCBs का GNPA अनुपात सितंबर 2021 तक बढ़कर 13.5% हो सकता है और गंभीर तनाव परिदृश्य के तहत 14.8% तक बढ़ सकता है।
- PCR 66% से बढ़कर 72.4% हो गया है।

बैंकिंग सुधार पर नरसिम्ह समिति की सिफारिशें Recommendation of Narasimham Committee on Banking Reform

पहली नरसिम्ह समिति की सिफारिशें

भारत सरकार ने वित्तीय प्रणाली की तत्कालीन संरचना तथा उसके विभिन्न अवयवों के आलोचनात्मक विवेचन के लिए, रिजर्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर एम. नरसिम्ह की अध्यक्षता में, 1991 में एक नौ सदस्यीय समिति का गठन किया था। इस समिति की रिपोर्ट 17 नवम्बर, 1991 को संसद में पेश की गई।

नरसिम्ह समिति के मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं:

- बैंकिंग संरचना में चार स्तर होने चाहिए।
- सबसे ऊपर के स्तर पर स्टेट बैंक के साथ तीन-चार और बड़े बैंक होने चाहिए (जिनका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय हो सकता है) तथा सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण बैंक (जिसमें क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी शामिल हैं) होने चाहिए।
- ग्रामीण बैंकों का कार्यक्षेत्र ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित रहना चाहिए और उनका काम कृषि एवं सहायक गतिविधियों को ऋण देना होना चाहिए।
- बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं पर निगरानी या निरीक्षणात्मक काम की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक के तत्वावधान में गठित एक अर्द्ध-स्वायत्त संस्था को सौंप देना चाहिए।
- 8 प्रतिशत पूंजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio) को प्राप्त करने का लक्ष्य होना चाहिए। यह काम विभिन्न चरणों में सम्पन्न किया जा सकता है।
- शाखा लाइसेंसिंग नीति को समाप्त कर देना चाहिए।
- वर्ष 1991-92 से वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) में धीरे-धीरे क्रमबद्ध कमी की जानी चाहिए।
- ब्याज दरों का नियमन समाप्त करके उन्हें चक्रवर्ती कमेटी के सुझाव अनुसार बैंक दर से संबंधित किया जाना चाहिए।

- वित्तीय संस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना चाहिए।
- भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा केवल पुनर्वित्त का काम अपने पास रखकर प्रत्यक्ष ऋण देने का काम एक पृथक निगम इकाई को सौंप देना चाहिए।
- वित्तीय संस्थाओं की कार्यप्रणाली में सुधार के लिए विवेकपूर्ण आचार संहिता बनाई जानी चाहिए।
- बैंकों व वित्तीय संस्थाओं की परिसम्पत्तियों का ठीक-ठीक वर्गीकरण किया जाना चाहिए तथा खातों में पूरा विवरण दिया जाना चाहिए।
- समिति ने निर्देशित निवेशों (Directed Investment) तथा साख कार्यक्रमों के संदर्भ में भी सुझाव दिए और परिसंपत्ति पुनर्निर्माण फंड (Asset Reconstruction Fund) की स्थापना की तथा सिफारिश की ताकि, बैंकों के कुछ ऋण भाग को (जिसकी अदायगी संदिग्ध है तथा कानूनी कार्यवाही के कारण जिसकी अदायगी में देरी हो रही है) इसे सौंपा जा सके।
- समिति के अन्य सुझावों में नीति सम्बन्धी पहलू, संगठनात्मक मुद्दे, लेखांकन तथा कार्यप्रणाली संबंधी विषयों की चर्चा शामिल है।
- इन सब सुझावों के पीछे मुख्य उद्देश्य बैंकों की ऋण व्यवस्था में गुणात्मक सुधार लाना तथा संस्थाओं की आंतरिक शक्ति में वृद्धि करना है।

दूसरी नरसिम्ह समिति की सिफारिशें

बैंकिंग सुधार के लिए गठित दूसरी नरसिम्ह समिति ने अपनी रिपोर्ट 23 अप्रैल, 1998 को केन्द्रीय वित्त मंत्री को सौंपी। अपनी नई रिपोर्ट में नरसिम्ह समिति ने पूंजी खाते में रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता से पूर्व देश में मजबूत व प्रभावी वित्तीय व्यवस्था विकसित करने, बैंकों की परिसंपत्तियों की गुणवत्ता में सुधार लाने, गैर निष्पादन परिसंपत्तियों (NPAs) में कमी करने, पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CAR) में वृद्धि करने, बैंकों की खराब परिसंपत्तियों के अधिग्रहण के लिए एक एसेट रिकस्ट्रक्शन फंड (ARF) की स्थापना करने, रिजर्व बैंक की नियामक व देखरेख सम्बन्धी क्रियाओं को पृथक करने के लिए 'बोर्ड फॉर फाइनेंशियल सुपरविजन (BFS)' को स्वायत्तता प्रदान करने, बैंकों को राजनीति से मुक्त करने, निदेशक बोर्ड में पेशेवर व्यक्तियों को शामिल करने तथा बैंक कर्मियों के विरुद्ध किसी भी कार्यवाही से पूर्व समुचित जाँच-पड़ताल करने आदि की संस्तुतियों की हैं। समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं-

- सुदृढ़ वाणिज्यिक बैंकों का पारस्परिक विलय वृहत्तर आर्थिक और वाणिज्यिक माहौल पैदा करेगा और इसका उद्योगों पर गुणक प्रभाव होगा।
- सुदृढ़ बैंकों का विलय कमजोर बैंकों के साथ नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे सुदृढ़ बैंक की अस्तित्वों (Assets) की गुणवत्ता पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है।
- देश के कतिपय बड़े बैंकों को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए।
- जोखिम भरी आस्तियों से पूंजी के अनुपात को सन् 2000 तक 9 प्रतिशत तथा सन् 2002 तक 10 प्रतिशत के स्तर पर लाया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की पूंजीनिधियों में बजटीय सहायता न देकर उन्हें देशीय एवं बाह्य पूंजी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- परिसम्पत्तियों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जाए-
 - पहली बार 18 माह तक किस्त एवं ब्याज का भुगतान न करने पर संदेहास्पद की संज्ञा प्रदान करना।
 - अगली बार 12 माह तक किस्त एवं ब्याज का भुगतान न किए जाने पर घटिया परिसम्पत्ति की संज्ञा प्रदान करना।
- सरकारी प्रतिभूतियों के द्वारा कवर किए गए असुविधाजनक हो चुके ऋणों को गैर-निष्पादनीय अस्ति माना जाए।
- दो लाख रुपए से कम के ऋणों पर ब्याज निर्धारण का अधिकार बैंकों को दिया जाए।

- प्राथमिकता क्षेत्र के लिए ऋणों में ब्याज सम्बन्धी आर्थिक सहायता अवयव को पूर्णतया समाप्त किया जाए।

CAMELS: अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बैंकों की गुणवत्ता मापने का तरीका

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बैंकों की गुणवत्ता मापने का यह तरीका सबसे पहले अमेरिका में वर्ष 1979 में फेडरल बैंक ने शुरू किया था। भारत में इस रेटिंग मानक की शुरुआत 1995 में रिजर्व बैंक ने बैंकिंग सुपरविजन की समीक्षा करने के लिए डॉ. पद्मनाभम् की अध्यक्षता में गठित समिति की सिफारिश के आधार पर की थी। इस समिति ने यह सुझाव दिया कि बैंकों के सुपरविजन को सुदृढ़ता, वित्तीय, प्रबंधकीय तथा क्रियात्मक कुशलता के लिए परिभाषित मानकों पर ध्यान देना चाहिए।

CAMELS रेटिंग में 6 मानक हैं जो इस प्रकार हैं-

- **C: Capital Adequacy (पूँजी पर्याप्तता)**- पूँजी पर्याप्तता इस बात को मापती है कि बैंक किस प्रकार अपनी हानियों को ठीक करता है और बैंक को बंद किये बिना ग्राहकों के प्रति अपने सभी दायित्वों का निर्वहन करता है। इसे 25% भार (Weightage) दिया गया है।
 - **A: Asset Quality (सम्पत्ति की गुणवत्ता)**- परिसंपत्तियों में एक बैंक की सभी संपत्तियों को गिना जाता है जैसे वर्तमान लोन, निवेश, जमीन और बैलेंसशीट के अलावा अन्य तरह के लेन-देन आदि। इसे 20% भार दिया गया है।
 - **M: Management Effectiveness (प्रबंधन प्रभावशीलता)**- इसमें बैंक के निदेशक मंडल और शीर्ष-स्तरीय प्रबंधकों को शामिल किया जाता है जो कि एक बैंक की सभी नीतियों जैसे निवेश, व्यापार, विस्तार और कर्मचारियों से संबंधित सभी निर्णय लेते हैं इसे 25% भार दिया गया है।
 - **E: Earning (कमाई)**- इसमें जिन गतिविधियों के द्वारा बैंक लाभ कमाता है, उन्हें शामिल किया जाता है। यदि कोई बैंक कम रुपये निवेश कर ज्यादा लाभ कमाता है तो उसको लाभ कमाने वाला बैंक माना जाता है, इसे 10% भार दिया जाता है।
 - **L: Liquidity (तरलता)**- परिसंपत्तियों को नकद में बदलने की बैंक की क्षमता को तरलता कहा जाता है। इसे 10% भार दिया गया है।
 - **S: Sensitivity (बाजार जोखिम के प्रति संवेदनशीलता, विशेष रूप से ब्याज दर जोखिम)**- इसे छठे घटक के रूप में वर्ष 1997 में जोड़ा गया। इसमें बैंक की इस योग्यता को मापा जाता है कि बैंक बदलती बाजार स्थितियों में किस प्रकार की नीति अपनाता है साथ ही कितनी सटीकता से इस बात का अनुमान लगता है कि ब्याज दर में परिवर्तन, विदेशी विनिमय दरों में परिवर्तन बैंक के लाभ या हानि को कैसे प्रभावित करता है। इसे 10% भार दिया गया है।
- किसी भी बैंक को इन उपर्युक्त 6 मानकों के आधार पर जाँचा जाता है। हर मानक को 1 से 5 पाइंट दिये जाते हैं। सबसे अच्छे प्रदर्शन को 1 अंक और सबसे खराब को 5 अंक दिया जाता है। यदि किसी बैंक को 3 रेटिंग मिलती है तो यह माना जाता है कि बैंक की स्थिति संतोषजनक स्तर से कम है और इसको अपनी गुणवत्ता में सुधार लाने की जरूरत है। इस रेटिंग के आधार पर बैंक का सुपरविजन अधिकारी इस बात का निर्णय लेता है कि किन बैंकों का प्रदर्शन ठीक नहीं है और इसको ठीक करने की रणनीति बताता है यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि कहीं-कहीं केवल 5 मानकों के आधार पर रेटिंग तय की जाती है। भारत में विदेशी बैंकों के प्रदर्शन की गुणवत्ता कार्यप्रणाली को जानने के लिए CACS मानक का प्रयोग किया जाता है। इसका विस्तार इस प्रकार है-

C: Capital Adequacy (पूँजी पर्याप्तता)।

A: Assets Quality (संपत्तियों की गुणवत्ता)।

C: Compliance (RBI के नियमों का अनुपालन)।

S: Sensitivity (जोखिम के प्रति संवेदनशीलता)।

इस प्रणाली में प्रबंधक और कमाई को शामिल नहीं किया गया है। इस प्रकार 'CAMELS' रेटिंग के माध्यम से बैंक की समग्र वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है और सुधारात्मक कार्य, यदि कोई हों, तदनुसार किया जाता है।

बैंकिंग सेक्टर तथा गैर निष्पादक परिसंपत्तियाँ (Banking Sector and Non-Performing Assets)

बैंक जो ग्राहकों को ऋण देते हैं, उस ऋण को बैंक की परिसंपत्ति (Asset) कहते हैं। उधार लेने वाले सामान्यतया किश्तों के रूप में बैंक द्वारा दिये गये ऋण तथा उस पर ब्याज का भुगतान बैंक को नियमित रूप से करते हैं। दूसरी ओर बैंक द्वारा प्राप्त विभिन्न जमायें (Deposit) बैंक की देयता या दायित्व (Liability) प्रदर्शित करती है। बैंक तथा जमाकर्ताओं की सुरक्षा तथा बैंक की लाभदेयता बैंक द्वारा दिये गये उधारों या अग्रिमों (Advances) के स्वभाव के ऊपर निर्भर करता है।

- ऐसे ऋण जिनके ब्याज तथा मूलधन की प्राप्ति सामान्य हो, या नियमित हो, ऐसे अग्रिमों को हम सामान्य ऋण या अच्छा ऋण (Good Loans) कहते हैं।
- ऐसे ऋण जिन पर एक निश्चित समयावधि तक बैंक को उसके मूलधन तथा ब्याज की किश्त का भुगतान न मिला हो, उसे हम गैर निष्पादक अग्रिम या सम्पत्ति कहते हैं।

वर्ष 1993 में यह निर्दिष्ट अवधि 12 महीने थी जिसे घटाकर 1995 में 6 महीना तथा 2004 में 3 महीना (90 दिन) कर दिया गया। भारतीय रिजर्व बैंक के नियमों के अनुसार यदि किसी ऋण का ब्याज निर्धारित समय से 30 दिनों के भीतर नहीं मिलता तो उसे **एसएमए-0** कहा जाता है। यदि यह ब्याज 31 से 60 दिनों तक न मिले तो इसे **एसएमए-1** कहा जाता है और यदि ब्याज का भुगतान 61 से अधिक दिनों तक न हो तो उसे **एसएमए-2** कहा जाता है।

किसी बैंक की कुल निष्पादनकारी संपत्तियों के प्रतिशत के रूप में गैर निष्पादनकारी संपत्तियों का भाग ही गैर निष्पादनकारी संपत्ति अनुपात (Non Performing Assets Ratio) कहलाता है।

अक्टूबर, 2009 से रिजर्व बैंक ने एन.पी.ए. के संबंध में पूरक व्यवस्था के रूप में ग्रेडेड प्रोविजनिंग प्रणाली की व्यवस्था शुरू की जिसके अनुसार गैर निष्पादक संपत्तियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है-

- **सब स्टैंडर्ड संपत्तियाँ**- इसके अंतर्गत उन संपत्तियों को रखा जाता है जो पिछले 12 महीनों से एन.पी.ए. रही हों। इसके अंतर्गत आने वाले अग्रिम ऐसे अग्रिम हैं जिनके पीछे रखी गयी प्रतिभूतियाँ अग्रिमों के भुगतान को सुरक्षित करने की स्थिति में नहीं होती हैं तथा यदि आवश्यक कदम नहीं उठाये गये तो बैंकों को हानि उठानी पड़ सकती है।
- **संदिग्ध संपत्तियाँ**- इस वर्ग में उन संपत्तियों को रखा जाता है जो 12 महीने से अधिक एन.पी.ए. रही हों।
- **हानि वाली संपत्तियाँ**- ऐसी संपत्तियाँ जिनकी बैंक के आन्तरिक तथा बाहरी अंकेक्षक या केन्द्रीय बैंक पर्यवेक्षक ने हानि वाली संपत्ति के रूप में पहचान की हो तथा जिन्हें बैंक द्वारा आंशिक या पूर्णरूप से अभिलिखित नहीं किया गया हो।

बढ़ते हुए एन.पी.ए. के कारण

- गिरवी रखी गयी परिसंपत्ति की गुणवत्ता तथा कीमत में कमी। एनपीए की पहचान के संबंध में अर्थव्यवस्था की खराब समष्टि आर्थिक स्थिति, आर्थिक वृद्धि दर तथा निर्यात वृद्धि दर में गिरावट।
- परियोजना के पूरा होने में विलम्ब होने के कारण ब्याज तथा मूलधन की किस्त भुगतान में देरी।

- ब्याज की दरों में वृद्धि के कारण किश्त भुगतान में कठिनाई।
- निर्यातक इकाइयों को दिये गये अग्रिमों के भुगतान के संबंध में विदेशों में आर्थिक मंदी तथा रुपये के विदेशी विनिमय मूल्य में तेजी से कमी के कारण उत्पन्न कठिनाई।
- सार्वजनिक बैंकों द्वारा NPA की गणना के संबंध में पहले से चली आ रही विधि के स्थान पर सिस्टम आधारित पहचान पद्धति के कारण NPA में वृद्धि हुई है।
- पिछले वर्षों में अर्थव्यवस्था के अच्छे दिनों में बैंकों द्वारा बहुतायत से अन्य बैंकों से प्रतिस्पर्धा में कम ब्याज दर पर ऋण देना।
- प्राथमिकता उधारी के अंतर्गत दिये गये अग्रिमों के संबंध में अधिक जोखिम का होना।
- अधोसंरचना क्षेत्र को दिए गये ऋणों का बहुतायत से अशोधक्षम होना।
- सरकार द्वारा अपनायी गयी ऋण राहत नीति के कारण बैंक के खराब ऋणों में तेजी से वृद्धि।
- बैंकों द्वारा कॉर्पोरेट घरानों को दिये जाने वाले ऋणों के संबंध में राजनैतिक हस्तक्षेप तथा ऋणों की वसूली में ढिलाई।
- विलफुल डिफाल्टों की बढ़ती संख्या।

एन.पी.ए. बढ़ने से अर्थव्यवस्था को होने वाले नुकसान

- यह भारतीय बाजारों में धन की कमी लाएगा। सिर्फ कुछ ही बैंक ऋण के लिए पैसे देंगे।
- कई बैंक दिवालिया हो जाएंगे क्योंकि उन्हें खुद का नियमन करने में कठिनाई होगी। भारत में बैंकों में कुल जमा का 31% बचत जमा होता है जो असुरक्षित हो जाएगा।
- आधारभूत संरचना तथा नयी औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिए ऋण की अनुपलब्धता होगी जिसका असर देश की विकास दर पर होगा।
- खुदरा उपभोक्ताओं को भी प्रभावित करेगा जिन्हें उच्च ब्याज दर के कारण ऋण से वंचित होना पड़ेगा।
- NPA जैसी समस्याएँ भारत के वित्तीय समावेशी कारक को संदिग्ध कर सकती हैं।

अशोधक्षमता, दिवालिया या बैंकपसी का आशय

एक ऐसी स्थिति जबकि फर्म की स्थिति इतनी अस्थिर हो, उसके दायित्व उसकी संपत्तियों से इतने अधिक हो जायें कि वह अपने दायित्व की अदायगी अपनी संपत्तियों से न कर सके तो वह दिवालिया हो जाता है और उसे अपनी संपत्तियाँ कोर्ट को सौंपनी पड़ती है।

गैर-निष्पादक परिसंपत्तियों से निपटने हेतु किए गये प्रावधान

- RBI के द्वारा पोर्टल (CRILC- Central Repository of Information on large Credit) बनाया गया है। जहाँ हर बैंक को 5 करोड़ या उससे अधिक के ऋण का विवरण उपलब्ध कराना होगा। यह विवरण एन.पी.ए. के रूप में होगा।
 - सरकार NPA की समस्या से निपटने के लिए 'मिशन इन्ड्रधनुष' प्रोजेक्ट लायी है जिसके तहत अनुसूचित बैंकों को वर्ष 2018-19 तक 70 हजार करोड़ रुपये की पूंजी की उपलब्धता करायी जाएगी।
 - SARFAESI Act 2002 (सिक्वोरिटाइजेशन एण्ड रीकंस्ट्रक्शन ऑफ फाइनेंशियल असेट एण्ड एनफोर्समेंट ऑफ सिक्वोरिटी इंटररेस्ट कानून) जानबूझ कर कर्ज न चुकाने वालों (Willful Defaulters) पर शिकंजा कसने हेतु इस कानून को पारित किया गया था। इसमें बैंकों को निम्न अधिकार मिले थे-
- कर्ज के एनपीए होने की स्थिति में 75 प्रतिशत तक कर्ज देने वाले बैंक/वित्तीय

संस्थान मिलकर उधार लेने वालों के खिलाफ कार्यवाही कर सकते हैं जैसे-

- 60 दिन के भीतर ऋण चुकाने के लिये डिफॉल्ट का नोटिस जारी कर सकते हैं।
- कर्जदार बकाया नहीं चुकाता है तो जमानत जब्त कर सकते हैं, कर्ज लेने वाली संस्था के मैनेजमेंट पर नियंत्रण कर सकते हैं या संस्थान चलाने हेतु किसी को नियुक्त कर सकते हैं।
- बैंक/वित्तीय संस्थान कर्जदार कंपनियों के शेयर परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी को बेच सकते हैं।
- यह जिला मजिस्ट्रेट को लेनदारों की सुरक्षा के लिए 30 दिनों के भीतर जमानत पर कब्जा करने की अनुमति देता है।
- यह जिला मजिस्ट्रेट को एक कंपनी के प्रबंधन को संभालने के लिए बैंकों को सहायता प्रदान करने का अधिकार देता है, यदि कंपनी ऋण चुकाने में असमर्थ है।
- इसमें एक केंद्रीय डाटाबेस बनाने का प्रावधान है, जिसमें विभिन्न पंजीकरण प्रणालियों के तहत पंजीकृत संपत्ति के रिकॉर्ड को एकीकृत किया जाता है, जो कि सुरक्षित संपत्ति से संबंधित लेने-देने के रिकॉर्ड को बनाए रखने के लिए होता है।
- भारतीय रिजर्व बैंक को परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों के लेखापरीक्षा और निरीक्षण करने तथा उन्हें दंडित करने का अधिकार देता है, यदि वे इसके द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों का पालन नहीं कर रहे हैं।
- बैंकों को बैंक शाखा के अधिकार क्षेत्र में आने वाले न्यायाधिकरणों में मामले दर्ज कराने की अनुमति देता है जहाँ ऋण लंबित हैं।

इन्सॉल्वेंसी एंड बैंकपसी कोड, 2016

इन्सॉल्वेंसी एंड बैंकपसी कोड जो कि 2015 को संसद में वित्तमंत्री द्वारा पेश किया गया 2016 को संसद से पारित होने के बाद अंतिम रूप से 28 मई, 2016 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद, अधिनियम बन गया। इस अधिनियम को लाने का प्रमुख उद्देश्य अशोधक्षमता तथा दिवालियापन से संबंधित सभी मुद्दों का एक कानून के अंतर्गत समाधान देना था। यह अधिनियम सभी प्रकार के देनदारों के, जिसमें कंपनी, असीमित दायित्व वाली साझेदारी फर्म, सीमित दायित्व साझेदारी फर्म, व्यक्ति तथा अन्य इकाईयाँ सम्मिलित हैं, अशोधक्षमता तथा दिवालियापन के मुद्दे कवर करेगी। बैंकों की एनपीए की बढ़ती हुयी गंभीर समस्या के समाधान में यह अधिनियम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा क्योंकि लेनदार प्रेरित अशोधक्षमता प्रस्ताव (Creditor Driven Insolvency Resolution) पर बल दिया गया है, अर्थात् किसी कंपनी या फर्म जो बैंक की ऋणी है तथा जो बैंक का ऋण चुकाने की स्थिति में नहीं हैं, के विरुद्ध ऋणदाता या लेनदार बैंक अशोधक्षमता तथा दिवालियापन की कार्यवाही शुरू कर सकते हैं। इसके अंतर्गत लेनदारों को इसकी अनुमति है कि वे देनदार का व्यापारिक इकाई के रूप में मूल्यांकन करें तथा देनदार की फर्म को पुनर्जीवित (Revival) करने या तेजी से समापन (Liquidation) के एक प्लान पर सहमत हों।

त्वरित सुधारात्मक कार्यवाही (Prompt Corrective Action-PCA)

- यह एक पर्यवेक्षी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से RBI घाटे में चल रहे बैंकों को कुछ निश्चित कार्यों के निष्पादन से प्रतिबंधित करता है।
- RBI द्वारा कमजोर या घाटे में चल रहे बैंकों की निगरानी, नियंत्रण और सुधारात्मक कार्यवाही के लिये कुछ ट्रिगर पॉइंट निर्धारित किये गए हैं जिनके आधार पर बैंकों को अनिवार्य कार्ययोजना का पालन करना आवश्यक होता है। तीन मुख्य ट्रिगर पॉइंट निम्नलिखित हैं-
- निवल NPA 10% से अधिक हो।
- लगातार 4 वर्षों तक नकारात्मक रिटर्न हो।

- जोखिम भारित परिसंपत्तियों को लगभग 9% बनाए रखना।
- जो बैंक उपर्युक्त तीनों शर्तों को पूरा नहीं करते हैं उन्हें PCA के दायरे में शामिल किया जाता है।

PCA (Prompt Corrective Action) का प्रभाव

- भर्ती की अनुमति नहीं।
- शाखा विस्तार पर प्रतिबंध।
- इंटरबैंक बाजार उधार पर प्रतिबंध।
- महँगी जमाओं को स्वीकार करने पर प्रतिबंध।
- नया व्यवसाय प्रारंभ करने पर प्रतिबंध।

प्रोजेक्ट सशक्त

केन्द्र सरकार ने सरकारी बैंकों के एनपीए (नॉन परफॉर्मिंग एसेट्स यानी फंसे कर्ज) की समस्या को दूर करने के लिए एक समग्र नीति लाने की घोषणा की है। वित्त मंत्री द्वारा 3 जुलाई, 2018 को प्रोजेक्ट सशक्त नामक एक 5 सूत्रीय रणनीति को लागू करने की घोषणा की गई। इसकी सिफारिश मेहता समिति द्वारा की गई थी।

परियोजना के प्रमुख बिन्दु

- 50 करोड़ तक की राशि के लोन को SME रेज़ोल्यूशन अप्रोच के तहत शामिल किया जाएगा और 90 दिनों के भीतर इसका निपटारा किया जाएगा। समिति 90 दिनों के अंदर इन सभी खातों के बारे में फैसला करेगी कि इन्हें और अधिक ऋण देने की आवश्यकता है या बंद करने की।
- 50 करोड़ से 500 करोड़ की राशि तक के (NPA - Non-Performing Asset) खातों में फंसे कर्ज के निपटान का फैसला अग्रणी बैंक की अगुवाई में लिया जाएगा।
- बैंक, विशेषज्ञों की एक समिति बनाकर प्रस्ताव तैयार करेगा और अगर वह इसे 180 दिनों के भीतर नहीं निपटा पाता है, तो इसका समाधान दिवालियापन कानून के तहत किया जाएगा।
- इस परियोजना को लागू करने के लिये बैंकों की एक स्क्रीनिंग समिति का गठन किया जाएगा जो इस बात की निगरानी करेगी कि तय नियमों का अनुपालन पारदर्शी तरीके से किया जा रहा है अथवा नहीं।

AMC-Asset Management Company के गठन का प्रावधान

- रुपये 500 करोड़ से अधिक के फंसे ऋण के लिये एसेट मैनेजमेंट कंपनी (AMC) की स्थापना की जाएगी।
- यह कंपनी पूरी तरह से स्वतंत्र होगी। इसमें सरकार का कोई दखल नहीं होगा।
- AMC सरकारी और प्राइवेट क्षेत्र के निवेशकों से धन जुटाएगी।
- AMC बैंकों द्वारा NPA घोषित किये हुए ऋण की खरीद की जाएगी जिससे इस कर्ज का भार बैंकों पर नहीं पड़ेगा।
- रुपये 500 करोड़ से अधिक की राशि वाले अन्य NPA खातों का निपटान यदि AMC के माध्यम से भी संभव न हो तो ऐसे खातों का निपटान दिवालिया कानून के तहत किया जाएगा।

बैंकिंग व्यवस्था से जुड़े महत्वपूर्ण योजना (Important Scheme Related to Banking System)

प्रधानमंत्री जन-धन योजना एवं संशोधन

देश की एक बड़ी असेवित आबादी तक वित्तीय सेवायें विस्तारित करके वित्तीय

समावेशन स्थापित करने के लिये इस योजना का शुभारंभ 28 अगस्त, 2014 को किया गया था। इस योजना के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- बैंकिंग सुविधाओं तक सर्वजन को पहुँच प्रदान करना।
- प्रत्येक परिवार में कम से कम एक बेसिक बैंक खाता खुलवाना।
- लाभार्थियों को रुपये डेबिट कार्ड प्रदान करना जिसके अंतर्गत एक लाख रुपये का दुर्घटना बीमा कवर निहित होगा।
- 15 अगस्त 2014 से 26 जनवरी 2015 के मध्य खाता खुलवाने वाले को 30000 रुपये का जीवन बीमा प्रदान किया जाएगा। जून 2021 तक देश में 42 करोड़ 55 लाख से भी ज्यादा जनधन खाते खोले जा चुके हैं, जिसमें लाभार्थियों द्वारा 1.32 लाख करोड़ रुपये से अधिक की राशि जमा की गयी है।

योजना में हालिया संशोधन

- खाते में प्राप्त 5000 रुपये की ओवरड्राफ्ट की सीमा को बढ़ाकर 10,000 रुपये कर दिया गया है।
- अब प्रत्येक परिवार की जगह परिवार के प्रत्येक वयस्क का खाता खोलने पर जोर दिया जा रहा है।
- जो भी नये खाते खुलेंगे उन्हें 1 लाख के बजाये 2 लाख रुपये का दुर्घटना बीमा प्रदान किया जायेगा।

बैंकों में आंतरिक लोकपाल (Internal Ombudsman in Banks)

बैंकिंग लोकपाल योजना बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से संबंधित शिकायतों के समाधान में सहायता प्रदान करने और इन शिकायतों के संतोषजनक हल अथवा निपटान करने के उद्देश्य से प्रारंभ की गई है।

इसके अंतर्गत एक बैंकिंग लोकपाल की नियुक्ति की जाती है, जो अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी होता है। 'बैंकिंग लोकपाल योजना' वर्ष 1995 में लागू की गई थी, तथा बैंकों द्वारा स्वच्छ, पारदर्शी, भेदभाव रहित और जिम्मेदारीपूर्वक बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से वर्ष 2002 एवं 2006 में इस योजना के दायरे को बढ़ाते हुए इसमें संशोधन किए गए।

- भारतीय रिजर्व बैंक ने उन सभी वाणिज्यिक बैंकों जिनकी शाखाएं 10 या उससे अधिक हैं, उनके ग्राहकों की शिकायतों की समीक्षा करने के लिए एक स्वतंत्र आंतरिक लोकपाल नियुक्त करने का निर्देश दिया है।
- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए ये निर्देश वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर लागू नहीं होंगे।

लोकपाल योजना 2018

- बैंकों में आंतरिक लोकपाल योजना, 2018 के अंतर्गत यह अनिवार्य है कि बैंक आंतरिक लोकपाल का कार्यकाल 3 से 5 वर्ष निश्चित करें, जिसका नवीनीकरण नहीं किया जा सकता।
- आंतरिक लोकपाल को केवल रिजर्व बैंक की पूर्व सहमति के आधार पर ही उसके पद से हटाया जा सकता है।
- आंतरिक लोकपाल को दिए जाने वाले पारिश्रमिक का निर्णय बोर्ड की ग्राहक उप-समिति द्वारा किया जाना चाहिए, न कि किसी व्यक्ति द्वारा।
- रिजर्व बैंक के अनुसार, लोकपाल योजना, 2018 में आंतरिक लोकपाल की नियुक्ति/कार्यकाल, भूमिका और जिम्मेदारियाँ, प्रक्रियात्मक दिशा-निर्देश और निरीक्षण शामिल हैं।
- लोकपाल योजना, 2018 के कार्यान्वयन की निगरानी भारतीय रिजर्व बैंक के नियामक निरीक्षक के अलावा बैंक के आंतरिक लेखा परीक्षा तंत्र द्वारा भी की जाएगी।

इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक (India Post Payments Bank)

- इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक के जरिए बैंकिंग सेवाएं देश के दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक आसानी से पहुंचाई जा सकेंगी। इसे वित्तीय समावेशन की दिशा में एक बड़ी पहल माना जा रहा है।
- इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक का शुभारंभ 1 सितंबर, 2018 को नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा किया गया।
- इस योजना के माध्यम से डाकिया द्वारा लोगों के घरों पर धन हस्तांतरण, सरकारी लाभों के हस्तांतरण और बिल भुगतान के साथ-साथ निवेश एवं बीमा जैसी अन्य सेवाएं भी सुलभ कराई जाएगी।
- इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक डिजिटल लेन-देन की सुविधा भी प्रदान करेगा और इसके साथ ही विभिन्न योजनाओं जैसे कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के लाभ प्रदान करने में भी मदद करेगा, जिसके तहत किसानों को सहायता मुहैया कराई जाती है।
- ग्रामीण डाक सेवकों को वित्तीय सेवाएं सुलभ कराने के उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्मार्ट फोन और डिजिटल उपकरणों के माध्यम से सशक्त बनाया जाएगा।

एकीकृत भुगतान इंटरफेस 2.0 (Unified Payment Interface 2.0)

अगस्त, 2018 में भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम ने एकीकृत भुगतान इंटरफेस (UPI) 2.0 लॉन्च किया, इस संस्करण में उन्नत सुरक्षा के साथ ओवरड्राफ्ट खाते को जोड़ने की सुविधा प्रदान की गई है।

एकीकृत भुगतान प्रणाली

- यह एक ऐसी प्रणाली है जो एक मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से कई बैंक खातों का संचालन, विभिन्न बैंकों की विशेषताओं का समायोजन, निधियों का निर्बाध आवागमन और एक ही छतरी के अंतर्गत व्यापारियों का भुगतान कर सकती है।
- यह 'पीयर टू पीयर' अनुरोध को भी पूरा करती है जिसे आवश्यकता और सुविधा के अनुसार निर्धारित कर, भुगतान किया जा सकता है।
- UPI का पहला संस्करण अप्रैल 2016 में लॉन्च किया गया था।

UPI 2.0 की विशेषताएँ

- बड़ी संख्या में बैंक, व्यापारी और उपभोक्ताओं ने इस मंच के प्रति भरोसा जताया है। जिसके परिणामस्वरूप स्थापना के बाद से इसने अपने लेन-देन में मूल्य और मात्रा दोनों ही मामलों में पर्याप्त वृद्धि की है। इसे भारत की डिजिटल अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की कुंजी के रूप में देखा जा रहा है।
- ग्राहक तत्काल लेन-देन करने में सक्षम होंगे और ग्राहक लेन-देन को पूर्व-अधिकृत कर बाद की तारीख में भुगतान कर सकते हैं।
- इसमें दी गई एक सुविधा के माध्यम से ग्राहक भुगतान करने से पहले व्यापारी द्वारा भेजे गए चालान की जांच कर सकते हैं। इसका उद्देश्य ग्राहकों को प्रमाण पत्र देखने और सत्यापित करने में सहायता करना तथा यह जांचना है कि इसे सही व्यापारी द्वारा भेजा गया है या नहीं।
- कोड स्कैन करते समय व्यापारियों की प्रामाणिकता की जांच करने हेतु ग्राहकों के लिए QR कोड सुविधा प्रदान की गई है। यह उपयोगकर्ता को सूचित करता है कि व्यापारी UPI से सत्यापित है या नहीं।
- इसमें लेन-देन त्वरित होते हैं क्योंकि हस्ताक्षरित प्रयोजन के मामले में एप पासकोड की आवश्यकता नहीं होती है। यह QR से छेड़छाड़ की संभावनाओं को भी अस्वीकार करता है।
- भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने निवेशकों को इनीशियल पब्लिक ऑफरिंग (IPO) में शेयरों को उपयोग करने की अनुमति देने का प्रस्ताव दिया है ताकि मौजूदा पब्लिक इश्यू टाइमलाइन को T+6 से घटाकर T+3 किया जा सके।

कर प्रणाली, बजट तथा संघीय वित्त व्यवस्था (Tax system, Budget and Federal Finance System)

कर प्रणाली (Tax System)

परिचय (Introduction)

करों को “प्रदत्त विशेष लाभों के संदर्भ के बिना, सभी के सामान्य हित में किये गए व्ययों को चुकाने के लिए व्यक्ति की ओर से सरकार को किये गए अनिवार्य योगदान” के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निम्नलिखित चार विशेषताओं के संदर्भ में करों की प्रकृति की व्याख्या की जा सकती है-

- **अनिवार्य योगदान**- कोई भी व्यक्ति/संस्थान करों का भुगतान करने से मना नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी कर योग्य व्यक्ति/संस्थान द्वारा इसकी अस्वीकृति गैर-कानूनी एवं दंडनीय अपराध है।
- **व्यक्तिगत दायित्व**- यह व्यक्तिगत रूप से करों के भुगतान करने का दायित्व आरोपित करता है, क्योंकि इसे किसी अन्य व्यक्ति पर हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है।
- **सामान्य लाभ**- करों को आम-जन के सामान्य लाभ एवं कल्याण के लिए उपयोग किया जाता है।
- **कोई प्रतिदान नहीं**- करों के भुगतान के बदले सरकार पर करदाता के प्रति किसी प्रकार की निश्चित, प्रत्यक्ष या आनुपातिक लाभ संबंधी देयताओं का सृजन नहीं होता है।

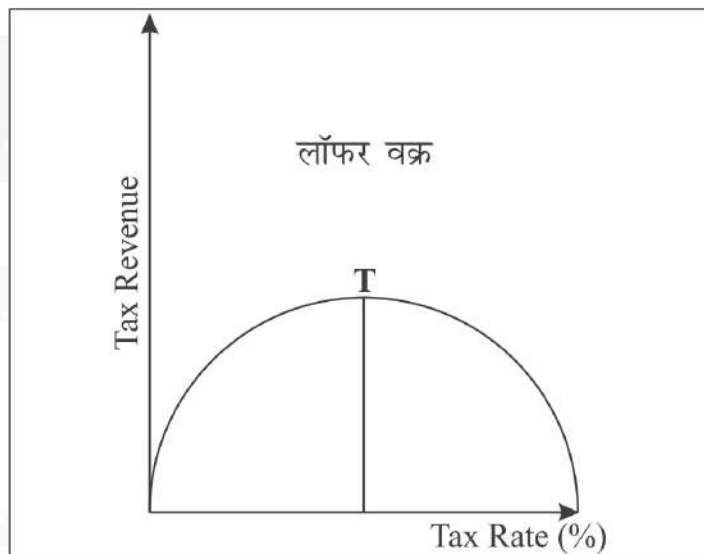
कर प्रणाली के प्रकार (Types of Tax System)

वैश्विक स्तर पर कर प्रणाली के अनेक रूप प्रचलित हैं, इसमें निम्नलिखित कर प्रणालियाँ उल्लेखनीय हैं-

- **प्रगतिशील कर प्रणाली (Progressive Tax System)** - जब कर योग्य राशि (Taxable Amount) में वृद्धि होने के साथ-साथ उस पर लगने वाले कर की दर (Tax Rate) भी बढ़ती जाती है, तो इसे प्रगतिशील कर प्रणाली कहा जाता है। इस स्थिति में निर्धन व्यक्ति को कम दर से तथा धनी व्यक्ति को ऊँची दर से कर चुकाना पड़ता है।
- **प्रतिगामी कर प्रणाली (Regressive Tax System)** - यह प्रगतिशील कर प्रणाली के ठीक विपरीत स्थिति है अर्थात् जब कर योग्य राशि में वृद्धि होने के साथ-साथ उस पर लगने वाले कर की दर कम होती जाती है तो इसे प्रतिगामी कर प्रणाली कहा जाता है। इस स्थिति में **कर का भार निम्न आय वर्ग पर अधिक पड़ता है।**
- **समानुपातिक कर प्रणाली (Proportional Tax System)** - समानुपातिक कर प्रणाली में आय के प्रत्येक स्तर पर समान दर से कर अदा करना पड़ता है। इसमें आय बढ़ने से कर की राशि में तो वृद्धि होती है, परन्तु कर प्रतिशत यथावत बना रहता है।
- **अवक्रमिक कर प्रणाली (Degressive Tax System)** - यदि कर प्रणाली ऐसी हो जिसमें आय के कुछ स्तर तक तो कर की दर में वृद्धि हो परन्तु आय के एक स्तर के बाद कर की दर स्थिर हो जाए (जैसा समानुपातिक में होता है) तो इस प्रणाली को अवक्रमिक कर प्रणाली कहते हैं। इसमें प्रगतिशील और समानुपातिक दोनों कर प्रणालियों की विशेषताएँ होती हैं।
- प्रगतिशील करारोपण को अधिक न्यायपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसका भार आय की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ बढ़ता है, कुछ लोग प्रतिगामी करारोपण को उचित ठहराते हैं क्योंकि जिसकी आय अधिक होगी वह कम कर (Tax) देगा। इसलिए बचत अधिक होगी जो आर्थिक विकास

में सहायक होगी। करारोपण यदि अत्यधिक प्रगतिशील हो जाए तो इसके कारण करदाता **कर अपवंचन (Tax Evasion)** के लिए प्रोत्साहित होगा।

- **लॉफर वक्र (Laffer Curve)**- यह किसी अर्थव्यवस्था में करों की दर एवं राजस्व प्राप्ति के मध्य संबंध को दर्शाता है।



आरेख दर्शाता है कि जैसे-जैसे शून्य से कर की दर बढ़ती है तो संग्रहित कर राजस्व की मात्रा में भी वृद्धि होती है। परन्तु बिन्दु T पर पहुँचने के पश्चात् कर की दर में और वृद्धि होने से संग्रहित कर राजस्व में कमी आना प्रारंभ हो जाती है। अर्थात् T बिन्दु पर कर राजस्व की अधिकतम राशि प्राप्त होती है।

भारतीय कर प्रणाली में कर के प्रकार (Types of Taxes in Indian Tax System)

भारतीय अर्थव्यवस्था में कर प्रणाली के निम्नलिखित प्रकारों को देखा जाता है- करों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

प्रत्यक्ष कर वह कर है जो जिस व्यक्ति पर लगाया जाता है, वह व्यक्ति ही उसका भार उठाता है। इस कर को टाला नहीं जा सकता है, न ही इसका भार आंशिक या पूर्ण रूप में किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जब किसी कर का कराघात तथा करापात (Impact and Incidence of Taxation) एक ही व्यक्ति पर पड़ता है, तब यह कर प्रत्यक्ष कर कहलाता है। प्रत्यक्ष कर का सबसे अच्छा उदाहरण आयकर है क्योंकि यह जिस व्यक्ति पर लगाया जाता है, वही व्यक्ति उसकी अदायगी करता है। प्रत्यक्ष कर के अन्य उदाहरण हैं- निगम कर, सम्पत्ति कर, व्यय कर, सम्पदा शुल्क आदि।

अप्रत्यक्ष कर वह कर है जिसे दूसरे व्यक्ति या समूह पर हस्तांतरित किया जा सकता है। जो कर किसी एक व्यक्ति पर लगाया जाए परन्तु उसका भुगतान पूर्ण अथवा आंशिक रूप से दूसरा व्यक्ति करें, वे अप्रत्यक्ष या परोक्ष कर कहलाते हैं। दायित्व तथा कर का मौद्रिक भार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है। व्यापारी, ग्राहकों पर उपलब्ध वस्तुओं या सेवाओं की उच्च कीमत प्रभारित कर उनके द्वारा अदा की जाने वाली करों की लागत वसूल कर सकते हैं। कर स्थानांतरण की अवस्था में वस्तु/सेवा प्रदाता द्वारा करों के भुगतान का उत्तरदायित्व उपभोक्ता पर

हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस प्रकार उत्पाद कर, सीमा शुल्क, आबकारी, बिक्री-कर इत्यादि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

प्रत्यक्ष करों के गुण

प्रत्यक्ष करों के निम्नलिखित गुण हैं-

- **मितव्ययी-** इनकी संग्रह करने की लागत कम होती है क्योंकि सामान्यतः इन्हें निश्चित स्रोत से संग्रहित किया जाता है।
- **निश्चितता-** सरकार को सामान्यतः निश्चित रूप से यह ज्ञात होता है कि कितना कर प्राप्त होगा, क्योंकि करदाताओं को पता होता है कि उन्हें कब, कितना और किस आधार पर करों का भुगतान करना है।
- **समताकारी तथा आर्थिक विषमताएँ कम करना-** कर दरों को प्रगतिशील बनाकर, गरीबों की तुलना में अमीरों पर कर का अधिक बोझ डाला जा सकता है।
- **लोचशीलता-** संकट के समय सरकार कर की दरें बढ़ाकर राजस्व में वृद्धि कर सकती है।
- **नागरिक चेतना-** चूंकि करदाता सरकार को पूंजी उपलब्ध कराते हैं, इसलिए वे इसे लेकर अधिक जागरूक एवं सजग होते हैं कि सरकार इसे किस रूप में, कहाँ और कैसे व्यय कर रही है।

प्रत्यक्ष करों के अवगुण

प्रत्यक्ष करों के कुछ प्रमुख अवगुण इस प्रकार हैं-

- **अलोकप्रिय-** करदाता स्वयं को इससे सीधे प्रभावित महसूस करते हैं क्योंकि इसे दूसरों पर टाला नहीं जा सकता है।
- **कर अपवर्चन** की संभावना अधिक होती है क्योंकि करदाता अपनी आय को छिपा सकते हैं या कम करों का भुगतान करने के लिए अनुचित तरीके अपना सकते हैं।
- **असुविधाजनक-** विस्तृत खातों का रख-रखाव एवं विभिन्न औपचारिकताओं का पालन करने की आवश्यकता, प्रक्रिया को असुविधाजनक बना देती है।
- **कार्य करने एवं बचत करने की इच्छाओं पर प्रतिकूल प्रभाव-** उदाहरण स्वरूप, संपत्ति एवं पैतृक संपत्ति पर कर आरोपित करने से लोग बचत करने के लिए हतोत्साहित होते हैं।
- **स्वेच्छाचारिता-** सरकार द्वारा कर की दरें मनमाने ढंग से तय की जाती हैं।
- **संकीर्ण दायरा-** कर के भुगतान का दायित्व कुछ निश्चित वर्गों पर ही अधिरोपित होता है न कि सम्पूर्ण राष्ट्रवासियों पर।

टोबिन कर

- 1972 में नोबेल पुरस्कार विजेता अमेरिकी अर्थशास्त्री जेम्स टोबिन द्वारा टोबिन कर का प्रस्ताव दिया गया था। उन्होंने एक करेंसी से दूसरी करेंसी में किए जाने वाले सभी भुगतानों पर कर आरोपित करने का सुझाव दिया था। उनका उद्देश्य विदेशी करेंसी-विनिमय के दौरान धन की अत्यधिक और अस्थिरताकारी आवाजाही पर अंकुश लगाना था।
- प्रो. टोबिन का मत था कि विदेशी करेंसियों में होने वाले अधिकांश लेनदेन सट्टा (Speculation) व अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरों में अन्तर से लाभ कमाने की प्रवृत्ति (Arbitrage) से सम्बन्धित होते हैं, ऐसे लेन-देनों पर कर लगाकर पर्याप्त संसाधन सृजित किए जा सकते हैं।

- उन्होंने प्रस्ताव दिया कि टोबिन कर द्वारा एकत्रित राशि का उपयोग विकासशील राष्ट्रों की सहायता हेतु किया जाना चाहिए। इस विचार को सभी शेरों, बांड्स और करेंसी लेन-देन पर कर आरोपित करने के लिए विस्तारित किया जा रहा है।

प्रत्यक्ष करों का आरोपण

भारतीय कर प्रणाली में प्रत्यक्ष कर को निम्न प्रकार से लगाया जाता है-

केन्द्रीय कर (Central Tax)

- संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची में उल्लिखित कर संघीय कर हैं। इस प्रथम सूची को संघीय सूची (Union List) भी कहा जाता है। केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित प्रत्यक्ष कर निम्नलिखित हैं-
- आय कर (Income Tax)
- निगम कर (Corporate Tax)
- व्यय कर (Expenditure Tax)
- सम्पत्ति कर (Wealth Tax)
- पूंजी लाभ कर (Capital Gain Tax)
- लाभांश वितरण कर (Dividend Distribution Tax)
- ब्याज कर (Interest Tax)
- उपहार कर (Gift Tax)
- संपदा कर (Estate Duty)
- फ्रिज बेनिफिट टैक्स (FBT)
- बैंकिंग कैश ट्रांजेक्शन टैक्स (BCTT)
- प्रतिभूति व्यापार कर (Securities Transaction Tax)
- कमोडिटी ट्रांजेक्शन टैक्स (CTT)

विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष कर

भारतीय कर प्रणाली में विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष करों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है-

आय और सम्पत्ति पर कर (Taxes on Income and Wealth)

भारत में आय और सम्पत्ति पर लगाए जाने वाले करों में महत्वपूर्ण कर वे ही हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार लगाती है। यद्यपि राज्य सरकारों को कृषि आय पर कर लगाने का अधिकार है लेकिन उसका राज्यों के कर राजस्व में कोई खास स्थान नहीं है। केन्द्रीय सरकार आय और सम्पत्ति पर निम्नलिखित कर लगाती है- आय कर, निगम कर तथा संपत्ति कर (Wealth Tax)। इनमें केन्द्रीय सरकार के राजस्व की दृष्टि से आय कर और निगम कर ही महत्वपूर्ण हैं।

व्यक्तिगत आय कर (Personal Income Tax)

व्यक्तिगत आय कर सभी व्यक्तियों, संयुक्त हिन्दू परिवारों, गैर-पंजीकृत (Unregistered) फर्मों और व्यक्तियों के अन्य समुदायों की कुल आय पर लगाए जाते हैं। कुल आय में सभी स्रोतों से आय को जोड़कर कुछ ऐसे खर्चों को निकाल दिया जाता है जो आय कमाने के लिए जरूरी होते हैं। इसके अलावा जीवन बीमा प्रीमियम, भविष्य निधि आदि के लिये इसमें छूट दी जाती है।

भारत में अन्य देशों की भांति आय कर प्रगामी (Progressive) है। वर्ष 1974-75 से पहले इस देश में आय कर की सीमांत दर 97.75 प्रतिशत थी जो संसार में सबसे अधिक थी। लेकिन प्रत्यक्ष कर जांच समिति (The Direct Taxes Enquiry Committee) की सिफारिश के आधार पर न केवल इसमें कमी की गई है बल्कि व्यक्तिगत आय के सभी स्तरों के लिए कर की दरें नीची की गई

हैं। चेलैया समिति ने भी आय के सभी स्तरों पर आय कर दरों को नीचा करने की सिफारिश की थी। यह दृष्टिकोण लॉफर प्रभाव (Laffer Effect) से प्रभावित लगता है जिसका अर्थ है कि कराधान की दर में कमी करने से कर राजस्व की प्राप्ति अनुपात से अधिक होती है।

भारत में कृषि आय केन्द्रीय आय कर से मुक्त है। यह कराधान के न्यायशीलता सिद्धान्त के विरुद्ध तो है ही, साथ ही इससे ग्रामीण क्षेत्र में आय का पुनर्वितरण नहीं हो पाता। आय कर का आधार संकीर्ण होने और उसकी प्रकृति बेलोच होने की वजह से वह मुद्रा स्फीति की स्थिति में प्रभावक मांग में वांछित कमी कर पाने में असफल रहा है।

निगम कर (Corporation Tax)

रजिस्टर्ड कंपनियों और निगमों पर निगम कर लगाया गया है। निगम कर लगाने के पीछे तर्क यह है कि कंपनी एक स्वतंत्र इकाई होती है इसलिए इसकी आय पर व्यक्तिगत आय कर से अलग कर लगाया जाना चाहिए। सभी कंपनियों पर निगम कर की समान दर (Flat Rate) होती है लेकिन विभिन्न प्रकार के बट्टे और छूट (Rebates & Exemptions) की व्यवस्था की गई है। बट्टे और छूट देने के लिए कंपनियों को आकार और राष्ट्रीयता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहन देने के लिए 1995 में प्रारंभिक मूल्यहास छूट (Initial Depreciation Allowance) की जगह विकास बट्टे (Development Rebate) का प्रावधान किया गया था। वर्ष 1974 से 1976 के बीच विकास बट्टे को समाप्त कर फिर से प्रारंभिक मूल्य-हास छूट की व्यवस्था की गई, लेकिन 1976-77 के बजट में निवेश छूट (Investment Allowance), जो विकास छूट से मिलती-जुलती चीज है, का प्रावधान किया गया। इसे वर्ष 1990-91 के बजट में वापस ले लिया गया। चेलैया समिति ने सिफारिश की थी कि निगम कर की दर को घटाकर 40 प्रतिशत किया जाना चाहिए। इसे मानते हुए 1994-95 के बजट में निगम कर की दर 40 प्रतिशत कर दी गई थी। वर्ष 1997-98 के बजट में इसे और नीचा कर 35 प्रतिशत कर दिया गया। 2005-06 के बजट में निगम कर की दर घटाकर 30 प्रतिशत कर दी गई। तब से निगम कर की यही दर लागू है। वर्ष 2015-16 का बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री ने निगम कर को अगले कुछ समय में क्रमबद्ध रूप से 30 प्रतिशत से कम करके 25 प्रतिशत तक लाने का संकल्प व्यक्त किया। वर्ष 2017-18 के बजट में वित्त मंत्री ने 50 करोड़ रुपए से कम वार्षिक बिक्री-आय वाले मध्यम व लघु उद्यमों के लिए निगम कर को कम करके 25 प्रतिशत कर दिया। वर्ष 2018-19 के बजट में यह लाभ 250 करोड़ रुपए से कम की बिक्री-आय वाली कंपनियों को देने की घोषणा की गई। इसके परिणामस्वरूप, अब निगम कर देने वाली लगभग 99 प्रतिशत कंपनियां 25 प्रतिशत निगम कर के दायरे में आ गई हैं।

पूँजी पर कर (Taxes on Capital)

- **संपदा शुल्क (Estate Duty)** – संपदा शुल्क भारत में पहली बार 1953 में लगाया गया था। यह कर किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उत्तराधिकारियों को मिलने वाली पूँजी संपत्ति पर लगाया जाता था। मरने वाले व्यक्ति की सारी संपत्ति मिलाकर उसकी जायदाद कहलाती थी और जिन राज्यों ने संपदा शुल्क के केन्द्रीय विधान के बारे में अपनी स्वीकृति दी थी, उन राज्यों में स्थित कृषि भूमि भी जायदाद में शामिल की जाती थी। दूसरे राज्यों में स्थित कृषि भूमि पर संपदा शुल्क नहीं लगाया जाता था, लेकिन अन्य सम्पत्ति पर शुल्क की दर निर्धारित करने के लिए उसे सम्पत्ति का हिस्सा मान लिया जाता था। लोग सम्पदा शुल्क से बचने के लिए मृत्यु से पहले ही उपहार में जायदाद अपने उत्तराधिकारियों को न दे दें, इसलिए सम्पदा शुल्क अधिनियम, 1953 में व्यवस्था की गई थी कि मृत्यु की संभावना को ध्यान

में रखकर दिये गए उपहारों पर संपदा शुल्क लगाया जाएगा। संपदा शुल्क से प्राप्त अधिकांश राजस्व राज्यों के बीच बांटा जाता था। इस बात को ध्यान में रखकर कि इस कर से सरकार को कभी भी ज्यादा राजस्व नहीं मिला, इसे 1 अप्रैल, 1985 से समाप्त कर दिया गया।

- **सम्पत्ति पर कर (Tax on Wealth)** – संपत्ति पर कर केलडोर (Kaldor) की सिफारिश के आधार पर पहली बार मई 1957 में लगाया गया था। यह व्यक्तियों, संयुक्त हिन्दू परिवारों और कंपनियों की कर-मुक्त संपत्ति निकाल देने के बाद बचने वाली निवल संपत्ति (Excess Net Wealth Over Exemptions) पर लगाया जाता था। निवल संपत्ति मालूम करने के लिए संपत्ति के बाजार मूल्य में से दायित्वों को घटा दिया जाता था। इस कर से कृषि भूमि तथा भविष्य निधि और जीवन बीमा की राशि को मुक्त रखा गया था। इस कर को अब समाप्त कर दिया गया है।
- **उपहार कर (Gift Tax)** – उपहार कर पहली बार अप्रैल, 1968 में लगाया गया था। यह सम्पदा शुल्क और वार्षिक संपत्ति कर का पूरक कर है। धर्मार्थ अथवा खैराती संस्थाओं, सरकारी कंपनियों और सार्वजनिक कंपनियों को छोड़कर सभी लोगों के द्वारा दिए जाने वाले उपहारों पर यह कर लगाया गया। इस कर से कुछ खास उपहारों को मुक्त रखा गया। धर्मार्थ संस्थाओं को दिए जाने वाले दान, स्त्री को उनके विवाह के समय उपहार और पत्नी को उपहार एक हद तक उपहार कर से मुक्त रहे हैं। 1 अक्टूबर, 1998 के दिन अथवा इसके बाद दिए जाने वाले उपहार पर कोई उपहार कर नहीं है।

प्रतिभूति लेन-देन कर और लंबी अवधि के पूँजी लाभ कर (Security Transaction Tax and Long Term Capital Gains Tax)

प्रतिभूति लेन-देन कर (Securities Transactions Tax या STT) एक प्रकार का प्रत्यक्ष कर है जो उन सभी प्रतिभूतियों की खरीद पर या बिक्री पर देय है जो भारतीय स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध हैं। STT की दरों की घोषणा केन्द्रीय सरकार अपने बजट में करती है। इस कर को इकट्ठा करना दलाल के लिए कानूनी रूप से आवश्यक है। इस कर को 2005 के बजट में लगाना शुरू किया गया। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि पूँजी लाभ पर कर बचाने की प्रवृत्ति को रोका जा सके। यह कर तब देय होता है जब कोई प्रतिभूति बेची या खरीदी जाती है और इसे लेन-देन के समय प्रतिभूति की कीमत में जोड़ दिया जाता है। विभिन्न प्रकार के लेन देन पर और विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों पर कर की दरें अलग-अलग हैं।

- वर्ष 2018-19 के बजट में दीर्घकालिक पूँजी लाभ कर (Long Term Capital Gains Tax या LTCG Tax) लागू किया है।
- यदि शेयर एक वर्ष से अधिक समय के लिए रखे जाते हैं तो इस अवधि को दीर्घकाल माना जाता है और एक वर्ष से अधिक अवधि तक रखने के बाद यदि शेयर या विशिष्ट म्यूचुअल फंड यूनिट बेचा जाए तो इस बिक्री से होने वाला लाभ दीर्घकालीन पूँजी लाभ माना जाता है।
- इस प्रकार के पूँजी लाभों को अभी तक करों से छूट प्राप्त थी। इसके बुरे प्रभाव को ध्यान में रखते हुए एक लाख रुपये से अधिक दीर्घकालिक पूँजी लाभ पर यह कर लगाया गया और इसकी दर 10 प्रतिशत रखी गयी।
- एक वर्ष तक जो शेयर रखे जाते हैं उनकी बिक्री से होने वाले लाभ अल्पकालीन पूँजी लाभ कहलाता है और उन पर पहले की तरह ही 15 प्रतिशत की दर से कर लगाया जाता है।

अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax)

भारतीय कर प्रणाली के तहत अप्रत्यक्ष करों में निम्न करों को सम्मिलित किया गया है—

केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित अप्रत्यक्ष कर

- सीमा शुल्क (Custom Duty)
- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (Central Excise Duty)
- सेवा कर (Service Tax)
- केन्द्रीय बिक्री कर (Union Sales Tax)

विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष कर

भारतीय कर प्रणाली में विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष करों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है-

सीमा शुल्क (Customs Duties)

अपने संवैधानिक अधिकारों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार आयात और निर्यात शुल्क दोनों ही लगाती है। आयात और निर्यात शुल्क केवल राजस्व के स्रोत नहीं हैं, उनकी सहायता से सरकार विदेशी व्यापार का नियमन भी करती है। यही कारण है कि सरकार बजट में यह जानकारी देती है कि आयात शुल्क विशेष का उद्देश्य संरक्षण है या महज राजस्व जुटाना।

सीमा शुल्क प्रायः दो कार्य सम्पन्न करते हैं। प्रथम, किसी भी अन्य कर की तरह वे सरकार के लिए राजस्व की व्यवस्था करते हैं और द्वितीय, वे देश के विदेशी व्यापार, विशेष रूप से आयात को नियमित करते हैं। अब देश में सरकार आयातों पर परिमाणात्मक नियन्त्रणों को कम कर सीमा शुल्कों की सहायता से आयातों को नियमित करना चाहती है। इस दृष्टि से सीमा शुल्कों के ढांचे में सुधार आवश्यक है। सरकार चेलैया समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखकर सीमा शुल्क व्यवस्था में विवेकीकरण की आवश्यकता को स्वीकार करती है। इसके लिए सभी श्रेणियों में आने वाले आयातों पर एक ही दर से सीमा शुल्क लगाया जाना चाहिए। चेलैया समिति की सिफारिशों को मानकर सरकार ने 1993-94, 1994-95 और 1995-96 के बजटों में सीमा शुल्क दरों में काफी कमी की। 2007-08 के बजट में सीमा शुल्क की उच्चतम दर (Peak Rate) को 12.5 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया। सीमा शुल्क की दरों में कमी से इस स्रोत से सरकार की प्राप्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

उत्पाद शुल्क (Excise Duties)

उत्पादन शुल्क सही अर्थ में वस्तु कर (Commodity Tax) है, क्योंकि यह वस्तु के उत्पादन पर लगाया जाता है और इसका वस्तु की वास्तविक बिक्री से कोई संबंध नहीं होता। भारत में शराब और दूसरी नशीली चीजों जैसे अफीम, भांग, गांजा आदि को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं पर केन्द्र सरकार द्वारा उत्पादन शुल्क लगाया जाता रहा है। 1930 के दशक के मध्य तक उत्पादन शुल्क केवल 5 वस्तुओं पर लगाया जाता था। शुरू में सीमित रूप से संशोधित मूल्य संवर्द्धन कर (Modified Value Added Tax या MODVAT) लगाया गया। 2000-01 के बजट में वित्त मंत्री ने MODVAT के स्थान पर एकल केन्द्रीय मूल्य संवर्धन कर (Central Value Added Tax या CENVAT) को लागू किया।

राज्य सरकारों को शराब, भांग और गांजा आदि नशीली वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क लगाने का अधिकार था। कुछ राज्यों में शराब के उपभोग को कम करने हेतु, शराब पर भारी उत्पादन शुल्क लगाए गये हैं।

सेवा कर (Service Tax)

भारत में सेवा कर पहली बार 1994-95 में तीन सेवाओं-टेलीफोन, साधारण बीमा और शेरर दलाली पर लगाया गया। उसके बाद लगभग हर वर्ष और सेवाओं को इस कर के अधीन लाया गया। इससे एक ओर तो सेवा कर अधीन लोगों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई तथा दूसरी ओर सेवा कर से प्राप्तियों में भी काफी वृद्धि हुई।

केन्द्र सरकार द्वारा सेवा कर लगाने के मुख्य कारण निम्नलिखित थे-

- यद्यपि पिछले दो दशकों में सेवा सेक्टर में तेज़ वृद्धि हुई थी परन्तु सरकार के राजस्व में उसके अनुरूप सेवा सेक्टर का योगदान नहीं बढ़ पाया था।
- कुशलता और न्यायशीलता के आधार पर भी सेवा कर लगाना उचित था। वस्तुओं और सेवाओं पर करों में अन्तर होने से संसाधन आवंटन में कुशलता के कम होने की संभावना होती है। इसका कारण यह है कि संसाधन कर-अधीन सेक्टरों से हटकर उन सेक्टरों में हस्तांतरित होने लगते हैं जो कर-मुक्त हैं। सेवा कर लगाना न्यायसंगत भी है। इसका कारण यह है कि सेवाओं का उपभोग अधिकतर धनी वर्ग के लोग करते हैं।
- यदि सेवा कर न हो तो व्यापारी अपने सेवा-आगतों (Service Inputs) पर VAT का लाभ नहीं ले सकते।

वस्तु व सेवा कर (Goods and Services Tax)

भारत सरकार ने 1 जुलाई, 2017 को वस्तु व सेवा कर (Goods and Services Tax या GST) लागू किया। इस कर को लागू करने से पहले भारत में कई परोक्ष कर थे, जैसे उत्पादन शुल्क, उत्पादन पर अतिरिक्त शुल्क (Additional Duties of Excises), सेवा कर, मूल्य संवर्धन कर, बिक्री कर, विलासिता कर, सीमा शुल्क इत्यादि। अब इन सब करों को (सीमा शुल्क को छोड़कर) एक ही व्यापक कर GST में शामिल कर दिया गया है।

वस्तु व सेवा कर (GST) तब लगाया जाता है जब कोई ग्राहक कोई वस्तु या सेवा खरीदता है। यह एक एकल (Single) तथा व्यापक (Comprehensive) कर है जिसमें बहुत से परोक्ष कर जैसे सेवा कर इत्यादि शामिल किये जाते हैं। GST ऐसा कर है जो पूरे देश में एक ही दर पर सभी वस्तुओं व सेवाओं पर लगाया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि देश में वस्तुओं व सेवाओं पर जो बहुल (Multiple) कर लगाए जाते हैं उन सबके स्थान पर एक ही दर पूरे देश में हो। GST का मूल मंत्र है: “एक कर, एक बाजार, एक राष्ट्र” (One Tax, One Market, One Nation)।

101वां संविधान संशोधन अधिनियम-2016

Artical-246	संसद को CGST व IGST लगाने का अधिकार होगा। राज्यों को SGST लगाने का अधिकार होगा।
Artical- 269	Central Sale Tax (केन्द्रीय बिक्री कर-अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर)
Artical-269A	IGST (i) Interstate Transaction पर लगेगा। (ii) आयात पर Custom Duty + IGST लगेगा। (अंतिम राज्य का, जहां Consume होंगी)। (iii) SEZ से वस्तु/सेवा बाहर निकलने पर IGST लगेगा।
Artical-268A	Service Tax ये Artical अब संविधान से हटा दिया गया है।
Artical-270	वे कर जो केन्द्र लगाता है, वसूलता है तथा केन्द्र व राज्यों में बाँटता है।

GST परिषद्

संविधान के अनुच्छेद 279 के अनुसार GST परिषद् केन्द्र एवं राज्यों का एक संयुक्त मंच है। इस परिषद् में निम्नलिखित सदस्य होंगे।

- केन्द्रीय वित्त मंत्री (अध्यक्ष)।
- केन्द्रीय राज्य मंत्री, राजस्व वित्त के प्रभारी।
- प्रत्येक राज्य का वित्त कराने वाला अथवा राज्य सरकार द्वारा नामित कोई मंत्री।

अनुच्छेद 279 (4) के तहत यह परिषद् GST से संबंधित सभी महत्वपूर्ण मुद्दों पर केन्द्र व राज्य सरकारों के समक्ष अनुशंसाएँ प्रस्तुत करेगी तथा GST के कार्यान्वयन से संबंधित निर्णय लेगी।

वस्तु व सेवा कर नेटवर्क

इसे GST के कार्यान्वयन के लिये केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने संयुक्त रूप से GSTN को एक गैर-लाभकारी एवं गैर-सरकारी कंपनी के रूप में पंजीकृत किया है ताकि केन्द्र एवं राज्य सरकारों तथा करदाताओं समेत अंतः हितधारकों को साझा IT अवसंरचना एवं सेवाएँ प्रदान की जा सकें। GSTN की अधिकृत पूँजी 10 करोड़ रुपये है। प्रारंभ में इसमें केन्द्र व राज्य सरकारों की 29.5% हिस्सेदारी थी व शेष हिस्सेदारी निजी बैंक कंपनियों की थी। परन्तु हाल ही में निजी बैंक कंपनियों की हिस्सेदारी को सरकार द्वारा खरीद लिया गया है। जिससे यह एक सरकारी कंपनी बन गई है।

सक्षम परियोजना

यह केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBEC) (अब केन्द्रीय अप्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBIC) का एक नया अप्रत्यक्ष कर नेटवर्क प्रणाली एकीकरण है। यह GSTN के साथ CBEC की IT प्रणाली को एकीकृत करके GST के कार्यान्वयन में सहायता करेगा। यह व्यापार को सुगम बनाने के लिये भारतीय सीमा शुल्क की सिंगल विंडो इंटरफेस फॉर फैसिलिटेटिंग ट्रेड (SWIFT) के विस्तार में भी सहायता करेगा।

भारत में GST का कार्यान्वयन (Implementation of GST in India)

भारत में लगभग एक दशक के प्रयासों के बाद GST को 1 जुलाई, 2017 से लागू किया गया। इससे पूर्व भारत की परोक्ष कर प्रणाली में केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों द्वारा कई प्रकार के परोक्ष कर कई स्तरों पर लगाए जाते थे, जैसे- उत्पादन शुल्क, चुँगी, केन्द्रीय बिक्री कर, मूल्य संवर्धन कर इत्यादि। अब इन सब करों को GST के अंतर्गत शामिल कर लिया गया है। GST के अंतर्गत चार प्रकार की दरों का प्रावधान किया गया है जो, 5%, 12%, 18% एवं 28% है। आवश्यक वस्तुयें जैसे दूध, दही, लस्सी, शहद, फल व सब्जियाँ, आटा, बेसन, ताजा मीट, मछली, चिकन, अण्डा, ब्रेड, प्रसाद, नमक, बिंदी, सिंदूर, स्टॉप, न्यायिक दस्तावेज, छपी पुस्तकें, समाचार पत्र, चूड़ियाँ एवं हैंडलूम आदि को GST से अलग रखा गया है। मार्च 2019 से अब तक का सर्वाधिक GST संग्रह रिकॉर्ड किया गया है, जो 1,06,577 करोड़ रुपये रहा। इसका कारण मैन्युफैक्चरिंग एवं उपभोग में भारी वृद्धि होना था।

केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले परोक्ष कर

- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क।
- उत्पाद पर शुल्क (औषधीय व शौचालय वस्तुएं)।
- उत्पाद पर अतिरिक्त शुल्क (विशिष्ट महत्त्व की वस्तुएं तथा वस्त्र व वस्त्र उत्पाद)।
- सीमा शुल्क पर अतिरिक्त शुल्क, सीमा शुल्क पर अतिरिक्त विशेष शुल्क।
- सेवा कर।
- वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित उपकर (Cess) तथा अधिभार (Surcharge)।

राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाने वाले परोक्ष कर

- राज्यीय मूल्य संवर्धन कर (State Value Added Tax)।
- केन्द्रीय बिक्री कर।
- खरीद कर।
- विलासिता कर।
- मनोरंजन कर (स्थानीय निकायों द्वारा न लगाए जाने वाले)।
- प्रवेश कर (सभी प्रकार के)।
- विज्ञापनों पर कर।
- लॉटरी, दाँव व जुआ पर कर।
- राज्यों द्वारा लगाए जाने वाले उपकर तथा अधिभार।

राज्य स्तर के परोक्ष करों को GST में शामिल करते समय केन्द्र सरकार ने सभी

राज्यों की सरकारों को यह गारण्टी दी है कि अगले पाँच वर्षों तक राज्यों के राजस्व में 14 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि की जाएगी और नुकसान भरपाई का वित्तियन तम्बाकू, विलासिता-उपभोग की बड़ी कारों, गैसीय पेय पदार्थ जैसी डीमेरिट वस्तुओं (Demerit Goods) पर उपकर लगाकर किया जाएगा।

भारतीय GST पूरे भारत में अधिकतर वस्तुओं व सेवाओं पर लगाया जाने वाला कर है, जिसमें कर लगाने की शक्तियाँ निम्न तरीके से परिभाषित की गई हैं-

- राज्य के भीतर सभी बिक्री पर केन्द्र व राज्य सरकार दोनों ही समान आधार पर एक ही दर पर कर लगाएंगी और इन दोनों बराबर की कर दरों को मिलाकर संपूर्ण GST दर प्राप्त होगी। इन करों को राजकीय वस्तु व सेवा कर (State Goods and Services Tax या SGST) तथा केन्द्रीय वस्तु व सेवा कर (Central Goods and Services Tax या CGST) का नाम दिया गया है।
- एक राज्य से दूसरे राज्य में जो वस्तु या सेवा बिक्री की जाती है उस पर कर केन्द्र सरकार लगाएगी (पूरी GST दर के बराबर)। इस कर को अंतर्राज्यीय वस्तु व सेवा कर (Inter-State Goods and Services Tax or IGST) का नाम दिया गया है। IGST से प्राप्त पूरी राशि का वितरण राज्यों के बीच कर दिया जाएगा। एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच इनपुट क्रेडिट (Input Credit) का निर्बाध प्रवाह होगा।
- GST एक अंतिम गंतव्य आधारित (Destination Based) कर है। अंतिम उत्पाद पर संपूर्ण SGST से आय सामान्यतया उपभोक्ता राज्य (Consuming State) को प्राप्त होगी।

GST के लाभ (Benefits of GST)

सरकार के अनुसार, GST के निम्नलिखित लाभ व परिणाम हैं-

- सभी राज्यों में वस्तुओं व सेवाओं पर एक-समान कर। सभी व्यावसायिक प्रक्रियाओं का पूरे देश में एकीकरण कर दिया गया है (जैसे पंजीकरण, रिटर्न, भुगतान व करों की वापसी (Refund) से संबंधित सूचना प्रौद्योगिकी प्रक्रियाएँ)। इससे पूरे देश में एक उभयनिष्ठ (Common) बाजार का मार्ग प्रशस्त हो गया है। इसके परिणामस्वरूप, अन्तर्राज्यीय व्यापार की अधिकतर रुकावटें व कर इत्यादि समाप्त हो जाएंगे तथा वस्तुओं व सेवाओं का आवागमन सुगम हो सकेगा।
- GST से सहयोगी संघवाद (Co-operative Federalism) को प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि घरेलू परोक्ष करों संबंधी सभी निर्णय केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा मिलकर लिए जाएंगे।
- आर्थिक सर्वेक्षण, 2016-17 के अनुसार, पहले की प्रणाली की तुलना में, GST प्रणाली अधिक सरल है। पहले की प्रणाली में प्रत्येक वस्तु पर केन्द्र द्वारा उत्पादन शुल्क लगाया जाता था और फिर राज्य सरकार द्वारा मूल्य संवर्धन कर। उत्पादन शुल्क की कम-से-कम 8 से 10 दरें होती थीं और राज्य मूल्य संवर्धन करों की 3 से 4 दरें (राज्य मूल्य संवर्धन कर दरें अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग होती थीं)। इस प्रकार, बहुत सारी कर दरें होती थीं। अब ये सब दरें GST की पूरे देश में लागू एक ही कर प्रणाली की 5 दरों में समायोजित हो गई हैं (पूरे देश में एक वस्तु पर एक ही कर)।
- इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाने के लिए चालान (या बिल) का मिलान करना आवश्यक है। इससे कर चोरी को रोकना संभव हो सकेगा तथा लोग कर अनुपालन (Tax Compliance) के लिए प्रेरित होंगे। इसके पूर्व चालान-मिलान केवल राज्य के भीतर मूल्य संवर्धन आदान-प्रदान में जरूरी होता था और न तो उत्पादन शुल्क व सेवा करों के लिए और न ही आयातों के लिए जरूरी होता था। इस प्रकार, नई व्यवस्था में भ्रष्टाचार और चोरी की संभावनाएं कम हैं।

- इनपुट टैक्स क्रेडिट के क्षेत्र का अब काफी विस्तार किया गया है। यह भी सुनिश्चित किया गया है कि उत्पादन से अंतिम उपभोग तक की पूरी आपूर्ति श्रृंखला (Supply Chain) के दौरान कर व्यवस्था की सत्यनिष्ठा बनी रहे। इससे पहले, कुछ परोक्ष करों के लिए (जैसे व्यापारी द्वारा किये गए आयातों पर विशेष अतिरिक्त शुल्क) या केन्द्रीय बिक्री कर पर कोई क्रेडिट उपलब्ध नहीं था।

GST का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of GST)

GST को भारत में लागू करने से शुरू-शुरू में राज्यों के कर प्रशासन व्यवस्था में काफी बाधाएँ व कठिनाइयाँ आईं। इसके बहुत से कारण थे, जैसे स्थानीय करों के समापन से पैदा अस्पष्टता, कम कर दरों पर छूट की मांग, तथा राजस्व को पूर्व-स्तर पर बनाए रखने की उत्सुकता में उठाए गए कदम (उदाहरण के लिए मोटर वाहन कर में वृद्धि कर दी)। “ऐसी भी रिपोर्ट मिली है कि फर्मों की कर-अनुपालन पर प्रशासनिक लागतें बढ़ गई हैं तथा धीमी गति से कर-वापसी (Tax Refund) की प्रक्रिया के चलते, उनके कार्यशील पूँजी (Working Capital) के प्रवाह में बाधाएँ पैदा हुई हैं।

अधिक कर-अनुपालन लागतों का एक कारण यह भी है कि अनेक कर दरों के चलते, आगतों और निर्गतों को मौजूदा लागू कर-दर के अनुसार वर्गीकृत करना पड़ रहा है। सही कर दर लगाने के अतिरिक्त, फर्मों के लिए अब यह भी आवश्यक हो गया है कि वे पूरे इनपुट क्रेडिट का लाभ उठाने के लिए, अपने उत्पादों और आगतों के बीच चालानों (या बिलों) का मिलान करें। इससे अनुपालन लागतों में और वृद्धि हुई है।” बहुत-सी फर्मों को सही टैक्स रिटर्न तैयार कर पाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें से कुछ समस्याओं के निदान के लिए, GST कौंसिल कर दरों को कम करने का तथा समेकन (Consolidation) का प्रयास कर रही है। प्रशासनिक पक्ष पर GST परिषद् ने सुझाव दिया है कि कर वापसी की प्रक्रिया तेज़ की जाए तथा भुगतान जल्द किए जाएँ। लघु व मध्यम व्यवसायियों पर अनुपालन का भार कम करने के दृष्टिकोण से GST कौंसिल ने यह निर्णय लिया है कि 1.50 करोड़ रुपए से कम कुल वार्षिक टर्न ओवर वाली फर्में, मासिक आधार पर रिटर्न भरने के स्थान पर अब तिमाही आधार पर रिटर्न भरेंगी। कौंसिल ने ‘कम्पोजीशन स्कीम’ के लिए बिक्री (या टर्न ओवर) की सीमा को 75 लाख रुपए से बढ़ाकर 1.50 करोड़ रुपए कर दिया है।

केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष व परोक्ष कर (Direct and Indirect Taxes of Central Government)

- वर्ष 1970-71 में प्रत्यक्ष करों में व्यक्तिगत आय कर का हिस्सा 22.3 प्रतिशत (511 करोड़ रुपए में से 114 करोड़ रुपए) था। वर्ष 1990-91 में यह कम होकर यह 18.1 प्रतिशत रह गया परन्तु बाद में इसमें वृद्धि हुई। वर्ष 2016-17 में यह हिस्सा बढ़कर 40.9 प्रतिशत हो गया (5,26,153 करोड़ रुपए में से 2,15,016 करोड़ रुपए)। वर्ष 1970-71 में निगम कर का कुल प्रत्यक्ष कर राजस्व में हिस्सा 72.6 प्रतिशत (511 करोड़ रुपए में से 371 करोड़ रुपए) था जो वर्ष 2021-22 में 5.47 लाख करोड़ रुपये हो गया।
- वर्ष 1970-71 में कुल परोक्ष कर आय 1,940 करोड़ रुपए थी जिसमें उत्पादन शुल्क का हिस्सा 1,369 करोड़ रुपए (70.6 प्रतिशत) था। यह हिस्सा कम होकर 1990-91 में केवल 39.1 प्रतिशत रह गया परन्तु बाद में इसमें वृद्धि हुई। वर्ष 2000-01 में कुल परोक्ष कर राजस्व में उत्पादन शुल्क का हिस्सा 57.2 प्रतिशत तथा वर्ष 2003-04 में 63.6 प्रतिशत तक पहुँच गया। परन्तु उसके बाद इसमें कमी आई। वर्ष 2016-17 में परोक्ष कर राजस्व में उत्पादन शुल्क का हिस्सा 52.2 प्रतिशत था।

- वर्ष 1970-71 में सीमा शुल्क का परोक्ष कर राजस्व में हिस्सा 27.0 प्रतिशत था (1,940 करोड़ रुपए में से 524 करोड़ रुपए)। परोक्ष कर राजस्व में सीमा शुल्क का हिस्सा वर्ष 1990-91 में बढ़कर 57.2 प्रतिशत तथा 1995-96 में 59.9 प्रतिशत हो गया। परन्तु वर्ष 2016-17 में सीमा शुल्क का परोक्ष कर राजस्व में हिस्सा मात्र 23.6 प्रतिशत था (5,62,639 करोड़ रुपए में से 1,32,933 करोड़ रुपए)। हाल की अवधि में सीमा शुल्क के सापेक्षिक हिस्से में कमी होने का कारण शुल्क दरों में की गई तेज़ गिरावट है।
- वर्ष 1970-71 में कुल कर राजस्व में व्यक्तिगत आय कर, निगम कर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क का सापेक्षिक हिस्सा क्रमशः 4.6 प्रतिशत, 15.1 प्रतिशत, 55.8 प्रतिशत तथा 21.4 प्रतिशत था। इस प्रकार कुल कर राजस्व का आधे से अधिक केवल उत्पादन शुल्क से प्राप्त होता था। समय अनुसार इन करों की सापेक्षिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुए हैं। वर्ष 2016-17 में कुल कर राजस्व में ऊपर वर्णित चार करों का सापेक्षिक हिस्सा इस प्रकार था- वैयक्तिक आय कर 19.7 प्रतिशत, निगम कर 28.6 प्रतिशत, उत्पादन शुल्क 27.0 प्रतिशत तथा सीमा शुल्क 12.2 प्रतिशत। इस प्रकार अब निगम कर सबसे महत्वपूर्ण कर है। इसका मुख्य कारण सुधार अवधि में निगम क्षेत्र की आय में होने वाली तेज़ वृद्धि है।
- सरकार ने 1 जुलाई, 2017 से वस्तु व सेवा कर (Goods and Services Tax) या (GST) लागू कर दिया है। अब इसमें केन्द्र सरकार के सभी परोक्ष कर (सीमा शुल्क को छोड़कर) तथा राज्य सरकारों के सभी परोक्ष कर शामिल हो गए हैं। इसलिए प्रत्यक्ष कर 2017-18 से कर राजस्व के स्रोतों के विवेचन में मूलभूत परिवर्तन हो जाएंगे।

भारतीय राज्य कर प्रणाली (Indian State Tax System)

राज्य कर (State Tax)

- ये कर राज्य सरकारों द्वारा ही आरोपित किए जाते हैं और उन्हीं के द्वारा संग्रहित किए जाते हैं।
- संविधान की सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची (राज्य सूची) में राज्य सरकारों के कर अधिकारों का विवरण है। यदि राज्य चाहे तो उनके द्वारा यह अधिकार केन्द्रीय सरकार को हस्तान्तरित किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में केन्द्र द्वारा कर राजस्व संगृहीत करके उस राज्य सरकार को दे दिया जाता है।
- भारत में पश्चिम बंगाल और जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्य सरकारों ने कृषि भूमि पर सम्पदा शुल्क वसूल करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे रखा है।

राज्य कर निम्नलिखित हैं-

लगान या भूमिकर- माल के क्रय-विक्रय पर कर (समाचार-पत्रों के अतिरिक्त), कृषि आय पर कर भूमि तथा भवन पर कर, कृषि भूमि पर सम्पदा शुल्क तथा उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क, मदिरा, नारकोटिक्स आदि पर उत्पादन शुल्क, स्थानीय क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले माल पर कर, खनिज अधिकारों पर कर (संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं के अधीन) विद्युत के उपयोग तथा विक्रय पर कर, गाड़ियों, पशुओं तथा नावों पर कर, सड़क तथा आन्तरिक जलमार्गों द्वारा यात्रियों तथा माल के आवागमन पर कर, विलासिता (मनोरंजन, जुआ आदि) पर कर, पथ कर (Toll Tax), पेशे, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार पर कर, विज्ञापनों पर कर (समाचार-पत्रों, रेडियो व टेलीविजन के विज्ञापनों के अतिरिक्त)।

राज्य सरकार द्वारा आरोपित अप्रत्यक्ष कर

- व्यापार कर / बिक्री कर
- स्टॉप एवं पंजीयन शुल्क
- राज्य उत्पाद शुल्क
- डीजल/पेट्रोल पर बिक्री कर
- वाहनों पर कर
- परिवहन पर कर
- प्रवेश कर (चुंगी कर)
- विज्ञापन कर
- विद्युत पर कर व शुल्क
- शिक्षा उपकर
- सट्टेबाजी पर कर

राज्य सरकार द्वारा आरोपित प्रत्यक्ष कर

- भू-राजस्व
- कृषि आय पर कर
- होटल प्राप्तियों पर कर
- व्यवसाय कर
- अचल सम्पत्तियों पर कर
- रोजगारों पर कर
- पथ कर (Toll Tax)

केन्द्र तथा राज्य के मध्य कर राजस्व का विभाजन

केन्द्र व राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों की व्याख्या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 264 से 293 के मध्य की गई है। इनमें राष्ट्रीय स्तर के विषयों के क्रियाकलापों पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र सरकार को दिया गया है, जबकि राज्य स्तर के विषयों पर कर लगाने का अधिकार राज्यों को प्राप्त है। शेष विषय अथवा ऐसे विषय जिनका उल्लेख संविधान में नहीं है उन पर कर संबंधी निर्णय का अधिकार केन्द्र को प्राप्त है।

केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित करों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं-

- वे कर जो केन्द्र द्वारा आरोपित एवं संग्रहित किए जाते हैं तथा केन्द्र द्वारा स्वयं इसका उपयोग किया जाता है। इनमें सीमा शुल्क (Custom Duty) प्रमुख है।
- वे कर जो केन्द्र द्वारा आरोपित एवं संग्रहित किए जाते हैं तथा इनका कुछ भाग राज्यों को भी दिया जाता है। इसमें मुख्य हैं- (कृषि आय के अतिरिक्त) आय पर कर तथा उत्पाद शुल्क।
- वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, किन्तु इनका संग्रहण (Collection) और उपयोग राज्यों द्वारा ही किया जाता है। इनमें मुख्यतः स्टाम्प शुल्क तथा औषधि एवं प्रसाधनों पर उत्पाद शुल्क शामिल हैं।

कर सुधार संबंधी समितियाँ (Tax Reform Related Committees)

चेलैया समिति

वर्ष 1991 में सरकार ने तत्कालीन कर संरचना (Tax Structure) की समीक्षा करने तथा इस संबंध में उचित सुझाव देने के लिए **प्रोफेसर राजा जे. चेलैया** की अध्यक्षता में एक कर सुधार समिति का गठन किया था। इस समिति ने वर्ष 1993 में अपनी अंतिम रिपोर्ट दी जिसमें निम्नलिखित सुझाव दिये गए थे-

- करों की दर कम की जाए और विभिन्न दरों के बीच का अन्तर भी कम रखा

जाए, ताकि कर वंचना (Tax Evasion) एवं कर परिहार (Tax Avoidance) को कम किया जा सके।

- दोहरे कराधान (Double Taxation) से बचा जाए।
- घरेलू और विदेशी कंपनियों पर लगने वाले निगम कर की दरों के बीच अंतर कम रखा जाए, ताकि विदेशी पूंजी के प्रवाह को प्रोत्साहित किया जा सके।
- पूंजी लाभ कर (Capital Gain Tax) को तार्किक बनाया जाए।
- सम्पत्ति कर को तार्किक बनाया जाए।
- सीमा शुल्क के अंतर्गत विभिन्न प्रशुल्कों (Tariffs) को कम किया जाए तथा छूटों एवं रियायतों (Exemption and Concession) को अधिक तार्किक बनाया जाए।

केलकर समिति

वर्ष 2002 में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में सुधार हेतु सरकार ने विजय केलकर की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। इस समिति ने उसी वर्ष (2002) में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें निम्नलिखित प्रमुख अनुशंसाएँ की गयी थीं-

- आयकर दाताओं से जुड़ी सुविधाओं में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों स्तरों पर वृद्धि की जाए। PAN (Permanent Account Number) का विस्तार किया जाए और सभी नागरिकों को इसके अंतर्गत लाए जाए।
- कर संग्रह को आधुनिक, सरल एवं तार्किक बनाने के लिए सरकार को एक कर सूचना नेटवर्क (Tax Information Network) की स्थापना करनी चाहिए।
- देश छोड़ने के समय कर समाशोधन प्रमाणपत्र (Tax Clearance Certificate) की आवश्यकता को समाप्त कर दिया जाए।
- केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (Central Board of Direct Taxes-CBDT) को पर्याप्त प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की जाए।
- व्यक्तिगत आयकर छूट की सीमा 1 लाख रुपये तक की जाए तथा वरिष्ठ नागरिकों एवं विधवाओं को विशेष छूट प्रदान की जाए।
- आयकर की श्रेणियों (Tax Slabs) को तार्किक बनाया जाए तथा व्यक्तिगत आयकर से अधिभार को समाप्त कर दिया जाए।
- निगम कर को घटाकर घरेलू कंपनियों के लिए 30% तथा विदेशी कंपनियों के लिए 35% कर दिया जाए।
- न्यूनतम वैकल्पिक कर (MAT) को समाप्त कर दिया जाए।
- संयंत्रों (Plants) एवं मशीनरी के मूल्य ह्रास की दर (Rate of Depreciation) में वृद्धि की जाए।

कर सुधार की दिशा में केलकर समिति के लगभग सभी सुझावों को सरकार द्वारा लागू कर दिया गया।

कर प्रणाली से संबंधित शब्दावलि (Terminology Related to Tax System)

कर अंतरण (Tax Devaluation)

संविधान के अनुच्छेद 280 (3) (क) में की गई व्यवस्था के अनुसार, वित्त आयोग के मुख्य कार्यों में से एक मुख्य कार्य करों के शुद्ध आगमों का केन्द्र और राज्यों के बीच वितरण के संबंध में सिफारिश करना है। यह किसी वित्त आयोग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि केन्द्रीय करों के शुद्ध आगमों में राज्य का हिस्सा केन्द्र से राज्यों को किये जाने वाले संसाधन अंतरण का प्रधान माध्यम है।

कर प्रतीपन (Tax Inversion)

यह कर व्यवस्था की एक स्थिति है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कोई कंपनी अपने मुख्यालय (Headquarters) को किसी निम्न कर लगाने वाले देश में तथा अपने परिचालन (Operations) को उच्च कर वाले देशों में विद्यमान रखती है। इस प्रकार कंपनियां अपने कर की देनदारी को निम्न बनाती हैं। ऐसा करना वैधानिक रूप से सही है तथा यह कर अपवंचन (Tax Avoidance) का एक तरीका है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां (MNCs) ऐसा आमतौर पर करती हैं 1970 एवं 1980 के दशकों तक कई अमेरिकी कंपनियों ने अपना मुख्यालय संयुक्त राज्य अमेरिका से बाहर स्थानांतरित किया गया था (विशेषकर इन्होंने इंग्लैंड में अपने मुख्यालयों की स्थापना की थी)। वर्तमान में ऐसे बहुत सारे देश हैं जहाँ विश्व की बड़ी कंपनियों के मुख्यालय स्थित हैं (कर की दर के अपेक्षाकृत निम्न होने के कारण), जैसे- बरमूडा, वर्जिन आइलैंड्स आदि जिन्हें 'कर हैवेन्स' (Tax Havens) देश भी कहा जाता है।

कर रोकना (Withholding Tax)

एक कर, जो कि एक विदेशी पोर्टफोलियो (निवेश) की आय पर लगाया जाता है यह कर विदेशी निवेश को हतोत्साहित करता है जिससे कि घरेलू निवेश प्रोत्साहित हो तथा सरकार के लिए पैसा उगाही हो सकें।

शुल्क (Fee)

नागरिकों को विभिन्न प्रकार की सेवाएँ एवं सुविधाएँ प्रदान करने के बदले सरकार द्वारा नागरिकों से कुछ राशि/ धन लिया जाता है, जिसे शुल्क कर कहा जाता है।

ड्यूटी (Duty)

अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होने के कारण जब कोई कर लिया जाता है तो उसे शुल्क (Duty) कहा जाता है। जैसे- उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क आदि।

किराया

जब किसी सेवा के बदले कोई शुल्क लिया जाता है तो उसे किराया कहा जाता है।

उपकर (Cess)

- कर आधार पर लगाया गया अन्य कर उपकर कहलाता है। जैसे कोयले पर लगाया गया स्वच्छ पर्यावरण उपकर।
- उपकर किसी विशेष उद्देश्य के लिए ही लगाया जाता है।
- सेवा कर पर दो तरह के उपकर लागू हैं परन्तु अधिभार कर लागू नहीं है।
- यह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों करों पर लगाया जा सकता है।
- उपकर का प्रयोग उसी मद में राजस्व बढ़ाने हेतु किया जाता है जहाँ से वह प्राप्त हुआ होता है अर्थात् उपकर की राशि एक निश्चित मद से जुड़ी होती है।

अधिभार (Surcharge)

- कर की दर पर लगाया गया अतिरिक्त कर अधिभार होता है। जैसे सेवा कर पर 0.5% का अधिभार।
- इसके लिए विशेष उद्देश्य का होना आवश्यक नहीं है।
- संसद केवल अनुच्छेद 269 तथा अनुच्छेद 270 से संबंधित करों पर ही अधिभार लगा सकती है।
- आयकर तथा कुछ अन्य करों पर सरकार द्वारा अधिभार लगाया हुआ है। सामान्यतः अधिभार प्रत्यक्ष कर पर लगाया जाता है।
- अधिभार से प्राप्त राजस्व भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) में जाता है।

कराघात (Impact of Tax)

सरकार द्वारा लगाए गए कर का मौद्रिक भार, जिस व्यक्ति पर सबसे पहले पड़ता है अर्थात् सरकार जिससे कर वसूल करती है, उस पर कराघात होता है। यदि वह व्यक्ति कर के मौद्रिक भार को किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल हो जाता है, तो कराघात प्रथम व्यक्ति पर ही रहता है, किन्तु करापात (Incidence) उस व्यक्ति पर रहता है, जो अन्तिम रूप से कर के मौद्रिक भार को वहन करता है।

उदाहरण- GST कर प्रणाली।

करापात (Incidence of Tax)

जैसाकि ऊपर बताया गया है कि यह आवश्यक नहीं कि सरकार द्वारा कोई कर जिस व्यक्ति पर लगाया गया है, वही कर के भार को अन्तिम रूप से वहन करे। यदि प्रथम करदाता कर की धन राशि को किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल हो जाता है, तो करापात उस व्यक्ति पर माना जाता है, जो कर के भार को अन्तिम रूप से वहन करता है जैसे- उत्पादन शुल्क सरकार द्वारा उत्पादक से वसूल किया जाता है, किन्तु उत्पादक कर की राशि को वस्तु के मूल्य में शामिल कर देता है, जिससे करापात उपभोक्ता पर आता है।

प्रत्यक्ष कर व्यवस्था में सुधार के लिए विगत कुछ वर्षों में उठाए गए कदम

- **व्यक्तिगत आयकर-** वित्त अधिनियम, 2020 के जरिये व्यक्तियों और सहकारी समितियों को रियायती दरों पर आयकर का भुगतान करने का विकल्प प्रदान किया गया है, बशर्ते कि वे निर्दिष्ट छूट और प्रोत्साहन का लाभ न उठाएँ।
- **लाभांश वितरण कर (Dividend Distribution Tax : DDT) का उन्मूलन-** भारतीय इक्विटी बाजार के आकर्षण को बढ़ाने व निवेशकों के एक बड़े वर्ग को राहत प्रदान करने के लिए, कंपनियों को 1-4-2020 से DDT का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है।
- **'विवाद से विश्वास' योजना-** इसका उद्देश्य लंबित कर विवादों को समाधान प्रदान करना है, जिससे न केवल समय पर राजस्व सृजन होने से सरकार बल्कि मुकदमेबाजी की बढ़ती लागत के कम होने से करदाता भी लाभान्वित होंगे।
- **स्टार्टअप के लिए अनुपालन मानदंडों का सरलीकरण-** स्टार्टअप को समस्याओं से छुटकारा दिलाने की कोशिश की गयी है, जिसमें मूल्यांकन प्रक्रिया का सरलीकरण, एंजेल टैक्स से मुक्ति, समर्पित स्टार्ट अप प्रकोष्ठ (StartupCell) का गठन आदि सम्मिलित हैं।
- **अपील दायर करने के लिए मौद्रिक सीमा में वृद्धि-** करदाता की शिकायतों/ मुकदमों को प्रभावी रूप से कम करने के लिए अपील दायर करने की मौद्रिक सीमाओं में वृद्धि की गयी है। नवीन व्यवस्था के अनुसार-
 - **आयकर अपील अधिकरण (Income Tax Appellate Tribunal)** के समक्ष अपील दायर करने के लिए मौद्रिक सीमा 20 लाख रुपये से बढ़ाकर 50 लाख रुपये कर दी गयी है।
 - **उच्च न्यायालय के समक्ष** अपील दायर करने के लिए यह सीमा 50 लाख रुपये से बढ़ाकर 1 करोड़ रुपये कर दी गयी है।
 - **उच्चतम न्यायालय के समक्ष** अपील करने के लिए 1 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

प्रत्यक्ष कर व्यवस्था में सुधार हेतु हालिया प्रयास (Recent Efforts to Reform the Direct Taxes Arrangements)

पारदर्शी कराधान - 'ईमानदार का सम्मान' प्लेटफॉर्म (Transport Taxation - 'Honouring The Honest' Platform)

- इसका उद्देश्य कर अनुपालन को सरल बनाना तथा ईमानदार करदाताओं को पुरस्कृत करना है।
- इस पोर्टल की मुख्य विशेषताएँ फेसलेस मूल्यांकन (Faceless

Assessment), फेसलेस अपील (Faceless Appeal) एवं करदाता चार्टर (Taxpayers Charter) हैं।

- **फेसलेस मूल्यांकन**— इसे करदाता और आयकर अधिकारियों के मध्य प्रत्यक्ष संपर्क को समाप्त करने हेतु आरंभ किया गया है।
- इस प्रणाली के अंतर्गत, किसी करदाता का चयन केवल डेटा एनालिटिक्स एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का उपयोग करने वाले कंप्यूटर के माध्यम से ही किया जायेगा।
- उल्लेखनीय है कि, इसी तर्ज पर, केंद्रीय अप्रत्यक्ष एवं सीमा शुल्क बोर्ड ने 'तुरंत कस्टम्स' नामक एक पहल के तहत कंसाइनमेंट्स (माल प्रेषण) के फेसलेस मूल्यांकन का कार्य आरंभ किया है।
- **फेसलेस अपील**— इसके तहत अपील यादृच्छिक रूप से देश में किसी भी कर अधिकारी को आवंटित की जाएगी तथा अपील पर निर्णय लेने वाले अधिकारी की पहचान को गोपनीय रखा जायेगा।
- **करदाता चार्टर**— यह आयकर अधिकारियों एवं करदाताओं, दोनों के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को रेखांकित करता है। आयकर विभाग द्वारा समय पर सेवाएँ सुनिश्चित करने से नागरिकों के सशक्तीकरण की संभावनाओं में वृद्धि होगी।
- यह आयकर दाताओं की निजता एवं गोपनीयता के संरक्षण में सहायता प्रदान करेगा।
- यह आयकर कार्यालयों के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र को समाप्त कर भ्रष्ट प्रथाओं को समाप्त करने का प्रयत्न करता है।

बजट (Budget)

बजट एक वित्तीय योजना है जो अतीत में वित्तीय अनुभव का स्तर प्रस्तुत करता है, वर्तमान की योजना बनाना तथा भविष्य के एक निश्चित काल के लिए इसे आगे बढ़ाना है।

किसी भी अर्थव्यवस्था में सरकार के आगामी वर्ष के आय और व्यय के ब्यौरे को 'बजट' कहते हैं, लेकिन इस शब्द का उपयोग निजी कंपनी, कॉर्पोरेशन इत्यादि के लिए भी किया जा सकता है।

बजट में सरकार की गत वर्ष की आय-व्यय की स्थिति, आगामी वर्ष के आर्थिक सामाजिक कार्यक्रम एवं उन पर व्यय, प्रस्तावित कर ढाँचा जिसमें आय को बढ़ाने एवं व्यय को घटाने से संबंधित प्रस्तावों का विवरण सम्मिलित होता है। बजट का अभिप्राय सरकार के वार्षिक आय-व्यय के उन लिखित दस्तावेजों से है, जिसे कार्यपालिका द्वारा तैयार किया जाता है। जिसके आधार पर सरकार को वार्षिक एवं दीर्घकालिक आर्थिक नीतियाँ एवं कल्याणकारी योजनाओं को बनाने एवं क्रियान्वयन करने में सहायता प्राप्त होती है।

भारत में इस ब्यौरे का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 112 में किया गया है, इसमें बजट शब्द के स्थान पर 'वार्षिक वित्तीय विवरण' शब्द का प्रयोग किया गया है। केंद्र तथा राज्य दोनों के लिए बजट का प्रावधान किया गया है।

भारत में बजट का इतिहास (History of Budget in India)

भारत में सबसे पहले ब्रिटिश शासन काल में 1860 में बजट प्रस्तुत किया गया था। बजट बनाने और पेश करने का श्रेय फाइनेंस मिनिस्टर जेम्स विल्सन को जाता है जिन्होंने 18 फरवरी को वायसराय की परिषद में पहली बार बजट पेश किया था। भारत में 1 अप्रैल से 31 मार्च तक चलने वाला बजट सन्, 1867 से शुरू किया गया था। आजादी से पहले अंतरिम सरकार का बजट 'ऑल इंडिया मुस्लिम लीग' के लियाकत अली खॉं ने 9 अक्टूबर, 1946 से लेकर 14 अगस्त, 1947 तक के लिए पेश किया था। स्वतंत्र भारत का पहला बजट 26 नवंबर, 1947 को आर. के. षण्मुख चेट्टी ने प्रस्तुत किया था। बजट को सार्वजनिक

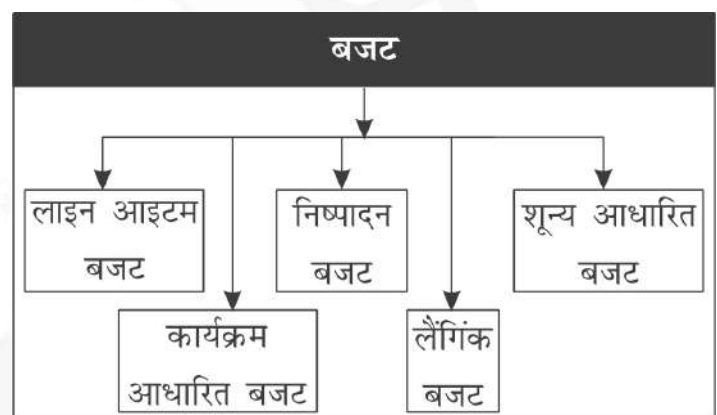
करने से पहले उसे बेहद गोपनीय रखा जाता है।

बजट का कार्य (Functions of Budget)

बजट के कार्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- यह विधायिका के प्रति कार्यपालिका की वित्तीय एवं न्यायिक जवाबदेही सुनिश्चित करता है।
- प्रशासनिक पद सोपान तंत्र में यह वरिष्ठों के प्रति अधीनस्थों की जवाबदेही को सुनिश्चित करता है।
- यह सामाजिक और आर्थिक नीति का उपकरण है जिसका कार्य निर्धारण, वितरण और स्थिरीकरण है।
- यह सरकारी कार्यों और सेवाओं के कुशल कार्यान्वयन का रास्ता साफ करता है।
- यह सरकारी विभागों की विभिन्न गतिविधियों को एक योजना के अधीन लाकर उनको एकीकृत करता है और इस प्रकार प्रशासनिक प्रबंधन एवं समन्वय को आसान बनाता है।

बजट के प्रकार (Types of Budget)



अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप के बदलते आयाम, उद्देश्य व परिस्थितियों आदि के फलस्वरूप बजट की प्रक्रिया और स्वरूप में समय-समय पर परिवर्तन किए जाते रहे हैं। इस आधार पर प्रचलन में आए बजट के विभिन्न स्वरूपों का विवरण निम्नलिखित हैं—

लाइन आइटम बजट (Line Item Budget)

इसको परंपरागत या रुढ़िगत बजट निर्माण भी कहा जाता है। बजटिंग की इस प्रणाली का विकास 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुआ। इसमें खर्चों के उद्देश्य को सामने लाए बिना उनकी मदों पर जोर दिया जाता है और बजट की कल्पना वित्तीय अर्थों में की जाती है अर्थात् बजट को मद-क्रम वर्गीकरण के अर्थों में प्रस्तुत किया जाता है। उस प्रणाली के अंतर्गत विधायिका द्वारा मद विशेष पर स्वीकृत धनराशि का उपयोग इस मद पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार की बजटिंग का उद्देश्य विधायिका द्वारा कार्यपालिका को स्वीकृत धन की बर्बादी, आय-व्यय के दुरुपयोग को रोकना है। बजटिंग की यह प्रणाली सार्वजनिक व्ययों पर अधिकतम नियंत्रण का मार्ग प्रस्तुत करती है।

वास्तव में मद-क्रम (Line & Items) बजटिंग प्रणाली का एकमात्र उद्देश्य धन की जवाबदेही अर्थात् खर्चों की वैधानिकता तथा नियमितता को सुनिश्चित करना रहा है। इस प्रणाली को 'वर्धनशील बजटिंग' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें धन का आवंटन विद्यमान आधार की पहचान करने के बाद वर्धनशील (Incremental) आधार पर किया जाता है।

निष्पादन बजट (Performance Budget)

इस प्रणाली का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ और पहले इसे क्रियाशील (Functional) या कार्यकलाप (Activity) बजटिंग कहा जाता था। 'निष्पादन बजट' शब्द को पहले हूवर आयोग (1949) ने गढ़ा था। इसने संयुक्त राज्य अमेरिका में निष्पादन बजट अपनाने की सिफारिश की थी जिससे कि बजट निर्माण के प्रति कुशल प्रबंधन का दृष्टिकोण बनाया जा सके। तदनुसार राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा इसको 1950 में लागू किया गया।

मद-क्रम बजटिंग के विपरीत निष्पादन बजटिंग प्रणाली खर्चों के बजाए खर्च के उद्देश्य पर जोर देती है। यह बजट को कार्यकलापों, कार्यक्रमों, क्रियाशीलताओं और परियोजनाओं के अर्थों में प्रस्तुत करती है।

यह प्रत्येक कार्यक्रम और गतिविधि के वास्तविक (निष्पादन या उत्पादन) और वित्तीय (निवेश) पक्षों के बीच संबंध स्थापित करती है। अतः यह बजट के क्रियाशील वर्गीकरण को आवश्यक कर देती है। भारत में निष्पादन बजट की सिफारिश सर्वप्रथम संसदीय आकलन समिति ने 1950 में किया था।

भारत में बजट बनाने की इस प्रणाली की उपयुक्तता और व्यवहार्यता का अध्ययन करने के लिए सरकार ने अमेरिकी विशेषज्ञ फ्रैंक डब्ल्यू. क्राउस को आमंत्रित किया। अंततः निष्पादन बजटिंग को प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश पर 1958 में लागू किया गया।

आयोग के अनुसार निष्पादन बजट प्रणाली के लाभ/ उद्देश्य निम्न हैं-

- कार्यपालिका संसद से जिन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के लिए धन की माँग करती है, उनको यह अधिक स्पष्टता से सामने लाती है।
- यह कार्यक्रमों और उपलब्धियों को वित्तीय और वास्तविक अर्थों में सामने लाती है।
- संसद इस बजट को बेहतर ढंग से समझ सकती है और उसकी बेहतर समीक्षा कर सकती है।
- इससे बजट निरूपण में सुधार आता है।
- इससे सरकार के सभी स्तरों पर निर्णय निर्माण प्रक्रिया आसान हो जाती है।
- यह वित्तीय कार्यकलापों के प्रबंध नियंत्रण के अतिरिक्त उपकरण उपलब्ध कराता है।
- यह निष्पादन लेखा-परीक्षा को अधिक उद्देश्यपूर्ण और कारगर बनाता है।

1968 में निष्पादन बजट को भारत सरकार के चार मंत्रालयों में शुरू किया गया था। बाद में 1977-78 में इसका विस्तार 32 विकासात्मक विभागों में कर दिया गया।

कार्यक्रम आधारित बजट (Programme Based Budget)

निष्पादन बजट की तरह ही कार्यक्रम बजट अथवा, नियोजन कार्यक्रम बजट पद्धति (PPBS) की उत्पत्ति भी संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। इसकी सूत्रपात 1965 में राष्ट्रपति जॉनसन ने किया। परंतु 1971 में इसे छोड़ दिया गया। बजट की इस प्रणाली में नियोजन कार्यक्रम निर्माण और बजट के कार्यों को एक कर दिया जाता है।

के. एल. हांडा के शब्दों में- "कार्यक्रम बजट या पीपीबीएस बजट के नियोजक पक्ष पर बल देते हैं, जिसका उद्देश्य अनेक उपलब्ध कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करना तथा बजट में धन का आवंटन करते समय आर्थिक अर्थों में सर्वश्रेष्ठ को चुनना है। इसके अनुसार बजट प्रतिद्वंद्वी दावों के बीच आवंटन करने की प्रक्रिया है, जो नियोजन के प्रासंगिक उपायों का प्रयोग करके चलाई जाती है।"

जेंडर बजट (Gender Budget)

बजट का वह रूप 'जेंडर बजट' कहलाता है, जब बजट को लिंग विशेष के

आधार पर तैयार किया जाता है या बजट में लिंग विशेष के लिए अलग से बजटीय प्रावधान किया गया होता है। सामान्यतः बजट में महिलाओं के लिए जब अलग से विशेष बजटीय रणनीति सृजित की जाती है तो इसे 'जेंडर बजट' कहा जाता है। जेंडर बजट के माध्यम से सरकार द्वारा महिलाओं के विकास, कल्याण तथा सशक्तिकरण से संबंधित योजनाओं तथा कार्यक्रमों के लिए प्रत्येक वर्ष बजट में एक निश्चित धनराशि की व्यवस्था सुनिश्चित करने का प्रावधान किया जाता है। भारत में महिला अधिकारिता तथा महिला सशक्तिकरण की दिशा में बजट की केंद्रीय भूमिका स्वीकार करते हुए सरकार ने जेंडर बजट की अवधारणा को आत्मसात् किया है। भारत ने जेंडर बजट के माध्यम से देश में लैंगिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया है।

आवश्यकता क्यों?

कोई भी बजट लिंग तटस्थ (Gender Neutral) होता है अर्थात् यह किसी विशेष जेंडर को ध्यान में रखकर नहीं बनाया जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि कोई भी बजट क्रियान्वयन के समय लोगों को लाभ देने के रूप में जेंडर न्यूट्रल रहेगा। भारत इसका एक बड़ा उदाहरण है। भारत में सामाजिक और अन्य कारणों से बजट का लाभ महिलाओं को उचित ढंग से नहीं मिल पाता है। ऐसी स्थिति में यह जरूरी हो जाता है कि महिलाओं को ध्यान में रखते हुए बजट में अलग से प्रावधान किया जाय।

- पुरुषों और महिलाओं की आवश्यकताओं तथा प्राथमिकताओं पर समान रूप से विचार करना।
- बजट की तैयारी, कार्यान्वयन, लेखा परीक्षा आदि जैसे सभी स्तरों पर लैंगिक विश्लेषण के समावेशन को प्रोत्साहित करना तथा लैंगिक समानता के उद्देश्यों पर बजट के प्रभाव का आकलन करना।
- आर्थिक और सामाजिक नीतियों के परिणामों के मध्य अंतर संबंधों में वृद्धि करना।

भारत में Gender Budget Statement को निम्न दो भागों में बाँटा जाता है-

- ऐसे खर्च जो 100% महिलाओं से जुड़े हुए होते हैं।
- ऐसे खर्च जिनका कम से कम 30% भाग महिलाओं से जुड़ा हुआ होता है।

जेंडर बजटिंग में चुनौतियाँ और इसे सीमित करने वाले कारक-

जेंडर बजटिंग के कार्यान्वयन और इन प्रक्रियाओं से प्राप्त विश्लेषण को स्वीकार करने में कई चुनौतियाँ हैं-

- लिंग असंबद्ध आंकड़ों का एकत्रीकरण-** कुछ लिंग असंबद्ध हैं, परंतु महिलाओं और पुरुषों तथा लड़कों और लड़कियों के मध्य उपस्थित असमानताओं पर प्रकाश डालने के लिए अधिक जानकारी एकत्रित करने की आवश्यकता है। यह जानकारी विशेष रूप से संसाधनों तक पहुँच तथा अवसरों व सुरक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण है तथा इसके बिना बजट प्रक्रिया में लिंग परिप्रेक्ष्य समाहित करना संभव नहीं है।
- नीति और बजट परिवर्तनों के साथ विश्लेषण को संबद्ध करने हेतु सीमित साक्ष्य उपलब्ध हैं** क्योंकि वैश्विक रूप में भी जेंडर बजटिंग पहल अभी विश्लेषण के चरण में ही है।
- संसदीय हस्तक्षेप की सीमा-** विधान मंडल ने लैंगिक विशेषज्ञों (Gender Experts) और सिविल सोसाइटी के साथ मिलकर विभिन्न देशों में महत्वपूर्ण समर्थनकारी भूमिका निभाई है। परंतु बजट प्रक्रिया में विधायिका की भूमिका प्रायः बजटीय अनुमोदन और पर्यवेक्षण तक ही सीमित रहती है। यह बजट निर्माण एवं इसके निष्पादन में सम्मिलित नहीं होती है।
- जेंडर बजटिंग को संस्थागत बनाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति-** जेंडर बजटिंग के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, पर्याप्त संसाधन और क्षमता की

आवश्यकता होती है, जो पारंपरिक बजट निर्माण और नीति प्रक्रियाओं को लंबे समय से चले आ रहे पूर्वाग्रहों से मुक्त कर सके क्योंकि इसमें महिलाएं और बालिकाएँ नुकसान की स्थिति में रहती हैं।

शून्य आधारित बजट (Zero-Based Budget)

इसका भी जन्म और विकास अमेरिका में हुआ। इसका निर्माण निजी उद्योग के एक प्रबंधक पीटर ए. पियर ने 1969 में किया। अमेरिका में इसको राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने 1978 में लागू किया। निष्पादन बजटिंग की तरह शून्य आधारित बजट भी बजटिंग की एक तर्कसंगत पद्धति है। इसके अंतर्गत बजट में सम्मिलित किए जाने से पहले प्रत्येक कार्यक्रम/योजना की आलोचनात्मक समीक्षा की जानी चाहिए और शून्य से प्रारंभ कर संपूर्णतया दोबारा सही सिद्ध करना चाहिए। शून्य आधारित बजट आवश्यक सिद्धांतों के आधार पर कार्य करता है। कुछ विशेषज्ञ इसे अन्य रूप में भी परिभाषित करते हैं। किसी भी व्यय को करने के पूर्व निम्न प्रश्नों से वस्तुपरक उत्तर प्राप्त किये जाने चाहिए:

- हमें क्या खर्च करना चाहिए?
- हमें कितना खर्च करना चाहिए?
- हमें कहां खर्च करना चाहिए?

अतः शून्य आधारित बजटिंग में बजटिंग के वर्धनशील दृष्टिकोण का (जो हालिया खर्च के आकलन से शुरू होता है) अनुसरण करने के स्थान पर सभी योजनाओं की शुरू से (अर्थात् शून्य से) पुनःपरीक्षण करना शामिल है। के. एल. हांडा के शब्दों में, शून्य आधारित बजट प्रणाली की मूल विशिष्टता यह है कि अपना बजट तैयार करते समय विभागों को किसी चीज को पहले मानकर नहीं चलना चाहिए और इसलिए उनको कोरे कागज से शुरूआत करनी चाहिए। आगामी वर्ष के बजट निर्माण की प्रक्रिया शून्य से शुरू होनी चाहिए न कि मौजूदा बजट को आधार या प्रारंभिक बिंदु के रूप में मानकर।

शून्य आधारित बजट पद्धति के लाभ इस प्रकार हैं-

- यह निचली वरीयता के कार्यक्रमों को हटाती या न्यूनतम कर देती है।
- यह कार्यक्रम की प्रभावशीलता को एकाएक बढ़ा देती है।
- इसमें अधिक प्रभावी कार्यक्रमों को अधिक धन मिलता है।
- इससे कर वृद्धि में कमी आती है।
- यह लागत प्रभाविता (Cost Effectiveness) और लागत लाभ (Cost Benefits) के अर्थों में योजनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा को आसान बनाती है।
- इससे वर्ष के दौरान बजट समायोजन शीघ्र होता है।
- यह पर्याप्त संसाधनों का सुसंगत आवंटन करता है।
- बजट की तैयारी में यह संबद्ध कार्मिकों की भागीदारी बढ़ाता है।
- भारत में शून्य आधारित बजटिंग को सबसे पहले 1983 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में और तत्पश्चात् 1986-87 के वित्त वर्ष के दौरान सभी मंत्रालयों में लागू किया गया था।

उपरोक्त सभी लाभों (Benefits) के साथ शून्य आधारित बजट की कुछ सीमाएं (Limitations) भी हैं, जिस कारण इसकी इच्छित सफलता में बाधाएं भी पहुँचती हैं। इन सीमाओं के माध्यम से शून्य आधारित बजट की आलोचना भी की जाती है। शून्य आधारित बजट की सीमाओं को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं-

- कुछ ऐसे व्यय हैं, जो सरकार/संसद की समीक्षा/जांच (Scrutiny) के दायरे के बाहर हैं [जैसे कि भारत में 'प्रभारित व्यय' (Charged Expenditure)], जिन्हें शून्य आधारित बजट द्वारा किफायती बनाना संभव नहीं है।
- कुछ ऐसी लोक सेवाएं हैं, जिनका 'लागत-लाभ विश्लेषण' संभव नहीं है,

यथा-प्रतिरक्षा, कानून व्यवस्था, विदेशी संबंध इत्यादि।

- संवीक्षा (Scrutiny) एक विषयपरक (Subjective) विषय है जिसके कारण इसमें पूर्वाग्रह (Bias) की स्थिति बन सकती है। अगर संवीक्षा में पूर्ण उपयोगितावादी (Utilitarian) सोच है तो लोक नीति एवं दीर्घावधिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
- इसके अंतर्गत वित्त मंत्रालय की शक्तियों में अप्रत्याशित वृद्धि हो सकती है तथा वह अन्य मंत्रालयों पर तानाशाही कर सकता है।
- नौकरशाही (Bureaucracy) द्वारा इसे पसंद नहीं किया जाता है, क्योंकि इसके अंतर्गत इसकी प्रत्येक गतिविधि के सूक्ष्म संवीक्षा की व्यवस्था होती है।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी शून्य आधारित बजट की प्रक्रिया में मजबूत तर्क है ताकि इसे बजटीय सुधार प्रक्रिया का दीर्घावधिक लक्ष्य बनाया जा सके। इसकी मूल अवधारणा वास्तव में व्यय के लाभ का महत्तमीकरण करना है, जो अपने आप में इसे एक विशिष्ट (Exceptional) बजटीय प्रक्रिया प्रमाणित करता है। जहां तक संगठित क्षेत्र की बात है तो वहाँ यह काफी कारगर व्यवस्था साबित हुई है। भारत में इसकी शुरूआत वित्त वर्ष 1997-98 से मानी जाती है। वैसे इसके लागू होने के बाद देश में 'आउटकम' एवं 'परफॉर्मंस' बजट की भी शुरूआत की गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों में शून्य आधारित बजट अपनाने से अच्छी सफलता प्राप्त हुई है।

बजट निर्माण से जुड़े मुख्य सिद्धांत

बजट तैयार करने में कुछ सिद्धांतों का पालन किया जाता है जो कि निम्न हैं-

वार्षिकता का सिद्धांत (Principle of Annuality)

इसका तात्पर्य यह है कि हर साल वार्षिक आधार पर एक बजट तैयार किया जाता है। एक वर्ष को बजट के लिए आदर्श अवधि माना जाता है, क्योंकि यह एक इष्टतम अवधि है, जिसके लिए विधायिका कार्यपालिका को वित्तीय अधिकार दे सकती है।

चूक का सिद्धांत (Principle of Lapse)

एक वर्ष में जो पैसा खर्च नहीं हो सका उसे सरकार को तब तक खर्च करने में सक्षम नहीं होना चाहिए, जब तक कि उसे अगले वर्ष के बजट में मंजूर नहीं किया जाता है। इसे चूक का सिद्धांत (Principle of Lapse) कहते हैं, जो वित्तीय नियंत्रण का एक प्रभावशाली उपकरण है।

राजकोषीय अनुशासन (Fiscal Discipline)

यह एक अर्थव्यवस्था में सरकार के राजस्व और व्यय के बीच एक आदर्श संतुलन को प्रदर्शित करता है। राजकोषीय जवाबदेही एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 (एफ आरबी.एम.) के कामकाज की समीक्षा एन.के. सिंह समिति की प्रमुख अनुशंसाओं में से एक है।

समग्रता (Inclusiveness)

बजट व्यापक तथा विविध बजट अनुमानों के समावेशन पर आधारित होना चाहिए। एक समावेशी बजट में सभी सरकारी प्राप्तियां और व्यय शामिल होते हैं अर्थात् बजट को समग्र होना चाहिए जिससे विभिन्न नीति विकल्पों का परस्पर मूल्यांकन करना आसान हो जाता है।

शुद्धता (Accuracy)

बजट के आंकड़े अनिवार्य रूप से आगामी वर्ष में उत्पन्न होने वाली धन राशि और उसके व्यय का अनुमान है। इन अनुमानों का सटीक होना अत्यावश्यक है।

पारदर्शिता एवं जवाबदेही (Transparency & Accountability)

संयुक्त राष्ट्र द्वारा सुशासन के आठ बुनियादी संकेतों में से दो संकेतक बजट की पारदर्शिता और जवाबदेही हैं। बजट पारदर्शिता का तात्पर्य है कि सरकार बजट के सभी आँकड़े देती है। स्पष्टता और पारदर्शिता के लिए बजट के राजस्व और पूँजीगत व्यय को अलग-अलग रखा जाता है। बजट में राजस्वगत और पूँजीगत मदों (Items) को अलग-अलग दिखाया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो इस बात की संभावना बनी रहेगी कि राजस्व खर्चों की भरपाई पूँजीगत आय से कर दी जाए। यदि ऐसा होता है तो यह अनुचित माना जाता है।

गोल्डन रूल (Golden Rule)

यह अवधारणा कि सरकार को सिर्फ निवेश करने के लिए (भारत में 'पूँजीगत व्यय') ही ऋण लेना चाहिए अपने चालू व्यय (भारत में 'राजस्व व्यय') की पूर्ति के लिए नहीं, यह लोक नीति का 'स्वर्ण नियम' (Golden Rule) कहलाता है। यह नियम वास्तव में काफी अच्छा और तार्किक है बशर्ते कि निवेश की परिभाषा ईमानदारी से की जाए एवं उसमें दक्षता शामिल हो तथा यह निजी क्षेत्रीय निवेश के लिए अर्थव्यवस्था में धन की कमी नहीं करें (अर्थात् सरकारी ऋण क्राउडिंग आउट का कारण न बने)।

संतुलित बजट (Balance Budget)

बजट संतुलित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, सरकार के अनुमानित खर्च अनुमानित प्राप्तियों के बराबर होने चाहिए। असंतुलित बजट दो प्रकार के होते हैं, घाटे का बजट और अधिशेष का बजट। घाटे के बजट में सरकार के अनुमानित खर्च अनुमानित प्राप्तियों से अधिक हो जाते हैं। इसके कारण घाटा वित्तीयन या हीनार्थ प्रबंधन (Deficit Financing) की आवश्यकता पड़ती है, जिसे पूरा करने के लिए सरकार केंद्रीय बैंक आदि के माध्यम से बाजार से उधार लेती है। इसका परिणाम यह होता है कि निजी क्षेत्र के विकास के लिए उपलब्ध वित्तीय संसाधनों में कमी आ जाती है। यही कारण है कि सरकारी घाटे निजीकरण के प्रति विरोधाभासी माने जाते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में ही घाटे के बजट को उचित माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, मंदी के समय घाटे का बजट बनाया जा सकता है। इसे क्षतिपूर्ति राजकोषीय नीति (Compensatory Fiscal Policy) कहते हैं।

इसी प्रकार, उच्च मुद्रास्फीति से निपटने के लिए अधिशेष का बजट बनाया जा सकता है। सामान्य परिस्थितियों में अधिशेष का बजट मंदी की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, अतः जरूरी है कि बजट संतुलित हो। इसके अलावा भी बजट में कुछ अन्य विशेषताएं भी होनी चाहिए जो निम्न हैं-

- बजट में विभिन्न मदों को सकल (Gross) प्रारूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ना कि निवल (Net) प्रारूप में। यदि बजटीय मदों को निवल प्रारूप में दिखाया जाता है तो मौलिक आँकड़े सामने नहीं आ पायेंगे, इससे संसदीय नियंत्रण कमजोर हो जाता है।
- बजट के प्रस्तुतीकरण का स्वरूप लेखांकन की प्रस्तुति के स्वरूप से मिलता हुआ होना चाहिए अन्यथा लेखांकन में कठिनाई होगी, अतः अंकेक्षण कमजोर हो जायेगा।
- बजट का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिए कि सामान्य जनता भी उसे आसानी से समझ सके इससे सरकार में जवाबदेही उत्पन्न होती है।

संवैधानिक निधियाँ

भारत का संविधान केंद्र सरकार के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार की निधियों की व्यवस्था करता है।

1. भारत की संचित निधि [अनुच्छेद- 266 (1)]

2. भारत का लोक लेखा [अनुच्छेद- 266 (2)]
 3. भारत की आकस्मिकता निधि [अनुच्छेद- 267]
- **संचित निधि या समेकित कोष (Consolidated Funds)** - भारत में अनुच्छेद 266(1) के अनुसार भारत की संचित निधि में संपूर्ण राजस्व प्राप्तियाँ, सरकार द्वारा निर्गत ट्रेजरी बिल्स, ऋण या वह सारे अर्थोपाय जिनके माध्यम से अग्रिम उगाही किए जाने वाले ऋण तथा वह सभी मुद्रा जो ऋणों के भुगतान से सरकार को प्राप्त होती है, शामिल हैं। इन सभी को अभिलेखित (Record) किया जाता है। इसी प्रकार के फंड जो राज्यों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और उन्हें रिकॉर्ड में रखते हैं, उसे राज्य समेकित फंड कहते हैं। इस कोष से फंड विनियोजन अधिनियम (Appropriation Act) के द्वारा अधिकृत किए जाने पर ही निकाला जा सकता है। यद्यपि कोई व्यय जो कि इस फंड से किए जाने के योग्य हो, या संसद द्वारा स्वीकृत हो फिर भी बिना विनियोजन विधेयक को पास किए, इसमें से राशि नहीं निकाली जा सकती है। इस व्यय धन को नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा जांचा जाता है। यह भारत की लोकनिधि है, इस कोष के माध्यम से भारत के संसाधनों का भंडारण किया जाता है जिससे भविष्य में आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। संविधान में निर्दिष्ट सामान्य सेवाओं के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, नियंत्रक महालेखा परीक्षक आदि को वेतन, संचित निधि से ही प्रदान किये जाते हैं।
 - **लोक खाता (Public Account)** - संविधान के अनुच्छेद 266(2) के तहत, संचित कोष में प्राप्त किए जाने वाले व्ययों एवं आय के अतिरिक्त कुछ ऐसे आय और व्यय हैं जो कि सरकारी खाते में आते हैं। जो वास्तव में सरकार की नहीं होती, बल्कि सरकार दूसरों के लिए अपने पास रखती है, जिन्हें बाद में उन्हें लौटा दिया जाता है। ये सभी कुछ सार्वजनिक खाते के अंतर्गत आते हैं। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय अल्प बचत अग्रिम प्रोविडेंट फंड तथा अन्य खाते, संचित कोष, तथा अग्रिम आदि को जमा किया जाता है और यह उन्हीं लोगों को संचित किया जाता है। इससे धन प्राप्त करने के लिए संसद की या राज्य के विधानमंडल की स्वीकृति आवश्यक नहीं है।
 - **आकस्मिक कोष (Contingency Fund)** - इस कोष से धन की आपूर्ति ऐसे व्ययों को करने के लिए की जाती है जिनकी आपूर्ति तुरंत करनी आवश्यक होती है। इनमें विलम्ब करना अहितकर होगा। आकस्मिक कोष से धन प्राप्त करने के लिए संसद या राज्य विधानमंडल की अनुमति नहीं लेनी पड़ती है। संविधान के अनुच्छेद 267(1) के अनुसार इस निधि का सृजन किया गया है। यह निधि केंद्र में राष्ट्रपति के तथा राज्यों में राज्यपालों के अधिकाराधीन रखी जाती है। परंतु बाद में इस कोष में धन आपूर्ति को स्थिर रखने हेतु सरकार को संसद से संचित फंड से निधि अधिकृत करवाकर इसमें धन डालना पड़ता है। फिलहाल अभी इस कोष में जमा राशि का स्तर 500 करोड़ रुपये रखा गया है।

कराघात व करापात

कराघात

सरकार द्वारा लगाए गए कर का मौद्रिक भार, जिस व्यक्ति पर सबसे पहले पड़ता है अर्थात् सरकार जिससे कर वसूल करती है, उस पर कराघात होता है। यदि वह व्यक्ति कर के मौद्रिक भार को किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल हो जाता है, तो कराघात तो प्रथम व्यक्ति पर ही रहता है, किन्तु करापात (Incidence) उस व्यक्ति पर रहता है, जो अंतिम रूप से कर के मौद्रिक भार को वहन करता है।

करापात (Incidence of Tax)

उपरोक्तानुसार यह आवश्यक नहीं कि सरकार द्वारा कोई कर जिस व्यक्ति पर लगाया गया है, वही कर के भार को अंतिम रूप से वहन करे। यदि प्रथम करदाता कर की धनराशि को किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल हो जाता है, जो कर के भार को अंतिम रूप से वहन करता है, जैसे- उत्पादन शुल्क सरकार द्वारा उत्पादक से वसूल किया जाता है, किन्तु उत्पादक कर की राशि को वस्तु के मूल्य में शामिल कर देता है जिससे करापात उपभोक्ता पर आता है।

हीनार्थ प्रबंधन (Deficit Financing)

जब सरकार का बजट घाटे का होता है अर्थात् आय से अधिक अतिरिक्त मुद्रा निर्गमित करके करती है तो उसे हीनार्थ प्रबंधन कहते हैं। इस व्यवस्था का उपयोग सीमित और उचित मात्रा में ही किया जाता है।

बजट के अवयव (Component of Budget)

सार्वजनिक आय

- **राजस्व प्राप्तियाँ**— इसके अंतर्गत उस आय को रखा जाता है, जिसका संबंध उसी वित्तीय वर्ष से होता है, इसे चालू खाता के नाम से भी जाना जाता है। इस खाते में आय के उन स्रोतों को शामिल किया जाता है जिनके बदले में कोई भुगतान नहीं करना होता है। राजस्व प्राप्तिओं से सरकार की देयताओं में किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं होती। राजस्व प्राप्तिओं के स्रोत निम्नलिखित हैं—

- करों द्वारा प्राप्त आय
- सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा अर्जित लाभ।
- सरकारी उधारों पर प्राप्त ब्याज।
- गैर-कर आय।

प्रत्यक्ष कर	
केन्द्र सरकार	राज्य सरकारें
1. आय-कर	1. होटल प्राप्तिओं पर कर
2. निगम-कर	2. भू-राजस्व
3. धन-कर	3. कृषि आय पर कर
4. एस्टेट ड्यूटी	4. व्यवसाय-कर
5. उपहार-कर	5. गैर-शहरी अचल संपत्तियों पर कर
6. व्यय-कर	6. रोजगारों पर कर
7. ब्याज-कर	

परोक्ष कर	
केन्द्र सरकार	राज्य सरकारें
1. सीमा शुल्क	1. बिक्री-कर / व्यापार-कर
2. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क	2. डीजल / पेट्रोल पर बिक्री-कर
3. केन्द्रीय बिक्री-कर	3. स्टाम्प एवं पंजीयन शुल्क
4. सेवा-कर	4. राज्य उत्पाद शुल्क
	5. वाहनों पर कर
	6. वस्तुओं एवं यात्रियों पर परिवहन कर
	7. विद्युत पर कर एवं शुल्क

	8. गन्ने की खरीद पर शुल्क तथा उपकर
	9. प्रवेश कर
	10. विज्ञापन कर
	11. शिक्षा उपकर
	12. कच्चे जूट पर कर
	13. सट्टेबाजी पर कर

- **पूँजीगत प्राप्तियाँ**— इनके अंतर्गत आय के उन समस्त स्रोतों को रखा जाता है, जिनके बदले में हमें भुगतान करना आवश्यक होता है, लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि यह भुगतान उसी वित्तीय वर्ष में न होकर आगामी किसी वित्तीय वर्ष में किए जाते हैं, इसे पूँजी खाता के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार राजस्व प्राप्तिओं की प्रकृति जहाँ अल्पकालिक किस्म की होती है, वहीं पूँजीगत प्राप्तिओं की प्रकृति दीर्घकालिक होती है। पूँजी खाते का प्रमुख स्रोत है—निवल घरेलू ऋण, निवल विदेशी ऋण वापसी तथा लोक-लेखा प्राप्तियाँ।

राजस्व प्राप्तिओं तथा पूँजीगत प्राप्तिओं में अंतर	
राजस्व प्राप्तियाँ	पूँजीगत प्राप्तियाँ
ये प्राप्तियाँ सरकार की परिसंपत्ति देयता की स्थिति को प्रभावित नहीं करती हैं। राजस्व प्राप्तियाँ भावी पीढ़ी के लिए कोई भार उत्पन्न नहीं करती हैं।	ये प्राप्तियाँ सरकार की परिसंपत्ति देयता की स्थिति को प्रभावित करती हैं। परिसंपत्तियाँ कम होती हैं अथवा देनदारियाँ बढ़ती हैं। पूँजीगत प्राप्तियाँ भावी पीढ़ी के लिए दायित्व उत्पन्न कर सकती हैं। उदाहरण: उधार लिए गये ऋण की अदायगी भावी पीढ़ी के लिए दायित्व होता है।
राजस्व प्राप्तिओं का उच्च स्तर (जैसे कर प्राप्तियाँ) अर्थव्यवस्था की बेहतर वित्तीय स्थिति को प्रकट करता है।	पूँजीगत प्राप्तिओं का उच्च स्तर (जैसे- उधार तथा विनिवेश) अर्थव्यवस्था की कमजोर वित्तीय स्थिति को प्रकट करता है।

- **सार्वजनिक व्यय**— सरकार के बजट में सर्वप्रथम चालू वित्तीय वर्ष में होने वाले व्यय के अनुमान लगाए जाते हैं। सरकार द्वारा किये जाने वाले संपूर्ण सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

- **राजस्व व्यय**— राजस्व व्यय अल्पकालिक खर्च होते हैं जिन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहला व्यवसाय चलाने की परिचालन लागतों को पूरा करने के लिए आवश्यक व्यय तथा दूसरे में राजस्व पैदा करने वाली परिसंपत्तियों के रख-रखाव तथा साधारण मरम्मत लागत शामिल है।
- **पूँजीगत व्यय**— पूँजीगत व्यय के खाते में उन मदों को शामिल किया जाता है, जिनमें व्यय तो चालू वर्ष में किया जाता है, किन्तु जिनसे सामाजिक कल्याण में वृद्धि, चालू वर्ष के साथ-साथ आगामी वर्षों में भी होती रहती है। जैसे- यदि सरकार लोगों के स्वास्थ्य कल्याण हेतु किसी जिले में चिकित्सालय की स्थापना करे, तो अस्पताल के भवन तथा अन्य स्थायी परिसंपत्तियों का निर्माण पूँजीगत व्यय कहलाता है अर्थात् पूँजीगत व्यय आम तौर पर अचल संपत्तियों की एकमुश्त बड़ी खरीद होती है जिसका उपयोग राजस्व सृजन के लिए लंबी अवधि में किया जाता है।

राजस्व व्यय तथा पूँजीगत व्यय में अंतर	
राजस्व व्यय	पूँजीगत व्यय

- राजस्व व्यय सरकार की परिसंपत्ति देयता की स्थिति को प्रभावित नहीं करता है। इससे परिसंपत्तियों तथा देनदारियों में वृद्धि अथवा कमी नहीं होती है। - राजस्व व्यय (आर्थिक सहायता तथा सुरक्षा के लिए किया गया व्यय) अधिकतर लोगों के कल्याण से संबंधित होता है। - सरकार द्वारा उच्च राजस्व व्यय (आर्थिक सहायता के रूप में) लोगों की निर्धनता को प्रकट करता है।	- पूँजीगत व्यय सरकार की परिसंपत्ति देयता की स्थिति को प्रभावित करता है। पूँजीगत व्यय बढ़ने से परिसंपत्तियाँ बढ़ती हैं अथवा देनदारियाँ कम होती हैं। - पूँजीगत व्यय (सार्वजनिक निवेश) GDP संवृद्धि पर ध्यान केंद्रित करता है। - सरकार द्वारा उच्च पूँजीगत व्यय अर्थव्यवस्था में निजी निवेश के अभाव को प्रकट करता है।
--	--

बजट का सार Budget at a Glance				
(₹ करोड़ (in ₹ crore))				
	2020-2021 वर्षाविक	2021-2022 बजट	2021-2022 संशोधित अनुमान	2022-2023 बजट
	Actuals	Budget Estimates	Revised Estimates	Budget Estimates
1. राजस्व प्राप्तियाँ	1633920	1788424	2078936	2204422
2. कर राजस्व (केंद्र को मिला)	1426287	1545396	1765145	1934771
3. कर-रहित राजस्व	207633	243028	313791	269651
4. पूँजी प्राप्तियाँ ¹	1875916	1694812	1691064	1740487
5. ऋणों की वसूली	19729	13000	21975	14291
6. अन्य प्राप्तियाँ	37897	175000	78000	65000
7. उधार और अन्य देयताएँ ²	1818291	1506812	1591089	1661196
8. कुल प्राप्तियाँ (1+4)	3509836	3483236	3770000	3944909
9. कुल व्यय (10+13)	3509836	3483236	3770000	3944909
10. राजस्व खाते पर व्ययों से	3083519	2929000	3167289	3194663
11. व्याज भुगतान	679869	809701	813791	940651
12. पूँजी परिसंपत्तियों के सृजन हेतु सहायता अनुदान	230865	219112	237685	317643
13. पूँजी खाते पर ³	426317	554236	602711	750246
14. प्रभावी पूँजी व्यय (12+13) ⁴	657182	773348	840396	1067889
15. राजस्व घाटा (10-1)	1449599	1140576	1088352	990241
16. प्रभावी राजस्व घाटा (15-12)	1218734	921464	850657	672598
17. राजकोषीय घाटा [9-(14+5+6)]	1818291	1506812	1591089	1661196
17. प्राथमिक घाटा (17-11)	1138422	697111	777298	720545
	(5.8)	(3.1)	(3.3)	(2.8)

कर-सुधार

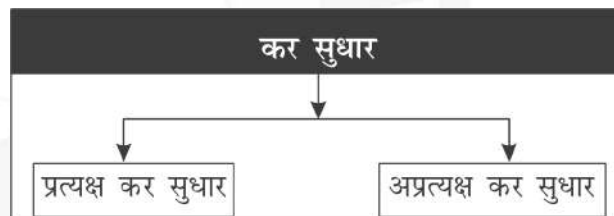
अच्छी कर व्यवस्था (A Good Tax System)

अच्छी कर व्यवस्था/प्रणाली की क्या विशेषताएँ हैं? इस विषय पर अर्थशास्त्रियों एवं नीति-निर्माताओं में विवाद चलता रहा है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में यह परस्पर विरोधी मद्दों के प्रति संतुलन (Trade off) के कारण और भी विवादों में रहा है। कर प्रणाली से जुड़े विवादास्पद मुद्दे मूलतः प्रगामी और प्रतिगामी विधियों में चयन, किस कर से अधिक राजस्व उगाही की जाए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, राजस्व घाटा ठीक है या नहीं, इत्यादि रहे हैं। इन विवादों के बावजूद भी अर्थविदों एवं नीति-निर्माताओं में एक अच्छी कर व्यवस्था के निम्नलिखित पाँच सिद्धांतों पर एक आम सहमति रही है।

- न्यायासंगति (Fairness)** – हालाँकि न्यायासंगत (अच्छी कर व्यवस्था की पहली शर्त) को पारिभाषित करना एक आसान कार्य नहीं है अर्थविदों ने इसके लिए कर व्यवस्था में दो तत्वों के समावेश पर बल दिया है – ‘क्षैतिज’ (Horizontal) तथा ‘ऊर्ध्वाधर’ (Vertical) समानता। जब समान स्थितियों में व्यक्तियों द्वारा समान कर दिया जाए तो इसे ‘क्षैतिज समानता’ कहते हैं। इसी तरह अगर आर्थिक रूप से ज्यादा संपन्न व्यक्तियों द्वारा अपेक्षाकृत अधिक कर दिया जा रहा हो तो इसे ‘ऊर्ध्वाधर समानता’ कहते हैं।
- दक्षता (Efficiency)** – दक्षता किसी कर व्यवस्था की वह क्षमता

(Potential) है, जिससे वह अर्थव्यवस्था के निष्पादन/दक्षता को प्रभावित करता है। अगर किसी कर व्यवस्था द्वारा अर्थव्यवस्था की बचत, निवेश, व्यय, इत्यादि को बिना प्रभावित किए कर की उगाही की जाती है तो इसमें दक्षता का तत्व विद्यमान माना जाता है। करों द्वारा अर्थव्यवस्था की दक्षता को बेहतर भी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रदूषण या धूम्रपान पर लगाये गए कर से जहाँ कर और कर राजस्व में वृद्धि होती है वहीं इससे एक विस्तृत सामाजिक लक्ष्य की भी प्राप्ति होती है। इसे कर का ‘दोहरा लाभांश’ (Double Dividend) कहते हैं।

- प्रशासनिक सरलता (Administrative Simplicity)** – कर व्यवस्था में प्रशासनिक सरलता का होना अत्यावश्यक है। इसके अंतर्गत कर की गणना, इसकी फाइलिंग (Filing), इसकी वसूली इत्यादि को सरल से सरल बनाने पर बल दिया जाता है। कर की चोरी रोकने के क्षेत्र में भी इसका बड़ा योगदान है। भारत में किए जा रहे कर सुधार प्रक्रिया का ये एक महत्वपूर्ण अंग है (चलैया समिति द्वारा भी इसकी सलाह दी गयी है)।
- लचीलापन (Flexibility)** – एक अच्छी कर व्यवस्था में लचीलापन होना अत्यावश्यक है ताकि आवश्यकता पड़ने पर इसमें समयानुसार संशोधन (Modification) किया जा सके।
- पारदर्शिता (Transparency)** – करदाताओं द्वारा कुल कितना कर चुकाया जा रहा है तथा इसके बदले उन्हें सरकार द्वारा लोक सेवाओं के माध्यम से क्या प्राप्त हो रहा है, उसे जानना संभव हो आदि तत्वों को कर व्यवस्था में शामिल करना ही इसमें पारदर्शिता का होना कहा जाता है।



राजस्व प्राप्ति में वृद्धि हेतु कर सुधार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कर सुधार के अंतर्गत प्रत्यक्ष कर सुधार व अप्रत्यक्ष कर सुधार दोनों आते हैं –

प्रत्यक्ष कर सुधार (Direct Taxes Reforms)

प्रत्यक्ष कर, भारत के टैक्स राजस्व में 55% का योगदान करते हैं। यह करराधान का एक बेहतर तरीका है क्योंकि इसकी प्रकृति ‘अदायगी की योग्यता’ के सिद्धांत पर आधारित है। जितनी ज्यादा आय होगी प्रगतिशीलता के अनुरूप, उतना ही ज्यादा टैक्स अदायगी करनी होगी। इससे राजस्व में वृद्धि होती है और कम आय वाले जनसाधारण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रत्यक्ष कर, में विशेषकर आयकर की प्रवृत्ति प्रगतिशील है जबकि अप्रत्यक्ष करों की प्रवृत्ति प्रतिगामी (Regressive) है।

वर्तमान में लगभग 3.5% लोग करदाता हैं। करदाताओं की यह संख्या, भारत जैसे वृद्धिशील अर्थव्यवस्था के लिए बहुत कम है। मध्यम-वर्गीय परिवारों में वृद्धि, बढ़ती आय, प्रभावशाली वर्ग और अधिक संख्या में लोगों का ‘करोड़पति क्लब’ में नाम आना इत्यादि विशेषताओं के बावजूद, आयकरदाताओं की संख्या इतनी कम है कि तुलनात्मक दृष्टि से, करदाताओं की संख्या में मात्र 11% वृद्धि दर्ज की गयी है।

करदाताओं की संख्या और कर-राजस्व में वृद्धि के तीन, निम्नलिखित उपाय हैं –

- प्रत्यक्ष करों की दर में वृद्धि।
- करदाताओं का आधार, विस्तृत करना।
- कराधान का सख्ती से पालन।

प्रत्यक्ष करों की दर में वृद्धि (Increase in Tax Rate)

करों की दर में वृद्धि को हमेशा नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है और इसके विरुद्ध लोगों में रोष पैदा होता है। प्रत्यक्ष कर और राजस्व उत्पादन में एक सीधा संबंध है। कम टैक्स दर से प्रारंभ कर धीरे-धीरे वृद्धि करना, सकारात्मक पहलू है और इससे कर-राजस्व में भी वृद्धि होती है। ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि भारत, 'लॉफर वक्र' पर बढ़ रहा है और टैक्स बढ़ाने की संभावना बहुत कम है। लॉफर वक्र, वह ग्राफ है जो टैक्स रेट और सरकारी राजस्व के बीच संबंध दर्शाता है। आय-वृद्धि और टैक्स रेट में वृद्धि एक अनुकूलतम बिंदु पर पहुंचने के बाद, आय का वक्र (Curve) नीचे झुकने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ऊंची टैक्स दरों से, टैक्स चोरी की प्रवृत्ति बढ़ती है, लोग आय छुपाते हैं और कालेधन की उत्पत्ति होती है। लोग टैक्स को वैधानिक और अवैधानिक रूप से कम करना चाहते हैं। ऊंची टैक्स दरें, अर्थव्यवस्था में हतोत्साहन पैदा करती हैं जिससे आय में कमी और उत्पादन भी प्रभावित होता है। अतः भारत में टैक्स रेट में वृद्धि विकल्प नहीं है।

कर-आधार में वृद्धि

कर-आधार से आशय है आय का वह स्तर जहां कर देना प्रारंभ होता है। भारत में कर से छूट का एक न्यूनतम स्तर है, वर्तमान में यदि किसी की आय 3 लाख रुपये प्रतिवर्ष से कम है तो वह आयकर की परिधि से बाहर है। इसका एक उपाय यह है कि छूट की सीमा कम कर दी जाय जिससे करदाताओं की संख्या में वृद्धि हो जायेगी। इससे कर-राजस्व में भी वृद्धि होगी।

वर्तमान में, मुद्रास्फीति के कारण, टैक्स में छूट की सीमा काफी कम है। इसके अतिरिक्त मुद्रास्फीति में कई कारक शामिल नहीं हैं, जैसे शिक्षा का खर्च, परिवहन और जायदाद की कीमतों में कई गुना वृद्धि हुई है जिससे मध्यम वर्ग को जीवन निर्वाह में कठिनाई आ रही है। टैक्स की सीमा को और नीचे करने से मध्यम वर्ग पर और बोझ बढ़ जायेगा। टैक्स की सीमा और नीचे करने से करदाताओं में काफी छोटी अदायगी करने वाले करदाता होंगे।

कर के आधार को विस्तृत करने का एक और तरीका है नये क्षेत्र, जहां पहले कराधान लागू न हो, उन्हें टैक्स परिधि में लाना। सभी क्षेत्र, कृषि को छोड़कर, पहले से ही टैक्स-परिधि में हैं। कृषि, राज्य का विषय है और केंद्र सरकार इस क्षेत्र में टैक्स नहीं लगा सकती। अतः टैक्स दरें बढ़ाने की तरह ही, टैक्स का आधार बढ़ाना भी भारत में प्रत्यक्ष करों के राजस्व में वृद्धि के लिए संभव नहीं है।

कराधान का सख्ती से पालन (Ensuring Tax Compliance)

प्रश्न उठता है कि देश में हर वह व्यक्ति, जिसे कर अदायगी करनी चाहिए, क्या वह वर्तमान नियमों, प्रावधनों के तहत कर दे रहा है? और दूसरा, जो लोग अभी करदाता नहीं हैं, क्या उन्हें, वास्तव में कर देना चाहिए? कराधान के सख्ती से पालन का यही आशय है। इस दिशा में सरकार ने एक पहल की है, आयकर रिटर्न फॉर्म को उपयोगकर्ता के अनुकूल (User Friendly) और आसानी से भरा जा सकने वाला बनाकर उसे 'सरल' नाम दिया है।

भारत में समस्या है कराधान के नियम-पालन की, जहां बड़े पैमाने पर कर-चोरी, कर-नुकसान और काले धन की समस्या है। अनुमान है कि सकल घरेलू उत्पाद का 40% काले धन के रूप में अर्थव्यवस्था में वितरित है, जिस पर कोई भी टैक्स नहीं दिया जा रहा है।

प्रत्यक्ष कर व्यवस्था का सरलीकरण (Simplification of Direct Tax System)

प्रत्यक्ष कर सुधार की प्रक्रिया के अंतर्गत सरकार द्वारा देश के कर प्रशासन में कई मौलिक परिवर्तन किये गए हैं। जिनके काफी धनात्मक प्रभाव भी सामने

आए हैं-

- कर वसूली में भारी वृद्धि आयी है तथा वर्ष 2021-22 में इसके 22.17 लाख करोड़ रुपये तक प्राप्ति का अनुमान है। वर्ष 2020-21 में लगभग 9.5 करोड़ प्रत्यक्ष कर फाइल किये जाने की संभावना है।
- कर विभाग अब 'ऑनलाइन' कार्य करता है कर अदाकर्ता एवं कर विभाग के मध्य होने वाला संपर्क आज लगभग अभौतिक हो गया है।
- कर के रिटर्न, उनका एसेसमेंट, रिफंड तथा सभी तरह के प्रश्नों का आज 'ऑनलाइन' निपटारा किया जाता है।
- सरकार द्वारा एक उच्च तकनीक आधारित एवं करदाता मित्रवत व्यवस्था को स्थापित किया गया है। जिसके अंतर्गत कर की अदायगी प्रक्रिया को 24 घंटे के अंदर संपादित कर लिया जाता है तथा साथ-साथ कर रिफंड भी जारी किया जाता है।
- प्रत्यक्ष कर से जुड़े लगभग सभी कर अदायगी के कार्यों को 'इलेक्ट्रॉनिक' बना दिया गया तथा करदाता एवं कर विभाग के बीच वैयक्तिक संपर्क लगभग समाप्त हो गया है।

आयकर सुधार

कर सुधार की प्रक्रिया की शुरुआत करते समय सरकार द्वारा वादा किया गया था कि जैसे-जैसे प्रत्यक्ष कर का अनुपालन (Compliance) सुधरेगा वैसे-वैसे सरकार इन करों की दरों में भी कमी करेगी और इस दिशा में किए जा रहे कई प्रयास भी देखे जा सकते हैं।

- व्यक्तिगत करदाता की 5 लाख रुपये तक की आय पर आय कर की छूट अर्थात् इस श्रेणी के करदाता को 6.25 लाख तक की आय पर कर देने की आवश्यकता नहीं होगी (बशर्ते कि 1.50 लाख रुपये का आकस्मिक निधि बीमा एवं अधिमान्य मदों में निवेश किया जाए। इसके अतिरिक्त शिक्षा ऋण, आवासीय ऋण, पेंशन योजना इत्यादि पर भी छूटों का लाभ मिलेगा। इन प्रावधानों के माध्यम से देश के करीब 3 करोड़ मध्यवर्गीय करदाताओं को कुल 18,500 करोड़ रुपये की कर राहत मिलेगी।
- वेतनभोगी व्यक्तियों को प्राप्त 'स्टैण्डर्ड डिडक्शन' को 40,000 रुपये से बढ़ाकर 50,000 कर दिया गया है, जिससे करीब 3 लाख मध्यमवर्गीय व्यक्तियों को कुल 4,700 करोड़ रुपये की कर राहत मिलेगी।
- स्व-स्वामित्व वाले दूसरे घर के अप्रयोगमूलक (National) किराये में लगने वाले आय कर को समाप्त कर दिया गया है।
- छोटे करदाताओं को राहत प्रदान करने के उद्देश्य से टी.डी.एस (TDS) के सीमा स्तर को 2,40,000 रुपये से बढ़ाकर 1,80,000 कर दिया गया है।
- भवनों पर प्राप्त होने वाले 2 करोड़ रुपये तक के पूंजी लाभ को एक से बढ़ाकर दो पर किया गया (जिसे जीवनकाल में एक बार उपयोग में लाया जा सकेगा)।
- बैंक एवं डाकघर जमाओं से प्राप्त ब्याज पर लगने वाले टीडीएस के स्तर को 40,000 रुपये किया गया (10,000 की वृद्धि)।

अप्रत्यक्ष कर सुधार (Indirect Tax Reforms)

अप्रत्यक्ष कर से, कर राजस्व में 50.2% का योगदान मिलता है। अप्रत्यक्ष करों का एक बड़ा स्रोत है एक्साइज ड्यूटी, जिसे अर्थव्यवस्था में उत्पादों के मूल्य पर, कर के रूप में लगाया जाता है। एक्साइज ड्यूटी, अन्य अप्रत्यक्ष करों की भांति, स्वयं में प्रतिगामी (Regressive) है।

उदाहरणस्वरूप, नमक के फैक्टरी मूल्य 10/- रु. प्रति किलो पर 10% एक्साइज ड्यूटी है, अर्थात् खुदरा बेचने की कीमत, उपभोक्ता के लिए 11 रु. प्रति किलो पड़ेगा। इसमें में 1 रुपया, प्रति किलो, टैक्स के रूप में सरकारी खजाने में जाता

है। 11 रु. प्रति किलो 5,000/- रु. प्रतिमाह और 1 लाख प्रतिमाह कमाने वाले, दोनों ही अदा कर रहे हैं। अतः कम आय वाले व्यक्ति पर यह टैक्स ज्यादा भारी है और इसलिए इसे प्रतिगामी (Regressive) कहा गया है।

दूसरे अन्य प्रकार के एक्साइज ढाँचे और अलग-अलग दरों के कारण, अप्रत्यक्ष करों की विभिन्न व्याख्याएँ मौजूद हैं, जिसके कारण टैक्स चोरी, मुकदमेबाजी और राजस्व हानि की संभावनाएँ बनी रहती हैं।

तीसरा पहलू एक्साइज ड्यूटी का यह है कि इसका प्रभाव, जल-प्रपात (Cascading) की भाँति है। उदाहरणस्वरूप, मारुति उद्योग, एम आर एफ कंपनी से टायर खरीदता है। एम आर एफ कंपनी से खरीद मूल्य में एक्साइज ड्यूटी का तत्व भी है जोकि मारुति कंपनी के लागत में शामिल है। तब भी मारुति कार की कुल कीमत पर एक्साइज ड्यूटी देय होगी। इसे ही जल-प्रपात का प्रभाव (Cascading Effect) कहते हैं। टैक्स के कारण कार के निर्माण-लागत में वृद्धि हुई और उस पर पुनः टैक्स लगा दिया गया।

सरकार द्वारा इस समस्या के हल के रूप में एक्साइज ड्यूटी के स्लैब्स (खंड) में कमी की गयी है और आवश्यक उत्पादों तथा अत्यधिक मात्रा में उत्पादित वस्तुओं पर ड्यूटी में कमी कर दी गई है ताकि इस टैक्स के प्रतिगामी प्रवृत्ति (Regressive Nature) को कम किया जा सके। जल-प्रपात प्रभाव के संदर्भ में कहा जा सकता है कि इसे रोकने का सबसे अच्छा तरीका होगा, मूल्य-वर्धित-कर (Value Added Tax; VAT)। VAT वह कर है जो उत्पादन के हर चरण में, उत्पादित वस्तु के मूल्य पर लगाया जाता है न कि तैयार माल पर। केंद्र और राज्य सरकार, दोनों स्तर पर, संघीय ढाँचे के अनुरूप VAT लागू होगा। सरकार ने इस दिशा में एक प्रयास करते हुए संशोधित मूल्य-वर्धित कर व्यवस्था (Modified Value Added Tax- MODVAT) की शुरुआत की, जिसके अंतर्गत पूँजीगत पदार्थों की खरीद पर टैक्स में आंशिक अनुकूलन (Partial Adjustment) का प्रयास किया गया परन्तु इसे प्रतिबंधित करने वाली प्रवृत्ति को पाया गया। अतः सरकार ने MODVAT की जगह 2004 में केंद्र स्तर पर Central Value Added Tax- CENVAT, लागू किया। इसके अंतर्गत बृहद् आधार पर, लागत क्रेडिट प्रणाली तैयार की गयी जिसके उत्पादन के लिए सीधे खरीदे गये पदार्थों पर (जैसे कच्चा माल, पूँजीगत पदार्थ एवं सेवाएँ) एक्साइज ड्यूटी में क्रेडिट प्रणाली लगाने की व्यवस्था की गयी अर्थात् उत्पादक को अब उत्पादित माल पर एडजस्टमेंट के बजाए, एक्साइज के क्रेडिट प्वाइंट्स मिलेंगे जिसके आधार पर कर लगेगा।

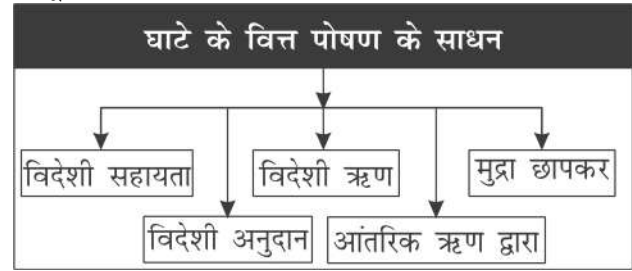
कराधान में एक बड़ा सुधार, राज्य सरकारों द्वारा बिक्री-कर के स्थान पर राज्य वैट लागू करना है। इस सुधार का श्रेय पश्चिम बंगाल के तत्कालीन वित्तमंत्री असीम दास गुप्ता को जाता है और इसे टैक्स सुधार में महत्वपूर्ण मील का पत्थर कहा जा सकता है।

राज्यों में वैट व्यवस्था लागू होने से एक 'बिल-कल्चर' की संस्कृति पैदा हुई है, जिससे टैक्स-चोरी पर नियंत्रण लग सका है। टैक्स प्रशासन और संग्रहण में पारदर्शिता आयी है और राज्यों के राजस्व में वृद्धि हुई है। टैक्स में सुधार-प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए, सरकार द्वारा उत्पाद व सेवाओं के अलग-अलग टैक्स दरों का एकीकरण करके, एक ही प्रकार का टैक्स, एक ही दर पर लागू किया गया है। इसे Goods & Services Tax (GST) कहा जाता है और इसके माध्यम से केंद्र और राज्य सरकारें, एक साथ कराधान करती हैं।

घाटे का वित्त पोषण

यह सरकार द्वारा बजट घाटे के लिए की गयी वित्त प्रबंधन की प्रक्रिया है। 1920 के दशक में इस प्रकार की नीति की आवश्यकता महसूस की गयी थी तथा इस अवधारणा का उद्भव हुआ। इसकी आवश्यकता तब होती है, जब सरकार को किसी निर्धारित अवधि में विकास हेतु उपार्जन से अधिक खर्च करने की

आवश्यकता होती है। विकास होने के बाद आय से अधिक खर्च किये गए पैसों की प्रतिपूर्ति की जाती है।



जब वित्तीय अभाव की नीति लोक वित्त के क्षेत्र में विश्व भर में एक स्थापित प्रक्रिया बन गई तब समय के साथ-साथ इसके साधन भी विकसित होने लगे। ये साधन निम्नलिखित हैं-

- **विदेशी सहायता (External Aids)** - यह सबसे उचित साधन है जिसके द्वारा सरकारी घाटे की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। विदेशी अनुदान (External Grants) इससे भी बेहतर साधन है, क्योंकि न तो इस पर किसी किस्म का ब्याज होता है न ही इसकी अदायगी जरूरी है, यह निःशुल्क होता है। इस तरह का अनुदान भारत का पोखरण परमाणु परीक्षण (सन् 1975) के बाद मिलना बंद हो गया। भारत ने इस प्रकार के कई अनुदानों को स्वीकार नहीं किया जैसे- सुनामी के उपरान्त भारत को दिया गया अनुदान (क्योंकि इसमें शर्तें छुपी हुई होती हैं)।
- **विदेशी ऋण (External Borrowings)** - विदेशी ऋण वित्तीय घाटे को संभालने का दूसरा सबसे बेहतर तरीका है, अगर वे तुलनात्मक रूप से सस्ते तथा लंबी अवधि के हों।
 - विदेशी ऋण, विदेशी मुद्रा के रूप में आता है जिससे सरकारी खर्च को अतिरिक्त फायदा होता है, सरकार चाहे तो इस ऋण का उपयोग देश के अंदर अथवा आयात पर टिकी विकास की आवश्यकताओं के लिए कर सकती है।
 - यह 'क्राउडिंग आउट' (Crowding Out) प्रभाव के कारण भी बेहतर माना जाता है क्योंकि सरकार यदि देश के बैंकों से ऋण लेगी तो अन्य निवेश के लिए कहाँ से ऋण लेंगे।
- **आंतरिक ऋण (Internal Borrowings)** - आंतरिक ऋण वित्तीय घाटे को कम करने का तीसरा सबसे बेहतर तरीका है, लेकिन यदि इस किस्म का ऋण अत्यधिक लिया गया तो जनता तथा निजी क्षेत्र के निवेश संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अर्थव्यवस्था पर दोहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है- निम्न निवेश (जिसके कारण निम्न उत्पादन, निम्न सकल घरेलू उत्पाद तथा निम्न प्रति व्यक्ति आय इत्यादि) व निम्न मांग (आम जनता तथा निजी क्षेत्र द्वारा)- अर्थव्यवस्था की गति धीमी पड़ जाती है, जैसा कि 1960, 1970 तथा 1980 के दशकों में देखा गया।
- **मुद्रा छाप कर (Printing Currency)** - यह वित्तीय घाटे को कम करने का अंतिम हथियार है। लेकिन इस साधन की विकलांगता यह है कि सरकार इसके द्वारा वह व्यय नहीं कर सकती है जिसे विदेशी मुद्रा में किया जाना है। मुद्रा छापने के कारण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्य प्रतिकूल प्रभाव निम्नलिखित हैं-
 - यह आनुपातिक रूप में मुद्रास्फीति में वृद्धि करता है।
 - यह सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान में संशोधन करने के लिए सरकार को बाध्य करता है, जिसके कारण सरकारी खर्च का भार अधिक हो जाता है।

सरकार उपर्युक्त साधनों में से किसी भी साधन का चयन कर अपने वित्तीय घाटे

को कम कर सकती है। सामान्यतः सरकार वित्तीय प्रबंधन हेतु इन सभी साधनों के संयोजन का प्रयोग करती है।

भारत के केन्द्रीय बजट में किए गए परिवर्तन

- वर्ष 2016-17 के बजट में वर्गीकरण के आधार पर केन्द्र प्रयोजित योजनाओं का बंटवारा किया गया था। इन्हें (Core of the Core) सर्वाधिक महत्वपूर्ण योजना, महत्वपूर्ण योजना (Core Scheme) और वैकल्पिक योजना (Optional Scheme) के रूप में तीन भाग में विभाजित किया गया है।
- कोर ऑफ द कोर योजना (Core of the Core Scheme)** - ऐसी योजनाएं जो कि सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक समावेशन को लक्षित करती हैं, उन्हें 'कोर ऑफ द कोर' योजना में शामिल किया गया है। ये योजनाएँ राष्ट्रीय विकास एजेंडे के लिए उपलब्ध धन पर सर्वप्रथम प्रभावित होंगी। इसके साथ ही मनरेगा तथा अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उत्थान की योजनाओं सहित मुख्य अंग्रेला-योजनाओं को भी 'कोर ऑफ द कोर' योजना में शामिल किया जाएगा। 'कोर ऑफ द कोर' योजनाओं के व्यय के ढांचे को बनाये रखा जायेगा, जिनमें 75% केन्द्र और 25% राज्य द्वारा भार वहन किया जायेगा।
- कोर योजना (Core Scheme)** - केन्द्रीय क्षेत्र की वे योजनाएँ जहाँ राज्य और केन्द्र एक 'टीम इंडिया' की भावना के साथ कार्य करेंगे इन योजनाओं को राष्ट्रीय विकास एजेंडे में शामिल किया गया है। इन योजनाओं के अंतर्गत कृषि उन्नत योजना, स्मार्ट सिटी योजना, पुलिस बलों का आधुनिकीकरण जैसी व्यापक योजनाएँ सम्मिलित हैं। जिनका व्यय का 60:40 के अनुपात में क्रमशः केन्द्र व राज्य सरकारें करेंगी जबकि पूर्वोत्तर राज्य व हिमालयी राज्यों के लिए 90:10 है।
- वैकल्पिक योजना (Optional Scheme)** - केन्द्रीय क्षेत्र की योजना को अधिक तर्कसंगत बनाने के लिए मुख्यमंत्रियों की गठित उपसमिति की अनुशंसा पर यह व्यवस्था लागू की गई है। इसके अंतर्गत आने वाली योजनाओं में व्यय हेतु 50:50 (केन्द्र:राज्य) पूर्वोत्तर राज्यों व हिमालयी राज्यों के लिए 80:20 का फॉर्मूला अपनाया गया है। इनमें राज्यों को स्वतंत्रता होगी कि वह अपने सामाजिक-आर्थिक विकास पर विचार करते हुए इन योजनाओं में चाहे तो निवेश करें।
- बजट की समय पूर्व प्रस्तुति** - बजट को फरवरी माह की अंतिम तिथि के 27 दिन पूर्व बजट प्रस्तुत करना है। इसका उद्देश्य 1 अप्रैल को वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पहले ही बजट को संवैधानिक रूप से संसद की स्वीकृति और राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त करवाना होता है।

इसके पक्ष में तर्क

- निजी क्षेत्रों को सरकारी खरीद का रुझान समझने में सहायता मिलेगी, जिससे वे व्यावसायिक योजनाओं को विकसित कर सकेंगे।
- वित्त विधेयक को वर्ष के प्रारंभ में पारित किया जाएगा। इससे सभी सरकारी विभागों, संस्थाओं को अपने राशि आवंटन की जानकारी 1 अप्रैल से पूर्व हो जाएगी।
- रेल बजट का सामान्य बजट में विलय** - रेल बजट को सामान्य बजट से अलग 1927 में एकवर्ध कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर पृथक किया गया था। इस प्रकार 94 वर्षों से चली आ रही प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। रेलवे के पुनर्गठन और सुधार पर गठित विवेक देवराय समिति ने अनुशंसा की थी तथा इस कदम की सराहना भी की।

रेलवे का सामान्य बजट के पक्ष में तर्क

- रेलवे अब केन्द्र सरकार को 10,000 करोड़ रुपये का लाभांश देने से बचेगी। इस लाभांश का उपयोग रेलवे विकास में हो सकेगा।
- रेल बजट अब वार्षिक बजट का मात्र 15% तक सीमित रह गया है अतः इसे सामान्य बजट के साथ-प्रस्तुत करना अधिक तर्कसंगत होगा।
- रेल बजट को मुख्य बजट में शामिल करने का एक कारण यह भी है कि रेलवे भ्रष्टाचार, लोकलुभावन उपायों का उपकरण बनकर रह गई है। रेलवे में 'क्रास सब्सिडी' (जहाँ यात्री यातायात को माल ढुलाई से सब्सिडी दी जाती है) एक मुख्य समस्या थी।
- रेलवे की परिचालन लागत की तुलना में किरायों में वृद्धि कर पाना कठिन था।

इस कदम को लेकर आशंकाएँ

- रेलवे के संसाधन का आवंटन अब वित्त मंत्रालय द्वारा होगा इसलिए रेलवे को संसाधन आवंटन कम या ज्यादा हो सकता है, जिससे रेलवे के विकास में बाधा पहुंचती है।
- विलय के कारण उत्तरदायित्व में भी कमी आ सकती है, इसके साथ ही रेलवे घाटे को छिपाना आसान हो जाएगा।
- कुछ विशेषज्ञों का यह मानना है कि रेलवे के सामान्य बजट में विलय से घोर पूँजीवाद तथा निजीकरण को बढ़ावा मिलेगा।
- योजनागत व्यय व गैर योजनागत व्यय के वर्गीकरण की समाप्ति** - भारत सरकार ने अब बजट अभ्यास में योजनागत व्यय व गैर योजनागत व्यय समाप्त कर दिया है और उसकी जगह अब मात्र पूँजीगत व राजस्व व्यय के रूप में वर्गीकरण किया जाता है।

राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति कर तथा सरकारी उपयोग को दर्शाती है। यह सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ प्रबंधन से संबंधित नीति होती है। सामाजिक तथा मेरिट वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति या सार्वजनिक व्यय राज्य का प्रारंभिक बिंदु है, शेष सभी इस क्रिया को पूरा करने के साधन हैं। सार्वजनिक व्यय का आकार सरकार के आकार का निर्धारण करता है।

राजकोषीय नीति से आशय सरकार की सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण तथा उसके प्रबंधन से संबंधित उन नीतियों से है, जिनका प्रयोग सरकार अर्थव्यवस्था में रोजगार, राष्ट्रीय उत्पादन (आय) आंतरिक तथा बाह्य आर्थिक स्थिरता, आर्थिक समता आदि आर्थिक नीतियों के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करती है। इस प्रकार राजकोषीय नीति के चार पहलू होंगे- संसाधनों का आवंटन, आय का वितरण, आर्थिक स्थिरता तथा आर्थिक विकास। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे एम कीन्स मुख्यतया आर्थिक स्थिरता से संबंधित थे।

विशुद्ध राजकोषीय नीति वह है जो अर्थव्यवस्था में व्याजदर तथा मुद्रा की पूर्ति को किसी रूप में प्रभावित नहीं करे क्योंकि ये दोनों ही मौद्रिक नीति के क्षेत्र में आते हैं।

करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण (सरकार द्वारा जनता से लिया जाने वाला ऋण) राजकोषीय नीति के तीन महत्वपूर्ण अस्त्र हैं।

राजकोषीय नीति के उपकरण

- करारोपण अथवा सार्वजनिक आय** - आर्थिक विकास का आधार, कर नीति तथा सरकार की आय होती है। अतः करारोपण करारोपण क्षमता के आधार पर किया जाना उचित है। करारोपण इस प्रकार से किया जाए कि उसका बुरा प्रभाव काम करने की इच्छा व योग्यता पर न पड़े। साथ ही, सरकार को आय भी प्राप्त हो सके।

- **सार्वजनिक व्यय**– राजकोषीय नीति का यह महत्वपूर्ण उपकरण है, सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य लोक कल्याण होना चाहिए। सार्वजनिक व्यय उत्पादक होना चाहिए, जिससे आधारभूत ढांचे को व्यवस्थित किया जा सके। सार्वजनिक व्यय इस प्रकार से किया जाए कि इसका बुरा प्रभाव काम करने की इच्छा व योग्यता पर नहीं पड़े। देश की आवश्यकता के अनुरूप ही सार्वजनिक व्यय होना चाहिए। उदाहरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, विद्युत, सिंचाई, यातायात, श्रम कल्याण, बीमा सुरक्षा, वृद्धावस्था पेंशन, बाल विकास आदि कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया जाना अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक होगा। यदि सार्वजनिक व्यय, गैर-विकास के कार्यक्रमों में किया जाता है, तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।
- **सार्वजनिक ऋण नीति**– राजकोषीय नीति के अंतर्गत सार्वजनिक ऋणों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये ऋण आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के होते हैं। एक विकासशील देश साधनों की कमी के कारण अपना समुचित विकास नहीं कर पाता है, फलतः उसे ऋण लेकर अपनी अर्थव्यवस्था का संचालन करना होता है। यदि ऋणों का उपयोग सोच-समझ कर किया जाता है, तो इसका लाभ देश को मिलता है। अविवेकपूर्ण ऋण से मूलधन व ब्याज की अदायगी की समस्या पैदा हो जाती है, जो राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण दोष है।

भारत की राजकोषीय नीति के दोष

- **लोचशीलता का अभाव**– राजकोषीय नीति का लोचपूर्ण न होना इस बात के लिए कहा जाता है कि हमारे देश की कर प्रणाली को जितना लोचदार होना चाहिए था, वह इतनी लोचदार नहीं है। बार-बार कर प्रणाली में सुधार के लिए अनेक समितियों का गठन भी किया गया, परंतु इनसे भी बहुत ज्यादा फायदा नहीं हुआ। भारत सरकार को करों से जितनी आय प्राप्त होनी चाहिए थी, वह उसे प्राप्त नहीं हो सकी है।
- **अव्यावहारिक कर प्रणाली**– भारत की कर प्रणाली परंपरागत है। इसमें परिवर्तन तो किए जाते रहे हैं, परन्तु अभी भी हम इसे वैज्ञानिक स्वरूप नहीं दे पाये हैं।
- **घाटे की वित्त व्यवस्था**– देश के प्रत्येक बजट में घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाया जाता रहा है। इसमें नियंत्रण का न लगाया जाना वित्तीय कुप्रबंध का द्योतक है। लगातार घाटे के बजटों के बनाये जाने के कारण कीमतों में वृद्धि व मुद्रा प्रसार की समस्या बनी हुई है।
- **बचतों का कम होना**– भारत में आज की बचत दर जीडीपी की 31.4 प्रतिशत (वर्ष 2020 तक) है जबकि सिंगापुर में 45.8 प्रतिशत व चीन में 45.7 प्रतिशत है। बचतों के कम होने के कारण पूँजी के निर्माण में भी कमी होती है। हमारे देश की राजकोषीय नीति बचतों को प्रोत्साहित करने में सफल नहीं हो पायी है।
- **प्रशासनिक व्ययों में वृद्धि**– देश में प्रशासनिक व्ययों में भारी वृद्धि होती आयी है। आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा संबंधी व्यय तो करने ही होते हैं, उन्हें रोका नहीं जा सकता है परंतु प्रशासनिक व्ययों में कुछ व्यय ऐसे हैं, जिन्हें हम अपव्यय कह सकते हैं। व्ययों को नियंत्रित करने के अनेक प्रयत्न किए जाते रहे हैं, परंतु अपव्ययों को रोका नहीं जा सका है। अनुत्पादक व्ययों का देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।
- **विदेशी ऋणों में वृद्धि**– सार्वजनिक व्ययों में लगातार वृद्धि और आंतरिक साधनों में कमी के कारण देश को विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना पड़ा है। आज भी देश, विदेशी ऋणों की देनदारी में बुरी तरह से फँस चुका है। प्रतिवर्ष बहुत बड़ी राशि ब्याज के भुगतान में व्यय करनी पड़ती है। उपर्युक्त दोषों के कारण भारत की राजकोषीय नीति अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पा रही है।

अन्य सीमाएँ

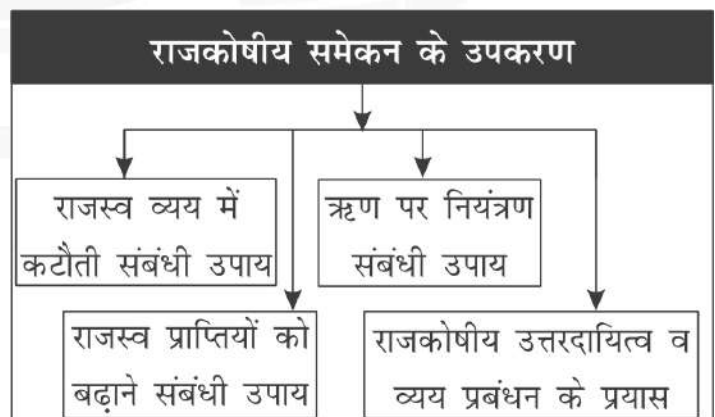
- सब्सिडी का अतार्किक होना।
- करारोपण की प्रक्रिया में एकाएक परिवर्तन करना आसान नहीं होता है। करों में वृद्धि करने से जन आक्रोश भड़क सकता है और सरकार करों को कम नहीं करना चाहती है।
- समयानुसार सरकारी व्ययों में परिवर्तन करना कठिन काम है क्योंकि सार्वजनिक योजनाओं को जल्दी-जल्दी बदला नहीं जा सकता है।
- सरकारी व्यय प्रायः निजी व्यय का ही स्थान ले पाता है, सार्वजनिक व्यय का जितना अधिक विस्तार होता जाता है, निजी व्यय कम होता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार स्वयं उद्योग-धंधों का संचालन करने लगे, तो निजी विनियोग कम हो जाएगा। अतः यह कहना गलत होगा कि सार्वजनिक व निजी व्यय में वृद्धि करवेQjktks"kh; नीति को प्रभावी किया जा सकता है।

राजकोषीय नीति में सुधार के उपाय

- काले धन के कारण देश में दोहरी अर्थव्यवस्था की लगातार वृद्धि हो रही है। इससे देश को भारी क्षति का सामना करना पड़ रहा है। अतः इसे रोकने के उपाय खोजे जाए।
- प्रत्यक्ष करों की दर में वृद्धि की जाए, साथ ही परोक्ष करों का विस्तार किया जाए।
- गैर-योजनागत व्ययों में कमी की जानी चाहिए।
- सार्वजनिक उपक्रमों की व्यवस्था में सुधार लाया जाए।
- विदेशी ऋणों पर निर्भरता को कम किया जाना चाहिए।
- बढ़ते हुए राजस्व घाटे को कम किया जाए।
- राजकोषीय नीति व मौद्रिक नीति में आपसी तालमेल बैठाया जाए।

भारत में राजकोषीय समेकन

भारत के राजकोषीय घाटा अपने उच्च स्तर पर होने के लिए हमेशा की समाचारों में रहा है। इसमें 1975 के बाद तेज वृद्धि हुई। वर्ष 1975 से लेकर 2020 के मध्य भारतीय अर्थव्यवस्था (केंद्र तथा राज्य सरकारों को जोड़कर) का राजकोषीय घाटा 10 प्रतिशत के ऊपर रहा। इस घाटे का 50% से अधिक राजस्व घाटे के कारण रहा। अंततः वर्ष 1991 में प्रारंभ किये गए आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अंतर्गत सरकार द्वारा राजकोषीय समेकन की शुरुआत की गयी यह बाध्यता की शर्तों पर आधारित थी, जो भारत पर भुगतान संतुलन संकट के समय इससे ली गयी सहायता से जुड़े थे। केंद्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई कदम उठाए गए जिन्हें राज्यों के राजकोषीय प्रबंधन में शामिल करने की कोशिश की गयी। इन प्रयासों के मुख्य अंश को निम्न प्रकार देख सकते हैं।



राजस्व व्यय में कटौती संबंधी उपाय

- वेतन, पेंशन एवं आकस्मिक निधियों के भार में कमी (सरकारी नौकरियों में कटौती, आकस्मिक निधियों पर ब्याज कटौती, पेंशन सुधार, इत्यादि।)
- छूट (Subsidies) में कटौती (पेट्रोलियम, चीनी, दवा इत्यादि के प्रशासित मूल्य पद्धति का तार्किकीकरण)।
- ब्याज में कटौती (निम्नतर उधारी, विदेशी ऋणों की उनकी परिपक्वता के पूर्व अदायगी, विदेशी ऋण बांटने को प्रोत्साहन, महंगे विदेशी ऋणों से बचना इत्यादि।)
- प्रतिरक्षा व्यय में कटौती।
- सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों (PSUs) को घाटे की स्थिति में सरकार द्वारा विशेष परिस्थितियों में ही बजटीय सहायता दी जाएगी ऐसा निर्णय लिया गया।
- अनेक क्षेत्रों एवं विभागों में सरकार द्वारा व्यय सुधारों (Expenditure Reforms) की शुरूआत की गयी।
- सामान्य सेवाओं (General Services) की आपूर्ति से जुड़े सरकारी उपक्रमों को लाभकारी बनाने की कोशिश तथा सिर्फ उन्हीं वर्गों को छूट की सुविधा, जिन्हें इसकी नितांत आवश्यकता है (रेल यातायात, सड़क, बिजली, जल इत्यादि।)
- उच्चतर शिक्षा को प्राथमिकता क्षेत्र से बाहर करके इस पर होने वाले व्यय में कमी (ताकि सरकार प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा क्षेत्रों पर अधिक ध्यान दे सके) इत्यादि।

राजस्व प्राप्तियों को बढ़ाने संबंधी उपाय

- कर सुधारों का क्रियान्वयन।
- सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का विनिवेश एवं निजीकरण (राजनीतिक सहमति पर निर्भर कदम)।
- विदेशी विनिमय: भंडार (Forex) के अतिरेक (Surplus) का विदेशी ऋण आवंटन एवं बेहतर विदेशी बॉण्ड में निवेश।
- राज्य सरकारों को अपनी योजनागत व्यय की पूर्ति के लिए बाजार से ऋण लेने की अनुमति इत्यादि।

सरकार के ऋण कार्यक्रम पर नियंत्रण संबंधी उपाय

- वर्ष 1997 से अर्थोपाय अग्रिम (Ways & Means Advances/WMA) की शुरूआत हुई, जिसके अंतर्गत सरकार द्वारा वित्त वर्ष के प्रारंभ में RBI के साथ अपने ऋण कार्यक्रम की मात्रा पर एक समझौता ज्ञापन दिया जाता है। वैसे सरकार द्वारा यथा स्थिति इसमें वृद्धि की जा सकती है फिर भी इससे सरकार के ऋणों की उगाही के बारे में एक पारदर्शिता आती है तथा इस पर एक नैतिक नियंत्रण भी लगता है।

Ways & Means Advances (WMA): यह अस्थाई अग्रिम (ओवरड्राफ्ट) है जो RBI द्वारा सरकार को दिया जाता है। इसका उद्देश्य व्यय व प्राप्तियों के बीच के अंतराल को कम करना है। ये वित्त के स्रोत नहीं हैं। यह सरकार को मिलने वाले राजस्व या अन्य प्राप्तियों में बेमेल/कमी के कारण उत्पन्न होने वाली विशुद्ध रूप से अस्थाई कठिनाईयों के लिए सहायता प्रदान करने के लिए है। WMA से पहले सरकार की वित्तीय कमियों को पूरा करने हेतु ट्रेजरी बिल का प्रयोग किया जाता था।

- वर्ष 1997 से भारत सरकार की प्रतिभूतियों/बॉण्डों के निर्गम का तटु प्राथमिक ग्राहक नहीं रहा अर्थात् अब सरकार ऋण उगाही के इन पत्रों को बाजार में बेचती है। (बाजार आधारित ब्याज पर)।

सरकार पर राजकोषीय उत्तरदायित्व व व्यय प्रबंधन के उपाय

- वर्ष 2003 में पारित किये गए एफ.आर.बी.एम. (F.R.B.M.) अधिनियम के माध्यम से सरकार के राजकोषीय जिम्मेवारी को एक कानूनी आधार मिला, जिसके अंतर्गत राजस्व घाटे एवं राजकोषीय घाटे को नियंत्रित करने के लिए सरकार को वार्षिक लक्ष्यों की घोषणा करके उनके पालन के उत्तरदायित्व की व्यवस्था है। इस अधिनियम द्वारा राजकोषीय नीति में पारदर्शिता लाने के लिए कई प्रावधान किए गए हैं।
- राज्यों की राजकोषीय नीति को भी उत्तरदायी बनाने की कोशिश की गयी है। (बारहवें वित्त आयोग की सलाह द्वारा)। वर्तमान में केंद्र सरकार की तरह जिन राज्यों द्वारा अपने राजकोषीय उत्तरदायित्व अधिनियमों (FRAs) को लागू किया गया है, उन्हें कई प्रकार की वित्तीय सुविधा प्राप्त है। अपने योजनागत व्यय को पूरा करने के लिए बाजार से ऋण लेने का अधिकार (बिना केंद्र सरकार की अनुमति के), राजस्व घाटे में प्रतिवर्ष की गई कटौती के बराबर धन सरकार (केंद्र) से पारितोषिक के रूप में प्राप्त करना, पुराने ऋणों का वर्तमान के सस्ते ब्याज दरों पर नवीकरण इत्यादि।

एफ.आर.बी.एम. अधिनियम, 2003 (F.R.B.M. Act, 2003)

राजकोषीय नीति को किसी भी अर्थव्यवस्था की आधारशिला माना जाता है। इस नीति का बेहतर संचालन न सिर्फ अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करता है बल्कि उसके संसाधनों का प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में आवंटन को भी सुनिश्चित करता है।

अनुत्पादक सरकारी व्यय, कर की विसंगति तथा उच्च राजकोषीय घाटे के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था अपनी संवृद्धि के सक्षम स्तर तक पहुंचने में असफल होती रही है। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया प्रारंभ किए जाने के पूर्व 1991 में आयी उच्च मुद्रास्फीति दर एवं भुगतान संतुलन (BoP) के जुड़वां (Twin) संकट की जड़ में राजकोषीय असंतुलन ही रहा था। तब से (1991 से) राजकोषीय नीति के प्रति सरकार की मध्यम अवधि (Medium Term) की सोच निम्न दिशा में रही है-

- घाटे को कम करना (राजस्व एवं राजकोषीय दोनों ही)।
 - व्यय का प्राथमिकता के अनुसार चुनाव तथा इच्छित परिणाम को सुनिश्चित करना।
 - कर की दरों को निम्न रखते हुए कर के आधार को बढ़ाकर तथा इसकी चोरी एवं अपवचन को रोककर संसाधनों में वृद्धि करना।
- वर्ष 1991 में सरकार द्वारा प्रारंभ किए राजकोषीय समेकन (Fiscal Consolidation) का इच्छित परिणाम नहीं प्राप्त किया जा सका क्योंकि इसके प्रति कोई परिभाषित कटिबद्धता नहीं थी। न ही ऐसा करने के लिए कोई संवैधानिक बाध्यता ही थी। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर सरकार द्वारा 2003 में राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम (FRBMA) को पारित किया गया ताकि राजकोषीय समेकन के लिए एक मजबूत सांविधिक/बाध्यकारी (Statutory/Obligatory) व्यवस्था स्थापित की जा सके। इस अधिनियम के प्रमुख अंश निम्न हैं-
- भारत सरकार द्वारा राजकोषीय एवं राजस्व घाटों को कम करने के लिए कदम उठाते हुए 31 मार्च, 2008 तक राजस्व घाटे को शून्य किया जाना था, जिसे यू.पी.ए.-1 सरकार (31 मार्च, 2009) द्वारा एक वर्ष आगे किया गया।
 - सरकार द्वारा राजकोषीय एवं राजस्व घाटों, आकस्मिक (Contingent) एवं सकल देनदारियों (Liabilities) को कम करने के वार्षिक लक्ष्यों की घोषणा की जाएगी। (राजस्व घाटे को प्रतिवर्ष 0.5% तथा राजकोषीय घाटे को प्रतिवर्ष 0.3 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य 2004 में रखा गया)।
 - राजकोषीय घाटा तथा राजस्व घाटा विशेष परिस्थितियों में घोषित लक्ष्यों

को पार कर सकेंगे यथा-राष्ट्रीय सुरक्षा, आपदा तथा अपवादात्मक आधार।

- भारत सरकार अर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances/WMA) के अतिरिक्त किसी और प्रकार से RBI से उधार नहीं लेगा।

हालांकि पिछले कुछ वर्षों में एक नजरिया उभरा है, जिसके अनुसार सरकारी खर्च को एक निश्चित आंकड़े में बांधना व्यापक तौर पर अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिकूल हो सकता है। राजकोषीय लक्ष्यों के कठोर अनुशासन के कारण, सरकार की ओर से कई अति आवश्यक खर्च रुक सकते हैं, उदाहरण के लिए बुनियादी ढांचे, सामाजिक कल्याण आदि पर खर्च। बजट अपने राजकोषीय रोडमैप में दो अहम बदलावों का सुझाव देता है।

1. राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को एक संख्या (Number) के बजाय एक संख्या परास (Range) रखा जाए। इससे सरकार को गतिशील स्थितियों से निपटने के लिए आवश्यक नीतियां बनाने में मदद मिलेगी।
2. इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि अर्थव्यवस्था में, वित्तीय विस्तार या संकुचन को क्रेडिट विस्तार या संकुचन के साथ संबद्ध रखा जाए।

सरकार को राजकोषीय विवेक और समेकन के लिए प्रतिबद्ध रहना चाहिए, लेकिन समय आ गया है जब FRBMA की कार्यप्रणाली की समीक्षा की जानी चाहिए-विशेषकर अनिश्चितता और अस्थिरता के संदर्भ में, जो कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के नए मानदंड बन गए हैं। इस बदले हुए रुख की पृष्ठभूमि में, सरकार द्वारा 2016-17 में FRBMA के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए एक समिति (एन.के. सिंह समिति) गठित करने की घोषणा की गई।

एफआरबीएम समीक्षा समिति

जनवरी 2017 के आखिर में एन.के. सिंह की अध्यक्षता में पांच सदस्यीय समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति द्वारा दिए गए सुझावों के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को संघीय बजट 2017-18 में रेखांकित किया गया था, जो इस प्रकार हैं-

- इस बारे में काफी व्यापक चर्चा की गई और यह सिफारिश की गई कि स्थायी ऋण पथ को (सार्वजनिक ऋण - GDP अनुपात) हमारी राजकोषीय नीति का प्रमुख मैक्रो इकोनॉमिक एंकर होना चाहिए।
- इसमें वर्ष 2023 तक सरकार के लिए ऋण का सकल घरेलू उत्पाद के साथ 60 प्रतिशत का अनुपात रखने की घोषणा की गई, जिसमें 40 प्रतिशत केंद्र सरकार के लिए एवं 20 प्रतिशत राज्य सरकार के लिए होने की बात की गई है।
- जीडीपी के अनुपात में ऋण को बेहतर बनाने से ही यह बात संबद्ध है कि अगले 3 वर्षों के लिए 3% राजकोषीय घाटे की सिफारिश की गई है।
- इसमें निर्धारित राजकोषीय घाटे के लक्ष्य से 0.5 प्रतिशत तक के विचलन के लिए बर्हिगमन या निकासी के उपबंध का भी प्रावधान है। इन बर्हिगमन या निकासी के उपबंध के पथ निर्धारक उपायों में 'अप्रत्याशित राजकोषीय निहितार्थ के साथ अर्थव्यवस्था में दूरस्थ संरचनात्मक सुधार' को एक कारक के तौर पर शामिल किया गया है।

सरकार द्वारा इस समीक्षा समिति के कुछ प्रमुख सुझावों को मान लिया गया। जो इस प्रकार हैं-

- इसके ऋण नियम (Debt Rule) के अनुसार केंद्र सरकार के ऋण का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के साथ 40 प्रतिशत का अनुपात रखने की घोषणा की गयी। समिति ने राज्यों के लिए इस अनुपात को 20 प्रतिशत रखने का सुझाव दिया था।
- राजकोषीय प्रबंधन के लिए 'राजकोषीय विसर्पण मार्ग' (Fiscal Glide Path) के पालन का निर्णय लिया गया। इसके अंतर्गत राजकोषीय घाटे को लक्षित करने में अब 0.5 प्रतिशत की लोचशीलता का पालन किया जाना

निर्णीत है। वर्ष 2019-20 में 3 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया था लेकिन वर्ष 2020-21 में इसे घटाकर 2.8 प्रतिशत कर दिया गया तथा वर्ष 2023 तक इसे और कम करके 2.5 प्रतिशत तक पहुँचाना है।

व्यय प्रबंधन आयोग (Expenditure Management Commission)

सितंबर, 2014 तक भारत सरकार ने एक संकल्प के माध्यम से व्यय प्रबंधन आयोग (EMC) का गठन किया। ईएमसी सरकार द्वारा शुरू किए गए व्यय सुधारों के विभिन्न पक्षों के साथ ही सार्वजनिक व्यय प्रबंधन से संबंधित विषयों को देखेगा। आयोग का एक पूर्णकालिक, एक अंशकालिक तथा एक पदेन सदस्य होता है। आयोग के अध्यक्ष को मंत्रिमंडलीय स्तर की हैसियत प्राप्त है। विमल जालान इसके पहले अध्यक्ष थे। आयोग के टीओआर (Terms of Reference) निम्नवत् हैं-

- केंद्र सरकार के खर्चों के प्रमुख क्षेत्रों की समीक्षा करना, साथ ही विकासात्मक खर्चों की जरूरत के लिए राजकोषीय खाते में जगह बनाने के बारे में तरीके सुझाना, वित्तीय अनुशासन के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध रहना।
- संस्थानिक व्यवस्थाओं की समीक्षा यथा बजट निर्माण प्रक्रिया तथा एफआरबीएम रूल्स आदि, ताकि वित्तीय अनुशासन बना रहे। साथ ही स्थिति में सुधार के लिए रास्ते सुझाना।
- मौजूदा व्यय प्रशासकीय प्रणाली में आवंटन संबंधी कुशलता के लिए उपाय सुझाना (पूँजीगत खर्च पर ध्यान रखते हुए)।
- खर्चों की प्रशासकीय कुशलता में उपयोग, लक्ष्यों एवं परिणामों पर एकाग्रता के माध्यम से सुधार लाने के लिए फ्रेमवर्क डिजाइन करना।
- यूजर चार्ज के माध्यम से सेवा क्षेत्र पर खर्च के तर्कसंगत अनुपात की व्यवस्था के लिए प्रभावकारी रणनीति सुझाना।
- बेहतर नगद प्रबंधन प्रणाली के माध्यम से वित्तीय लागत में कमी के उपाय सुझाना।
- व्यय प्रबंधन के लिए आईटी टूल्स के व्यापक उपयोग के लिए सुझाव देना।
- अकाउंटिंग बजटिंग के संदर्भ में बेहतर वित्तीय सूचना प्रणाली की सलाह पर राज्यों ने जब से राजकोषीय उत्तरदायित्व कानून (एफआरए) लागू किए हैं तब से वे अपने राजकोषीय मोर्चों पर बेहतर कर रहे हैं।
- केंद्र सरकार में सार्वजनिक व्यय प्रबंधन से संबंधित अन्य प्रासंगिक विषयों पर विचार करना तथा उपयुक्त अनुशासनाएँ करना।

स्वतंत्र ऋण प्रबंधन

पब्लिक डेट मैनेजमेंट एजेंसी (PDMA) को सृजित करने की बात 2015-16 के बजट में ही कर दी गयी थी। परन्तु RBI के विरोध के कारण इस प्रकार की स्वतंत्र एजेंसी को सृजित नहीं किया जा सका। परन्तु मार्च 2019 में इस एजेंसी के स्वतंत्र रूप से गठन को पुनः एक बार 'नीति आयोग' द्वारा आवाज दी गई। PDMA की स्थापना के पक्ष में सबल तर्क दिए जाते हैं।

- वर्तमान में RBI प्रमुख ब्याज दरों को निर्धारित करती हैं साथ ही वह सरकारी बॉण्डों की खरीद बिक्री को भी संचालित करती है, अतः वहां स्पष्ट रूप से 'हितों के टकराव' वाली स्थिति देखने को मिलती है।
- भारतीय घरेलू बॉण्ड मार्केट व अंतर्राष्ट्रीय बॉण्ड मार्केट में एकरूपता का अभाव बना हुआ है। आय के वैश्विक माहौल में जब वैश्विक वित्तीय व्यापार अधिक से अधिक समरूप हो रहे हैं, ऐसे में यह असंबद्धता अखरती है। यही कारण है भारत में बाह्य वाणिज्यिक ऋणों में बढ़ोत्तरी देखने को मिली है क्योंकि उनकी ब्याज दर वैश्विक व्यापार में अत्यंत कम है।
- भारत में अवसंरचना क्षेत्र में वित्तियन के कमी की पूर्ति बॉण्ड मार्केट को

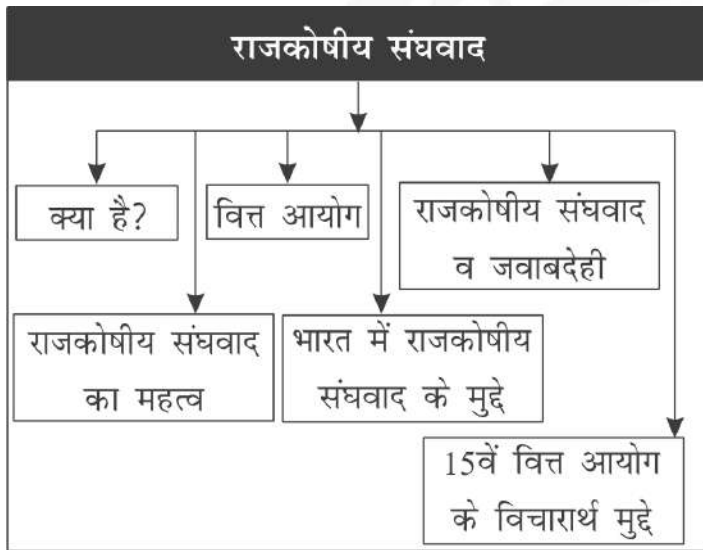
गहरा (Deepening of Bond Market) करके ही की जा सकती है। परन्तु RBI के हस्तक्षेप से यह संभव नहीं हो पा रहा है क्योंकि बॉण्ड मार्केट का सीधा संबंध मौद्रिक नीति से है।

बॉण्ड मार्केट को गहराने की आवश्यकता क्यों?

कॉर्पोरेट बॉण्ड की देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 4% हिस्सेदारी है जबकि अमेरिका में यह 70% व दक्षिण कोरिया में 49% है। इसके अलावा भारत में द्वितीयक बाजार की उपस्थिति अत्यधिक सीमित है व संपूर्ण थोक कारोबार का अधिकतर हिस्सा 5 से 10 प्रकार के व्यापारिक बॉण्ड से ही प्राप्त हो रहा है।

माना यह जाता है कि एक बार ऋण प्रबंधन को RBI से अलग कर दिया जाए तो सरकार बदलती जरूरतों के अनुसार ऋण को प्रबंधित कर पायेगी साथ ही इससे वित्त की लागत भी कम हो सकेगी।

राजकोषीय संघवाद



राजकोषीय संघवाद को एक संघीय सरकारी प्रणाली में सरकार की विभिन्न इकाइयों के बीच वित्तीय संबंधों के रूप में परिभाषित किया जाता है।

राजकोषीय संघवाद का महत्व

- राजकोषीय संघवाद सरकार के विभिन्न स्तरों, अर्थात् केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों के मध्य कराधान और सार्वजनिक व्यय के संबंध में उत्तरदायित्वों का विभाजन करता है। वित्तीय स्वतंत्रता और पर्याप्तता, सरकार के संघीय स्वरूप के सफल संचालन का आधार होती है।
- यह सरकारी संगठनों को सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने में बड़े पैमाने की लागत दक्षता प्राप्त करने में सहायता करता है। सार्वजनिक सेवाओं की पूर्ति जन सामान्य की प्राथमिकताओं से सर्वाधिक निकटता से संबंधित होती है।
- यह एक एकीकृत साझा बाजार का सृजन करता है, जो वृहद आर्थिक गतिविधि को बढ़ावा देता है।
- वित्त आयोग के गठन का उल्लेख संविधान (अनुच्छेद 280) में केंद्र और राज्यों के साथ-साथ राज्यों के मध्य राजकोषीय असंतुलन से निपटने के लिए उत्तरदायी एक प्रमुख संस्था के रूप में किया गया है।

भारत में राजकोषीय संघवाद से संबंधित मुद्दे

भारत के राज्यों में उनके वित्तीय उत्तरदायित्वों की पूर्ति हेतु पर्याप्त वित्तीय शक्तियां निहित नहीं हैं (अधिकतम व्यय उत्तरदायित्व के साथ सीमित कर

आधार) जो निम्नलिखित का कारण बनती है।

- उर्ध्वाधर राजकोषीय असंतुलन**— केंद्र और राज्यों के व्यय और राजस्व के विभिन्न घटकों में निरंतर असमानता बनी हुई है। राजस्व व्यय या मूलभूत आवश्यकता के 55.6% (औसत) भाग की तुलना में राज्य की राजस्व क्षमता की भागीदारी 37.5% (औसत) अनुमानित है।
- क्षैतिज राजकोषीय असंतुलन**— समय के साथ राज्यों की राजकोषीय स्थिति में गिरावट आई है और अपनी राजस्व आवश्यकताओं को पूरा करने के संदर्भ में भी राज्यों के मध्य अत्यधिक असमानता विद्यमान है। यह अंतर 37.6% (बिहार) और 82.6% (हरियाणा) जितने विशाल दायरे के बीच हो सकता है।
- उदारीकरण के पश्चात् असंतुलन**— अवसंरचना के विकास के लिए राज्यों के मध्य असमान क्षमता के कारण बाजार आधारित सुधार अधिक असमानता उत्पन्न करते हैं। सुधार के बाद की अवधि में निर्धन राज्यों के समक्ष प्रमुख चुनौती विदेशी पूंजीगत निवेश को आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धी अवसंरचना निवेश का अनुसरण करना हो गया है।
- राज्यों का वित्तीय हास**— राज्यों का प्रति व्यक्ति राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा और प्राथमिक घाटा निरंतर बढ़ रहा है, जो राज्यों के वित्तीय हास का संकेत है। यह निम्नलिखित के माध्यम से देखा जा सकता है—
 - राज्यों पर ऋण का बोझ बढ़ना।
 - सामाजिक और आर्थिक सेवा में विस्तार के लिए अवसरों का अभाव।
 - पूँजी निवेश के लिए अवसर की कमी।
 - राजस्व हस्तांतरण की प्रक्रिया का अप्रभावी होना।

अन्य मुद्दे

- राज्यों की राजकोषीय स्वायत्तता की रक्षा के लिए संविधान में अभिकल्पित संस्थानों ने ऊर्ध्वाधर असंतुलन को सुधारने में सहायता नहीं की है।
- भारतीय संविधान में पहले से शामिल एकात्मक तत्वों ने केंद्र में राजकोषीय शक्तियों के संकेंद्रण और केंद्र द्वारा उनके हस्तांतरण पर राज्यों की निर्भरता के कारण समय के साथ अधिक सुदृढ़ता प्राप्त की है।
- वित्त आयोग के विचारार्थ विषय केंद्र सरकार द्वारा एकपक्षीय रूप से निर्धारित किए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न मुद्दे उठाए जाते रहे हैं।

राजकोषीय संघवाद व जवाबदेही

राजकोषीय संघवाद व जवाबदेही की बात आर्थिक समीक्षा (2020-21) करता है। ताकि निम्न संतुलन अवरोध से बचा जा सके।

सर्वे बताता है कि स्थानीय शासन द्वारा कम मात्रा में करों का अधिग्रहण किया जा रहा है, जो राजकोषीय संघवाद व जवाबदेही के समक्ष चुनौती खड़ी कर रहा है। पंचायत अपने राजस्व का 95% संसाधन 'हस्तांतरित संसाधन' के स्वरूप में प्राप्त करता है। केरल, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक जैसे राज्यों की पंचायत कुछ प्रत्यक्ष करों का उदग्रहण करती है। परंतु उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की पंचायत पूर्णतः हस्तांतरित कोष पर ही निर्भर है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बहुत से राज्यों ने पंचायतों को राजस्व उदग्रहण व कराधान की पर्याप्त शक्तियां हस्तांतरित ही नहीं की है।

कुछ अन्य मामलों में हालांकि ग्राम प्रशासन को शक्तियां दी गयी है। परंतु भूमि की कीमत अनुचित रूप से कम परिकल्पित रहने के कारण उससे मिलने वाले कर का औसत मान 7-9% के मध्य ही हो पाता है। इसी प्रकार केरल व कर्नाटक जहां कर संग्रहण की सर्वाधिक शक्तियां स्थानीय शासन को हस्तांतरित की गयी है वहां के ग्रामीण प्रशासन 'गृहकर' जैसे कर भी अपनी क्षमता का मात्र एक तिहाई ही संग्रहित कर पा रहे हैं।

सर्वे यह भी बताता है कि आर्थिक व राजनैतिक विकास कुल करों में प्रत्यक्ष करों के बढ़ते हुए हिस्से का अनुषंगी रहा है। जहां यूरोप में कुल करों में प्रत्यक्ष कर का हिस्सा 70% बैठता है तो वहीं भारत में यह मान 55% ही है। भारत के प्रत्यक्ष कर का हिस्सा विकास के तुलनात्मक चरण में अन्य देशों के समान है। हालांकि अन्य देशों के विपरीत प्रत्यक्ष करों पर इसके विश्वास की प्रवृत्ति गिरती हुई प्रतीत होती है (जो कि बढ़नी चाहिए)। यदि माल व सेवा कर (जीएसटी) राजस्व का बेहतर स्रोत साबित हुआ तो वह प्रवृत्ति और भी बलवती साबित होगी।

राजकोषीय विकेंद्रीकरण मात्र एक वांछनीय आर्थिक सिद्धांत ही नहीं बल्कि एक राजनैतिक व दार्शनिक सिद्धांत के रूप में भी परिकल्पित किया जाता है। यह धारणा इस विचार में निहित है कि व्यय व कर संबंधी निर्णयों में यथासंभव स्थानीय अधिमान व आवश्यकताएं परिलक्षित हो।

हालांकि भारत के शहरी स्थानीय प्रशासन काफी हद तक अंतर्राष्ट्रीय मानकों के नजदीक है। कुल राजस्व में उनका अपना राजस्व (44%) वास्तव में ब्राजील व जर्मनी से भी अधिक है जबकि उनका प्रत्यक्ष कर शेयर (कुल राजस्व का लगभग 15%) ब्राजील (19%) से थोड़ा ही कम है। यह प्रदर्शित कर रहा कि यूएलजी अपने स्वयं के राजस्व का सृजन करने में बेहतरीन कार्य कर रहे हैं।

73वां व 74वां संशोधन भारत के संघीय ढांचे में इसके शासन व जवाबदेही के संबंध में एक 'युग प्रवर्तक' थे। परंतु इसके कार्य निष्पादन के यथार्थ मूल्यांकन हेतु बेहतर डाटा व साक्ष्य अत्यावश्यक है। सर्वे निष्कर्षतः यह मानता है कि टीयर-2 व टीयर-3 शासन वस्तुतः अधिकतर 'हस्तांतरित संसाधन' पर ही निर्भर करता है। यह कम मात्रा में कर आधारित संसाधनों को सृजित कर रहे हैं व प्रत्यक्ष करों की भी कम मात्रा को उदग्रहीत कर पा रहे हैं।

इसका कारण यह नहीं कि इन स्तरों पर कम कराधान शक्तियां हैं, बल्कि वर्तमान शक्तियों का ही पूर्णतः उपयोग न कर पाना है।

सर्वे यह भी प्रश्न उठाता है कि उपर्युक्त निम्न संग्रहण क्या सिर्फ क्षमता व संसाधन का मामला है? शायद यह व्यय के पहलू से भी जुड़ा है कुल मिलाकर, यदि करों का व्यय प्रभावी रूप से नहीं किया जा सकता है तो अधिक करों का संग्रह करने का कोई कारण नहीं है। क्या करों के प्रति अनिच्छा की समस्या राज्य और नागरिकों के बीच के उन संबंधों (राज्य की वैधता का आधार) से ही

विकसित हो रही है जिसके ऊपर विकेंद्रीकरण आधारित है।

राजकोष का कंप्यूटरीकरण (Treasury Computerisation)

मिशन मोड परियोजना 'राज्य राजकोषों का कंप्यूटरीकरण' के क्रियान्वयन हेतु योजना भारत सरकार द्वारा जून, 2010 में राष्ट्रीय ई-अभिशासन योजना (एनईजीपी) के तहत सुव्यवस्थित की गई थी। राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों से यह अपेक्षित है कि वे 2010-11 से आरंभ लगभग तीन वर्षों में अपनी परियोजनाएं पूर्ण कर लें। यह योजना आधारभूत कंप्यूटरीकरण में सहायता करने के अलावा राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के राजकोषीय कंप्यूटरीकरण, उन्नयन, विस्तार तथा इंटरफेस आवश्यकताओं में विद्यमान कमियों को दूर करने में सहायता करेगी। योजना में एक व्यापक क्षेत्र के आधार पर नेटवर्क किए गए माहौल में उपयुक्त हार्डवेयर तथा अनुप्रयोग सॉफ्टवेयर प्रणालियों की संस्थापना करना एवं विभिन्न हितधारकों में आंकड़ा साझेदारी हेतु इंटरफेस निर्माण शामिल हैं।

यह आशा है कि राजकोषीय कंप्यूटरीकरण की योजना से राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में बजट व्यवस्था प्रक्रिया अधिक दक्ष होगी, नकद प्रवाह प्रबंधन में सुधार होगा, खातों की वास्तविक समय सुमेलता का संबर्द्धन होगा, प्रबंधन सूचना प्रणालियां (एमआईएस) सुदृढ़ होंगी, लेखा तैयारी में यथार्थता एवं समयबद्धता में सुधार होगा, सार्वजनिक परिदाय प्रणालियों में पारदर्शिता तथा दक्षता आएगी, अभिशासन की बेहतर गुणवत्ता के साथ बेहतर वित्तीय प्रबंधन करने में सहायता मिलेगी।

इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे

वर्तमान राजकोषीय स्थिति

वर्ष 2020-21 व आगे की राजकोषीय स्थिति के बारे में सरकार का सकारात्मक रुख है। जो हम निम्नलिखित सूचनाओं के आधार पर समझ सकते हैं:-

- संशोधित आंकड़ों के अनुसार सरकार को वर्ष 2021-22 में राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को 6.8% तक लाना है (जो वर्ष 2020-21 में 9.5% थी)। राजकोषीय संकेतकों की स्थिति को निम्न तालिका से प्रदर्शित किया गया है-

राजकोषीय कार्यनीति व्यक्तव्य							
क्र.सं.	घाटा	(2019-20) वास्तविक	(2020-21) बजट अनुमान	(2020-21) संशोधित आंकड़े	(2021-22) बजट अनुमान	(2021-22) संशोधित आंकड़े	(2022-23) बजट अनुमान
1.	राजकोषीय घाटा	4.6%	3.5%	9.5%	6.8%	6.9%	6.4%
2.	राजस्व घाटा	3.3%	2.7%	7.5%	5.1%	4.7%	3.8%
3.	प्राथमिक घाटा	1.6%	0.4%	5.9%	3.1%	3.3%	2.8%
4.	प्रभावी राजस्व घाटा	2.4%	1.8%	6.3%	4.1%	3.7%	2.6%

सरकारी ऋण पर स्थिति पत्र

- केन्द्र सरकार द्वारा सरकारी ऋण पर स्थिति पत्र का नौवां संस्करण जारी किया गया है।
- इस स्थिति-पत्र में वर्ष 2019-20 से 2021-22 तक के वित्तीय वर्षों के लिए केन्द्र सरकार की ऋण प्रबंधन रणनीति (Debt Management Strategy: DMS) को शामिल किया गया है जो सरकार की ऋण प्राप्ति से संबंधित योजनाओं के मार्गदर्शन में मदद करती है।
- DMS का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकार की वित्त-पोषण आवश्यकताओं और भुगतान दायित्वों को वहनीय जोखिम स्तर के अनुरूप, न्यूनतम संभव लागत पर पूरा किया जा सके।

- मध्यम अवधि ऋण प्रबंधन के लिए सरकार की रणनीति (2019-2022) : सरकार द्वारा इसके तहत कई कदम उठाए जाएंगे। जोकि निम्नलिखित तीन व्यापक स्तंभों पर आधारित होंगे-

- ऋण की निम्न लागत
 - ऋण पोर्टफोलियो की परिपक्वता अवधि को बढ़ाना।
 - अर्थव्यवस्था में प्रचलित ब्याज दरों के अनुरूप अल्प बचत योजनाओं तथा PF, विशिष्ट प्रतिभूतियों, आदि जैसे अन्य उपकरणों पर ब्याज दरों का युक्तिकरण करना।
 - आर्थिक मामलों के विभाग के उन अन्य प्रभागों को सलाह देना जो बाह्य ऋणों के मामलों में संलग्न हैं, जैसे कि इन ऋणों की लागत,

अवधि मुद्रा इत्यादि जैसे विषयों पर, ताकि इन बाह्य ऋणों को सर्वोत्तम शर्तों पर प्राप्त किया जा सके।

• जोखिम न्यूनीकरण

- कुछ संकेतकों के लिए मानदंड निर्धारित करना जैसे कि अल्पावधि ऋण, बाह्य ऋण व फ्लोटिंग रेट डेब्ट इत्यादि का अंश निर्धारित करना ताकि रोल-ओवर जोखिम के साथ-साथ व्याज दरों व विनिमय दरों में होने वाले परिवर्तन से जुड़े जोखिमों के संदर्भ में जोखिम को कम किया जा सके।

• बाजार का विकास

- बाजार ऋण कार्यक्रम में पारदर्शिता बनाए रखना, नियमित रूप से निवेशकों के साथ संपर्क बनाए रखना तथा अन्य हितधारकों के साथ परामर्श करना और विभिन्न प्रकार के उपकरण जारी करना ताकि निवेशक अपने पोर्टफोलियो को अधिक कुशलता से प्रबंधित कर सकें।
- बड़े पैमाने पर वांछित अवधि वाले मानदंडों का निर्माण करना ताकि निवेशकों की भागीदारी और तरलता को बढ़ाया जा सके।
- घरेलू निवेशक आधार के विकास का समर्थन करना और विदेशी निवेशकों के लिए सरकारी प्रतिभूति बाजार को खोलना।

पी.एम. केयर्स फंड (PM Cares Fund)

- उच्चतम न्यायालय ने “पी.एम.केयर्स फंड” के धन को राष्ट्रीय आपदा राहत कोष (National Disaster Relief Fund: NDRF) में अंतरित करने से संबंधित एक याचिका को खारिज कर दिया है।
- उच्चतम न्यायालय ने “पी.एम.केयर्स फंड” (आपात स्थितियों में प्रधानमंत्री नागरिक सहायता और राहत कोष) के बारे में कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं, यथा-
 - यह कहते हुए कि ये दो भिन्न-भिन्न संस्थाएँ हैं, न्यायालय ने पी.एम. केयर्स फंड से NDRF में धनराशि के अंतरण हेतु निर्देश देने से अस्वीकार कर दिया है।
 - NDRF आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 {Disaster Management Act, 2005 (DMA Act)} के तहत स्थापित एक सांविधिक कोष है।
 - चूंकि पी.एम.केयर्स फंड को कोई सरकारी सहायता प्राप्त नहीं होती है, इसलिए नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG) द्वारा इसके लेखापरीक्षण की आवश्यकता नहीं है।
 - पी.एम.केयर्स फंड में योगदान करने के लिए किसी भी संस्था और व्यक्ति को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह स्वैच्छिक है।
 - कोविड-19 से व्युत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए एक नई राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना की आवश्यकता को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया है कि यह बोधगम्य (Conceivable) नहीं है कि आपदा आने के पश्चात् एक योजना निर्मित की जाएगी।

पी.एम.केयर्स फंड बनाम (NDRF)

गठन	पी.एम.केयर्स फंड	NDRF
कोविड-19 के प्रकोप के दौरान वर्ष 2020 में गठित	NDMA, 2005 के अधिनियमित होने के बाद राष्ट्रीय आपदा आकस्मिकता निधि (National Calamity Contingency Fund: NCCF) का नाम परिवर्तित कर NDRF कर दिया गया।	

उद्देश्य	- किसी भी प्रकार की राहत या सहायता हेतु समर्थन प्रदान करना। - स्वास्थ्य देखभाल या दवा विनिर्माण सुविधाओं का निर्माण या उन्नयन करना। - वित्तीय सहायता पहुँचाना तथा भुगतान के लिए अनुदान समर्थन।	- किसी भी खतरनाक आपदा की स्थिति या आपदा के दौरान आपातकालीन प्रतिक्रिया, राहत और पुनर्वास हेतु खर्चों को पूरा करना। - गंभीर प्रकृति की आपदा की स्थिति में SDRF को सहायता प्रदान करना।
प्रशासनिक तंत्र	प्रधानमंत्री पी.एम.केयर्स फंड के पदेन अध्यक्ष तथा रक्षा मंत्री, गृह मंत्री और वित्त मंत्री (भारत सरकार) इस निधि के पदेन न्यासी हैं। न्यासी बोर्ड के अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) के पास न्यासी बोर्ड में तीन ट्रस्टी को नामित करने की शक्ति होगी। ये ट्रस्टी अनुसंधान, स्वास्थ्य, विज्ञान, सामाजिक कार्य, कानून, लोक प्रशासन और परोपकार के क्षेत्र से जुड़े प्रसिद्ध व्यक्ति होने चाहिए। ट्रस्टी के रूप में नियुक्त व्यक्ति अपनी स्वतंत्र क्षमता के साथ कार्य करेगा।	निधि का प्रबंधन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के तहत कृषि और सहकारिता विभाग चक्रवात, सूखा, भूकंप, आग, बाढ़, सुनामी, ओलावृष्टि, भूस्खलन, हिमस्खलन, मेघ प्रस्फुटन (Cloudurst), कीटों का हमला, पाला और शीत लहर (Cold Waves) आदि से जुड़ी आपदाओं के लिए राहत गतिविधियों की निगरानी करता है, जबकि शेष प्राकृतिक आपदाओं की निगरानी गृह मंत्रालय (MHA) द्वारा की जाती है।
निधि का स्रोत	पूर्णतः स्वैच्छिक अंशदान से निर्मित। इसे FCRA के तहत छूट प्रदान की गई है, अतः यह विदेशों में स्थित व्यक्तियों और संगठनों से दान तथा आर्थिक सहयोग को स्वीकार कर सकता है।	इसे कुछ वस्तुओं पर उपकर (उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क से संबंधित) आरोपित कर संग्रहित किया जाता है और वित्त विधेयक के माध्यम से वार्षिक स्तर पर अनुमोदित किया जाता है।
लेखा परीक्षा/अंकेक्षण	निधि का लेखा परीक्षण स्वतंत्र लेखा परीक्षकों द्वारा किया जाएगा, जिन्हें ट्रस्टियों द्वारा नियुक्त किया जाएगा।	नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) द्वारा NDRF के खातों का लेखा-परीक्षा किया जाता है।

प्रत्यक्ष कर व्यवस्था में सुधार हेतु हालिया प्रयास

पारदर्शी कराधान- 'ईमानदार का सम्मान' प्लेटफॉर्म (Transparent Taxation- 'Honouring the Honest' Platform)

- इसका उद्देश्य कर अनुपालन को सरल बनाना तथा ईमानदार करदाताओं को पुरस्कृत करना है।
- इस पोर्टल की मुख्य विशेषताएं फेसलेस मूल्यांकन (Faceless

Assessment), फेसलेस अपील (Faceless Appeal) एवं करदाता चार्टर (Taxpayers Charter) हैं।

- **फेसलेस मूल्यांकन**— इसे करदाता और आयकर अधिकारियों के मध्य प्रत्यक्ष संपर्क को समाप्त करने हेतु आरंभ किया गया है।
 - इस प्रणाली के अंतर्गत, किसी करदाता का चयन केवल डेटा एनालिटिक्स एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का उपयोग करने वाले कंप्यूटर के माध्यम से ही किया जाएगा।
 - उल्लेखनीय है कि, इसी तर्ज पर, केंद्रीय अप्रत्यक्ष एवं सीमा शुल्क बोर्ड ने 'तुरंत कस्टम्स' नामक एक पहल के तहत कंसाइनमेंट्स (माल प्रेषण) के फेसलेस मूल्यांकन का कार्य आरंभ किया है।
- **फेसलेस अपील**— इसके तहत अपील यादृच्छिक रूप से देश में किसी भी कर अधिकारी को आवंटित की जाएगी तथा अपील पर निर्णय लेने वाले अधिकारी की पहचान को गोपनीय रखा जाएगा।
- **करदाता चार्टर**— यह आयकर अधिकारियों एवं करदाताओं, दोनों के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को रेखांकित करता है। आयकर विभाग द्वारा समय पर सेवाएं सुनिश्चित करने से नागरिकों के सशक्तीकरण की संभावनाओं में वृद्धि होगी।
- यह आयकर दाताओं की निजता एवं गोपनीयता के संरक्षण में सहायता प्रदान करेगा।
- यह आयकर कार्यालयों के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र को समाप्त कर भ्रष्ट प्रथाओं को समाप्त करने का प्रयत्न करता है।

डिजिटल सेवा कर

- भारत ने वर्ष 2020 में 2% की दर से डिजिटल सेवा कर (DST) आरोपित करने का निर्णय लिया।
- यह कर केवल भारत में स्थायी प्रतिष्ठान (Permanent Establishment) के बिना सेवा प्रदान करने वाली अनिवासी ई-कॉमर्स कंपनियों पर लागू है। इसमें भारत में सभी गैर-निवासी ई-कॉमर्स संचालकों या उनके द्वारा की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की ऑनलाइन बिक्री शामिल है।
- ज्ञातव्य है कि भारत में वर्ष 2016 में 6 प्रतिशत की दर से समकारी लेवी (Equalization Levy: EL) की शुरुआत की गई थी। इसे भारत में स्थायी प्रतिष्ठान नहीं रखने वाली गैर-निवासी कंपनियों पर अधिरोपित किया गया था। इस लेवी को उनके द्वारा डिजिटल विज्ञापन सेवाओं से प्राप्त भुगतानों पर लागू किया गया है। हालाँकि, इसमें शर्त यह है कि प्राप्त भुगतान की राशि एक वर्ष में 1 लाख रुपये से अधिक होनी चाहिए।
- ई-कॉमर्स कंपनियों को भी इसमें शामिल कर इस लेवी के दायरे को विस्तृत किया गया। हालाँकि, ई-कॉमर्स कंपनियों के लिए इस लेवी की दर 2 प्रतिशत है तथा इसमें सरचार्ज या अधिभार भी अलग से देय होगा।
- डिजिटल अर्थव्यवस्था में हुई वृद्धि के कारण इस बात को लेकर भी नीतिगत बहस जारी है कि डिजिटल कंपनियों को कहां और कैसे भुगतान करना है।
- अनेक डिजिटल व्यवसाय मॉडलों को उन देशों में भौतिक उपस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है जहां उनके द्वारा बिक्री की जाती है, क्योंकि ये दूरस्थ बिक्री और सेवा प्लेटफॉर्म के माध्यम से ग्राहकों तक पहुंच सुनिश्चित करते हैं।
- आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD) के आधार क्षरण एवं लाभ हस्तांतरण (Base Erosion and Profit Shifting: BEPS) फ्रेमवर्क के तहत इस संदर्भ में देशों द्वारा वार्ताएं की जा रही हैं कि डिजिटल फार्मों को उनकी भौतिक उपस्थिति या लाभ को ध्यान में रखे बिना करों का भुगतान करना होगा।

• OECD ने इस मुद्दे के संबंध में निम्नलिखित दो स्तंभों के आधार पर एक ब्लू प्रिंट (खाका) जारी किया है:

- **स्तंभ-1** डिजिटल कंपनियों द्वारा किए जाने वाले लाभ निर्धारण और किस देश को उन पर पहले कर लगाने का अधिकार है, से संबंधित है।
- **स्तंभ-2** एक तंत्र का प्रस्ताव करता है जो कुल प्रॉफिट पूल (समग्र लाभ) से एक देश (अधिकार क्षेत्र वाले) द्वारा वसूले जाने वाले कर की गणना से संबंधित है।

जी.एस.टी. क्षतिपूर्ति उपकर और संबंध विवाद (GST Compensation Cess Issue)

GST क्षतिपूर्ति उपकर में अनुमानित रूप से 30,000 करोड़ रुपये की कमी को लेकर केन्द्र और राज्यों के बीच एक विवाद शुरू हो गया।

GST (क्षतिपूर्ति उपकर और इससे जुड़ा विवाद क्या है?)

ज्ञातव्य है कि वस्तु एवं सेवा कर (GST) एक एकल कर है, जो कई अन्य अप्रत्यक्ष करों को प्रतिस्थापित करता है। इससे उत्पाद कर जैसे कर आरोपित करने की केंद्र की शक्ति समाप्त हो गई, वहीं राज्य अब एंटी टैक्स (प्रवेश कर), वैट आदि नहीं लगा सकते। राजस्व के नुकसान से जुड़ी राज्यों की आशंकाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई है—

- GST (राज्यों को प्रतिकर) अधिनियम, 2017 {GST(Compensation to States) Act, 2017} को अधिनियमित किया गया था:
 - इस अधिनियम के तहत, यह अनुमान लगाया गया है कि एक राज्य की वार्षिक राजस्व वृद्धि 14 प्रतिशत है। यदि किसी राज्य की वार्षिक राजस्व वृद्धि 14% से कम है, तो वह राज्य इस कानून के तहत प्रतिकर अर्थात् क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का हकदार होगा।
 - राज्य को देय क्षतिपूर्ति की अंतिम रूप से गणना की जाएगी और प्रत्येक दो महीने की अवधि के अंत में इसे जारी किया जाएगा।
- इस अधिनियम के तहत क्षतिपूर्ति राजस्व का सृजन GST क्षतिपूर्ति उपकर के माध्यम से किया जाएगा:
 - इसके तहत नुकसानदायक एवं विलासिता (Sin and Luxury) की वस्तुओं पर पाँच वर्ष के लिए उपकर आरोपित किया गया है।
 - वर्ष के दौरान एकत्र किए गए पूरे उपकर को GST क्षतिपूर्ति उपकर कोष नामक एक गैर-व्यपगत निधि (Non-Lapsable) में जमा करना आवश्यक है।
 - एकत्रित क्षतिपूर्ति उपकर भारत की संचित निधि में जमा होता है और फिर इसे भारत की लोक लेखा में स्थानांतरित कर दिया जाता है, जहां एक GST क्षतिपूर्ति उपकर कोष बनाया गया है।

अगस्त-सितंबर 2019 के लिए भुगतान में देरी होने के कारण यह समस्या उत्पन्न हुई। तब से, बाद के सभी भुगतानों में देरी हुई है।

इस मुद्दे पर राज्यों का रुख क्या है?

- राज्यों को क्षतिपूर्ति देने के संबंध में केंद्र अपने नैतिक और कानूनी दायित्वों को पूरा नहीं कर रहा है।
- **GST परिषद् की प्रभावशून्यता:** ज्ञातव्य है कि GST परिषद में कुल डाले गए मतों में केंद्र का वेटेज एक-तिहाई (अर्थात् केंद्र के पास एक-तिहाई मतों का अधिकार) है, जिसके कारण केंद्र के पास परिषद में निर्णय लेने के संबंध में एक आभासी वीटो पावर है (हालाँकि, एक निर्णय पारित करने के लिए तीन-चौथाई बहुमत की आवश्यकता होती है।) इसने राज्यों को परिषद की कार्य संरचना पर ही सवाल खड़ा करने का अवसर दिया है।

इस मुद्दे पर केन्द्र का रुख क्या है?

- केन्द्र ने राज्यों को तुरंत क्षतिपूर्ति देने से इंकार कर दिया है, लेकिन राज्यों को दो विकल्प प्रदान किए हैं (कुल मिलाकर होने वाली राजस्व कमी की क्षतिपूर्ति या GST के कार्यान्वयन से होने वाली कमी की भरपाई के लिए)।
- यह भी तर्क दिया गया है कि GST क्षतिपूर्ति कोष में धन का प्रवाह GST क्षतिपूर्ति उपकर से होना है और यदि यह अपर्याप्त है, तो केन्द्र अन्य स्रोतों से प्राप्त राजस्व से इसे पूरा करने के लिए बाध्य नहीं है।

संघीय वित्त व्यवस्था (Federal Finance System)

संघीय व्यवस्था में एक संघीय सरकार तथा अनेक राज्य सरकारें व स्थानीय निकाय होते हैं। वर्तमान में भारत में त्रिस्तरीय संघीय ढांचा कार्यरत है। संघीय ढांचे में वित्त के वितरण में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इसीलिए भारत का संविधान अनुच्छेद 280 के तहत वित्तीय वितरण हेतु एक वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान करता है तथा 73वें व 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से राज्यों को भी अनुच्छेद 243-I के तहत प्रत्येक 5 वर्ष में एक राज्य वित्त आयोग के स्थापना हेतु निर्देशित करता है।

भारतीय संघ में संसाधनों के बंटवारे की व्यवस्था (Procedure of Distribution of Resources in Indian Union)

केंद्र सरकार की वित्तीय व्यवस्था

केन्द्र सरकार विस्तृत आधार वाले 13 आधारों पर कर लगा सकती है-

- आय पर कर (कृषि आय छोड़कर)।
- सीमा शुल्क।
- भारत में उत्पादित या निर्मित वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क (मानवीय उपभोग हेतु एल्कोहल, अफीम, गांजा व मादक औषधि व वस्तुएं छोड़कर)।
- संपत्तियों के पूंजीमूल्य पर कर (कृषि भूमि को छोड़कर)।
- निगम कर।
- संपत्तियों पर कर (Estate Duty) (कृषि भूमि को छोड़कर)।
- संपत्तियों पर उत्तराधिकार कर (कृषि भूमि को छोड़कर)।
- रेलवे, समुद्र या वायुमार्ग से आयी वस्तुओं तथा यात्रियों पर सीमावर्ती कर तथा रेलवे किराया पर कर।
- स्टॉक एक्सचेंज एवं Future Market के व्यवहारों पर स्टाम्प ड्यूटी।
- विनिमय चेक, P-Notes, साख पत्र, बीमा पॉलिसी, अंशपत्रों व ऋण पत्रों के हस्तांतरण पर स्टाम्प ड्यूटी।
- समाचार पत्रों के विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य पर कर।
- वस्तुओं के प्रेषण पर कर।

राज्यों की वित्तीय व्यवस्था

कुछ ऐसी मदें हैं जिन पर कर लगाने का पूरा अधिकार राज्य सरकारों को प्राप्त है, इसके अंतर्गत 17 मदें सूचीबद्ध हैं-

- भूमि राजस्व।
- कृषि आय पर कर।
- कृषि भूमि के उत्तराधिकार पर कर।
- कृषि भूमि के संबंध में अस्तिकर।
- भूमि तथा भवन पर कर।
- खनिजों के अधिकार (Mineral Rights) पर कर। (संसद द्वारा खनिजों के विकास के लिए लगायी गयी सीमा के अंतर्गत)।

- मानवीय उपभोग के लिए एल्कोहलिक पेय तथा अफीम, गांजा तथा अन्य मादक पदार्थ तथा औषधियों पर कर।
- स्थानीय क्षेत्रों के भीतर उपभोग या विक्रय के लिए प्रविष्ट वस्तुओं के ऊपर कर।
- विद्युत के विक्रय अथवा उपभोग पर कर।
- समाचार पत्रों में प्रकाशित तथा रेडियो (दूरदर्शन द्वारा दिए जाने वाले विज्ञापनों को छोड़कर) विज्ञापनों पर कर।
- सड़क या अंतर्देशीय जलमार्गों के द्वारा ले जाये जाने वाली वस्तुओं तथा यात्रियों पर कर।
- सड़कों पर प्रयुक्त सभी प्रकार के वाहनों पर कर।
- जानवरों तथा नावों पर कर।
- मार्ग कर (Toll Tax)।
- व्यापार, व्यवसाय तथा रोजगार पर कर।
- कैपिटेशन कर (Capitation Tax), विलासिता पर कर जिसमें मनोरंजन, जुआ तथा बोली लगाना (Betting) पर कर सम्मिलित हैं।
- संघीय सूची I में वर्णित मदों को छोड़कर अन्य प्रपत्रों के संबंध में स्टैम्प ड्यूटी।

केन्द्रीय करों के बंटवारे के संबंध में संविधान में मूल व्यवस्था एवं संशोधन

मूल संविधान में करों के बंटवारे के संबंध में निम्नलिखित व्यवस्था की गई थी इसके तहत करों को चार प्रकारों में बांटा गया था।

- ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाये तथा वसूल किये जाते हैं तथा जिनसे प्राप्त राजस्व केन्द्र सरकार के ही पास रहता है जैसे निगम कर तथा सीमा शुल्क।
- ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाये तथा वसूल किये जाते हैं तथा जिनसे प्राप्त राजस्व राज्यों के साथ बांटे जा सकते हैं, इसमें दो प्रकार के कर आते हैं-
 - कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर (अनुच्छेद- 270) से प्राप्त राजस्व राज्यों के साथ आवश्यक रूप से बांटे जाएंगे।
 - संघीय सूची में वर्णित औषधीय तथा प्रसाधन (Medicinal and Toilet Preparations) को छोड़कर अन्य मदों पर संघीय उत्पाद शुल्क (अनुच्छेद- 272) से प्राप्त राजस्व राज्यों के साथ बांटे जा सकते हैं। (यदि संसद इस संबंध में कानून बनाता है।)
- ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाये तथा वसूल किये जाते हैं पर जिनकी निवल प्राप्ति राज्यों को सौंप दी जाती है (अनुच्छेद 269) इसके अंतर्गत निम्नांकित 8 मदें हैं-
 - कृषि संपत्ति को छोड़कर अन्य संपत्तियों के उत्तराधिकार पर कर।
 - कृषि संपत्ति को छोड़कर अन्य संपत्तियों के संबंध में अस्तिकर।
 - रेलवे, समुद्र तथा वायु मार्ग से आयी वस्तुओं तथा यात्रियों पर सीमा कर (Terminal Tax)।
 - रेलवे किराये पर कर।
 - स्टैम्प ड्यूटी को छोड़कर स्टॉक एक्सचेंज में हुए व्यवहारों पर कर।
 - समाचार पत्रों के क्रय, विक्रय तथा उनमें विज्ञापनों पर कर।
 - समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय विक्रय पर कर यदि इस प्रकार के व्यवहार अंतर्राज्यीय व्यापार के दौरान हों।
 - वस्तुओं के प्रेषण पर कर यदि इस प्रकार का प्रेषण अंतर्राज्यीय व्यापार के दौरान हों।
- ऐसे कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाये जाते हैं पर जिनकी वसूली राज्यों द्वारा की जाती है तथा जिनसे प्राप्त राजस्व राज्यों द्वारा रख ली जाती है। इस श्रेणी में औषधीय तथा प्रसाधन सामग्री पर लगा उत्पाद शुल्क तथा संघीय सूत्रों में वर्णित स्टैम्प ड्यूटी आती है।

संविधान का 80वां संशोधन (9 जून, 2000)

10वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुरूप (केन्द्रीय करों व शुल्कों की आय का 29% राज्यों के बीच बांटा जाये) अनुच्छेदों में परिवर्तन हेतु यह संविधान संशोधन किया गया था। इसके तहत निम्नलिखित संशोधन किये गये थे-

- **अनुच्छेद 269 में संशोधन-** माल के क्रय या विक्रय पर या माल के प्रेषण पर कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये व संग्रहीत किये जाएंगे तथा वे राज्यों को सौंपे जाएंगे। (समाचार पत्रों पर कर को छोड़कर)
- **अनुच्छेद 270 में संशोधन-** संघ सूची में वर्णित सभी कर व शुल्क (अनुच्छेद 268 व 269 में वर्णित करों को छोड़कर, अनुच्छेद 270 के करों पर लगाये गये सरचार्ज व उपकर को छोड़कर) राज्यों में वितरित किये जाएंगे।
- **अनुच्छेद 272-** इसको समाप्त कर दिया गया।
- संघीय उत्पाद शुल्क को आवश्यक रूप से राज्यों के साथ बांटा जायेगा।

संविधान का 101वां संशोधन (1 जुलाई, 2017)

इस संशोधन के माध्यम से सभी प्रकार के अप्रत्यक्ष करों को समाप्त कर संपूर्ण देश में 'एक देश एक कर' की अवधारणा पर वस्तु व सेवा कर लागू किया गया था।

- **वस्तु एवं सेवा कर-** इस कर में केन्द्रीय करों जैसे संघीय उत्पाद शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, सेवाकर, सभी सरचार्ज व उपकर एवं राज्य करों जैसे - वैट, बिक्री कर, विलासिता कर, मनोरंजन कर, विज्ञापन कर, लॉटरी कर को मिला दिया गया है।

केन्द्र से राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधन के लंबीय हस्तांतरण की व्यवस्था

केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को निम्न चार प्रकार से लम्बीय हस्तांतरण किया जाता है।

- **अनुच्छेद 275 के तहत अनुदान-** इस अनुदान को वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार वितरित किया जाता है।
- वित्त आयोग द्वारा निर्धारित किया जाने वाला संवैधानिक हस्तांतरण (वर्तमान में यह 42% है)।
- **अनुच्छेद 282 के तहत अनुदान-** यह योजना आयोग द्वारा योजनाओं के माध्यम से किया जाने वाला हस्तांतरण है। योजना आयोग इसी अनुच्छेद की शक्तियों का प्रयोग कर अनुदान देता था। वर्तमान में नीति आयोग की स्थापना के बाद इस प्रकार का अनुदान समाप्त कर दिया गया है।
- विभिन्न मंत्रालयों द्वारा केन्द्रीय योजनाओं के माध्यम से किया जाने वाला हस्तांतरण।

अनुच्छेद 282 के तहत हस्तांतरण हेतु पूर्ववर्त कार्यरत विभिन्न सिद्धान्त या क्षेत्रीय हस्तांतरण हेतु विभिन्न सिद्धान्त

अनुच्छेद 282- इसके तहत 'किसी भी जन उद्देश्य के लिये आकस्मिक परिस्थितियों में सरकार अनुदान दे सकती है'। योजना आयोग की स्थापना होने के पश्चात सरकार ने इस अनुच्छेद का प्रयोग योजना उद्देश्य के लिए अनुदान देने के लिये किया। समय-समय पर इस अनुदान के वितरण हेतु विभिन्न सिद्धान्त स्थापित किये गये थे जो निम्नलिखित हैं-

अनुदान आवंटन हेतु गाडगिल फार्मूला

इसके तहत अनुदान आवंटन राज्यों के मध्य निम्नलिखित मापदण्डों के आधार पर किया गया था।

- 60% राशि जनसंख्या के आधार पर।
- 10% राशि कर प्रयास के आधार पर।
- 10% राशि सिंचाई व पावर परियोजनाओं के आधार पर।

- 10% राशि राज्यों के प्रति व्यक्ति आय के आधार पर (उन राज्यों को जिनकी प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम है)
 - 10% राशि राज्यों में विशेष समस्याओं के आधार पर।
- इस सिद्धान्त का प्रयोग 4वीं व 5वीं पंचवर्षीय योजना में किया गया। इसके तहत यह व्यवस्था की गई थी कि कुल आयोजन सहायता का 30% अनुदान के रूप में और 70% ऋण के रूप में होगा तथा जम्मू एवं कश्मीर व उत्तर पूर्व में यह अनुपात 90% तथा 10% होगा।

6वीं पंचवर्षीय योजना में इस सिद्धान्त में किया गया संशोधन

इस संशोधन के माध्यम से सिंचाई व पावर की परियोजनाओं के भार को समाप्त कर प्रति व्यक्ति आय का भार 20% कर दिया गया। 6वीं, 7वीं तथा 1991-92 की वार्षिक योजना में आवंटन इसी आधार पर किया गया था।

अनुदान आवंटन हेतु प्रणव मुखर्जी सिद्धान्त (1991)

इसका प्रयोग 8वीं पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ किया गया था। इस सिद्धान्त में राज्यों के मध्य अनुदान आवंटन निम्न आधारों पर किया गया।

- 60% राशि 1971 की जनसंख्या के आधार पर।
- 25% राशि प्रति व्यक्ति आय के आधार पर।
- 7.5% राशि कर प्रयासों तथा राजकोषीय प्रबंधन के आधार पर।
- 7.5% राशि विशिष्ट समस्याओं के आधार पर।

1996 में किया गया पुनः संशोधन

- 60% राशि जनसंख्या के आधार पर (1971 की)।
 - 20% राशि प्रति व्यक्ति आय के आधार पर।
 - 10% राशि कर प्रयास पर।
 - 10% राशि विशिष्ट समस्याओं के आधार पर।
- योजना आयोग की समाप्ति के साथ ही इस प्रकार के अनुदान की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया था। इसके स्थान पर राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिशों के तहत प्राप्त संवैधानिक हस्तांतरणों की सीमा को बढ़ा दिया गया है।

वित्त आयोग (Finance Commission)

संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत राष्ट्रपति इस आयोग की स्थापना प्रत्येक 5 वर्ष में करते हैं यह राष्ट्रपति को निम्न मुद्दों पर अपनी संस्तुति देता है।

- केन्द्र व राज्यों के मध्य वितरित करों के सिद्धान्त के संबंध में।
- समेकित निधि से राज्यों को दिये जाने वाले सहायता अनुदान के सिद्धान्त के संबंध में।
- राज्यों के वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर राज्यों की समेकित निधि को बढ़ाने के उपायों का सुझाव।
- सुदृढ़ वित्त के संबंध में अन्य विषय जो राष्ट्रपति सौंपे।

14वां वित्त आयोग एवं उसकी सिफारिशें (14 Finance Commission & Their Recommendations)

माननीय राष्ट्रपति जी ने अनुच्छेद 280 के तहत 2 जनवरी 2013 को वाई वी रेड्डी के अध्यक्षता में इसका गठन किया था। इस आयोग की प्रमुख संस्तुतियां निम्नलिखित थीं।

प्रमुख संस्तुतियाँ

- कर अंतरण को ही राज्यों को संसाधनों के हस्तांतरण का प्राथमिक रास्ता होना चाहिए।

- विभाज्य सम्भरण का 42% कर अंतरण के माध्यम से होना चाहिए। (अब तक का सर्वाधिक)
- राज्यों के मध्य विभाज्य सम्भरण के क्षेत्रीय अंतरण का मापदंड निम्नलिखित होगा।
 - जनसंख्या - 17.5% (1971 की जनगणना के अनुसार)।
 - जनानिकीय परिवर्तन - 10%
 - आय दूरी - 50%
 - क्षेत्रफल - 15%
 - वन आच्छादन - 7.5%
- **अनुदान सहायता**- कर अंतरण का हिस्सा बढ़ने से राज्यों को विशिष्ट राज्यीय परियोजनाओं के लिए अनुदान देने की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ स्थानीय सरकार, आपदा प्रबंधन व कर अंतरण परवर्ती राजस्व घाटा के लिये ही अनुदान दिया जाये।
- आयोग ने स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, स्वच्छता एवं राष्ट्रीय महत्व की सार्वजनिक सेवाओं हेतु वित्त हस्तांतरण के लिये अलग संस्थागत व्यवस्था का सुझाव दिया।
- राजकोषीय लागत व लाभ पर पर्याप्त बल देते हुए एक व्यापक राजकोषीय नीति का विकास किया जाये।
- आयोग ने सभी राज्यों के संबंध में 2015-2020 के दौरान SDRF के लिये 61219 करोड़ रुपये व्यय की संतुति की। (केन्द्र राज्य अनुपात 90:10)
- SDRF का 10% राज्य उन घटनाओं से निपटने में खर्च कर सकता है जिनमें राज्य स्थानीय अर्थ में आपदा मानता है।
- विशेष श्रेणी राज्य व अन्य राज्यों के वर्गीकरण को समाप्त करने का सुझाव दिया।
- वृत्ति कर (Profession Tax) को 2500 से बढ़ाकर अधिकतम 12000 प्रति वर्ष करने की संस्तुति की।
- भविष्य में नेशनल स्मॉल सेविंग फण्ड के क्रियाशीलन से राज्यों को बाहर किये जाने का सुझाव दिया।
- FRBMA में सुधार करके April 2015 से प्रभावी राजस्व घाटा की धारणा को समाप्त किया जाये तथा स्वतंत्र राजकोषीय कार्डसिल की स्थापना की जाये जो बजट प्रस्तावों के राजकोषीय नीतिगत निहितार्थों का आकलन करें।
- सहकारी संघवाद की स्थापना के लिये अंतर्राज्यीय परिषद की वर्तमान भूमिका का विस्तार किया जाये।
- केन्द्रीय स्कीमों की संख्या को घटाकर 66 से 36 किया जाये।
- वैधानिक व्यवस्था के द्वारा एक स्वायत्त एवं स्वतंत्र जीएसटी क्षतिपूरक फंड का सृजन किया जाये।
- यह राज्यों के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्यों द्वारा पंचायतों तथा नगरपालिकाओं को संसाधनों की अनुपूर्ति के लिये उनकी संचित निधि के संवर्धन हेतु उपाय सुझायेगा।
- आयोग संघ एवं राज्यों की वर्तमान वित्त व्यवस्था, स्तर एवं राजकोषीय अनुशासन कायम रखने के प्रयासों की स्थिति की समीक्षा करेगा तथा मजबूत राजकोषीय प्रबंधन करने हेतु राजकोषीय समेकन की रूपरेखा की सिफारिश करेगा।
- उन शर्तों पर विचार करेगा जो भारत सरकार संविधान के अनुच्छेद-293(3) के अधीन सहमति देते हुए राज्यों पर अधिरोपित कर सकेगी।
- कर तथा कर भिन्न दोनों प्रकार के राजस्व के संबंध में आयोग उनका पूरी तरह से दोहन करने की संभावना पर सिफारिश देगा।
- आयोग, 14 वें वित्त आयोग की सिफारिशों का अनुसरण करते हुये राज्यों को कर-बंटवारा में पर्याप्त रूप से वृद्धि के साथ-साथ न्यू इंडिया 2022 सहित राष्ट्रीय विकास एजेंडा की अनिवार्यता जारी रखने से संघ की सरकार की वित्तीय स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करेगा।
- आयोग निम्नलिखित हेतु प्रयासों के प्रोत्साहन के लिये सुझाव देगा।
 - GST के अधीन करजाल विस्तार व गहन बनाने के लिये किये जाने वाले प्रयास।
 - जनसंख्या वृद्धि की प्रतिस्थापन दर की दिशा में प्रयास।
 - भारत सरकार की प्रमुख स्कीमों के कार्यान्वयन, आपदा अवसंरचना, SDG को प्राप्त करने के लिये किये जाने वाले प्रयास।
 - पूँजी व्यय बढ़ाने, विद्युत सेक्टर की हानियों को कम करने व आमदनी के भावी मार्ग सृजन करने हेतु किये जाने वाले प्रयास।
 - नीतिगत व विनियामक परिवर्तनों को प्रभावी करने के प्रयास तथा कारोबार को सरल बनाने में की जाने वाली प्रगति हेतु सुझाव।
 - लोक लुभावन उपायों के व्यय पर नियंत्रण लाने के प्रयास।
 - स्वच्छता, ठोस अवशिष्ट प्रबंधन एवं खुले में शौच को समाप्त करने तथा व्यवहार परिवर्तन हेतु किये गये प्रयास।
- आयोग अपनी सिफारिशों हेतु 2011 की जनगणना आँकड़ों का प्रयोग करेगा।
- आपदा प्रबंधन के वित्तपोषण के संबंध में विद्यमान व्यवस्थाओं का पुनर्विलोकन करेगा तथा उनके संबंध में उपयुक्त सिफारिशें देगा।

15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट

- 15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट चार खंडों में तैयार की गई है।
- खंड एक और दो में पहले की तरह, मुख्य रिपोर्ट और अनुलग्नक शामिल हैं।
- खंड-3 केंद्र सरकार पर आधारित है। इसमें मध्यम अवधि की चुनौतियों और आगे की रूपरेखा के साथ प्रमुख विभागों की विस्तृत भूमिका का विश्लेषण है।
- खंड-4 पूरी तरह से राज्यों पर आधारित है। प्रत्येक राज्य के वित्तीय व्यवस्था का बड़ी गहराई से विश्लेषण किया गया है और प्रत्येक राज्य की चुनौतियों को देखते हुए अलग-अलग सुझाव सामने रखे गए हैं।
- कुल मिलाकर, रिपोर्ट में 117 मुख्य सिफारिशें हैं। खंड-3 और 4 में केंद्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकारों के लिए कई सुधारों के सुझाव दिए गए हैं।

उर्ध्वाधर हिस्सेदारी

- महामारी के दौरान विशेष रूप से संसाधनों की उपलब्धता लंबे समय तक बनाए रखने के लिए, 15वें वित्त आयोग ने राज्यों की हिस्सेदारी को 41 प्रतिशत बनाए रखने की सिफारिश की है। यह 2020-21 की रिपोर्ट में दी गई सिफारिश जैसी ही है। यह राशि वितरण पूल के 42 प्रतिशत के समान स्तर पर है जैसा कि 14वें

15वां वित्त आयोग (15th Finance Commission)

संविधान के अनुच्छेद- 280 (1) के तहत राष्ट्रपति ने **N.K. सिंह**, (भारत सरकार के पूर्व सचिव) की अध्यक्षता में वित्त आयोग का गठन किया है। आयोग की संस्तुतियां 1 अप्रैल, 2020 से 31 मार्च, 2025 तक लागू होंगी।

सदस्य- शक्तिकांत दास, अनूप सिंह, अशोक लाहिड़ी, रमेश चन्द्र

सचिव- अरविंद मेहता

राष्ट्रपति जी ने वित्त आयोग को निम्नलिखित विषयों पर संस्तुति देने हेतु निर्देश दिया है-

- आयोग संघ व राज्यों के मध्य करों (संविधान का भाग 12, अध्याय 1 के तहत) के वितरण के बारे सुझाव देगा।
- यह संचित निधि में से राज्यों के राजस्व के सहायता अनुदान (अनुच्छेद-275) को शासित करने वाले सिद्धांत सुझायेगा।

वित्त आयोग द्वारा अनुशंसित है। हालांकि, इसमें जम्मू-कश्मीर की स्थिति में बदलाव के बाद बने नए केन्द्र शासित प्रदेशों लद्दाख और जम्मू-कश्मीर के आने से 1 प्रतिशत का आवश्यक समायोजन भी किया गया है।

- 15वें वित्त आयोग का आकलन है कि अगले 5 साल में सकल कर राजस्व 135.2 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगा। उसमें से, डिविजबल पूल (सेस और सरचार्ज और कलेक्शन की लागत) में कटौती के बाद राजस्व 103 लाख करोड़ रुपये रहने का अनुमान।
- राज्यों को 41 प्रतिशत हिस्सेदारी के तहत 2021-26 की अवधि में 42.2 लाख करोड़ रुपये मिलेंगे।
- इसी तरह राज्यों को 41 प्रतिशत हिस्सेदारी के तहत 42.2 लाख करोड़ रुपये और 10.33 लाख करोड़ रुपये अनुदान राशि के रूप में मिलेंगे (विस्तृत ब्यौरा बाद में दिया जाएगा)। इस तरह राज्यों की 2021-26 की अवधि के दौरान कुल हिस्सेदारी 50.9 प्रतिशत रहने का अनुमान है।
- 15वां वित्त आयोग राज्यों को दी जाने वाली राशि (हिस्सेदारी + अनुदान) केंद्र के अनुमानित राजस्व का लगभग 34 प्रतिशत हस्तांतरित करता है। जिससे केंद्र सरकार के पास अपने राजकोषीय घाटे को नियंत्रित रखने और जरूरी खर्चों को पूरा करने के लिए सहूलियत बनी रहे।

क्षैतिज हिस्सेदारी

- आवश्यकता, बराबरी, प्रदर्शन के सिद्धांत के आधार पर कुल हिस्सेदारी तय की गई है

पैमाना	हिस्सेदारी (प्रतिशत)
जनसंख्या	15%
क्षेत्रफल	15%
वन और पारिस्थितिकी	10%
आय का अंतर	45
कर और राजकोषीय प्रबंधन	2.5%
जनसांख्यिकीय	12.5%
कुल	100%

- क्षैतिज हिस्सेदारी पर, 15वां वित्त आयोग इस बात पर सहमत है कि 2011 की जनगणना के आधार पर जनसंख्या के आंकड़े बेहतर रूप से राज्यों की वर्तमान आवश्यकता को दर्शाते हैं। साथ ही उसके जरिए निष्पक्ष मूल्यांकन का भी अवसर मिलता है। जिन राज्यों ने जनसांख्यिकीय मोर्चे पर बेहतर प्रदर्शन किया है, उन्हें 15वें वित्त आयोग ने 12.5 प्रतिशत का हिस्सेदारी में वेटेज दिया है।
- 15वें वित्त आयोग ने राजकोषीय स्तर पर बेहतर काम करने वाले राज्यों को पुरस्कृत करने के लिए कर संबंधी मानदंड को फिर से लागू किया है।

राजस्व घाटा अनुदान

- राज्यों और संघ के राजस्व और व्यय के आकलन के समान मानदंडों के आधार पर आंकते हुए, 15वें वित्त आयोग ने सत्रह राज्यों को राजस्व घाटा अनुदान (आरडीजी) 2,94,514 करोड़ रुपये देने की सिफारिश की है।

स्थानीय निकायों की सरकार

- स्थानीय निकायों को 2021-26 की अवधि के लिए 4,36,361 करोड़ रुपये का कुल अनुदान दिया जाना चाहिए।
- इन अनुदानों में 8,000 करोड़ रुपये नए शहरों को काम के आधार पर दिए

जाएंगे और साझा नगरपालिका सेवाओं के लिए 450 करोड़ दिए जाएंगे। जबकि ग्रामीण स्थानीय निकायों के लिए 2,36,805 करोड़ रुपये, शहरी स्थानीय निकायों के लिए 1,21,055 करोड़ रुपये और स्थानीय निकायों के माध्यम से स्वास्थ्य अनुदान के लिए 70,051 करोड़ रुपये की राशि दी जाएगी। शहरी स्थानीय निकायों को जनसंख्या के आधार पर दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है और प्रत्येक को उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और मांग के आधार पर अनुदान दिए गए हैं। मूल अनुदान केवल उन शहरों / कस्बों के लिए प्रस्तावित हैं, जिनकी जनसंख्या दस लाख से कम है। जबकि 10 लाख से ज्यादा की आबादी वाले शहरों के लिए, 100 प्रतिशत अनुदान मिलियन-प्लस सिटीज चैलेंज फंड (एमसीएफ) के जरिए प्रदर्शन के आधार पर जोड़े गए हैं।

स्वास्थ्य

- 15वें वित्त आयोग ने सिफारिश की है कि राज्यों द्वारा 2022 तक उनके बजट का 8 प्रतिशत से अधिक स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ाया जाना चाहिए।
- डॉक्टरों की उपलब्धता में अलग-अलग राज्यों में असमानता को देखते हुए, अखिल भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा का गठन करना आवश्यक है, जैसा कि अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 की धारा 2(ए) के तहत उल्लिखित है।
- स्वास्थ्य क्षेत्र को दी जाने वाली कुल सहायता 1,06,606 करोड़ रु. की है, जो कि 15वें वित्त आयोग द्वारा अनुशंसित कुल अनुदान सहायता का 10.3 प्रतिशत है। स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए यह अनुदान बिना शर्त दी जाएगी।
- 15वें वित्त आयोग ने स्वास्थ्य अनुदान को शहरी स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों (एचडब्ल्यूसी), बिल्डिंग-कम सब सेंटर, पीएचसी, सीएचसी, ब्लॉक स्तरीय सार्वजनिक स्वास्थ्य इकाइयों के लिए कुल 70,051 करोड़ रुपये देने की सिफारिश की है और प्राथमिक स्वास्थ्य गतिविधियों के लिए बुनियादी ढांचे ग्रामीण क्षेत्रों में तैयार हो सके। जिसके जरिए उप केंद्र और पीएचसी को एचडब्ल्यूसी में परिवर्तित किया जाएगा। ये अनुदान स्थानीय निकायों को जारी किया जाएगा।
- 15वें वित्त आयोग ने शेष अनुदान राशि में से स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए 31,755 करोड़ रुपये (स्थानीय निकायों के माध्यम से कुल 1,06,606 करोड़ रुपये, स्थानीय निकाय के माध्यम से राज्य सरकार के विशिष्ट अनुदान के रूप में 70,051 करोड़ रुपये) देने की सिफारिश की है। इसमें से क्रिटिकल केयर अस्पतालों के लिए 15,265 करोड़ रुपये और सामान्य राज्यों के लिए 13,367 करोड़ और पूर्वोत्तर और पहाड़ी राज्यों के लिए 1,898 करोड़ रुपये दिए जाएंगे।
- 15वें वित्त आयोग ने सिफारिश की है कि स्वास्थ्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए 13,296 करोड़ दिए जाएं। इसमें से 1,986 करोड़ पूर्वोत्तर और पहाड़ी राज्यों सामान्य राज्यों के लिए 11,310 करोड़ दिए जाएंगे।

प्रदर्शन आधारित प्रोत्साहन और अनुदान

- 15वें वित्त आयोग ने 2022-23 से 2025-26 तक कुल 4,800 करोड़ रुपये (प्रत्येक वर्ष 1,200 करोड़ रुपये) के अनुदान की सिफारिश की है। इसका उद्देश्य राज्यों को शैक्षिक गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना है।
- इसके अलावा आयोग ने 6413 करोड़ रुपये, उच्च शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं (मातृभाषा) में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (चिकित्सा और इंजीनियरिंग) को प्रोत्साहित करने के लिए ऑनलाइन शैक्षिक गतिविधियों को बढ़ावा देने की सिफारिश की है।
- 15वें वित्त आयोग ने कृषि सुधारों को लागू करने के लिए सभी राज्यों के

लिए प्रदर्शन-आधारित प्रोत्साहन के रूप में 45,000 करोड़ रुपये देने की सिफारिश की है।

- नीति आयोग के मॉडल कानून की तर्ज पर भूमि संबंधी कानूनों में संशोधन।
- भूजल स्टॉक को बनाए रखने और उसको बढ़ावा देने वाले राज्यों को प्रोत्साहन आधारित अनुदान।
- कृषि निर्यात में वृद्धि।
- तिलहन, दालों और लकड़ी और लकड़ी आधारित उत्पादों का उत्पादन।
- उपरोक्त के अलावा, निम्नलिखित अनुदान का जानकारी तालिका में दी गई है-

क्र.सं.	अनुदान क्षेत्र	2021-26
1.	राजस्व घाटा अनुदान	294514
2.	स्थानीय निकाय अनुदान	436361
3.	आपदा प्रबंधन अनुदान	122601
4.	सेक्टर आधारित अनुदान	129986
I.	स्वास्थ्य क्षेत्र	31755
II.	स्कूली शिक्षा	4800
III.	उच्च शिक्षा	6143
IV.	कृषि आधारित सुधारों का अमल	45000
V.	पीएसजीएसवाई योजना के सड़क रख-रखाव	27539
VI.	न्यायिक	10425
VII.	लेखा	1175
VIII.	आकांक्षी जिलों और ब्लॉक	3150
5.	राज्य आधारित	49599
	कुल राशि (Rs. करोड़ में)	1033062

रक्षा और आंतरिक सुरक्षा

- वैश्विक संदर्भ में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए मौजूदा रणनीतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, 15वें वित्त आयोग ने अपने नजरिए से सकल राजस्व प्राप्तियों में संघ और राज्यों की हिस्सेदारी को फिर से तय किया है। यह केंद्र को विशेष फंडिंग तंत्र बनाने में सक्षम बनाएगा।
- केंद्र सरकार भारत के सार्वजनिक खाते में, कभी खत्म नहीं होने वाली निधि के तहत रक्षा और आंतरिक सुरक्षा के लिए आधुनिकीकरण कोष (एमएफडीआईएस) का गठन कर सकती है। 2021-26 की अवधि में प्रस्तावित एमएफडीआईएस का कुल 2,38,354 करोड़ रुपये का अनुमानित कोष हो सकता है।

आपदा जोखिम प्रबंधन

- आपदा प्रबंधन अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर शमन निधि की स्थापना की जानी चाहिए। शमन निधि का उपयोग उन स्थानीय स्तर और समुदाय-आधारित हस्तक्षेपों के लिए किया जाना चाहिए जो किसी भी तरह के आपदा के जोखिम को कम करते हैं और पर्यावरण के अनुकूल बस्तियों और आजीविका परंपराओं को बढ़ावा देते हैं।
- एसडीआरएमएफ के लिए, 15वें वित्त आयोग ने राज्यों को 2021-26 की अवधि में आपदा प्रबंधन के लिए 1,60,153 करोड़ रुपये के कुल राशि देने की सिफारिश की है। इस कोष में केंद्र सरकार 1,22,601 करोड़ और राज्य सरकारें 37,552 करोड़ रुपये निवेश करेंगी।

- 15वें वित्त आयोग ने कुल राशि के लिए छह क्षेत्रों में आवंटन की सिफारिश की है। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए 11,950 करोड़, यानी दो एनडीआरएस (विस्तार और आधुनिकीकरण और अग्निशमन सेवाओं के आधुनिकीकरण और विस्थापित लोगों के पुर्नवास) के लिए, जबकि एनडीएमएफ के तहत चार (12 सर्वाधिक सूखा प्रभावित राज्यों के लिए त्वरित सहायता, 10 पहाड़ी राज्यों में भूकंपीय और भूस्खलन जोखिम प्रबंधन और 7 सबसे अधिक आबादी वाले शहरों में बाढ़ के जोखिम को कम करना और कटाव को रोकने के उपाय)।

राजकोषीय प्रबंधन

- संघ और राज्यों दोनों के वित्तीय घाटे और कर्ज लेने के रास्ते तय करना।
- बिजली क्षेत्र सुधारों में प्रदर्शन के आधार पर राज्यों को अतिरिक्त उधार देना।
- सीएसएस को दी गई राशि के तहत वार्षिक खर्च की एक सीमा राशि तय की जानी चाहिए, जिसमें एक सीमा में प्रशासन द्वारा कम खर्च करने पर, उसकी प्रासंगिकता को साबित करना होगा। चल रही योजनाओं की समय अवधि वित्त आयोगों की समय अवधि से जोड़ा जाना चाहिए। इसके अलावा सीएसएस का तीसरे पक्ष से मूल्यांकन एक निर्धारित समय सीमा के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। निगरानी सूचना का प्रवाह नियमित रूप से होना चाहिए, जिससे इसमें बेहतर परिणाम और विश्वसनीय जानकारी मिल सके।
- 15वें वित्त आयोग ने चुनौतियों और समकालीन अनिश्चितताओं का विश्लेषण करते हुए कहा है कि हम मानते हैं कि एफआरबीएम अधिनियम में एक बड़े पुनर्गठन की आवश्यकता है। इसी आधार पर उसने सिफारिश की है कि तय समय के अंदर ऋण स्थिरता के लक्ष्य को हासिल कर उसे परिभाषित करना जरूरी है, जिसकी एक उच्च स्तरीय अंतर-सरकारी समूह द्वारा समीक्षा की जानी चाहिए। यह उच्च शक्ति वाला समूह नए एफआरबीएम ढांचे को तैयार कर सकता है और इसके कार्यान्वयन की देखरेख कर सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि केंद्र और राज्य सरकारें समूह की सिफारिशों के आधार पर अपने एफआरबीएम अधिनियमों में संशोधन करें, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उनके कानून राजकोषीय स्थिरता के अनुरूप हों। इस उच्चस्तरीय अंतर-सरकारी समूह को 15वें वित्त आयोग की विविध सिफारिशों के कार्यान्वयन की देखरेख करने का काम भी सौंपा जा सकता है।
- राज्य सरकारें स्वतंत्र सार्वजनिक ऋण प्रबंधन सेल के गठन की संभावना तलाश सकती हैं जो उनके ऋण कार्यक्रम को कुशलतापूर्वक लागू कर सकेंगे।

भुगतान संतुलन, विनिमय दर, अंतर्राष्ट्रीय संगठन एवं बौद्धिक संपदा अधिकार (Balance of Payments, Exchange Rates, International Organizations and Intellectual Property Rights)

भुगतान संतुलन (Balance of Payments)

भुगतान शेष सामान्यतः एक वर्ष की समयावधि के दौरान किसी देश के निवासियों का शेष विश्व के निवासियों के साथ हुए सभी मौद्रिक लेन-देन के लेखांकन का विवरण होता है। ये लेन-देन देश के व्यक्तियों, फर्मों तथा सरकार द्वारा किए जा सकते हैं। यदि मौद्रिक लेन-देन को विस्तृत रूप से देखा जाए तो इसका संबंध वस्तुओं के आयात एवं निर्यात से है। भुगतान शेष की भाषा में इन्हें 'तैयार वस्तुएँ' (Merchandise) या 'दृश्य मदों का व्यापार' (Visible Trade) कहा जाता है। मौद्रिक लेन-देन में सेवाओं का आयात-निर्यात भी होता है। इन्हें 'अदृश्य मदों का व्यापार' कहा जाता है क्योंकि सेवाएं अदृश्य होती हैं। जब वे सीमा पार करती हैं तो उन्हें देखा नहीं जा सकता। भुगतान शेष की मौद्रिक व्यवस्था में वित्तीय परिसंपत्तियों की अंतर्राष्ट्रीय बिक्री एवं खरीद भी शामिल हैं। इन परिसंपत्तियों में स्टॉक एवं बॉन्ड शामिल हैं। चतुर्थ मद के रूप में वास्तविक परिसंपत्तियों की अंतर्राष्ट्रीय खरीद और बिक्री शामिल हैं। इनमें प्लांट एवं मशीनरी शामिल हैं।

इस प्रकार देश में विदेशी विनिमय का प्रवाह तब होता है जब हम वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात करते हैं या फिर जब विदेशी हमारी वित्तीय या वास्तविक परिसंपत्तियों में निवेश करते हैं। इसी प्रकार हमारे देश से शेष विश्व में विदेशी विनिमय का प्रवाह तब होता है, जब भारत या कोई देश किसी अन्य देश से वस्तुओं और सेवाओं का आयात करता है या फिर किसी देश का निवासी अन्य देश की वित्तीय या वास्तविक परिसंपत्ति में निवेश करता है।

भुगतान शेष के खाते में विदेशी विनिमय की सभी प्राप्तियों या भुगतानों का रिकॉर्ड रखा जाता है। भुगतान शेष में प्राप्तियों को क्रेडिट मदों (Credit Items) के रूप में रिकॉर्ड रखा जाता है। जबकि भुगतान डेबिट मदों (Debit Items) के रूप में रिकॉर्ड किए जाते हैं। इस प्रकार किसी भी देश के भुगतान शेष खाते से देश की अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन होता है।

भुगतान शेष खाते के घटक (Component of Balance of Payment Account)

भुगतान शेष खाते के घटक के रूप में निम्न को शामिल किया जाता है-

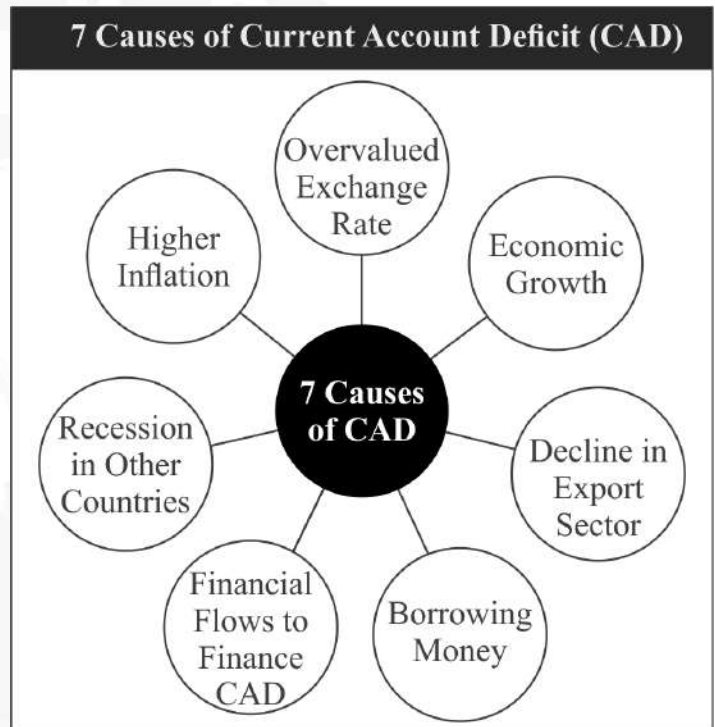
चालू खाता (Current Account)

इस लेन-देन को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है-

- **वस्तुओं अथवा पण्य का निर्यात व आयात-** इसमें सभी प्रकार की भौतिक वस्तुओं का आयात व निर्यात तथा दृश्य व्यापार सम्मिलित है।
- **अदृश्य मदों का आयात व निर्यात-** इसमें ऐसी मदें सम्मिलित की जाती हैं जो अमूर्त हैं। इसीलिये इन्हें अदृश्य मदें कहा जाता है। इन्हें तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया है-
 - **सेवाएँ-** इसमें देश के निवासियों द्वारा क्रय/विक्रय की गयी गैर-कारक सेवाएँ अंतर्निहित हैं।
 - **एक पक्षीय हस्तांतरण-** इसमें वर्तमान अवधि में बिना किसी सेवा या कार्य के प्राप्त होने वाले भुगतान एवं प्राप्तियों सम्मिलित होते हैं। इसमें निजी व आधिकारिक दोनों स्तरों पर हस्तांतरण शामिल होते हैं जैसे विदेशों में निवास कर रहे लोगों द्वारा अपने परिवारों के लिये किये जाने वाले नकद धन प्रेषण आदि।
 - **आय-** इसे निम्न दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है-

- **निवेश आय (ब्याज, लाभांश, लाभ आदि)**- यह वह आय है जो किसी देश के निवासियों द्वारा विदेशों में किये गये उनके निवेश पर प्राप्त/देय होती है।
- **कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति-** इसके अंतर्गत किसी देश के निवासियों को गैर-निवासियों द्वारा प्राप्त तथा देश की निवासियों द्वारा गैर-निवासियों को भुगतान किये गये वेतन, मजदूरी शामिल है।

चालू खाता घाटा (Current Account Deficit)



यह वस्तुओं, सेवाओं व निवेश आय सहित सभी आयातों के मूल्य तथा सभी निर्यातों के मूल्य के बीच के अंतर को दर्शाता है। यह घरेलू बचत और घरेलू निवेश के बीच के अंतर को प्रदर्शित करता है तथा स्पष्ट करता है कि विदेशी बचत द्वारा कहाँ तक इस घाटे को वित्त पोषित किया जा सकता है।

चालू खाते का महत्व

- चालू खाते के लेन-देन शुद्ध निर्यातों (X-M) को प्रकट करते हैं, जो कि घरेलू अर्थव्यवस्था में समग्र मांग का एक महत्वपूर्ण घटक है।
- चालू खाते के लेन-देन शेष विश्व से शुद्ध कारक आय को प्रकट करते हैं, जो राष्ट्रीय आय का एक महत्वपूर्ण घटक है।
- समग्र मांग पर अपने प्रत्यक्ष प्रभाव के कारण, चालू खाते के लेन-देन, घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को प्रभावित करते हैं।

पूँजी खाता (Capital Account)

पूँजी खाते के अंतर्गत ऐसी प्राप्तियों या भुगतानों का रिकॉर्ड रखा जाता है, जिसके कारण विश्व की तुलना में देश की परिसंपत्ति या देयता की स्थिति प्रभावित होती

है। इसके अंतर्गत किये गए लेन-देन के कारण भावी दावे उत्पन्न होते हैं। पूँजीगत खाते के मुख्य घटकों में उधार तथा विदेशी निवेश शामिल हैं। उधार को भी दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। (1) बाहरी वाणिज्यिक उधार (2) बाहरी सहायता।

बाहरी वाणिज्यिक उधार, ब्याज की सामान्य दर पर उपलब्ध होता है, जबकि बाहरी सहायता, ब्याज की रियायती दर पर उपलब्ध होती है, परन्तु उधार किसी भी देश की देनदारी (Liability) को बढ़ाता है। पूँजी खाते में विदेशी विनिमय द्वारा सभी प्राप्तियों को जमा मद के रूप में रिकॉर्ड किया जाता है। अतः उधार को जमा मद (Credit Item) के रूप में रेखांकित किया जाता है। पूँजीगत खाते का दूसरा घटक विदेशी निवेश है जिनमें पोर्टफोलियो निवेश तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश शामिल हैं।

पूँजीगत खाते के अन्य घटकों में NRI जमाएँ, बैंकिंग पूँजी तथा अल्पकालीन व्यापार जमाएँ भी शामिल हैं। NRI जमाओं में अनिवासी भारतीयों द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था में की गई जमाओं को पूँजी खाते का एक घटक माना जाता है। बैंकिंग पूँजी से तात्पर्य वाणिज्यिक बैंकों द्वारा विदेशी परिसंपत्तियों को रखने से है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा विदेशी परिसंपत्तियों की तरलता में परिवर्तित करने से अर्थव्यवस्था में विदेशी विनिमय का अंतर्वाह होता है।

पूँजी खाते का महत्त्व

- पूँजी खाते के लेन-देन शेष विश्व से उधार को प्रकट करते हैं। यह घरेलू अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का सूचक है।
- पूँजी खाते के लेन-देन घरेलू अर्थव्यवस्था के बाजार संभाव्य को प्रकट करते हैं। इसके साथ यह हमारी (GDP) संवृद्धि के लिए शेष विश्व पर निर्भरता को भी प्रकट करता है।
- पूँजी खाते के लेन-देन अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार के स्तर पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डालते हैं। ये लेन-देन शेष विश्व के संबंध में अर्थव्यवस्था की केवल परिसंपत्ति देयता की स्थिति को प्रकट करते हैं।

पूँजी खाते से संबंधित मुद्दे

(Issues Pertaining to the Capital Account)

- **विदेशी वाणिज्यिक उधार (External Commercial Borrowings)** - 1980 के दशक से पहले, चालू खाते में लगभग संपूर्ण घाटे की भरपाई रियायती दरों पर प्राप्त सहायता से की जाती थी। परन्तु 1980 के दशक में (खासतौर पर 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में) रियायती सहायता की अत्यधिक कमी के कारण और बढ़ते हुए घाटे के कारण, विदेशी वाणिज्यिक उधारों पर निर्भरता काफी बढ़ गई।
 - **अनिवासी जमाएँ (Non-Resident Deposits)** - इसके पीछे सरकार की स्पष्ट नीति (Conscious Policy) जिम्मेदार थी, जिसके तहत सरकार ने अनिवासी भारतीयों को भारत में निवेश करने के लिए तथा साधनों का अंतरण करने के लिए कई तरह की छूटें व रियायतें प्रदान कीं। जैसे उच्च ब्याज दरें, विनिमय दर में उतार-चढ़ाव के खतरों से बचने के लिए गारंटी, राजकोषीय रियायतें इत्यादि। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी वाणिज्यिक उधारों की तरह ही, अनिवासी जमाएँ भी साधन एक ऋण का महंगा तरीका है क्योंकि इन जमाओं को प्राप्त करने के लिए उच्च ब्याज की दरें देनी पड़ती हैं।
- इसके अलावा, विदेशी निवेशकों की तरह ही, अनिवासी भारतीयों का मकसद भी अपने प्रतिफल को (या लाभ को) अधिकतम करना है।
- **अल्पकालीन ऋण (Short Term Debt)** - कई बार भुगतान शेष में घाटे की भरपाई करने के लिए देश अल्पकालीन ऋणों का सहारा लेते हैं।

उदाहरण के लिए 31 मार्च, 1990 के दिन भारत के कुल विदेशी ऋण में अल्पकालीन ऋणों का हिस्सा 10% था (कुल विदेशी ऋण का दसवाँ हिस्सा)। परन्तु यह धन बेहतर प्रतिफल की तलाश में किया जाने वाला अल्पकालीन निवेश होता है अर्थात् जिस देश में ब्याज दर बढ़ती है, यह धन उस देश की ओर आकर्षित होता है (इसलिए इसे अक्सर 'Hot Money' की संज्ञा दी जाती है)। इस प्रकार के अल्पकालीन ऋण पर अधिक निर्भरता बुद्धिमानी नहीं है क्योंकि इसका देश से एकाएक बहिर्गमन होने पर भुगतान शेष में संकट की स्थिति पैदा हो सकती है। कुल विदेशी ऋण में अल्पकालिक ऋण (1 वर्ष तक मूल परिपक्वता के साथ) की हिस्सेदारी मार्च 2021 के अंत में घटकर 17.7% हो गयी तथा दिसम्बर, 2021 के अंत में यह 17% रह गया था।

भुगतान शेष व व्यापार शेष (Balance of Payments & Balance of Trade)

भुगतान शेष (Balance of Payments)

- भुगतान शेष एक देश के शेष विश्व के साथ हुए सभी आर्थिक सौदों का संक्षिप्त विवरण है।
- यह वस्तुओं तथा सेवाओं से संबंधित लेन-देनों को रिकॉर्ड रखता है।
- यह चालू खाते तथा पूँजी खाते दोनों के लेन-देनों को रिकॉर्ड में रखता है।
- भुगतान शेष सदैव संतुलित होता है, यदि इसमें भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के कोष (सरकारी कोष) प्रकट किए जाते हैं।



व्यापार संतुलन/व्यापार शेष (Balance of Trade)

- व्यापार शेष दृश्य निर्यातों (X) तथा दृश्य आयातों (M) के बीच का अंतर है।
- यह केवल वस्तुओं से संबंधित लेन-देनों को रिकॉर्ड करता है।
- यह पूँजी खाते के लेन-देनों को रिकॉर्ड नहीं करता है।
- इसमें भौतिक वस्तुओं से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन शामिल किए जाते हैं जिन्हें सीमा रेखा को पार करते हुए देखा जा सकता है।
- यह या तो व्यापार संतुलन धनात्मक ($X > M$) होता है या ऋणात्मक व्यापार संतुलन ($X < M$) होता है। यह केवल तब संतुलित होता है जब $X = M$ हो।

विदेशी ऋण (Foreign Debt)

किसी भी देश का विदेशी ऋण उसके भुगतान शेष के चालू खाते के व्यवहार का सही-सही प्रतिबिंब (Mirror Image) होता है। इस अर्थ में यदि देखा जाए तो भारत के विदेशी ऋण की बकाया मात्रा (Outstanding Volume) पिछले वर्षों में चालू खाते में होने वाले घाटों का संचयन (Accumulation) माना जा सकता है।

मार्च 1991 के अंत में भारत का विदेशी ऋण 83.8 बिलियन डॉलर था। सितंबर 2020 के अंत तक कुल विदेशी ऋण 556.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक बढ़ गया तथा जून 2021 में भारत का विदेशी ऋण 571.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर था तथा सितम्बर, 2021 के अंत में बढ़कर 593.1 अरब डॉलर हो गया।

मार्च 2022 के अंत तक भारत का बाहरी ऋण

मार्च 2022 के अंत में विदेशी ऋण के स्टॉक के साथ-साथ पिछली तिमाहियों के संशोधित डेटा विवरण I और II में निर्धारित किए गए हैं। मार्च 2022 के अंत तक भारत के विदेशी ऋण से संबंधित प्रमुख घटना क्रम नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

- मार्च 2022 के अंत में, भारत का विदेशी ऋण 620.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर था, जो मार्च 2021 के अंत में अपने स्तर से 47.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि दर्ज करता है।
- मार्च 2022 के अंत में विदेशी ऋण से जीडीपी अनुपात घटकर 19.9 प्रतिशत हो गया, जो मार्च 2021 के अंत में 21.2 प्रतिशत था।
- भारतीय रुपये की तुलना में अमेरिकी डॉलर के मूल्यवृद्धि और येन, एस डी आर और यूरो जैसी प्रमुख मुद्राओं के कारण मूल्यांकन लाभ 11.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर पर रखा गया। मूल्यांकन प्रभाव को छोड़कर, मार्च 2021 के अंत में 47.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बजाय मार्च 2022 के अंत विदेशी ऋण में 58.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि हुई।
- मार्च 2022 के अंत में, दीर्घकालिक ऋण (एक वर्ष से अधिक की मूल परिपक्वता के साथ) 499.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर रखा गया था, जो मार्च 2021 के अंत में अपने स्तर से 26.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वृद्धि दर्ज करता है।
- कुल विदेशी ऋण में अल्पावधि ऋण (एक वर्ष तक की मूल परिपक्वता के साथ) की हिस्सेदारी मार्च 2022 के अंत में बढ़कर 19.6 प्रतिशत हो गई, जो मार्च 2021 के अंत में 17.6 प्रतिशत थी। इसी तरह, अल्पकालिक ऋण का अनुपात (मूल परिपक्वता) विदेशी मुद्रा भंडार में मार्च 2022

के अंत में बढ़कर 20.0 प्रतिशत हो गया (मार्च 2021 के अंत में 17.5 प्रतिशत)।

- अवशिष्ट परिपक्वता के आधार पर अल्पकालिक ऋण (अर्थात्, ऋण दायित्व जिसमें मूल परिपक्वता द्वारा दीर्घकालिक ऋण शामिल है जो अगले बार हर महीनों में गिर रहा है और मूल परिपक्वता द्वारा अल्पकालिक ऋण) मार्च के अंत में कुल विदेशी ऋण का 43.1 प्रतिशत है। 2022 (मार्च 2021 के अंत में 44.1 प्रतिशत) और विदेशी मुद्रा भंडार का 44.1 प्रतिशत (मार्च 2021 के अंत में 43.8 प्रतिशत)।
- मार्च 2022 के अंत में 53.2 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ अमेरिकी डॉलर मूल्य वर्ग का ऋण भारत के विदेशी ऋण का सबसे बड़ा घटक बना रहा, इसके बाद भारतीय रुपया (31.2 प्रतिशत), एसडीआर (6.6 प्रतिशत), येन (5.4) में मूल्य वर्गित ऋण का स्थान रहा। प्रतिशत), और यूरो (2.9 प्रतिशत)।
- 2021-22 के दौरान सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों के बकाया ऋण में वृद्धि हुई।
- कुल विदेशी ऋण में गैर-वित्तीय निगमों के बकाया ऋण की हिस्सेदारी सबसे अधिक 40.3 प्रतिशत थी, इसके बाद जमा लेने वाले निगमों (केंद्रीय बैंक को छोड़कर) (25.6 प्रतिशत), सामान्य सरकार (21.1 प्रतिशत) और अन्य वित्तीय निगम (8.6 प्रतिशत)।
- 33.0 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ ऋण बाह्य ऋण का सबसे बड़ा घटक बना रहा, इसके बाद मुद्रा और जमा (22.7 प्रतिशत), व्यापार ऋण और अग्रिम (19.0 प्रतिशत) और ऋण प्रतिभूतियाँ (17.1 प्रतिशत) का स्थान रहा।
- मार्च 2021 के अंत में ऋण सेवा (अर्थात् मूल धन की चुकौती और ब्याज भुगतान) वर्तमान प्राप्तियों के 5.2 प्रतिशत तक गिर गई, जबकि मार्च 2021 के अंत में यह 8.2 प्रतिशत थी, जो कम चुकौती और उच्च वर्तमान प्राप्तियों को दर्शाती है।

भारत के प्रमुख बाहरी ऋण संकेतक

अंत से मार्च	बाहरी ऋण (अरब अमेरिकी डॉलर)	सकल घरेलू उत्पाद के लिए बाहरी ऋण का अनुपात	ऋण सेवा अनुपात	विदेशी मुद्रा भंडार का कुल ऋण से अनुपात	कुल ऋण के लिए रियायती ऋण का अनुपात	विदेशी मुद्रा भंडार के लिए अल्पकालिक ऋण का अनुपात	अल्पकालिक ऋण का कुल ऋण से अनुपात
1	2	3	4	5	6	7	8
1991	83.8	28.3	35.3	7.0	45.9	146.5	10.2
1996	93.7	26.6	26.2	23.1	44.7	23.2	5.4
2001	101.3	22.1	16.6	41.7	35.4	8.6	3.6
2006	139.1	17.1	10.1	109.0	28.4	12.9	14.0
2007	172.4	17.7	4.7	115.6	23.0	14.1	16.3
2008	224.4	18.3	4.8	138.0	19.7	14.8	20.4
2009	224.5	20.7	4.4	112.2	18.7	17.2	19.3
2010	260.9	18.5	5.8	106.9	16.8	18.8	20.1
2011	317.9	18.6	4.4	95.9	14.9	21.3	20.4
2012	360.8	21.1	6.0	81.6	13.3	26.6	21.7
2013	409.4	22.4	5.9	71.3	11.1	33.1	23.6

2014	446.2	23.9	5.9	68.2	10.4	30.1	20.5
2015	474.7	23.8	7.6	72.0	8.8	25.0	18.0
2016	484.8	23.4	8.8	74.3	9.0	23.2	17.2
2017	471.0	19.8	8.3	78.5	9.4	23.8	18.7
2018	529.3	20.1	7.5	80.2	9.1	24.1	19.3
2019	543.1	19.9	6.4	76.0	8.7	26.3	20.0
2020 आर	558.4	20.9	6.5	85.6	8.8	22.4	19.1
2021 पीआर	573.7	21.2	8.2	100.6	9.0	17.5	17.6
2022 पी	620.7	19.9	5.2	97.8	8.3	20.0	19.6

नोट: आर: संशोधित। पीआर: आंशिक रूप से संशोधित। पी: अनंतिम।

नोट: मार्च, 2022 में देश के कुल विदेशी ऋण में डॉलर आधारित ऋण का हिस्सा 53.2 प्रतिशत और रुपया ऋण का हिस्सा 31.2 प्रतिशत था।

विदेशी करेंसी भंडार (Foreign Currency Reserves)

विदेशी मुद्रा भंडार को भुगतान संतुलन में आरक्षित मुद्रा भी कहा जाता है। वर्ष 1991-92 में भारत के सामने विदेशी करेंसी का जो गंभीर संकट आया और यह खतरा पैदा हो गया कि भारत अपनी ऋण देयता संबंधी अनुबंधों को भी शायद पूरा न कर पाए, उससे यह स्पष्ट हो गया कि अंतर्राष्ट्रीय विश्वास बनाए रखने के लिए और भुगतान शेष के संकट से उबरने के लिए उपर्युक्त विदेशी करेंसी भंडारों का होना अनिवार्य है। इसलिए हाल के वर्षों में भारतीय रिजर्व बैंक ने विदेशी करेंसी भंडारों के निर्माण पर काफी ध्यान दिया है ताकि चालू खाते में घाटा होने पर तथा अन्य किसी भी प्रकार की विदेशी करेंसी संबंधी समस्या आने पर, इन भंडारों से भुगतान करके संकट टाला जा सके। भारत का विदेशी मुद्रा भंडार 1 अक्टूबर, 2021 को खत्म हुए सप्ताह में 1.169 अरब डॉलर घटकर 637.477 अरब डॉलर रह गया। आरक्षित मुद्रा के बढ़ाए जाने से अर्थव्यवस्था के जोखिम को संतुलित किया जा सकता है। इस संबंध में RBI के द्वारा वर्तमान में आरक्षित मुद्रा के अंतर्गत सोने के संरक्षित भंडार को बढ़ाए जाने के प्रयास कर रही है ताकि निरंतर उठ रहे साइबर खतरे से भी निपटा जा सके।

= शून्य हो। इस स्थिति में सरकारी कोषों में किसी प्रकार का संचालन नहीं होता है। भुगतान शेष में असंतुलन तब होता है, जब चालू खाता तथा पूँजीगत खाता शेष का कुल जोड़ शून्य नहीं होता है। यदि चालू खाता शेष तथा पूँजीगत खाता का कुल जोड़ धनात्मक होता है तो इसका अर्थ यह है कि भुगतान शेष आधिक्य को प्रकट कर रहा है। यदि चालू खाता शेष तथा पूँजीगत खाता शेष का कुल जोड़ ऋणात्मक होता है तो यह भुगतान शेष घाटे को प्रकट करता है।

भुगतान असंतुलन का वित्तपोषण

इस असंतुलन को आंतरिक या विदेशी वित्तपोषण द्वारा पोषित किया जाता है। विदेशी वित्त पोषण के अंतर्गत FDI प्रवाह, पोर्टफोलियो प्रवाह, विदेशों से लिये जाने वाले ऋण आदि सम्मिलित होते हैं। जबकि आंतरिक वित्तपोषण के अंतर्गत RBI का विदेशी ऋण भंडार व भारतीय पूँजी बाजार शामिल होते हैं।

भुगतान असंतुलन को दूर करने के उपाय

- मौद्रिक नीति व राजकोषीय नीति का सुदृढ़ कार्यान्वयन।
- मुद्रा की आपूर्ति को विनियमित करना ताकि आयात में कमी हो तथा निर्यात में वृद्धि हो।
- मुद्रा अवमूल्यन जैसे उपकरणों के माध्यम से आयात को हतोत्साहित कर निर्यात को प्रोत्साहित करना।
- **निर्यात संवर्धन**- निर्यात शुल्क में कमी करना, निर्यात सब्सिडी प्रदान करना, निर्यात उत्पादन को प्रोत्साहित करना तथा निर्यात विपणन को बढ़ावा देना।
- **आयात नियंत्रण**- आयात शुल्क को बढ़ाना, आयात कोटा के माध्यम से आयात को सीमित करना, लाइसेंसिंग प्रणाली।
- FDI में वृद्धि हेतु नीतियों का निर्माण करना।
- स्वर्ण आयात को सीमित करने हेतु कदम उठाना।

भुगतान शेष की स्वायत्त तथा समायोजक मदें (Autonomous & Accommodating Items of Balance of Payment Account)

स्वायत्त मदें

स्वायत्त या स्वप्रेरित मदों से अभिप्राय उन सौदों से है जो लाभ कमाने के विचार से किए जाते हैं। इन्हीं स्वायत्त मदों के कारण भुगतान शेष आधिक्य या घाटा होता है।



भुगतान शेष में संतुलन या असंतुलन (Equilibrium & Disequilibrium in Balance of Payment)

भुगतान शेष में संतुलन तब होता है, जब चालू खाता शेष + पूँजी खाता शेष + भूल चूक

- स्वायत्त मदें भुगतान शेष में असंतुलन उत्पन्न कर सकती हैं।
- स्वायत्त मदों में सीमाओं के आर-पार की वस्तुओं के संचालन को शामिल किया जाता है, जैसे- उपभोक्ता वस्तुओं या पूँजीगत वस्तुओं का निर्यात एवं आयात।

समायोजक मदें

- समायोजक मदें लाभ के विचार से स्वतंत्र होती हैं।
- इन मदों के द्वारा भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक किया जाता है।
- समायोजक मदों में सीमा पारीय वस्तुओं के संचालन की बजाए भारतीय रिजर्व बैंक में रखे सरकारी कोषों को सम्मिलित किया जाता है।
- समायोजक मदों को भुगतान शेष की रेखा के नीचे की मदों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

भारत का भुगतान शेष: 1991 से पूर्व की अवधि (India's Balance of Payments: The Prior Period 1991)

जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसके पास 1,733 करोड़ रुपए के पौंड स्टर्लिंग (Sterling Balances) थे। इसका कारण यह था कि दूसरे विश्व युद्ध में इंग्लैंड ने भारत से बड़ी मात्रा में, अपनी युद्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खरीददारी की। इस प्रकार आजादी के समय विदेशी विनिमय की स्थिति संतोषजनक थी। परंतु आजादी मिलने के बाद जैसे ही युद्ध काल की रुकी हुई मांग को पूरा करने के लिए तथा खाद्यान्नों व कच्चे माल की कमी को पूरा करने के लिए आयातों में वृद्धि हुई, व्यापार शेष प्रतिकूल हो गया। इस घाटे की पूर्ति करने के लिए पौंड का इस्तेमाल करना पड़ा।

पहली योजना में व्यापार शेष में कुल घाटा 541.9 करोड़ रुपए था। परंतु अदृश्य मदों पर काफी अधिशेष होने के कारण, भुगतान-शेष की स्थिति संतोषजनक थी। वस्तुतः भुगतान-शेष के चालू खाते में घाटा केवल 42.3 करोड़ रुपए था। वर्ष 1956-57 से 1991 तक के काल को बिमल जालान ने तीन अवधियों में विभाजित किया है- 1956-57 से 1975-76 तक (अवधि 1), 1976-80 (अवधि 2) तथा 1980-81 से लेकर 1992-93 तक (अवधि 3)। यह वर्गीकरण भुगतान शेष की समस्या के स्वरूप के आधार पर, कुल समष्टि वातावरण के आधार पर तथा विदेशी सहायता की उपलब्धता के आधार पर किया गया है। पहली व तीसरी अवधि में भुगतान शेष की स्थिति बहुत गंभीर थी। इसके विपरीत, दूसरी अवधि में भुगतान शेष की स्थिति अनुकूल थी तथा विदेशी विनिमय मुद्रा के काफी भंडार थे। किसी वर्ष में भुगतान शेष की समस्या है अथवा नहीं, यह जानने के लिए बिमल जालान ने निम्न दो कसौटियों का प्रयोग किया है-

- चालू खाते में कितना घाटा है?
- विदेशी करेंसी के भंडार कितने हैं?

यदि किसी वर्ष में चालू खाते में घाटा कुल घरेलू उत्पाद के 1 प्रतिशत से अधिक है तथा विदेशी करेंसी के भंडार तीन महीने के आयातों के लिए काफी नहीं हैं तो यह कहा जा सकता है कि उस वर्ष में भुगतान शेष की समस्या है।

संतोषजनक भुगतान शेष स्थिति के कारण (Reasons for Satisfactory Balance of Payments Situation)

- **वर्तमान में अदृश्य मदों की बढ़ती आय (High Earnings From Invisibles Items)**- वर्ष 1993-94 में अदृश्य मदें लगभग 2898 मिलियन डॉलर थीं जो कि वर्ष 1999-2000 तक 13143 मिलियन डॉलर हो गईं। वर्ष 2017-18 की प्रथम छमाही तक इस मद का आकार 52.548 मिलियन डॉलर तक है। यदि व्यापार शेष को देखा जाए तो वर्ष 1993-94

में 4056, वर्ष 1999-2000 में 17841, वर्ष 2020-2021 से पहली छमाही तक 44758 मिलियन डॉलर तक रहा है। वर्ष 2001, 2002, 2003, 2004 में अदृश्य मदों से निवल आय व्यापार शेष घाटे से अधिक रही जिसके कारण सॉफ्टवेयर निर्यात में वृद्धि वृद्धि थी।

- **विदेशी वाणिज्यिक उधार में वृद्धि (Rise in Foreign Commercial Borrowings)**- 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में चालू खाते में घाटा कम करने के लिए काफी बड़ी मात्रा में विदेशी वाणिज्यिक उधार लिये गए। वस्तुतः इस अवधि में देश में कुल पूँजी अंतर्प्रवाह में विदेशी वाणिज्यिक उधार का हिस्सा 25% से भी अधिक था। 1991 के बाद की अवधि में कुछ वर्षों में विदेशी वाणिज्यिक उधारों पर काफी अधिक निर्भरता बनी रही। मार्च 2021 के कुल उधारी में से 5.35 बिलियन अमेरिकी डॉलर बाहरी वाणिज्यिक उधार (ECB) के अनुमोदन के माध्यम से आये।
- **अनिवासी जमाएँ (Non-Resident Deposits)**- 1980 के दशक में विदेशी वाणिज्यिक उधारों के साथ-साथ अनिवासी जमाओं में भी तेज वृद्धि हुई। यह स्थिति 1990 के दशक में भी बनी रही। वस्तुतः अनिवासी भारतीयों को भारत में धन भेजने के लिए तथा निवेश करने के लिए भारत सरकार कई तरह की छूटों व रियायतों की घोषणा करती रही है। 1993-94 में अनिवासी जमाएँ, 1205 मिलियन डॉलर थी जो उस वर्ष प्राप्त होने वाले कुल पूँजी अंतर्प्रवाह (निवल) का 12.2% था।
- **विदेशी निवेश की भूमिका (Role of Foreign Investment)**- 1991 के बाद से देश में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर विदेशी निवेशकों के लिए तरह-तरह की रियायतों व छूटों की घोषणा की है। इनके परिणामस्वरूप, देश में पिछले कुछ वर्षों में विदेशी निवेश में काफी वृद्धि हुई है। चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही (अप्रैल-जून 2021-22) में एफडीआई (FDI) में दोगुना बढ़ोत्तरी हुई है। इस तिमाही में देश में 22.53 अरब डॉलर का एफडीआई आया, जबकि पिछले वित्त वर्ष (2020-21) की पहली तिमाही में देश में कुल 11.84 अरब डॉलर का एफडीआई आया था। वित्त वर्ष की पहली तिमाही में FDI इक्विटी प्रवाह 168 फीसदी बढ़कर 17.57 अरब डॉलर पर पहुँच गया, जो एक साल पहले समान तिमाही में 6.56 अरब डॉलर था। कुल FDI इक्विटी प्रवाह में सबसे अधिक 27 फीसदी हिस्सेदारी ऑटोमोबाइल सेक्टर की रही। उसके बाद कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर (17 फीसदी) और सर्विस सेक्टर (11 फीसदी) का हिस्सा रहा।

भुगतान शेष का महत्व (Importance of Balance of Payment)

घरेलू अर्थव्यवस्था की वित्तीय स्थिति के बारे में भुगतान शेष से पता लगाया जाता है। भुगतान शेष खाते, किसी देश का शेष विश्व की तुलना में घरेलू अर्थव्यवस्था की वित्तीय के साथ-साथ उधार शेष क्षमता एवं विश्व पर निर्भरता को प्रकट करता है।

- यह राष्ट्रीय आय का एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि इससे भुगतान शेष के आँकड़ों एवं विदेशों से शुद्ध कारक आय की जानकारी प्राप्त होती है।
- भुगतान शेष खाते में प्राप्त शुद्ध निर्यात (X-M) (घरेलू अर्थव्यवस्था में समग्र मांग) के एक घटक के रूप में है। यदि (X-M) में वृद्धि होती है तो समग्र मांग में भी वृद्धि होगी, जो कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को प्रभावित करती है।
- भुगतान शेष खाता किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की बाजार संभाव्यता (Market Potential) को दर्शाता है। साथ ही, यह विदेशी निवेश के आकार को भी दर्शाता है।
- भुगतान शेष के खातों के निष्पादन से मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति प्रभावित

होती है। शेष विश्व के साथ विदेशी विनिमय दर के अंतर्प्रवाह से घरेलू अर्थव्यवस्था पर मांग का दबाव उत्पन्न होता है। इसके कारण उत्पन्न हुई स्थितियों को संभालने के लिए देश के केंद्रीय बैंक मौद्रिक नीति को भुगतान शेष के आँकड़ों को ध्यान में रखकर बनाती है।

विनिमय दर प्रबंधन (Exchange Rate Management)

विनिमय दर प्रबंधन नीति व्यापार नीति के पूरक का काम करती है। इसका कारण यह है कि विनिमय दर में परिवर्तनों के माध्यम से भुगतान शेष के चालू खाते में घाटे को कम किया जा सकता है। भारत में वर्ष 1991 से पूर्व रुपए का मूल्य या तो डॉलर के साथ या पाउंड स्टर्लिंग के साथ या फिर कुछ करेंसियों के समूह के साथ बंधा हुआ था। जुलाई, 1991 में जब भारत सरकार ने व्यापक पैमाने पर व्यापार और उद्योग क्षेत्र में उदारीकरण के कदम उठाए तो रुपए के मूल्य में दो बार नीचे की ओर समायोजन किया गया।

इस प्रकार 1993 से भारत में रुपए की विनिमय दर का निर्धारण मुख्यतया बाजार की शक्तियों (मांग व पूर्ति) के द्वारा होता है न कि सरकारी नीतियों द्वारा। परंतु बाजार में अत्यधिक उतार-चढ़ाव न हो पाए इसलिए रिजर्व बैंक बाजार में हस्तक्षेप करता रहता है (अत्यधिक उतार-चढ़ाव से अनिश्चितता का माहौल बनता है जो विदेशी व्यापार व निवेश के लिए हानिकारक हो सकता है)। “भारत में विनिमय दर प्रबंधन का उद्देश्य यह रहा है कि रुपए का विदेशी मूल्य (External Value) वास्तविक एवं विश्वसनीय हो जैसा कि चालू खाते में सतत् (Sustainable) घाटा तथा प्रबंधन योग्य (Manageable) विदेशी विनिमय स्थिति में प्रतिलक्षित होता है।

व्यापार युक्ति से संबंधित मुद्दे (Issues Related to Trade Strategy)

व्यापार युक्ति को दो भागों में बाँटा जाता है। बाह्य उन्मुख युक्ति (Outward Oriented Strategy) तथा अंतर्मुख युक्ति (Inward Oriented Strategy)। बाह्य उन्मुख युक्ति संवर्द्धन पर जोर देती है जबकि अंतर्मुख युक्ति आयात प्रतिस्थापन युक्ति (Import Substitution Strategy) पर जोर देती है। अंतर्मुख युक्ति के मुख्य अस्त्र वाणिज्यिक नीति, औद्योगिक नीति तथा विनिमय दर नीति हैं। जिन देशों में इस नीति का पालन किया गया है उनमें घरेलू उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण प्रदान किया गया है, आयातों व विदेशी निवेशों पर कड़े नियंत्रण रखे गए हैं तथा विनिमय दरों को बहुत ऊँचा रखा गया है। इसके विपरीत जिन देशों में बाह्य उन्मुख युक्ति अपनाई गई है उनमें आयातों पर नियंत्रण व प्रशुल्क कम हैं, विदेशी निवेश पर रोक कम है तथा विनिमय दरों को (जहाँ तक संभव हो सके) बाजार द्वारा निर्धारित किए जाने की छूट है।

- **भारत में आयात प्रतिस्थापन नीति (Import Substitution Policy in India)** – आर्थिक आयोजन के आरंभिक दशकों में भारत में अत्यधिक अंतर्मुख (Strongly Oriented) व्यापार युक्ति को अपनाया गया। इस युक्ति को अपनाने के पीछे तर्क यह था कि इससे आयात प्रतिस्थापन के द्वारा तेजी से औद्योगिकीकरण हो सकेगा और साथ ही, विदेशी करेंसी की बचत होगी। यह युक्ति काफी हद तक इन उद्देश्यों को पाने में सफल रही है। परंतु विश्व भर में बहुत से अर्थशास्त्रियों ने जो अध्ययन किए उनसे यह निष्कर्ष निकला कि बाह्य उन्मुख युक्ति से अधिक लाभ मिला है, जबकि अंतर्मुख युक्ति अपनाने वाले देशों में विकास अवरुद्ध हुआ है।
- वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट के अनुसार, बाह्य उन्मुख नीतियाँ अंतर्मुख नीतियों से इसलिए श्रेष्ठ हैं क्योंकि संसाधनों का अधिक बेहतर प्रयोग करने में सक्षम है। अंतर्मुख नीतियों में घरेलू उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण प्रदान किया जाता है जबकि बाह्य उन्मुख नीतियों में उद्योगों को प्रतिस्पर्धात्मक बाजार परिस्थितियों

में काम करना होता है, जिसके परिणाम स्वरूप वे अपने संसाधनों का दक्ष प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति बनाए रखने के लिए निर्यात फर्मों को नवीनतम उत्पादन तकनीकों की जानकारी रखनी पड़ती है तथा प्रबंधकीय कौशल को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक लाना पड़ता है। इसके विपरीत अंतर्मुख युक्ति (जो आयात प्रतिस्थापन की नीति है) में उच्च प्रभावी संरक्षण दरें होती हैं। करेंसी की दरें अवास्तविक रूप से बढ़ जाती हैं। इसे अधिमूल्यत विनिमय दर कहते हैं। इससे निर्यात हतोत्साहित होते हैं। इस विकास युक्ति से सापेक्षिक रूप से पूंजी गहन उत्पादन तकनीकों व मध्यवर्ती आगतों का अधिक प्रयोग करने वाली उत्पादन तकनीकों को प्रोत्साहन मिलता है। अत्यधिक पूंजी गहनता से क्षमता का पूरा प्रयोग नहीं हो पाता और औद्योगिक रोजगार में कम वृद्धि होती है।

- **भारत के लिए व्यापार नीति विकल्प (Trade Policy Options for India)** – इस विवेचन से यह संदेश मिलता है कि यदि भारत आर्थिक विकास की दर को तेज करना चाहता है तो उसे उदारवादी नीति अपनानी चाहिए और इस नीति के अंतर्गत आयात प्रतिस्थापन के स्थान पर निर्यात संवर्द्धन पर अधिक जोर देना चाहिए (यानी अंतर्मुख युक्ति के स्थान पर बाह्य उन्मुख युक्ति पर जोर देना चाहिए)। इसका अर्थ यह होगा कि मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर निम्न व समान प्रशुल्क दरें लगाई जानी चाहिए तथा भुगतान शेष में संतुलन लाने के लिए मात्रात्मक प्रतिबंधों या प्रशुल्कों का सहारा न लेकर, विनिमय दर का सहारा लेना चाहिए।

राजकोषीय और विदेशी व्यापार क्षेत्र की नीतियों में संबंध (Linkage between Fiscal and External Trade Sector Policies)

जैसा कि, रंगराजन ने कहा है, विदेशी सेक्टर में असंतुलन इस बात का द्योतक है कि अर्थव्यवस्था में कुल खपत (Aggregate Absorption) देश में ही उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की तुलना में अधिक है। इसलिए भुगतान-शेष में संतुलन लाने के प्रयत्नों में इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मांग (Excess Demand) को किस प्रकार कम किया जाए। यद्यपि अतिरिक्त खपत निजी क्षेत्र में या सार्वजनिक क्षेत्र में (या दोनों क्षेत्रों में) हो सकती है तथापि रंगराजन का तर्क है कि वास्तव में ऐसा देखा गया है कि अतिरिक्त मांग (इसलिए भुगतान शेष की चालू खाते की बिगड़ती स्थिति) में सार्वजनिक क्षेत्र के राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजकोषीय घाटे और चालू खाते के घाटे के बीच संबंध को संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए निम्नलिखित समीकरण से समझा जा सकता है।

चालू खाते में घाटा = आय – (उपभोग + निवेश + सरकारी व्यय) = राजकोषीय घाटा + (निजी बचत – निवेश अंतराल) इसे संकेतों में इसे निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है –

$$X - M = Y - (C + I + G) = (T - G) + (Sp - Ip)$$

चालू खाते में घाटा (X - M) को दो हिस्सों में बांटा गया है। सार्वजनिक क्षेत्र का घाटा (T - G) तथा निजी क्षेत्र का घाटा (Sp - Ip)। इसे राष्ट्रीय आय (Y) तथा घरेलू खपत (C + I + G) के अंतर के बराबर भी लिखा जा सकता है।

विदेशी-व्यापार-नीति (एफटीपी 2015-2020)

भारत सरकार की केन्द्रीय वाणिज्य और उद्योग मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने विदेश व्यापार नीति (2015-20) की घोषणा 1 अप्रैल, 2015 को की थी। नयी नीति, निर्यात को प्रोत्साहित तथा नयी नौकरियों का सृजन करेगी और केन्द्र सरकार के कार्यक्रमों ‘मेक इन इंडिया’ तथा ‘डिजिटल इंडिया’ को समर्थन भी देगी। मुख्यतः इस नीति का उद्देश्य सेवाओं तथा वाणिज्यिक वस्तुओं के निर्यात में सहायक होना है। इसके माध्यम से अनेक पहलों की शुरुआत की गयी है, जैसे

ऊँची कीमत वाले उत्पादों का निर्यात, व्यवसाय करने में आसानी, कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास, भारत द्वारा प्रदत्त सेवाओं को विश्व स्तरीय प्रतियोगी बनाना एवं बाजारों का विविधीकरण आदि पर ध्यान केन्द्रित करना है।

विदेशी-व्यापार नीति (FTP 2015-20) के अमल में आने से यह आशा की जाती है कि विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी वर्तमान के लगभग 3% के स्तर से, 2020 तक दुगुनी हो सकेगी। एक ओर जहाँ आयात को कम करने का प्रयास चल रहा है, वहीं इस नयी नीति के माध्यम से निर्यात-वृद्धि का प्रयत्न करके वर्तमान के चालू-खाते के घाटे को कम किया जा सकेगा।

विदेशी व्यापार नीति 2015-20: मुख्य बिंदु

- वस्तुगत निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए पहले से चल रही पाँच योजनाओं-फोकस प्रोडक्ट स्कीम, मार्केट लिंकड फोकस प्रोडक्ट स्कीम, फोकस मार्केट स्कीम, एग्री इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्सेंटिव स्कीम, वीकेजीयूवाई का नई प्रस्तावित एमईआईएस (MEIS) योजना में विलय किया गया।
- अधिसूचित उत्पादों के अधिसूचित बाजारों (देशों में निर्यात के लिए (MEIS) के तहत देय पुरस्कार निर्यात के घरेलू मूल्य (Free on Board) की प्राप्ति के प्रतिशत के रूप में विदेशी करेंसी में ही देय होगा। सेवाओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सर्विस फ्रॉम इंडिया स्कीम (SFIS) के स्थान पर नई सर्विस एक्सपोर्ट्स फ्रॉम इंडिया स्कीम (SFIS) लाई गई। नई (SFIS) योजना भारतीय सेवा प्रदाताओं (Indian Service Providers) के बजाय भारत से सेवा प्रदाताओं (Service Providers Located in India) पर लागू होगी। इसके तहत देय पुरस्कार राशि निर्यातित सेवा से अर्जित निवल विदेशी करेंसी के आधार पर देय होगी।
- पूँजीगत सामान घरेलू उत्पादों से ही खरीदने की स्थिति में पूँजीगत वस्तुओं का निर्यात संवर्द्धन योजना (Export Promotion of Capital Goods) के तहत निर्यात दायित्व 90 प्रतिशत से घटाकर 75 प्रतिशत किया गया। इससे 'मेक इन इंडिया' को बढ़ावा मिलेगा।
- पूँजीगत सामान के देश में ही उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए पूँजीगत वस्तु निर्यात संवर्द्धन प्राधिकृत योजना के तहत किये गए आयातों को एण्टी डम्पिंग ड्यूटी सेफगार्ड ड्यूटी व ट्रांजिशनल प्रोडक्ट स्पेसिफिक सेफगार्ड ड्यूटी से छूट नहीं दी जाएगी।
- कारोबारी दशाएँ आसान करने के लिए अधिकांश आवेदन व अंतर मंत्रालयीय कार्यवाहियाँ 24x7 घंटे ऑनलाइन करने की सुविधा।
- एक्सपोर्ट ऑरिएंटेड यूनिट व निर्यात गृहों के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जायेगी।
- कालीकट एक्सपोर्ट (केरल) व अराकोणम आईसीडी (तमिलनाडु) भी अब आयात व निर्यात के लिए पंजीकृत बंदरगाह के रूप में अधिसूचित किये गये।
- 33 शहरों का टाउंस ऑफ एक्सपोर्ट एक्सीलेंस के रूप में अभी तक अधिसूचित किया गया था। दो अन्य शहर-विशाखापत्तनम व भीमावरम (आंध्र प्रदेश) इस सूची में जोड़े गए हैं।
- 33 लीस्ट डेवलप्ड कंट्रीज (LDCs) के लिए लागू ड्यूटी फ्री टैरिफ प्रिफरेंस (DFTP) स्कीम को अब विदेश व्यापार नीति के तहत अधिसूचित किया गया।
- निर्यात के मामले में बेहतर निष्पादन करने वाली इकाईयों को एक्सपोर्ट हाउस, स्टार एक्सपोर्ट हाउस, ट्रेडिंग हाउस, स्टार ट्रेडिंग हाउस, प्रीमियर ट्रेडिंग हाउस आदि दर्जे अभी तक प्रदान किए जाते थे। इस वर्गीकरण को समाप्त कर आगे से वन, टू, थ्री, फोर व फाइव स्टार एक्सपोर्ट हाउस के दर्जे दिए जाएंगे। इसके लिए निर्यात प्राप्तियों का रुपए के स्थान पर डॉलर मूल्य में आकलन होगा। चालू वर्ष व पिछले 2 वर्षों में 30 लाख डॉलर तक की निर्यात प्राप्तियों पर वन स्टार, 2.50 तक करोड़ डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर टू स्टार, 10 करोड़ डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर थ्री स्टार, 50 करोड़

डॉलर तक की निर्यात प्राप्तियों पर फोर स्टार तथा 200 करोड़ डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर फाइव स्टार एक्सपोर्ट हाउस का दर्जा।

- 1 अप्रैल, 2021 को भारत की विदेशी व्यापार नीति 2021-26 का अनावरण करना था, लेकिन कोविड-19 के कारण 1 साल के लिए बढ़ा दिया गया जो 31 मार्च, 2021 को समाप्त होनी थी, लेकिन सरकार ने फिर 1 वर्ष के लिए आगे बढ़ा दिया। वर्तमान में अब ये नीति 31 मार्च, 2022 तक मान्य रही है।

प्रमुख परिभाषाएँ

आयात शुल्क (Import Duty)

वह कर जिसको आयातक को अपने देश में विदेशी वस्तुओं को लाने हेतु भुगतान करना पड़ता है। इसे 'सीमा शुल्क टैरिफ या आयात प्रतिशुल्क' के रूप में भी जाना जाता है। यह वस्तु के मूल्य, वजन, आयाम व माप के आधार पर हो सकता है।

निर्यात शुल्क (Export Duty)

ये वस्तुओं या सेवाओं पर लगे सामान्य या विशिष्ट कर होते हैं तथा उस दशा में लागू होते हैं जब वस्तुयें देश के आर्थिक क्षेत्र से दूसरे देश के आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करती हैं या गैर-निवासियों को सेवाएँ प्रदान की जाती हैं।

प्रतिकारी शुल्क (Counter Vailing Duty)

आयातित वस्तुओं पर लगाया जाने वाला वह शुल्क जो निर्यातक देश के उत्पादकों को प्राप्त वस्तुओं के उत्पादन में सब्सिडी को प्रतिसंतुलित करता है। यह शुल्क घरेलू उत्पादकों व विदेशी उत्पादकों के मध्य समानता स्थापित करता है।

एटी-डंपिंग शुल्क (Anti-Dumping Duty)

यह एक संरक्षणवादी शुल्क है। निर्यातित वस्तुओं का मूल्य उचित बाजार मूल्य से कम होने पर स्वेदशी सरकार, विदेशी आयात पर यह शुल्क लगाती है। यदि कोई कंपनी अपने घरेलू बाजार के मूल्य से कम मूल्य पर किसी उत्पाद का निर्यात करती है तो उसे डंपिंग कहा जाता है, WTO समझौता सरकारों को डंपिंग के विरुद्ध कार्रवाई करने की अनुमति देता है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment)

यह किसी देश की कंपनी या व्यक्तियों द्वारा दूसरे देश में व्यापारिक हितों के लिए किया गया निवेश होता है। यह निवेश दूसरे देश में व्यावसायिक परिचालन स्थापित कर अथवा व्यापारिक संपत्तियों का अधिग्रहण करके किया जाता है। इसके अंतर्गत विदेशी कंपनियों में स्वामित्व या हितों को नियंत्रित करने के लिए किया गया निवेश सम्मिलित होता है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investments) से अलग है। इसमें निवेशक केवल विदेश-आधारित कंपनियों की इक्विटी खरीदता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक ऐसा निवेश है, जो किसी विदेशी व्यापार के निर्णयों पर प्रभावी नियंत्रण, या अंशतः पर्याप्त प्रभाव स्थापित करता है। अरविंद मायाराम समिति की अनुशंसाओं के अनुसार स्वीकार की गयी नई परिभाषा के अनुसार, भारतीय सूचीबद्ध कंपनियों में 10% या उससे अधिक के विदेशी निवेश को FDI माना जाता है। इसके अतिरिक्त, एक असूचीबद्ध कंपनी में हुआ विदेशी निवेश (निवेश सीमा के निरपेक्ष) FDI माना जाता है।

FDI को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

स्वचलित मार्ग से FDI - इस मार्ग से आने वाले निवेश को केन्द्र सरकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

सरकारी मार्ग से FDI- इस मार्ग से आने वाले निवेश को केन्द्र सरकार की अनुमति की आवश्यकता होती है जैसे-

- सामान्य प्रस्तावों हेतु विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड की अनुमति।
- रक्षा क्षेत्र में 49% से अधिक FDI हेतु रक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी का अनुमोदन।

5 जून, 2017 को FDI नीति को अधिक उदार बनाने हेतु सरकार ने निवेश संवर्धन बोर्ड को समाप्त कर दिया था।

विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (Foreign Portfolio Investment)

शेयरों, सरकारी बॉण्ड, कॉर्पोरेट बॉन्ड्स, परिवर्तनीय प्रतिभूतियों, अवसंरचना संबंधी प्रतिभूतियों इत्यादि सहित भारतीय प्रतिभूतियों में गैर-निवासियों द्वारा किया गया निवेश FPI कहलाता है। इन प्रतिभूतियों में निवेश करने वाले निवेशकों के वर्ग को विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (Foreign Portfolio Investors) के रूप में जाना जाता है। SEBI के अनुसार, गैर-निवासियों द्वारा किया गया कोई भी इक्विटी निवेश, पोर्टफोलियो निवेश है, जो कि कंपनी की कुल पूंजी के 10% से कम है। इस सीमा से अधिक के निवेश को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) माना जाएगा। विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक के अंतर्गत विदेशी संस्थागत निवेशक (FII), अर्हता प्राप्त विदेशी निवेशक (Qualified Foreign Investors) और उप-खाते आदि सम्मिलित हैं।

विदेशी संस्थागत निवेश (Foreign Institutional Investments)

FII के अंतर्गत पेंशन फंड, म्यूचुअल फंड, निवेश ट्रस्ट, बीमा कंपनी तथा पुनर्बीमा कंपनी सम्मिलित हैं। SEBI के अनुसार, “FII वह संस्था है जो भारत के बाहर स्थापित या निगमित होती है तथा भारतीय प्रतिभूतियों में निवेश करने की इच्छा रखती है।” FII, भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (विदेशी संस्थागत निवेशक) विनियम, 1995 के तहत पंजीकृत होते हैं।

विनिमय दर (Exchange Rate)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में विनिमय के माध्यम से ही वस्तुओं या सेवाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति अपनी क्षमता, समय या स्रोत, पूंजी या वस्तु को किसी अन्य व्यक्ति को प्रदान करता है तो वह उसके बदले भुगतान के लिए उसके वर्तमान मूल्य के बराबर किसी माध्यम का चुनाव करता है जिसका भविष्य में भी मूल्य हो। प्राचीन समय में विनिमय के लिए लोग अनाज या धातु करेंसी का उपयोग करते थे। अपने द्वारा बेची गई वस्तु के बदले उस वस्तु के वर्तमान मूल्य के बराबर की करेंसी को स्वीकार करते थे। यदि वर्तमान संदर्भ में देखें तो प्रत्येक देश के पास अपनी एक करेंसी है और करेंसी ही विनिमय का माध्यम है। आंतरिक व्यापार में अपने देश की करेंसी का उपयोग किया जाता है जबकि बाह्य व्यापार या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में दो करेंसियों का उपयोग किया जाता है। एक वह करेंसी जो घरेलू देश की होती है तथा दूसरी वह करेंसी जो कि दूसरे देश की है, जिससे व्यवहार हो रहा है, या फिर कोई अन्य करेंसी जिससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भुगतान स्वीकार किया जा रहा है। इसी संदर्भ में ‘विनिमय दर’ (Exchange Rate) शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। ‘विनिमय दर’, एक देश की करेंसी की इकाईयों को मापती है जिसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में दूसरे देश की करेंसी की एक इकाई के बदले प्राप्त किया जाता है। वास्तव में विनिमय दर दो देशों की करेंसियों के विनिमय के अनुपात को व्यक्त करती है। इसे ‘घरेलू करेंसी का बाहरी मूल्य’ भी कहते हैं। जब कोई देश किसी अन्य देश के साथ व्यापारिक संबंध बनाता है तथा इस व्यापारिक क्रिया-कलाप में जिस विदेशी करेंसी का उपयोग किया जाता है, उसे ‘विदेशी विनिमय’ कहा जाता है।

विदेशी करेंसी का जो वर्तमान मूल्य होता है, उसे ही विदेशी विनिमय दर कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि यह घरेलू करेंसी के रूप में दी जाने वाली वह कीमत है जो विदेशी करेंसी की इकाई खरीदने के लिए दी जाती है। उदाहरण यदि एक यूएस डॉलर को खरीदने के लिए 50 रुपये देने हों तो यह विनिमय दर को इस प्रकार निर्दिष्ट करती है कि घरेलू करेंसी का 50 रुपये = 1 US डॉलर अर्थात् की 1 US\$ की कीमत 50 रुपये है। इसे घरेलू करेंसी का बाहरी मूल्य भी कहते हैं।

विनिमय दर प्रणाली (Exchange Rate System)

विनिमय दर प्रणाली को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है।

1. **स्थिर विनिमय दर प्रणाली (Fixed Exchange Rate System)** – स्थिर विनिमय दर प्रणाली का अनुसरण करने वाले देश अपनी करेंसी का मूल्य ‘एक स्थिर’ दर पर कायम रखते हैं। वे इसमें तभी परिवर्तन करते हैं जब आर्थिक परिस्थितियाँ बाध्य कर देती हैं। स्थिर विनिमय प्रणाली को दो भागों में विभाजित किया गया है –
 - विनिमय दर की स्वर्णमान प्रणाली।
 - विनिमय दर की समंजनीय प्रणाली या ब्रेटन वुड्स प्रणाली।

विनिमय दर की स्वर्णमान प्रणाली

विनिमय दर की स्वर्णमान प्रणाली 1920 के दशक से पूर्व विश्व के अनेक भागों में प्रचलित थी, प्रत्येक देश को अपनी करेंसी का मूल्य स्वर्ण के रूप में परिभाषित करना होता था, इसलिए एक करेंसी का मूल्य दूसरी करेंसी में निर्धारित करने के लिए प्रत्येक करेंसी के स्वर्ण मूल्य की तुलना की जाती है।

उदाहरण- 1 USA डॉलर = 2 Gm Gold

1 UK पाउंड = 4 Gm Gold

तो इस प्रकार दोनों करेंसियों का विनिमय अनुपात दर USA:UK = 1:2 होगा।

विनिमय दर की समंजनीय सीमा प्रणाली (Adjustable Peg System of Exchange Rate)

ब्रेटन वुड्स प्रणाली (भले ही जब यह विनिमय दर की स्थिर प्रणाली थी) में कुछ सीमा तक समायोजन (Adjustment) की अनुमति थी। इसी कारण इसे ‘विनिमय दर की समंजनीय सीमा प्रणाली’ कहा जाने लगा। इस प्रणाली के अनुसार –

- विभिन्न करेंसियों को एक करेंसी अर्थात् अमेरिकी डॉलर के साथ संबंधित कर दिया गया।
- अमेरिकी डॉलर का एक निश्चित कीमत पर स्वर्ण मूल्य निर्धारित कर दिया गया।
- एक करेंसी का अमेरिकी डॉलर के रूप में मूल्य का निहित अर्थ उस करेंसी का स्वर्ण के रूप में मूल्य माना गया।
- दो करेंसियों के बीच समता के लिए स्वर्ण ही अंतिम इकाई का कार्य करता रहा।
- किसी करेंसी के समता मूल्य में समायोजन केवल अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की अनुमति से संभव था।

2. **नम्य (तरणशील) विनिमय दर प्रणाली [Flexible (Floating) Exchange Rate System] or मुक्त/स्वतंत्र बाजार में विनिमय दर का निर्धारण (Determination of Exchange Rate in a Free Market)** – मुक्त/स्वतंत्र बाजार पूर्ति तथा मांग की शक्तियों द्वारा संचालित होता है। तदनुसार, मुक्त बाजार में निर्धारित विनिमय दर को मुक्त विनिमय दर (Free Rate of Exchange) या परिवर्तनशील (नम्य) विनिमय दर [Variable (Flexible) Rate of Exchange] कहा जाता है। यह पूर्ति मांग मापदंडों में परिवर्तनों के अनुसार बदलती है। स्वतंत्र विनिमय दर उस स्तर पर निर्धारित होगी जिस पर विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति बराबर हो जाए।

करेंसी का मूल्यहास

करेंसी का मूल्यहास (Currency Depreciation) से अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जब विदेशी करेंसी (जैसे- US डॉलर) के संबंध में घरेलू करेंसी (रुपया) का मूल्यहास होता है (या रुपये का मूल्य घटता है)। इसलिए आपको एक डॉलर खरीदने के लिए अधिक रुपये की आवश्यकता होगी। उदाहरण- यदि यूएस डॉलर का विनिमय पहले 60 रुपये में होता था, परंतु अब 62 रुपये में होता है, तब घरेलू करेंसी (भारतीय रुपया) मूल्यहास को प्रकट करती है।

करेंसी की मूल्यवृद्धि

करेंसी की मूल्यवृद्धि (Currency Appreciation) से अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जब विदेशी करेंसी (जैसे- US डॉलर) के संबंध में घरेलू करेंसी (रुपया) के मूल्य में वृद्धि होती है (या करेंसी एक मूल्य बढ़ता है)। इसलिए आपको एक डॉलर खरीदने के लिए कम रुपये की आवश्यकता होगी। उदाहरण- यदि यूएस डॉलर का विनिमय पहले 62 रुपये का होता था, परंतु अब 60 रुपये में होता है, तब घरेलू करेंसी (भारतीय रुपया) मूल्यवृद्धि को प्रकट करती है।

विदेशी विनिमय (विदेशी करेंसी) की मांग के घटक

[Components of Demand for Foreign Exchange (Foreign Currency)]

विदेशी विनिमय की मांग क्यों की जाती है? (Why the Foreign Exchange is Demanded?)

विदेशी विनिमय की मांग विभिन्न उद्देश्यों के लिए की जाती है। मूलरूप से इसकी मांग शेष विश्व को भुगतान करने के लिए की जाती है। भुगतान के प्रत्येक प्रकार में विदेशी विनिमय की मांग का एक घटक सम्मिलित होता है। विस्तृत रूप से, विदेशी विनिमय के घटक निम्नलिखित हैं-

- **अंतर्राष्ट्रीय ऋणों का पुनर्भुगतान (Repayment of International Loans)**- अंतर्राष्ट्रीय ऋण विदेशी विनिमय के रूप में लिए जाते हैं। तदनुसार, इन ऋणों का पुनर्भुगतान करने के लिए विदेशी करेंसी की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह विदेशी विनिमय की मांग का एक महत्वपूर्ण घटक है।
- **विदेशी निवेश (Foreign Investment)**- शेष विश्व में निवेश करना एक महत्वपूर्ण व्यापारिक गतिविधि है। हमें उस देश की करेंसी की आवश्यकता होती है जिस देश में निवेश करना हो। यूएस डॉलर जो कि ग्लोबल करेंसी है यदि मांग निवेश यू. एस. डॉलर में करना हो तो यूएस डॉलर की आवश्यकता होती है।
- **आयात (Import)**- हम शेष विश्व से वस्तुओं (जैसे- मोबाइल फोन तथा टीवी) एवं सेवाओं (जैसे- बैंकिंग तथा बीमा) का आयात करते हैं। इसके लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है, क्योंकि आयातों का भुगतान केवल विदेशी विनिमय मुद्रा में ही किया जाता है।
- **विदेशों से प्रत्यक्ष क्रय (Direct Purchase From Abroad)**- विदेशी विनिमय की आवश्यकता विदेशों से प्रत्यक्ष क्रय (वस्तुओं एवं सेवाओं का) करने के लिए होती है, क्योंकि हमारे देश के लोग विश्व के अन्य देशों में पर्यटकों के रूप में भ्रमण करते हैं। वे अध्ययन अथवा चिकित्सा जाँच के लिए भी विदेश जाते हैं। इसमें विदेशों से प्रत्यक्ष क्रय शामिल है।
- **अनुदान तथा दान (Grants and Donations)**- विदेशों को दिए अनुदान तथा दान (एक-पक्षीय भुगतान) भी विदेशी विनिमय की मांग में योगदान देते हैं। किसी देश को अनुदान तथा दान प्रायः उस देश की करेंसी में दिए जाते हैं (या किसी अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृत करेंसी, जैसे- यूएस डॉलर में)।
- **आय का भुगतान (Payment of Incomes)**- घरेलू अर्थव्यवस्था में विदेशी विनिमय की मांग कारक आय (किराया, ब्याज, लाभ/लाभांश तथा मजदूरी) का भुगतान करने के लिए भी की जाती है, यह कारक आय विदेशों से अर्जित की जाती है। यह शेष विश्व को कारक आय देने की भाँति है।
- **सट्टा व्यापार (Speculative Trading)**- विदेशी विनिमय (विशेषकर

शक्तिशाली करेंसियों के रूप में जैसे- यूएस डॉलर) सट्टा व्यापार करने के उद्देश्य से भी रखी/मांगी जाती है। अक्सर अधिक विदेशी विनिमय मांग तब रखी जाती है जब विनिमय दर कम होती है।

मांग के ये घटक एक साथ जुड़कर विदेशी विनिमय के लिए समग्र मांग बनाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में, विदेशी विनिमय की मांग विदेशी विनिमय की कीमत से विपरीत रूप से संबंधित होती है, जिसे विदेशी विनिमय के नीचे की ओर ढलान वाले मांग वक्र द्वारा व्यक्त किया जाता है। जब विनिमय दर गिरती है तब मांग का विस्तार होता है तथा जब विनिमय दर बढ़ती है तब मांग का संकुचन होता है। मांग वक्र में खिसकाव तब होता है जब मांग का घटक (विदेशी विनिमय का) प्रचलित विनिमय दर पर वृद्धि या कमी प्रकट करता है।

विदेशी विनिमय (विदेशी करेंसी) की पूर्ति के घटक अथवा विदेशी विनिमय के स्रोत [Components of Supply of Foreign Exchange (Foreign Currency) or Sources of Foreign Exchange]

विदेशी विनिमय की पूर्ति निम्नलिखित स्रोतों पर निर्भर करती है। प्रत्येक स्रोत में विदेशी विनिमय की पूर्ति का एक घटक सम्मिलित होता है। एक देश पूर्ति के अप्रलिखित स्रोतों के द्वारा विदेशी विनिमय प्राप्त करता है।

- **निर्यात (Exports)**- वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात शेष विश्व से विदेशी विनिमय की पूर्ति (अंतर्वाह) का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। अतः भारत से यू. एस. ए. को वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात करने का अर्थ होगा भारत को विदेशी विनिमय की पूर्ति करना (निर्यातों के लिए प्राप्तियों के रूप में)।
- **शेष विश्व से निवेश (Investment From Rest of the World)**- शेष विश्व से निवेश (FII एवं FDI को शामिल करके) विदेशी विनिमय की पूर्ति का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है। आर्थिक क्रिया के इस माध्यम के द्वारा भारी मात्रा में विदेशी विनिमय का प्रवाह विकसित देशों से अल्पविकसित देशों की ओर होता है।
- **शेष विश्व से प्रत्यक्ष क्रय (Direct Purchases by Rest of the World)**- शेष विश्व के निवासियों द्वारा किया गया प्रत्यक्ष क्रय भी शेष विश्व से घरेलू अर्थव्यवस्था की ओर किए विदेशी विनिमय के प्रवाह में योगदान देता है।
- **शेष विश्व से अनुदान तथा दान (Grants and Donations from Rest of the World)**- शेष विश्व से मिले अनुदान तथा दान भी विदेशी विनिमय की पूर्ति का एक स्रोत है। विदेशी विनिमय का एक महत्वपूर्ण भाग अनुदानों तथा दानों के माध्यम से विश्व के धनी देशों से निर्धन देशों की ओर प्रवाहित होता है।
- **आय प्राप्तियाँ (Income Receipts)**- विदेशी विनिमय आय प्राप्तियों के माध्यम से भी शेष विश्व से घरेलू अर्थव्यवस्था की ओर प्रवाहित होता है। इन प्राप्तियों से अभिप्राय शेष विश्व से कारक आय की प्राप्तियों से है।
- **गैर-निवासियों द्वारा प्रेषित धन (Remittances by the Non-residents)**- शेष विश्व में रहने वाले गैर-निवासियों द्वारा भेजा गया प्रेषित धन भी शेष विश्व से विदेशी विनिमय की पूर्ति/प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। ऐसे प्रेषित धन अधिकतर भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी विनिमय की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण घटक होते हैं।

पूर्ति के ये घटक एक साथ जुड़कर विदेशी विनिमय की समग्र पूर्ति बनाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में, विदेशी विनिमय की पूर्ति विदेशी विनिमय की कीमत से (या विदेशी विनिमय की दर से) धनात्मक विस्तार होता है। पूर्ति वक्र में खिसकाव तब होता है, जब पूर्ति का कोई भी घटक (विदेशी विनिमय का) प्रचलित विनिमय दर पर वृद्धि या कमी प्रकट करता है।

प्रबंधित तरणशीलता (Managed Floating)

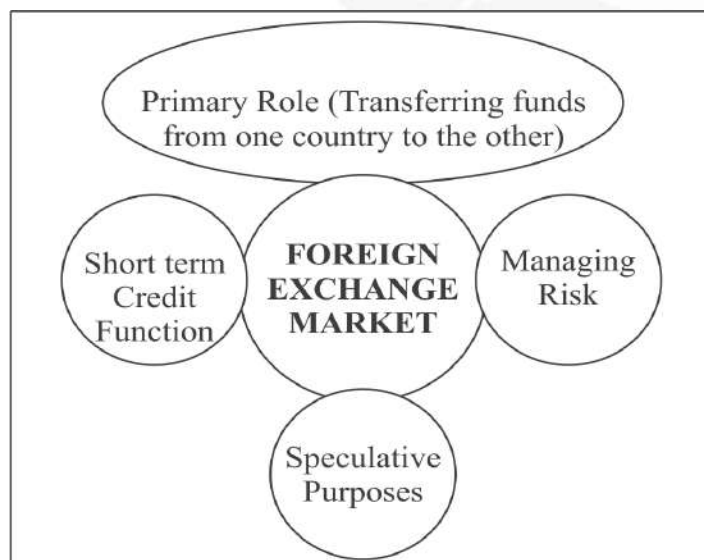
बेशक विनिमय दर अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में पूर्ति तथा मांग की शक्तियों

द्वारा निर्धारित होती है, समय-समय पर विनिमय दर की वांछित सीमाओं को सीमित करते हुए प्रबंधित करने के लिए केंद्रीय बैंक (RBI) इसमें हस्तक्षेप करता है। अतएव, प्रबंधित तरणशीलता, विनिमय दर की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें केंद्रीय बैंक द्वारा कभी-कभी तरणशीलता को प्रभावित करने के लिए या तरणशीलता को प्रबंधित करने के लिए हस्तक्षेप किया जाता है। भले ही फिर विनिमय दर का निर्धारण मांग तथा पूर्ति की बाजार शक्तियों द्वारा होता है। यह नीति केंद्रीय बैंक की रेपो दर के समान है जिसके द्वारा केंद्रीय बैंक ब्याज की बाजार दर को घरेलू करेंसी बाजार में विनियमित करता है। हम जानते हैं कि रेपो दर को बढ़ाकर केंद्रीय बैंक घरेलू करेंसी बाजार से तरलता को कम कर देता है। तरलता की पूर्ति में कमी के कारण रेपो दर को कम कर दिया जाता है। तरलता की पूर्ति में वृद्धि के कारण ब्याज की बाजार दर में कमी होती है।

केंद्रीय बैंक 'तरणशीलता' अथवा बाजार विनिमय दर पर अपना प्रभाव कैसे डालता है?

यह अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में विदेशी करेंसी के विक्रय तथा क्रय के द्वारा होता है। जब केंद्रीय बैंक यह महसूस करता है कि घरेलू करेंसी के बाजार मूल्य का अत्यधिक मूल्यहास (जैसे कि यूएस डॉलर की तुलना में) हो रहा है तो इसे नियंत्रित करने के लिए तथा घरेलू करेंसी के पूर्व मूल्य को स्थापित करने के लिए वह अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में यू.एस डॉलर की बिक्री करेगा। अंतर्राष्ट्रीय करेंसी बाजार में डॉलर बेचकर केंद्रीय बैंक डॉलर की पूर्ति में वृद्धि करता है। अन्य बातें समान रहने पर, डॉलर की पूर्ति में वृद्धि होने से घरेलू करेंसी के संबंध में डॉलर की कीमत में कमी की संभावना होती है। ऐसी क्रिया तब अनिवार्य हो जाती है जब रुपये के मूल्य में कमी के कारण (या डॉलर के मूल्य में वृद्धि के कारण) सरकार का आयात बिल बढ़ने लगता है, उच्च बजट घाटे के कारण इसी भांति जब केंद्रीय बैंक यह महसूस करता है कि घरेलू करेंसी का बाजार मूल्य अत्यधिक बढ़ रहा है (जिसके कारण घरेलू वस्तुओं के लिए विदेशी मांग कम हो जाती है) तो वह विदेशी करेंसी खरीदना आरंभ कर देता है। जब विदेशी करेंसी के लिए मांग में वृद्धि होती है तो घरेलू करेंसी के संबंध में इसकी कीमत (विनिमय दर) बढ़ने लगती है, जिससे विदेशी एक यूएस डॉलर से अधिक घरेलू वस्तुएं खरीद सकते हैं। तदनुसार, घरेलू वस्तुओं के लिए निर्यात मांग पुनः बढ़ने लगती है।

विदेशी विनिमय बाजार (Foreign Exchange Market)



विदेशी विनिमय बाजार वह बाजार है जिसमें विश्व के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय करेंसियों को बेचा या खरीदा जाता है। (Foreign Exchange Market Refers to the Market for National Currencies of Different Countries in the World). यह विभिन्न करेंसियों के व्यापार का केंद्र है। विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी करेंसी के क्रेता इसे खरीदना चाहते हैं एवं विक्रेता इसे बेचना चाहते हैं।

विदेशी विनिमय बाजार के कार्य

विदेशी विनिमय बाजार निम्नलिखित कार्य करता है-

- **हस्तांतरण कार्य (Transfer Function)** - इसका अभिप्राय, विश्व के विभिन्न देशों के मध्य विदेशी विनिमय के रूप में क्रय शक्ति (Purchasing Power) का हस्तांतरण करना है।
- **साख कार्य (Credit Function)** - इसका अभिप्राय विश्व के विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात और आयात के लिए विदेशी विनिमय के रूप में साख का प्रावधान करना है।
- **जोखिम से बचाव या पूर्वोपाय कार्य (Hedging Function)** - इसका अभिप्राय विदेशी विनिमय दर में होने वाले उतार-चढ़ाव का जोखिम से बचाव करना है। (विनिमय दर को विदेशी विनिमय की भावी पूर्ति के लिए बंद कर दिया जाता है।)

विदेशी विनिमय बाजार की कार्य पद्धति (Operation of Foreign Exchange Market)

विदेशी विनिमय बाजार दो रूपों में कार्य करता है- (1) चालू बाजार (Current Market) या (2) वायदा बाजार (Forward Market)।

- **चालू बाजार (Current Market)** - विदेशी विनिमय से संबंधित हाजिर बाजार या चालू बाजार वह बाजार है जिसमें केवल चालू या हाजिर लेन-देनों का कारोबार किया जाता है। (Spot market for foreign exchange is that market which handles only spot transactions or current transactions).

हाजिर/चालू बाजार की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- 'लेन-देन की अवधि' के रूप में, हाजिर बाजार 'दैनिक प्रकृति' (Daily Nature) वाला होता है। इसका भविष्य के लेन-देन से कोई संबंध नहीं होता।
- हाजिर बाजार में जो विनिमय दर निर्धारित होती है उसे तात्कालिक विनिमय दर (Spot Rate of Exchange) कहा जाता है। तात्कालिक या चालू विनिमय दर वह विनिमय दर है जो लेन-देन (Transactions) के समय प्रचलित होती है।
- **वायदा बाजार (Forward Market)** - विदेशी विनिमय से संबंधित वायदा बाजार वह बाजार है जिसमें भविष्य में किसी तिथि पर पूरे होने वाले विदेशी विनिमय के लेन-देनों का कारोबार होता है। (Forward market for foreign exchange is that market which handles such transactions of foreign exchange as are meant for future delivery). ऐसे लेन-देन के प्रपत्रों पर हस्ताक्षर तो वर्तमान में किए जाते हैं लेकिन यह लेन-देन भविष्य में किसी दिन पूरा होता है।

वायदा बाजार की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- यह बाजार केवल भविष्य से संबंधित होता है। इसमें विदेशी विनिमय का चालू लेन-देन नहीं किया जाता।
- यह भविष्य की विनिमय दर अर्थात् उस विनिमय दर को निर्धारित करता है जिस पर भविष्य में लेन-देन को पूरा किया जाना है।

भारत में विदेशी विनिमय दर प्रणाली तथा रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता (Foreign Exchange Rate System in India & Full Convertibility of Rupees)

इस समय रुपये की विदेशी विनिमय दर का निर्धारण, मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। इस संदर्भ में चार करेंसियाँ डॉलर, पाउंड, यूरो तथा येन प्रयुक्त होती हैं। जुलाई, 1991 में जब भारतीय रुपये का अवमूल्यन किया गया तो विदेशी विनिमय दर में अनेक समायोजन किए गए। निर्यात सब्सिडी समाप्त कर दी गयी तथा एक्जिमस्क्रिप (Eximscrip) की एक नयी प्रणाली चालू की गयी। एक्जिमस्क्रिप आयात अधिकार युक्त योजना (Import Entitlement Scheme) थी जिसके अंतर्गत निर्यातक को उन वस्तुओं में भी निर्यात का अधिकार दिया गया जो अन्यथा प्रतिबंधित थी।

वर्ष 1992 में एक्जिमस्क्रिप प्रणाली को समाप्त करके 'उदारीकृत विनिमय दर प्रबंधन प्रणाली' (Liberalised Exchange Rate Management System-LERM) लागू की गयी, जिसके द्वारा दोहरी विनिमय दर प्रणाली शुरू की गयी। इस पद्धति के अंतर्गत विदेशी अर्जनों (आय) को 40 प्रतिशत सरकारी विनिमय दर पर अभ्यर्पित किया जाएगा तथा शेष 60 प्रतिशत को बाजार विनिमय दर पर परिवर्तित किया जाएगा।

दोहरी विनिमय दर प्रणाली भी कुछ ही समय रही और मार्च, 1993 में, 1993-94 का बजट प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने व्यापार घाटे पर रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की घोषणा की।

एक वर्ष के अनुभव के बाद 1994-95 की बजट में सरकार ने 28 फरवरी, 1994 को चालू खाते पर रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की घोषणा की। चालू खाते में मुख्य रूप से आयात, निर्यात तथा अदृश्य व्यवहार आते हैं। जब इसमें आये हुए व्यवहारों के लिए भी विदेशी विनिमय की उपलब्धता को बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित विनिमय दर पर छोड़ दिया जाता है, तो इसे चालू खाते की परिवर्तनीयता कहा जाता है अर्थात् सभी चालू व्यापारिक लेन-देनों, जिसमें यात्रा, शिक्षा, चिकित्सा संबंधी व्यय सम्मिलित हैं, उनके लिए विदेशी विनिमय की उपलब्धता स्वतंत्र करना। ऐसी स्थिति में विभेदात्मक तथा बहुविनिमय दरें प्रचलित नहीं होंगी।

चालू खाते की परिवर्तनीयता की घोषणा के साथ भारत ने 20 अगस्त, 1994 को अंतर्राष्ट्रीय करेंसी कोष के आर्टिकल VIII का दर्जा प्राप्त कर लिया है। धारा 8 के अनुसार सदस्य देश (i) चालू खाते पर भुगतान के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं लगाएंगे जबकि पूंजी खाते के प्रतिबंधों की अनुमति है। (ii) विभेदात्मक करेंसी व्यवहार न करना, जिसमें बहुविनिमय दरें भी सम्मिलित हैं।

रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता (Full Convertibility of Rupees)

रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता का अर्थ है चालू खाते तथा पूंजी खाते पर होने वाले सभी व्यवहारों को पूरा करने के लिए रुपये को किसी भी अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृत करेंसी में परिवर्तित करने की स्वतंत्रता तथा विदेशी करेंसी को देश की करेंसी में परिवर्तित करने की स्वतंत्रता। पूंजी खाते पर परिवर्तनीयता का अर्थ पूंजी के अंतर्प्रवाह तथा बहिर्प्रवाह, भारतीयों द्वारा भारत में, भारत से बाहर संपत्ति को बेचना तथा खरीदना तथा प्राप्त रुपये को देश से बाहर ले जाने पर या किसी विदेशी करेंसी को देश से बाहर ले जाने पर या किसी विदेशी करेंसी में अपना जमा रखने की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस प्रकार पूंजी खाता की परिवर्तनीयता का आशय घरेलू वित्तीय परिसंपत्तियों तथा विदेशी परिसंपत्तियों को विदेशी वित्तीय परिसंपत्तियों में, बाजार निर्धारित विदेशी विनिमय दर पर बदलने की स्वतंत्रता से है। पूंजी खाते पर परिवर्तनीयता यह सुनिश्चित करती है कि करेंसी बाजार से पूर्ण प्रतियोगिता स्थापित है। इस प्रकार बाजार निर्धारित विदेशी विनिमय दर परिवर्तनीयता की अनिवार्य आवश्यक दशा है। इसके साथ रिजर्व बैंक द्वारा

विनिमय करेंसियों में अपनी करेंसी को स्वतंत्र रूप से परिवर्तन करने के संबंध में पूर्ण परिवर्तनीयता के लिए अनुज्ञा जरूरी है।

पूँजी खाता पर परिवर्तनीयता के संबंध में रिजर्व बैंक द्वारा, एस. एस. तारापोर की अध्यक्षता में गठित समिति ने जून, 1997 में कुछ निश्चित दशाओं की पूर्ति पर क्रमिक ढंग से पूंजी खाते पर परिवर्तनीयता की संस्तुति की।

20 मार्च, 2006 को एस.एस. तारापोर की ही अध्यक्षता में पूँजी खाता पर परिवर्तनीयता का एक खाका तैयार करने के लिए समिति (II) गठित की गयी, जिसने भारतीय रिजर्व बैंक को अपनी रिपोर्ट 31 जुलाई, 2006 को सौंपी।

समिति ने मौजूदा पूँजीगत नियंत्रणों की समीक्षा के बाद तीन चरणों में पूँजी परिवर्तनीयता की तरफ बढ़ने के लिए एक व्यापक पंचवर्षीय समयबद्ध योजना तैयार की।

रिजर्व बैंक ने वर्ष 2007 में पूँजी खाते की परिवर्तनीयता को टाल दिया, ऐसा 2008-09 में तत्कालीन गवर्नर वाईवी. रेड्डी ने किया यद्यपि सरकार का इसको लागू करने के संबंध में दबाव था।

परिवर्तनीयता विनिमय दर प्रणाली के अंतर्गत विदेशी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा स्वतंत्र रूप से होता है। विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियाँ भुगतान संतुलन विवरण की विभिन्न मदों में प्रदर्शित रहती है। भुगतान संतुलन विवरण में जाने वाली सभी जमा मदें (जैसे वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात, पूंजी का अंतर्प्रवाह, विदेशियों द्वारा देश की वित्तीय तथा वास्तविक संपत्तियों का क्रय) देश की करेंसी की मांग प्रदर्शित करती है तथा इसके विपरीत भुगतान संतुलन की वे मदें, जैसे-वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात, पूंजी का बहिर्प्रवाह देश के निवासियों द्वारा विदेशी प्रतिभूतियों संपत्तियों, वित्तीय प्रपत्रों, स्वर्ण आदि का क्रय देश की करेंसी की पूर्ति प्रदर्शित करती है।

भुगतान संतुलन विवरण में प्रदर्शित मदों के अतिरिक्त, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर, स्फीति, ब्याज दर विदेशी ऋण, व्यापार की शर्त, करेंसी की पूर्ति, इन सभी चरों की भावी प्रत्याशा तथा विनिमय दर में प्रत्याशित परिवर्तन विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

परिवर्तनीयता विनिमय दर प्रणाली में भुगतान संतुलन में आधिक्य तथा कमी, विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करेगी।

भारत में और सभी उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं में प्रबंधित विदेशी विनिमय दर प्रणाली (Managed Foreign Exchange Rate System) प्रचलित है, जिसके अंतर्गत वैसे तो सैद्धांतिक रूप से इस स्थिति में विदेशी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी बाजार में प्रचलित मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है पर विदेशी विनिमय दर में होने वाली उग्रता को नियंत्रित करने के लिए रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है, वह विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय का क्रय तथा विक्रय करता है, जिससे विनिमय दर के परिवर्तनों को नियंत्रित कर सके। भारत में 1991 के बाद से विदेशी विनिमय दर नीति में जो परिवर्तन आये हैं, यह परिवर्तन सी. रंगराजन (1993) की अध्यक्षता में गठित समिति की संस्तुतियों के क्रियान्वयन के साथ शुरू हुए हैं।

विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप (Intervention in Foreign Exchange Market)

किसी देश का केंद्रीय बैंक जब खुले बाजार की क्रियाविधि में क्रय अथवा विक्रय के माध्यम से हस्तक्षेप करता है तो इससे विदेशी पूंजी के अंतर्प्रवाह एवं बहिर्प्रवाह पर प्रभाव पड़ता है। इस कार्य को केंद्रीय बैंक प्रबंधित तरणशीलता के द्वारा भी करता है, जिससे विनिमय बाजार में अस्थिरता (Volatility) को नियंत्रित किया जा सके। विनिमय बाजार में हस्तक्षेप दो प्रकार से किया जाता है। एक को स्थिर हस्तक्षेप (Sterilized Intervention) तथा दूसरे को अस्थिर हस्तक्षेप (Non-Sterilized Intervention) कहा जाता है। स्थिर हस्तक्षेप में विदेशी करेंसी के क्रय-विक्रय

की क्रिया खुले बाजार में की जाती है ताकि विनिमय दर के अधिक मूल्यांकन को रोका जा सके।

जबकि अस्थिर हस्तक्षेप के तहत विदेशी करेंसी या पूँजी का क्रय-विक्रय नहीं किया जाता है। फलतः खुले बाजार की क्रिया संकुचित होती है, जिससे पूँजी का बहिर्प्रवाह बढ़ेगा और आयात की मांग में वृद्धि होगी।

मौद्रिक प्रभावी विनिमय दर तथा वास्तविक प्रभावी विनिमय दर (Nominal Effective Exchange Rate - NEER & Real Effective Exchange Rate - REER)

मौद्रिक विनिमय दर से आशय विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित किसी विदेशी करेंसी की एक इकाई का घरेलू करेंसी के रूप में मूल्य से है जैसे 1 डॉलर = 40 रुपया। जब इसमें स्फीतिक या मूल्य स्तर में वृद्धि का समायोजन कर दिया जाता है तो मौद्रिक दर वास्तविक दर में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार दो देशों के बीच वास्तविक विनिमय दर ज्ञात करने के लिए हम दोनों देशों में पाये जाने वाले स्फीतिक अंतर को मौद्रिक विनिमय दर में समायोजित कर देते हैं। मान लीजिए यू.एस.ए. में स्फीति की दर 5% है तथा भारत में स्फीति की दर 10% है तो स्फीति के कारण भारतीय रुपये के मूल्य में 5% ($10\% - 5\% = 5\%$) की कमी होगी। इस प्रकार स्फीति समायोजन के बाद वास्तविक विनिमय दर 1 डॉलर = 42 रुपये होगी। वास्तविक विनिमय दर की गणना करना तथा उसे नीतिगत निर्णय लेते समय ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि किसी देश का निर्यात केवल विदेशी विनिमय दर द्वारा निर्देशित नहीं होता बल्कि घरेलू तथा विदेशी बाजार मूल्य में सापेक्षिक परिवर्तन द्वारा भी प्रभावित होता है। यदि मौद्रिक विदेशी विनिमय दर स्थिर बनी रहे या भारत में स्फीति की दर यू.एस.ए. में स्फीति की दर से अधिक हो तो यू. एस. ए. में भारतीय निर्यात कम प्रतिस्पर्धी होगा।

केंद्रीय बैंक मौद्रिक विनिमय दर में स्फीति के समायोजन के लिए वास्तविक विनिमय दर (REER) की धारणा का प्रयोग करते हैं। REER मौद्रिक विनिमय दरों का भारांकित औसत है जिसमें घरेलू तथा विदेशों के मूल्य अंतरों का समायोजन कर लिया गया है। यदि हम मौद्रिक विनिमय दर को भारत में उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक के यू.एस.ए. के उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक के अनुपात से भाग दें तो वास्तविक प्रभावी विनिमय दर ज्ञात हो जाएगी। इसके आकलन में उन देशों की करेंसियों को लिया जाता है जिनमें देश का व्यापार सर्वाधिक होता है।

भारत में REER की गणना के लिए RBI रुपये का मूल्य दो सूचकांकों के संदर्भ में करता है- एक छः देशों (यू.एस.ए., डॉलर, यूरो, पाउंड स्टर्लिंग, जापानी येन, रेन्मिन्बी (चीन) तथा हांगकांग डॉलर) के संदर्भ में तथा दूसरा 36 देशों के संदर्भ में लेता है।

विदेशी विनिमय बाजार से संबंधित कार्यप्रणाली (Procedure Related to Foreign Exchange Market)

- **स्पॉट तथा फॉरवर्ड एक्सचेंज (Spot and Forward Exchange)** - जब विदेशी विनिमय की सुपुर्गगी तत्काल या स्पॉट (उसी स्थान पर) पर ही देय हो, ऐसी स्थिति में प्रचलित दर को स्पॉट रेट कहते हैं। फॉरवर्ड एक्सचेंज दो पार्टियों के बीच एक ऐसा समझौता है जिसमें एक पार्टी निश्चित विदेशी विनिमय की मात्रा एक निश्चित भावी तिथि पर घरेलू करेंसी के बदले एक निश्चित विनिमय दर पर स्वीकार करती है। इस विनिमय दर को फॉरवर्ड एक्सचेंज रेट कहते हैं।
- **स्वैप ऑपरेशन (Swap Operation)** - स्वैप का अर्थ है एक ही साथ किसी करेंसी के फॉरवर्ड क्रय के लिए उसी करेंसी का स्पॉट विक्रय करना या फॉरवर्ड विक्रय के लिए उसी करेंसी का स्पॉट क्रय करना। इस प्रकार की क्रिया को हम स्वैप या दोहरा व्यवहार (Double Deals) कहते हैं।

- **आर्बिट्रेज (Arbitrage)** - जब विदेशी करेंसियों का क्रय-विक्रय इस प्रकार किया जाए कि विभिन्न बाजारों में प्रचलित विदेशी विनिमय दरों में पाए जाने वाले अंतर का लाभ उठाया जा सके तो यह आर्बिट्रेज कहलाता है।
- **हेजिंग (Hedging)** - हेजिंग का अर्थ होता है अपने को विविध प्रकार के जोखिमों में उत्पन्न हानि से सुरक्षित करना। विदेशी विनिमय के संदर्भ में हेजिंग का आशय निर्यात जोखिम से सुरक्षित करना (Covering of export risks) है। यह एक व्यवस्था प्रदान करता है, जिससे आयातक तथा निर्यातक विदेशी विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचों से उत्पन्न हानियों से अपने को सुरक्षित कर सकें।
- **डाक्यूमेंटरी विदेशी विनिमय विपत्र (Documentary Foreign Bill of Exchange)** - एक विनिमय विपत्र एक शर्त रहित लिखित आदेश पत्र है जिसमें लिखने वाला, जिसको लिखा गया, को आदेश देता है कि बिल में लिखित राशि का मांग पर या किसी निर्दिष्ट तिथि पर भुगतान कर दे। जब विपत्र में एक पार्टी विदेशी हो तो उसे हम विदेशी विनिमय विपत्र कहते हैं। आजकल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान के लिए अधिकांशतया एक विशिष्ट प्रकार के विनिमय विपत्र का प्रयोग करते हैं, जिसे डाक्यूमेंटरी विनिमय प्रपत्र कहते हैं। यह वैसे विनिमय विपत्र ही होता है, अंतर केवल यह है कि माल के जहाज से भेजने से संबंधित प्रपत्र जैसे लदान बिल, बीमा प्रमाण पत्र, बीजक आदि उसी के साथ लगे रहते हैं। निर्यातक बैंक को यह आदेश दे सकता है कि जब तक आहरित बिल का भुगतान नहीं प्राप्त हो या आहरित बिल स्वीकार नहीं हो तब तक विपत्र में लगे अन्य विपत्रों को आयातक को नहीं दिया जाए।
- **नोस्ट्रो एकाउंट्स (Nostro Accounts)** - विदेशों में स्थित विदेशी बैंकों के साथ विदेशी करेंसी में भारतीय बैंकों द्वारा रखे गए खाते को नोस्ट्रो एकाउंट्स कहते हैं जिसका अर्थ होता है- आपके साथ हमारे खाते (Our accounts with you) जिस देश में यह खाता खोला जाएगा खाते की करेंसी उसी देश की होगी तथा सभी विदेशी विनिमय व्यवहार उसी खाते के माध्यम से होंगे।
- **वोस्ट्रो खाता (Vostro Accounts)** - विदेशी बैंकों द्वारा भारतीय बैंकों के साथ खोले जाने वाला रुपया खाते को वोस्ट्रो खाता कहते हैं। विनिमय नियंत्रण की दृष्टि से इस खाते को नॉन रेजिडेन्ट एकाउंट्स भी कहते हैं।
- **BID** - जिस दर पर अधिकृत डीलर विदेशी करेंसी क्रय करेगा, उसे BID Rate कहते हैं।
- **ASK** - जिस दर पर अधिकृत डीलर उसी समय विदेशी करेंसी की बिक्री करता है, उसे ASK Rate कहते हैं।
- **स्वतंत्र तरण (Free Float)** - जब विदेशी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय बाजार में मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा हो तो इसे स्वतंत्र तरण कहते हैं।
- **प्रबंधित तरण (Managed Float)** - जब विनिमय दर का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा ही हो, पर कुछ स्थितियों में या कुछ उद्देश्यों से केंद्रीय बैंक (RBI) बहुत अधिक मात्रा में विदेशी विनिमय के क्रय तथा विक्रय के द्वारा हस्तक्षेप कर सके तो इसे प्रबंधित तरण या गंदी तरण (Dirty Floats) कहते हैं।
- **व्हीकल करेंसी (Vehicle Currency)** - किसी देश की करेंसी यदि किसी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में जिसमें वह देश पार्टी नहीं हो, प्रयोग में आए उसे व्हीकल करेंसी कहते हैं। डॉलर न केवल एक अंतर्राष्ट्रीय करेंसी है, बल्कि एक व्हीकल करेंसी है क्योंकि यह सामान्यतया सभी अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों में प्रयोग में आती है, जैसे भारत तथा जर्मनी के बीच व्यापार जिसमें यू.एस.ए. पार्टी नहीं है, फिर भी व्यापार यू.एस.ए. डॉलर में होता है।

- **इस्क्रो एकाउंट (Escrow Account)** – इस्क्रो खाता ऐसा खाता है जिसे एक ब्रोकर अपने प्रिंसिपल या किसी व्यक्ति के लिए फंड धारण करने के लिए खोलता है तथा तब तक कायम रखता है जब तक कि व्यवहार पूरा नहीं हो जाता। इसके अंतर्गत रकम किसी स्वतंत्र तीसरी पार्टी के साथ रखी जाती है जिससे व्यवहार की दोनों पार्टियों के हित की रक्षा की जा सके। अंत में दोनों की सहमति से रकम दे दी जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था विदेशी निवेशकों को अपने विनियोग को बचाए रखने का अवसर देती है तथा यदि स्थानीय फर्म कुछ निश्चित दशाओं को नहीं पूरा करे तो वे उस डील या व्यवहार को छोड़ भी सकते हैं। इस स्थिति में विदेशी निवेशक को जो एक व्यक्तिगत इक्विटी में निवेश हो सकता है, यह अधिकार होता है कि वह अपनी इस संपत्ति धारिता को स्थानीय प्रवर्तक को बेच सके। एक बार जब विदेशी निवेशक अपने इस अधिकार का प्रयोग कर लेता है (या पुट ऑप्शन का प्रयोग कर लेता है) तो भारतीय प्रवर्तक इस्क्रो एकाउंट घरेलू संपत्तियों के गैर-निवासी निवेशकों के हित (Interest) को उत्पन्न करता है, जो भारतीय शेयरों या भूमि के विरुद्ध अपतटीय बैंक उधारी के ही समान है, जो विदेशी विनिमय नियमों का उल्लंघन करते हैं, इसलिए RBI ने इस्क्रो एकाउंट के संबंध में कठोर व्यवस्था की है।

विदेशी करेंसी विनिमय अधिनियम

- विदेशी, करेंसी विनिमय अधिनियम 1973 का खात्मा भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन के लिए किये जा रहे प्रयासों में से एक था। इसका स्वरूप प्रतिबंधित करने वाला और विदेशी करेंसी के लेन-देन में रुकावटें डालने वाला था। FERA के अंतर्गत विदेशी करेंसी का बहुत सीमित लेन-देन हो सकता था और वह भी सरकारी अनुमति के पश्चात् ही संभव था। इस अधिनियम के अंतर्गत नकारात्मक सूची (Negative List) बहुत लंबी थी और इन वस्तुओं का लेन-देन नहीं किया जा सकता था। सभी विदेशी स्वामित्व वाली कंपनियों FEMA कंपनियों के नाम से जानी जाती थीं। घरेलू क्षेत्र के लेन-देन को MRTP अधिनियम, के अंतर्गत किया जाता। अतः अर्थव्यवस्था के तहत FEMA कानून को समाप्त कर दिया गया और एक नया विदेशी करेंसी प्रबंधन अधिनियम 1999 (FEMA) पारित किया गया, जिसके माध्यम से विदेशी करेंसी प्रबंधन एवं लेन-देन का मार्ग प्रशस्त किया गया। इस प्रकार (FEMA) के अंतर्गत तीन मुख्य कार्य संपादित होते हैं। जो इस प्रकार हैं—
- ✓ रुपये की विनियमता।
- ✓ विदेशी करेंसी विनियम में आपराधिक मामलों के लिए एक अलग प्रवर्तन निदेशालय का गठन।
- ✓ कॉर्पोरेट क्षेत्र द्वारा उधार लेना।

औद्योगिक क्षेत्र में सुधार करते हुए FERA के स्थान पर FEMA लागू करना, व्यापारिक सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिससे यह स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में ज्यादा खुलापन आ चुका था और देश में आवक (Inflow) अब आसान हो गया है।

वर्तमान में भारतीय करेंसी रुपये की विनिमय दर में गिरावट के कारण (In Present Reason Behind Decline of Exchange Rate of Indian Currency Rupees)

वर्तमान में भारतीय करेंसी अमेरिकी डॉलर की तुलना में निरंतर कमजोर हो रही है इसके निम्नलिखित कारण हैं—

- कच्चे तेल की कीमतों में तेजी के कारण बढ़ते आयात बिल और विभिन्न वस्तुओं के बढ़ते आयात के कारण देश में डॉलर की मांग बढ़ रही है। इसके साथ-साथ निर्यात के अपेक्षाकृत धीमी गति से बढ़ने और विदेशी निवेशकों द्वारा नए निवेश की कमी के कारण भी देश में डॉलर की आवक कम हो गई है। चूँकि डॉलर में निवेश दुनिया में सबसे सुरक्षित माना जा रहा है, अतएव वैश्विक निवेशक भी बड़े पैमाने पर डॉलर की खरीद करते दिख रहे हैं। इन सब कारणों से डॉलर की कीमत बढ़ गई है।
- निःसंदेह अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की बढ़ती कीमतें रुपए के मूल्य में गिरावट का प्रमुख कारण है। हाल ही में कच्चे तेल की कीमतों में तीव्र वृद्धि हुई। निकट भविष्य में भी तेल की कीमतों में कोई बड़ी गिरावट की संभावना नजर नहीं आती।
- इन दिनों ग्लोबल ट्रेड वॉर की उभरती स्थितियों के बीच विदेशी निवेशक भी भारतीय बाजार में निवेश का जोखिम लेने से परहेज कर रहे हैं। वे अब अधिक सुरक्षित अमेरिकी डॉलर और बॉण्ड में निवेश कर रहे हैं। अमेरिकी डॉलर में लगातार मजबूती आ रही है और अमेरिका में 10 साल के सरकारी बॉण्ड पर प्राप्ति 3 प्रतिशत की ऊंचाई पर पहुंच गई है। ऐसे में विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (एफपीआई) भारत सहित अन्य बाजारों में अपना नया निवेश नहीं लगा रहे हैं। उल्टे वर्तमान निवेश निकालते दिख रहे हैं। वर्तमान में विदेशी निवेशकों ने भारत से करीब सात अरब डॉलर की निकासी की है। इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय है कि एमएससीआई सूचकांक के अनुसार वैश्विक फंडों का भारत के प्रति आकर्षण वर्ष, 2013 के बाद सबसे निचले स्तर पर है। 2015 तक भारत विदेशी निवेशकों की आंख का तारा था। 2015 तक उभरते बाजारों में होने वाले प्रत्येक 100 डॉलर के निवेश में से 16 डॉलर भारत को मिले, लेकिन अब इसमें गिरावट जारी है। इससे भारतीय वित्त बाजार की सेहत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- देश के बढ़ते व्यापार घाटे के कारण भी डॉलर की जरूरत लगातार बढ़ी है। अप्रैल-दिसंबर वर्ष 2020-21 में देश का कुल निर्यात 200.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर हुआ लेकिन निर्यात की तुलना में आयात बढ़ा रहा, जिससे वित्त वर्ष 2020-21 में व्यापार घाटा बढ़कर 44758 मिलियन डॉलर हो गया हालांकि वर्ष 2019-20 की अपेक्षा व्यापार घाटे में कमी आयी।

अमेरिकी डॉलर के सापेक्ष भारतीय रुपये की विनिमय दर (1947 से अब तक)

वर्ष	अमेरिकी डॉलर	रुपये का मूल्य	वर्ष	अमेरिकी डॉलर	रुपये का मूल्य	वर्ष	अमेरिकी डॉलर	रुपये का मूल्य
1947	1\$	1.00	2001	1\$	47.93	2011	1\$	51.10
1966	1\$	7.50	2002	1\$	48.98	2012	1\$	54.47
1975	1\$	8.40	2003	1\$	45.57	2015	1\$	63.76
1984	1\$	12.36	2004	1\$	43.85	2016	1\$	67.08
1990	1\$	17.50	2005	1\$	46.11	2017	1\$	67.76
1991	1\$	24.58	2007	1\$	44.25	2018	1\$	68.76
1992	1\$	28.97	2008	1\$	49.82	2019	1\$	70.96
1995	1\$	34.96	2009	1\$	49.29	2020	1\$	71.24
2000	1\$	46.78	2010	1\$	45.09	2021	1\$	75.30

रुपये की गिरती हुई विनिमय दर का प्रभाव (Effect of Decline Exchange Rate of Rupees)

- भारत के आयात बिल में तेजी से वृद्धि होगी। ध्यातव्य है कि भारत अपनी आवश्यकता के कच्चे तेल का तीन-चौथाई आयात करता है। रुपये की विनिमय दर में गिरावट के कारण कच्चा तेल भारतीय कंपनियों के लिए महंगा हो जायेगा, जिससे तेल पूल में वृद्धि होगी और इसके परिणामस्वरूप चालू खाते के घाटे में भी वृद्धि होगी।

सकारात्मक प्रभाव

- जहाँ रुपये की विनिमय दर में गिरावट के कारण नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होंगे वहीं दूसरी तरफ कुछ सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। रुपये की विनिमय दर में गिरावट के कारण निर्यातकों को लाभ होगा, क्योंकि उनको भुगतान डॉलर में प्राप्त होगा और उनके द्वारा इसको पुनः रुपए में परिवर्तित कराकर लाभ कमाया जा सकता है। इसके अलावा आईटी कंपनियों और फार्मा कंपनियों जो अपना माल विदेशों में भेजते हैं उनको भी लाभ होगा।
- भारत के निर्यात की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि होगी जिससे भारतीय उत्पादों की विश्व बाजार में अधिक मांग होगी इसका सीधा फायदा निर्यातकों को प्राप्त होगा।

नकारात्मक प्रभाव

- विनिमय दर में गिरावट होने से कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप पेट्रोल, डीजल की कीमतों में वृद्धि होगी, जिससे देश में किराये में वृद्धि होगी और माल-दुलाई महंगी हो जायेगी। यह स्थिति मुद्रा स्फीति को बढ़ावा देगी।
- भारतीय करेंसी रुपये की विनिमय दर में गिरावट से खाद्य पदार्थों के आयात पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। ध्यातव्य है कि भारत द्वारा खाद्य तेलों और दालों का आयात बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। रुपये की विनिमय दर में गिरावट से इनके आयात बिल में वृद्धि होगी। इस प्रकार खाद्य जनित मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलेगा।
- रुपये की कीमतों में गिरावट से ईंधन जनित मुद्रा स्फीति तथा खाद्य मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलेगा, जिससे सरकार के साथ-साथ भारतीय रिजर्व बैंक के सम्मुख भी मुद्रा स्फीति नियंत्रण की चुनौती उत्पन्न होगी।
- रुपये की विनिमय दर में गिरावट होने के कारण मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलेगा, जिससे समाज में असंतुलन उत्पन्न होगा और लोगों पर नकारात्मक

प्रभाव पड़ेगा, जिससे सरकार के सम्मुख चुनौतियाँ उत्पन्न होंगी।

- रुपये की विनिमय दर में गिरावट के कारण विदेशी निवेशकों के मनोबल और मनोभावों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। निवेशक भारतीय बाजार में निवेश करने के जोखिम से बचना चाहेगा और विदेशी निवेशकों द्वारा अधिक सुरक्षित अमेरिकी डॉलर एवं बांड में निवेश किया जायेगा। इससे भारत में विदेशी निवेश कम होगा जिसके फलस्वरूप विदेशी करेंसी भंडार में गिरावट आयेगी और आयात संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशी करेंसी की कमी की समस्या का सामना करना पड़ेगा।
- रुपए की विनिमय दर में गिरावट के कारण विदेशी ऋण में भी वृद्धि होगी, जिससे सरकार की राजकोषीय स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
- रुपए की विनिमय दर में गिरावट सरकार की नीतियों और उसकी साख को भी प्रभावित करेगी। सरकार की वित्तीय क्षमता वित्तीय प्रशासन और प्रबंधन के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में नकारात्मकता दिखाई देगी और लोग सरकार पर संदेह करने लगेंगे। इससे सरकार को अपनी विश्वसनीयता कायम करने के लिए चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

रुपये की विनिमय दर में गिरावट का समाधान (Solution for Decline Exchange Rate of Rupees)

इसे रोकने के लिए सरकार को निम्नलिखित कदम उठाने होंगे-

- हाल ही में भारतीय निर्यातक संगठनों के महासंघ (एफआईओ) ने कहा है कि सरकार द्वारा निर्यातकों को दी जा रही रियायतें वैश्विक निर्यात की बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना करने के मद्देनजर कम हैं। वैश्विक संरक्षणवाद की नई चुनौतियों के बीच सरकार को निर्यात प्रोत्साहन के लिए और अधिक कारगर कदम उठाने होंगे। देश से निर्यात बढ़ाने के लिए कम से कम कुछ ऐसे देशों के बाजारों को भी जोड़ना जरूरी है, जहाँ गिरावट अधिक नहीं है।
- यदि सरकार भारतीय उत्पादों को प्रतिस्पर्धी बनाने वाले सूक्ष्म आर्थिक सुधारों को लागू करे तो इससे आयात में कमी आएगी और निर्यात बढ़ने की संभावनाएँ भी बनेंगी। इससे भारत उन प्रतिकूल परिस्थितियों के खतरे का बखूबी सामना कर पाएगा, जिनके कारण डॉलर की तुलना में रुपये के मूल्य में गिरावट आ रही है।
- बैंक ऑफ अमेरिका और मेरिल लिंच बैंक ऑफ अमेरिका जो कि निवेश, बैंकिंग धन प्रबंधन प्रभाग को देखता है कि इस रिपोर्ट में कहा गया है कि विदेशी पोर्टफोलियो निवेश के प्रवाह में कमी से निपटने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक प्रवासी भारतीय बॉण्ड जारी कर 30 से 35 अरब डॉलर जुटा सकता है। निश्चित रूप से ऐसे प्रभावी कदमों के माध्यम से डॉलर के

मुकाबले रुपये की गिरावट पर लगाम लगाई जा सकती है। साथ ही, इससे विदेशी मुद्रा भंडार को भी उपयुक्त स्तर पर बनाए रखा जा सकेगा और इससे अर्थव्यवस्था की गतिशीलता भी बनी रहेगी।

- केंद्रीय बैंक भारतीय करेंसी बाजार में प्रत्यक्षतः हस्तक्षेप करने का विकल्प भी अपना सकता है और इसके अंतर्गत सरकारी कोष से विदेशी करेंसी (अमेरिकी डॉलर) डीलरों को उपलब्ध कराकर मांग और आपूर्ति में संतुलन स्थापित कर सकता है।

विभिन्न प्रकार की मुद्रायें

- **कड़ी मुद्रा (Hard Currency)** - यह ऐसी मुद्रा है जिनकी आवश्यकता सभी देशों को होती है। इन मुद्राओं में विश्व के देशों द्वारा उच्च विश्वास जताया जाता है तथा इनकी हमेशा कमी बनी रहती है। वर्तमान में अमेरिकी डॉलर, ब्रिटिश पाउंड स्टर्लिंग, जापानी येन तथा यूरो विश्व के सबसे बेहतर कड़ी मुद्रायें हैं।
- **मुलायम मुद्रा (Soft Currency)** - ऐसी मुद्रायें जो किसी देश के विदेशी विनिमय बाजार में आसानी से उपलब्ध हो। मुलायम मुद्रा की स्थिति कड़ी मुद्रा के ठीक विपरीत होती है।
- **उष्ण मुद्रा (Hot Currency)** - किसी भी कारण से अगर किसी देश की अर्थव्यवस्था से कड़ी मुद्रा का बाह्य पलायन हो रहा हो तो उस समय वह कड़ी मुद्रा उष्ण मुद्रा बन जाती है।
- **उष्णित मुद्रा (Heated Currency)** - जब किसी कारण से किसी अर्थव्यवस्था में कड़ी मुद्राओं का तेज पलायन होने लगे तो घरेलू मुद्रा में तेज शून्य हास होता है इस स्थिति में वह घरेलू मुद्रा उष्णित मुद्रा कहलाती है।
- **सस्ती मुद्रा (Cheap Currency)** - जब सरकार द्वारा अपने बॉण्ड को उनकी परिपक्वता अवधि के पूर्व वापस खरीद की जाये तो इस प्रक्रिया से अर्थव्यवस्था में जो धन प्रवाहित होता है उसे सस्ती मुद्रा कहते हैं।
- **मंहगी मुद्रा (Dear Currency)** - जब सरकार बॉण्ड जारी करती है तो जिस मुद्रा का प्रवाह सरकार के कोष में होता है उसे मंहगी मुद्रा कहते हैं। यह सरकार के पास धन की कमी की स्थिति को दर्शाता है।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन (International Organizations)

18वीं व 19वीं सदी में बढ़ते वैश्विक व्यापार ने समूचे विश्व को आर्थिक रूप से जोड़ना शुरू कर दिया था। यूरोप एवं अमेरिका की ऋण प्रदाता कंपनियों एवं व्यापार कंपनियों ने लगभग समूचे विश्व की परियोजनाओं में निवेश करना शुरू किया जिससे अनेक देशों की बंद अर्थव्यवस्थाएँ दूसरे देशों की अर्थव्यवस्थाओं से एकीकृत होना शुरू हो गईं। जैसे- चीन, जापान एवं भारत की अर्थव्यवस्था इंग्लैंड, फ्रांस आदि से जुड़ गयीं।



प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं इसके पश्चात् बड़ी संख्या में पूँजी का स्थानांतरण एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप की ओर हुआ एवं प्रथम विश्व युद्ध से हुए विनाश की भरपाई हेतु भी अन्य राष्ट्रों की पूँजी का निवेश यूरोप के राष्ट्रों में हुआ। विश्व युद्ध के पश्चात् प्रथम बार अप्रत्यक्ष रूप से वैश्विक अर्थव्यवस्था की कार्य विधि को विनियमित करने हेतु 'लीग ऑफ नेशंस' के माध्यम से प्रयास किया गया। यूरोप में हुए विनाश एवं इससे उत्पन्न महंगाई ने आर्थिक नीतियों को नियंत्रित किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया। इसके पश्चात् अमेरिका की महा मंदी ने लगभग समूचे विश्व की आर्थिक नीतियों को फिर से निर्धारित करने हेतु प्रेरित किया। इसी समय वैश्विक अर्थव्यवस्था को संभालने एवं उसे दिशा देने हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन की आवश्यकता महसूस होने लगी। द्वितीय विश्व युद्ध के विध्वंस ने इस आवश्यकता को और गहन किया कि विश्व की आर्थिक स्थिति को संभालने के लिए अब अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। फलतः IMF एवं World Bank जैसी संस्थाओं का गठन हुआ।

वित्तीय निवेशीकरण एवं पूँजीवादी विचारधारा के प्रसार से व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन हुआ जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी विवादों का जन्म हुआ। इन विवादों को सुलझाने एवं विश्व व्यापार को व्यवस्थित करने हेतु वैश्विक स्तर पर एक मजबूत व्यापार संगठन की आवश्यकता महसूस की गई, जिसके फलस्वरूप 1947 में GATT नामक संस्था को बनाया गया। 19वीं सदी के 70 व 80 के दशक में यूरोपियन यूनियन एवं आसियान जैसे संगठनों ने व्यापारिक संगठन की महत्ता को और बढ़ाया जिसके फलस्वरूप (GATT- General Agreement on Tariffs and Trade) उरुग्वे वार्ता के पश्चात् 1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन के रूप में स्थापित हो गया।

विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization)

- 1947 में GATT की स्थापना के बाद बहुराष्ट्रीय प्रणाली के विकास के फलस्वरूप 1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई।



- 1986 से 1994 तक उरुग्वे दौर की बातचीत का लंबा सिलसिला चला तथा 15 अप्रैल, 1994 को 123 देशों के वाणिज्य मंत्रियों ने मराकेश में उरुग्वे दौर के बैठक में हस्ताक्षर किए, जिसकी परिणति विश्व व्यापार संगठन के रूप में हुई।
- GATT की अस्थायी प्रकृति के विपरीत, 'विश्व व्यापार संगठन' एक स्थायी संगठन है तथा इसकी स्थापना सदस्य राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अंतर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है।
- आर्थिक जगत में इसकी स्थिति अब अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के समान ही है, किंतु उपरोक्त दोनों की भांति यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेंसी नहीं है।
- वर्तमान में विश्व व्यापार संगठन के 164 सदस्य तथा 23 ऑब्जर्वर देश हैं। WTO का 163वां सदस्य लाइबेरिया (14 जुलाई, 2016) तथा 164वां सदस्य देश अफगानिस्तान (29 जुलाई, 2016) है। चीन इसमें 2001 में शामिल हुआ था।

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

- जीवन स्तर में वृद्धि करना।
- पूर्ण रोजगार एवं प्रभावपूर्ण वृहतस्तरीय परंतु ठोस वृद्धि करना।
- वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना।
- सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना।
- विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।
- सतत विकास की अवधारणा को स्वीकार करना।
- पर्यावरण का संरक्षण व उसकी सुरक्षा करना।

विश्व व्यापार संगठन के कार्य

विश्व व्यापार संगठन (WTO) के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख अग्रलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

- विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय (Plurilateral) समझौतों के कार्यान्वयन प्रशासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएँ प्रदान करना।
- व्यापार एवं प्रशुल्क से संबंधित किसी भी भावी मसले पर सदस्यों के बीच विचार-विमर्श हेतु एक मंच के रूप में कार्य करना।
- विवादों के निपटारे (Settlement of Disputes) से संबंधित नियमों एवं प्रक्रियाओं को प्रशासित करना।
- व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया (Trade Policy Review Mechanism) से संबंधित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
- वैश्विक आर्थिक नीति निर्माण में अधिक सामंजस्य भाव (Coherence) लाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक से सहयोग करना।
- विश्व संसाधनों (World Resources) का अनुकूलतम प्रयोग सुनिश्चित करना।
- सब्सिडी एवं डॉपिंग नीतियों को नियंत्रित करना।

ब्यूनस आयर्स सम्मेलन एवं भारत (Buenos Aires Conference & India)

विश्व व्यापार संगठन (WTO) का 11वाँ मंत्रिस्तरीय सम्मेलन अर्जेंटीना के ब्यूनस आयर्स (Buenos Aires) शहर में 10 से 13 दिसंबर, 2017 में संपन्न हुआ। हालांकि यह सम्मेलन बिना किसी मंत्रिस्तरीय घोषणा के ही समाप्त हो गया। सम्मेलन की कार्यवाही में पूर्ण खुलेपन एवं पारदर्शिता का पालन किया गया, जिसमें सभी पक्षों को अपने विचार व्यक्त करने के अवसर प्राप्त हुए।

- इस सम्मेलन में सदस्य देशों की खाद्य सुरक्षा से जुड़ी सरकारी खाद्य भंडारण की व्यवस्था पर स्थायी समाधान मिलने की संभावना थी। लेकिन एक देश (यू.एस.ए.) के मजबूत विरोध के कारण न तो इस मुद्दे पर कोई विचार बना और न ही आगामी दो वर्षों की कार्य योजना को ही तय किया जा सका। वैसे इस दिशा में सदस्य देश वार्ता करते रहेंगे एवं कृषि के लिए विशेष व्यवस्था के साथ-साथ घरेलू कृषि समर्थन की व्यवस्था बनी रहेगी।
 - मत्स्य क्षेत्र में दी जाने वाली छूटों (Subsidies) में अनुशासन, इस कार्य योजना का अंग था, इस पर सहमति बनी रही (पहले का निर्णय) ताकि 12वें सम्मेलन में इस पर अंतिम निर्णय लिया जा सके।
 - ई-कॉमर्स की वर्तमान कार्य योजना जारी रहेगी ऐसी सहमति बनी रही (पहले के निर्णय)।
 - वार्ता में जुड़े नए मुद्दों यथा निवेश सरलीकरण (Facilitation), लघु एवं मझोले उपक्रमों एवं व्यापार इत्यादि पर इस सम्मेलन में कोई सहमति नहीं बन पायी।
- पूरी वार्ता प्रक्रिया के दौरान भारत अपने निर्णय पर मजबूती से टिका रहा, जिसमें कई महत्वपूर्ण मुद्दे शामिल थे, संगठन के मौलिक सिद्धांतों का पालन, बहुपक्षीय व्यवस्था, कानून आधारित सहमतिपूर्वक निर्णय लेने की प्रक्रिया,

स्वतंत्र अपीलीय एवं विवाद निपटान व्यवस्था, दोहा विकास एजेंडा (DDA) पर कार्य तथा विकासशील देशों के लिए विशेष एवं विभेदीकृत प्रावधानों का पालन। फिलहाल, भारत समान सोच रखने वाले सदस्यों के साथ लघु मंत्रिस्तरीय सम्मेलनों (Mini Ministerial Conference) की प्रक्रिया पर अमल करते हुए उन मुद्दों पर सहमति बनाने की कोशिश में संलग्न है, जिनके कारण यह सम्मेलन बिना किसी निर्णय के ही समाप्त हो गया।

वैश्विक व्यापार वृद्धि (Global Trade Growth)

- विश्व व्यापार संगठन विश्व में व्यापार संबंधी अवरोधों को दूर कर वैश्विक व्यापार को बढ़ावा देने वाला एक अंतर सरकारी संगठन है।
- WTO ने वर्ष 2021 में वैश्विक व्यापार वृद्धि का अनुमान बढ़ाकर 10.8 प्रतिशत किया तथा वर्ष 2022 में 4.7 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया।
- रिपोर्ट के अनुसार व्यापार की मात्रा में वृद्धि के साथ 2021 में बाजार-भारित GDP वृद्धि 5.3% और वर्ष 2022 में 4.1% (पहले 5.1% तथा 3.8 से संशोधित) होने की संभावना है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund)

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, जिसकी स्थापना ब्रेटन वुड्स सम्मेलन के निर्णयानुसार 27 दिसंबर, 1945 को वाशिंगटन में हुई।



- भारत IMF का संस्थापक सदस्य है अर्थात् भारत 27 दिसम्बर 1945 को IMF का सदस्य बना।
- वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के 190 सदस्य हैं। एंडोरा देश इसका सदस्य बनने वाला 190वाँ सदस्य है।
- क्रिस्टालिना जॉर्जीवा वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की प्रबंध निदेशक हैं। भारतीय मूल की अर्थशास्त्री गीता गोपीनाथ को IMF का उप प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्त किया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौता अनुच्छेदों के अनुसार इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहित करना।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का संतुलित विकास करना।
- विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखना।
- बहुपक्षीय भुगतानों की व्यवस्था स्थापित करके विनिमय प्रतिबंधों को समाप्त करना अथवा कम करना।
- सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए अस्थायी तौर पर आर्थिक सहायता प्रदान करना।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का नियंत्रण एवं प्रबंधन एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा किया जाता है।
- प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर को मनोनीत करता है, जिन्हें मिलाकर बोर्ड ऑफ गवर्नर्स का निर्माण होता है।
- प्रत्येक देश द्वारा एक वैकल्पिक गवर्नर की नियुक्ति भी की जाती है, जो मुख्य गवर्नर की अनुपस्थिति में मतदान करता है।
- प्रत्येक गवर्नर को प्राप्त मताधिकारों की संख्या, उसके देश को प्राप्त कोटा के आधार पर निर्धारित होती है।
- इस प्रकार प्रत्येक देश को 250 मताधिकार सदस्यता के तथा प्रत्येक एक लाख एस.डी.आर पर एक-एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। (SDR- Special Drawing Rights) को IMF द्वारा 1969 में सोने के उतार-चढ़ाव को देखते हुए सृजित किया था।
- धनी व औद्योगिक देशों के कोटे में अधिक धन-राशि होने के कारण इन्हें अधिक मत देने का अधिकार प्राप्त है।
- एसडीआर धारिता किसी देश के एफडीआर के घटकों में से एक है। आईएमएफ अपने सदस्यों को निधि में उनके मौजूदा कोटा के अनुपात में सामान्य एसडीआर आवंटित करता है। आईएमएफ के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स ने 2 अगस्त, 2021 (23 अगस्त, 2021 से प्रभावी) को लगभग 456 बिलियन एसडीआर के सामान्य आवंटन को मंजूरी दी थी, जिसमें से भारत का हिस्सा एसडीआर 12.57 बिलियन है। 23 अगस्त, 2021 को भारत की कुल एसडीआर धारिता अब एसडीआर 13.66 बिलियन (नवीनतम विनिमय दर पर लगभग 19.41 बिलियन अमरीकी डालर के बराबर) हो गई है।
- वर्तमान में SDR का मूल्य लगभग 1.39 U.S. डॉलर है। 1981 से SDR का मूल्य निर्धारण सबसे बड़े निर्यातक देशों की करेंसियों जैसे यूएस डॉलर, यूरो, येन और पाउंड स्टर्लिंग व रेनमिन्बी की टोकरी (Basket) के आधार पर किया जाने लगा है।

भारत व आई. एम. एफ. (India and IMF)

- पूर्व के वर्षों में भारत, आई.एम.एफ. से समय-समय पर ऋण लेता रहा है, परंतु वर्तमान में भारत इसके वित्त पोषक राष्ट्रों में शामिल हो गया है।
- भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को करेंसी फाइनेशियल ट्रांजेक्शन प्लान (FTP) के तहत उपलब्ध कराया गया है।
- FTP की सदस्यता हेतु उन देशों को चुना जाता है जिनकी स्वयं की भुगतान संतुलन की स्थिति सुदृढ़ हो।

वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक रिपोर्ट में भारत की स्थिति

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विश्व आर्थिक आउटलुक के नवीनतम संस्करण ने वित्त वर्ष 2022-23 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि के लिए अपने पूर्वानुमान को घटाकर 8.2% कर दिया, जिससे यह दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्था बन गई।
 - आईएमएफ ने 2022 और 2023 में वैश्विक विकास दर 3.6 फीसदी, जनवरी, 2022 के पूर्वानुमान की तुलना में क्रमशः 0.8 और 0.2 फीसदी कम रहने का अनुमान लगाया है।

वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक

- वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक (WEO) एक सर्वेक्षण है जिसका आयोजन तथा प्रकाशन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा किया जाता है।

- यह भविष्य के चार वर्षों तक के अनुमानों के साथ निकट और मध्यम संदर्भ में वैश्विक अर्थव्यवस्था को चित्रित करता है।
- डब्ल्यूईओ पूर्वानुमान में सकल घरेलू उत्पाद, मुद्रा स्फीति, चालू खाता और दुनिया भर के 180 से अधिक देशों के वित्तीय संतुलन जैसे महत्वपूर्ण आर्थिक संकेतक शामिल होते हैं।

विश्व बैंक (World Bank)

विश्व बैंक एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसका प्रमुख उद्देश्य विकासशील देशों को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ना है तथा आर्थिक संवृद्धि प्रेरित करके गरीबी में कमी लाना है। विश्व बैंक अपने सदस्यों को नीतिगत सुधारों तथा विकासात्मक परियोजनाओं के लिए ऋण देता है तथा ऋण के अलावा अन्य सेवाएँ जैसे नीतिगत राय, तकनीकी सहायता आदि प्रदान करता है।

इस समय इसके 189 सदस्य हैं तथा मुख्यालय वाशिंगटन में है। 2010 में तुवालू इसका 187वाँ, 2012 में दक्षिण सूडान 188वाँ, अप्रैल, 2016 में नौरू गणराज्य इसका 189वाँ सदस्य बना।

विश्व बैंक का गठन ब्रेटन वुड्स सम्मेलन के तहत 1945 में हुआ तथा इसने जून 1949 से कार्य करना आरंभ कर दिया। वर्तमान में विश्व बैंक समूह अपने 5 अंतःसंबंधित आर्थिक संस्थानों के द्वारा अपने सदस्य राष्ट्रों में कार्यशील है। इन संस्थानों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-



अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (International Bank for Reconstruction and Development)

IBRD विश्व बैंक का सबसे पुराना संस्थान है जो वर्ष 1945 से कार्य कर रहा है। इसका मूल उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध में जर्जित अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण करना था। इनके पुनर्निर्माण के पश्चात् इसके द्वारा अन्य सदस्य देशों के विकास के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा। बहुत कम ब्याज दर (सालाना 1.55 प्रतिशत) पर कर्ज देने का मुख्य उद्देश्य मानव विकास था। विश्व बैंक द्वारा प्रमुख क्षेत्रों जैसे- कृषि, सिंचाई, शहरी विकास, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, दुग्ध विकास इत्यादि के लिए कर्ज दिया जाता है। इसने भारत के लिए कर्ज देना 1949 में शुरू कर दिया था।

विश्व बैंक में 2010 से सुधार प्रक्रिया शुरू करने के बाद, भारत को आईबीआरडी में अतिरिक्त शेयर (अभी 56,739 शेयर्स जिनका मूल्य 684.47 करोड़ डॉलर है) जारी किये गए। इसके साथ ही भारत आईबीआरडी में सातवाँ सबसे बड़ा शेयरधारक (11वीं पायदान से ऊपर उठकर) बन गया है, जिसके वोटिंग अधिकार 2.91 प्रतिशत हो गए हैं, जो पहले 2.77 प्रतिशत थे।

अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (International Development Agency- IDA)

IDA की स्थापना 1960 में की गई। इसे विश्व बैंक की 'उदार खिड़की' (Soft Window) भी कहा जाता है क्योंकि विश्व बैंक का कोई भी ऋण इससे 'सस्ता' नहीं होता है। इसके द्वारा प्रदत्त ऋणों का उद्देश्य सदस्य देशों में आधारभूत संरचना/आर्थिक सेवाओं का विकास है। जैसे देश जिनकी प्रतिव्यक्ति आय \$895 से कम है उन्हें इसकी सुविधा उपलब्ध है। ऋणों का किश्त भुगतान सदस्य देशों द्वारा ग्यारहवें वर्ष से प्रारंभ होता है। आज IBRD और IDA के ऋणों के बीच के उद्देश्यों का अंतर लगभग समाप्त हो गया है।

विश्व बैंक से प्राप्त होने वाला यह ऋण आकर्षक एवं प्रभावकारी होता है। यही कारण है कि योग्य सदस्य देशों द्वारा प्रत्येक वर्ष उच्चस्तरीय राजनयिक प्रयास किए जाते हैं, ताकि वे इसका अधिक-से-अधिक हिस्सा अपनी तरफ आकर्षित कर सकें। स्थापना के समय से भारत IDA का सबसे बड़ा लोन प्राप्तकर्ता रहा है। विश्व बैंक से अब तक भारत को कुल 19.81 बिलियन डॉलर (IBRD+IDA) की सहायता प्राप्त हो चुकी है।

अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation- IFC)

IFC की स्थापना वर्ष 1956 में की गई। इसे विश्व बैंक की निजी भुजा/शाखा' (Private Arm) भी कहा जाता है। जहां IBRD तथा IDA द्वारा सदस्य राष्ट्रों को सस्ता ऋण उपलब्ध कराया जाता है वहीं IFC द्वारा सदस्य देशों के निजी क्षेत्रीय संगठनों/कंपनियों को वाणिज्यिक ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। यह अपने सदस्य देशों की निजी क्षेत्र की कंपनियों को कर्ज देता है। वसूली जाने वाली ब्याज दरें व्यावसायिक होती हैं, लेकिन तुलनात्मक रूप से बहुत कम होती हैं। आईएफसी द्वारा दिए जाने वाले कर्ज में कई आकर्षक विशेषताएँ हैं। यह निजी निवेशकों के साथ निजी सार्वजनिक उपक्रमों और परियोजनाओं को कर्ज और सलाह देता है और अपने परामर्श कार्य के जरिए सदस्य देशों की सरकारों के लिए ऐसी स्थितियाँ बनाने में सहायता करता है, जिससे घरेलू व विदेशी निजी बचत और निवेश के प्रवाह में तेजी आए।

यह अपने सदस्य देशों में उत्पादक उद्यमों और कुशल पूंजी बाजार को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने में ध्यान केंद्रित करता है। यह निवेश में तभी भाग लेता है जब यह विशेष योगदान कर सके, जो बाजार निवेशक विदेशी वित्तीय निवेशक (एफएफआई के रूप में) की भूमिका की पूरक हो।

यह प्रदर्शित करते हुए कि विकासशील दुनिया में भी निवेश करना फायदे का सौदा हो सकता है, यह वहां निजी निवेश को प्रेरित और गतिशील करने में उत्प्रेरक की भूमिका भी निभाता है। हाल ही में भारत में आईएफसी के निवेश में भारी बढ़ोतरी देखी गई है, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर निश्चित तौर पर विदेशी निवेशकों का भरोसा और मजबूत हुआ है।

बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (Multilateral Investment Guarantee Agency- MIGA)

MIGA की स्थापना वर्ष 1988 में विकासशील देशों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए की गई। इसके द्वारा विदेशी निवेशकों को सदस्य देशों में निवेश की मात्रा पर एक बीमा उपलब्ध कराया जाता है, जो उनके गैर वाणिज्यिक जोखिम (Non Commercial Risk) को वहन करता है। करेंसी हस्तांतरण संबद्ध समस्या, नागरिक उपद्रव, स्वामित्वहरण (Expropriation) इत्यादि जोखिमों के प्रति यह एक तरह की 'गारंटी' है। इसके अतिरिक्त यह सदस्य देशों को विदेशी निवेश के अवसरों संबंधी तकनीकी सहायता एवं सूचनाएँ भी उपलब्ध कराता है। भारत इस एजेंसी का सदस्य है।

अंतर्राष्ट्रीय निवेश विवाद निपटान केंद्र (International Investment Dispute Settlement Centre- ICSID)

1966 में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय निवेश विवाद निपटान केंद्र (आईसीएसआईडी) एक निवेश विवाद निपटान संस्था है जिसके निर्णय सभी पक्षों पर बाध्यकारी होते हैं। यह 1966 में देशों एवं विदेशी निवेशकों के बीच निवेश संबंधी विवादों के सम्मेलन में विवादों के निपटारे हेतु स्थापित हुआ। स्थापित हुआ। हालांकि इसकी मदद लेना स्वैच्छिक है, लेकिन पक्षों के मध्यस्थता के लिए सहमत होने के बाद, वे अपनी सहमति एकतरफा वापस नहीं ले सकते। यह निवेश करने वाली विदेशी कंपनियों और मेजबान कंपनियों, (जिनमें निवेश किया गया है) के बीच होने वाले निवेश विवादों को सुलझाती है।

भारत इसका सदस्य नहीं है, यही कारण है कि 'एनरॉन' (अमेरिकी कंपनी) से जुड़े निवेश विवाद को इसके द्वारा नहीं निपटारा गया था। विशेषज्ञों की राय में इसकी सदस्यता विदेशी निवेशकों को उस देश में निवेश के लिए प्रोत्साहित करती है। दूसरी तरफ इसकी सदस्यता को सदस्य देश की 'संप्रभुता' (Sovereignty) के हास का द्योतक भी माना जाता है।

विश्व बैंक के उद्देश्य

विश्व बैंक की स्थापना के समय इसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गए थे-

- सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक पुनर्निर्माण एवं विकास हेतु उन्हें दीर्घकालीन पूँजी उपलब्ध कराना। विश्व बैंक द्वारा यह पूँजी निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रदान की जाती है-
 - युद्ध जर्जित अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण हेतु।
 - शांतिकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादक शक्तियों को पुनः वित्त उपलब्ध कराना।
 - अल्पविकसित राष्ट्रों में साधनों एवं उत्पादन की सुविधाएँ विकसित करना।
- भुगतान संतुलन की साम्यता एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास हेतु दीर्घकालीन पूँजी विनियोग को प्रोत्साहित करना, जिससे सदस्य राष्ट्रों की उत्पादकता में वृद्धि हो। फलतः मानव शक्ति की स्थिति व जीवन स्तर और अधिक उन्नत हो सके।
- सदस्य राष्ट्रों में पूँजी निवेश को निम्नलिखित माध्यमों से प्रोत्साहित करना।
 - निजी ऋणों अथवा पूँजी निवेश के लिए गारंटी प्रदान करना।
 - निजी पूँजी को गारंटी दिए जाने के फलस्वरूप भी, यदि निजी पूँजी उपलब्ध न हो पाए, तो स्वयं के साधनों से उपयुक्त शर्तों पर उत्पादक कार्यों हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
- लघु एवं वृहद इकाईयाँ तथा आवश्यक परियोजनाओं के कार्यान्वयन हेतु ऋण प्रदान करना अथवा ऐसे ऋणों के लिए गारंटी देना।
- युद्ध जर्जित अर्थव्यवस्थाओं को दीर्घकालिक शांतिकालीन अर्थव्यवस्था के रूप में परिवर्तित करने हेतु उपयुक्त कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं को लागू करना।

विश्व बैंक की सदस्यता हेतु प्रावधान

यदि कोई देश अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता ग्रहण करता है, तो स्वतः ही विश्व बैंक का भी सदस्य बन जाता है तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता का त्याग करते ही विश्व बैंक की सदस्यता भी समाप्त हो जाती है। सदस्यता का त्याग करने के लिए किसी भी सदस्य देश को सूचना मात्र देनी होती है। किसी भी सदस्य राष्ट्र द्वारा बैंक के नियमों एवं दायित्वों के प्रतिकूल कार्य करने पर गवर्नर मंडल के प्रस्ताव द्वारा भी इसे हटाया जा सकता है।

विश्व बैंक के कार्य

- विश्व बैंक का मुख्य कार्य सदस्य राष्ट्रों, विशेषतः अल्पविकसित राष्ट्रों के विकास हेतु आवश्यकतानुसार ऋण उपलब्ध कराना है।
- विश्व बैंक द्वारा प्रदान किए जाने वाले ऋणों की अवधि 5 से 20 वर्ष तक की होती है।
- विश्व बैंक अपनी प्रदत्त पूँजी का 20 प्रतिशत तक अपने कोष से सदस्य देशों को ऋण दे सकता है।
- विश्व बैंक सदस्य राष्ट्रों के निजी विनियोजकों को अपनी व्यक्तिगत गारंटी पर भी ऋण उपलब्ध कराता है। ज्ञातव्य हो कि ऐसे ऋण तभी दिए जाते हैं जब पहले वो उस देश से स्वीकृति प्राप्त कर ले, जिस देश के बाजार से उसे एकत्र किया गया है।
- ऋण की मात्रा, ब्याज दर व अन्य संबंधित शर्तों का निर्धारण बैंक द्वारा किया जाता है।
- विश्व बैंक के ऋण सामान्यतः किसी परियोजना विशेष के लिए स्वीकृत किए जाते हैं।
- ऋण प्राप्तकर्ता द्वारा ऋण का भुगतान स्वर्ण में अथवा उसी करेंसी में करना होता है, जिसमें ऋण लिया गया हो।
- विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार, भारत पिछले 70 वर्षों में विश्व बैंक से सर्वाधिक ऋण प्राप्तकर्ता देश है।

विश्व बैंक रिपोर्ट 2021

विश्व बैंक द्वारा वित्तीय वर्ष 2021-22 के लिए देशों के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से जुड़े नवीनतम आँकड़े जारी किये गए-

- विश्व बैंक के अनुसार, भारत की कुल GDP वृद्धि दर वित्तीय वर्ष 2021-22 में 8.3% रहने की संभावना व्यक्त की गयी है, जबकि वर्ष 2020 में 7.3% अनुमानित थी।
- वित्त वर्ष 2019 में वृद्धि दर 4% तथा वर्ष 2018 में 6.5% रही है।
- रिपोर्ट के अनुसार, जहाँ वर्ष 2019 में सर्वाधिक तेज आर्थिक वृद्धि करने वाला देश रवांडा (9.4%) रहा, वही बांग्लादेश (8.2%) एशियाई देशों में सबसे आगे रहा, उसके बाद चीन (6%) तथा मिस्र (5.6%) का स्तर रहा।
- नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2020 में वैश्विक विकास दर 3.5% अनुमानित है, जबकि वर्ष 2019 में 2.5% रही है।
- वर्ष 2021 में 5.6%, 2022 में 4.3% तथा 2023 में 3.1% पूर्वानुमानित है।

न्यू मल्टी डोनर फंड

- 18 अक्टूबर, 2018 को विश्व बैंक द्वारा समावेशी विकास लक्ष्यों (SDG) को प्राप्त करने की दिशा में एक भागीदार फंड के रूप में 'न्यू मल्टी डोनर फंड' को लॉन्च किया गया।
- स्वीडन, मल्टी डोनर फंड का पहला साझेदार था।

मल्टी डोनर फंड के उद्देश्य

- मल्टी डोनर फंड का उद्देश्य प्रेरक गतिविधियों को प्रोत्साहित करना है, जिससे SDG कार्यान्वयन को मजबूत किया जा सके।
- यह राष्ट्रीय स्तर पर बैंकों के सामूहिक प्रयासों को पूरा करने, क्रॉस कन्ट्री क्षमता निर्माण एवं मल्टीपल हितधारक की साझेदारी पर ध्यान केंद्रित करता है।

एशियाई विकास बैंक (Asian Development Bank)

- एशियाई देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने हेतु संयुक्त राष्ट्र के एशिया एवं सुदूर पूर्व आयोग की सिफारिश पर इस बैंक की स्थापना दिसंबर, 1966 में की गई तथा 1 जनवरी, 1967 से इस बैंक ने कार्य करना आरंभ कर दिया।



- इस बैंक का मुख्यालय फिलीपींस की राजधानी मनीला में है।
- भारत इस बैंक के संस्थापक देशों में शामिल है।
- एशियन विकास बैंक के अध्यक्ष का पद हमेशा जापानी को ही दिया जाता है तथा इसके तीन उपाध्यक्षों में एक यूरोप, एक अमेरिका तथा एक एशिया का प्रतिनिधि होता है।
- वर्तमान में जापान के मासात्सुगु असाकावा एशियाई विकास बैंक के चेयरपर्सन हैं।
- वर्तमान में एशियाई विकास बैंक के 68 सदस्य देश हैं, जिसमें 48 एशिया प्रशांत क्षेत्र से तथा 19 इसके बाहर से हैं। नियू इसका 68वां सदस्य देश 2019 में बना।
- इसका उद्देश्य एशिया और प्रशांत क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन, सतत आर्थिक संवृद्धि, समाहित सामाजिक विकास, पर्यावरण निरंतरता, संरचना प्रसारण और क्षेत्रीय एकीकरण में बढ़ोतरी करना है।

एशियाई विकास बैंक के कार्य

एशियाई विकास बैंक के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं-

- अपने विकासशील सदस्य देशों की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए ऋण और इक्विटी निवेश उपलब्ध कराना।
- विकास परियोजनाएँ और कार्यक्रम तथा परामर्श सेवाएँ तैयार करने और उन्हें लागू करने के लिए वित्तीय तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना।
- समन्वयकारी विकास नीतियों और योजनाओं के द्वारा विकासशील सदस्य देशों के सहायता अनुरोधों पर कार्यवाही करना।

एशियन डेवलपमेंट आउटलुक, 2021

(Asian Development Outlook-2021)

- वित्त वर्ष 2021-22 में विकासशील एशिया की आर्थिक वृद्धि दर 7.3% के आसपास रहेगी, जबकि पिछले वर्ष इसमें 0.2% संकुचन देखने को मिला था।
- वित्त वर्ष 2022-23 में भारत की आर्थिक वृद्धि 7% रहने का अनुमान है।



- रिपोर्ट के अनुसार विकासशील एशिया की GDP वृद्धि दर वर्ष 2021 में 7.1% अनुमानित है, जबकि 2022 में 5.4% अनुमानित है।
- वर्ष 2021 में भारत की GDP वृद्धि दर 10% अनुमानित था, जबकि वर्ष 2022 में यह 7.5% अनुमानित है, वही वर्ष 2020 में -7.3% थी।

ब्रिक्स विकास बैंक (BRICS Development Bank)

- ब्रिक्स विकास बैंक की स्थापना का निर्णय फोर्टालेजा (2014) में छठे ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में लिया गया। इस निर्णय के अनुरूप इनकी स्थापना 2015 में कर दी गई। आरंभिक छः वर्षों के लिए इसकी अध्यक्षता भारत को सौंपी गई है। इसका प्रथम अध्यक्ष भारत के उद्योगपति और आईसीआईसीआई बैंक के पूर्व प्रबंध निदेशक के. वी. कामथ थे।



- अब ब्रिक्स विकास बैंक के वर्तमान अध्यक्ष मार्कोस प्राडो ट्रायजो (ब्राजील) हैं।
- इसका मुख्यालय शंघाई (चीन) में है तथा भारत, ब्राजील, रूस, चीन व दक्षिण अफ्रीका, उरुग्वे, UAE, बांग्लादेश तथा मिश्र इसके सदस्य हैं।
- ब्रिक्स विकास बैंक के लिए 100 अरब डॉलर अधिकृत पूँजी का प्रावधान किया गया था। परंतु प्रारंभिक पूँजी 50 अरब डॉलर रखी गयी थी।
- ब्रिक्स विकास बैंक में सभी सदस्य देशों की हिस्सेदारी समान होगी, जिससे कि कोई भी देश मनमाना निर्णय नहीं ले सकता है।
- अधिकृत पूँजी के अतिरिक्त 100 अरब अमेरिकी डॉलर की आपात आरक्षित विदेशी विनिमय का प्रावधान किया गया है। इसमें चीन की हिस्सेदारी अधिकतम 41 अरब डॉलर होगी जबकि भारत, रूस और ब्राजील की हिस्सेदारी 18-18 अरब डॉलर होगी, जबकि सबसे कम दक्षिण अफ्रीका की 5 अरब डॉलर होगी।
- समर्थित परियोजनाओं के लिए यह बैंक तकनीकी सहायता प्रदान करेगा और पर्यावरण, सामाजिक स्थिरता में योगदान करने के उद्देश्य से सूचना और कर्मियों के आदान-प्रदान संबंधी कार्यों में मदद करेगा।

ब्रिक्स विकास बैंक के उद्देश्य

- आर्थिक विकास में सहायता करना।
 - सदस्य देशों और अन्य विकासशील देशों के विकास को बढ़ावा देना।
 - प्रतिस्पर्धात्मकता और रोजगार सृजन को बढ़ावा देना।
 - विकासशील देशों के बीच एक ज्ञान साझाकरण मंच बनाना।
- अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ब्रिक्स विकास बैंक सार्वजनिक, निजी परियोजनाओं को ऋण, गारंटी, इक्विटी भागीदारी और अन्य वित्तीय साधनों के माध्यम से सहायता करेगा। इसी संदर्भ में वर्ष 2016 में बैंक के निदेशक मंडल में ग्रीन और नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में परियोजनाओं के लिए 1.5 बिलियन

अमेरिकी डॉलर से अधिक की वित्तीय सहायता और परिवहन से जुड़े ऋणों को मंजूरी दी है।

एशियन इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक (Asian Infrastructure Investment Bank-AIIB)

एशियन इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक की स्थापना 29 जून, 2015 को चीन तथा अन्य 49 देशों ने एक समझौते के तहत किया। इसका शुरुआती मुख्यालय बीजिंग में है। इस संस्थान की प्रारंभिक पूँजी 100 बिलियन डॉलर की थी। इस संस्थान का प्रस्ताव चीन सरकार ने किया। यह संस्थान अन्य वित्तीय संस्थाओं की तुलना में प्रतिस्पर्धी संस्था के रूप में उभरा है इसी कारण यू.एस.ए. द्वारा इसका विरोध किया गया है।

इस संगठन के 10 सदस्य जिनके पास बैंक की कुल पूँजी का 50% तक है। भारत भी इस बैंक के संस्थापक देशों में से एक है। एशियन इंफ्रास्ट्रक्चर बैंक में वर्तमान में कुल सदस्यों की संख्या 105 है। इस संगठन में सदस्य देशों को उनकी शेयर देयता क्षमता के अनुसार मत देने का अधिकार है। मतों का विभाजन तीन प्रकार से किया गया है- 1. आधार मत, 2. शेयर मत तथा 3. संस्थापक सदस्य मत।



जिनमें आधार मत कुल मत का 12%, शेयर मत कुल मत का 85% और संस्थापक सदस्य कुल मत का 3% है।

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (Organisation for Economic Co-operation and Development- OECD)

आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (Organisation for Economic Co-operation and Development- OECD) 38 देशों का अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन है। ये देश वैश्विक मानचित्र पर उत्तर और दक्षिण अमेरिका से लेकर यूरोप और एशिया प्रशांत तक फैले हैं। इसकी स्थापना 1961 में आर्थिक विकास एवं विश्व व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए की गई थी।

वर्ष 1948 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD) की उत्पत्ति यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन (OEEC) के तौर पर हुई थी। उस समय इसके गठन का उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध से तबाह हुए यूरोपीय देशों के आर्थिक पुर्ननिर्माण में, अमेरिका द्वारा लाई गई मार्शल योजना के तहत महाद्वीप के पुर्ननिर्माण के लिए प्रशासन को मदद करना था।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन का उद्देश्य दुनिया में रहने वाले लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार लाने वाली नीतियों को बढ़ावा देना है।

ओईसीडी एक मंच प्रदान करता है जहां सरकारें एक साथ मिलकर काम कर सकती हैं और अपने अनुभव साझा कर सकती हैं एवं आम समस्याओं का समाधान ढूंढ सकती हैं। यह आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय बदलाव अभियानों को समझने के लिए सरकारों के साथ मिलकर काम करता है।

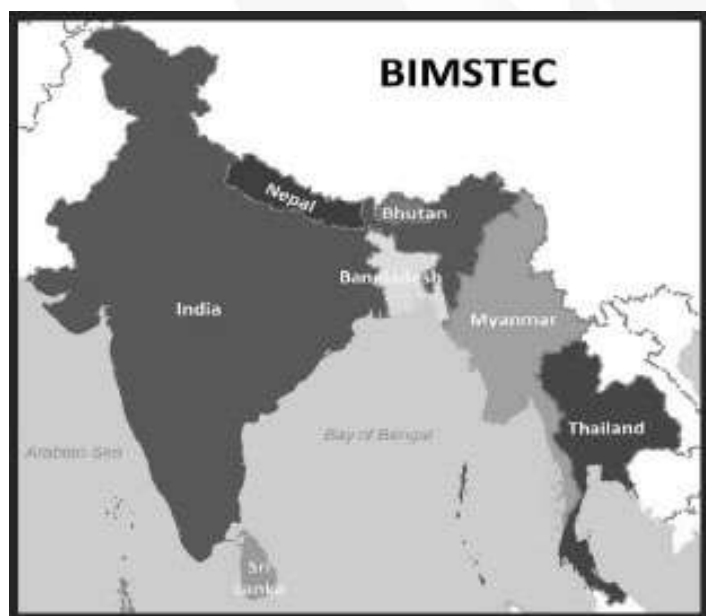
यह उत्पादकता और व्यापार एवं निवेश के वैश्विक प्रवाहों को मापता है। भविष्य के रुझानों की भविष्यवाणी के लिए आँकड़ों का विश्लेषण और तुलना करता है। साथ ही, कृषि और रसायनों की सुरक्षा के लिए कर सहित कई क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय मानकों को निर्धारित करता है।

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) एवं भारत

भारत को बढ़ी हुई जिम्मेदारी (2007 से) प्राप्त हुई है जो सदस्य बनने से अलग किस्म की है लेकिन इसमें भारत को पूर्ण सदस्यता दिलाने की क्षमता है। इसकी सदस्यता प्राप्ति की प्रक्रिया अत्यधिक जटिल और दीर्घकालिक है, क्योंकि इसके साथ परीक्षणों की एक लंबी श्रृंखला जुड़ी हुई है और यह काफी विचार-विमर्श कर देखता है कि नीतिगत मामलों में व्यापक विस्तार के सापेक्ष ओईसीडी के मानकों पर देश में खरा उतरने की योग्यता है या नहीं। बहरहाल, 1998 (जब भारत ने इसकी स्टील समिति की सदस्यता ग्रहण की थी) के बाद से ही ओईसीडी के साथ भारत के रिश्तों में प्रगाढ़ता बढ़ती गई। उसके बाद अर्थात् 2007 से भारत ओईसीडी का मुख्य भागीदार है। वर्ष 2017 के आरंभ से भारत 21 ओईसीडी निकायों में सहयोगी या प्रतिभागी के तौर पर शामिल होता रहा है और ओईसीडी के 9 लीगल इंस्ट्रुमेंट को समर्थन करता है। यह ओईसीडी के कई महत्वपूर्ण मामलों, कॉर्पोरेट गवर्नेंस से लेकर राजकोषीय मामलों एवं परमाणु ऊर्जा मामलों तक, में अहम योगदान करने वाले देश के रूप में भारत की मान्यता को जाहिर करता है।

बिस्मटेक (BIMSTEC)

- जून, 1997 में बांग्लादेश, भारत, थाईलैंड तथा श्रीलंका द्वारा बैंकाक घोषणा के माध्यम से एक आर्थिक सहयोग संगठन के रूप में बिस्मटेक (BIMSTEC - Bangladesh, India, Sri Lanka & Thailand Economic Co-operation) की स्थापना की गयी। दिसम्बर, 1997 में बिस्मटेक में म्यांमार को भी सम्मिलित करने का निर्णय लिया गया। 6 फरवरी, 2004 को बिस्मटेक में नेपाल तथा भूटान को भी सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार बिस्मटेक में सदस्य देशों की संख्या बढ़कर 7 हो गयी। विस्तारित बिस्मटेक का पहला शिखर सम्मेलन जुलाई, 2004 को थाईलैंड की राजधानी बैंकाक में हुआ। बैंकाक शिखर सम्मेलन में इसका नाम बदलकर (BIMSTEC - The Bay of Bengal Initiative for Multi-Sectoral Technical and Economic Co-operation) कर दिया गया। इसका मुख्यालय ढाका, बांग्लादेश में है।



- बिस्मटेक प्राथमिकता के 14 क्षेत्रों पर ध्यान देता है, जो निम्न हैं- व्यापार एवं निवेश, प्रौद्योगिकी, ऊर्जा, परिवहन एवं संचार, पर्यटन, मत्स्यकी,

कृषि, सांस्कृतिक सहयोग, पर्यावरण एवं आपदा प्रबंधन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जन संपर्क, गरीबी उन्मूलन, प्रति-आतंकवाद, देशपारीय अपराध एवं जलवायु परिवर्तन। इस आर्थिक सहयोग संगठन को आगे चलकर मुक्त व्यापार क्षेत्र में बदलने का निर्णय लिया गया है।

बिस्मटेक सम्मेलन: एक नजर में

सम्मेलन	स्थान	वर्ष
1.	बैंकाक (थाईलैंड)	जुलाई, 2004
2.	नई दिल्ली (भारत)	नवम्बर, 2008
3.	नाएपीडा (म्यांमार)	मार्च, 2014
4.	काठमांडू (नेपाल)	अगस्त, 2018
5.	कोलंबो (श्रीलंका)	मार्च, 2022

बिस्मटेक का उद्देश्य

बिस्मटेक बंगाल की खाड़ी के तटीय देशों का एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन है, जिसकी स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत हैं-

- बंगाल की खाड़ी के तटीय देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देना।
- सदस्य देशों के बीच आपसी सहयोग को बढ़ावा देकर सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान खोजना।
- अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के संदर्भ में एक समान दृष्टिकोण अपनाना।
- उदार आर्थिक नीतियों के निर्माण के साथ विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में सहयोग देना।
- अनुसंधान के नये क्षेत्रों की खोज एवं उनका विकास करना।

भारत के लिए बिस्मटेक की प्रासंगिकता

बिस्मटेक भारत के लिए निम्नलिखित दृष्टिकोण से उपयोगी या प्रासंगिक सिद्ध हो सकता है-

- बिस्मटेक के सदस्यों से बहुस्तरीय संबंध स्थापित कर भारत पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास को गति प्रदान कर सकता है।
- बिस्मटेक में दक्षिण एशिया के साथ-साथ दक्षिण-पूर्व एशिया के संगठन आसियान के दो सदस्य सम्मिलित हैं। भारत बिस्मटेक के माध्यम से आसियान के साथ अपने संबंधों को मधुर बना सकता है।
- भारत के व्यापार को बढ़ावा मिलेगा क्योंकि म्यांमार और थाईलैंड, भारत को दक्षिणी पूर्वी क्षेत्रों से जोड़ने में महत्वपूर्ण देश है।
- भारत और बिस्मटेक के बीच संबंधों के प्रगाढ़ होने से सीमा पार से होने वाले आतंकवाद और उग्रवाद से मुकाबला करने में क्षेत्रीय सहयोग प्राप्त होगा।
- क्षेत्रीय सहयोग बढ़ने से बिस्मटेक के सदस्य देश गरीबी उन्मूलन, पर्यटन, ऊर्जा और जलवायु परिवर्तन एवं आपदा प्रबंधन सहित विविध क्षेत्रों में सहयोग करके क्षेत्रीय एकीकरण को मजबूत बनाने की दिशा में काम करेंगे।
- बिस्मटेक के साथ सक्रिय भागीदारी से भारत को चीन को प्रति संतुलित करने में भी मदद मिलेगी। साथ ही, यह दक्षिण एशिया में पाक को अलग-थलग करने की भारत की रणनीति में भी सहायक होगा।

विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum)

विश्व आर्थिक मंच स्विट्जरलैंड में स्थित एक गैर-लाभकारी संस्था है। इसका मुख्यालय जेनेवा में है। स्विस् अधिकारियों द्वारा इसे एक निजी सार्वजनिक सहयोग के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। इसका मिशन विश्व के व्यवसाय, राजनीति, शैक्षिक और अन्य क्षेत्रों में अग्रणी लोगों को एक साथ लाकर वैश्विक, क्षेत्रीय और औद्योगिक दिशा तय करना है।



आईएमडी वैश्विक प्रतिस्पर्धा सूचकांक-2022

- इंस्टीट्यूट फॉर मैनेजमेंट डेवलपमेंट (IMD) ने 34वीं विश्व प्रतिस्पर्धात्मक रैंकिंग 2022 जारी की।
- विश्व प्रतिस्पर्धा सूचकांक 2022 के तीन शीर्ष देश (1) डेनमार्क, (2) स्वीट्जरलैंड, (3) सिंगापुर।
- वैश्विक प्रतिस्पर्धा सूचकांक 2022 में भारत को 37वाँ स्थान प्राप्त हुआ है।

विश्व प्रतिस्पर्धात्मक रैंकिंग, 2022 ब्रिक्स देशों की स्थिति

देश	रैंक	देश	रैंक
ब्राजील	59वां	चीन	17वां
रूस	गणना नहीं	दक्षिण अफ्रीका	60वां
भारत	37वां		

अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन एवं समझौते (Other International Organization & Agreements)

यूरोपियन यूनियन (European Union-EU)

यूरोपियन यूनियन यूरोपीय देशों का राजनैतिक व आर्थिक संगठन है। इसकी स्थापना किसी एक समझौते या संधि द्वारा नहीं, बल्कि विभिन्न संधियों तथा उनमें संशोधनों के बाद हुई। इसके विकास में पेरिस की संधि (1951), रोम की संधि (1957), मास्ट्रिच की संधि (1993) तथा लिस्बन की संधि (2009) का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लिस्बन की संधि के बाद इसका अधिकारिक नाम यूरोपीय संघ हो गया था।

यूरोपीय यूनियन ने यूरोपीय देशों के राजनीतिक व आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह संगठन विश्व की लगभग 22% अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। विश्व के कुल GDP के लगभग 30% भाग पर इसका नियंत्रण है।

यूरो जोन, यूरोपियन यूनियन के वर्तमान 27 सदस्य देशों में से 19 देशों का एक मौद्रिक संघ है, जिन्होंने अपने देश की मुद्रा के स्थान पर 1 जनवरी, 1999 को यूरो को अपनी वैधानिक मुद्रा के तौर पर अपनाया है।

यूरोपीय संघ इस समय विश्व का सबसे बड़ा एकीकृत बाजार है, जहां सभी सदस्य राज्यों में वित्त एवं सेवाओं का मुक्त आदान-प्रदान होता है।

यद्यपि यूरोपियन यूनियन विश्व के सबसे मजबूत क्षेत्रीय संगठनों में से एक है, परंतु ब्रिटेन के इससे बाहर हो जाने के फैसले से इसके विस्तार में बाधा आने की संभावनाओं की अटकलें लगायी जा रही हैं, क्योंकि यूरोपियन यूनियन में सबसे अधिक योगदान करने वाला देश ब्रिटेन ही है।

ब्रेक्जिट (Brexit)

- यूनाइटेड किंगडम द्वारा 23 जून, 2016 को कराए गए जनमत संग्रह में यूरोपीय संघ से बाहर जाने का निर्णय को ब्रेक्जिट कहा जाता है, जो ब्रिटेन के Br तथा Exit को मिलाकर बना है।
- इस जनमत संग्रह में 52% मतदाताओं ने यू.के. के यूरोपीय संघ से बाहर हो जाने का समर्थन किया। इस जनमत संग्रह में 71.8% लोगों ने भाग लिया था।
- क्षेत्रीय स्तर पर इस जनमत का परिणाम विखंडित रहा। जैसे इंग्लैंड में 53.4% लोगों ने यूरोपीय संघ से बाहर होने का समर्थन किया जबकि स्कॉटलैंड में 62% लोगों ने यूरोपीय संघ में बने रहने का समर्थन किया।

बांग्लादेश, चीन, भारत और म्यांमार आर्थिक गलियारा (Bangladesh, China, India and Myanmar Economic Corridor)

- क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारत, बांग्लादेश, म्यांमार व चीन ने मिलकर एक नए आर्थिक सहयोग मंच BCIM का गठन फरवरी 2002 में किया।
- इस मंच के गठन का उद्देश्य आर्थिक क्षेत्र को मजबूती प्रदान करना है। इसके लिए ग्यारह सूत्रीय 'ढाका घोषणा पत्र' को स्वीकार किया गया।

दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार समझौता (South Asian Free Trade Agreement-SAFTA)

साफ्टा का सामान्य अर्थ, दक्षिण एशियाई देशों, जिसमें मुख्यतः भारत, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान शामिल हैं, के बीच मुक्त व्यापार क्षेत्र से है। सार्क के 12वें शिखर सम्मेलन में इस ऐतिहासिक मुक्त व्यापार समझौते पर इन देशों के बीच सहमति बनी और साफ्टा, दक्षिण एशियाई अधिमन्य व्यापार समझौता साफ्टा की जगह लेकर 1 जनवरी, 2006 से प्रभावी हो गया।

साफ्टा को सार्क के 8वें शिखर सम्मेलन में लागू किया गया। इस समझौते का लक्ष्य दक्षिण एशिया में व्यापार संबंधी बाधाओं को दूर करना और सार्क देशों के बीच अधिक उदार व्यापार व्यवस्था कायम किये जाने का प्रावधान था। इन उद्देश्यों को ही पूरा करने के लिए साफ्टा को लागू किया गया।

साफ्टा का उद्देश्य दक्षिण एशियाई देशों के बीच वस्तुओं की मुफ्त आवाजाही में आने वाली बाधाओं को दूर करना और अर्थव्यवस्था को एकीकृत करना है।



इस समझौते के तहत सार्क का प्रत्येक सदस्य देश अपने यहां संवेदनशील

वस्तुओं की एक सूची बनाएगा, जिन पर कोई शुल्क कटौती नहीं की जाएगी। भारत ने ऐसी 884 वस्तुओं की संवदेनशील सूची बनाई है, जिन पर व्यापार कर कम नहीं किया जाएगा।

- SAFTA दक्षिण राष्ट्रों का दक्षिण एशियाई स्वतंत्र व्यापार उदारीकरण कार्यक्रम (TIP) है।
- दक्षिण देशों में भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, श्रीलंका और मालदीव शामिल हैं।
- भारत ने पहले चरण की प्रशुल्क कटौती को 1 जुलाई, 2006 से लागू कर दिया है, जिसके तहत 380 उत्पादों के दक्षिण देशों से आयात पर प्रशुल्क दरें घटाई गयी हैं।
- दक्षिण की लीस्ट डेवलप्ड कंट्रीज जैसे नेपाल, भूटान, बांग्लादेश और मालदीव तथा नॉन लीस्ट डेवलप्ड कंट्रीज जैसे भारत, श्रीलंका व पाकिस्तान के मामलों में ड्यूटी में कटौतियाँ अलग-अलग हैं। इससे दक्षिण राष्ट्रों के आपसी व्यापार को बढ़ावा मिलेगा।

पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन

(Organization of Petroleum Exporting Countries-OPEC)

- पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन OPEC की स्थापना सितंबर, 1960 में बगदाद में हुई। इसका मुख्यालय वियना में है।
- इसके संस्थापक सदस्य राष्ट्र ईरान, कुवैत, सऊदी अरब तथा वेनेजुएला थे। इसके गठन का सुझाव वेनेजुएला ने दिया था। यह 14 सदस्यीय संगठन था। वर्तमान में यह 13 सदस्यीय रह गया है 'कतर' ने इसकी सदस्यता को त्याग दिया है।



- इस संगठन का उद्देश्य खनिज तेल के उत्पादन व इसकी कीमत को नियंत्रित करके पेट्रोलियम निर्यात करने वाले राष्ट्रों के हितों का उन्नयन करना है। इसके अंतर्गत तेल की कीमतों को स्थिरता प्रदान करना, तेल की अधिक कीमत प्राप्त करना तथा समय-समय पर इनके संवर्द्धन के लिए नीति का निर्धारण करना।
- OPEC की सदस्यता उन देशों को प्रदान की जाती है, जो पर्याप्त मात्रा में अशोधित तेल निर्यात करते हैं तथा जिनके हित इन देशों से मिलते-जुलते हों।

सात विकसित देशों का समूह जी-7 (Group of Seven Developed Countries G-7)

यह दुनिया के सात सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाले देशों का मंच है। 1970 के दशक में तेल संकट और आर्थिक मंदी के माहौल के बीच महसूस किया गया कि दुनिया में अहम देशों के नेताओं के लिए खुलकर बात करने का कोई मंच होना चाहिए।

इसी के बाद 1975 में फ्रांस में जी-6 की स्थापना हुई। इसमें फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, ब्रिटेन और अमेरिका शामिल हुए। 1976 में कनाडा के शामिल होने बाद यह जी-7 और 1998 में रूस के शामिल हो जाने के बाद यह जी-8 नाम से जाना जाने लगा। लेकिन वर्ष 2014 में रूस के अलग होने से यह फिर से जी-7 कहलाने लगा है।



वर्तमान में G-7 समूह के सदस्य देशों की वैश्विक निर्यात में लगभग 49 प्रतिशत, औद्योगिक निष्पादन में 51 प्रतिशत और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के परिसंपत्तियों में लगभग 49 प्रतिशत की हिस्सेदारी है।

- G-7 का न तो कोई मुख्यालय है न इसके द्वारा सदस्य राष्ट्रों हेतु कोई बजट बनाया जाता है। इसका पूरा खर्च वही देश उठाता है, जहां इसका आयोजन होता है।

47वां G-7 शिखर सम्मेलन-2021 (47th G-7 Summit 2021)

- 11-13 जून 2021 के मध्य ब्रिटेन की अध्यक्षता में कार्बिस बे, कॉर्नवॉल (यूके) में आयोजित किया गया।
- इस शिखर सम्मेलन का मुख्य विषय 'बिल्ड बैक बेटर' है।
- इस सम्मेलन में ब्रिटेन ने भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया तथा दक्षिण अफ्रीका को मेहमान देश (Guest Countries) के रूप में आमंत्रित किया।
- G-7 देशों ने विकासशील देशों को कोविड-19 टीकों
- की 870 मिलियन अतिरिक्त खुराकें प्रदान करने हेतु प्रतिबद्धता व्यक्त की है।
- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वर्चुअल रूप से 'संपर्क सत्रों' (Outreach Sessions) में प्रतिभाग किया। यह दूसरा अवसर है जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने G-7 शिखर सम्मेलन में भाग लिया। (इसके पहले वर्ष 2019 में बियारिट्ज, फ्रांस में आयोजित सम्मेलन में भारत को 'सद्भावना भागीदार' के रूप में आमंत्रित किया गया था)।
- G-7 का 48वां सम्मेलन 26 जून, से 28 जून 2022 को जर्मनी की अध्यक्षता में हुआ।
- G-7, 2022 की थीम 'न्यायसंगत विश्व की ओर प्रगति'।

20 औद्योगिक एवं विकाशील देशों का समूह जी-20 (Group of 20 Industrial and Developing Countries G-20)

जी-20 विश्व की 20 प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक के गवर्नरों का एक संगठन है। G-7 देशों के वित्त मंत्रियों ने इसका गठन वर्ष 1997 में एशियन वित्तीय संकट के बाद वर्ष 1999 में एक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय मंच के तौर पर किया था जो अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के साथ ब्रेटन वुड्स संस्थागत प्रणाली की रूपरेखा के भीतर आने वाले महत्वपूर्ण देशों के बीच

अनौपचारिक बातचीत एवं सहयोग को बढ़ावा दे।

जी-20 अपने सदस्यों के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग और कुछ मुद्दों पर निर्णय करने के लिए एक प्रमुख मंच है। इसमें 19 देश (विकसित एवं विकासशील) और यूरोपीय संघ शामिल है।

जी-20 के सदस्य वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (GDP का करीब लगभग 90 प्रतिशत, वैश्विक व्यापार के लगभग 80 प्रतिशत और विश्व की आबादी के

लगभग दो-तिहाई से अधिक का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जी-20, वित्तीय स्थिरता बोर्ड, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन के साथ मिलकर काम करता है।

- 20 औद्योगिक एवं विकासशील देशों का पहला सम्मेलन दिसंबर, 1999 को जर्मनी में संपन्न हुआ।

G-20 शिखर सम्मेलन

क्र.सं.	तिथि	आयोजन स्थल	क्र.सं.	तिथि	आयोजन स्थल
1.	नवंबर, 2008	वाशिंगटन डी. सी. (अमेरिका)	10.	नवंबर, 2015	अंताल्या (टर्की)
2.	अप्रैल, 2009	लंदन (ब्रिटेन)	11.	सितंबर, 2016	हांगझू (चीन)
3.	सितंबर, 2009	पिट्सबर्ग (अमेरिका)	12.	जुलाई, 2017	हैम्बर्ग (जर्मनी)
4.	जून, 2010	टोरंटो (कनाडा)	13.	नवम्बर, 2018	अर्जेटीना (ब्यूनस आयर्स)
5.	नवंबर, 2010	सियोल (दक्षिण कोरिया)	14.	जून, 2019	ओसाका (जापान)
6.	नवंबर, 2011	कान (फ्रांस)	15.	नवंबर, 2020	रियाद (सऊदी अरब)
7.	जून, 2012	सैन जोस डेल काबो (मेक्सिको)	16.	अक्टूबर, 2021	रोम (इटली)
8.	सितंबर, 2013	सेंट पीटर्सबर्ग (रूस)	17.	2022	इंडोनेशिया
9.	नवंबर, 2014	ब्रिस्बेन (ऑस्ट्रेलिया)	18.	2023	भारत

नोट:- 1 दिसम्बर, 2022 से 30 नवम्बर, 2023 एक वर्ष के लिए भारत को G-20 की अध्यक्षता दी गयी है।

15 निर्गुट एवं विकासशील देशों का समूह (जी-15)

[Group of 15 Non-Aligned and Developing Countries (G-15)]

- 15 निर्गुट एवं विकासशील देशों के संगठन G-15 की स्थापना सितंबर, 1989 में बेलग्रेड (युगोस्लाविया) में निर्गुट शिखर सम्मेलन के समय हुई।
- G-15 में वर्तमान में 17 सदस्य देश हैं, जिसमें मेक्सिको जमैका, वेनेजुएला, ब्राजील, चिली व अर्जेटीना, अफ्रीका से सेनेगल, अल्जीरिया, नाइजीरिया, जिम्बाब्वे, मिस्र व केन्या तथा एशिया से भारत, ईरान, मलेशिया, इंडोनेशिया व श्रीलंका शामिल हैं।
- G-15 के 17 देशों में से ब्राजील व मेक्सिको को छोड़कर शेष सभी निर्गुट राष्ट्र हैं।
- G-15 की अनेक योजनाओं का समन्वय भारत करता है, इनमें जीन बैंक परियोजना, नाइजीरियाई मशीन टूल्स का पुनर्जीवीकरण आदि शामिल हैं।

G-15 शिखर सम्मेलन के आयोजन स्थल

क्र. सं.	तिथि	आयोजन स्थल	क्र. सं.	तिथि	आयोजन स्थल
1.	1-3 जून, 1990	कुआलालम्पुर (मलेशिया)	9.	10-12 फरवरी, 1999	मोंटेगोबे (जमैका)
2.	27-29 नवंबर, 1991	कराकस (वेनेजुएला)	10.	19-20 फरवरी, 1999	काहिरा (मिस्र)
3.	21-23 नवंबर, 1992	डकार (सेनेगल)	11.	30-31 मई, 2001	जकार्ता (इंडोनेशिया)
4.	28-30 मार्च, 1993	नई दिल्ली (भारत)	12.	27-28 फरवरी, 2004	कराकस (वेनेजुएला)
5.	5-7 नवंबर, 1995	ब्यूनस आयर्स (अर्जेटीना)	13.	14 सितंबर, 2006	हवाना (क्यूबा)
6.	3-5 नवंबर, 1996	हरारे (जिम्बाब्वे)	14.	15-17 सितंबर, 2010	तेहरान (ईरान)
7.	28 अक्टूबर-5 नवंबर, 1997	कुआलालम्पुर (मलेशिया)	15.	2012	कोलम्बो (श्रीलंका)
8.	11-13 मई, 1998	काहिरा (मिस्र)	16.	2015	टोक्यो (जापान)

क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी

(Regional Comprehensive Economic Partnership)

यह समझौता एसियान व अन्य छह FTP भागीदारी (भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड) के मध्य किया गया है। इसमें क्षेत्रीय मुक्त व्यापार समझौते का प्रस्ताव रखा गया है। इसके सदस्य देशों की वैश्विक व्यापार में लगभग 40 प्रतिशत भागीदारी है। इस समझौते के अंतर्गत वस्तुओं, सेवाओं, निवेश बौद्धिक संपदा, आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग, प्रतिस्पर्धा, ई-कॉमर्स एवं कानूनी व संस्थागत विषयों सहित कई क्षेत्र शामिल किये गये हैं।

इसका उद्देश्य वस्तुओं व सेवाओं के व्यापार में उच्च टैरिफ उदारीकरण के स्तर को प्राप्त करना है।

एशिया प्रशांत व्यापार समझौता (Asia Pacific Trade Agreement)

- छह देशों (बांग्लादेश, चीन, भारत, लाओस, कोरिया गणराज्य और श्रीलंका) के बीच एशिया-प्रशांत व्यापार समझौते (पूर्ववर्ती बैंकॉक समझौता) के अंतर्गत वार्ताओं के चौथे दौर में लिये गये निर्णय 1 जुलाई, 2018 से लागू हो गये।

- एशिया-प्रशांत व्यापार समझौता (आप्टा) संयुक्त राष्ट्र के एकसूत्रीय (एशिया-प्रशांत के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आयोग) के अंतर्गत एक विशिष्ट पहल है जिसका उद्देश्य एशिया-प्रशांत क्षेत्र के सदस्य माने जाने वाले विकासशील देशों के बीच शुल्क (टैरिफ) रियायतों के आदान-प्रदान के जरिए व्यापार का विस्तारीकरण करना है।
- यह वर्ष 1975 से ही प्रभावी है। एशिया-प्रशांत व्यापार समझौता एक वरीयता प्राप्त व्यापार समझौता है, जिसके अंतर्गत विभिन्न वस्तुओं के बास्केट के साथ-साथ शुल्क रियायतों की सीमा को भी समय-समय पर होने वाली व्यापार वार्ताओं के दौरान बढ़ाया जाता है।
- 15 नवंबर, 2020 को हस्ताक्षरित 15 सदस्यीय एशिया, प्रशांत व्यापार समझौता, क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP) समझौता, 2022 की शुरुआत तक लागू होने की उम्मीद है।
- यह संधि, आसियान देशों के लिए दुनिया का सबसे बड़ा मुक्त व्यापार समझौता (FTA) होगी, जब ये लागू हो जाएगी तो दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का लगभग 30% तथा दुनिया की आबादी का 30% हिस्सा इस संधि के अंतर्गत आ जाएगा।

बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Rights)

मनुष्य अपनी बौद्धिक गतिविधियों के जरिए, जिन संपदाओं का सृजन करता है, उन्हें बौद्धिक संपदा कहते हैं। इसका संबंध मनुष्य के ज्ञान, बुद्धि और कौशल से है। ये मानव मस्तिष्क की उपज होती हैं और मनुष्य को नवोन्मेष की ओर ले जाती हैं। मनुष्य द्वारा सृजित इन बौद्धिक संपदाओं के संरक्षण के जरिये अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ आर्थिक हितों को भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे अनुसंधान और विकास अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार में सहायक होते हैं। साथ ही, इसके कारण विदेशी पूंजी के अंतर्वाह में तेजी आने की संभावना होती है। यह आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ रोजगार के अवसरों के सृजन में सहायक होती है। बौद्धिक संपदा अधिकारों का संरक्षण अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन देता है साथ ही, इस बात को सुनिश्चित करता है कि मनुष्य की सृजनात्मक गतिविधियों का लाभ व्यक्ति के साथ-साथ समाज को भी मिल सके। यह उपभोक्ताओं के लिए बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करता है, तो उत्पादकों के लिए उत्तरदायित्व का भी निर्धारण करता है। यह स्वास्थ्य के क्षेत्र में नवीनतम अनुसंधान के जरिए इस बात को सुनिश्चित करता है कि इसका लाभ पूरे मानव समुदाय को मिले। विकास का मुख्य आधार नवाचार होता है लेकिन नवाचारों के लिए लोग तभी प्रोत्साहित होंगे, जब वे नवाचार से जुड़े वाणिज्यिक अधिकारों का प्रयोग कर पायेंगे। अतः एक ऐसी व्यवस्था को लागू करने की आवश्यकता है जो नवाचारी को सम्बंधित उत्पाद का वाणिज्यिक दोहन करने का अनन्य अधिकार प्रदान करती हो, इस व्यवस्था को ही IPRs के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में, दुनिया में IPRs की सबसे बड़ी प्रणाली TRIPS है, जिसका उद्भव 1994 में हुआ था। भारत इसे 1 जनवरी, 2005 से पूर्ण रूप से लागू कर चुका है।

बौद्धिक संपदा के प्रकार (Types of Intellectual Property)

ट्रिप्स समझौता (Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights - TRIPS) नये आविष्कारों के संदर्भ में आविष्कारक को उसका पेटेंट कराने का अधिकार देता है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि वह आविष्कार नया व स्पष्ट हो, उसमें औद्योगिक उपयोग की संभावना मौजूद हो और उसके निर्माण में आविष्कार की प्रक्रिया आधारित पेटेंट (प्रोसेस पेटेंट) की व्यवस्था की गई है। उत्पाद आधारित पेटेंट (प्रोडक्ट पेटेंट) की संकल्पना के अंतर्गत पेटेंट प्राप्त कर चुके व्यक्ति की अनुमति के बिना न तो उत्पाद बनाया जा सकता है न बेचा जा सकता और न ही उसका आयात किया जा सकता है।

प्रोडक्ट पेटेंट की तुलना में प्रोसेस पेटेंट की अवधारणा को कहीं अधिक व्यापक बनाया गया है, इसके अंतर्गत पेटेंट कराई गई प्रक्रिया द्वारा निर्मित वस्तुओं या उत्पादों को खरीदा/ बेचा नहीं जा सकता है। डायग्नोस्टिक, थेराप्यूटिक व सर्जिकल प्रक्रियाओं में सूक्ष्म जीवों को एवं पशु व पौधों की पैदावार से संबंधित मूलतः जीव वैज्ञानिक प्रक्रिया को पेटेंट के दायरे से बाहर रखा गया है। इस प्रकार ट्रिप्स समझौता पेटेंट प्राप्त करने वाले व्यक्ति को उसके आविष्कार पर एकाधिकार प्रदान करता है, उसके व्यावसायिक उपयोग के लिए लाइसेंस प्रदान करता है और उसके एवज में रॉयल्टी वसूल करने का अधिकार प्रदान करता है। यदि कोई व्यक्ति अनुचित तरीके से उसका इस्तेमाल करता है, तो पेटेंट धारक अपने पेटेंट अधिकारों के संरक्षण के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। विकासशील देशों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए ट्रिप्स समझौता व्यापक सामाजिक हित में अनिवार्य लाइसेंसिंग का प्रावधान करता है। इसके तहत सम्बद्ध सरकार कुछ शर्तों को पूरा करने की स्थिति में किसी निर्माता को पेटेंट कराए गए आविष्कारों की व्यावसायिक रॉयल्टी का प्रावधान करता है। इस प्रणाली में बौद्धिक क्षमता अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए सात विधियों का प्रयोग किया जाता है—कॉपीराइट, पेटेंट, ट्रेडमार्क, औद्योगिक डिजाइन, व्यापार रहस्य, भौगोलिक संकेत और एकीकृत परिपथ।

- **कॉपीराइट (Copyright)** - ट्रिप्स समझौता साहित्यिक व कलात्मक क्षेत्र की रचनाओं की सुरक्षा के लिए कॉपीराइट का प्रावधान करता है। शर्त यह है कि वह मौलिक हो, लेकिन इस मौलिकता का संबंध विचारों की मौलिकता के स्थान पर अभिव्यक्ति व प्रस्तुतीकरण की मौलिकता से है। कॉपीराइट के संबंध में धारक के अधिकार को आर्थिक अधिकारों के तहत रचना व सृजन के पुनरोत्पादन, उसके अनुवाद, रेडियो व टीवी पर उसकी प्रस्तुति, नाटक व साउंड रिकॉर्डिंग के साथ-साथ फिल्मों के लिए उसके प्रयोग हेतु कॉपीराइट धारक की अनुमति अनिवार्य है।
- **पेटेंट (Patent)** - पेटेंट एक ऐसा कानूनी अधिकार है जो खोजकर्ता, अनुसंधानकर्ता को सरकार द्वारा उसके द्वारा की गई खोज, आविष्कार को एक निश्चित अवधि तक उसके पुरस्कार स्वरूप उसके उपयोग करने का अधिकार प्रदान करता है। अतः पेटेंट सरकार द्वारा अनुसंधानकर्ता या आविष्कारक को उसके आविष्कार को उपयोग करने, उससे लाभ उठाने हेतु एक निश्चित समयावधि के लिए प्रमाण-पत्र प्रदान दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, पेटेंट एक ऐसा कानूनी अधिकार है जिसके मिलने के बाद यदि कोई व्यक्ति या संस्था किसी उत्पाद को खोजती या बनाती है तो उसे उस उत्पाद को बनाने का एकाधिकार प्राप्त हो जाता है।
- **ट्रेडमार्क (Trademark)** - वे विशिष्ट पहचान व संकेतक, है, जिसका प्रयोग व्यावसायिक इकाइयों द्वारा दूसरे से अलग दिखने के लिए किया जाता है, उसे ट्रेडमार्क या सर्विस मार्क कहते हैं। ट्रेडमार्क का संबंध वस्तुओं से तथा सर्विस मार्क का संबंध सेवाओं से होता है। इस तरह के मार्क के लिए अक्सर संकेत चिन्हों के रूप में अक्षरों, शब्दों, अंकों, नामों और चित्रों का इस्तेमाल किया जाता है परन्तु यह आवश्यक है कि वे एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हों। बिना धारक की अनुमति के ट्रेडमार्क का उपयोग नहीं किया जा सकता है। ट्रेडमार्क का सम्बद्ध इकाइयों की ब्रांडिंग में सहायक होता है। यह उत्पाद की गुणवत्ता भी सुनिश्चित करता है, ग्राहक को अपनी पसंद के उत्पादों के चयन का अधिकार भी प्रदान करता है। यह गुणवत्ता के साथ-साथ उत्तरदायित्व भी सुनिश्चित करता है।
- **औद्योगिक डिजाइन (Industrial Design)** - औद्योगिक डिजाइन का संबंध आकृतियों, रेखाओं या रंगों के माध्यम से उत्पादों के सौन्दर्य बोध के परिष्कार से है। विशेष रूप से इसका इस्तेमाल वस्त्र उत्पादों, चमड़ा उत्पादों और मोटर कारों आदि में किया जाता है। समझौते के तहत सदस्य देशों से

यह अपेक्षा की गई है कि औद्योगिक डिजाइन की रक्षा करें और अनधिकृत व्यक्ति द्वारा इसके अनुचित इस्तेमाल पर रोक लगायें। नवीनता या मौलिकता औद्योगिक डिजाइन के संदर्भ में पंजीकरण की पूर्व शर्त है।

कानूनी अर्थ में, एक औद्योगिक डिजाइन एक कृति के सजावटी या सौंदर्य संबंधी पहलू का गठन करता है।

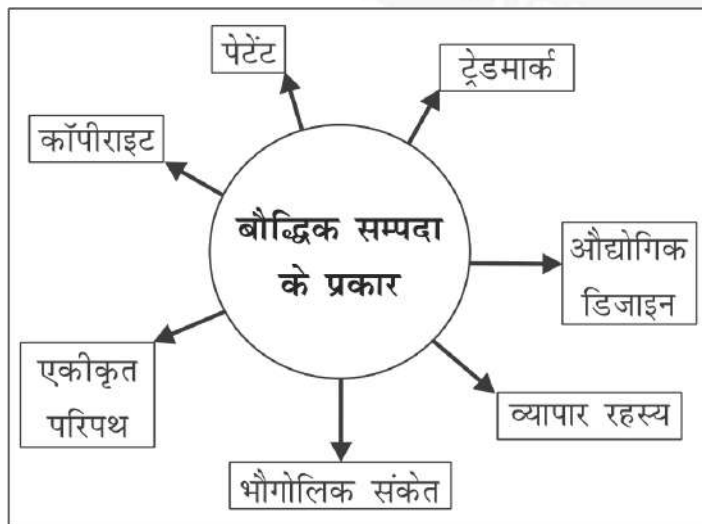
एक औद्योगिक डिजाइन में तीन आयामी विशेषताएँ शामिल हो सकती हैं, जैसे कि एक कृति का आकार या दो आयामी विशेषताएँ जैसे पैटर्न, रेखा या रंग।

सिद्धांत रूप में, पंजीकृत औद्योगिक डिजाइन या डिजाइन पेटेंट के मालिक को तीसरे पक्ष द्वारा डिजाइन की 'प्रतिलिपि' या 'काफी हद तक प्रतिलिपि' को सुरक्षा प्रदान करता है तथा उसके वाणिज्यिक उद्देश्यों से उपयोग यथा कॉपी करने, बेचने व आयात करने पर प्रतिबंध लगाता है।

ट्रिप्स समझौते के तहत, औद्योगिक डिजाइनों को संरक्षण के न्यूनतम मानक प्रदान किए गए हैं। एक विकासशील देश के रूप में भारत ने इन न्यूनतम मानकों को प्रदान करने के लिए अपने राष्ट्रीय कानून में पहले ही संशोधन कर चुका है। भारत में औद्योगिक डिजाइनों पर मौजूदा कानून नई डिजाइन अधिनियम, 2000 में निहित है और यह अधिनियम प्रौद्योगिकी और अंतर्राष्ट्रीय विकास में तेजी से बदलाव के लिए अपने उद्देश्य को अच्छी तरह से पूरा कर रहा है। भारत ने औद्योगिक डिजाइन के क्षेत्र में भी एक परिपक्व स्थिति हासिल की है और अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के मद्देनजर वर्तमान कानून को बदले हुए तकनीकी और वाणिज्यिक परिदृश्य के साथ जोड़ दिया गया है और डिजाइन प्रशासन को अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों के अनुरूप बनाया गया है।

कुल मिलाकर, औद्योगिक डिजाइन और उसके प्रवर्तन का कानून काफी सकारात्मक रहा है। हालांकि वर्तमान में लगभग 8000 आवेदन सालाना किए जाते हैं। यह भारत की क्षमता से काफी कम है और इसमें काफी सुधार की गुंजाइश है। विशेष रूप से MSMEs और अनौपचारिक क्षेत्र में इस कानून के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाने के लिए विशेष रूप से ठोस कदम उठाए जाने चाहिए।

- **व्यापार रहस्य (Trade Secret):** ट्रिप्स समझौते के पूर्व तक गुप्त सूचना के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानक मौजूद नहीं थे। पहली बार व्यावसायिक महत्व वाली व्यापार संबंधी गुप्त सूचनाओं की सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रावधान किए गए। साथ ही, इसके लिए कोई समय सीमा भी निर्धारित नहीं की गई। ऐसी कोई भी सूचना जो व्यावसायिक संचालन के लिये महत्वपूर्ण व उपयोगी होती है और जिनका इस्तेमाल आर्थिक हितों को सुनिश्चित करने या आर्थिक बढ़त हासिल करने के लिए किया जाता है, ट्रेड सीक्रेट कहलाता है।



- **भौगोलिक संकेत (Geographical Indication):** भौगोलिक संकेत एक ऐसा चिन्ह है, जिसे वस्तुओं की पहचान जैसे कृषि उत्पादों, प्राकृतिक वस्तुओं या विनिर्मित वस्तुओं को किसी देश या उसके राज्य क्षेत्र में उत्पन्न होने के आधार पर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार के उत्पादों में गुणवत्ता, प्रतिष्ठा या अन्य कई विशेषताएँ इसके भौगोलिक उद्भव में योगदान देती हैं। यह दो प्रकार के होते हैं-

- पहले प्रकार में वे भौगोलिक नाम हैं, जो उत्पाद के उद्भव स्थान का नाम बताते हैं, जैसे- शैम्पेन, दार्जिलिंग चाय आदि।
- दूसरे प्रकार में गैर भौगोलिक पारंपरिक नाम आते हैं, जो यह बताते हैं कि उत्पाद एक क्षेत्र विशेष से संबद्ध है जैसे- अल्फांसो, बासमती आदि।

एक भौगोलिक संकेत (जीआई) एक प्रकार का संकेत है, जो उन उत्पादों पर उपयोग किया जाता है, जिनकी एक विशिष्ट भौगोलिक उत्पत्ति होती है और उस उत्पाद के गुण व प्रतिष्ठा का स्रोत वह भौगोलिक क्षेत्र है जहाँ उसका उत्पादन होता है।

- एक GI अधिकार उन लोगों को 'प्रतीक व नाम प्रयोग' करने का अधिकार देता है, जो उच्च मानकों पर वस्तु का उत्पादन करते हैं और उन उत्पादकों को प्रतीक व नाम के उपयोग की अनुमति नहीं प्रदान करता है। जो उन निर्धारित मानकों के अनुरूप उत्पादन नहीं कर पाते। हालाँकि GI धारक अन्य उत्पादकों को उत्पादन कार्य में समान तकनीक के प्रयोग से नहीं रोक सकता है।

भौगोलिक संकेत आमतौर पर कृषि उत्पादों, खाद्य पदार्थों, शराब और स्प्रिट पेय, हस्तशिल्प और औद्योगिक उत्पादों के लिए उपयोग किए जाते हैं।

भौगोलिक संकेत कैसे सुरक्षित हैं?

मोटे तौर पर भौगोलिक संकेतों को विभिन्न देशों और क्षेत्रीय प्रणालियों में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों के माध्यम से संरक्षित किया जाता है और अक्सर ऊपर उल्लेखित दृष्टिकोणों के दो या अधिक के संयोजनों का उपयोग किया जाता है। ये दृष्टिकोण अलग-अलग कानूनी परंपराओं के अनुसार और व्यक्तिगत ऐतिहासिक और परिस्थितियों के ढाँचे के भीतर विकसित किए गए हैं।

भौगोलिक संकेत की सुरक्षा के तीन मुख्य तरीके हैं-

- तथाकथित सुई जेनेरिस सिस्टम (अर्थात् सुरक्षा के विशेष नियम)
 - 'कलेक्टिव व सर्टिफिकेशन मार्क सिस्टम'
 - प्रशासनिक उत्पाद अनुमोदन योजनाओं सहित व्यापार प्रथाओं के तरीके।
- सुरक्षा के दो तरीके- सुई जेनेरिस सिस्टम और कलेक्टिव या सर्टिफिकेशन मार्क सिस्टम-** कुछ सामान्य विशेषताओं को साझा करते हैं, जैसे कि यह तथ्य कि वे उन लोगों द्वारा सामूहिक उपयोग के लिए अधिकार निर्धारित करते हैं जो परिभाषित मानकों का पालन करते हैं।
- **एकीकृत परिपथ के लिए लेआउट डिजाइन-** इस करार के अधीन सदस्य एकीकृत परिपथ के लेआउट डिजाइन (स्थलाकृति) को संरक्षण प्रदान करते हैं। सदस्य निम्नलिखित कार्यों को गैर कानूनी मानेंगे यदि अधिकार प्राप्त के अधिकृत किए बगैर जो कार्य किए जाते हैं- संरक्षित लेआउट डिजाइन, एकीकृत परिपथ, जिसमें संरक्षित लेआउट डिजाइन शामिल है या ऐसी वस्तु जिसमें ऐसी एकीकृत परिपथ सन्निहित हो, केवल तब तक, जब तक यह गैर कानूनी रूप से पुनरुत्पादित लेआउट डिजाइन समझा जाता है, इसका आयात करना, बेचना या अन्यथा वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए इसका वितरण करना अपराधिक माना जाएगा।
 - **सेमीकंडक्टर इंटीग्रेटेड सर्किट लेआउट डिजाइन एक्ट- 2000 का उद्देश्य** सेमीकंडक्टर के क्षेत्र में बौद्धिक संपदा अधिकार (IPR) को सुरक्षा प्रदान करना है। संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय इस अधिनियम के लिए प्रशासनिक मंत्रालय है।

बौद्धिक संपदा अधिकार संरक्षण संबंधी समझौता (Intellectual Property Right Conservation Related Agreements)

1880 के दशक में औद्योगिक सम्पदा के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन के अन्तर्गत कुछ प्रावधान किए गए। पुनः कुछ समय बाद कलात्मक एवं शैक्षणिक गतिविधियों के संरक्षण के लिये बने कन्वेंशन के अंतर्गत कुछ प्रावधान लाये गए। पुनः 1986-94 के गैर सदस्य राष्ट्रों में संरक्षण की बातों के दौरान ऐसे प्रावधानों की संभावना को तलाशा गया। 1992 के तहत अंततः ट्रिप्स समझौता अस्तित्व में आया।

- **पेरिस कन्वेंशन 1885**– इस कन्वेंशन पर औद्योगिक सम्पदा के संरक्षण के लिए 1885 में हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते के फलस्वरूप पेटेंट सहित अन्य बौद्धिक सम्पदाओं के सन्दर्भ में एक राज्य दूसरे राज्य तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर सकता है।
- **बर्न कन्वेंशन 1886**– बर्न कन्वेंशन साहित्यिक एवं कलात्मक रचनाओं के संरक्षण की अंतर्राष्ट्रीय संधि है। यह कन्वेंशन कॉपीराइट से संबंधित मामलों को देखता है।
- **द हेग समझौते 'औद्योगिक डिजाइन' 1925 के अंतर्राष्ट्रीय जमा से संबंधित**– इसने WIPO का अंतर्राष्ट्रीय डिजाइन ब्यूरो बनाया।
- **यूनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेंशन, 1952**– यह सम्मेलन यूनेस्को द्वारा प्रशासित है। यह बर्न कन्वेंशन के साथ-साथ मौजूद है। यह संधि दाखिल करने और कॉपीराइट की मान्यता के लिए प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं को प्रदान करती है। जैसा कि बर्न सम्मेलन कॉपीराइट के लिए स्वचालित मार्ग प्रदान करता है, इस संधि ने अपनी प्रासंगिकता खो दी है।
- **पौधों की नई किस्मों की सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय संधि, 1961**– यह प्रजनक और किसानों को नई पौधों की किस्मों का अधिकार प्रदान करता है।
- **पेटेंट सहयोग संधि व्यवस्था, 1970**– इस संधि पर 1970 में हस्ताक्षर हुए तथा इसे 1978 में लागू किया गया। इसमें वर्ष 2004 में चौथी बार संशोधन किया गया। इसका उद्देश्य पेटेंट संरक्षण को प्राप्त करने व छोटे बिजनेस और व्यक्तियों को प्रोत्साहित करना था।
- **मैड्रिड प्रोटोकॉल, 1989**– यह समझौता 1991 में सम्पन्न हुआ। इसके अन्तर्गत जेनेवा स्थित WIPO के समक्ष एकल अन्तर्राष्ट्रीय ट्रेडमार्क रजिस्ट्रेशन के जरिए सदस्य देशों में पंजीकरण का प्रावधान किया गया है। इसमें आ रही समस्याओं को देखते हुए ट्रेडमार्क के अन्तर्राष्ट्रीय पंजीकरण प्रणाली में सुधार के लिये मैड्रिड प्रोटोकॉल पर 1989 में हस्ताक्षर किया गया। मैड्रिड प्रोटोकॉल पंजीकरण से संबंधित रिक्तता को दूर करने वाली संधि है। यह ट्रेडमार्क धारकों को कम लागत वाली सक्षम प्रक्रिया उपलब्ध कराती है।
- **ओव कन्वेंशन, 1991**– इंटरनेशनल कन्वेंशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ न्यू बेराइटीज ऑफ प्लान्ट्स अर्थात् ओव कन्वेंशन पौधों की नई प्रजाति के संरक्षण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त बौद्धिक संपदा प्रणाली है। यह कन्वेंशन उन ब्रीडर्स की सृजनात्मकता और मौलिकता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है, जो पौधों की नई प्रजाति के विकास में संलग्न हैं।
- **ट्रेडमार्क विधि संधि, 1994**– यह संधि 1 अगस्त, 1996 से लागू हुई ताकि ट्रेडमार्क संबंधी आवेदन और पंजीकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाए और विभिन्न देशों में ट्रेड की प्रक्रिया को समरूप दिया जाए। यह संधि सर्विस मार्क को ट्रेडमार्क के समान अहमियत प्रदान करती है। यह प्रावधान करती है कि सदस्य देश ट्रेडमार्क की तरह सर्विस मार्क को भी पंजीकरण करे ताकि सेवा प्रदाताओं की विशिष्ट पहचान को मान्यता प्रदान की जा सकें।
- **पेटेंट लॉ संधि, 2000**– WIPO के द्वारा इसे जून 2000 में स्वीकार किया गया तथा इसे अप्रैल 2005 में लागू किया गया। यह ग्लोबल पेटेंट प्रणाली में समरूपता कायम करने की वर्षों की कोशिश का परिणाम है।

ट्रिप्स समझौता 1994 (TRIPS Agreements)

ट्रिप्स समझौता विश्व व्यापार संगठन के समझौते में सबसे अधिक व्यापक है। इसके क्रियान्वयन में विश्व बौद्धिक संपदा संगठन की अहम भूमिका होती है। यदि समझौते के क्रियान्वयन को लेकर किसी प्रकार का विवाद उभरता है तो उस विवाद का निपटारा WTO की विवाद निपटारा समिति द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य बौद्धिक संपदा के संरक्षण से जुड़े अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए इससे संबंधित अंतर्राष्ट्रीय व्यापारों का नियमन करना है। साथ ही इसके जरिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकृतियां उत्पन्न होने से रोकने की कोशिश भी की गई। यह समझौता त्रिस्तरीय है–

- वास्तव में यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहला समझौता है, जिसके द्वारा बौद्धिक सम्पदा के विभिन्न रूपों को संरक्षित करने के लिए न्यूनतम मानदण्डों का निर्धारण किया गया है।
- इसमें विस्तार से सिविल, आपराधिक और सीमापार क्रियान्वयन वाले प्रावधानों को समाहित किया गया है।
- इसमें सदस्य देशों के लिए इसके बाध्यकारी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही, इसमें विवादों के निपटारे का भी प्रावधान किया गया है।

ट्रिप्स समझौते का सैद्धान्तिक आधार

इसके अलावा, डब्ल्यूटीओ के तहत हर संधि कुछ सिद्धांतों पर आधारित हैं–

- **राष्ट्रीय उपचार**– किसी भी विदेशी उत्पाद के साथ एक बार घरेलू क्षेत्रों में प्रवेश करने के बाद किसी भी तरह भेदभाव नहीं किया जाएगा। यह बौद्धिक संपदा पर भी लागू होता है। सदस्यों को विदेशी कृतियों के साथ समान व्यवहार करना होगा। जैसे कि वे घरेलू कृतियों के साथ करते हैं।
- **एम.एफ.एन.**– यदि कोई सदस्य किसी अन्य देश या समूह को कुछ विशेषाधिकार, अनुकूल उपचार या छूट प्रदान करता है, तो अन्य सदस्यों को भी उसी प्रकार की छूट प्राप्त होगी।
- **प्राथमिकता उपचार का अधिकार**– यदि दो अलग-अलग देशों में एक समान पेटेंट आवेदन दायर किया गया हो तो पूर्व आवेदक के पास पेटेंट का अधिकार होगा।
- **न्यूनतम मानकों की अवधारणा**– यह संधि न्यूनतम स्तर की सुरक्षा प्रदान करती है अर्थात् प्रत्येक देश को कम-से-कम (अधिक हो सकता है) संधि के प्रावधानों के स्तर की बौद्धिक संपदा सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। हालांकि सदस्यों का न्यूनतम मानकों से अधिक सुरक्षा प्रदान करने का अधिकार सुरक्षित है।

ट्रिप्स समझौता और भारत (TRIPS Agreement and India)

ट्रिप्स समझौता लागू होने के पहले तक भारत में प्रोसेस पेटेंट की व्यवस्था थी। दवा उद्योग पेटेंट कानून से बाहर था और पेटेंट की समयावधि कम थी। ट्रिप्स समझौते के उपबंधों के तहत विकासशील देश होने के नाते भारत को जनवरी, 2000 से ट्रिप्स एग्रीमेंट को लागू करना था। इस तथ्य के मद्देनजर भारत ने पेटेंट अधिनियम, 2005 के तहत प्रक्रिया के साथ-साथ उत्पाद आधारित पेटेंट की संकल्पना को भी लागू किया। इसके तहत पेटेंट की समय सीमा बढ़ाकर 20 साल करते हुए दवा व रासायनिक उद्योगों को भी इसके दायरे में लाया गया। वहीं जब कॉपीराइट से संबंधित भारतीय प्रावधानों की बात करें तो कॉपीराइट के दायरे में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर को पहले ही शामिल कर लिया गया। जहाँ ट्रिप्स समझौते के तहत कॉपीराइट 50 वर्षों के लिए संरक्षित होता है, वहीं भारतीय कॉपीराइट के तहत यह संरक्षण 60 वर्षों के लिए उपलब्ध कराया गया है। यही कारण है कि ट्रिप्स समझौते के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी जिस विश्व बौद्धिक संपदा संगठन को सौंपी गयी है उसने भारत के कॉपीराइट प्रावधान को विश्व में सर्वाधिक गतिशील माना।

प्रक्रिया पेटेंट (Process Patent) – जब प्रक्रिया बदलकर उत्पाद प्राप्त किया जाता है और उस पर Patent लिया जाता है तो उसे प्रक्रिया पेटेंट कहा जाता है। 2005 से पूर्व Patent की यही व्यवस्था प्रचलित थी। भारत के द्वारा इस प्रकार के Patent को अधिक प्राप्त किया गया है।

उत्पाद पेटेंट (Product Patent) – Patent की वह व्यवस्था जो नवीनतम उत्पाद के माध्यम से प्राप्त होती है उत्पाद पेटेंट कहलाती है। अर्थात् पेटेंट तभी मिल सकता है जब उत्पाद बिल्कुल नया हो। इसके तीन शर्तों का होना आवश्यक है।

1. उत्पाद अद्वितीय हो।
2. उत्पाद में नवाचार होना चाहिए।
3. उत्पाद का व्यवसायिक दोहन संभव हो।

इन आधारों पर खरा उतरने के बाद ही, 2005 के बाद से WTO द्वारा पेटेंट प्रदान किया जा रहा है। उत्पाद आधारित पेटेंट होने के कारण 2005 के बाद भारत को पेटेंट मिलना कम हो गया है।

ट्रिप्स समझौते की धारा-27 के अनुसार, किसी भी देश को बीज पेटेंट कराने या सुई जेनेरिस प्रणाली को अपनाने या फिर दोनों ही तरीकों की मिली-जुली प्रणाली को अपनाने की स्वतंत्रता है। ज्ञातव्य है कि सुई जेनेरिस की प्रणाली विकासशील देशों के हितों के मद्देनजर पौधों के किस्मों के संरक्षण के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था प्रदान करती है। इसके तहत किसानों और व्यावसायिक बीज उत्पादकों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्रदान की जाती है।

1990 के उत्तरार्ध में यह उपबन्ध भारत में काफी चर्चित रहा। यह कहा गया कि इस उपबन्ध के कारण बीजों के उत्पादन पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एकाधिकार स्थापित हो जाएगा। इसके परिणामस्वरूप बीज महंगे हो जाएंगे, लेकिन धारणा गलत रही। ट्रिप्स समझौता, बीज के पेटेंटीकरण का कोई प्रावधान नहीं करता है, यह एक लचीली व्यवस्था प्रदान करता है। यह सदस्य देशों से अपेक्षा करता है कि वे इसमें शामिल प्रावधानों का पालन करेंगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

भारत द्वारा ट्रिप्स को लागू करते समय लोगों द्वारा इसको लेकर विभिन्न प्रकार के अलग-अलग विचार अभिव्यक्त किए जा रहे थे इस संदर्भ में निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।

यह कहा गया कि नयी व्यवस्था के लागू होने से विदेशी दवा कंपनियों को अधिक लाभ होगा क्योंकि उनके द्वारा भारतीय कंपनियों की तुलना में R&D पर अधिक खर्च किया जाता है।

एक अनुमान के अनुसार, विदेशी दवा कंपनियाँ अपने कुल कारोबार (Turnover) का लगभग 10% R&D पर खर्च करती हैं। जबकि भारतीय कंपनियाँ अपने कारोबार का केवल 2% ही R&D पर खर्च करती हैं।

भारत में समग्र रूप से भी R&D पर कम खर्च किया जाता है। भारत में निजी और सरकारी दोनों क्षेत्रों को मिलाकर GDP का 0.82% ही R&D पर खर्च किया जाता है। जबकि दक्षिण कोरिया GDP का 4.04% खर्च करता है। अमेरिका का यह अनुपात 2.76% है।

- यह कहा गया कि दवा कंपनियाँ पेटेंट की आड़ में एकाधिकारी शक्ति का प्रयोग कर सकती हैं तथा दवाओं की कीमतें आवश्यकता से अधिक ऊँची कर सकती हैं।

उपर्युक्त संदर्भ में भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 की धारा (92) महत्वपूर्ण है, जो अनिवार्य लाइसेंस का प्रावधान करती है। यह प्रावधान ट्रिप्स के अनुसार है। इस प्रावधान के अनुसार, यदि कोई दवा कंपनी किसी दवा की कीमत को आवश्यकता से अधिक ऊँचा करती है तो भारत सरकार उस दवा को बनाने का

अधिकार किसी अन्य कंपनी को दे सकती है। इसका प्रयोग भारत सरकार द्वारा जर्मनी की दवा कंपनी बायर की Anticancer Drug 'Nexaver' के लिये किया गया था, इसमें भारत सरकार द्वारा Nacto नामक भारतीय कंपनी को इस दवा को बनाने का अधिकार दिया गया।

यह कहा गया कि दवा कंपनियाँ एक ही दवा में मामूली परिवर्तन करके बार-बार पेटेंट की मांग कर सकती हैं अर्थात् उनके द्वारा Ever Greening of Patent की प्रक्रिया को लागू किया जा सकता है।

उपर्युक्त संदर्भ में भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 3 (d) महत्वपूर्ण है जो इस बात का प्रावधान करता है कि महत्वपूर्ण बदलाव की स्थिति में ही किसी दवा या अन्य उत्पाद पर पुनः पेटेंट दिया जा सकता है अर्थात् यदि महत्वपूर्ण बदलाव नहीं हुआ तो पुनः पेटेंट नहीं दिया जा सकता।

यह ध्यान देने योग्य है कि अप्रैल, 2013 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी धारा को आधार बनाते हुए स्विट्जरलैंड की दवा कंपनी Novartis की Anti-cancer drug, glivec के लिए पुनः पेटेंट की मांग को खारिज कर दिया गया।

यह कहा गया कि नयी व्यवस्था के लागू होने से भारत में फार्मा क्षेत्र में FDI का स्तर बढ़ेगा।

उपर्युक्त संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भारत में फार्मा क्षेत्र में अधिक FDI नहीं आया तथा उसका एक बड़ा भाग Brown field FDI के रूप में था। इसका निहितार्थ यह है कि FDI का प्रयोग प्रायः भारतीय कंपनियों के अधिग्रहण में किया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से Trips के भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभावों को समझा जा सकता है। भारत को इस संदर्भ में अनुसंधान व विकास (R&D) पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बौद्धिक संपदा संबंधी अधिनियम (Intellectual Property Related Act)

पेटेंट संशोधन अधिनियम, 2005 (Patent Amendment Act, 2005)

भारत ने ट्रिप्स समझौते के पूर्व कई क्षेत्रों में उत्पाद आधारित पेटेंट की जगह प्रक्रिया आधारित पेटेंट की व्यवस्था को अपनाया था। दवा, कृषि, रसायन और खाद्य उत्पाद ऐसे ही क्षेत्र थे। ट्रिप्स समझौते के प्रावधानों के तहत प्रक्रिया के साथ-साथ प्रोडक्ट पेटेंट की भी व्यवस्था लागू की जानी थी। यह संभव था कि दूसरी प्रक्रिया से उस वस्तु का उत्पादन किया जा सके, जिसका पेटेंट किसी अन्य के पास है। इसलिए 2005 में पेटेंट संशोधन अधिनियम अस्तित्व में आया। इसके तहत प्रोडक्ट एवं प्रोसेस के पेटेंट की व्यवस्था लागू की गई। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नांकित हैं-

- उन वस्तुओं के लिए पेटेंट किए जाने का प्रावधान किया गया जो नये, उपयोगी और स्पष्ट हैं।
- यह स्पष्ट किया गया कि न तो उपचार प्रणाली को पेटेंट के दायरे में लाया जायेगा और न ही पौधों और जानवरों का पेटेंट कराना संभव होगा लेकिन सूक्ष्मजीवों को पेटेंट के दायरे में लाया गया।
- पेटेंट अधिकार के लिए 20 वर्ष की समय सीमा निर्धारित की गई। इस समय सीमा की समाप्ति के बाद इसका उपयोग कोई भी कर सकता है।
- यह अधिनियम अनिवार्य लाइसेंसिंग का भी प्रावधान करता है। इसका मतलब है कि यदि आपात स्थिति में पेटेंट धारक वस्तु के उत्पादन की अनुमति नहीं देता है तो सरकार द्वारा विशेष अनुमति दी जा सकती है।

पेटेंट की सदाबहार अनुमति नहीं है

पेटेंट होने के लिए, पहले से ज्ञात किसी चीज पर सुधार या पहले से ज्ञात विभिन्न

मामलों का एक संयोजन, मात्र एक प्रयोगशाली सुधार से अधिक कुछ होना चाहिए, और स्वतंत्र रूप से आविष्कार या एक आविष्कारशील कदम के परीक्षण को संतुष्ट करना चाहिए। ताकि इस नई कृति को पुरानी के सापेक्ष एक अविष्कार माना जा सके। अर्थात् 'नया उत्पाद' जिसके लिए पेटेंट का आवेदन किया गया है वास्तव में 'नया' होना चाहिए।

यह अनिवार्य लाइसेंसिंग की अनुमति देता है

यह दो भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के बीच टकराव का समाधान करता है - नवाचार को पुरस्कृत करने हेतु पेटेंट देना साथ ही यह सुनिश्चित करना कि पेटेंट उत्पाद, विशेष रूप से फार्मास्यूटिकल से संबंधित, विकासशील और अविकसित देशों में सार्वजनिक रूप से सस्ती कीमतों पर उपलब्ध हो।

TRIPS भी कुछ परिस्थितियों में अनिवार्य लाइसेंसिंग की अनुमति देता है। अनिवार्य लाइसेंस जारी करने के लिए प्रमुख आवश्यकता यह है कि उचित वाणिज्यिक शर्तों के तहत लाइसेंस प्राप्त करने का प्रयास उचित समय तक विफल रहा हो। ऐसी विशिष्ट परिस्थितियाँ जिनमें अनिवार्य लाइसेंस जारी किए जा सकते हैं, प्रत्येक पेटेंट प्रणाली के विधान में निर्धारित की जाती हैं और भिन्न-भिन्न प्रणालियों के बीच भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ उदाहरण हैं- बाजारों में मांग को पूरा करने में पेटेंट धारक की अक्षमता, जनता के लिए विशेष दवा की अत्यधिक उच्च कीमतें या इसके अलावा TRIPS यह भी अनुमति प्रदान करता है कि राष्ट्रीय आपातकाल या अत्यधिक अत्यावश्यकता के मामलों में या सार्वजनिक गैर-वाणिज्यिक उपयोग के मामलों में कुछ स्थितियों में एक अनिवार्य लाइसेंस को प्रदान किया जा सकता है।

यह उत्पाद और प्रक्रिया दोनों के पेटेंट की अनुमति देता है

2006 संशोधन से पहले केवल प्रक्रिया को पेटेंट करने की अनुमति दी गई थी। इसका मतलब यह है कि यदि उसी उत्पाद को पेटेंट कराए गए प्रक्रिया से अलग प्रक्रिया का उपयोग करके निर्मित किया जाता है, तो उसे पेटेंट का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

पूर्व-अनुदान और पश्च-अनुदान विरोध की प्रणाली

यह अधिनियम यह सुनिश्चित करता है कि केवल योग्य पेटेंट प्रदान किए जाएं। पेटेंट मंजूर होने से पहले और बाद में दोनों स्थितियों में आपत्ति उठाना संभव है अर्थात् दोनों स्थितियों में आपत्ति उठाने की अनुमति दी गयी है।

डेटा विशिष्टता

भारतीय पेटेंट अधिनियम डेटा विशिष्टता के लिए विशेष संरक्षण प्रदान नहीं करता है। कंपनियां अनुसंधान और नैदानिक परीक्षणों पर महत्वपूर्ण समय, ऊर्जा और पैसा खर्च करती हैं। इस सब के दौरान वे बड़ी मात्रा में उपयोगी डेटा इकट्ठा करते हैं। बाजारों में उत्पाद लॉन्च करने की अनुमति प्राप्त करते समय या पेटेंट के लिए आवेदन करते समय, इन कंपनियों को अधिकारियों को डेटा प्रदान करना होता है। डेटा विशिष्टता के प्रावधान के अनुसार कंपनियां चाहती हैं कि अधिकारी निश्चित अवधि के लिए किसी भी तीसरे पक्ष के साथ इस तरह के डेटा को साझा न करें।

टीआरआईपीएस के अनुच्छेद 39 (3) में कहा गया है कि सभी सदस्य अनुचित वाणिज्यिक उपयोग के खिलाफ इस तरह के डेटा की रक्षा करेंगे। इसके अलावा, सदस्य प्रकटीकरण के खिलाफ ऐसे डेटा की रक्षा करेंगे, जब तक कि मामला लोगों की सुरक्षा से संबंधित न हो अथवा डेटा के अनुचित वाणिज्यिक उपयोग से संरक्षित करने के उपाय अपनाए जा चुके हो।

लेकिन यहां याद रखना चाहिए कि अनुच्छेद 39 (3) 'डेटा विशिष्टता' के बारे में

बात नहीं करता है, यह केवल 'अनुचित व्यावसायिक उपयोग' के बारे में ही बात करता है जबकि इसी वाक्यांश के आधार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियां डाटा विशिष्टता हेतु एक अलग कानून की मांग करती हैं।

वहीं दूसरी तरफ 'डेटा विशिष्टता' का निम्नलिखित आधार पर विरोध किया जाता है-

- यदि जेनेरिक दवाओं के निर्माताओं को इस तरह के डेटा तक पहुंच से वंचित किया जाता है, तो उन्हें अलग-अलग क्लीनिकल परीक्षण करने होंगे, जिससे लागत बढ़ेगी।
- इसके अलावा क्लीनिकल परीक्षणों के साथ नैतिक मुद्दे हैं क्योंकि इसमें जानवरों या मनुष्यों पर प्रयोग शामिल हैं।
- ट्रिप्स समझौते में 'डेटा विशिष्टता' का उल्लेख नहीं है। यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों की रचनात्मक व्याख्या है।
- यह पेटेंटबिलिटी का विकल्प बन सकता है और इसका इस्तेमाल 'सदाबहार पेटेंट' करने के लिए किया जा सकता है।

डेटा विशिष्टता की अवधारणा पेटेंट से अलग है। यदि कोई कंपनी डेटा की रक्षा करने जाती है, तो उस डेटा के आधार पर वह कालांतर में उत्पादों को नए उत्पादों में बदलकर और उनकी पीढ़ी में सुधार करके अपना एकाधिकार बनाए रखना जारी रख सकती है। जो एक चिन्ताजनक स्थिति होगी।

स्वास्थ्य मंत्रालय ने कहा है कि भारत में पहले से ही डेटा की सुरक्षा के लिए आवश्यक कानूनी प्रावधान हैं और इसलिए किसी भी अतिरिक्त सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है, जबकि **सतवंत रेड्डी समिति** का विचार था कि परीक्षण डेटा की सुरक्षा के लिए कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। वहीं कई NGO व कई मानव अधिकार कार्यकर्ता द्वारा आरोप लगाया गया है कि सरकार मल्टी-नेशनल कंपनियों और पश्चिमी देशों के दबाव में डेटा विशिष्टता पर कानून बनाने के लिए दबाव में है। भारत ने पेटेंट कानून के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाया है। यह अपने नागरिकों के कल्याण के बड़े लक्ष्य को बढ़ावा देते हुए नवाचार की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। न्यायालयों और न्यायाधिकरणों ने अपने आधिकारिक घोषणाओं द्वारा भारत के पेटेंट कानून के प्रमुख प्रावधानों को बरकरार रखा है। 2005 में शुरू किए गए पूर्व अनुदान और उत्तर अनुदान विरोध की प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि केवल योग्य पेटेंट ही प्रदान किए जाएं।

विशेष

- विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO) के अनुसार, भारत विश्व में सातवां सबसे बड़ा पेटेंट फाइल करने वाला देश है। लेकिन भारत में प्रति व्यक्ति पेटेंट कम है।
- जबकि एक ओर, भारत की निम्न मध्यम आय की स्थिति पेटेंट आउटपुट को बाधित करती है, वहीं दूसरी ओर चीन, कोरिया और जापान जैसे देशों में आय के साथ पेटेंट बहुत तेजी से बढ़े हैं, इसका निहितार्थ यह है कि भारत को इस दौड़ में अन्यो के समकक्ष पहुंचने के लिए आय में वृद्धि के साथ R&D पर अधिकाधिक ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।
- जहाँ विदेशी क्षेत्राधिकार में भारत के पेटेंट आवेदन प्रदान किए जाने की संख्या में वृद्धि हुई है, लेकिन घरेलू स्तर पर यह बात सही नहीं है। जब से वर्ष 2005 में भारत अंतराष्ट्रीय पेटेंट व्यवस्था में शामिल हुआ है पेटेंट की संख्या में तीव्र गिरावट आई और यह निम्न स्तर पर बनी हुई है।
- अधिक सख्त जांच प्रक्रिया के कारण पेटेंट प्रदान किए जाने में कमी हो सकती है, लेकिन अधिक ध्यान देने योग्य समस्या आवेदनों के लंबित मामलों और बैकलॉग है जो जांचकर्ताओं की कम संख्या के परिणामस्वरूप है।

राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति 2016 (National Intellectual Property Right Policy 2016)

राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति एक विजन दस्तावेज है, जिसे समस्त बौद्धिक सम्पदाओं के बीच संभव बनाया जाएगा। इसके अलावा संबंधित नियम तैयार किये जाएंगे, जिसके द्वारा कार्यान्वयन, निगरानी और समीक्षा से संबंधित संस्थागत प्रणालियों को एकीकृत करने में सहायता मिलेगी। नीति से सरकार, अनुसंधान एवं विकास संगठनों, शिक्षण संस्थानों, सूक्ष्म, लघु, मध्यम उपक्रमों, स्टार्ट अप और अन्य हितधारकों को शक्ति सम्पन्न किया जाएगा। ताकि वे अभिनव भारत तथा रचनात्मक वातावरण का विकास कर सकें।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का महत्त्व पूरे विश्व में बढ़ रहा है, इसलिए यह आवश्यक है कि भारत में इन अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाए। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के साथ वित्तीय और आर्थिक पक्ष भी जुड़े हुए हैं। इसके लिए घरेलू स्तर पर आई. पी. फाइलिंग और पेटेंट की वाणिज्यिक स्थिति के बारे में भी जानकारी आवश्यक है। राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं-

विजन घोषणा

भारत में सबके लाभ के लिए बौद्धिक सम्पदा को रचनात्मक और अभिनव आधार मिलता है। भारत में बौद्धिक सम्पदा से विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला, संस्कृति, पारम्परिक ज्ञान और जैव विविधता संसाधनों को प्रोत्साहन मिलता है। भारत में विकास के लिए ज्ञान मुख्य कारक है।

मिशन घोषणा

भारत के शक्तिशाली, जीवंत और संतुलित बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रणाली से रचनात्मक और नवाचार को बढ़ावा मिलता है, उद्यमशीलता को प्रोत्साहन मिलता है तथा सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा मिलता है। इसके जरिए स्वास्थ्य सुविधा, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ाने में मदद मिलती है। अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी महत्त्व भी इससे जुड़े हुए हैं।

लक्ष्य

इस नीति के निम्नलिखित सात लक्ष्य हैं-

- **बौद्धिक सम्पदा अधिकार जागरूकता**- समाज के सभी वर्गों में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक लाभों के प्रति जागरूकता पैदा करना।
- **बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के सृजन** को बढ़ावा देना।
- **वैधानिक और विधायी ढांचा**- मजबूत और प्रभावशाली बौद्धिक सम्पदा अधिकार नियमों को अपनाना, ताकि अधिकृत व्यक्तियों तथा वृद्ध लोकहित के बीच संतुलन कायम हो सके।
- **प्रशासन एवं प्रबंधन**- सेवा आधारित बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रशासन को आधुनिक और मजबूत बनाना।
- **बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यवसायीकरण** के जरिए बौद्धिक संपदा अधिकारों का मूल्य निर्धारण करना।
- **प्रवर्तन और न्यायाधिकरण** बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघन के मामलों को कम करने के लिए प्रवर्तन और न्यायिक प्रणालियों को मजबूत करना।
- **मानव संसाधन विकास**- मानव संसाधनों, संस्थानों की शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुसंधान क्षमताओं को मजबूत बनाना तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों में कौशल निर्माण करना।

- **ट्रेडमार्क (संशोधन) विधेयक, 2009 (Trademark Amendment Bill, 2009)**- वर्ष 2010 में भारतीय संसद ने ट्रेडमार्क अधिनियम में संशोधन के लिए एक विधेयक पारित किया। यह विधेयक किसी व्यक्ति या इंटरप्राइजेज को इस बात की अनुमति प्रदान करता है कि वह मैड्रिड प्रोटोकॉल के 84 सदस्य देशों में कहीं भी ट्रेडमार्क या पंजीकरण के लिए एकल आवेदन कर सकें। यह संशोधन भारतीय ट्रेडमार्क को मैड्रिड प्रोटोकॉल से सम्बद्ध करने के लिए किया गया। यह विधेयक विदेशी लोगों और अंतर्राष्ट्रीय इंटरप्राइजेज को भी इस बात की अनुमति प्रदान करता है कि वह भारत में आवेदन कर सकें।

- **कॉपीराइट संशोधन विधेयक, 2012 (Copyright Amendment Bill, 2012)**- मई 2012 में भारतीय संसद द्वारा कॉपीराइट (संशोधन) विधेयक पारित किया गया जिसके प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं-

- इस विधेयक के माध्यम से रचनाकारों और साहित्यकारों को उनकी कृति का व्यवसायिक हित के लिये उपयोग किए जाने पर आजीवन रॉयल्टी सुनिश्चित की गई है।
- यह विधेयक सभी पक्षों में अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करता है और रॉयल्टी के बंटवारे की व्यवस्था करता हुआ, उनके अधिकारों का संरक्षण करता है।
- किसी भी साहित्य, नाटक या संगीत संबंधी कृति की रिकॉर्डिंग की मूल तिथि के 5 साल बाद तक कवर वर्जन लाने पर पाबंदी लगाता है।
- इस एक्ट में लेखकों को अपनी कृतियों पर अधिकार जताने का विशेष प्रावधान किया गया है।

कंप्यूटर सॉफ्टवेयर या प्रोग्राम को साहित्यिक कार्य के रूप में भी पंजीकृत किया जा सकता है। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 के अनुसार 'साहित्यिक कार्य' में कंप्यूटर डेटाबेस सहित कंप्यूटर प्रोग्राम, टेबल और संकलन शामिल हैं। सॉफ्टवेयर उत्पादों के लिए कॉपीराइट के पंजीकरण के लिए आवेदन के साथ 'सोर्स कोड' भी दिया जाना होता है। भारत में एक बहुत बड़ा कॉपीराइट आधारित रचनात्मक उद्योग है। भारत का कॉपीराइट अधिनियम व्यापक है और संशोधनों के साथ, रचनाकारों के अधिकारों को मजबूत किया गया है। दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए कॉपीराइट कार्यों में प्रवेश के लिए मराकेश संधि 2013 की पुष्टि करने वाला भारत पहला देश था। कॉपीराइट में प्रवर्तन महत्वपूर्ण है और इसे और सुदृढ़ किया जाएगा। भारतीय न्यायालयों के निर्णयों ने जनता के अधिकारों के साथ कॉपीराइट मालिकाना अधिकारों को पर्याप्त रूप से संतुलित किया है।

भविष्य में चुनौती, डिजिटल प्लेटफॉर्म में कॉपीराइट का प्रवर्तन है जिसके लिए कानून में पर्याप्त प्रावधान हैं। भारतीय कॉपीराइट स्वामी, कॉपीराइट उल्लंघन और चोरी के शिकार भी हैं। कॉपीराइट एक्ट के अलावा सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 में भी इलेक्ट्रॉनिक्स और डिजिटल क्षेत्र में कॉपीराइट के लिए कुछ प्रासंगिक प्रावधान हैं। इस सवाल पर भी असहमति है कि क्या सॉफ्टवेयर कॉपीराइट के लिए योग्य हैं या पेटेंट के लिए? कॉपीराइट कार्यालय ने यह माना कि सॉफ्टवेयर यदि हार्डवेयर आधारित नहीं हैं, तो कॉपीराइट द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। यह सॉफ्टवेयर उद्योग के लिए राहत की बात है क्योंकि कॉपीराइट सस्ते हैं, स्वचालित रूप से मान्यता प्राप्त हैं और 60 साल तक सुरक्षा करते हैं जबकि पेटेंट केवल 20 वर्षों के लिए ही सुरक्षा प्रदान करते हैं।

बौद्धिक संपदा से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम

- औद्योगिक डिजाइन हेतु → डिजाइन अधिनियम 2000।
- भौगोलिक संकेतक हेतु → सामानों का भौगोलिक संकेत (पंजीकरण व संरक्षण) अधिनियम 1999
- अर्धचालक व एकीकृत ले आउट → अर्धचालक व एकीकृत ले आउट डिजाइन अधिनियम 2000

राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति 'रचनात्मक भारत: अभिनव भारत' के लिए काम करेगी।

मूल्यांकन

राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भारत में एक गतिशील, मजबूत व संतुलित IPR व्यवस्था को सुनिश्चित करने पर जोर देती है।

हालांकि इस नीति में R&D को किस प्रकार आगे बढ़ाया जायेगा, यह नहीं बताया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा सूचकांक 2022

- यह सूचकांक संयुक्त राज्य अमेरिका के यूएस चेंबर ऑफ कॉमर्स के ग्लोबल इनोवेशन पॉलिसी सेंटर द्वारा जारी किया जाता है।
- वर्ष 2022 में अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा सूचकांक का 10वाँ संस्करण जारी किया गया है।
- इस सूचकांक को निर्मित करते समय विश्व के कुल 55 देशों में बौद्धिक संपदा अधिकारों का सवेखण किया गया था।
- इन 55 देशों में से युक्त राज्य अमेरिका को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है, जबकि वेनेजुएला को अंतिम स्थान पर रखा गया है।
- इस सूचकांक में वर्ष 2022 में भारत को 43वाँ स्थान प्रदान किया गया है।

301 रिपोर्ट

संयुक्त राज्य अमेरिका व्यापार प्रतिनिधि (USTR) के कार्यालय द्वारा विशेष 301 रिपोर्ट प्रतिवर्ष तैयार की जाती है, जो अन्य देशों में बौद्धिक संपदा कानूनों जैसे- कॉपीराइट, पेटेंट और ट्रेडमार्क के कारण समावेशी राज्य की कंपनियों और उत्पादों के लिए व्यापार बाधाओं की पहचान करती है। प्रत्येक वर्ष के 30 अप्रैल तक, यूएसटीआर उन देशों की पहचान करती है जो बौद्धिक संपदा अधिकारों को 'पर्याप्त और प्रभावी' संरक्षण प्रदान नहीं करते हैं या संयुक्त राज्य अमेरिका के बौद्धिक संपदा अधिकारों पर निर्भर व्यक्तियों के लिए 'उचित और समान बाजार की पहुँच को सुनिश्चित नहीं करते हैं'।

कानून के अनुसार, वार्षिक विशेष 301 रिपोर्ट में 'प्राथमिकता वाले विदेशी देशों' की एक सूची शामिल है, जहाँ बौद्धिक संपदा कानूनों के अपर्याप्त होने का अनुमान है ये देश प्रतिबंधों के अधीन हो सकते हैं। इसके अलावा, रिपोर्ट में एक 'प्राथमिकता वॉच लिस्ट' और एक 'वॉच लिस्ट' शामिल है, जिसमें ऐसे देश शामिल हैं जिनके बौद्धिक संपदा नियमों को चिंता का विषय माना जाता है। यूनाइटेड स्टेट्स ट्रेड रिप्रेजेंटेटिव के कार्यालय ने अपनी वार्षिक विशेष 301 रिपोर्ट जारी की, जिसमें इसने 36 देशों को प्राथमिकता वॉच लिस्ट और वॉच लिस्ट में रखा।

यूएसटीआर द्वारा एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया है 'ट्रेडिंग पार्टनर जो वर्तमान में आईपी अधिकारों के बारे में सबसे महत्वपूर्ण चिंताएँ पेश करते हैं, उन्हें प्राथमिकता वॉच सूची या वॉच लिस्ट में रखा गया है।'

जबकि भारत को प्राथमिकता वॉच लिस्ट में रखा गया है, पाकिस्तान वॉच लिस्ट में है। प्राथमिकता वॉच लिस्ट में शामिल अन्य देश अल्जीरिया, अर्जेंटीना, चिली, चीन, इंडोनेशिया, कुवैत, रूस, सऊदी अरब, यूक्रेन और वेनेजुएला हैं।

मुख्य शिकायत यह है कि, ब्राजील, चीन, भारत, इंडोनेशिया और रूस ने ऐसी नीतियों को पेश किया या बनाए रखा है, जो आईपी और प्रौद्योगिकी तक बाजार की पहुँच को रोक रहे हैं। अमेरिका के अनुसार, इस तरह की बलपूर्वक स्थानीयकरण नीतियाँ समग्र नवाचार पारिस्थितिकी तंत्र को कमजोर करती हैं और विदेशी आईपी गहन संस्थाओं से निवेश को रोकती हैं। अमेरिका और सहयोगी ऐसे कानून चाहते हैं जो ऐसे नवाचारों का बौद्धिक संपदा के रूप में रक्षा

करते हों भले ही इससे सार्वजनिक हित की हानि होती हो।

रिपोर्ट में कहा गया है कि, अगर सरकार ने कंप्यूटर संबंधित आविष्कार (CRI-Computer Related Invention) के लिए अंतिम दिशानिर्देशों को लागू नहीं किया होता तो भारत का स्कोर बढ़ जाता। रिपोर्ट में भारत के निम्न श्रेणी के निम्न कारणों पर ध्यान दिया गया है।

भारत को निम्न श्रेणी में रखे जाने को निम्न कारणों के आधार पर समझाया गया है

- भारत में पेटेंट सुरक्षा अंतर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप नहीं है।
- भारतीय कानून ऑनलाइन पाइरेसी का प्रभावी ढंग से मुकाबला करने के लिए पर्याप्त प्रवर्तन तंत्र प्रदान नहीं करता है।
- वाणिज्यिक और गैर-आपातकालीन स्थितियों के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग (सीएल) का उपयोग और भारत द्वारा सीएल के विस्तारित उपयोग पर विचार किया जाना भारत की IPR में कमजोरी का प्रमुख कारण है।
- कमजोरी का एक अन्य क्षेत्र खराब आवेदन प्रणाली का होना और कानूनों के प्रवर्तन व उससे संबंधित उपचार में पर्याप्त सक्षमता का अभाव भी है।
- यह तथ्य कि ट्रांस-पैसिफिक पार्टनरशिप समझौते की तरह भारत प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संधियों का पक्षधर नहीं है, यह भी भारत की IPR में खराब स्थिति के कारणों में से एक है।
- इन चिंताओं की पृष्ठभूमि में भारत को अमेरिका में प्राथमिक वॉच लिस्ट के अंतर्गत रखा गया है। अगर भारत को प्राथमिकता वाले देशों की सूची में रखा जाता है तो अमेरिका भारत पर व्यापार प्रतिबंध लगाएगा। लेकिन ऐसा होने की संभावना नहीं है क्योंकि भारत ने अब तक ट्रिप्स के किसी भी खंड का उल्लंघन नहीं किया है। वहीं अमेरिका ट्रांस-पैसिफिक/अटलांटिक व्यापार साझेदारी पर बातचीत कर रहा है, जिसको (डब्ल्यूटीओ+) के रूप में देखा जा रहा है। इसमें अन्य चीजों के अलावा वर्तमान ट्रिप्स समझौते द्वारा अनुमत लचीलेपन को कम करके बौद्धिक संपदा की रक्षा करने वाले कड़े प्रावधान होंगे।

निष्कर्ष

जैसा कि पहले कहा गया था, भारत का IPR शासन TRIPS समझौते के ही अनुरूप है। हालाँकि, यहाँ विभिन्न कानूनों का क्रियान्वयन शिथिल रहा है। भारत में पेटेंट या कॉपीराइट का उल्लंघन और पाइरेसी असामान्य नहीं है। यह भी तथ्य है कि भारत का R&D में खराब प्रदर्शन है जो कुल वैश्विक खर्च का मात्र 2.7% है। खराब आईपीआर सुरक्षा व्यवस्था इसमें कुछ हिस्सा निभाता है।

मौजूदा समय में बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में भारत के समक्ष जो बड़ी चुनौतियाँ शामिल हैं वे हैं- सीमित जीव वैज्ञानिक (Life Scientists) बौद्धिक संपदा, अंतर्राष्ट्रीय मानक के बाहर पेटेंट योग्य आवश्यकताएँ, वाणिज्यिक स्थितियों के लिए पूर्व प्रयुक्त अनिवार्य लाइसेंसिंग, अंतर्राष्ट्रीय पीपीएच (Patent Prosecution Highway) में किसी प्रकार की भागीदारी का न होना तथा अंतर्राष्ट्रीय संधियों में सीमित भागीदारी करना।

सरकार एक नई आईपीआर नीति लाने वाली है। यह उम्मीद की जाती है कि यह TRIPS के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पुनः स्थापित करेगा और वादा करेगा कि केवल दुर्लभ मामले में ही अनिवार्य लाइसेंस जैसे उपायों का सहारा लिया जाएगा। यह अवसररचनात्मक और मानव संसाधन क्षमताओं के निर्माण द्वारा क्रियान्वयन को तीव्र करने की आवश्यकता और उपायों पर भी विचार करेगा। यह पूरे भारत में कॉपीराइट और पेटेंट कार्यालयों के विस्तार के लिए एक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन देने वाला होगा।

जैसा कि हमने देखा है कि आईपीआर में विभिन्न विषयों को विभिन्न विभागों

और मंत्रालयों द्वारा निपटारा जाता है, इन विभागों के मध्य एकीकरण किये जाने की आवश्यकता है। यह एकीकरण एक भिन्न आईपीआर नीति तैयार करने और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक है। यह कहा जाता है कि, भारत में कानूनी व्यवस्था/ढांचा निजी अधिकारों के साथ सार्वजनिक अधिकारों को संतुलित करने की कोशिश करता है। यह प्रणाली उद्यमियों को नवाचार करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करती है। हमें बस सख्त कार्यान्वयन की आवश्यकता है। इस तरह हम नवाचार को भारतीय अर्थव्यवस्था का परिवर्तन एजेंट बनाने में सक्षम होंगे।

इस अध्याय से संबंधित समसामयिक घटनाक्रम एवं मुद्दे

पेटेंट संशोधन अधिनियम, 2021

- हाल ही में, केंद्र सरकार ने पेटेंट संशोधन अधिनियम, 2021 पारित किया, जिसने शैक्षणिक संस्थानों के लिए पेटेंट दाखिल करने और अभियोजन हेतु शुल्क में 80% की कमी की है।
- पेटेंट के लिये आवेदन करते समय नवोन्मेषकों को उन संस्थानों के लागू करना पड़ता है, जो बड़े आवेदकों के लिए शुल्क भुगतान करते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरुत्साहित होने का काम करती है।
- पेटेंट नियम 2003 के तहत विभिन्न अधिनियमों के संबंध में उनके द्वारा देय अधिकारिक शुल्क को पेटेंट संशोधन अधिनियम, 2021 के माध्यम से घटा दिया गया है।
- पेटेंट आवेदकों की संख्या को 8 अन्य श्रेणियों तक बढ़ा दिया गया है। जिनमें शामिल है, लघु और मध्यम उद्यम, महिला आवेदक, सरकारी विभाग, केंद्रीय प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित संस्थान, सरकारी कंपनी, सरकार द्वारा पूर्ण रूप से वित्तपोषित संस्थान, पेटेंट प्रॉसिक््यूशन हाइवे के तहत आवेदक आदि।
- पेटेंट प्रॉसिक््यूशन हाइवे, कुछ पेटेंट कार्यालयों के बीच सूचना साझा करके त्वरित पेटेंट अभियोजन प्रक्रिया प्रदान करने के लिए पहल का हिस्सा है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्टार्ट-अप हब रैंकिंग, 2021

- हाल ही में, इंटरनेशनल स्टार्ट-अप हब रैंकिंग, 2021 को स्टार्ट-अप जीनोम द्वारा अपनी वार्षिक ग्लोबल स्टार्ट-अप इकोसिस्टम के लिये संकलित और प्रकाशित किया गया है।
- रैंकिंग के अनुसार, लंदन, मुम्बई, बंगलुरु को दुनिया के शीर्ष स्टार्ट-अप केंद्रों में शामिल किया गया है।
- इमर्जिंग इकोसिस्टम रैंकिंग में मुम्बई को पहले स्थान पर रखा गया है, प्रदर्शन, वित्त पोषण-प्रतिभा, बाजार अनुसंधान के क्षेत्रों में तेजी से बढ़ते पारिस्थितिक में बेहतर प्रदर्शन कर रहा है।
- कर्नाटक, दुनिया में चौथा सबसे बड़ा प्रौद्योगिकी और नवाचार कलस्टर है। जहाँ 400 से अधिक वैश्विक अनुसंधान एवं विकास केंद्र कार्यरत हैं।
- रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय स्टार्ट-अप ने वर्ष 2021 की पहली छमाही में

12.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्राप्त किए हैं। यह तकनीक और नवाचार के वैश्विक केंद्र के रूप में भारत के तेजी से विकास को प्रदर्शित करता है।

- यह रिपोर्ट प्रतिभा, प्रदर्शन और जुड़ाव जैसे सात सफलता कारकों के आधार पर अग्रणी 140 स्टार्ट-अप पारिस्थितिकी प्रणालियों की रैंकिंग करती है।

व्यापार सुविधा समझौता (Trade Facilitation Agreement)

WTO की बाली मंत्रिमण्डलीय सम्मेलन (2013) में इस समझौते को प्रस्तावित किया गया था तथा 22 फरवरी 2017 को WTO के दो-तिहाई सदस्यों के अनुमोदन द्वारा इसे लागू किया गया।

उद्देश्य

- वस्तुओं के आवागमन, निस्तारण एवं निकासी को सभी सीमाओं में आसान बनाना।
- निर्यात, आयात एवं आयात प्रक्रियाओं को सरल आधुनिक बनाना तथा उनमें परस्पर सामंजस्य स्थापित करना।
- अधिकाधिक विलंब व रेड टेपिज्म को कम करना।

भारत की प्रतिक्रिया— केंद्र सरकार ने व्यापार सुलभता के लिये TFA को मंजूरी प्रदान की है। इसके कार्यान्वयन की निगरानी के लिये कैबिनेट सचिव के नेतृत्व में एक अंतर मंत्रालयी निकाय के रूप में व्यापार सुविधा पर एक राष्ट्रीय समिति (MCTF) का गठन किया है।

सेवाओं में व्यापार सुविधा एग्रीमेंट (Trade Facilitation in Service)

भारत ने फरवरी 2017 में WTO में TFS समझौता को एक कानूनी रूप प्रदान करने के लिये प्रारूप किया था। यह समझौता वस्तुओं में व्यापार सुविधा समझौते के समान है। इसके निम्न उद्देश्य हैं—

- देशीय सीमाओं के पार कुशल श्रमिकों के संचालन के लिये मानदण्डों को आसान करना।
- विदेशी बाजारों तक पहुँच को प्रभावी बनाना तथा व्यावसायिक रूप से सार्थक बनाना।
- यह समझौता सेवाओं में व्यापार को सुविधाजनक बनाने हेतु मुख्य मुद्दों को संबोधित करता है जैसे— पारदर्शिता, प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित बनाना, बाधाओं को दूर करना आदि।
- इस समझौते में सेवाओं को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया गया है जैसे—
- मोड-1 – सीमा पार से सेवाएँ
- मोड-2 – विदेश में उपभोग
- मोड-3 – वाणिज्यिक उपस्थिति
- मोड-4 – अल्पकालिक सेवा प्रदाताओं का संचलन

यूरोपीय संघ, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड जैसे देशों ने भारतीय प्रस्ताव का स्वागत किया है।

Test Series

UPSC Prelims 2024

Offline



Online

**Detailed
Solutions for
all
Questions
(PDF)**

**Time -
Bound,
Disciplined, &
Result-
Oriented
Tests**

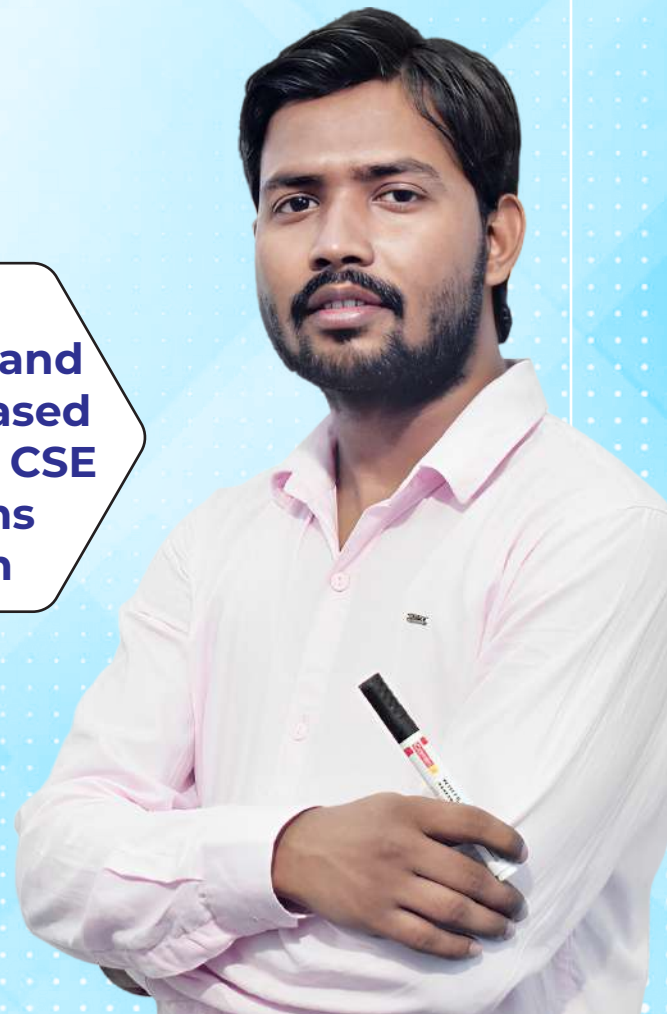
**Holistic
Coverage
of all
Study
Materials
& Sources**

**Fundamental
and
Comprehensive
Test**

**Pattern and
Trend Based
on UPSC CSE
Prelims
Exam**



Scan to Know More





KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform



Our Offline Center's Now in:



Patna



Delhi



Prayagraj



Dehradun

Follow Us



YouTube



Website



Telegram



Whatsapp

For more information: ☎ 8757354880 | ✉ enquiry@khanglobalstudies.com